निर्णय के तट पर

(शास्त्रार्थ संग्रह)

[तृतीय भाग]

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय 5502
पु परिग्रहण कमांक ..
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

★

★

★

दिनांक........ 16.8.88

प्रकाशक :—

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

(भारत)

प्रथम संस्करण : ६०० प्रतियां मात्र

मार्च सन् १९८८ ई०

भारत में मूल्य : १५०.००
विदेशों में : पन्द्रह पौण्ड

©अमर स्वामी प्रकाशन विभाग :

प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८ विवेकानन्द नगर
गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०) भारत

सम्पादक एवं संकलनकर्त्ता : (१) अमर स्वामी सरस्वती,
(२) लाजपतराय अग्रवाल (राजकीय ठेकेदार)।

आवरण : सुभाष स्टुडियो, चन्द्रपुरी, गाजियाबाद।

मूल्य : भारत में, एक सौ पचास रुपये
विदेशों में पन्द्रह पौण्ड £

मुद्रक : जनशक्ति मुद्रण यन्त्रालय, K-17 नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

संस्करण : "प्रथम"—छः सौ प्रतियां मार्च सन् १९८८ ई०

पुस्तक प्राप्ति के स्थान :
१. अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद,
२. गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६,
३. पाणिनी कन्या महाविद्यालय, पो० तुलसीपुर, वाराणसी (उ० प्र०),
४. राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
५. चौखम्बा ओरियेन्टला चौक, वाराणसी (उ० प्र०),
६. चौखम्बा विश्व भारती चौक, वाराणसी,
७. चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी
८. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-२
९. मुंशीराम, मनोहरलाल, नई सड़क, दिल्ली ६
१०. मोतीलाल बनारसीदास, बैंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
११. मधुर प्रकाशन, बाजार सीताराम, दिल्ली-६
१२. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१
१३. वैदिक साहित्य भंडार, आर्य समाज, सुलतान बाजार, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)
१४. आर्य समाज बड़ा बाजार, १ मुंशी सदरुद्दीन लैन, कलकत्ता-७
१५. आर्य समाज विधान सरणी १९, कलकत्ता-७ (बंगाल)
१६. स्टार पाकेट बुक्स, आसफअली रोड, नई दिल्ली-२
१७. मेहरचन्द लछमणदास, अन्सारी रोड, दिल्ली-६
१८. विश्वेश्वरानन्द बुक एजेन्सी, होशियारपुर (पंजाब)
१९. सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६
२०. आर्य समाज, कांकरिया रोड, अहमदाबाद (गुजरात)

NIRNAY KE TAT PER

Published by:—
LAJ PAT RAI AGGARWAL (Propriter)
AMAR SWAMI PRAKASHAN VIBHAG
1058, Vivekanand Nagar, Ghaziabad, 201001 (U.P.) INDIA

॥ओ३म्॥

निर्णय के तट पर—(तृतीय भाग)

[NIRNAY KE TAT PER-Vol. III]

(शास्त्रार्थ संग्रह)

सम्पादक एवं संग्रहकर्त्ता—

१—अमर स्वामी सरस्वती

२—लाजपत राय अग्रवाल

(गवर्नमेंट कान्ट्रेक्टर)

प्रस्तुत पुस्तक में निम्न शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ संग्रहीत हैं

१ - शास्त्रार्थकर्त्ता आर्य समाज की ओर से -

(१) "**सर्वश्री पण्डित**" आत्माराम जी "अमृतसरी", (२) ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री, (३) स्वामी नित्यानन्द जी, (४) स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, (५) अखिलानन्द जी "कविरत्न", (६) रामाश्रय जी शास्त्री, (७) मुरारिलाल जी शर्मा, (८) तुलसीराम स्वामी, (९) आर्य मुनि जी, (१०) पूर्णानन्द जी, (११) रुद्रदत्त जी, (१२) बुद्धदेव जी विद्यालंकार, (१३) लोकनाथ जी "तर्कवाचस्पति", (१४) रामचन्द्र जी देहलवी, (१५) देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री "सांख्यतीर्थ", (१६) रामू संथाल विद्यार्थी, (१७) ठाकुर इन्द्र वर्मा जी, (१८) शिवशर्मा जी, (१९) नन्द किशोर देव जी, (२०) मन्साराम जी "वैदिक तोप", (२१) स्वामी कर्मानन्द जी, (२२) बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ", (२३) गणपति शर्मा जी, (२४) गोपाल जी पत्रकार, (२५) प्रियरत्न जी आचार्य, (२६) मेधाव्रत जी, (२७) चन्द्रमणि जी "निरुक्त भाष्यकार" ।।

२—शास्त्रार्थकर्त्ता सनातन धर्म की ओर से -

(१) "**सर्वश्री पण्डित**" श्रीराम जी शास्त्री, (२) यमुनादास जी, (३) ज्वालाप्रसाद जी "मुरादाबादी", (४) श्यामबिहारी जी शास्त्री, (५) कालूराम जी शास्त्री, (६) अनोखेलाल (भजनीक), (७) भीमसैन जी शर्मा (पौराणिक होने पर), (८) अच्युताश्रम जी, (९) शंकर हरिहर तीर्थ, (१०) लक्ष्मीचन्द्र शर्मा (कौल निवासी), (११) ताराचन्द्र जी शर्मा, (१२) सुखराम जी शर्मा "व्याकरणाचार्य", (१३) अखिलानन्द 'कविरत्न', (१४) छज्जूदत्त जी, (१५) माधवाचार्य जी शास्त्री, (१६) जयदेव जी "मीमांसाचार्य", (१७) कण्डमणि जी शास्त्री, (१८) भट्ट जटाशंकर जी शास्त्री, ।।

३—शास्त्रार्थ कर्त्ता मुसलमानों की ओर से—

(१) श्री मौलाना सनाउल्ला साहिब "अमृतसरी", (२) श्री मौलवी इब्राहीम साहब "स्यालकोटवी" ।।

४—शास्त्रार्थकर्त्ता ईसाइयों की ओर से—

(१) श्री ईसाई पादरी एलियास जी ।।

सम्पादकीय

पाठक वृन्द ! कुछ विचार हैं, कुछ बातें हैं, जो यहाँ स्पष्ट करनी थी, परन्तु अगर उन सभी बातों को विस्तार से वर्णन करूं तो एक अलग से पुस्तक बन सकती है, यहां मैं मात्र बहुत ही संक्षेप में कुछ विचार उपस्थित करता हूं।

पूज्य अमर स्वामी जी महाराज अब इस असार-संसार में नहीं रहे जिनकी प्रेरणा से इस कार्य में निरन्तर प्रगति हो रही थी, मेरे ऊपर जो उनका स्नेह, अनुग्रह था, उसका ऋण मैं जीवन भर नहीं चुका सकता। उनकी प्रेरणा और मेरा परिश्रम दोनों से मिलकर परिणाम स्वरूप फल आपके हाथों में है। स्वामी जी के बारे में कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही है। यह ग्रन्थ क्या है? कितना उपयोगी है? यह स्वयं आपको अपना परिचय दे देगा। वैसे मैंने कुछ विशेष-विशेष सम्मतियों का समावेश प्रथम भाग के अन्दर कर भी दिया है।

इस कार्य के बीच में अनेकों बाधायें आईं, परन्तु वे बाधायें इस कार्य को रोक नहीं पायीं, विशेषकर वाधा उपस्थित हुई तब? जब स्वामी जी परलोकवासी हो गये, इसीलिए ग्रन्थ भी लेट हो गया। हमारे कई पाठक वृन्द तो निराश ही हो गये थे। परन्तु यह कार्य विघ्न-बाधाओं के आने के बावजूद भी पूर्ण हुआ, उस परमपिता परमात्मा की असीम कृपा है। और आप सभी लोगों का भी बहुत-बहुत धन्यवाद है। इस ग्रंथ के पूर्ण होने तक जो प्रतिक्षा हमारे पाठकों को करनी पड़ी, उसमें जो भी उनको कष्ट हुआ, उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

स्वामी जी महाराज अपनी सभी शास्त्रार्थ सामग्री जो विपुल मात्रा में संग्रहीत थी, उसे प्रकाशनार्थ मुझे दे गये हैं, अब जो भी शेष सामग्री रह गयी है उसे इन शास्त्रार्थों की शृंखला के चतुर्थ भाग के अन्दर उसका समावेश किया जावेगा।

किमधिकम् लेखेन ॥

विदुषामनुचर :
"लाजपत राय अग्रवाल"
(गवर्नमैन्ट कान्ट्रैक्टर)

अगली प्रकाशन योजना

निर्णय के तट पर (चतुर्थ भाग)
[शास्त्रार्थ संग्रह]

हमारे द्वारा पूर्ण प्रयास के बावजूद भी जो-जो शास्त्रार्थ अप्रकाशित रह गये हैं, उनका समावेश इस शास्त्रार्थ ग्रंथ की शृंखला के चतुर्थ भाग में किया जावेगा। जिसमें बहुत ही प्रामाणिक एवं अद्भुत सामग्री आ सकेगी।

इस भाग की प्रकाशन योजना भी निश्चित हो चुकी है, आप प्रकाशन से निम्न पते पर पत्र-व्यवहार करके मालूम कर सकते हैं।

"सम्पादक"

पता—
"अमर स्वामी प्रकाशन विभाग"
१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद
(उ० प्र०) २०१००१

समर्पण

आर्य जगत के महान संन्यासी महर्षि दयानन्द की सेना के महान सेनानी, ब्राह्मण समाज के पूज्य, क्षत्रीय समाज के अग्रणी महात्मा, स्वनामधन्य जिन्होंने अपना सर्वस्व आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार एवं प्रसार में समर्पित कर दिया। प्रमाण महार्णव रामायण, गीता, महाभारत के महान व्याख्याता वेद शास्त्र-उपनिषद मर्मज्ञ, पुराण, कुरान आदि अवैदिक मतों के मानमर्दन करने वाले, अद्वितीय वक्ता, शास्त्रार्थ केशरी, जिन्होंने दिग्दिगान्तर में वैदिक सिद्धान्तों की विजय वैजन्ती फहराई। उन

महात्मा अमर स्वामी सरस्वती के प्रति

जिस दिव्य गुरु ने **"अग्निना अग्नि समिध्यते"** को जीवन में चरितार्थ कर हजारों शिष्यों को व्याख्याता, संगीतज्ञ, राजनीतिज्ञ, प्रोफेसर, डाक्टर, और न जाने क्या-क्या उच्च पदों के योग्य बना उन्हें दलित व पीड़ितजनों के लिए उनमें हितैषी भावना भर कर समाज को समर्पित किया। इसी "अजेय योद्धा" जिन्होंने ४ सितम्बर सन् १९८७ ई० को सायं पांच बजे अपने जीवन के ९६ वर्ष पूरे कर इस नश्वर देह का त्याग किया, उनकी पुण्य स्मृति में यह ग्रन्थ सादर समर्पित है।

समर्पणकर्त्ता

"लाजपतराय अग्रवाल"

॥ ओ३म् ॥

पोल खुलते ही पुराणों का, महातम घट गया।
"बुद्ध" की बुद्धि बंध गई, मद जैन मत का घट गया॥
दम घुटा तौरेत का, छल बल जबूरी कट गया।
जी जला इंञ्जील का, दिल बाईबिल का फट गया॥
सामने कुरआन के ले, वेद चारों अड़ गये।
मार, मन्त्रों की पड़ी, पर आयतों के झड़ गये॥
डूब कर गहरे दलायल में, गपोड़ें सड़ गये।
कुल हदीसों के हवाले भी, भंवर में पड़ गये॥

महाकवि श्री पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा "शंकर"

॥ आवश्यक दृष्टव्य ॥

इस विशाल ग्रंथ के विषय में "सम्मति रूप" हजारों पत्र आये, हमने मुख्य-मुख्य सम्मतियां इसी ग्रंथ के प्रथम भाग के अन्त में प्रकाशित करा दी हैं। पाठकगण वहां देख सकते हैं।

कष्ट के लिए क्षमा चाहते हैं।

निवेदक—
"लाजपत राय अग्रवाल"

—अमर स्वामी सरस्वती"

निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं जमाने की।
कहीं छिपता है "अकबर" फूल पत्तों में निहां होकर ।।

परिचय—भारत की उर्वर वसुन्धरा ने विश्व को ज्ञान और ज्ञानी दिये हैं, कर्मवीर देश-भक्त दिये हैं। आदिकाल से अब तक विद्वानों और सद्विवेकियों की परम्परा ने अपने ज्ञान के आलोक से अविद्या अन्धकार को छिन्न-भिन्न किया। आर्य समाज ने अक्षपाद गौतम न्यायदर्शनकार के विद्यालय में दीक्षित रूढ़िग्रस्त धारणाओं पर कठोर प्रहार करने वाले तार्किक एवं शास्त्रार्थ महारथी उत्पन्न किये। स्वनाम धन्य स्वामी दर्शनानन्द, पण्डित प्रवर गणपति शर्मा, आर्य पथिक पण्डित लेखराम, पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी जैसे शास्त्रार्थ महारथियों की शृंखला में आर्य जगत के विख्यातनामा **"श्री अमर स्वामी जी महाराज"** हैं आपका जन्म वि० सं० १६५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ग्राम अरनियां, जिला बुलन्दशहर में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री ठाकुर टीकम सिंह जी तथा माता का नाम श्रीमती राजकुमारी देवी था। आपने अनेकों सम्प्रदायों से विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ किये। शास्त्रार्थसमर में आपकी चहुंमुखी तलवार चलती है। आपकी प्रतिभा की प्रशंसा विरधी भी करते हैं। यह कम गौरव की बात नहीं है। आपने अपने जीवन में सैकड़ों युवक तैयार किये जो आज देश के कौने कौने में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं। आप इस ६२ वर्ष की आयु में अब भी वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न है। वर्तमान समय में आर्य समाज के अन्दर आपकी सानी का अन्य कोई सन्यासी नहीं है। स्वामी जी में प्रकाण्ड पाण्डित्य, पैनी तर्क शक्ति के दर्शन आज भी किये जा सकते हैं। स्वामी जी के बारे में लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

"शिव कुमार शास्त्री"
(भू० पू० संसद सदस्य)

नोट—उपरोक्त "श्रद्धासुमन" (परिचय) श्री शास्त्री जी द्वारा स्वामी जी के जीवन काल में ही दिये गये थे।

—"सम्पादक"

इस वृद्धावस्था में भी श्री अमर स्वामी जी महाराज का शास्त्रार्थ गर्जन–

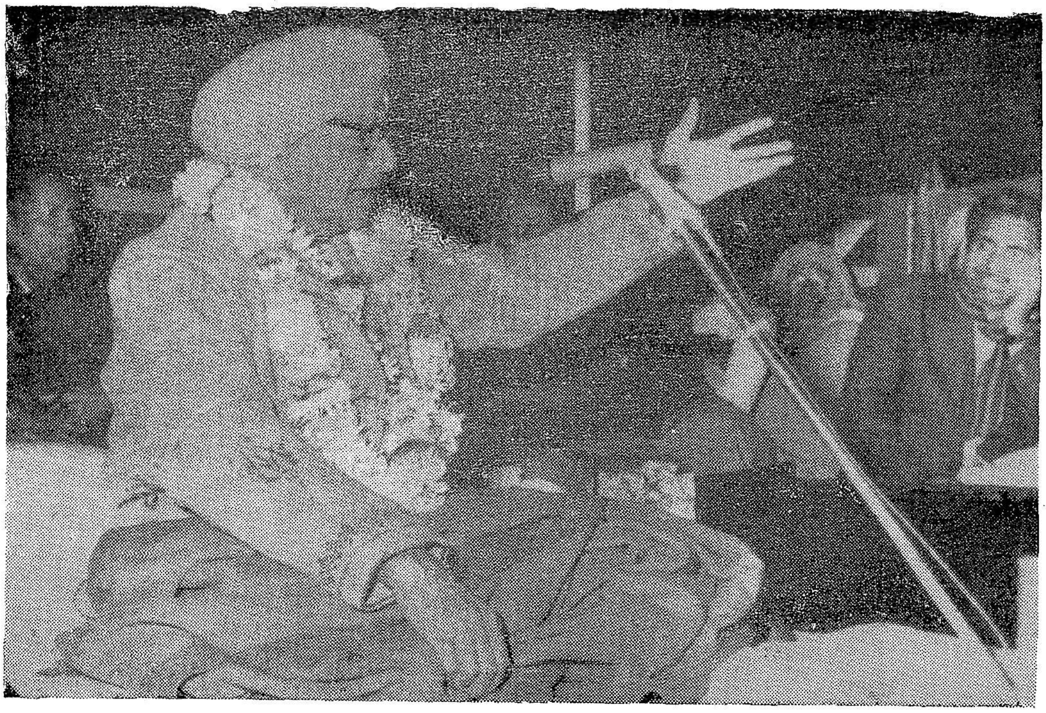

"आये कोई माई का लाल मैदान में"

यह विरक्त, यह वीर पुरुष, यह अमर स्वामि सन्यासी। पाखंडों का सदा सदा विद्रोही, ईश विश्वासी॥
जीवन भर जो रहा पूजता वैदिक आदर्शों को। सदा सदा आमन्त्रित करता आया संघर्षों को॥
वेद ज्योति से अपने जीवन को ज्योतित कर डाला। निज वाणी से लेखनी से, जग अलौकिक कर डाला॥
शास्त्र समर में यह योद्धा जिस जां पर अड़ जाता है। कौन हिला पाये अंगद का पांव गड़ जाता है॥
दयानन्द का सैनिक यह सेनानी यह आर्य सेना का। बढ़ा जिधर को ॐ ध्वजा ले, फहरी विजय पताका॥
तर्क बाण, जब यह प्रमाण का वेत्ता बरसाता है। पाखंडों का दुर्ग धराशाही हो गिर जाता है॥
क्या साहस ले, साम्प्रदायवादी विवाद की ठाने। हैं पुराण, कुरआन, बाईबिल सब जाने पहचाने॥
इसी मनस्वी, ज्ञान वारिधि का यह अभिनन्दन है। इस विरक्त के स्वागत में पुलकित हर्षित जन मन है॥
जुग जुग जिये, सदा चमके तेजस्वी! तेरा जीवन। यही कामना है ईश्वर से, "शरर" यही अभिनन्दन॥

"प्रो० उत्तम चन्द शरर एम० ए०"
(पानीपत)

नोट—उपरोक्त पंक्तियां स्वामी जी के जीवन काल में ही श्री "शरर" जी द्वारा लिखी गई थी। —**"सम्पादक"**

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक एवं संग्रहकर्त्ता व सम्पादक—

परिचय—प्रिय लाजपत राय जी एक अच्छे योग्य एवं होनहार युवक है। इनकी कार्य करने की लगन अद्भुत हैं, इनका जन्म एक प्रसिद्ध सम्पन्न अग्रवाल वंश में हुआ एवं ये भी अपने पूर्वजों की भांति रात-दिन वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है। इनके परिवार को मैं अच्छी तरह जानता हूं। इनके परिवार में से ही इनके तायरे भाई **"श्री कृष्ण चन्द जी" जो दिल्ली राज्य के उप-राज्यपाल भी रहे।** जिला सहारनपुर में इनके यहां अच्छी-खासी जमींदारी है। श्री लाजपत राय जी के बाबा "श्री लाला महताबराय जी" आदि कट्टर ऋषि भक्त थे बड़े-बड़े विद्वानों का इनके यहां आना-जाना रहता था।

आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान श्री अमर स्वामी जी ने सैकड़ों इतने बड़े-बड़े विद्वान, अपने पास रखकर तैयार किये हैं जो सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार कर रहें हैं, श्री लाजपत राय जी भी उन्हीं में से एक हैं।

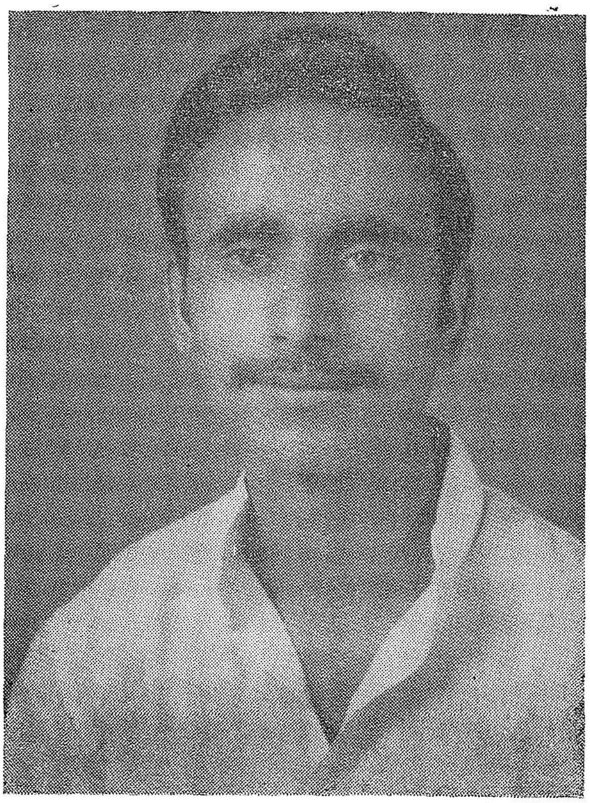

"LAJ PAT RAI AGGARWAL" (Govt. Contractor)

श्री लाजपत राय जी के स्तुत्य प्रयास से ही यह शास्त्रार्थों का संग्रह तैयार हो सका, परमेश्वर इनको दीर्घायु प्रदान करें एवं ये हमेशा अपने कार्यों में सफलता प्रदान करें। इसके साथ-साथ श्री अमर स्वामी जी भी धन्यवाद के पात्र है जिन्होंने अपने कठिन तप व त्याग से ऐसे अद्भुत लगनशील रत्न तैयार किये हैं।

श्री लाजपत राय जी एक अच्छे राजकीय ठेकेदार भी हैं, जो इस समय विद्युत विभाग व जल निगम आदि अन्य सम्मानित सरकारी विभागों में कार्यरत हैं, इनको सभी सिविल के निर्माण कार्यों का एक अच्छा अनुभव है। बल्कि यों कहिए जो एक अच्छे कान्ट्रेक्टर (ठेकेदार) के अन्दर अपनी स्वयं को प्रतिभा होनी चाहिए, वो इनमें मौजूद है। इतने व्यस्त कार्यों में से भी समय निकाल कर वैदिक धर्म के प्रचार हेतु प्रकाशन विभाग को चलाना, इनकी लग्न का एक नमूना है।

वैदिक धर्म का—
"बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ"
(बरेली)

॥ ओ३म् ॥

भारत के शुभ नभ मंडल में,
हुए अनेकों पथगामी ।
एक उन्हीं में थे उज्ज्वल तारा,
श्री श्रद्धेय "अमर स्वामी" ॥

—"सम्पादक"

विषयानुक्रमणिका

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
१.	नगीना (बिजनौर) (उ०प्र०)	श्री मास्टर आत्माराम जी "अमृतसरी" तथा श्री मौलाना सनाउल्ला साहिब	१६०४ ई०	वेद इलहामी है या कुरान ?	२०
२.	जोधपुर (राजस्थान)	श्री आचार्य ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री तथा श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री	१८८६ ई०	वेद में मूर्ति पूजा है या नहीं ?	८३
३.	नरसिंहगढ़ (राजस्थान)	श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी तथा श्री पण्डित यमुनादासजी (खीलचीपुर)	१८८८ ई०	गुरु मन्त्र एक है वा अनेक ?	८७
४.	रोसड़ा (दरभंगा) (बिहार)	श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न तथा श्री पण्डित ज्वालाप्रसादजी मुरादाबादी	१६१४ ई०	मूर्ति पूजा व अवतारवाद की वैदिकता ?	६५
५.	" "	" " "	"	स्वामी दयानन्द की आप्तता	१००

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
६.	(बल्हारपुर चांदा) (मध्यप्रदेश)	श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री तथा श्री पण्डित श्याम बिहारी जी शास्त्री	१९१४ ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?	१०४
७.	जलेसर (एटा) (उ० प्र०)	श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा तथा श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री	१९१४ ई०	नियोग की वैदिकता ?	११३
८.	आगरा (उ०प्र०)	श्री पण्डित तुलसीराम जी स्वामी तथा श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा	१९०१ ई०	क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?	११९
९.	हैदराबाद (दक्षिण)	सर्व श्री पं० आर्य मुनि जी, पण्डित-पूर्णा नन्द जी, पण्डित तुलसीराम जी पण्डित रुद्रदत्त जी तथा श्री स्वामी अच्युताश्रम जी श्री शंकर हरिहर तीर्थ जी	१९०३ ई०	क्या यज्ञ में पशुवध वेद प्रतिपाद्य है ?	१५५
१०.	देहली (आर्य समाज-नया बांस)	श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द जी शर्मा	१९२९ ई०	क्या स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं ?	१८३
११.	,, ,,	,, ,, ,,	,,	पुराणों की मान्यताएं ?	२०१

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
१२.	देहली (आर्य समाज-नया बांस)	श्री पण्डित लोकनाथ जी शर्मा तथा श्री पण्डित ताराचन्द जी शर्मा	१९२९ ई०	क्या दयानन्द ऋषि थे ?	२०७
१३.	,, ,,	,, ,, ,,	,,	सनातन धर्म में पत्यन्तर विधान है या नहीं ?	२११
१४.	,, ,,	श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित ताराचन्द जी शर्मा	,,	क्या आर्य समाज की शिक्षा अमल के योग्य है ?	२१६
१५.	,, ,,	श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री तथा श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य	,,	सनातन धर्म में मांस विधान है या नहीं ?	२२८
१६.	दरियापुर (मुंगेर) (बिहार)	श्री रामू संथाल विद्यार्थी तथा श्री ईसाई पादरी एलियास जी,	,,	ईसाई मत और उसकी तालीम ?	२२७
१७.	महोबा (हमीरपुर) (उ० प्र०)	श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री तथा श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न	१९१७ ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?	२३६
१८.	,, ,,	श्री पण्डित शिव शर्मा जी तथा श्री पण्डित छज्जूदत्त जी	,,	क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?	२५३

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
१९.	हैदराबाद (दक्षिण)	श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	१९३५ ई०	"वर्ण व्यवस्था" गुण-कर्म-स्वभाव से है या जन्म से ?	२६१
२०.	,, ,,	श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी साँख्यतीर्थ तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	,,	क्या पुराण वेदानुकूल हैं ?	२७०
२१.	,, ,,	श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	,,	क्या स्वामी दयानन्द कृत ग्रंथ वेदानुकूल हैं ?	२७६
२२.	,, ,,	,, ,, ,,	,,	मूर्ति पूजा ?	२८२
२३.	लखनऊ (उ०प्र०)	श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	१९३७ ई०	क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?	२८९
२४.	झालावाड़ (राजस्थान)	श्री पण्डित गणपति जी शर्मा तथा श्री पण्डित जयदेव जी मीमांसाचार्य	१९०६ ई०	आर्य समाज के सिद्धान्तों की वैदिकता ?	३०८
२५.	गोरखपुर (उ०प्र०)	श्री गोपाल जी पत्रकार तथा श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी	१९६३ ई०	विभिन्न वैदिक मान्यताएं?	३१७

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
२६.	डीडवाना (मारवाड) (राजस्थान)	श्री पण्डित लोकनाथजी तर्क वाचस्पति तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	१९५३ ई०	क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?	३६५
२७.	डीडवाना (मारवाड़) (राजस्थान)	श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	१९५३ ई०	क्या वेद में पशुहिंसा विहित है ?	३७५
२८.	,, ,,	श्री पण्डित लोकनाथजी तर्क वाचस्पति तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	,,	ऋषि प्रणीत ग्रंथों की वैदिकता ?	३८०
२९.	,, ,,	श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री	,,	क्या पुराण वेदानुकूल हैं ?	३८५
३०.	मुजफ्फरपुर (बिहार)	पौराणिक पण्डित एवं श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी	१९२३ ई०	मूर्तिपूजा व मृतक श्राद्ध	३९१
३१.	,, ,,	श्री मौलवी इब्राहीम जी व श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी	१९२४ ई०	ईश्वर, जीव, प्रकृति का अनादित्व	३९७

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
३२.	बड़ौदा (गुजरात)	श्री प्रो० कण्डमणि शास्त्री एवं श्री भट्ट जटाशंकर शास्त्री तथा १. श्री पण्डित आत्माराम जी अमृतसरी २. श्री पण्डित प्रियरत्न जी आचार्य ३. श्री पण्डित मेधाव्रत जी ४. श्री पण्डित चन्द्रमणि जी आदि	१९२५ ई०	क्या महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों की मान्यतायें वैदिक हैं ?	४०१
३३.	—	—	—	सभी सम्प्रदायों के मुख्य-मुख्य शास्त्रार्थ महारथियों की नामावली	४१३
३४.	—	—	—	अप्रकाशित प्राचीन शास्त्रार्थों के विषय में	४१५
३५.	—	—	—	प्रकाशन के सम्बन्ध में आवश्यक घोषणाएं	४१६
३६.	—	—	—	अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित साहित्य की संक्षिप्त सूची	४१७
३७	—	—	—	निर्णय के तट पर (चौथे भाग के विषय में आवश्यक दृष्टव्य)	४१८

क्र० सं०	स्थान	शास्त्रार्थकर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ सं०
३८.	—	—	—	इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर आर्थिक सहयोगियों की सूची	४१९
३९.	—	—	—	एक नई परम्परा का शुभारम्भ	४२०

आवश्यक द्रष्टव्य

निर्णय के तट पर (प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह) ग्रन्थ का यह तीसरा भाग आपके हाथों में है। इसका चौथा भाग भी प्रेस में दिया जा रहा है। जिसमें अत्यन्त प्रामाणिक प्राचीन शास्त्रार्थों का समावेश किया जावेगा। पूर्ण विवरण के लिए आप प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित् करें।

अब आप इस तीसरे भाग का अध्ययन कर ज्ञान प्राप्त करें। हर विषय पर दिग्गज विद्वानों द्वारा किये गये शास्त्रार्थों का विवरण यहां मौजूद है। जिससे हर विषय का "नीर क्षीर विवेक" हो जाता है।

"सम्पादक"

चौदहवां शास्त्रार्थ

स्थान : नगीना, (मौहल्ला बिश्नोई सराय)

जि० बिजनौर (उ० प्र०)

दिनांक : ५ से ११ जून, सन् १९०४ ई०

विषय : वेद इल्हामी है या कुरान ?

शास्त्रार्थ कर्ता आर्य समाज की ओर से : श्री मास्टर आत्मारामजी "अमृतसरी"

शास्त्रार्थकर्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलाना सनाउल्ला साहिब

आर्य समाज के प्रधान : श्री लाला नन्दराम जी

अंजुमन इस्लाम की तरफ से शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री नज़ीर अहमद साहब

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित भगवान दीन साहेब

नोट : इस शास्त्रार्थ के शेष पात्रों की जानकारी आपको शास्त्रार्थ के अन्दर मिलेगी । इस शास्त्रार्थ में श्रोताओं की हाजिरी चौबीस हजार तक पहुंच गई थी, दोनों ओर से एक-एक दर्जन से भी ज्यादा दिग्गज विद्वान सहायक रूप में मौजूद थे, जो अपने-अपने विषयों को बखूबी पेश करने में शास्त्रार्थ कर्त्ताओं की मदद कर रहे थे। "इस शास्त्रार्थ का इतिहास में विशेष महत्व है" ।

—सम्पादक

शास्त्रार्थ से पहले

नाज़रीन तारीख ६ अप्रैल १६०४ ई० को स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने यहां नगीना में तशरीफ़ लाकर वेद और कुरान की तालीम पर एक लैकचर दिया, जिसने मुसलमानों के अन्दर हल-चल मचा दी, चूनाचें स्वामी जी के चले जाने पर एक पत्र हकीम मौहम्मद इरतज़ा अली साहब का मुबाहिसा के लिए समाज में आया, जिसका जवाब दिया गया कि आर्य समाज शास्त्रार्थ के लिए हर समय तैयार है।

इसके बाद जब फिर स्वामी साहब दर्शनानन्द जी, श्री योगेन्द्र पालजी आदि विद्वानों को साथ लेकर समाज के वार्षिकोत्सव पर पधारे तो सभी ने इस्लाम की मान्यताओं पर व्याख्यान दिये। तो पुन: अहले इस्लाम के मतानुयायियों के दिलों ने शास्त्रार्थ के लिए जोश मारा, चूनाचें समाज के धर्मचर्चा के समय मौलवी अब्दुल शमद साहब ने वौदिक धर्म पर चन्द ऐतराज़ किये। जिसका एक माकूल जवाब समाज की तरफ से दिया गया, लेकिन इससे तसल्ली न पाकर मौलवी मोहम्मद इस्माईल साहब ने मौलवी अब्दुल शमद साहब की शर्तों को रखते हुए शास्त्रार्थ का चैलेन्ज दे दिया—

जिसके जवाब में कहा गया कि, आर्यसमाज मुबाहिसा के लिए तैयार है, इस बात के सुनते ही मुसलमान घबरा उठे, और मुबाहिसा से भागने के तरीके सोचने लगे, परन्तु भागने का कोई रास्ता न पाकर उन्होंने आर्य समाज से अपने नोटिस को वापिस लेने की प्रार्थना करते हुए ज़ाहिर किया कि हम आम सभा में खुले तौर पर बहस नहीं करना चाहते। अगर आपको इस्लाम की मान्यताओं पर कुछ सन्देह हो तो हम डाक द्वारा इसका जवाब देने को तैयार हैं। लेकिन आर्य समाज नगीना ने इस बात में अहले इस्लाम से राजी न होते हुए, आम जनता में ही शास्त्रार्थ करने पर जोर दिया। इस पर मजबूर होकर मौहम्मद इस्माईल साहब ने मुबाहिसा करने से इन्कार किया, उसके बाद समाज में "**श्री मुरारी लाल शर्मा साहब**" ने एक लैक्चर दिया, जिसमें यह भी बताया कि अहले इस्लाम आम सभा में शास्त्रार्थ करने से कतराते हैं। इस पर उन लोगों ने जोश में आकर पुनः समाज को शास्त्रार्थ का चैलेण्ज दे दिया। और एक लिखित प्रार्थनापत्र हस्ताक्षरों सहित अनायत अहमद साहब वकील नगीना का, मन्त्री आर्य समाज नगीना के पास आया, तब समाज की ओर से लिखित रूप में ही पता किया गया कि इस शास्त्रार्थ के कर्त्ताधर्त्ता कौन होंगे ? तब मुंशी अनायत अहमद साहब वकील नगीना ने प्रकट किया कि इसके कर्त्ताधर्त्ता मौलवी अनायत अली साहब वगैरा होंगे। जिनके नाम नोटिस में दिये जा चुके हैं, और आर्य समाज की तरफ से आर्य समाज के प्रधान बाबु नन्दराम जी आदि मुबाहिसा के कर्त्ताधर्त्ता नियुक्त हुए। क्योंकि एक विशेष शास्त्रार्थ का कार्यक्रम होने वाला था, इसलिए शर्तों के तय हो जाने के बाद शास्त्रार्थ के फ़रीकेनों (दोनों पक्ष के व्यक्तियों) ने जनाब साहब कलैक्टर बहादुर जि० बिजनौर से शास्त्रार्थ हेतु इजाजत प्राप्त कर ली। और एक आम विज्ञापन दिया गया कि पांच जून १६०४ ई० से स्थान नगीना में शास्त्रार्थ आरम्भ होकर १७ जून तक कायम रहेगा। विज्ञापन में लिखा गया कि, शास्त्रार्थ में सर्वप्रथम "**इलहाम**" पर बहस होगी। और बाद में दूसरे विषयों पर बहस की जावेगी, जो व्याख्यान दोनों पक्षों की तरफ से होगे वो साथ-साथ लिखवाये जावेगें। और उन्हें आम जलसे में सुनाये जाने के बाद उन पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर करा लिए जावेगें।

अन्त में शर्तों के अनुसार नोटिस तारीख ५ जून सन् १६०४ ई० से स्थान नगीना में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, श्री मान पं० भगवानदीन साहब प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा (आगरा) आर्य समाज की ओर से तथा श्री मान मुंशी

• अनायत अहमद साहब वकील नगीना अहले इस्लाम की तरफ से शास्त्रार्थ के प्रधान नियत किये गये। और मुबाहिसा करने के लिए (शास्त्रार्थ कर्त्ता) आर्य समाज की तरफ से **"श्री मान पं० मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी"** एवं अहले इस्लाम की तरफ से **"श्रीमान मौलाना सनाउल्ला साहिब"** नियुक्त हुए। शास्त्रार्थ प्रतिदिन, प्रातःकाल छः बजे से आरम्भ होकर दस बजे तक चलता था, हर एक तक़रीर (व्याख्यान) के लिए दस-दस मिनट निश्चित किए गए, और बीस-बीस मिनट कही गई बातों को लिखने के लिए निश्चित किए गए। हर एक पक्ष की तरफ से प्रतिदिन तीन-चार व्याख्यान होते रहे। यह शास्त्रार्थ ५ जून से ११ जून १६०४ ई० तक जारी रहा। जिसमें दोनों पक्षों की तरफ से इक्कीस-इक्कीस तकरीरों तक (प्रतिदिन) नौबत पहुंच गई। इसका नतीज़ा जो कुछ हुआ उसका जिकर यहाँ करना व्यर्थ है। खुद नाज़रीन मुबाहिसा का हाल पढ़ कर जान लेंगे। और जो लोग मौके पर मौजूद थे, उनका तो कहना ही क्या ? वे तो खुद इस मुबाहिसा का आनन्द ले चुके। और सत्य-असत्य को जान चुके। मेला चांदापुर के बाद नगीना आर्य समाज की त्वारीख (इतिहास) में यह पहला शास्त्रार्थ हुआ। जिसमें इतने ज्यादा उपस्थिति होने की वजह से जो हिन्दुस्तान के कौने-कौने से शास्त्रार्थ सुनने आये थे जिसमें हिन्दू व मुसलमान दोनों ही थे परन्तु आर्य समाज की तरफ से दोनों पक्षों के व्यक्तियों के बैठने का बड़े ही आला दर्जे का इन्तजाम था। अर्थात् **"इतिहास में इसके मुकाबले का शास्त्रार्थ आज तक नहीं हुआ"**। हाज़रीन की संख्या लगभग २४ हजार की थी, जिसमें लगभग चौदह हजार मुसलमान एवं शेष हिन्दू थे। दोनों पक्षों से बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान (शास्त्रार्थ महारथी) बम्बई व कलकत्ता जैसे महानगरों से भी पधारे थे। कस्बा नगीना हरिद्वार से लगभग चालिस मील पूरब की तरफ गंगा नदी व राम गंगा के बीच जि० बिजनौर में अवध रूहेलखण्ड रेलवे लाईन पर स्थित है। मुबाहिसा का पण्डाल कस्बे से आधा मील की दूरी पर रामलीला के मैदान में बड़ी मेहनत व खूबीयों से तैयार किया गया था, जिसमें छाया, रोशनी व हवा की कोई कमी न थी। और प्लेटफार्म इस खूबी से कायम किये गये थे कि बावजूद इस कदर हुज्जूम के हर दो तरफ लैकचरारों की आवाज जलसे के हर श्रोता तक बखूबी अच्छी तरह पहुंचती थी। **"अहले इस्लाम के प्लेटफार्म पर लगभग एक सौ इक्कीस मौलवी साहिबान अहले इस्लाम की वकालत करने के लिए इकट्ठे हुए थे। और आर्य समाज की वेदी पर केवल ग्यारह शास्त्रार्थकर्त्ता मौजूद थे।"** यह लेखबद्ध शास्त्रार्थ सात दिन तक निरन्तर चलता रहा। जब अहले इस्लाम को यकीन हो गया कि हम किसी तरह से भी आर्य समाज के मुकाबले में नहीं टिक सकते, और इस लिखित शास्त्रार्थ का बुरा असर श्रोताओं तक ही सीमित न रहेगा बल्कि मुबाहिसे को छपवा कर कुल जहान (सारे देश) में बदनामी होगी। यह जानकर उन्होंने पुरानी आदत के अनुसार, शास्त्रार्थ को बन्द करने की गर्ज से मुंशी अनायत साहब वकील नगीना की तरफ से समाज में इस विषय का प्रार्थना पत्र दिलवाया कि आईन्दा बज़ाय लिखित व मौखिक आम जनता के सामने शास्त्रार्थ करने के, बल्कि ज़ुबानी आपस में ही दो-चार व्यक्ति बैठ कर सिद्धान्तिक विचार विनमय कर लें, सभी मुसलमान विद्वानों ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा कि दोनों पक्ष आपस में बैठकर ही तकरीरें करें। जिससे उनका आशय ये था कि ये बला (मुसीबत) टल जाये तो अच्छा है। आर्य समाज ने पहले तो इस बात से मना किया, लेकिन अन्त में जब देखा कि हमारे मना करने पर अहले इस्लाम की मन की बात पूरी हो जावेगी। इसलिए अहले इस्लाम की बात को आर्य समाज ने मन्जूर कर लिया, चूनाचें तारीख १२ जून १६०४ ई० को पहले श्री मान मास्टर आत्माराम जी ने वैदिक धर्म पर एक सैद्धान्तिक लैकचर दिया। जिसको सुनकर हिन्दु तो एक तरफ बल्कि मुसलमान भी वाह! वाह!! करने लग गये। यानी खुश हो गये। वहुत से श्रोता बयान करते थे कि इससे पहले हमको सैकड़ों लैकचर सुनने का मौका मिला, परन्तु ऐसे मज़मून पर ऐसे आला दर्जे का लैकचर पहली बार सुना। जिस दलील व प्रमाणों से मास्टर साहब ने युरोपियनों एवं दर्शानिकों के हवाले देते हुए अपने विषय को साबित किया था कि आज एक ज़माने के बड़े-बड़े आलिम फ़ाज़िल भी वैदिक धर्म की तालीम की और इतनी तेजी से झुक रहे हैं, जो मेरे बयान के बाहर है। मुंशी अनायत अहमद साहब

वकील नगीना ने इस लैकचर को अक्षर-अक्षर लिखने की भरपूर कोशिश की, और वे एक हद तक कामयाब भी हुए, मगर क्योंकि लैकचर आरम्भ होने से पहले यह तय हो चुका था कि फ़रीकेन के लैकचर मुबाहिसे की सामग्री को दर्ज किये जाने की बाबत भी नाज़रीन् से माफ़ी मांगता हूं। मौलवी सनाउल्ला साहब ने मास्टर साहब का सैद्धान्तिक व्याख्यान सुना तो वे बहुत घबराये, और अपने मौलवियों से कहा कि व्याख्यान के मुकाबले में कौन सी फ़िलासफ़ी शेष रही जिस पर अब मैं व्याख्यान दूं। हर चन्द अहले इस्लाम ने मौलाना सनाउल्ला साहिब को तकरीर के लिए बार-बार कहा, परन्तु वे तैयार नहीं हुए, उन्होंने यही कहा कि मास्टर साहब की तकरीर के आगे कोई भी तक़रीर अच्छी नहीं लगेगी।

अन्त में उन्होंने मजबूर होकर, शास्त्रार्थ में आये अमरोहा के एक मौलवी साहब को व्याख्यान हेतु खड़ा कर दिया, चूनाचें उन्होंने शुरू में कुछ वक्त खुदा की तारीफ़ में लगाया, और फिर कुछ हज़रत मोहम्मद साहब की जीवनी सुनाने में दो घंटे गुज़ार दिये। इसके बाद तारीख १३ व १४ जून को अपनी मर्जी के अनुसार अहले इस्लाम का तकरीरी मुबाहिसा होता रहा, लेकिन जब मुसलमानों ने देखा कि हम इस तरह भी आर्य समाज से मुबाहिसे में नहीं जीत सकते तो शर्तों के अनुसार विज्ञापन १७ जून तक जारी रखने के बजाय सिर्फ़ १४ तारीख तक शास्त्रार्थ करके अपना पीछा छुड़वाया। यानी निश्चित समय से भी ३ दिन पहले ही अहले इस्लाम के मानने वाले लोग मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए जिसका पूर्ण विवरण आप आगे दिये गये पत्राचार में पढ़ेंगे। मैं इस अवसर पर यह बताने में नहीं रुक सकता कि यह नगीना के कुछ विश्नोई अग्रवाल महाशयों का ही काम था, कि चौदह हज़ार मुसलमानों के मुकाबले में एक बेमिसाल मुबाहिसा कर दिखाया। हिन्दुस्तान के आर्य पुरुषों को इनसे सबक लेना चाहिये। आर्य समाज में जहां ऐसे विद्वान महात्मा मास्टर आत्माराम साहब जैसे व्याख्याताओं की जरूरत है। वहीं शास्त्रार्थों के लिए **"श्री भगवानदीन"** जैसे श्रेष्ठ प्रबन्धकों एवं संचालकों की भी कोई कम जरूरत नहीं है। हम दोनों साहिबानों का दिल से शुक्रिया अदा करते हैं, जिनकी इस मौजूदगी की वजह से यह शास्त्रार्थ बड़ी अच्छी तरह से शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।

सबसे ज्यादा धन्यवाद की पात्र हमारी अच्छी सरकार है जिसके इन्साफ़ से एवं अच्छे अफसरों की देख-रेख में यह शास्त्रार्थ निर्विघ्न समाप्त हुआ। यह विशेष तौर पर अंग्रेजी सरकार को ही इस बात का धन्यवाद है। जिसे इन्तज़ाम के मामले में अपने ऊपर फ़खर है। जिसकी छत्रछाया में सभी मज़हबी लोग अपने-अपने धर्म की बातें कह व सुन सकते हैं। कलैक्टर साहब बहादुर जिला बिजनौर ने इस जलसे के होने की इज़ाज़त देकर उसके इन्तजाम में जो मेहरबानी की है। इसके लिए हम उनके भी शुक्रगुज़ार हैं।

श्री लाला नन्दराम साहब जी, प्रधान आर्य समाज नगीना, सरदार साहबसिंह साहब, बाबूरामस्वरूप साहब "मन्त्री" आदि आर्य समाज के सदस्यों का जिन्होंने इसमें भरपूर सहयोग दिया उन सबको आर्य समाज नगीना धन्यवाद देता है। एवं साहू हरदेव सहाय साहब रईस व लाला ताराचन्द साहब ने धन के एकत्रित करने और महाशय ईश्वरप्रसाद साहब और रामसुख भल्ला साहब ने जिस लग्न से इस जलसे में कार्य किया है वह वाकई काबिले तारीफ़ है। मैं अब अन्त में सभी का हृदय से शुक्रिया अदा करता हूं एवं प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि उनमें यह धार्मिक भावना सदा बनी रहे एवं आगरा निवासी प्रौफेसर कृपाशंकर साहब एम० ए० तथा महाशय गोपीचन्द कोटा निवासी तथा लाला हरदयाल जी अमृतसर निवासी एवं पंडित मुरारीलाल जी शर्मा सिकन्द्राबादी एवं देश-देशान्तरों से आये सभी हिन्दू व मुसलमान भाईयों का शुक्र अदा करता हूं। जिनके सहयोग से यह शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। जो आपके सामने पेश है।

निवेदक –
साहब दयाल, (प्रधान)
आर्यन् डिबेटिंग क्लब, अमृतसर

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पु 5502
पु परिग्रहण क्रमांक
ानन्द महिला म

शास्त्रार्थ से पहले पत्राचार

पत्र सं० १ मुसलमानों की ओर से—

अनायत फ़रमाये मन-मुन्शी कल्लुसिंह साहबज़ाद अनायता तशलीम! मैंने सुना है कि मुन्शी बाबु कृपारामजी साहब आपके दौलतखाने पर तशरीफ़ लाये हैं, और आज मुन्शी साहब मौसूफ़ ने लैक्चर भी दरबारे इलहाम दिया है, और यह भी सुना गया है कि कुछ ऐतराज़ मज़हब इस्लाम पर किया है, अगर मुन्शी साहब मौसूफ उलसदर का ख्याल मुबाहिसा हो ताअईयन से मुतल्ला फ़रमावें। और यह भी तहरीर होना चाहिये कि किस किताब मिसायल पर बहस की जावेगी ? और मौका मुबाहिसा से कि कहां होगा इतला दी जावे ?

१६ अप्रैल सन् १६०४ ई०

राकमुनियाज—

"प्ररतफा प्रली"

मुसलमानों के पत्र सं० १ के उत्तर में आर्य समाज की ओर से पत्र सं० १—

अनायत फ़रमाये हकीम, अरतफ़ा अली साहब नमस्ते। अर्ज़ ये है कि स्वामी दर्शनानन्द जी साहब इस वक्त रेल पर चले गये हैं, अगर आपको मुबाहिसा करना मन्जूर है तो बराये मेहरबानी के नोटिस आर्य समाज के नाम दीजिये। कल्लुसिंह कोई मेम्बर आर्य समाज का नहीं है। सिर्फ उनके मकान पर लैकचर हुआ था, आर्य समाज हर वक्त मुबाहिसा करने को तैयार है।

तारीख १६ अप्रैल सन् १६०४ ई०

आपका सेवक—

"मन्त्री" आर्य समाज नगीना

मुसलमानों की ओर से पत्र सं० २—

अल्हमदूलिल्लाह ! कि आपने हमारे नोटिस को स्वीकार करके मुबाहिसे को स्वीकार कर लिया, और यह "अधिक मेहरबानी की" कि लैकचर की तारीख और जलसे का प्रबन्ध और स्थान हमारी राय पर मुनहसिर किया, गो उस तहरीर में आपके चन्द अमूर गैरवाकयी व ज़ायद थे, निस्वत् जलसा ६ अप्रैल १६०४ तहरीरें कि जिसको आप साहिबान खूब जानते हैं कि कहां तक वो सही हैं, वो नीज कुरानशरीफ की निस्वत, जो कुछ आपने ६ मई १६०४ ई० को बाजार व रास्तों में फ़रमाया है व नेक नियति से था, या बदनियति से ? वह तमाम हुक्काम व अवाम उन्नास पर ज़ाहिर है। लेकिन इस वक्त हम इस खुशी में कि आपने हमारी ख्वाहिश को कबूल फरमाया है उससे दरगुजर करते हैं, और गुज़ारिश परवाज है कि २४ मई १६०४ ई० तारीख मुनाजरा मुर्करिर फरमाईये, और मुकाम जलसा यह ही ठीक है। जहां इस वक्त आपका जलसा हो रहा है। अमूर बहस ज़ुबानी—तहरीर फ़रमा लीजिये, ज्यादातर यही अमूर काबिले बहस हैं।

अव्वल तोहीद, दोम इलहाम, तीसरा तनासुख, सिवाय इनके और अमूर में भी बहस का हक फरीक को हासिल है। लिहाजा गुजारिश है कि दिगर अमूर को ज़ुबानी गुफ्तगू करके तय फरमा लीजिये। क्योंकि बार-बार

की तहरीर में अर्सा ज्यादा सर्फ होगा, और मोहृतमी और मुमतज्मी आपने अनायत अहमद वकील की जुबानी कबूल फरमाया है उनको हम भी मन्जूर करते हैं। जनाब साहब मजिस्ट्रेट बहादुर दाम इकबाल हूं कि इजाजत हासिल होना जरूरी बात है। उनसे इजाजत हासिल फरमा लीजिये, जो कुछ हमारे लिये इरशाद होगा, हम भी उसकी तामील के लिये मौजूद हैं।

(तारीख ८ मई, १९०४ ई०)

"अलब्द मौहम्मद इस्माईल वजानिब जुमला नोटिस दिहंदगान"

नोट :—

उपरोक्त पत्रसंख्या २ व ३, (मूल) पुरानी छपी पुस्तक के अन्दर जिस भाषा में थे वह हिन्दी अक्षरों में लिखे गये, परन्तु पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने इसको आम व्यक्ति के लिए उपयोगी न समझ कर आगे से हिन्दी में अनुवाद करके या आम उर्दू भाषा में जिसे हर कोई समझ सकें, लिखवाया है।

निवेदक

—सम्पादक

"लाजपत राय अग्रवाल"

आर्य समाज नगीना की ओर से पत्र सं० २—

तारीख ८ मई सन् १९०४ ई०

हमारे मेहरबान दोस्त !

मियां मौहम्मद इस्माईल जी नमस्ते !!

(१) आपका पत्र जो ६ बजे शाम तारीख ८ मई सन् १९०४ ई० को आया; उसके उत्तर में यह लिखा जाता है कि साहब बहादुर मजिस्ट्रेट जिला बिजनौर से मुबाहिसे के लिए इजाजत लेना आपके जिम्मे है, और मकान का इन्तजाम हम कर देंगे।

(२) मुबाहिसा ५ जून सन् १९०४ ई० का होना मुनासिब है, क्योंकि २४-२५-२६-२७ मई सन् १९०४ ई० को हमारे उपदेशकों का अमृतसर में मौलवीयों से मुबाहिसे के लिए मौजूद होना जरूरी है।

(३) मुबाहिसा तौहीद (खुदा एक है) व ईश्वरीय ज्ञान एवं तनासुख (आवागमन) या (पुर्नजन्म) पर होना हमको स्वीकार्य है। दोनों तरफ के समय की पाबन्दी और बराबर समय की बांट भी होनी चाहिये।

(४) दोनों ओर की समय की पाबन्दी और समय की बराबर बांट का होना जरूरी है।

(५) मुबाहिसा में इन्तज़ाम के लिए पुलिस का होना लाज़मी है। और वह थाना नगीना से मुबाहिसा में शान्ति रखने के लिए बुलाई जावेगी।

(६) जितना समय प्रश्न करने के लिए होगा, उतना ही दूसरे पक्ष के लिए भी होगा।

(७) मुबाहिसे में कुरान और वेद के प्रमाण दिये जावेंगे। जुबानी जमा-खर्च नहीं होगा।

(८) मुबाहिसे में हर पक्ष की ओर से वही व्यक्ति बोल सकेगा जिसको वह पक्ष बोलने के लिए चुनेगा। कोई और बोलेगा तो वह सभा से बाहर निकाल दिया जावेगा।

(९) मुबाहिसे में तहज़ीब के खिलाफ़ अलफ़ाज़ बोलने से परहेज़ करना होगा। हाँ! असली बात का पुस्तक की असली इबारत पढ़कर सुनाना जरूरी होगा। बनावटी बातें करना मना होगा।

(१०) दोनों पक्षों के दो प्रधान निश्चय किये जावेंगे, और उनके इन्तज़ाम में शास्त्रार्थ किया जावेगा।

(११) जो व्यक्ति इन नियमों के विरुद्ध व्यवहार करेगा उसकी हार समझी जावेगी।

"आर्य समाज नगीना"

मुसलमानों की ओर से (नोटिस) आर्य समाज के लिए—

आपके यहां ९ अप्रैल सन् १९०४ ई० को एक जलसा में पं० कृपाराम जी उर्फ़ दर्शनानन्द ने इलहाम के सम्बन्ध में कुछ बहस फ़रमाई थी, जिसमें मज़हब इस्लाम पर भी कुछ एतराज किये थे, मोहम्मद इस्माईल ने जो उस जलसे में मौजूद थे उसी वक़्त उन एतराजों का जवाब देना चाहा, मगर प्रबन्धकों ने यह कह कर रोक दिया कि इस मौके पर किसी भी तरह की बातें करना मना है, जलसा समाप्त होने के बाद जो चाहो कह सकते हो, लैकचरार ने अपने लैकचर को इस कदर लम्बा किया कि मगरिब की नमाज का समय हो गया, मौहम्मद इस्माईल ने वहां से मस्जिद की राह ली जब बाद में नमाज से फ़ारिग होकर वापिस आये तो मालूम हुआ कि पंडित कृपाराम जी रेलवे स्टेशन पर चले गये हैं, उन्होंने वहीं स्टेशन पर जाकर एतराजों का जवाब देना चाहा, मगर पंडित जी ने जवाब सुनने से इनकार किया, आखिर शास्त्रार्थ का नोटिस दिया तो उसे भी लेने को मना कर दिया, अब क्योंकि आपकी तरफ़ से जलसों में सरे बाजार मज़हब इस्लाम पर नाजायज़ तरीके से हमले किये गये, जिससे नगीना के सभी मुसलमानों के दिलों को दुःख पहुंचा। इस लिए उन सबकी तरफ से आपको यह दरख्वास्त है कि— एक जलसा में उन एतराजों के जवाब उन से ले लें, और आपके मज़हब पर जो अहले इस्लाम की ओर से एतराज़ हो, उनका जवाब दें। इस जलसा मुनाज़रा की तारीख व शर्तों से आज ही हमको इतला दीजिये, और अगर आप किसी खास विषय पर बहस करना चाहते हैं तो उसको भी बता दीजिये, और क्योंकि आज भी सुबह भक्त रामलाल साहब व, लाला नन्दकिशोर साहब व मुन्शी हरलाल साहब ये फ़रमा गये हैं कि इन मुसलमानों की तरफ़ से जो बहस करना चाहते हैं। बाक़ायदा नोटिस समाज को देना चाहिये। लिहाज़ा वो नोटिस इन उपरोक्त प्रार्थनाओं के साथ आपकी सेवा में भेजा जाता है। और उनको यक़ीन दिलाया जाता है कि मुनाज़रा, इस्लाम के बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा होगा। और मुसलमानों की तरफ़ से जलसे का प्रबन्धक मुझे जानें। क्योंकि आपकी समाज के सदस्यों की इच्छानुसार मैं इसका इन्तज़ाम करने में इच्छुक हूं।

"मोहम्मद इस्माईल"

"मोहम्मद इस्माईल" द्वारा उपरोक्त नोटिस के सम्बन्ध में पत्र—

क्योंकि कल शंकासमाधान में मौलवी अब्दुलशमद साहब व स्वामी कृपाराम साहब के बीच में मुबाहिसा हुआ, और आज की शर्तों के अनुसार मेरा और आर्य समाज नगीना का इतफ़ाक (मिलाप) नहीं हुआ, लिहाज़ा मैं

अपना नोटिस वापिस लेना चाहता हूं, अगर वापिस न किया जावे, तो उस पर कोई कार्यवाही न की जावे, और अगर आर्य समाज को मुझ से कुछ पूछना हो, या किसी भी विषय पर बहस करनी हो तो डाक द्वारा सरकार के माध्यम से तय कर लेवें। जिस पर्चे पर मेरी मोहर न हो, वह माना नहीं जावेगा। आप केवल वकील साहब से ही इस खतोकिताबत का सम्बन्ध रखें।

"मोहम्मद इस्माईल" नगीना

(८ मई सन् १९०४)

आर्य समाज की ओर से पत्र सं० ३ (ए)—

॥ ओ३म् ॥

जनाब ! मोहम्मद इस्माईल साहब जी नमस्ते, ९-५-१९०४ (प्रातःकाल)

आपकी दरख्वास्त आई, जिससे पता चलता है कि आप शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते, इसलिए हम भी किसी के ज़िम्मे जबर्दस्ती नहीं होना चाहते।

आपका प्रार्थना पत्र मन्जूर किया जाता है, और आइन्दा कोई पत्राचार आप से न होगा। और नोटिस की बाबत बात यह है कि हम आपके नाम का नोटिस वापिस न देंगे जिस पर सिर्फ़ आपके दस्तख्त है।

"उपमन्त्री" आर्यसमाज

आर्य समाज की ओर से अनायत अहमद वकील साहब की सेवा में पत्र सं० ३ (बी)—

९-५-१९०४ (सांयकाल)

आपका नोटिस आया, पढ़कर बड़ी खुशी हुई जवाब में अर्ज़ है कि स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के नौ अप्रैल की बावत अपने जो तहरीर फ़रमाया उसकी गलतफ़हमी दूर करने के लिए इस क़दर लिखना ही काफ़ी है कि व्याख्यान समाप्ति पर स्वामी जी महाराज ने तीन घन्टा तक इन्तज़ार किया, और जब बहस के वास्ते कोई नहीं आये तो स्वामी जी मजबूरन वापस चले गये। आर्य समाज सच्चे इलहाम यानी वैदिक धर्म का उपदेश करना अपना कर्त्तव्य समझता है। उसकी इच्छा किसी के दिल को दुखाने की बिल्कुल नहीं है। लैकचरार ने वेदों को इलहाम साबित करते हुए कुरान शरीफ़ का ज़िकर किया, लेकिन जो कुछ बयान किया नेक नियति के साथ और इज्जत के साथ बयान किया, जो कुछ एतराज किसी लैकचर में किये गये हैं, मेहरबानी करके उन एतराजों को जवाब सहित लिखित रूप में जलसे के अन्दर शंकासमाधान के वक़्त में लेते आवें उनको जनता के सामने सुना दिया जावेगा। और उनका जवाब भी दे दिया जावेगा और आपको जो एतराज वैदिक धर्म पर होंगे, उनका भी जवाब अवश्य दिया जावेगा। सबसे पहले इलहाम के विषय पर बहस हो, अब शास्त्रार्थ करने की जगह और एक योग्य व्यक्ति को इन्तज़ाम करने के लिए नियुक्त करके सूचित करें। और साहब मजिस्ट्रेट बहादुर जिला की इजाज़त हासिल कर ली जावे। ताकि वो व्यक्ति ठीक इन्तज़ाम कर देवें, और जलसे की तारीख भी सूचित करें। मेरी समझ में और किसी नियम की जरूरत नहीं है। फिर भी अगर आप किसी विशेष नियम की जरूरत समझें तो सूचित करें।

"कुन्दन लाल"

(उपमन्त्री आर्य समाज, नगीना)

मुसलमानों (वकील अनायत अहमद) की ओर से पत्र सं० ४—

आश्चर्य है कि आप लोगों ने उर्दू के मामूली विषय को समझने में ध्यान नहीं दिया कि जो हमारी व आपकी मादरी भाषा ही रही है या यों कहिये कि विषय को समझते हुए भी आपने उसको भुलाकर कहा है, बहरहाल दोनों बातों में से कोइ भी एक हो, मैं आपका पुन: उस ओर ध्यान दिलाता हूं कि नोटिस देने वाले तमाम मुसलमान नगीना निवासी हैं, लेकिन वह नोटिस जिसे समाज नहीं लेना चाहती थी, वह मेरी तरफ़ से अर्थात् मेरे माध्यम से आपको प्राप्त हुआ है। परन्तु वह नोटिस उन सभी लोगों की निगरानी में दिया गया है, जिनके उस पर हस्ताक्षर भी है लेकिन मैं यह तहरीक भक्त रामलाल साहब, लाला नन्दकिशोर व बाबु हरलाल सिंह साहेबान इस बात के जिम्मेदार होंगे कि मुनाज़रे के जलसे का इन्तज़ाम भली भांति हो जावे। और इस बात की कोशिश करूंगा की कोई झगड़ा-फ़िसाद न हो। मेरा अनुमान है कि आपने जो लिखा है कि नोटिस के साथ जो पत्र आपका आया यह वचन आपका गलत है। अगर बिना पढ़े या समझे मेरी अर्ज़ीयों का उत्तर लिखा गया है। तो उसको पुन: देख लीजिये। आपका पर्चा जवाब मैंने उन हज़रतों की सेवा में भेज दिया है, कि जो आपसे मुबाहिसा के लिए तैयार है जो कुछ वो जवाब देंगे उसे आप तक पहुंचा दूंगा, अगर उन लेखों को पढ़कर भी आप कुछ तबदीलियां करना चाहें तो कर सकते हैं। और रसीद नोटिस पर जिन लोगों के हस्ताक्षर हैं, उनसे उनकी हैसियत का पता नहीं चलता कि वो लोग समाज में किस ओहदे (पद) पर कायम है।

"**अनायत अहमद**" वकील नगीना
(९-५-१९०४)

आर्य समाज की ओर से पत्र सं० ४—

॥ ओ३म् ॥

मेहरबान, मुन्शी अनायत अहमद साहब नमस्ते !

आपका लिखा पत्र आर्य समाज के नाम मिला, आपने जो बगर्ज़ जलसे के इन्तज़ाम के सम्बन्ध में कहा है, हमको स्वीकार है। लेकिन मेहरबानी फ़रमाकर वो व्यक्ति जो आर्य समाज से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, उनके जवाब की हम प्रतिक्षा में है। उनसे जवाब लेकर भिजवाने की कृपा करें। इससे पहले जवाव भी मेरी तरफ से था।

९ मई सन् १९०४

"**कुन्दनलाल**"
(उपमन्त्री आर्य समाज नगीना)

मुसलमानों की ओर से पत्र सं० ५—

आपकी ख़िदमत में मुसलमान समुदाय की तरफ से तहरीर पेश कर दी, जिसका जवाब हासिलशुदा हम सभी मुसलमान एक साथ है। अत: लौटती डाक से या व्यक्ति द्वारा तुरन्त जवाब दें।

"**अनायत अहमद**" वकील

नोटः—

हिन्दु व मुसलमानों ने मिलकर शास्त्रार्थ के नियम बनाये एवं शास्त्रार्थ की स्वीकृति श्री जनाब, साहब मजिस्ट्रेट बहादुर जिला बिजनौर से लेने का प्रस्ताव पास किया — जो नियम बनाये वह नीचे दिये जाते हैं—

१. जनाब, साहब मजिस्ट्रेट बहादुर जिला बिजनौर से फ़रीकेन (दोनों पक्षों) को इजाज़त लेनी होगी।

२. शास्त्रार्थ के लिए उपयुक्त जगह का इन्तज़ाम आर्य समाज को करना होगा। लेकिन उस जगह के लिए मुसलमानों की स्वीकृति भी अवश्य लेनी होगी। एवं श्रोताओं के बैठने आदि का इन्तज़ाम दोनों पक्ष मिलकर करेंगे।

३. शास्त्रार्थ ५ जून से आरम्भ करके १७ जून को समाप्त किया जावेगा।

४. शास्त्रार्थ की शुरुआत "इलहाम" से होगी। और बाकी विषयों पर बाद में बहस की जावेगी।

५. शास्त्रार्थ मौखिक होगा, परन्तु दोनों पक्षों को अधिकार होगा कि उसे लिखवाते जावें एवं उन पर हस्ताक्षर भी कराते जावें। तथा उसे सब लोगों के सम्मुख सुनाते भी जावें।

६. समय की पाबन्दी दोनों पक्षों को माननी होगी, जो भी समय शास्त्रार्थ के लिए नियत हो। और समय के बांटने में दोनों पक्षों की रज़ामन्दी होगी।

७. शास्त्रार्थ में, कुरान शरीफ़ और वेद मुक्कद्दस या इन पर आधारित प्रामाणिक पुस्तकें भी पेश की जावेगी व बुद्धि की दलीलें भी पेश की जावेंगी।

८. शास्त्रार्थ में वही व्यक्ति शास्त्रार्थ करेगा जिसे उस पक्ष के व्यक्ति चुनेंगे। उसके अलावा अन्य कोई भी व्यक्ति को बोलने का अधिकार न होगा, और जो शास्त्रार्थ के बीच में बोलेगा उसे शास्त्रार्थ मण्डप से बाहर निकाल दिया जावेगा।

९. शास्त्रार्थ में सभ्यता के विरुद्ध नहीं बोला जायेगा, अगर कोई इस प्रकार का लेख पेश करना हो तो उसकी असली इबारत पेश करनी होगी।

१०. शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों से एक-एक शास्त्रार्थ का प्रधान चुना जावेगा, जिनको केवल इन्तज़ाम करना होगा, न कि फैसला। हर पक्ष को प्रधान बदलने का अख्तियार होगा।

—: निवेदक :—

१. मौलवी अनायत अली (वकील)	१. रामस्वरूप (सक्रेटरी)
२. हाजी मुबारक अली	२. नन्दराम (प्रधान)
३. काज़ी फ़ियाज्ज़ुद्दीन	३. कुन्दनलाल (उपमन्त्री
४. मौलवी इब्राहीम	

नोटः—

सभी लोगों ने मिलकर उपरोक्त नियम बनायें व मजिस्ट्रेट साहब की स्वीकृति ली। ५ जून से शास्त्रार्थ करना निश्चय करके सब लोग अपने-अपने घरों को चले गये। अब आप आगे उस आला दर्जे के शास्त्रार्थ का विवरण पढ़िये जिसके दर्जे का कोई सानी नहीं है। **"सम्पादक"**

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी—

साहेबान् ! क्योंकि बड़ी मेहरबानी से मुझे यह मौका दिया गया है, कि मैं अपने ख्यालात इलहाम् के सम्बन्ध में कहूं। लिहाजा मैं बड़ी खुशी के साथ पेश करता हूं।

सबसे पहले प्रश्न पैदा होता है कि—"**इलहाम क्या है ?**" मेरी अल्प बुद्धि के अनुसार "सही ज्ञान" के भण्डार के अलावा "इलहाम" और कोई चीज नहीं है। किताबें, कालिज आदि सब इस बात की गवाही देते है कि इन्सांन खुद ज्ञान पैदा नहीं कर सकते, बल्कि उसे सीखते हैं। पहले समय में जबकि स्कूल-कालिज नहीं थे उस समय ये सवाल पैदा होता था कि उनको ज्ञान किसने सिखाया ? उसका उत्तर यही हो सकता है कि खुदा ने उनको ज्ञान दिया या सिखलाया। इससे सही ज्ञान की शुरुआत होती है। अतः इलहाम की पूर्ण परिभाषा यह हुई कि सृष्टि के शुरु में "वह सच्चा ज्ञान जो ईश्वर की ओर से विशेष योग्य व्यक्तियों के हृदय में सृष्टि उत्पत्ति के समय प्रकट हुआ, वह ज्ञान शब्द अर्थ-सम्बन्ध सहित था, ज्ञान को शब्दों से पृथक् नहीं कर सकते। ज्ञान और शब्दों अर्थात् भाषा को मनुष्य नहीं बना सकता, अत: वही ईश्वरीय ज्ञान (इलहाम) है जो शब्दों के साथ सर्वशक्तिमान परमेश्वर की ओर से प्रेरणा द्वारा विशेष व्यक्तियों के हृदयों में प्रकट होता है। यह ही इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) की परिभाषा समझनी चाहिए।" इलहाम की तारीफ और जरूरत मैंने पेश कर दी, इन्सान बिना सही ज्ञान प्राप्त किए अपने जीवन में तरक्की की ओर एक कदम भी नहीं उठा सकता। इलहाम में किस्सा, कहानी या इतिहास नहीं हो सकता, इलहाम में सिवाय इसके कि कुदरत का बयान हो और किसी चीज का बयान हो नहीं सकता, क्योंकि वो इल्म इन्सान के मार्ग दर्शन के वास्ते हैं, इसलिए इन्सानों के एतिहासिक किस्से बयान करना इसका काम नहीं हो सकता। क्योंकि इन्सान बिना ज्ञान के तरक्की की राह में एक कदम भी नहीं उठा सकता। इलहाम में उन व्यक्तियों के किस्सा कहानी कैसे हो सकते हैं ? जबकि वे व्यक्ति खुद इलहाम के आधीन हैं। वह मनुष्य सृष्टि के आरम्भ में पैदा हुए जिनको ईश्वर ने ज्ञान दिया, बस इलहाम की विशेषता यह है कि वह मनुष्य मात्र के लिए हो, किसी पैगेम्बर या क़ौम से जुड़ा हुआ न हो। इलहाम के शब्दों का किताब की सूरत में उतरना इलहाम की तारीफ़ के खिलाफ़ हैं। उसको इलहाम के स्थान में किताब का कहना अनुचित है। यह ठीक है कि लोगों ने इस इलहाम को किताब की शक्ल में अपने याद रखने के लिए लिख लिया। क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। इसलिए उसका ज्ञान जिसको इलहाम कहते है। जिसकी तारीफ मैंने पहले कर दी, वह भी ज्ञान पूर्ण होना चाहिए। मुक्कमिल की तारीफ है कि वह सर्व प्रकार के परिवर्तन से रहित हो, जैसे सूरज ईश्वर ने बनाया इसमें तरमीम व तनसीफ (परिवर्तन) की जरूरत नहीं है। ईश्वर की ओर से होने के कारण आवश्यक है कि इसमें परस्पर विरोध न हो, मनुष्य आग जलाता है उसमें धुआं होता है। पर सूरज में धुआं नहीं, इसलिए धुएं की तरह एक भी गलती इलहाम में नहीं होनी चाहिए, खुदावन्द करीम ने इल्म की सदाकत (सच्चाई) परखने के लिए रहबर (पथ प्रदर्शक) अक्ल दी है; जैसे प्राकृतिक आंख, प्राकृतिक दृश्य देखती है, इसी तरह बुद्धि से आध्यात्मिक मार्ग देखा जाता है, इसलिए इलहाम की शिक्षा बुद्धि के विरुद्ध न होनी चाहिए। मैं कह चुका हूं कि इलहाम में कोई बात कुदरत के खिलाफ न होनी चाहिए। जो सृष्टि नियमों के खिलाफ़ होगा वह ईश्वर की ओर से दिया हुआ ज्ञान नहीं हो सकता, इलहाम खुदा का इल्म है, और कुदरत खुदा का फैल (कार्य) है, इसलिए दोनों में अविरोध होना आवश्यक है।

मैं बहुत नम्रता से अपने विपक्षी की सेवा में निवेदन करता हूं कि अगर यह दावा सही है तो देखें कि कुरान शरीफ़ इस तरह सही अर्थों में "इलहाम" कहलाया जा सकता है या नहीं ?

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

("अलहमदुलिल्लाह······ ···" खुदा की इबादत में यह आयत बोलते हुए कहा) खुदा के नाम शुरू और इसके तमाम नेक बन्दों पर सलाम !

इल्म का मम्बा (भण्डार) खुदा है, यह बिल्कुल ठीक है। इलहाम किसी मुल्क के बन्दों के लिए हो सकता है। किसी व्यक्ति को सम्बोधन करके न हो, इसकी कोई दलील नहीं दी। वैसे भी गलती हैं क्योंकि जिसको इलहाम होगा उसको (सम्बोधन) ख़िताब होगा कि वह दूसरों को सुनाए। किताब की सूरत में किताब का उतरना खिलाफ़ है। और शब्दों की शकल में उतरना इन दोनों में मुख़ालिफ़त (विरोध) है। इलहाम शुरु दुनियां से होना चाहिए, एक मायने से ठीक, और एक मायने से गलत। ठीक इसलिए कि शुरु दुनिया में ख़ुदा ने जब अपनी मख़लूक (सृष्टि) को पैदा किया तब अपने बन्दों के लिए इलहाम दिया था। लेकिन यह बात कि फिर दरवाजा बिलकुल बन्द कर दिया जावे। वह पहले इलहाम से बिल्कुल बेखबर और गुमराह हों तो भी इलहाम किसी एक मुल्क के बाशिन्दों के जरिए हिदायत न होवे यह सही नहीं है। इलहाम में तख़ालुफ़ (विरोध) न हो, बिल्कुल ठीक, कुरान इसकी तसदीक (प्रमाणित) करता है। आपने कहा, कि इन वजूद (कारणों) के साथ कुरान पर इलहाम का लफ़्ज़ साबित करो, आपको लाज़िम था कि पहले अपनी किताब से इन बातों को साबित करते। इसी तरह आप बहैसियत मुद्दयी (पक्षधर होने के नाते) खड़े हैं। आप अपनी किताब से बतलायें और दलायल (युक्तियों) से साबित करें। इलहाम की तारीफ़ वेद के फलां मन्त्र से साबित है। जब मैं खड़ा होऊंगा कि, कुरान इलहामी है और दावा करूंगा कि कुरान इलहामी है, उस वक्त मेरा फ़र्ज होगा, उस वक्त मैं उसका सबूत दूंगा, मेरे ख्याल में आपने अपना काम मुझसे लेना चाहा, आपका फ़र्ज है दलायल (युक्तियों) के साथ इलहाम को साबित करें। आप कुरान पर हमला नहीं कर सकते, आप उनके जवाब देने के बाद मुझसे दर्याफ्त कर सकते हैं (पूछ सकते हैं)।

इलहाम की तारीफ किताब और वेद से साबित करें। आप अपने मनसब (उद्देश्य) में कासिर (असमर्थ) हैं। आप अपनी इलहामी किताब और अकल से बयानों को मुदलल्लि (युक्तियुक्त) करें। हां ! आपका जरूरी काम हैं कि पहले इलहाम की तारीफ़ करें। फिर इसको वेदों पर चश्पा करें अर्थात् वेदों पर मुक्त करें। फिर वेदों से इनका होना साबित करें। तब मैं सवाल करूंगा। उसका जवाब दें।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान् ! अभी मौलवी साहब ने इरशाद फ़र्माया है कि इल्म का मम्बा (भण्डार) खुदा है। यह दुरुस्त (ठीक) है। मौलवी साहब ने मेरी आधी तारीफ को दुरुस्त तसलीम फरमाया है।

मैंने अर्ज किया था, कि सही इल्म का मम्बा खुदा है। लिहाज़ा महज़ इल्म का मम्बा खुदा को कहना जाहिर करता है कि वह मेरी पूरी तारीफ को तसलीम नहीं करते हैं। साथ ही मैंने अर्ज कर दी थी कि सही इल्म बज़रिये मलफ़ूज़ात (शब्दों के द्वारा) ख़ास मुस्तहिक़ (अधिकारी) बन्दों के दिल में इनक़साफ़ हो यानी प्रकट हो लेकिन मौलबी साहब ने इस पर तवज्जय नहीं फरमाई, और इसकी तरदीद (खण्डन) में कोई दलील नहीं दी लिहाजा इनकी तवज्जय दोबारा इसकी तरफ दिलाना चाहता हूं। कि आया इसको वह तसलीम करते हैं या नहीं ? अगर नहीं करते तो क्यों ?

मैंने कहा था, कि सही इल्म मौजूदात और कुदरत का बयान हो सकता है। और कानून कुदरत के साथ इसकी मुताबिकत (समता) होनी जरूरी है। लेकिन मौलवी साहब ने इस तरफ रुख़ नहीं किया। मौलवी साहब फरमाते हैं, कि इलहाम में किस्सा-कहानियां क्यों नहीं होनी चाहिए? इसके बारे में मुफ़स्सिल दलील (स्पष्ट तर्क) यह है कि जब इल्म ख़ुदा ने इब्तदाई आफ़रीनस (सृष्टि के आरम्भ) में के मौके पर दिया तो क्या इससे पहले कोई इन्सान था जो नेक या बद काम करता रहा? जिसका त्वारीखी बयान इसके अन्दर दर्ज किया जावे।

मेरी दूसरी दलील जो मैंने पहले भी दी थी, वो यह है कि, सही इल्म या इलहाम के बग़ैर इन्सान तरक्की की राह में एक क़दम भी उठा नहीं सकता, मुझे अफ़सोस है कि मेरे मेहरबान ने इसकी तरफ़ पूरी तवज्जय नहीं फ़र्माई, इस दलील को मैं फिर पेश करना चाहता हूं। कि अगर इलहाम के बग़ैर इन्सान तरक्की की राह में क़दम उठा सकता है तो कोई दलील पेश करें। मैं कहूंगा जिस तरह कि सूरज की रोशनी के बग़ैर इन्सान एक क़दम भी नहीं उठा सकता इसी तरह ईश्वरीय ज्ञान के बिना इन्सान में काम करने का सऊर पैदा नहीं हो सकता। बस! इलहाम का इन्सानी कारनामों से पेशतर होना अनिवार्य है। अगर इलहाम पहले नहीं होता तो कारनामें हो नहीं सकते। इलहाम में किसी सख्श के कारनामें या तज़करेका बयान होना यह साफ जाहिर करता है कि इस सख्श ने कहीं से हिदायत हासिल की है। जिसके मुताबिक वह नेक़ काम करता रहा। बस! क्यों न इस हिदायत को इलहाम कहा जावे। वह इलहाम जिसमें किस्से कहानियाँ हों वह इलहाम नहीं है। ब्लकि किस्सा कहानी या तवारीख़ है। यह कह दिया गया और इलहाम को इल्म मानने से आप ग़ोया मान चुके हैं कि इसमें कहानियाँ किस्सा नहीं हो सकते। साईंस या इल्म परस्पर विरोधी हैं, मैंने क़ुरान शरीफ़ पर कोई हमला नहीं किया था। ब्लकि एक मन्तक़ी सवाल पेश किया था। इसके बजाय इसका जवाब नफ़ी (निषेध) या इस बात (प्रमाण) में देते। इन्होंने हमले से मनसूब किया अर्थात् (उसको हमला बतलाया)। मौलवी साहब ने पूछा है कि वेद से इन बातों का सबूत दो, जब तक (आरम्भिक) तारीफ़ इलहाम तय न हो जाये तब तक सबूत देना कब्ल अज़वक़्त है अर्थात् (समय से पहले हैं)। मैंने अर्ज़ की थी कि इन्सान मलफ़ूज़ात (शब्दों) और इल्म (ज्ञान) को ईजाद (उत्पन्न) नहीं कर सकता। दोनों ख़ुदा की तरफ से हैं, मैं नहीं समझता कि मौलवी साहब ने शब्दों को लिखे हुए शब्दों के मायनों में कैसे ले लिया है? मक़तूब मलफ़ूज़ात (लिखे हुए शब्द) यानी किताब को इलहाम के मायनों में आपने किस तरह ले लिया? इल्म बग़ैर इलफ़ाज़ यानी (बिना शब्दों के) आज तक किसी इन्सान ने नहीं सीखा। मगर बग़ैर किताब के सीख सकते हैं। उसकी सदहा (सैकड़ों) मिशालें मौजूद हैं। बचपन से लेकर उम्र के एक खास हिस्से तक माँ-बाप से इल्म हम तमाम लोग बग़ैर किताब के मगर मलफ़ूज़ात (शब्दों) के ज़रिये हासिल करते हैं, और इसी तरह से और भी बहुत सी मिशालें हैं? बस! आपका ये फ़रमाना कि मलफ़ूज़ात का नाम ही किताब हो जाता है, गलत है। आपने मेरी बात को ठीक समझा नहीं।

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

अय ख़ुदा! तू अपने बन्दों की रहनुमाई फ़रमा मेरे ख़्याल में इस मसले का फ़ैसला हो गया, और बहुत अच्छा हुआ। आपने फिर अपना मनसब (मन्तव्य) किसी तरह नहीं निभाया, मुझसे ही सवाल किये हैं, इल्म से मेरी मुराद सही इल्म है, क्योंकि ग़लत इदराक (युक्ति) ज़हल (मूर्खपन) होता है। मैं मानता हूं कि सही इल्म का ख़ास बन्दों पर इनकशाफ़ (प्रकट) होता है। कुरान मजीद इसको तसदीक़ (प्रमाणित) करता है। आपका जुमला (वाक्य) तसरीह तलब है अर्थात् व्याख्या चाहता है।

विज्ञान और ज्ञान दोनों एक दूसरे के साथ हैं सम्भवत: अगर ये मतलब है कि ज्ञान-विज्ञान और वेद एक अर्थ वाले हैं तो मेरे विचार में विरोध उठ गया।

कौन कहता है कि हम तुम में जुदाई होगी।
यह अवाई किसी दुश्मन ने उड़ाई होगी॥

भाईजान ! वेद अगर साईंस है, और साईंस का प्रयोजन वर्तमान वस्तुओं का ज्ञान बतलाया है तो मालूम हुआ कि वेद नैतिक किताब नहीं हो सकती। क्योंकि साईंस में नैतिक आज्ञायें और सभ्यता-आचार की शिक्षा नहीं हुआ करती हैं। यहां बहुत से शिक्षित सज्जन उपस्थित होंगे, जिन्होंने बी०ए०, एम०ए०, की डिग्री हासिल की होंगी। वह जानते हैं कि झूठ बोलना गुनाह है। नमाज़ कैसे पढ़ी जाती है ? यह काम सभ्यता और आचार के हैं, साईंस को इनके वर्णन करने का अधिकार नहीं है। तो आपके बयान से मालूम हुआ कि वेद कोई धार्मिक किताब और शिक्षा न हुई। आपकी तक़रीर को मानूंगा अगर वेद से कोई साईन्स का मसला साफ़ हो जावे। आपने यह बड़ी अज़ीब दलील पेश की हैं कि शुरू दुनियां में पहले कोई प्रजा न थी। इसलिए इलहाम में पहले लोगों का वर्णन नहीं होगा। इससे तो यह समझ में आया कि इलहाम में पहली बातों का वर्णन आवश्यक नहीं है। खुदा अपने बन्दों की हिदायत वास्ते कि जो पहली हिदायत से बेखबर हों कोई नया नबी भेजे जो उनके समझाने के लिए पहले लोगों का इतिहास बतलावे, तो क्या हर्ज है ? खुदा फ़रमाता है किन्तु उनको पहली क़ौमों के किस्से सुनावे जिससे कि वह शिक्षा प्राप्त करें। मेरे ख्याल में आप वेद के भी खिलाफ़ कहते हैं, ऋग्वेद में साफ कहा है कि, इसी तरह ज्ञान के पहले जानने वालों के धर्म के हुक्म को प्यारा जानने वाले योग्य विद्वान हो चुके हैं, ईश्वर की आज्ञा का पालन कर चुके हैं। ऐसा ही तुम भी अमल करो। इस मन्त्र का अर्थ साफ बतलाता है, जब यह मन्त्र ईश्वर के भक्तों को सुनाया गया तो मालूम हुआ कि इससे पहले बहुत से भक्त हो चुके हैं आपका किया हुआ लक्षण बतला रहा है कि वेद इलहामी किताब नहीं हो सकते। तो मालूम हुआ कि वेद या कम से कम यह मन्त्र इलहामी नहीं। इसी तरह इसमें यह वर्णन है कि तुम्हारा शरीर व तुम्हारी बाहें लोहे के समान हैं। यह मन्त्र बतला रहा है कि तुमने पहले दुनियां को जीता है। आप कहते हैं कि इलहाम के बिना कोई उन्नति के मार्ग पर एक कदम भी नहीं उठा सकता है। मेरे ख्याल में अमेरिका और युरोप ने जो उन्नति की है, वह इलहाम से ही की है। रेल-तार आदि किस समय थे ? आर्य साहेबान यह बतावें ? अगर आपको दावा हो तो ये बतलावें कि किस समय में यह उन्नति के सामान मौजूद थे ? इसलिए यह बात साफ हुई कि सिर्फ सृष्टि के आरम्भ ही में इलहाम का होना आवश्यक नहीं।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

सज्जनों ! मौलवी साहब कहते हैं कि ज्ञान से प्रयोजन सही ज्ञान है। जो विशेष बन्दों पर प्रकट होता है। मगर फिर भी, एक नुक्ता छोड़ गए। यानी यह कहना चाहिए था कि वो दिल में होता है, यह नहीं कहा और आपने अधूरा लक्षण किया। इल्म और साइंस आप एक अर्थ वाले बताते हैं और निश्चय इल्म और साईन्स और वेद, ये सब एक ही अर्थ में लिए जावेंगे। ऋग्वेद का जिकर करने लगे और कुरान शरीफ का आपने क्यों जिकर न किया? आप कहते हैं कि वेद सच्चे ज्ञान की किताब है, लेकिन धार्मिक नहीं है आप साइंस के अर्थ नहीं जानते हैं। साइंस का शब्द नि:सन्देह आचार पर लगता है, साइंस आफ लैंग्वेज यानी "भाषा विज्ञान', सोशल साइंस "सामाजिक विज्ञान" साइंस आफ रिलीजन "धर्म विज्ञान"। इलहाम वह है जिसमें हर समय के मनुष्यों के लिए पर्याप्त शिक्षाएं हों। न कि यह—कि किसी व्यक्ति को सम्बोधन हो। एक बात ओर है आप कहते कि इतिहास की जो कहानी हैं

वही इलहाम में होनी आवश्यक हैं। मेरी दो दलीलों में से एक का खण्डन करने की कोशिश करते हैं जिसका अर्थ ही आप नहीं समझे। काम-काज इलहाम की सहायता के बिना नहीं हो सकते। अगर हो सकते हैं तो प्रमाण दीजिए, वह आदमी जिन्होंने दुनियां में नेक काम किया क्या उन्होंने बिना इलहाम के किया ? अगर इलहाम के बिना किया तो फिर इलहाम की आवश्यकता ही नहीं ईश्वरीय ज्ञान में खुदा अपने गुणों का वर्णन करता और सब प्रकार की शिक्षाएं देता है, न कि मनुष्यों के किस्से कहता है। अगर यह मान भी लिया जावे कि किस्से इलहाम में हैं तो तिब्बत और अमेरिका के लोगों की किस्से कहानियां क्यों नहीं ? आपका यह दावा बिना दलील है। केवल यह ही नहीं बल्कि फिलासफ़र ये साफ कहते हैं कि इतिहास की किताब कभी साइंस की किताब नहीं हो सकती। किस्से कहानी इलहाम के लक्षण में नहीं आ सकते इलहाम में एतिहासिक कहानियां नहीं माननी चाहिए। अगर खुदा का पहला दिया हुआ इलहाम स्थिर नहीं रह सका, नष्ट हो गया, फिर नये इलहाम के स्थिर रहने के लिए आपके पास क्या सबूत हैं ? खुदा की जितनी बनाई हुई वस्तुएं हैं वह आज तक नष्ट नहीं हुई तो इससे कैसे साबित हो सकता है कि पहला इलहाम नष्ट हो गया। खुदा क़ादिरेमुतलक (सर्वशक्तिमान) क्या अपने इलहाम की रक्षा नहीं कर सकता ? यह बात प्रकट करती है कि वह खुदा इलहाम का देने वाला कादिरेमुतलक नहीं है। इस दूसरे इलहाम के विषय में क्या गारन्टी है ? कि वह नष्ट नहीं होगा। मौलवी सा;ब ने कह दिया कि फैसला हो गया। वास्तव में इस सिद्धान्त का निर्णय कर दिया, युरोप और अमरीका ने हमारे इलहाम से उन्नति की है। कुरान के इलहाम से तरक्की करना आपने नही बतलाया, इस कुरान के इलहाम की आवश्यकता नहीं है यह सिद्ध है। आप जो कहते हैं कि कुरान आखिरी इलहाम हैं यह गलत हो गया इलहाम तो अंग्रेजों को (है) बगैर कुरान के जिन्होंने तरक्की की, पहले आप कह चुके हैं कि इलहाम दुनिया के आरम्भ में होना चाहिए। आपकी बात कौन-सी सही मानें और कौन-सी गलत ? एक मायने में पहले मानते हैं। दूसरे में नहीं। आप कहते हैं कि इलहाम का आरम्भ-काल में होना आवश्यक नहीं। यह आपका कहना असत्य है। वेदों का सच्चा इलहाम तीनों कालों के लिए हो सकता है। गुरु लोग विद्यार्थियों को ज्ञान सिखाते हैं और इसी तरह खुदा शिक्षा देता है। वेद में सच्ची शिक्षा है न कि इतिहास ! एक बात और है इलहाम एक व्यक्ति के लिए नहीं है। अगर एक के लिए हो तो जब वह मर गया तो इलहाम समाप्त हो गया।

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

साहेबान ! मसला ये था जिस बात के लिए मास्टर साहब खड़े हुए थे कि—"**इलहाम की क्या तारीफ़ है ? और वह किस पर सही उतरती है वेद पर या कुरान शरीफ़ पर ?**" इस वक़्त तक जो काम मास्टर साहब ने किये हैं वह अधूरे हैं। आपने जो शब्द इलहाम की तारीफ़ में प्रयोग किये हैं, उन पर कोई प्रमाण वेद से नहीं दिया, ना हि कोई दलील दी ! पहले जरूरी यह था कि—पहले वेद का मन्त्र बतलाते जिस मन्त्र से इलहाम का लक्षण सिद्ध होता हो ! और इसके बाद हमसे सवाल करते कि इलहाम का क्या लक्षण है और वह कुरान पर कैसे सही उतरता है ? आपने लक्षण को अधूरा छोड़ा और उसकी तारीफ़ नहीं की उसकी तक़सीम भी नहीं की—जैसे कि इलहाम सरयी क्या है ? इलहाम इरादी क्या है ?, इलहाम इल्मी मौजूदात् क्या है ?, इलहाम तवई क्या है ?, सिर्फ इतना कह देना कि—साइंस इल्म मौजूदात् क्या है ? काफी नहीं है। इसलिए मैंने एतराज़ किया कि मौजूदात् का इल्म और है। और सरयी इल्म और चीज है। आप मुझको तुर्की और अंग्रेजी का जानने वाला बतलाते हैं। ठीक है ! यह आपके लिए कोइ गौरव की बात नहीं ! और मेरे लिए कोई दोष नहीं। आप कहते हैं कि—"**इलहाम खास बन्दों के दिलों पर होता है, कुरान कहता है**—"**मजललहू अला क़ब्लिक़ा**"—(इसके अर्थ नहीं बताये)। आपने मुझ पर इलज़ाम लगाया कि कुरान के होते हुए वेद पर चले गये। में पूछता हूं ! कि आपका

क्या हक था कि इलहाम की तारीफ़ करते-करते कुरान पर पहुंच गये ? इसके लिए मैंने वेद का एक मन्त्र पेश किया, उसको आपने छुआ तक नहीं। आपने तीनों जुबानों का जिकर किया है, यह भी नहीं हो सकता कि—स्वामी दयानन्द तुम से पहले हो चुके हैं। इससे आगे के लिए समझ लिया जावे, जरूर इसका मतलब यह है कि इस कलाम के मायने यह है कि स्वामी दयानन्द साहब आपसे पहले हो गुज़रे हैं। इस तरह से वेद मन्त्र जो मैंने पेश किया है। उससे साफ साबित होता है कि—मुझसे पहले बहुत से बुजर्ग हो चुके हैं। जिनकी शिक्षा मानने के लिए तुमको हिदायत की है।

फ़रमाते हैं कि खुदा का पहला इलहाम जब नहीं रहा तो दूसरा कैसे रह सकता है ? भाईजान ! मैंने यह कहा है कि जिनको ईश्वर की आज्ञा नहीं मिली और इनकी पुश्तें ग़फ़लत में गुज़र चुकी हैं उनको समझायें। क्या आप बतला सकते हैं कि वेद का इलहाम सबको यानि—तुर्क योरुप, अरब के बन्दों को पहुंचा था ? मैंने यह नहीं कहा था कि—पहला इलहाम नष्ट हो गया था, आर्य समाज कहता है कि एक अरब छयानवें करोड़ वर्ष और कुछ साल गुजर चुके हैं—वेद को इलहाम हुए। क्या आर्य बतला सकते हैं कि इसकी शिक्षा कहाँ-कहां हुई ? क़ुरान साफ कहता है कि—तुमको और तुमसे पहले लोगों को भी समझाया गया है कि—एक खुदा की इबादत करो ! इलहाम के अन्दर हुक्म होने चाहिये। तमाम मनुष्य बंधे हुए हैं कि कुरान को माने, अमीर और बादशाह से लेकर फ़कीर तक सब मुसलमान इनको मानते हैं। अतः आप पहले बतायें कि वेद से इलहाम का क्या लक्षण है ? और क्या प्रमाण है ? आप हर बात का मुझसे जवाब लेना चाहते हैं। और खुद वेद से साबित नहीं करते। सबसे बड़ी गलती यह हो रही है कि आप इलहाम के अर्थों को साफ नहीं करते हैं, पहले बुजुर्गों को खुदा ने इलहाम दिया। अब कोई बुजुर्ग इलहाम के ज़रिये से किसी को नेक बात बतला सकता है। आपका पहला फर्ज़ है कि इलहाम का लक्षण बतावें और उसके अलग-अलग भेद बतलायें। वेद से हर बात को साबित करें। फिर मुझसे उनके सम्बन्ध में सवाल करें।

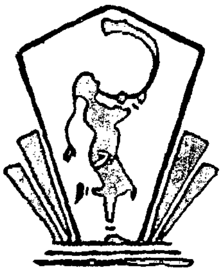

नोट—

इस प्रकार यह पांच जून का मुबाहिसा ख़तम हुआ, अब अगले रोज का मुबाहिसा देखिये ! पढ़िये !! सोचिये !!! और निर्णय करिये।

—"सम्पादक"

द्वितीय दिन ६ जून १९०४ का मुबाहिसा आरम्भ—

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! मैंने बयान किया था कि वह पहला और सही इल्म जिसका प्रकाश दिल में हो वह इलहाम है। ऋग्वेद में सही इल्म को "ऋत" कहा गया है। जैसे "**ऋतञ्च सत्यञ्च**······" ऋग्वेद अष्टक ८ की अध्याय ८ वर्ग ४८ मन्त्र १ (ऋग्वेदमण्डल १० सूक्त १९० मन्त्र—?) से प्रकट है यजुर्वेद अध्याय २४ मन्त्र ५ में बतलाया गया है कि चारों वेदों का प्रकाश दिल में हुआ है। मैंने कहा था, कि इलहाम मनुष्यमात्र के लिए होना आवश्यक है। और मनुष्य को इसके प्रचार करने की आज्ञा होनी चाहिये, न कि किसी विशेष मनुष्य को ! इसलिए "**यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र २**" इस बात को प्रमाणित कर रहा है जिसमें बतला दिया गया है कि वेद का वचन मनुष्य मात्र को शिक्षा देने के लिए ईश्वर उपदेश देता है और इन्सानों को भी चाहिये कि हर मनुष्य तक इस सत्य बताने वाले वचन का उपदेश करें। इसलिए वेद की शिक्षा सब के लिए है, फिर मैंने निवेदन किया था कि जहां ईश्वरीय ज्ञान होता है वहां वह शब्द जिनके द्वारा प्रकट किया जाता है, ईश्वर की ओर से होते हैं। इस सिद्धान्त का समर्थन यजुर्वेद अध्याय २६ का मन्त्र २ कर रहा है। जिस मन्त्र में वेद को वचन कहा गया है। चारों वेदों में वेद को लिखी हुई किताब कहीं नहीं कहा गया। फिर मैंने बताया था कि इलहाम का सृष्टि के आरम्भ में होना अनिवार्य है मैं यह भी बतला चुका हूं कि शब्द का ज्ञान से क्या सम्बन्ध है ? ज्ञान और शब्द दोनों सृष्टि के आरम्भ में ही हुए हैं, इसलिए इलहामी किताब वह ही हो सकती है जिससे पुरानी और पहली किताब कोई और न हो, साथ ही जिस भाषा में वह हो वह भाषा संसार की सबसे पहली और पुरानी भाषा हो, किसी वर्ग विशेष या किसी जाति विशेष या किसी देश विशेष की भाषा न हो। इस बात के समर्थन में "कि इलहाम सृष्टि के आरम्भ में हुआ" "**ऋतञ्च सत्यञ्च**······" और "**यथापूर्वमकल्पयत्**······" के मन्त्र प्रमाण रूप में मैं दे रहा हूं। इनमें बताया गया है कि वेद सृष्टि के आरम्भ में प्रकट किये गये, और कल्प के अन्त तक इसी रूप में रहेंगे। इनमें कोई परिवर्तन कभी नहीं होगा। और कभी यह नष्ट न होंगे जो लोग कहते हैं कि किसी विशेष देश में वेद की शिक्षा नहीं है, ये कहना उनकी भारी भूल है। प्रथम तो कोई देश ऐसा नहीं जिसमें सत्य की शिक्षा थोड़ी बहुत विद्यमान न हो। इस न्यूनाधिकता का कारण मनुष्य के कर्म हैं जैसा कि किसी समय चाहे किसी शहर में कालिज बना हुआ है फिर भी कोई विशेष लड़का इस नगर का इस कालिज के होने पर भी शिक्षा नहीं पा सकता तो इसका अपना दोष है। वेद इस समय हर देश में फैला हुआ है। सूरज हर हालत में बना रहता है। बादल सिर्फ हमारी नजर को ढांप देते हैं, इस तरह इन्सान की आध्यात्मिक दृष्टि पर, कामात्मता का जब पर्दा छा जाता है। तब वह वैदिक शिक्षा से लाभ नहीं उठा सकता, इस हालत में आम लोग कहते हैं कि वेद ही नहीं रहे, वास्तव में वेद या इलहाम सूरज की तरह हमेशा बने रहते हैं, सज्जनों ध्यान दीजिये कि हम तीन ही तरह पर इलहाम का समय बांट सकते हैं, (१) इलहाम सृष्टि के आरम्भ में ही हो और कल्प के अन्त तक सूर्य की भांति बना रहे ऐसा मानने की दशा में ईश्वर को सर्वशक्तिमान और अपने हर एक कार्य को, अपनी हर एक वस्तु को और अपने ज्ञान को सुरक्षित रखने वाला मानना पड़ता है। साथ ही क्योंकि वह अपने ज्ञान में कोई परिवर्तन नहीं करता इसलिए इस ज्ञान को पूर्ण ज्ञान का नाम देना पड़ता है। और ईश्वर को भी दीर्घदर्शी और श्रेष्ठ बुद्धि वाला कहा जा सकता है। (२) दूसरी सूरत इलहाम की ये हो सकती है, कि मनुष्य को पहले इलहाम न दिया जावे, और न बीच में, बल्कि सृष्टि के अन्त में ज्ञान दिया

जाये, इस सूरत में ईश्वर अन्यायी और मनुष्यमात्र जो आरम्भ में उत्पन्न हुए तब से अन्त तक के लोगों की भलाई न चाहने वाला होगा। ना मैं और ना मेरे मित्र इस सूरत को मानते हैं कि ये हो सकता है कि ईश्वर पूरा ज्ञान आरम्भ में देकर और यह मानकर कि ईश्वर वह कौन से विशेष देश में न पहुंचे इससे मेरे विचार में मेरे दोस्त ये जरूरत समझते हैं कि किसी खास देश में किसी विशेष व्यक्ति को पैदा करे, और वही पुराना इलहाम उसको दिया जाये। पर ! इस खास देश की भाषा में ऐसी सूरत मानने से ये-ये बातें पैदा होती हैं। "यदि पहला ईश्वरीय ज्ञान पूर्ण था और अवश्य होना चाहिये था, क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ और तीनों कालों का जानने वाला है, तो क्यों ! खुदा ने पहले इलहाम में ये शर्त न लगा दी कि सब मनुष्य इस इलहाम का प्रचार करते रहें, इससे यह अवसर कभी न आता कि कोई खास देश इस इलहाम की पवित्र शिक्षा से वंचित रह जाता। अगर किसी खास देश में पहला इलहाम न पहुंचता तो नये नबी की जरूरत रहती तो उस समय आयरलैण्ड, ग्रीनलैण्ड इत्यादि देशों में क्या इलहाम पहुंचाने के लिए आजकल खुदा को नये नबी पैदा करने होंगे या नहीं ? और आगे क्या जब किसी देश में इलहाम पहुंचाने की आवश्यकता हुआ करेगी तो वो नया नबी पैदा करेगा या नहीं ? इस तरह नये नबी पैदा करने की आवश्यकता सदा बनी रहेगी। (३) क्योंकि यह नये नबी जो इलहाम पायेंगे वह खुदा की तरफ़ से होने के कारण इस पुराने और सच्चे इलहाम से भिन्न नहीं हो सकता, जो कि पहले उत्पन्न हुए मनुष्यों को दिया जा चुका है, इसलिए यह नया इलहाम अगर पुराने इलहाम का समर्थन करने वाला न हो तो समझना चाहिये कि यह सत्य नहीं है। (४) पहले ईश्वर किसी नये देश की भाषा में इलहाम नहीं देता है, और यह हालत कि किसी देश की भाषा में इलहाम न हो तब ही हो सकती है जबकि इलहाम प्रथम ही प्रथम भाषा में हो। जबकि आरम्भ के मनुष्य भाषा के क़ुदरतन मोहताज होते हैं, और स्वयं किसी भाषा पर उनका अधिकार न होने के कारण से उसको बिगाड़ कर किसी तरह की भी नई भाषा नहीं बना सकते। इसलिए इस प्रारम्भिक दशा में जो भाषा प्रथम ही प्रथम मनुष्य को प्राप्त हुई वह ही स्वाभाविक और आरम्भिक भाषा कहलाने योग्य होगी। जब यह प्रारम्भिक उत्तम कुदरती भाषा मनुष्य को मिल गई, तो फिर इसको बिगाड़ कर कोई नई भाषा घड़ सकता है। और वो नई भाषा किसी देश की भी भाषा कहला सकती है। उदाहरण के लिए –शक्कर से पहले उसका मिठास नहीं हो सकता, इसी तरह उद्योग से पहले कुदरती चीजों का होना जरूरी है। कुर्सी से पहले लकड़ी का होना आवश्यक है। किसी देश की भाषा से पहले एक आम ईश्वरीय भाषा का होना आवश्यक है। जिसको बिगाड़ कर मनुष्य विशेष प्रकार की भाषायें, बनायें जो विशेष देशों की भाषा कहला सके, अगर प्रारम्भिक ईश्वरीय भाषा न हो तो कोई भी देश की भाषा नहीं हो सकती, अगर बिना प्रारम्भिक शिक्षा के और ईश्वरीय भाषा के बिना कोई मनुष्य या कोई जाति किसी देश की भाषायें बना सकता है तो इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि मनुष्य में भाषा बनाने की शक्ति है, परन्तु ऐसा समझना प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। क्योंकि हम देखते नहीं कि कोई भी बच्चा आज तक न हुआ, न है, और न होगा जो माता-पिता के बिना सिखलायें स्वयं कोई भाषा बोल सके या बना सके। इसलिए साफ पता चलता है कि इलहाम सृष्टि के आरम्भ में ही होना चाहिये।

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

साहेबान मास्टर साहब ने बहुत लम्बी तकरीर की है, मगर मज़मून असली सिर्फ़ दो हरफ़ों में है, जिसका जवाब मैं दे सकता हूं। आपने History of Ling Village (हिस्ट्री आफ लिंग वैलेज) बहुत बयान की है। मास्टर साहब ने जो तकरीर ज़ुबानों के सम्बन्ध में की उनका मैं पहले ही जवाब दे चुका हूं कि हमारे यही कुदरत के निशान है कि हमारी ज़ुबाने भिन्न-भिन्न कर दी गई, वार्तालाप इस बात पर है कि खुदा तआला जो तमाम दुनियां के बन्दों पर मेहरबान है क्या यह इन्साफ़ से बईद (दूर) हैं ? कि जो क़ोम एक अरसे से गुमराह हो इनके

वास्ते कोई इलहाम या नबी भेजे या बतौर एक रजिस्ट्री शुदा ख़त के पहुंचाया जावे। जिसको हमारी इस्लाह (परिभाषा) में वही (इलहाम) कहते हैं। तीन खराबियां आपने बयान की हैं, अगर वह उठ जायें तो यह विरोध समाप्त हो जावेगा। आप कहते हैं कि—पहले क़ैद (शर्त) क्यों न लगा दी कि आम ज्ञान का प्रकाश नबियों में अर्ज करता हूं। कि वेद के मुताल्लिक भी तो ये शर्त लगाई होगी। अगर भूल के कारण पहले तालीम हुई नहीं। आज सनातनी हिन्दू और आर्य समाज का विरोध मूर्ति पूजा, वग़ैरा की निस्वत् इस अमर (विषय) का गवाह है कि हिन्दू सब मूर्ति पूजा वेद वग़ैरा से निकालते हैं, आर्य समाज इसका रद्द करता है, तो इससे क्या यह नतीजा नही निकल सकता कि एक कौम ऐसी गफ़लत (भ्रान्ति) में पड़े कि वह इस इलहाम से हिदायत न पा सके तो मेरी अर्ज इस तमसील (उदाहरण) से यह है कि जब हमारा मुल्क शाहिद (गवाह) है कि हमारी आबाई क़ौम (प्राचीन जाति) ऐसी गाफ़िल हुई कि उनको वेदों की तालीम का हाल मालूम नहीं, तो आप क्या कयास (अनुमान) कर सकते हैं कि अरब का मुल्क क्या गाफ़िल न होगा? फर्ज किया कि ईश्वर ने वेद में कह दिया था कि ईसात (प्रचार) आम करो तो अगर पहली इलहामी किताब में ईसात (प्रचार) न हुआ। लेकिन बन्दे अपनी गफ़लत से ऐसा न करें तो किसका कसूर? आपने मुझे कुरान शरीफ़ में बतलाया है कि—"**फाजा जिकरुल ना अन्ता मिजकरून**" अर्थात् ऐ रसूल! पहली बातें इनको याद दिलावे, तू फ़कत याद दिलाने वाला है। हदीस में है कि इन्सान की तबायत (स्वभाव) इसके लिए मुहर्रक (क्रिया देने वाला) है। फरमाते हैं कि दूर दराज मुल्कों में कोई नबी नहीं आया इसका जवाब ये है कि हम कुरान का प्रचार कर सकते हैं, अलावा इसके फाईल (कर्त्ता) के जहन (ध्यान) में जो एक जरूरत होती है, इसको दूसरा शख्श नहीं समझ सकता। कैसे साबित हो कि इलहाम की जरूरत आ गई? सरकार ने अस्पताल बनाए हैं, और बाज जगह जहाँ बिमारी हैं क्यों नहीं बनाए? मुमकिन है कि वहाँ दवा वग़ैरा पहुंच सके, फ़रमाते हैं कि नया इलहाम पिछले इलहाम का मुत्तसदिक (पोषक) हो। इसका गवाह खुद कुरान है, और कुरान कहता हैं कि मैं इन पर निगहबान हूं कि इनकी कजी (टेढ़ापन) को दूर करू', जुबान के मुताल्लिक (सम्बन्ध में) आपने अजीब (विलक्षण) फिलासफ़ी बयान की है, इसका जवाब स्वामी दयानन्द जी फरमाते है सत्यार्थ प्रकाश सफ़ा २६६ में लिखते हैं कि "**वेद विद्या के उपदेश करने में मन्त्र वग़ैरा की हाजत (आवश्यकता) नही**" फिर लिखते हैं कि—"**दूसरे के समझाने को जरूरत होती है**" कि किसी मजमून की दूसरों को इत्तला दी जावे, कुरान शरीफ़ खुद बतलाता है अपनी जुबान में कि "**किसी के मजमून को नकल करना वहां के लोगों को समझाने के लिए होता है**" पहिले लोग वही जुबानें समझते हैं, कुरान कहता है कि—"**अन्ना अनजलना कुरानन् अरबीयन्**" वग़ैरा यह तालीम आम है और अरबी में इसलिए उतारा कि समझकर दूसरों को समझावें, जुबान की हिस्ट्री बयान करने का मास्टर साहब ने क्या फायदा निकाला? कहते हैं यजुर्वेद में लिखा है कि चारों वेदों में इनकसाफ़ (प्रकाश) हुए और मेरे और आपके दिल में इकनसाफ़ (प्रकाश) होता है। तो मेरे कलाम को क्यों नहीं इलहाम कहते और वेद को इलहामी क्यों कहते हैं? आपको इलहाम के तकसीम (विभाजन) का बताना जरूरी था, मैं जब कहूंगा कि कुरान इलहामी हैं, तो मैं उसकी तकसीम भी बताऊंगा। जब तक आप यह न बतावें तब तक वेद को इलहामी कहना मुनासिब नहीं कल जो मैंने मन्त्र पढ़ा था उसका मजमून यह था कि वेद इब्तदाई आफ़रीनस (प्राचीन काल से) नहीं है। और जब शुरु दुनियां से नहीं है तो वह इलहामी कहाने का बकौल आर्य समाज (आर्य समाज के कथनानुसार) मुसतहक (योग्य) नहीं है।"

आप जानते है कि वह ही किस्सा जिस पर आर्य बड़े जोर से ऐतराज करते हैं "**कुल्लहा अल्लमा आदमल्ल इस्मां**" कर रहा है, यानि खुदा ने आदम को इलहाम के नाम--तमाम सिखायें, क्योंकि इब्तदा (आरम्भ) में इसकी जरूरत थी इस वास्ते अल्ला पाक ने आदम को यह तमाम नाम सिखा दिए नकूस (दोषादि) अपनी-

अपनी जरूरतों के वास्ते बयान किए हैं, बस असल बात यह है कि आप इलहाम की तसरीह (व्याख्या) और उसके इख़साम (जातें) बयान करें। आया वह यही इलहाम है जैसा कि मुझको या आपको या अम्बियाँ को होता है, इसका तय करना आपका फर्ज है, इलहाम की तारीफ़ और इखशाम की सिफ़थ क्या होती हैं ?

श्री मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी—

मेरे मेहरबान ने जो यह कहा कि शकलें मुखतलिफ़ (भिन्न-भिन्न) और जुबाने (भाषायें) भिन्न-भिन्न कुरान के अन्दर बयान की गई है और ये कुदरती बात है मेरा जवाब हर्गिज नहीं, इसलिए जितनी शकलें हैं उतनी जुबानें होनी लाजमी हैं। दुनियां की आबादी इस वक्त डेढ़ अरब है, बस अगर कुरान शरीफ़ का ये कोल (कथन) दुरुस्त है तो उसकी रू (वजह) से इस वक्त डेढ़ अरब जुबानें और डेढ़ अरब इलहाम होने चाहियें, चूंकि ये नहीं लिहाजा कुरान शरीफ़ का ये दावा पाये सबूत को नहीं पहुंचता (प्रमाणिकता नहीं है)।

मुखतलिफ़ (भिन्न-भिन्न) जुबानें जानने से भिन्न-भिन्न अलूम (ज्ञान) का भी मानना मौलवी साहब के लिए लाजमी होगा, बस दुनियां के लिए मिसल सूरज (सूरज की भांति) एक इलहाम नहीं रहेगा। बल्कि एक घर में दस इलहाम रखने वाले होंगे, जुमला फ़िलासफ़रान (कितने ही दार्शनिक) मानते हैं कि सच्चाई यानी सही इल्मी असूल एक होते हैं न कि भिन्न-भिन्न। बस कुदरती जुबान भी एक होनी चाहिए, ना कि बहुत ! सनातनी वगैरा भाईयों की जो कि आर्य समाज इस्लाह (सुधार) कर रहा है उसका जिकर तो आपने फरमाया लेकिन उसका नतीजा जनाब ने क्यों नहीं फ़रमाया ? क्या आर्य समाज या स्वामी दयानन्द जी को इससे आप मुलहिम (ईश्वरीय ज्ञान का पाने वाला) मानते हैं। और सत्यार्थ प्रकाश को इलहामी किताब अगर नही तो आपके इस बयाने शरीफ का क्या मतलब था ?

अरब की जहालत का आपने दर्दनाक नक्शा खींचा लेकिन जब इलहाम सच्ची तालीम का नाम है जैसाकि आप कल मान चुके हैं तो सच्ची तालीम फैलाने से जहालत दूर हो सकती थी और असाअत (प्रकाश) फैलाने के दो ही जरीये हैं। प्रथम मदरसे दूसरे वाज़ (व्याख्यान) बस खुदा को इन असखास (व्यक्तियों) की तहरीक (पैरवी) करनी चाहिए थी, क्या पहले इलहाम में ये तालीम न थी ? कि तुम जाकर देशों में सही तालीम फैलाने की गर्ज से स्कूल और कालिज जारी कराओ, और बहुत से वाईज (व्याख्याता) भेजो, ग्रीनलैण्ड और आईसलैण्ड में आज तक बावजूदे के योरुप में जहाज-रेल हो गये हैं, सही तालीम नहीं पहुंची, और न ही आपका इलहाम ? क्यों खुदा उनके लिए नबी पैदा नहीं करता है ? क्या खुदा की फ़ितरत (आदत) बदल गई ? अगर खुदा की फ़ितरत (आदत) बेबदल हैं और आज नबी नहीं भेजता तो उस वक्त नबी अरब में क्यों भेजा ? अगर नबी के मायने इस्लाकुनिन्दा (सुधार करने वाले के) हैं तो साफ कह दीजिए उस हालत में चीन के मुसल्ले कन्फ्यूसश और जापान के इस्लाकुनिन्दा बुद्ध और जर्मन के इस्लाकुनिन्दा मार्टन लूथर, हिन्दुस्तान के इस्लाकुनिन्दा (सुधारक) स्वामी दयानन्दजी को हमें नबी कहने का हक़ हासिल है या नहीं ? अगर नहीं तो क्यों मौलवी साहब का ये इरशाद (कथन) कि खुदा या फ़ाईल (कर्त्ता) की जरूरत हम नहीं जानते। अगर आप नहीं जानते तो दलायल (दलीलें) ही क्यों देते हैं ? खामोश रहिये ! सुनिये आपका ये कहना कि—जो रसूल भेजे हैं वो उन मुल्कों की जुबानें जानते हैं इसलिए पाया गया कि जुबान पहलें होती है और इलहाम पीछे। इसके खिलाफ़ तमसीलन (मिसाल के तौर पर) ये अर्ज करता हूं कि जिस तरह सूरज की रोशनी से हरारत को जुदा नहीं कर सकते इसी तरह इल्म से जुबान को कोई इन्सान एक लमहा (क्षण) भर के लिए भी जुदा नहीं कर सकता। जहां अलफ़ाज है

वहां इल्म है, ये नहीं हो सकता कि जहां जुबान मौजूद हो, वहां इल्म न हो वरना जुबान के कुछ माने नहीं हैं। अरबी जुबान में जो इलहाम अरब के लिए हो तो आपकी दलील की रू से हिन्दुस्तान में इस अरबी कुरान शरीफ़ की जरूरत न थी, बल्कि हिन्दुस्तान के लिए हिन्दी में इलहाम भेजना और इग्लैण्ड वालों के लिए अँग्रेजी में।

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब —

साहेबान आप लोगों को याद होगा कि कल से मैं क्या अर्ज कर रहा हूं? और जवाब मुझको क्या मिल रहे हैं? मेरे ख्याल में सवाल व जवाब उस्ताद के कौल (कथन) के मुताबिक है। जिसका ये कौल अर्थात् शेर है—

हम कहे जाते हैं, फिर वो हैं कि कुछ सुनते नहीं।
हमको कहने की, उनको सुनाने की आदत हो गई॥

वो यही एक बात जो कल से अर्ज कर रहा हूं कि इलहाम की तकसीम कीजिए, और वेद किस किस्म में दाखिल है? और ये भी अन्तर बताइए कि आपके और दार्शनिकों के दिलों में जो मजमून आते हैं उनके व वेद के बयान करने में क्या अन्तर है? मगर अफ़सोस! कोई जवाब नहीं मिलता, और न ही जवाब मिलने की कोई उम्मीद है।

क्यों कर मुझे बावरहो के इजाही करेंगे।
क्या वायदा करके उन्हें मुकरना नहीं आता॥

आपका फर्ज था कि उनका जवाब दें तथा इस विषय को समाप्त करें। मगर अफ़सोस आपने अभी तक कुछ नहीं किया, जैसा कि अक्सर आर्यों के शास्त्रार्थों में देखा गया है। वे भी आपकी तरह इधर-उधर की बातों में वक्त खराब कर देते हैं। इसलिए मुझे जरूरी हो गया है कि मैं उन बातों का संक्षेप में जवाब दूं। आपने ये एक अजीब बात कही है कि इल्म और जुबान दोनों अलग नहीं हो सकते। मेरे ख्याल में आप स्वामी दयानन्द के सिद्धांत से अलग हो गये। सफ़ा २६६ सत्यार्थ प्रकाश में वो लिखते हैं कि परमेश्वर ने जतलाया और जुबान और जिस मतलब के जानने की ख्वाहिश है उससे मालूम होता है कि वेद का इलहाम फैला हुआ कि पहले दिनों में आ गया था, मगर उसके समझने के लिए खुदा की तरफ़ से ख्याल किया—देखिये इल्म और जुबान अलग हो गये हैं या नहीं? आपने कहा है जितनी शक्लें हों उतनी ही जुबानें हों, "उतनी ही जुबानें हों", मैं नहीं जानता कि कुरान के किस शब्द का यह अर्थ है। आपने फरमाया कि कुदरती जुबान एक ही होनी चाहिए, मगर दलील कुछ नहीं दी, मुझे याद आया कि सनातनियों की इस्ला (संशोधन) का जिकर आपने किया था, अच्छा……"चश्म मा रोशन दिलेमाशाद"………………अर्थात्—मेरी आंखें देखने वाली हैं और मेरा हृदय प्रसन्न है। मगर हम देखते हैं कि उनसे वो दलीलों में जबर्दस्त निकलते है, आपने फरमाया कि अरब में मदरसे स्कूल क्यों नहीं जारी किये? एक नास्तिक ने मुझसे कहा कि खुदा ने दोनों आंखें सामने ही क्यों लगा दी? एक आंख आगे होती और दूसरी पीछे—जनता में हंसी………मेहरबान सज्जनों! खुदा के काम खुदा ही जानते हैं। आपके भी डिवेटिंग क्लब अमृतसर में एक नास्तिक ने ये सवाल किया था, कि—"**क्या इन्साफ है कि औरत बिना तकलीफ बच्चा क्यों नहीं जनती है**"? अगर खुदा नहीं तो इन्हें क्यों तक़लीफ़ दी है। मैं आपको बताता हूं कि खुदा ने अरब में मदरसा जारी कर दिया था, अगर आप कहें कि—कालिज जैसी शिक्षा नहीं दी, आपको पता होना चाहिए कि

पुराने जमाने की शिक्षा यही थी, जिसका नाम आर्य समाज गुरुकुल रखता है। वही तरीका कायम किया, ऐसा मद्वरस (अध्यापक) प्रोफेसर कायम किया, जिसका ताल्लुक खुदा के साथ एक आला दर्जे का था, और उसकी जरूरत थी। कालिजों और स्कूलों का नाम मदरसा है। कुरान शरीफ़ ने उसका जवाब दे दिया है। लोगों के पास होगा वो काफी है। फ़रमाते हैं कि हिन्दुस्तान में नबी क्यों नहीं भेजें ? कुरान उन लोगों के लिए नहीं है जिनके पास नबी नहीं भेजे हैं, चुनाचें आर्य समाज की मेज पर भी कुरान रक्खा हुआ है—जो निहायत जरूरी है। पहले आप इलहाम की तकसीम करें कि वेद कौन सी किस्म में दाखिल है ? और फिर कल के मन्त्र का जवाब दें। और इसी मन्त्र पर फैसला है।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

सज्जनों ! मौलवी साहब फ़रमाते हैं कि फिलासफ़रान (दार्शनिकों) और वेदों के इनकसाफ़ (प्रकट करने) में क्या फ़र्क है ? इसका उत्तर है कि फिलासफर एक हद तक पढ़ा होता है, जब कि मुलहिम (पैग़ाम्बर) पहले से पढ़े हुए नहीं होते फिलासफर पहले तालीम से परिचित होता है, उसको सब बातों का विस्तार पूर्वक ज्ञान होता है। इससे वो सोच-समझकर अपने दिमाग को तरक्की देता है। और साधन करता है, बस ! इलहाम व फिलासफर के इनकसाफ़ (प्रकट करने) में मैंने अन्तर बता दिया, मैंने कहा था, डेढ़ अरब जुबानें होनी चाहिए, इसका जवाब, जनाब मुझसे पूछते हैं कि कुरान के किस लफ़्ज (शब्द) का मतलब (अर्थ) है। जनाब ये बात आपके कहने के मुताबिक है जैसा कि आपने कहा था कि—"जितनी अलग-अलग शक्लें हैं उतनी ही अलग-अलग जुबानें हैं" अगर कुरान शरीफ़ में नहीं था तो आपके मुंह से क्यों निकला ? श्रोताओं में चारों तरफ़ सन्नाटा·········सज्जनों ! मौलवी साहब ने फ़रमाया था कि अरब की जुबान सबसे पहले है, और इलहाम पीछे। अब मौलवी साहब इसके खिलाफ़ कहते हैं। और दलील ये देते हैं कि—*सत्यार्थ प्रकाश के सातवें बाब (सम्मुल्लास) में लिखा बताते हैं।* जब-जब ऋषियों और महर्षियों ने वेद के अर्थ जानने की कोशिश की तब-तब खुदा ने मुराकबा (योग-समाधि) में उनके मतलूबा मन्त्रों के मायने बतला दिये, देखिये मौलवी साहब ! जब-जब का लफ़्ज साफ बता रहा है कि इससे पहले जो मुलहिम (पैगाम्बर) थे ये उन पर नहीं घटता है। वेद के मुलहिमों के सम्बन्ध में ये इबारत (पाठ) नहीं है। अगर गुस्ताख़ी माफ हो तो मैं ये कहूंगा कि मौलवी साहब इसके मतलब को नहीं समझे। क्या स्वामी दयानन्द को आप मुलहिम (पैगाम्बर) मानते हैं ? नहीं तो आपका इससे क्या मतलब है ? इससे स्वामी जी ऋषि साबित होते हैं, और हर ज़माने में ऋषि होते रहे हैं। आपकी पोजिशन तो कमजोर रहती है, आप साबित नहीं कर सके इस बात को कि—जुबान पहले होनी चाहिए और इलहाम पीछे। नास्तिक लोगों का हाल दुहराया हुआ ही बयान करके आप बच्चों को डराने की मानिन्द इन सभी श्रोताओं पर रोब डालने लगे, तथा डराने लगे। इससे आपके दावे की कोई पुष्टि नहीं होती। इस बात को क्यों नहीं बयान करते कि—क्यों जुबान पहले और इलहाम पीछे होता है ? कुदरत में हम देखते हैं कि बच्चा जुबान व इल्म साथ-साथ सीखते हैं, सनातनीयों को आपने हमारा अपना भाई तो बता दिया, मगर सत्यार्थ प्रकाश को इलहामी किताब और स्वामी जी को मुलहिम (पैगाम्बर) क्यों नहीं कहा ? इस मेरे असली ऐतराज को आपने क्यों छुपा दिया ? आप दलील के इस्तेमाल से लोगों को डराना चाहते हैं, कि लोग नास्तिक बन जायेंगे लेकिन सच्चा इलहाम याद रहे, दलील से डर नहीं सकता, फिर फरमाते हैं कि खुदा के काम खुदा ही जानता है। हम तो दलील चाहते हैं। कहिये, हम खुद नहीं जानते बल्कि खुदा जानता है। सच्चा इलहाम दलील से नहीं उठता, स्वामी दर्शनानन्द जी, (संस्थापक गुरुकुल) को क्या वही दर्जा देंगे जो मौहम्मद साहब को था ? क्योंकि उन्होंने भी एक गुरुकुल खोल रखा है, जैसा कि आपके कथनानुसार मौहम्मद साहब ने खोले थे। मौहम्मद साहब की सोहबत की वजह से लोग पाक होते थे, इस वक्त तो वो है नहीं। अब कैसे लोग पाक हो

सकते हैं? खुदा ने उनको आबे हयात की तरह जिन्दा जावेद क्यों नहीं रखा ? हर एक उनकी नेक सोहबत से ही आज पाक हो सकता है । न कि खास मोहम्मद साहब की सोहबत से । ऋग्वेद का मन्त्र बतलाता है कि अपने बुजुर्गों की आज्ञा का पालन करो, बुजुर्ग वो होता है जो बलिहाज लियाकत या उम्र में हमसे बड़ा हो । वेद में और किस्से-कहानी नहीं हैं, जैसा कि इब्राहीम और मूसा की कहानी ! तो क्यों वेद को आप त्वारीखी किताब (ऐतिहासिक पुस्तक) कहते हैं ? मुझसे इलहाम की तख़शीस व तकसीम (विश्लेषण व विभाजन) पूछते हैं, लेकिन जो तारीफ़ मैंने बतलाई उसमें इन बातों की जरूरत नहीं है । इलहाम की तारीफ़ कल से आप नहीं कर सकें । इसके अलावा दो कार्य झगड़े में हैं, अव्वल ये कि किस्से हों या न हों, दूसरे दुनियां के आरम्भ में इलहाम हो या न हो, लिहाजा आपका इससे पहले कि आप इन दोनों विषयों में मुझे कायल (सन्तुष्ट) कर दें या खुद कायल हो जायें, आपका कोई नया सवाल कब्लअज़वक़्त (वक्त से पहले) है । अत: पहले इन दोनों का जवाब देकर तब नया सवाल करें । इसकी दुनियां भर की एक जुबान किस दिन थी ? इसके जवाब में प्रोफेसर मैक्समूलर ने "(Science of Languages") में दिया है जब कि कुल भूमण्डल पर एक ही जुबान थी, वो आजकल आठ सौ से ज्यादा बोलियां हैं, आदम साहब या हमारे ऋषि अग्नि जी बगैर किस्से कहानियों के कैसे पाक हो गए ? अगर वो पाक हो गये तो किस्से कहानियों वाले इलहाम की फिर दोबारा क्या जरूरत है ? इन्सान की कुदरती जुबान आप आरम्भिक लोगों की जुबान कहते हैं, जो सरासर नामुमकिन है, क्या बच्चे के सिखलाने में माता-पिता बच्चे की जुबान सिखलाते हैं ? या खुदा ने इन्सान को जिस जुबान में सिखलाया है, वह खुदा की तरफ से जुबान थी और उसका नाम कुदरती जुबान हैं, और वही वेदों की जुबान है ।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान ! खुदा का शुक्र है कि मेरे दोस्त ने मेरे सवालात की तरफ तवज्जयों फ़रमाई, मगर अफ़सोस ! फिर भी वो अधूरी ! ! और पूरे तौर से सवालात को मैंने उठाया, और जवाब भी दिये तो अधूरे । वो भी ऐसे कि उन पर फिर सवाल उठाये जा सकते हैं, मेरे नजदीक आपकी तकरीर के सिर्फ दो वाक्य जवाब देने के लायक हैं । एक तो मन्त्र जिससे मेरी अर्ज जो मैं साफ शब्दों में लिखवा चुका हूं कि वेद सृष्टि के आरम्भ से नहीं । ये मैंने नहीं कहा था, कि वेदों में किस्से हैं, बल्कि ये कहा था कि आर्य समाज यह शर्त लगाती है कि इलहाम सृष्टि के आरम्भ से है, हांलाकि इस मन्त्र से साबित होता है कि वेदों का निर्माण तथा उतरना ऐसे समय में हुआ है कि इससे पहले बहुत सी नस्लें हो चुकी थी यानी उस वक़्त के मुखातिबों (सम्बोधन जिनसे किया जावे) से पहले बहुत सी नस्लें गुजर चुकी थी, आपने जो इसका जवाब दिया है, वो हाज़रीन (उपस्थित श्रौतागण) सुन चुके हैं । ये बेहतर है कि उसका तर्जुमा आर्य समाज की किताबों से सुना दूं । पहले भी सुना चुका हूं । ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका जिसके लेखक स्वामी दयानन्द जी हैं वो मेरे हाथ में है, इसमें जो लिखा है उसे गौर से सुनिये जिस तरह प्राचीन काल के देव यानी विद्वान् ऋषि-मुनि पक्षपात रहित विद्वान लोग ईश्वर और धर्म के जानने वाले तुम्हारे बुजुर्ग तमाम इल्मों में माहिर लायक और फायक गुज़र चुके हैं । मुझे इबादत करने के लायक, ईश्वर के हुकम की तामील या मेरे बताये हुए धर्म पर अमल करते रहे हैं, इस तरह तुम भी इसी धर्म के पाबन्द रहो । जिस तरह पहले ज़माने के ज्ञानी पुरुष ऋषि मुनि और विद्वान् ईश्वर के धर्म को अजीज जानते थे, तमाम इल्मों के माहिर लायक गुजर चुके हैं- ये तर्जुमा बाबु निहाल सिंह निवासी करनाल का किया हुआ है । और ये दूसरा तर्जुमा लाला मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी का है, सफ़ा १५८ इसमें भी लिखा है कि ये तुम्हारे बुजुर्ग तुमसे पहले गुजर चुके हैं, जिस तरह कि वो (सर्व शक्तिमान) परमेश्वर के धर्म पर चलते थे, इस तरह तुम भी उसी सच्चे धर्म पर चलो । ये बयान भी

उसी तरह है कि जैसे कि एक धर्मोपदेशक या लैकचरार मिसाल देता हुआ नसीहत किया करता है कि भाईयों ! तुम्हारे पूर्वज ऐसे थे, वैसे थे। तुम उनकी चाल अख्तियार करो तो उस वाईज़ (धर्मोपदेशक) या लैकचरार से पहले उन बुजुर्गों का गुजर जाना हर एक व्यक्ति पर रोशन (प्रकट) है। बस इस मन्त्र से साफ साबित है कि उस वक्त इन्सानों की कई एक नस्लें गुज़र चुकी थी, और ये मफ़ऊम (सिद्धान्त) किसी मन्तकी या फिलासफी दलील का मोहताज़ नहीं है। इसको थोड़ा सा उर्दूदां (थोड़ी उर्दू पढ़ा लिखा) भी जान सकता है **"वो गुजर चुके"** के क्या मायने हैं ? **"बस ! एक निगाह पर ठहरा फैसला दिल का"** सफ़ा १४३ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, ऐ ! दुश्मनों के मारने वाले असूले जंग में माहिर बेखोफ़ोहरास (बिना किसी डर के) पर जाहोजलाल अजीजों और जवां मर्दों तुम सब रियाया के लोगों को खुश रखो, परमेश्वर के हुकम पर चलों, बुरी भावना वाले दुश्मन को हराने के लिए हर तरह से युद्ध करो तथा उसे जीतो। तुमने पहले मैदानों में दुश्मनों की फौज को जीता, तुमने इच्छाओं को दबाया और पृथ्वी को जीता, ये सब गुजरी हुई बातें हैं। उससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि जिस वक्त ये मन्त्र सुनाया गया था, उस वक्त इन्सानों की आबादी ऐसी फैली हुई थी कि जंगोजदल (लड़ाई-झगड़े) भी हो रहे थे, उस वक्त जब दुनियां को फतह किया तो कोई रियाया (प्रजा) थी कोई बादशाह, कोई मुलज़िम, कोई हाकिम ! और इससे साफ साबित हुआ कि वेद का उतरना या निर्माण बाद में हुआ है। आपके मन्त्र से सीगो (विभक्तियों) को मैंने देखा, जो तर्जुमा (अनुवाद) आपने किया है। उसमें भी **"तुमसे पहले का"** लफ़ज (शब्द) है। आपने कहा है कि मौलवी साहब ने सत्यार्थ प्रकाश के सवाल का स्वामी दयानन्द जी का जवाब नहीं समझा कि जब ऋषियों पर वेद नाजिल हुए, क्योंकि वो संस्कृत जुबान नही जानते थे, किस तरह उन्होंने मतलब समझा, उसका जवाब जो स्वामी दयानन्द ने दिया वो मैंने अर्ज कर दिया था। कि बज़रिये मुराकबा (समाधी में) उनको मतलब समझाये जाते थे। सुनिये ! जिन ऋषियों पर वेद नाज़िल हुए थे, क्योंकि वो संस्कृत जुबान नहीं जानते थे किस तरह उन्होंने मतलब समझा ? मैं आपको असली बात की तरफ तवज्जो (ध्यान) दिलाता हूं। और वक्त की पाबन्दी की वजह से आपके गैर जरूरी सवालों का जवाब नहीं दे सकता, और आपकी तवज्जो (ध्यान) खास इस मन्त्र की तरफ़ फेरता हूं कि जिसके सबब (कारण) मैं ये कह चुका हूं कि **"बस! एक निगाह पर ठहरा, फैसला दिल का"** !

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी –

साहेबान ! मैंने जो अव्वल तकरीर की थी उसमें आपकी पहली तकरीर में अर्ज कर दिया था कि डेढ़ अरब जुबान का सबूत दीजिए मगर आपने कोई सबूत नहीं दिया, इन सवालों का भी जवाब आपने नहीं दिया (२) ग्रीन लैण्ड और आयसलैण्ड में आपका इलहाम क्यों नहीं पहुंचा ? (३) स्वामी दर्शनानन्द जी मौहम्मद साहब की तरह क्यों नबी नहीं है ? (४) जुबान पहले हुई इलहाम पीछे क्यों ? (५) अरबी जुबान में कुरान क्यों उतारा हिन्दी में क्यों नहीं उतारा ? (६) किस मुल्क की जुबान कुदरती जुबान का ही बिगाड़ होती है इसका जवाब क्यों नहीं दिया ? (७) इलहाम की तारीख के मुताल्लिक दो ईख्तलाफ़ (विरोध) थे, पहले आरम्भ समय में इलहाम हो, दूसरे वह किस्सा कहानी से पाक हो। आप उस दावे को मान गए, जो वेद मन्त्रों की पड़ताल शुरू करते हैं, (८) हजरत आदम और ऋषि अग्नि बगैर किस्से-कहानी सुने कैसे नेक हो गए ? तो किस्सों की क्या जरूरत इलहाम में है ? **"अलखामोशी नीम रजा"** अर्थात आपकी चुप्पी आधी स्वीकृति है।

बगैर मोहम्मद साहब की सोहबत के अगर कोई पाक नहीं हो सकता, तो अब मौहम्मद साहब नहीं है तो लोग कैसे पाक होते हैं ? और आगे कैसे होंगे ? अब मौलवी साहब के दूसरे मजमून पर आता हूं। आपने जो मन्त्र बोला, उस मन्त्र के तर्जुमे को आप नहीं समझे। वेदों के सीगो को नहीं समझे, अगर कहा जाता कि बेटा कुएं में मत

गिरना, इससे ये मतलब नहीं है कि कुआं पहले खोद लिया और जिन्दगी में जो आफ़ात (आपत्तियां) आते हैं और दूरन्देश (दीर्घदर्शी) बाप उनका उपदेश किसी वजह से व अपनी तजुर्बाकारी और बुद्धिमता के करता है इसी तरह खुदा सर्वज्ञता की वजह से हर ज़माने के लोगों के लिए बतौर हिफ़ज (कण्ठस्थ) वो पहले की तरह उपदेश करता है। बस! इस मन्त्र के सम्बन्ध में कुछ मन्त्र का जवाब आ गया, इसमें किसी खास व्यक्ति हनुमान या रामचन्द्र का जिकर नहीं है। बल्कि आम असूल के तौर पर बुजुर्गों की पैरवी की सदाकत है। कुरान शरीफ़ की तरह वेद खास व्यक्तियों विशेष से नहीं है। वेद मुलहिमों के लिए भी मखशूष (विशेष) नहीं। जो कि पहले इल्म मनुष्य मात्र के लिए है। मसलन वेद में लिखा है कि मुर्दों को जलाओ, पहले मुलहिम जो पैदा हुए हैं क्या उन्हें उस वक्त जला देना चाहिए? बच्चों को दूध पिलाओ, क्या मुलहिम उठकर दूध पिलाने लग जायें ? ये सवालात् हैं जो आपने किये। सुनिये-लाला मुंशीराम जी का तर्जुमा, बाबु निहालसिंह जी का तर्जुमा, आप पेश करते हैं आखिर क्यों ? महर्षि दयानन्द जी का असल प्रमाण क्यों नहीं देते ?सत्यार्थ प्रकाश सफ़ा २६९ के सवाल नं० ७५ का जवाब वहां पर विवरण सहित नीचे दिया हुआ है। देखिए—

सवाल—वेद संस्कृत जुबान में ज़ाहिर हुए और वह अग्नि वगैरा ऋषि लोग इस जुबान को नहीं जानते थे, फिर उन्होंने वेदों के मायने कैसे समझे ?

जवाब—परमेश्वर ने जतलाया।

मौलवी साहब ! इस हवाले से आपने देख लिया कि सवाल पिचहत्तर का जवाब सिर्फ **"परमेश्वर ने जतलाया"** अग्नि आदि ऋषियों के मुताल्लिक इतना ही है। जवाब की जो बाकी इबारत है वह अलहदा तौर पर महर्षि ने लिखी है। वह इस सवाल के जवाब में नहीं है, जो के अग्नि आदि ऋषियों से मुताल्लिक है। जो स्वामीजी ने ये लिखा है कि **"और धर्मात्मा योगी, महर्षि लोग जब-जब जिस मन्त्र के मायने जानने की इच्छा से तवज्जयो को एक शू करके परमेश्वर की हस्ती में समाधी के अन्दर कायम हुए तब-तब परमात्मा ने मतलूबा (आवश्यकतानुसार) मन्त्रों के मायने जतलाये"** यह एक आम उसूल बाद के ऋषियों के मुताल्लिक बयान किया है और इस उसूल के मुताबिक महर्षि दयानन्द जी को समाधी में आवश्यक मन्त्रों के अर्थ ज़ाहिर होते थे, और जो कोई आइन्दा कभी ऋषि होगा उसको भी हो सकते हैं, लेकिन इससे महर्षि दयानन्द जी मुलहिम नहीं कहला सकते। मुलहिम तो वह चार ही ऋषि कहलाते हैं जो आदि सृष्टि में हुए। और जिनकों जुबान ब मयइल्म (शब्दार्थ सम्बन्ध सहित) ईश्वर की तरफ से मिली, उनके बाद के ऋषि जुबान अपने वाल्देन (माता-पिता) या उस्तादों से सीखते हैं। लेकिन शब्दों के असली मायने न जानने की हालत में सच्चे योगी होने की हालत में उन पर समाधि दशा में वेदार्थ प्रकाश होता है। जैसा कि स्वामी दयानन्द जी पर होता था। लेकिन चूंकि स्वामी जी आदि सृष्टि में नहीं हुए और साथ ही शब्द—गुरु से सीख चुके थे इसलिए वह मुलहिम-मिसिल (की तरह) अग्नि आदि के नहीं कहला सकते। हां ! सच्चे अर्थ प्रकाश करने से बिना सन्देह के परम योगी और महर्षि कहलाते हैं और संक्षेप में (इलहाम) आदि सृष्टि के आदि ऋषियों को ही हुआ करता है। जो बगैर मां-बाप के तवल्लद (उत्पन्न) होते हैं।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

सोहबान ! खुदा का शुक्र है फ़ैसला हो गया, जो मन्त्र मैंने पेश किया था, और ये अर्ज किया था कि इसी मन्त्र के साफ हो जाने से आपका और मेरा फ़ैसला होता है, इसका मतलब मेरे दोस्त ने स्पष्ट कर दिया। जो मेरा समर्थन है। मैं इन तर्जुमों को छोड़ता हूं। और मास्टर साहब का तर्जुमा लेता हूं। इसमें इन्होंने कहा है **और सबसे**

"पहले जो बड़े हो चुके हैं, गुजर चुके या हो चुके" सब एक मायने में हैं, सवाल मेरा ये था कि शुरू दुनिया में ये मन्त्र ऋषियों को इलहाम फ़रमाया गया, इसके मुखातिबों ने ये समझा था या नहीं कि हमसे पहले नस्लें गुजर चुकी हैं जो पढ़ी हुई थीं और हम अनपढ़ हैं, आपकी खातिर में उन तर्जुमो का नाम नहीं लेता जो आर्य समाज की तरफ से मुल्क में शाया (प्रकाशित) किये जाते हैं, जब मुबाहिसे (शास्त्रार्थ) के समय पेश किये जाते हैं तो पेशानी (मात्थे) पर पसीना आ जाता है। प्रतिनिधि सभा की तरफ से तर्जुमा मजकूर का इश्तहार है। जो इस बात की ताईद करता है कि बाबु साहब का तर्जुमा प्रतिनिधि सभा की पसन्द है, लेकिन मुझे इससे कोई मतलब नहीं, मैं आपका ही तर्जुमा लेता हूं और आपकी खातिर इसको इसी जलसे तक छोड़ता हूं। आपने कहा कि **"अगर इलहाम का शुरू दुनियां में होना मान गये हो तो फिर एतराज करो"** गुफ्तगू (बात) ये है कि दुनियां की आबादी के बाद अगर कोई कौम इलहाम से बेखबर हो जावे तो खुदा उनकी हिदायत के लिए किसी खास बन्दे को मानूर (नियुक्त) कर देता है। क्योंकि असल मतलब ये था कि **"वेद इलहामी हैं या कुरान ?"** दो रोज गुजर चुके इलहाम के मायने उसकी तारीफ और तकसीम जो बुनियादी हैं वेद के इस बुनियादी से गुजर कर वेद के एक मन्त्र को पेश किया चुनाचे आपका जवाब की तरफ तवज्जो फ़रमाना बतला रहा है कि ये बात काबिले जवाब थी, आपका डेढ़ अरब जुबान होना कुरान का मजमून नहीं है। कुरान कहता है कि जुबान का भिन्न-भिन्न होना शकलों का भिन्न-भिन्न होना यानी कुदरती बात है। ग्रीन लैण्ड या आयरलैण्ड में नबी के न आने का जवाब भी दे चुका हूं। दर्शनानन्द खुद इलहाम के दावा करने वाले नहीं, अगर वो मेरी ज़िद पर भी आ जावें तो भी इलहामी नहीं, क्योंकि इलहाम पहले के खिलाफ़ कहते हैं यानी कुरान मज़ीद के खिलाफ़ हैं, जुबान पहले और इलहाम पीछे, जब मैं मानता हूं कि शुरू दुनियां के बाद भी खुदा इलहाम दे सकता है तो क्या हर्ज है कि जुबान पहले और इलहाम पीछे। यह आपका फर्ज है कि दुनियां की पैदायश के बाद इलहाम का होना साबित करें जो आपका पहला फर्ज है, हिन्दी में कुरान नहीं आया, इसका जवाब दे चुका हूं, अलावा इसके कि यह हर किस्म के दावे सब आपकी तरफ़ से हैं अदालती कानून आपको मजबूर करता है कि—आप अपने दावों की दलील लायें हिदायत के वास्ते किस्से बयान करना उस वक्त जरूरी था कि इससे पहले दुनियां गुजर चुकी हो हज़रत की सोहबत बगैर हिदायत मुतसब्बर (मानने योग्य) नहीं, आप कहेंगे कि इस वक्त हज़रत मौजूद नहीं हैं, मैं कहूंगा कि हमारे रसूल हममें मौजूद हैं, इस वक्त भी खुदा के बन्दे मौजूद हैं, जिनकी सोहबत से हिदायत होती है, जिनके नाम उल्माएकराम या सूफियाअजाम हैं। इन्होंने गो ज़ाहिरी कोई सोहबत नहीं पाई, मगर मजबूरी फर्ज से लाभान्वित हैं। मरने के बाद का लफ़ज जतला रहा है कि **"जब तुम पर मौत आयेगी तो यह करना -माँ-बच्चा को दूध पिलाये"** इससे साबित होता है कि जब बच्चा बड़ा होगा तो दूध पिलाना।

श्री मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी—

बन्दे ने अर्ज की थी कि इलहाम आगाज दुनियां (सृष्टि के आरम्भ) में ही होता है। उसके सम्बन्ध में मेरे मेहरबान फ़रमाते हैं कि—१. इलहाम सृष्टि के आरम्भ में होता है और बीच में भी। २. मैंने कहा था कि इलहाम किस्से कहानियों से पाक होना चाहिए, उसके सम्बन्ध में मौलवी साहब ने कहा कि पहला इलहाम किस्से कहानियों से पाक होता है, मगर दूसरा नहीं। ३. मैंने ये भी कहा कि इलहाम जो खुदा की तरफ़ से होता है उसके कायम रखने के वास्ते, उपदेशक और तालीम का सिलसिला जारी रखना ही काफी है। मौलवी साहब फ़रमाते हैं कि नया इलहाम जहालत के वक्त हो सकता है। गोया मौलवी साहब ! उपदेश और तालीम मूर्खता का खजाना नहीं मानते, ४. ये मैंने कहा था कि मुल्की जुबाने इलहामी जुबान से हरगिज पहले नहीं हो सकती जिस तरह के

मेज या कुर्सी-लकड़ी से पहले नहीं हो सकती फिर अरबी जुबान में जो पहली जुबानों की बिगाड़, परिवर्तन या उनकी नकल से ही है। और मुल्की या बनावटी जुबान है। इसमें किस तरह इलहाम जो के खुदा की तरफ से होना चाहिए हो सकता है? न ही अरबी जुबान ईश्वर द्वारा प्रदत्त है, और न ही वो ज्ञान जो अरबी जुबान से ज़ाहिर होते हैं, खुदा की तरफ से हो सकते हैं। बस इलहाम हर्गिज किसी मुल्क की जुबान में नहीं हो सकता। और न ही दोबारा होता है। क्योंकि उपदेश और तालीम का सिलसिला इसको दुनियां में कायम रखने के लिए काफी है, ये पहले मौलवी साहब कहते हैं कि अरब वालों को अरबी जुबान में, उनकी सहूलियत की खातिर इलहाम दिया गया था, लेकिन आजकल अज्ञानियों की सहूलियत का लिहाज करके क्यों इलहाम उनको खुदा नहीं देता। उसका जवाब क्यों नहीं देते? वेद मन्त्र के उर्दू तर्जुमे का हवाला देते हुए मौलवी साहब कहते हैं कि इसमें जो लिखा है कि तुम बुजुर्गों की पैरवी करो। इससे पाया गया कि वेद दुनियां के आरम्भ में नहीं बने थे, इसके मुताबिक वो मैं कह चुका हूं कि ये बहस समय से पहले है, तो भी उनके प्रश्न का उत्तर देना मैं जरूरी समझता हूं, फर्ज कीजिए कि एक अफसर सरकार की तरफ से बन्ज़र जमीन को आबाद करना चाहता है। सरकारी आला दिमाग, समझदारों की एक कमेटी बनाकर, नई आबादी का नक्शा और उसका कानून तैयार कराती है, और साथ ही इसमें भिन्न-भिन्न हिदायत दर्ज करती है, मसलन इस कानून में सरकार ये लिख दे कि अगला सड़क पर चलने वाला पिछले गाड़ीवान से बहुत आगे न निकल जावे। तो मौलवी साहब की तरह कोई शख्स इस मौजूदा मसौदे (विषय) को देखकर ये सन्देह कर सकता है कि ये मसौदा पहले जब तैयार किया गया होगा, तब वो शहर वास्तव में बस चुका होगा। गाड़ीवान आगे-पीछे चलने शुरू हो गए होंगे, मगर असली बात को जानने वाले जानते हैं कि नए शहर के आबाद होने से पेशतर (पहले) ये कानून बनाए गए।

आजकल जैसी कम्पनियां सम्मलित धन से रजिस्टर्ड होती हैं, उनके लिए जरूरी है कि वो अपने पदाधिकारियों वगैरा के भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों बतौर मसौदा, इश्तहार लिखकर सरकार में दाखिल करें। और पीछे कम्पनी अम्ली तौर पर चलायें, इन मिसालों से ये ज़ाहिर हुआ कि कानूनी हिदायत लोगों की रहबरी (मार्गदर्शन) के लिए आला दिमाग वाले व्यक्ति पहले ही से निश्चय किया करते हैं। हाँ! ये सच है कि त्वारिखें इन्सानों के कार्यो के बाद बनती है। लेकिन आला कानून या हिदायत लोगों के ऐमाल के वजह से हुआ करती है। और इस वजह से पहले होती हैं, परमेश्वर जो आलिमेकुल (पूर्ण विद्वान) और तीनों जुबानों का जानने वाला है, उसने तीनों जुबानों के इन्सान को मार्गदर्शन के लिए अपनी पूरी हिदायत जिसको हम वेद कहते हैं, दी। इसमें अगर ये लिखा है कि इन्सान अपने बुजुर्गों को या अपने से पहले लोगों की नेक राह पर चलें। तो इसे एक आम हिदायत कही जाती है जो के: खुदा की तारीफ़ करने वाला इन्सानी हालात का अपनी भविष्यवाणी से अन्दाजा करके देता है। इससे पहले कि हिदायत को उपास्य समझ लेना, या ये कहना कि खुदा का इलम भी घटिया है। के वो लोगों के कर्मों के बाद फिर हिदायत देता है, ये ठीक नहीं। फिर भी यह ध्यान रहे कि ये जरूरी नहीं कि कुल हिदायतें, उन आदि ऋषियों से ही सम्बन्धित हों, उदाहरण के तौर पर इनके तो मां-बाप न थे, वो किसकी सेवा करते? लेकिन इस इलहाम में माता-पिता की हिदायत बराबर दर्ज है। इसलिए कि ये इलहाम, महज चार ऋषियों के लिए ही सीमित नही। बल्कि उसके बाद के आने वाले तमाम लोगों से सम्बन्धित हैं, हाँ! अगर किसी विशेष व्यक्ति के माँ-बाप का विशेष नाम लेकर ये हिदायत दी होती तो उस हालत में हम उसको ऐतिहासिक ब्यान कह सकते थे। लेकिन जिस हालत में, ये मन्त्र मौजूद और आम हिदायत के मुनादी कर रहा है उसको इतिहास समझ कर ये कहना कि वेद सृष्टि के आरम्भ में नहीं हुए गलती है। मौलवी साहब की इस गलती का यह कारण है कि वो समझते हैं कि कुरान शरीफ़ की आयतें, समय-समय पर घटनाओं और कामों के बाद उतरती रही है, लेकिन जब कि आला इल्म और पूर्णज्ञान ईश्वर

के प्रशंसकों को कुछ दिक्कत पड़ सकती है, कि पहले से इस पृथ्वी पर लेने वाले लोगों के लिए कानून या हिदायत न कर सके।

लिहाज़ा आपकी ये दलील ! कि ये मन्त्र जब बना था, कि जिस वक्त साहिबे दिमाग इन्सान (समझदार व्यक्ति) एक नई बस्ती वाले शहर के सम्बन्ध में नख्शा या कानून पहले से लिख सकते हैं। तो क्या भविष्य के ज्ञान को रखने वाले कई पीढ़ियों पहले पैदा हो चुके थे ? गलत साबित हुई, न सिर्फ यही बल्कि बहुत से युरोप के लोग कह रहे हैं कि वेद दुनियां में सबसे पहली किताब है। तो मौलवी साहब की संस्कृत से जानकारी में कमी होने का ये नतीजा है कि वो इसको सृष्टि के बाद की किताब कहते हैं।

तृतीय दिन ७ जून सन् १९०४ ई. का मुबहिसा आरम्भ—

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

साहेबान ! आप साहिबों ने सुना कि कल मैंने क्या अर्ज किया था ? मुझे उम्मीद थी कि मेरी गुजारिश किसी हद तक कबूल की जावेगी, क्योंकि खास मौका मेरे दोस्त को सोचने का मिल गया था, मगर अफ़सोस जो मेरी आरजू थी वह ज्यों की त्यों रही, वही उसका नतीजा है, अब आरजू ये है कि – कहो आरजू न हो वही बात वही गुफ्तगू वही मेरी बात का उल्टा करना, मैंने ये नहीं कहा था कि तुम बुजुर्गों की चाल चलो, बल्कि ये भी कहा था और वो शब्द लिखा दिए थे जो मेरे से नकल किया था, उसका तर्जुमा बता दिया गया, चुनांचे ये हैं तुम्हारे बुजुर्ग तमाम विद्याओं से भरपूर लायक और दायक गुजर चुके हैं, दूसरा तर्जुमा कि तुमसे पहले गुजर चुके हैं, मेरा मतलब "**गुजर चुके**" के शब्द से था, दूसरे तर्जुमे से मैंने दिखलाया था, सिर्फ बुजुर्ग का लफ़्ज नहीं कहा था, मेरे दोस्त ने ये बात मान ली थी कि तुमसे पहले पढ़े हुए हो चुके हैं, बहरहाल अब जो मास्टर साहब ने तकरीर की है उसमें आपने मान लिया है, अब इस पर एक बात और युक्ति से बढ़ाई गई, मतलब इससे ये है कि दुनियां की आबादी जब इस हद तक हो चुकी थी, तब उस पर अमल होगा, मिसाल में कानून सरकारी को पेश किया है मैं उसके जवाब में ये कहता हूं कि हर एक ऐक्ट में ये लिखा होता है कि ये एक फलां मुल्क में जिसकी चारदिवारी ये है जारी होगा। कानून के जानने वाले यहाँ मौजूद होंगे, जो मेरी ताईद (समर्थन) करेंगे। मगर—ऋग्वेद के जिकर किए गए मन्त्र से हर्गिज ये बात साबित नही होती कि ये मन्त्र उस वक्त के पहले से सम्बन्धित है। जब दुनियां में इन्सानों की आबादी इस हद तक पहुंच गयी हो जिसकी नस्लें पहले गुजर चुकी हों, मगर मैं ये पूछता हूं कि उस वक्त के लोग जिन पर ये मन्त्र उतरा था, उसका मतलब समझते थे या नहीं ? कि तुम अपने बुजुर्गों की जो तुम से पहले गुजरे हैं, ताबेदारी करना ये भूतकाल से ही था या नही ? उस वक्त के लोगों ने क्या समझा था ? जो कुछ उन्होंने समझा था वो सही है क्योंकि खुदा के बतलाने से समझा था, इसलिए उसका समझना सही है मैं आपकी युक्ति को ठीक समझु अगर आप उसकी सीमा बतला दें, कि ये मन्त्र उस वक्त के लोगों के लिए है। जबकि आबादी बढ़ जाएगी, जबके नस्लें गुजर चुकी होंगी, अगर आप न बतलाये तो मैं नही कहूंगा। "**पीरां न मे परन्द, मुरीदा में परानन्द**" अर्थात् पीर अपने आप नहीं बनते बल्कि चेले उनको पीर बनाते हैं, आपने अमर के सीगे की मिसाल बतलाई है। `जिससे स्वागत करना पाया जाता हैं, ये सब शब्द स्वागत करने के लिए है।

मगर उपरोक्त मन्त्र में यह लिखा था कि जो बुजुर्ग पहले गुजर चुके है, अलावा इसके ये मसला बिल्कुल साफ है। क्योंकि उर्दू में तर्जुमा है इसलिए हर एक व्यक्ति इन्साफ से समझ सकता है और राय (सम्मति) कायम कर सकता है। जनता खुद इसका फैसला कर सकती है। कि "गुजर चुके" के क्या मायने हैं? और कि "यहां आगे न जाए" इसके क्या अर्थ हैं?

प्रोफेसर मैक्समूलर ने ठीक कहा है कि वेद पुरानी किताब है, इससे कहां जरूरी हुआ कि अनादि हैं तुममें जो पुराने लोग हैं, गुजर चुके हैं, जिनकी उम्र सौ साल की है, उनको हम पुराने कह सकते हैं, उसके ये मायने नहीं कि वो सृष्टि के आरम्भ से हैं। मैक्समूलर की ये राय भी है कि वेद इलहामी किताब नहीं, चूनांचे स्वामी दयानन्द ने इन्कार किया है, वजीराबाद के शास्त्रार्थ में जब उनको निर्णायक बनाया गया था तो उन्होंने फैसला दिया था कि "वेद से श्राद्ध साबित होता हैं"* क्या आप मुझको उनकी राय का पाबन्द करते हैं? हाँ जिस दलील से उन्होंने कहा है उसको पेश करें। मेरे साथ उनकी सहमति है। कि वेद इलहामी किताब नहीं, जब तक आप ये साबित न करेंगे कि वेद सृष्टि के आरम्भ से है आपका ब्यान सही न होगा।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

मौलवी साहब ने ये जो कहा था कि "गुजर चुके हैं" उनकी चाल चलो, इत्यादि-इत्यादि, इस उर्दू की लफ्जी बहस से क्या मतलब? जबकि हम मानते हैं कि वेद में यथापूर्व के शब्द मौजूद है, हमें कब इन्कार है कि पहले लोगों की तरफ़ इशारा नहीं, इसके जवाब में जो मैंने मिसाल दी उसकी तरफ जनाब ने बिलकुल गौर नहीं फरमाया। कानून सरकारी तो आप उसको बतलाते हैं, कानून सरकारी तो मौजूदा आबादी के बारे में हुआ करता है। जो नई बस्ती बसाने के कानून की मिसाल है। आप इसको मेहरबानी करके गौर से सोचें। जिस तरह साईक्लोपीड़िया (cyclopedia) (डिक्सनरी) किताब ज्ञान का खजाना युरोप के हर मुल्क में हर एक इल्म वो हुनर के नियमों का तैयार किया जाता है, जिसमें बढ़ई और कुम्हार के पेशे के असूलों से लेकर फिलसफ़े के कठिन प्रश्नों की बाबत इसमें लिखे रहते हैं, इसी तरह से वेद सच्चे ज्ञान के खजाने की किताब है, इसमें हर एक कारीगर व कार्य के बीज अर्थात् नियम होने के अतिरिक्त दूसरे ज्ञान के नियम भी मौजूद हैं, और ये जरूरी नहीं कि वो सब इल्मी उसूल हर एक इन्सान पर भी हावी हो सकें। मिसाल के तौर पर अगर वेद या कुरान में लिखा है कि माता-पिता की अतात(आज्ञा का पालन) करो। अगर ये लिखा है तो हज़रत आदम या महर्षि अग्नि जी, जो कि बगर माता-पिता के पैदा हुए थे, क्या उन पर यें हिदायत लागू हो सकती है? अगर कुरान या वेद में लिखा है कि चोरी करने वाले को सज़ा दो, क्या ये हुक्म किसी ग्रेजुऐट पर जिसने उम्र भर चोरी नहीं की लागू हो सकता है? और उसमें कुरान या वेद को कोई निकम्मी किताब कह सकता है? आप पूछते हैं कि इस मन्त्र का हुदूदरबा या हासिया सुना

टिप्पणी—

* मैक्समूलर ने यह बात कही नहीं कही कि—"वेद से श्राद्ध साबित होता है" यह शास्त्रार्थ वजीराबाद में हुआ था। जिसका पूर्ण विवरण "निर्णय के तट पर भाग-१" में छपा है। एवं वहीं पर मैक्समूलर के निर्णय की मूल कापी भी छपी है। पाठक गण उसे देख सकते हैं।

"संग्रह कर्त्ता"
"लाजपतराय अग्रवाल"

दीजिए, लीजिए वेद के ख़ात्में पर जो चार मन्त्र हैं, इनमें से नं० ३ का ये मन्त्र है। और इस मन्त्र का और इससे अगले दो मन्त्रों का निचोड़ यानी अर्थात् देवता समज्ञान यानी पूर्ण ज्ञान है, और मन्त्र में जो ढंग मजलिस करने, बहस करने का, ज्ञान को पूरा करने के लिए है, इस तरीके पर आज कालिजों में इल्मी कलबें बना कर अमल किया जाता है। कहीं पर ग्रेजुऐट कलब होते हैं, इल्मी मज़ामीन पर तुल्बा (विद्यार्थी) शास्त्रार्थ करते हैं। इस अमल से उनका सम ज्ञान बढ़ता है। इल्म की पूर्णता होती है और यही हिदायत वेद की है। कि तुम इल्म की तकमील (पूर्णता) करो। पैगम्बरों के लिए इसकी जरूरत नहीं होती, लेकिन दूसरों के लिए मुलहमान (पैगम्बर) आदि बुजुर्ग है। बस विद्यार्थियों और इल्म की तकमील करने वालों के लिए इस हिदायत की सख्त जरूरत है। और इसी वास्ते उसका उपदेश है आपका ये कहना कि मैक्समूलर ने **"वेद को पुरानी किताब कहा है"** ठीक नहीं है। उसने **"सबसे पुरानी किताब"** कहा है। अगर कोई शख्स ये कहे कि ये मेरा सबसे पुराना लड़का हैं, और मैं बतला दूं कि ये उस व्यक्ति का पहला लड़का है, तो बतलाइये क्या इससे वो मुराद न होगी, जो मैं ले रहा हूं। वेद सबसे पुरानी किताब तो सब मानते हैं। और इससे पहले की किताब दुनियां में है नहीं, लिहाजा इसको सबसे पहली किताब कहने में हमको क़ायल होना चाहिये। मैक्समूलर का हवाला मैंने आपके मुकाबले पर संस्कृत दानी के लिहाज़ से दिया था, न कि इस गर्ज़ से कि मैं उसके हर एक विचार से सहमत हूं। बस आपका ये कहना कि **"वेद को इलहामी नही मानता"** क्या आप इसके हर एक विचार को इसाई धर्म से सम्बन्धित मानते हैं? रहा ये कि आपने कहा कि वजीराबाद में स्वामी दर्शनानन्दजी व पण्डित गणेशदत्त जी का जो मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) हुआ था उसमें मैक्समूलर ने आर्य समाज के खिलाफ मुन्सिफ (निर्णायक) होकर **"मुर्दों के श्राद्धों को ठीक बताया था"** मैं अफ़सोस के साथ कहता हूं कि आपसे लायक शख्स को क्या जरूरत पड़ी थी कि लोगों को मुकालते में डालें, मैक्समूलर की चिट्ठी, भिन्न-भिन्न अखबारों में छप चुकी है, मैंने खुद उसका अनुवाद करके अखबार **"सत्य धर्म प्रचारक"** में छपवाया था, मैक्समूलर कहता है कि—**"मुर्दा श्राद्ध का रिवाज पुराना नहीं"** और फैसला आर्य समाज के हक़ में हैं, लेकिन न मालूम कि मौलवी साहब क्यों मुकालता देते हैं। वेद कलाम का नाम है। जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २६, के मन्त्र २ से साबित है, लेकिन कुरान के सुरह बकरयात—१ व २१ व ३८ व ४१ व ५० व ७३ व ७६ व ८१,८३,८५ व ६१ व ६३ व ६५ व ६६ में साफ़ तौर पर कुरान को किताब बताया गया है इसको विवरण सहित बताइये कि क्या कुरान में कुरान की बाबत ही विरोधी राय नहीं लिखी है?

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान! मेरे ख्याल में मसला तय हो गया ये भी तय हो गया कि **"गुजर गये"** के अर्थ ठीक हैं और मास्टर साहेब भी मान गए, कि वेद में भी है, अब कसर क्या है? कुछ भी नहीं—

इसलिए वस्ल से इन्कार हैं, हम जान गये।
ता न समझे कोई, क्या जल्द कहा मान गए॥

अर्थात्—मोहब्बत करने से इसलिए इन्कार है, कि कोई ये न कह दे कि बिना किसी नखरे के ही इतनी जल्दी मान गई। "मानेगी जरूर पर नखरे से" यही हाल मास्टर जी का है। मेरे सवाल को भी ठीक मान लिया, हाज़रीन इसका फैसला करें। कि ये क्या ख्याल है कि तुम वाल्देन का कहना मानों,! कहाँ मानों? कहाँ गुजर गये? सीगा, अमर, और माज़ी (विभक्ति, विद्यमान, भूतकाल) में फ़र्क है, वही बात रही कि—कहां राम-राम! कहाँ टैं-टैं!! आपने फिर एक मज़ेदार बात कहीं कि ऋग्वेद के आखिर

में सम् ज्ञान आया है। इसके मायने आप जो भी निकालें मुझे मन्जूर है। लेकिन यहां ये मतलब है, जैसा कि शेखशादी मरहूम ने कहा है कि —"**इल्म बिना बहस के नहीं रहता**" मतलब यहां सम्ज्ञान का हैं। चूनाचे ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में ये मन्त्र लिखा है और इस मन्त्र से साबित होता है कि—वाकई ये सम्ज्ञान के सम्बन्ध में ये शब्द हैं, कि तुमको धर्म धारण करना चाहिए और अधर्म नहीं धारण करना चाहिए' ये लिखा है, यहां ध्यान दीजिये जिस तरह पुराने समय के देवरास्तीसार यानी साहिबे इल्म वा मार्फत तरफ़दारी और तास्सुब से खाली ईश्वर के हुक्म और धर्म को अजीज जानने वाले तुम्हारे बुजुर्ग आम अलूम से माहिर लायक व फ़ायक गुजर चुके हैं, मुझ कादरेमुदलक (सर्वशक्तिमान) वगैरा गुणों से भरपूर ईश्वर के हुक्म की तामील मेरे बताए हुए धर्म पर चलते रहे हैं; इसी तरह तुम भी इसी धर्म के पाबन्द रहो। तीसरा मन्त्र यूं बतलाता हैं—ऐ इन्सानों ! तुम्हारा मन्त्र यानी मशवरा सबकी भलाई करने वाला बराबर और सहमति से आपसी ईर्ष्या द्वेष से दूर हो, फिर आगे वार्तालाप करने का तरीका बतलाया है। इस पर मेरा ऐतराज नहीं, ये सृष्टि के आरम्भ में हो सकता है। क्योंकि महर्षि स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश पेज नं० २६४ में लिखते हैं कि —"**सृष्टि के आरम्भ में बहुत से लोग जवान-जवान पैदा हो गये थे**" उनको जरूरत होगी कि आपस में ज्ञान की सभायें करें इस पर मेरा सवाल नहीं, मेरा एतराज या यूं कहिये कि मन्त्र का मतलब है सोई अर्ज किया था, कि "**गुजर गये**" का शब्द मन्त्र में था या नहीं ? और ये भूतकाल का है या नहीं ? इस वक्त अगर कोई यूं कहे कि इससे पहले कई शास्त्रार्थ की सभायें गुजर चुकी हैं। तो क्या इसका मतलब ये नहीं है कि—ये सभा कोई नई नहीं, बल्कि इससे पहले भी हो चुकी हैं, बहरहाल इस मन्त्र का मतलब ये ही है, कि जिस वक्त ये कहा गया उस वक्त इन्सानों की कई नस्लें गुजर चुकी थीं, प्रोफेसर मैक्समूलर ने कहा है कि "**सबसे पुरानी किताब है**" मेहरबान खुद ही तो किताब के मायने लिखे हुए के लेते हैं, जिस वक्त में लिखने का रिवाज हुआ था उस वक्त के हिसाब से वेद सबसे पहली किताब होगी। ऐशियांटिक सोसायटी की रिपोर्ट आपने पढ़ी होगी कि वेद की निस्बत कितने हजार साल तजवीज करते हैं, किसी योरूपियन का कथन पेश कीजिए, कि "**वेद सृष्टि के आरम्भ से हैं**" मैं मानता हूं और प्रोफेसर मैक्समूलर का कथन सही हैं, जब लिखने का रिवाज हुआ उससे ये पहली किताब है। इससे यह जरूरी नहीं हो गया कि "**सृष्टि के आरम्भ से है**" ये आपने जो कुरान शरीफ के सम्बन्ध में कहा है इसका जवाब मैं नहीं देना चाहता, इसलिये कि यह विषयान्तर है ताकि कुरान शरीफ की सदाकत इससे साबित हो जाये। और हाजरीन जान लें आपके सवाल का जवाब कुरान शरीफ में खुद दिया है। कुरान शरीफ में काफिरों का कौल (कथन) नकल किया है। आसमान से किताब लाकर दिखाओ ? दूसरे मुकाम पर—(यहां अरबी भाषा में मूल पाठ छपा है)—इस सवाल को खुद-खुदा ने बुरा समझा, हां ! इस लिहाज से कुरान को किताब लिखा है कि वो लिखने के काबिल हैं। न कि वो आसमान से लिखी-लिखाई उतरी है बहरहाल क्योंकि ये सवाल विषयान्तर हैं, आपका ये हरगिज़ हक नहीं है कि—मुझ पर सवाल करें। क्योंकि मैं सायल (प्रश्न कर्त्ता) हूं और आप मुद्दयी (उत्तरदाता) हैं, सायल पर सवाल नहीं हुआ करता, —

हुआ था कभी सर कलम क़ासिदों का ? ।
ये तेरे ही ज़माने में दस्तूर निकला ॥

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

परसों से मौलवी साहब तीन दफ़ा से ज्यादा फ़रमा चुके हैं कि-फ़ैसला हो गया ! फ़ैसला हो गया ! ! ये मौलवी साहब का तकिया कलाम मालूम होता है। आप कहते हैं कि हम सायल हैं, आप मुद्दयी ! क्या ये एक फ़रीक (पक्ष)

का दावा था कि वेद इलहामी हैं? क्या कुरान के इलहामी होने का दावा आपका नहीं था ? जबकि वेद और कुरान दोनों इस वक्त बहस में हैं, तो हम दोनों मुद्दई हैं ना एक साईल, ना एक मुद्दई! चूंकि मौलवी साहब हमारे एक दोस्त हैं, और हमको बुजुर्गी देना चाहते हैं, इससे शायद खुद साईल (प्रश्नकर्ता) बनते हैं। मैंने चूंकि नई बस्ती के कानून की मिसाल दी थी इस पर आपने गौर नहीं किया, जरा सोचें कि आबादी के बगैर कोई किसी का अगला-पिछला ओर पहले का बयान कैसे कह सकता है? मगर समझदार व्यक्ति जानते हैं कि दूरन्देश ऐसे कानून बनाते हैं, जो हर समय में आदमियों के लिए बतौर मुनासिब आईद (लागू) हो सकें। क्या उस वक्त में ही मुबाहिसा हो सकता था, अब नहीं। बल्कि अब भी मुबाहिसा हो सकता है। और अब बुजुर्गों की तकरीर हो सकती है। आधा मन्त्र यदि उस समय लागू हो सकता था तो पूरा इस वक्त! मन्त्र में ये शब्द **"यथा पूर्व"** मौजूद है। जिस पर वर्तमान या अतीत की क़ैद (पाबन्दी) नहीं और उस पर काफी बहस हो चुकी है। आप मान चुके हैं कि कुरान में सवाल हैं कि **"कोई किताब लाकर दिखलाओ"** इतलाइए उसमें लिखा है कि खुदा को बात बुरी मालूम हुई, खुदा को उस वक्त गुस्सा क्यों आया? क्या कोई सवाल न करें? किताब के मायने, लिखा हुआ पत्र है, देखो—**"मन्थी उल्लअरब सफा-१५९४"** कुरान में लिखी हुई किताब की किस्म सुरह दुखान में ये लिखा है कि—**"तुमसे इस किताब को एक मुबारिक रात में उतारा"** बस कुरान का ये दावा है कि वो इल्म नहीं, लेकिन मौलवी साहब का दावा है कि कुरान इल्म है। मौलवी साहब का दावा साबित नहीं होता, वेद में लिखा है कि शरीर में प्रवेश करने वाला आत्मा लतीफ और गैर-फ़ानी (आनन्द स्वरूप व अजर-अमर) है, क्या इसके मुकाबले पर कुरान में कहीं पर रूह (आत्मा) का गुण बताया गया है। अगर ज्ञान की किताब होती तो अवश्य ही ज्ञान की मिसालें होनी चाहिए थी, वेद में लाश को जलाने की हिदायत है, जिसकी तामील (पूर्ण) करने में "हरबर्ट स्पेन्सर" से लायक फिलासफर योरुप में जलाये गए,—क्या कुरान में ऐसी मुदल्लल हिदायत (युक्तियुक्त-आदेश) हैं? वैदिक सच्चाई योरुप में डंके की चोट से ऐसी जगह पकड़ रही है, ? यजुर्वेद के इस मन्त्र में आत्मिक उन्नति के लिए बताया गया है कि ओ३म् का मन में ध्यान करना चाहिए। ऐ खुद मुख्तयार! (स्वतन्त्र) जीव तू याद रख!! जो तूने कर्म किए हैं, उन्हीं का फल यानि सज़ा-जज़ा भोगेगा। क्या ऐसी मिसालें कुरान में हैं? देखिए इसके मुकाबले में कुरान कहता है—**"खत्मअल्लाहु अला उलूबिहिम"** कि हमने उनके दिलों पर मोहर कर दी हैं यानि उनकी खुदमुख्त्यारी (आजादी) छीन ली है। ऐसी हालत में इलहाम की जरूरत हो सकती है? जब कि इन्सान कर्म करने में स्वतन्त्र ही नहीं हैं तो—ईश्वर आदि की दयालुता से मुक्ति मांगता रहे। तो जनाबेमन् फिर इलहाम या उपदेश की जरूरत ही क्या है? इसको तो बतलाइये कि वेद में किस्सा कहानी बिल्कुल नहीं बल्कि इल्मी यानि (युक्तियुक्त सिद्धान्त) है। बखिलाफ़ इसके कि कुरान में मूसा वगैरा के किस्सा कहानियां और अकल के खिलाफ़ फ़र्जी बातों का मसलन जिन, शैतान, फरिश्ता, आसमान, वगैरा का जिक्र है। कुरान प्रकृति के अनादित्व का वर्णन नहीं करता एवं आत्मा की माहियत (गुणों) को नहीं समझाता, गोश्तखोरी और मुर्दा दफ़नाने की गैर मुदल्लल (युक्ति विरुद्ध) तालीम (शिक्षा) देता है। फिर कुरान क्योंकर इलहामी या इल्मी किताब हो सकती है?

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान! आखिर वही बात हुई जो हम पहले समझे थे, यानि मास्टर साहब कुरान से उलझेंगे, मगर इनको मालूम है कि कुरान कोई ऐसी-वैसी किताब नहीं है। न आप स्वामी दयानन्द जी से बढ़कर सवाल कर सकते

हैं, न *"तर्क इस्लाम" से ज्यादा कह सकते हैं, सत्यार्थ प्रकाश का जवाब मैंने लिखा है। तर्क इस्लाम का जवाब भी लिखा—

हम भी हैं सीना सपर, लगा जो हो सो हो।
आज देखें काट तेरी, अबरुए खमदार का॥

मगर सवाल ये है कि आपके सवालात् ही क्या हुए हैं? क्या आप अपने सिद्धान्त से सबक दोष (कर्त्तव्य पूरा करना) हो चुके? क्या आपने मन्त्र के मुताबिक मान लिया कि वेद सृष्टि के आरम्भ से नहीं हैं? क्या आपने कोई मिसाल ऐसी समझाई है कि इसमें भूतकाल का शब्द, यानि भविष्यत् के मायने में हो? आपने बहुत कुछ कहा, मगर इसकी मिसाल वही है कि चावलों की सफेदी से जमीन की गोलाई को साबित किया, हाज़रीन से दर्खवास्त है कि इस कानून को पढ़ें और इस मन्त्र के मायने भी सामने रख लीजिए, कि अपने दिल से निश्चय कर लीजिए, कि नई बस्ती के कानून पर सन्देह होता है या उक्त मन्त्र के अर्थ पर! आर्य समाज का नियम है कि "सच्चाई के मानने को हर वक्त तैयार रहो" फिर ऐसी ज़िद और हठ!

शेर— **लो हठ छोड़िये, बस! सरे इन्साफ आइये।**
इन्कार ही रहेगा, मेरी जां कब तक तलक॥

नई बस्ती में, बेशक ये कानून होते हैं, कि गाड़ियां आगे चलाइये, बहुत अच्छा! हमें इससे क्या मतलब? आपको खाना खिलाएं या पानी पिलाएं, हमको कोई एतराज नहीं। इसमें कोन सीगा माजी (कौन सा शब्द भूतकाल) का है। बल्कि सब अमर के सीगा (वर्तमान के शब्द) है।

शेर— **मैंने कहा कि साया फगन मुझ पै ऐ परि।**
बोला कि इसके साये से परहेज चाहिए॥

साहेबान! कुरान शरीफ़ पर आपने सवाल किए हैं, करे! और खुले दिल से करें!! हम जवाब देने को तैयार हैं, वकालत पेशा कह सकते हैं और कानून आपको मजबूर करता है कि आप मेरे सवाल का जवाब दें। न कि मुझ पर सवाल करें। आप फ़रीक अव्वल हैं, आप इलहाम के मायने बयान करने को खड़े हुए हैं, इस पर मेरे सवाल हैं, अपनी बाकी शर्तों को तो देखें! दूसरी शर्त ये है कि अकल के खिलाफ़ न हों। मैं पूछने का हक़ रखता हूं। दूसरे के नुत्फे (औलाद) को अपना कहना क्यों अकल के मुताबिक है? जो वेदों की तालीम के मुताबिक कमजोर वीर्य वाला अपनी बीबी को दूसरों से नुत्फ़ा (वीर्य) लेकर अपना बेटा बनाने की इजाजत दे सकता है, दूसरे के नुत्फे (वीर्य) से पैदा शुदा बेटे को अपना कहना किस अकल के मुताबिक है? कुरान ने जो कुछ बतलाया है वो हमसे मख़फ़ी (छुपा हुआ) नहीं। वह अपने मायने को आप बतलाता है। वो मोहताज नहीं, ये वेद नहीं कि अग्नि के

टिप्पणी—

"**तर्क इस्लाम**" महाशय धर्मपाल जी बी० ए० ने लिखा था जो पहले अब्दुल रसूल बी० ए० हैड मास्टर इस्लामिया हाई स्कूल गुजरांवाला (पंजाब) में थे परन्तु बाद में शुद्ध होकर धर्मपाल जी बी० ए० बन गए थे। यह पुस्तक अपने विषय की अद्‌भुत पुस्तक है। जो हमारे पास मौजूद है। कोई सज्जन देखना चाहे तो देख सकता है।

—"**सम्पादक**"

मायने काशी के पण्डे कुछ कहें और महर्षि दयानन्द जी कुछ कहें ! आप खुले शब्दों में कहिए कि मन्त्र मजकूर के मुताबिक आपने तसलीम कर लिया कि वेद सृष्टि के आरम्भ से नहीं, मगर आप आर्य कहला कर ऐसा कहने से आर्य समाज के मेम्बर न रहेंगे। अभी तो कई किस्से और कई मार्के हैं, आप अभी से उठकर कुरान शरीफ़ पर ऐतराज करने लगे, "**फइन्न लम् यसतजव्यूलकुन, फ़ाइलम इन्नमा अन्जल बअल्मा अल्लाहु व इल्लाइल्लहुफहुल अन्तुम मुस्लिमून**" यानि अगर कुफ़्फार (काफिर) जवाब न दे सकें तो तुम जानो कि यह कुरान खुदा के इल्म से उतरा है। और इसके सिवाय कोई कुछ नहीं, बस ! तुम बाज आओ, बस आप पहले मन्त्र मजकूर का खुले लफ़्जों में फैसला कीजिए फिर दूसरा मसला छेड़िए। जब तक आप मुद्दयी है सवाल करने का हक नहीं रखते। जब मैं खड़ा हूंगा, कुरान की सदाकत बयान करने को तो आपके कुल सवालात् सुनूंगा और जवाब दूंगा इससे पहले नहीं।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

आपके बयान पर इस वक्त वो मिसाल लागू होती है। कि सारी मुद्दत पढ़ते रहे और सुबह को पूछा कि "**जुले खा मर्द था या औरत ?**" साहिबेमन् मैंने कल के पहले पर्चे में जिसके बारे में मौलवी अब्दुरहमत ने आपके प्रेजीडेंन्ट से कहा था कि उसमें वेद के मन्त्र हैं। उसका जवाब मुझे देने दो इसके पहले ही पृष्ठ में मैं कह चुका हूं और "**ऋतञ्च-सतयञ्च**······" वाले मन्त्र का हवाला दे चुका हूं कि सृष्टि अनादि है, और प्रवाह से चली आती है, और हर कल्प में वेद का इलहाम इस तरह पर हुआ करता है, इससे "**यथा पूर्व**" शब्द के मायने से समझे जा सकते हैं कि मौजुदा सृष्टि में जो ऋषि हुए हैं उनके लिए वैसा ही कानून नाजिल (पैदा) किया जा सकता है, जैसा पूर्व कल्प में पहले ऋषियों के लिए, बस ! किस वजह से माना जा सकता है कि वेद इब्तदाई (आदि) से नाजिल नहीं ? बल्कि मन्त्र के मुश्किल पाठ से और उसका तर्जे बयान इस बात की दलील है कि परमेश्वर का ज्ञान हमेशा एक जैसा और पूर्ण रहता है। बजाये इसके कि आप जवाब देते बल्कि उसकी जगह पर आप दीवाने जौक का शेर पढ़ते रहे। क्यों मेरे मन्त्रों और तर्जुमे की तरदीद नहीं करते ? दलील पेश करने के वक्त सिर्फ ये कह देने से कि लोग फैसला करें। कोई दलील कायम नहीं हो सकती। आपने ये क्या फरमाया कि—"जहां आप चलेंगे वहां मैं चलूंगा" गोया जाहिल लोगों को आप बहकाना चाहते हैं। कि हम आपका पीछा करेंगे। हालांकि आप मेरे ही पड़ौस में रहते हैं। और कई बार मुझसे मुबाहिसा कर चुके हैं। अच्छा आपने इस वक्त लफ़ज-गे-के भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किए जो कि आर्य समाज और सनातनी पण्डित काशी के करते हैं। महज इसलिए छेड़ा है कि हिन्दुओं को उकसाया जावे लेकिन इससे पहले वजीराबाद के मुबाहिसे का जिकर है, जो आपने छेड़ा था, बखिलाफ इसके हमने अब तक कोई ऐसी बात नहीं छेड़ी, क्या आप एक रिसाला सियों के बखिलाफ ताजिया परस्ती के विषय पर नहीं निकाल चुके हैं ? मैंने कोई हमला नहीं किया था, बल्कि एक दलील की बात कही थी, दूसरी शर्त के सम्बन्ध में आपने जो ये कहा कि इलहाम अकल के अनुसार है। और फिर नियोग पर आ गए। हालांकि मोहम्मद साहब ने गैर के लड़के (जैद) को एक मुद्दत तक अपना लड़का किया, वो कुरान जिसमें हलाला—मुता अंजल—तलाक—कसरत—अज-दुआज (बहुपत्नी) हों, वो अकल के मुताबिक है ? अगर आप कुरान को बगर्ज बहस में नहीं लाए तो कल के पर्चों में क्योंकर आप हर बात के मुताल्लिक कुरान को पेश करते रहे हैं ? क्या मुझे इस पर नुक्ताचीनी करने का हक़ नहीं ? अब तक ये समझा गया था कि जो तारीफ़ इलहाम की मेरी तरफ़ से की गई है उसको आपकी तहरीर के मुताबिक मान लिया था, इस वजह से उसको ख्याल में रखकर कुरान पर ऐतराज किया गया, अब आप खुद फ़रमाते हैं कि मैं खुद इलहाम की तारीफ़ कर चुका, गोया आप पिछली मुसल्लिमा बात पर कायम न रह सके। मामूली दर्जे के लोगों का कानून ऐसा दकीक पुरमानी (सूक्ष्म ज्ञान) और बारीक शब्दों में होता है कि हरएक मौके

पर भिन्न-भिन्न हालतों में हावी हो सके, क्या लार्ड मैकाले की तारीफ़ इस बात में नहीं है कि ताजीराते हिन्द का मसौदा ऐसा बनाया है जो भिन्न-भिन्न अपराधों पर हावी हैं लेकिन वेद ताजिराते हिन्द से भी नीचे की किताब है ? जिसका रचियता आलिमउलगैब और हमेदान खुदा है, सीधा-साफ कह दीजिए कि खुदा ऐसा आला दर्जे का कानून पहले से नहीं बना सकता था, खुदा की नाकाबलियत जाहिर हो जावेगी। और हम भी समझ लेंगे, कि आपने बात ज़ाहिर कर दी, आपका ये फ़रमाना अजीब है कि काफिरों ने पूछा कि किताब आसमान से लाओ। खुदा को गुस्सा आ गया, और फिर जब वो चुप हो गया तो तब कुरान-इल्म व कलाम हो गया। ये खूब इलहाम का तरीका है। अगर ये सच है कि कुरान इलहाम है तो बतलाइए सुरह बकर की आयतें ५ व ११ में जो ये लिखा है कि हमने किताब दी और वो उसको जैसा पढ़ना चाहिए, पढ़ते हैं। जैसा वो है उसके मुताबिक है। बस ! किताब के मायने किसी लुग़त (शब्द कोष) से इल्म व कलाम के साबित करके दिखायें। वर्ना कुरान को इल्म व कलाम मत कहें।

८ जून सन् १९०४ ई० का मुबाहिसा—

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान ! कल आप लोगों ने मास्टर साहब का मजमून और उनकी तर्जे गुफ्तगू को भी जांचा, कि किस जोर-शोर से मजमून को फ़रमा रहे थे और चेहरे की रंगत क्या हो रही थी ? मेरे ख्याल में ऐसी हालत में आकर इस तरह वार्तालाप करना खास लोगों का काम है।

शेर— **सम्भल कर पांव रखना, मयकदे में मास्टर साहब।**
यहां पगड़ी उछलती है, इसे मयखाना कहते हैं॥

आपके मजमून का खुलासा दो हरफ़ो में है, बहस इस बात पर है कि वेद शुरू दुनियां से है या बाद गुज़रने कई नस्लों के ? मैंने वो मन्त्र ऋग्वेद का पेश किया था जिसका मतलब ये था कि "तुम अपने बुजुर्गों को जो कि पहले हो गुजरे हैं उनकी रविस अख़्तियार करो।" मैंने उसके जवाब में ये कहा कि आइन्दा नस्लों के लिए है। कल दूसरी रविस (तरीका) अख्तियार की जो मेरे खास दोस्त दर्शनानन्द जी ने अपनाई हुई है। मैं चाहता हूं कि आप ऐसे साफ शब्दों में कहें ताकि जवाब दे सकूं। उनका मतलब है कि पहली दुनियां के बुजुर्ग मुराद हैं। चूंके सही शब्दों में आपने नहीं फ़रमाया, लिहाज़ा मैं नहीं चाहता कि मैं उनकी तसरीह (विशलेषण) करूं। मैं इसे साबित करता हूं, कि आलिमउलगैब ने आइन्दा नस्लों के वास्ते बनाया है, मैं जानता हूं कि आलिमउलगैब (सर्वज्ञ) ने आइन्दा नस्लों के वास्ते बनाया है। मैं जानता हूं कि वह सर्वज्ञ आइन्दा नस्लों के वास्ते कानून बना सकता है। मगर मेहरबान ! उसके लफ़्ज और होते हैं। अगर ये मन्शा हो कि आइन्दा नस्लों के वास्ते कानून हुआ है उसकी इबारत यूं होनी चाहिए थी कि पिछले लोगों को अगले लोगों का तरीका या चाल अपनाना चाहिए। हालांकि आपके पहले कोई बुजुर्ग नहीं, फिर उनको कहा जाता है कि तुम अगले बुजुर्गों की चाल अख्तियार करो। ये शुरू दुनियां के लोगों को कहा जाए। कि तुम गुजिश्ता बुजुर्गों की चाल अपनाओं। आपने मेरी संस्कृतदानी पर हमला किया मगर मेरे दोस्त ने ये न साबित किया कि आपने भी अरबी का मौलवी फ़ाजिल का कहां इम्तहान दिया ? स्वामी दयानन्द जी ने कुरान पर ऐतराज करे। उन्होंने अरबी का कौन सा इम्तहान पास किया था? कुरान शरीफ की आयतों

का पेश करना दावे के लिए नहीं था, बल्कि आपके विषय के कुछ हिस्से की तसदीक (सबूत) था ।.आपकी गलत फ़हमी दूर करने को आयत बताई थी । काफ़िर चाहते थे कि किताब लिखी हुई आसमान से उतरे । जिसके जवाब में खुदा ने कहा—"**फकद सालोमूसा अकमंण जालिका फकालू अ़ारनल्लाहु जहरतन**" यानि उनका सवाल कोई अचम्भे वाला नहीं है, उन्होंने पहले ही मूसा से कहा था कि खुदा हमको आसमान से लाकर दिखा, इस आयत के पेश करने से यह गर्ज थी कि कुरान उस सवाल को रद्द करता है, कुरान को किताब क्यों समझा गया ? मेहरबान बावर्ची को आप कहते हैं कि रोटी पका रहा है, हालांकि रोटी उसका नाम बाद पकने के होगा, हालांकि वो आटा पका रहा है, कुरान कहता है—"**वो इन्नहु लफी मजबुर अल्लावल्लबीन वन्नहु लफल किताब दुनियां लखुयलहकीम**" खुदा कहता है कि कुरान वो है जो हमारे इल्म में किताब कहना इस तरह है, आप वेद को किताब कहते हैं, बुक-सेलर वेद बेचते हैं, तो वो किताब बेचते हैं या इल्म वेद को ? आपने ज्ञान का कवर कहा, मेरी आंखों की रोशनी मगर मेरा सवाल तो वही है जिस पर मैंने कहा था—"**एक निगाह पर ठहरा फंसला दिल का**" आप अपने इस मन्त्र का जवाब दें कि उनसे कौन से बुजुर्गों का सम्बन्ध है ? आपकी एक तवज्जो ये है, पिछली नस्लों की ताबेदारी करें, दूसरी तवज्जो जो स्वामी दर्शनानन्द जी ने अख्तियार की है ऐसे साफ शब्दों में बयान करें । और ये भी बतलाये कि ये क्या अकल की बात है कि दूसरे के नुत्फे (वीर्य) से बेटा पैदा कराकर अपना बताया जावे ? "**हकाकी वाअकूबत दोजख बराबरस्त रफतन बपा मर्दी हम साये दर बहिस्त**" अर्थात अपनी बीबी से कहा जावे कि दुसरे के नुत्फे (वीर्य) से बेटा हासिल कर । और मेरा जायज वारिस (मालिक) बना । ये किस फिलासफी पर आधारित है ? बाप-बेटे का ताल्लुक नुत्फे की वजह से होता है । जो औरत के रहम में पाकर परवरिश पाता है । आप कुरान शरीफ पर इस वक्त ऐतराज नहीं कर सकते हैं, जब मैं कुरान मजीद के इलहामी होने का सबूत देने खड़ा हूंगा उससे पहले आपको हर्गिज एतराज करने का हक़ हासिल नहीं ।

श्री मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी—

साहेबान ! मौलवी साहब ने, चेहरे की रंगत कही, और मयक़दे की दावत दी, हर-दो के लिए मैं उनका शुक्रिया अदा करता हूं । मगर मैं मयक़दे की दावत को मन्जूर नहीं करता, इसके अलावा जो दूसरी पिछली गुजरी हुई बातें हैं, वेद में मौलवी साहब की तरफ़ से बताया गया है, उसकी निस्वत् मौलवी साहब को चूंके वो बार-बार बयान करने पर भी नहीं समझते, मैं मौलवी साहब को चेलेंज करता हूं कि अगर इस वक्त नहीं तो अब से एक साल तक इस वेद मन्त्र की असली संस्कृत से दिखलावें कि कौन शब्द माजी का सीगा (भूतकाल) है । जो शब्द पूर्वे ज़ेरे बहस मौजूद हैं, उसके मायने पहले या बुजुर्ग के हैं, उसका तर्जुमा उर्दू में उर्दू जुबान के नाकिस होने के बाईस (कमी होने की वजह से) एक शब्द से ठीक तौर पर उसका पूरा-पूरा अर्थ नहीं निकल सकता । लिहाज़ा उर्दू तर्जुमों में "**गुजर चुके**" लिखा गया होगा, "**गुजर चुके**" इस तर्जुमे की माज़ी (भूतकाल) असल मन्त्र में हर्गिज कोई नुकस पैदा नहीं करती, इससे पहले मन्त्र में जिकर है, कि पूरा ज्ञान परमेश्वर हमको अपने प्रकाश से प्रकट करें । बाद दूसरे अर्थात् मन्त्र ज़ेरे बहस में वही लोग मुखातिब हैं जिसको पहले मन्त्र में "हम" कहा गया, ज़ाहिर है कि अग्नि महर्षि के वास्ते, शब्द "हम" नहीं आया, बल्कि कुल दुनियां के आदमियों के लिए आया है । और उपासते का लफ़्ज मौजूद है, जो फ़ैल हाल में है, उसमें माज़ी का सीगा (भूतकाल) नहीं, मौलवी साहब ने फ़रमाया कि कुरान की आयतें मास्टर साहब के दावे की ताइद में पेश की गई है, वाह ! ये खूब मन्तक (न्याय) है ? जो कुरान अभी बहस में है, तो उससे आप आयतें क्यों कर पेश कर सकते हैं? कुरान जो कि अभी तक बहस में है उसके हवाले देना ज़ाहिर करता है कि आप उस पर नुक्ता चीनी सुनने के लिए भी तैयार है? और जब हम आपकी आयतों के सम्बन्ध में कहते

हैं कि ये अकल के खिलाफ़ हैं तो आप फ़रमाते हैं कि मास्टर साहब को कुरान पर ऐतराज करने का हक़ नहीं है हम पूछते हैं कि मौलवी साहब को ही मुस्तनद लुगत (प्रामाणिक कोश) में लिखा है कि--किताब के मायने इल्म के हैं। "मैं मन्थी उल अरब" का हवाला दे चुका हूं कि किताब इल्म के मायनों में नहीं है। आप इसका खण्डन क्यों नहीं करते ? मौलवी साहब के कौल (कथन) के मुताबिक कुरान अपने आपको एक जगह इल्म बतलाता है, मगर बीसों जगह कुरान अपने आपको किताब और लिखी हुई किताब कहता है, आयात सुरह बकर से पेश कर चुका हूं, मौलवी साहब ! इन दोनों खिलाफ़ बातों की तसरीह (विश्लेषण) कीजिए। रोटी पकाने वाले की मिशाल आपकी गलत है। क्योंकि वो गलत मुहावरों पर आधारित है। इस मिसाल के बजाय लुग़त (कोश) से हवाला देते कि किताब के मायने इल्म के हैं। तो वो काफी होता। अगर बावर्ची गलत मुहावरे का इस्तेमाल छोड़ दें तो बतलाइये आपका क्या जवाब होगा, ? मेरे इस कहने पर कि वेद जामये उल् अलूम (ज्ञान का भण्डार) है। तो मौलवी साहब फरमाते कि "चश्ममारोशन" इसका जवाब ये होना चाहिए था कि कुरान भी जामये उल अलूम (ज्ञान का भण्डार) है। मगर चूकें ये नही कहा गया इससे पाया गया कि कुरान ज्ञान का भण्डार नहीं, मौलवी साहब नियोग का जिकर करते हुए फरमाते हैं कि दूसरे का नुत्फ़ा (वीर्य) डलवा कर मेरे लिए बेटा पैदा कर। मैं पूछता हूं कि ये किस वेद मन्त्र का तर्जुमा है ? मेहरबानी करके वेद मन्त्र पेश कीजिए जिसका ये तर्जुमा है, धोखा देना अच्छा नही मौलवी साहब ! सुरह निशा में लिखा है कि आपस में औरतें बदल लो, ये क्या बात हैं ? और उसमें क्या फ़िलसफ़ा (दार्शनिकता) है ? जो फ़िलसफ़ा है उसे खुले शब्दों में बयान करिये। पहली दुनियां के बुजुर्ग और इस दुनियां के बुजुर्गों की तरफ़ आपका ध्यान बार-बार दिला चुका हूं। अगर आप मेरी तहरीर (लेख) को ग़ौर के साथ देखते तो आपको मालूम हो जाता कि शुरू दुनियां के ऋषियों के सम्बन्ध में जब पूर्व का शब्द आयेगा तो उस हालत में पूर्व कल्प के ऋषियोंसे मुराद होगी। और मां बैद आदमियों के ताल्लुक में जब ये लफ़्ज आयेगा तो उससे मुराद उनसे पहले के बुजुर्गों की होगी। जनाबेमन् ! अमर बहस तलब तो ये था कि इलहाम सिर्फ इब्तदा आफरीनस (सृष्टि के आरम्भ) में होना चाहिये या शुरु और दरम्यान (बीच) दोनों में ? आप दरम्यान में होने की कोई काफी तवज्जो नहीं दे सकते। हांलाकि शुरू में होना आपका और हमारा पक्का है।

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब —

देखें तो किस तरह, इसमें होता असर नहीं।
लौ प्राज नामा लिखते हैं, खूंने जिगर से हम ॥

मेरे दोस्त ने आज फ़ैसला कर दिया, और बड़ी खुशी से फैसला कर दिया, सिर्फ एक बात का झगड़ा रह गया, ग़ौ झगड़ा तो मैंने किया, मगर इस पर्चे में उसका भी फैसला हो गया। एक बात का तकाज़ा क्या हैं कि सीगे-माजी का बतलाओ ? मैं इसके जवाब में मास्टर साहब का पहला पर्चा दिखाता हूं, ७ जून नं० २, "मुझे कब है कि पहले आदमियों का इसमें जिक्र नहीं" फिर अब दोनों तर्जुमो को गलत कहते हुए ये तर्जुमा किया था कि "हमसे पहले जो पढ़े हुए हो चुके हैं" ये तो वो ही किस्सा हुआ कि—चार यारी के चार दोस्त जा रहे थे, एक पठान, एक हिन्दू, एक अरबी, एक किसी ग़ैर जुबान का। चारों भूखे थे, रास्ते में एक पैसा पा लिया, एक ने कहा कि ख़मीर लाओ दूसरे ने कहा—रोटी लाओ, अफ़गान ने कहा, ड़ोडयी लाओ, एक व्यक्ति ऐसा इन चारों की जुबानों से परिचित था, वह बाजार से रोटी लेकर आया, कि यही सबकी मुराद है। मेहरबान "सीगे माजी का" कहो या "पूर्वे" आपके अलफ़ाज में जो हमने पहले पढ़े हुए पूछने में अलावा बरी इस पर्चे में आपने तसलीम कर लिया है कि मेरा ऐतराज दुरुस्त और पहले का लफ़्ज मौजूद है, आप कहते हैं कि शुरू दुनियां के ऋषियों के लिए जब ये शब्द

आयेगा तो इससे पूर्व कल्प के ऋषि मुराद होंगे, और इसके बाद के लोगों के लिए उनसे पहले ! इसका मतलब ये है कि सृष्टि के आरम्भ में जब ये लफ़्ज कहा गया तो उससे पहले दुनियां के बुजुर्ग मुराद थी, पहले तो बहरहाल आपने मान ली, बतलाइए मेरा क्या कसूर ? और मुझ पर गुजरे हुए काम की क्या जिम्मेदारी ? सभी ज़माना भूतकाल है। अगर कोई कहे कि आज आठ जून से पहले सात जून है तो क्या ये समय भूतकाल नहीं? बहरहाल जब कहा गया है कि पहले लोगों की चाल अख्तियार करो, अब तो आपने जवाब दिया जिसकी मुझे पहले से उम्मीद थी। कि इससे पहला कल्प मुराद है। और अगर पहली दुनियां के लोग मुराद हैं, तो ये आर्य सिद्धान्त के मुवाफ़िक इस वक़्त भी ये ही लफ़्ज था । मैं पहली दुनियां से सवाल करूंगा कि ये लफ्ज उस वक़्त वेद में मौजूद थे या नहीं ? उस वक़्त भी अगर थे तो इससे कोन मुराद है? अगर आप ये कहें कि सिलसिले दुनियां का क़दीम! तो मैं बड़े जोर से अर्ज करूंगा कि आर्य समाज का मजहब है कि तीन पदार्थ अनादि हैं, खुदा, रूह माद्दा, अर्थात् (ईश्वर, जीव, प्रकृति) इन शरीरों को पुराना कहा, यह आर्य समाज के भी खिलाफ है। दूसरे तमाम दुनिया के दार्शनिकों के भी खिलाफ है । अगर कोई शरीर पुराना होगा, तो तरकीब (अन्वय) उसका पहला जवाब होगा। बहरहाल आपको मानगा पड़ेगा कि सिलसिला दुनियां का कदीम नहीं, अगर दुनियां का सिलसिला कदीम है तो बाई सैक्स जिस्म का होगा, हालांकि तमाम अजसाम हादिसे, महर्षि दयानन्दजी मान चुके हैं, कि संयुक्त अनादि नहीं हो सकता। तो आपको ये मानना पड़ेगा कि दुनियां का सिलसिला अनादि नहीं है। आपने मुझसे सवाल किया है कि किसी दूसरे का वीर्य लेकर बेटा बनाना किस वेद मन्त्र का अनुयाद है ? आपको खूब मालूम है कि मेरा मतलब क्या है ? अगर आप दानिस्ता (जान-बूझकर) भूल जावें तो मैं आपको भूलने न दूंगा। सत्यार्थ प्रकाश में सफ़ा १५४ पर मन्त्र वेद का बतलाते हैं कि—"जब खाविन्द (पति) औलाद पैदा करने में असमर्थ हो तो पति उसको इजाजत दे कि, "ऐ नेक बख्त ! (सौभाग्यवती) औलाद की इच्छा रखने वाली तू मुझसे अलावा दूसरे खाविन्द की ख्वाहिश कर क्योंकि अब मुझसे औलाद नहीं हो सकती" तब औरत दूसरे के साथ नियोग करके औलाद पैदा कर ले। लेकिन इस ब्याहे महाशय खाविन्द की खिदमत में कमर बस्ता रहे। अर्थात् अपने शादी शुदा की सेवा अवश्य करती रहे। इसी लड़के को सफ़ा १५६ पर जायज वारिस करार किया गया है। अगर ये वेद के मतलब नहीं तो साफ़ लफ़्जों मैं कहिये कि स्वामी दयानन्द जी का मजहब वेद के खिलाफ़ है, बाकी आयतों का जवाब उस वक्त दूंगा जब मैं कुरान के सबूत के लिए खड़ा हूंगा। सरेदस्त मैं साइल हूं ।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान मोलवी साहब ने जो कुछ फरमाया उसको आपने सुना, मौलवी साहब ने मेरे पर्चे का हवाला देते हुए कहा—कि कल तुमने मान लिया था कि—"गुजरे" का लफ़्ज है। जनाबेमन् ! ये तो तर्जुमे का लफ़्ज है। असल वेद मन्त्र का नहीं, क्या अगर तर्जुमे के ऊपर ऐतराज किया जावे, तो वो असल पर होगा या के उर्दू तर्जुमे पर ऐतराज होंगे ? क्या वो असली अरबी कुरान पर समझे जावेंगे ? आपने फ़रमाया कि वेद में माजी का सीगा है, मैंने उसको बतलाया—गलत है। हालांकि आप सातवीं जून के पर्चे नं० दो में कह चुके हैं कि वेद में माजी का का सीगा (भूतकाल का अन्वय) है। पहले ये कहना था कि ये अलफ़ाज किस मन्त्र का तर्जुमा है। दूसरे का नुत्फ़ा (वीर्य) डलवा कर मेरे लिए बेटा पैदा कर, जो तर्जुमा मौलवी साहब ने पढ़ा है, उसमें वेद का तर्जुमा इन शब्दों में दिखा दीजियेगा। इसमें तो खास औरत को दूसरे पति करने की इजाजत दी गई है। ये ऐसा ही भ्रम है कि जैसा—एक आदमी के पास उसका दामाद बैठा हो, और उससे पूछा जावे कि ये कौन है ? और वो ये कहे कि मेरी

लड़की में नुत्फ़ा डालने वाला है, जनता में शोरोगुल······ये सच्चाई के तौर पर इस बात का इस तरह से कहना यह जनता की गलती है। मैंने कहा था कि इस कुरान की सुरते निशा में औरत के बदलने व हलाला, व मुता का जिकर है या नहीं? इसका जवाब सिर्फ ये होना चाहिए था कि है या नहीं। लेकिन मौलवी साहब ने हां या ना में कोई जवाब नहीं दिया। मौलवी साहब कहते हैं कि आर्य समाज तीन पदार्थ आदि मानता है। जिस्में (शरीरें) अनादि नहीं होते हैं। अगर आपको शौक है तो सत्यार्थ प्रकाश का सम्मुल्लास सातवें या आठवें सम्मुल्लास में देखें कि स्वामी जी ने प्रवाह से अनादि यानी दौरे तसलसुल्ल से जिस्मों को माना है। जैसा कि रात के बाद दिन व दिन के बाद रात होती है, इसी तरह से एक कल्प के बाद दूसरा आता है, तीन पदार्थ स्वरूप से अनादि बाद इज़साम इन दौरे तसलसुल्ल से अनादि माने हैं, फिर ये किस तरह आर्य समाज के सिद्धांत के खिलाफ़ कोई फिलासफर हो सकता है? आप अपनी अकली दलील दें तो मैं उस पर गौर करूं, मगर आप ऐसा क्यों करेंगे? आपको तो असली मजमून टाल कर मुकालता देने से काम है। अब मैं असली मजमून की तरफ़ ध्यान दिलाता हूं। प्रथम-मैंने इलहाम की तारीफ़ की थी, जिसको आप मान गए थे, इलहाम का आलमगीर होना दूसरी बात थी। तीसरी बात अकल के मुताबिक होना, चौथी बात किस्सा कहानी से बरी होना, पाचवीं दुनियां के आगाज (प्रारम्भ) में होना चाहिए। छटे-किसी खास शख्स की तरफ मुखातिब न होना, सातवां-किताब की शक्ल में न होना, आठवां-कानूने कुदरत के मुताबिक होना, नौवां-किसी खास मुल्क की जुबान में न होना। ये मजमून मैंने कहा था-इसमें से आपने सिर्फ तीन बातों में चार-पांच व नौ पर आपने पूरी सम्मति ज़ाहिर नहीं की। बाकी से मेरा ख्याल है आप सहमत है। अब आप बतलावें कि आपको इस मयारे इलहाम (इलहाम का विस्तार) से पूरी सहमति है कि नहीं? अगर है तो आप कुरान और वेद को उनकी कसौटी से परखना शुरू करें और देखें कि वो उसके मुताबिक उतरते हैं या नहीं। जब तक कि ये ना हो जावे तक आपका इन सब विषयों पर कहना व्यर्थ है।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान बात ये थी कि मास्टर साहब ने इलहाम के मायने कहे थे, और प्रतिबन्ध लगाया था कि—"शुरू दुनियां से हो" फिर ये कहा था कि अकल के खिलाफ़ न हो, फिर ये कहा था कि उसमें भिन्नता न हो, इस तरह एक-दो क़ैदें(शर्तें)और लगाई थी, चूंके इलहाम की तारीफ़ बगैरा करने से आपकी ये गर्ज़ थी कि वेद का इलहामी होना साबित हो जावे, इसलिए मैंने पहली ही शर्त पर ऐतराज किया था, क्योंकि उसमें ये लिखा है कि—"तुमसे पहले जो हो चुके हैं उनकी चाल चलो" दूसरी शर्त ये थी कि "वो अकल के मुताबिक हो" इस पर मेरा ये सवाल था कि वेद के मुताबिक बकौल महर्षि स्वामी दयानन्दजी के ये जायज है कि कमजोर नुत्फ़ा (वीर्य) वाला अपनी औरत को इजाजत दे कि दूसरे से समागम करवा कर औलाद हासिल कर ले। जिसके असल मतलब को मास्टर जी मान गए। बाकी दामाद को दामाद कहना या अपनी लड़की के नुत्फ़ा (वीर्य) डालने वाला कहना इख्तलाफ़े लफ़्जी (शब्दों का हेर-फेर) है। जो अकलमन्दों के नजदीक निहायत कज़ (छोटा) है - आप उसका ख़ाविन्द कहें या नुत्फ़ा डालने वाला कहें! मुद्दा एक है। सत्यार्थ प्रकाश से साबित कर चुका हूं, जिसको मास्टर जी ने रद्द नहीं किया, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका बगैरा में स्वामी दयानन्द जी बड़े जोर से लिखते हैं, और आज तक ये मजहब आर्य समाज का ऐसा मशहूर है कि बच्चा-बच्चा जानता है इस पर ये कहना कि "नुत्फ़ा डलवाना साबित करो" शब्दों का हेर-फेर है। हां! पहले सवाल का जवाब मास्टर जी ने ये दिया था कि पहले बुजुर्गों से वो लोग मुराद हैं। कि जो सृष्टि के आरम्भ में फ़रमावें, मुखातिब इसके वो नहीं हैं, जो उनसे पीछे आवें। मगर आज दोस्तों के मशवरे से इस राय को बदला है। अब फ़रमाते हैं कि पहली दुनियां के बुजुर्ग मुराद हैं, मगर मैं बड़े प्रेम से प्रार्थना करता हूं कि ऐसा कलाम उस मौके पर किया जाता है, जिन बुजुर्गों को हमे जानते भी हों, जिन बुजुर्गों को हम जानते ही नहीं

उनकी चाल अख्तियार करने का हुकम देना अकल के खिलाफ़ है। पहले लोगों का क्या चाल-चलन था, वो क्या करते थे, उनका इल्म तकमील (पूर्ण) कैसे पहुंचा ? अगर वेद के ज़रिए से पहुंचा था तो मन्त्र बयान कीजिए, या दूसरा जरिया बयान कीजिए, साफ़ है कि तुम पहले बुजुर्गों की चाल चलो। ये साफ़ बता रहा है कि वेद ऐसे वक्त में लिखा गया है जबकि दुनियां की आबादी बहुत हो चुकी थी, दूसरा मन्त्र जो मैंने बयान किया था, जो लड़ाई-झगड़े के सम्बन्ध में था, उससे ये मतलब था कि ये मन्त्र ऐसे वक्त बतलाया गया है कि आर्यों की क़ौम का राज हो चुका था, उसको आपने छुआ तक नहीं, और इन्सानों की तरक्की इस हद तक हो चुकी थी कि आपस में लड़ाई-झगड़े भी हुए थे,

मुझे कतल करके, वो भोला सा कातिल, लगा कहने किसका ये ताजा लहु है ? ।
किसी ने कहा जिसका वो सर पड़ा है, कहा भूल जाने की मेरी खू है ॥

मेरे दोस्त भूल जाते हैं, मतलब को उलटा-पलटा करते हैं, वक्त जाया करते हैं। और फरमाते हैं कि—"कोई फिलास्फर दुनियां में ऐसा नहीं जो नकल का इबताल करें" आप जानते हैं कि मैं उनमें से हूं जो उसका बातिल करने वाला हूं। आपने मेरा "रिसालेहक़ प्रकाश" देखा है जिसका जवाब आज तक आर्य समाज से न बन पड़ा।

नाजुक कलाईयां मेरी तोड़े, अदु का दिल ।
मैं वो बला हूं, शीशे से पत्थर को तोड़ दूं ॥

सुनिए साहब ! जब कि स्वामी दयानन्द जी मानते हैं कि तीन पदार्थ अनादि हैं, "माद्दा, रुह, खुदा" यानि ईश्वर, जीव, प्रकृति, सफ़ा ५५७ पर मानते हैं कि जो चीज इतसाल से पैदा होती हैं वो अनादि नहीं होती। ये के आप फ़रमाएं कि दुनियां का सिलसिला खुदा के ज्ञान में इसका शुम्मार है या नहीं ? खुदा के इल्म में अगर उसका शुम्मार आ गया है तो मैं इस वक्त इन सबको एक साथ इक्ट्ठा करके इन सब पर मुरक्कब (मिश्रण) का आदेश लगाता हूं। जो बिल्कुल सही है। और स्वामी दयानन्द जी मानते हैं कि मुरक्कब, अनादि नहीं हो सकता, आप सबसे पहले इसको झूठा साबित करें। वक्त चूंके तंग है, ऐसी बड़ी दलील को सविस्तार बयान नहीं किया जा सकता। उनको अपने "रिसाले हक़ प्रकाश" का हवाला देता हूं कानून कुदरत के अनुसार की बहस आगे अभी तो अकल के खिलाफ़ पर ही वार्तालाप है, कि दूसरे के नुत्फे से पैदा शुदा लड़के को, अपना बनाना, वेद जायज समझता है। आप उसकी फिलासफी बतलावें। एक गुलफ़ाम (मासूम) बच्चे के वास्ते आर्य लोग इतने एतराज उठाते हैं, मगर नियोग नहीं छोड़ते।

दुश्मन की नजर दोस्त पे पिन्द आस्मां के जोर ।
क्या क्या मुसीबतें सहो-तेरे वास्ते ॥

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! सबरपरी और गुलफ़ाम के किस्सों को छोड़कर मैं असल मजमून की तरफ़ आता हूं। (१)—दौरे तसलसुल (समय का सिलसिलेवार गुजरना) को आपने एक जां (एक जगह) फ़र्ज करके मिश्रण का हुकम लगाया, एक तरफ तो समय का सिलसिलेवार आना और दूसरी तरफ़ आपका इसको एक जगह कर्तव्य मानकर मुरक्कब (मिश्रण) का हुकम लगाना ! पहली बात तो ये है कि भला इस फ़र्जी दलील की भी कोई मान्यता है ?

दौरे तसलसुल को एक जां मानना (सिलसिले को एक बताना) झूठ है। कुदरत में इसकी मिसाल ख्वा मिले या न मिले लेकिन हमारे मौलवी साहब सब कुछ फ़र्ज करेंगे यानि सभी कुछ बातों को मान लेंगे। अगर ये फ़र्ज किया जावे कि इस जगह में आदमी बैठे हुए नहीं, तो कहां तक ठीक है। क्या अभी फ़रजीयात का नाम आप फिलसफ़ा रखते हैं? खूब! अब तो सब कुछ फ़र्ज कर लें। और ६ हजार या १० हजार आदमियों को यह कहा जावे कि—ये एक भी नहीं, क्या ये बात सच्चे वाके के खिलाफ़ नहीं है? रही आपकी भ्रमिकता और कहानी। नियोग और मर्सिया-ख्वानी, क्या खूब होता अगर आप "मुता" का भी किस्सा और मर्सिया पढ़ देते! आपने पूछा कि खुदा के इल्म में इस सिलसिले का शुमार है या नहीं? इसका जवाब ये है कि जो चीज जैसी हो उसको वैसा जानना उसका इल्म कहलाता है। खुदा मौलवी साहब की तरह फ़र्ज नहीं करता। बल्कि दौरे तसलसुल को दौरे तसलसुल ही जानता है। फिर मुरक्कब का हुकम क्या? जो चीज अनादि है खुदा उसको भी अनादि जानता है। कभी फ़र्ज नहीं करता। असल बात ये है कि पहले इलहाम की तारीफ़ और उसकी शर्तें तय हो जावें और तारीफ़ के मुक्कमिल हो जाने पर ये देखा जावे कि आया कुरान या वेद इस तारीफ़ के मुताबिक इलहामी हैं या नहीं। और मौलवी साहब ये फ़रमावें कि इलहाम की शरायत में से वो किनको मानते हैं। और वो कौन से हैं? या ये कि पहले उस पर बहस की जावे। और उसके मुताबिक दोनों को परखना शुरू किया जावे। और इससे ज्यादा मैं अन्य कुछ नहीं कहना चाहता।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान! ग़ौर फरमायें!!

लाये इस बुत को इल्तजा करके।
कुफ्र को तोड़ा खुदा-खुदा करके॥

साहेबान! खुदा का शुक्र है कि कलाम संक्षिप्त हो गया, मगर आपने फ़रमाया कि खुदा ताला, तसलसुल को वैसा ही जानता हैं जैसा कि वो है। मौलवी साहब की तरह फ़र्ज नहीं करता, मैं भी मानता हूं कि खुदा हर एक चीज को ऐसा ही जानता है। जैसा कि वो है, खुदा अपनी मखलूक को मखलूक की हैसियत से जानता है या नहीं? कोई शय मखलूक की हैसियत से उसके इल्म से बाहर नहीं हो सकती। माबैद यह कुदरत का उन्होंने खुदा की जैसे के चाहिए थी क़दर न जानी, खुदा की मखलूक होकर उसके इल्म से बाहर नहीं हो सकती। बस! उसके इल्म में जो है उस पर मैं मुरक्कब (संयोग जन्म) का हुकम लगाता हूं। और जो मुरक्कब (संयोग जन्म) है वो हादिस (नाशवान) है। बस! सिलसिलए तसलसुल (अनवस्था दोष) का कहीं न रहा, मगर मेरे दोस्त ने चूंके छोड़ दिया, जिसको स्वामी दयानन्द जी भी मानते हैं, और पूछा है कि इलहाम की कौन-कौन सी शर्तें मानते हो, इसलिए मैं कहता हूं कि जिस-जिस मसले पर बहस करूंगा या कर रहा हूं वो खुद भी मालूम है कि मैं नहीं मानता मसलन! शुरू दुनियां में होना और बाद में न होना आपको मालूम है कि उसकी बाबत मेरा ख्याल क्या है। अब दूसरी बात! अकल के अनुसार हो, मैं मानता हूं कि अकल के मुताबिक हो। मगर वेद को नहीं मानता कि वो अकल के मुताबिक है। अगर हो तो नियोग को अकल के मुताबिक करके दिखा दो, इसको मामूली मर्सिया समझिए। ये वो मर्सिया नहीं है जो मूर्दों का पढ़ा जाता है। ये वो मर्सिया है कि जो जिन्दों को रुला रहा है और रुलाएगा, बाकी इलहाम के मुताल्लिक जितनी शर्तें आपने लगाई हैं अगर आप खुले शब्दों में यह कह दें कि मैं उसका सबूत

नहीं दे सकता तो मैं आपकी तरफ़ से मुबाहिसे का खात्मा समझूंगा। और खुद इलहाम के मायने बतलाकर कुरान का इलहामी होना साबित करूंगा। और ऐसे कहूंगा—

हम भी हैं सीना सपर, कातिल लगा जो हो सो हो।
आज देखें काट तेरी, अबरुए खमदार का॥

श्री मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी—

साहेबान! (१) मौलवी साहब ने दौरे तसलसुल का जिक्र करते हुए कहा—खुदा के बन्दों को बन्दे जानता है कि नहीं। (२) नियोग अकल के मुताबिक है कि नहीं, पहले के सम्बन्ध में, मैं मौलवी साहब से पूछता हूं कि मख़लूक की तारीफ़ क्या है? अब रहा सवाल दूसरा—जिसके मुताल्लिक में कहता हूं कि नियोग अकल के मुताबिक है। क्या बाद मरे हुए खाविन्द के एक बेवा का किसी रण्डूवे से जायज ताल्लुक करके औलाद पैदा करना अकल के खिलाफ़ है? अमरीका में ये सवाल उठ रहा है, कि तलाक शुदा औरत को दोबारा शादी की इजाजत न दी जावे। लेकिन वो औरत क्या करे? इस सवाल का पूर्ण रूपेण समाधान अभी तक नहीं सूझा, वो दिन दूर नहीं जब कि अमरीका में ये आरजी (अस्थायी) निश्चित शादी (नियोग) इस तरीके पर जारी हो जावे जैसा कि हिन्द में था। "**सांईस आफ न्यू लाइफ**" के लेखक डा० कामन साहब एम० डी० की किताब तलाक की बाबत देखिए, अगर मौलवी साहब हिन्दुओं को उकसाने की गर्ज से उसकी मुखालफ़त करें तो क्या ताज्जुब है? (३) मौलवी साहब कहते हैं कि मैं कोई शर्त नहीं बतलाऊंगा। सब कुछ मोहम्मिल (संदेहात्मक) ही रखूंगा, साहेबान। इन शब्दों पर ग़ौर कीजिए कि "कौन हक़ से गुरेंज करता है" मैं इतना कहना चाहता हूं कि जो इलहाम की शर्तें हैं उनमें से जिनको आप और हम पूर्ण रूपेण मानते हैं उन्हीं को आधार बनाकर वेद और कुरान की छान-बीन करें। और हमें मौका दीजिए कि फ़रीकेन की शर्तों के खिलाफ़ को नजरे अन्दाज करके पक्के सिद्धांत के अनुसार वेद या कुरान को इलहामी करार दे सकें। इस ढंग पर एक शर्त को लेकर एक मन्त्र वेद से और एक आयत कुरान से ली जावे और दोनों का मुकाबला करके दिखलाया जावे कि कौन से तरीके के अनुसार पूरी उतरती है और कौन सी नहीं? इस तरह पर दो-चार आयतों और मन्त्रों का मुकाबला करने के बाद खुद ही पता लग जावेगा कि कौन इलहामी है, वेद या कुरान?

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान! मास्टर साहब ने जो कुछ कहा आप लोगों ने सुना, मास्टर साहब ने वही किया जो उस्ताद का क़ौल (कथन) है—

मैं भी झुठा, मेरे दावे भी सरासर झूठे।
तुम्ही सच्चे सही, इस बात का झगड़ा क्या है?॥

मास्टर साहब ने अपनी शरायत का सबूत देने से खुले शब्दों में अपना पहलू बचाया। और कहा कि इख्तलाफ़े शरायत को छोड़ दो, बाकी झगड़ा क्या है? एक ही रह गया, उसकी बाबत शेर अर्ज है—

लगा रहने दे झगड़े को यार तू बाकी।
रुके हैं हाथ, अभी है, रगे गुलू बाकी॥

अगर आप इन शरायत को साबित नहीं कर सके तो बस आपका शुक्रिया अदा करके एक शर्त पेश करता हूं। जो फ़रीकेन की मुस्लिमा है, लाइये वेद और कुरान का मुकाबिला कीजिए, आपने ये बात मान ली है कि इलहाम खास मुस्तहिक बन्दों पर होता है उनकी विशेषता और उनके क्रिया कलाप किसी विशेषता के साथ बन्धे हुए हों। यानि इलहामी किताब के लाने वाले के हालात हम तक सही-सही पहुंचे हों, ताकि हम राय कायम कर सकें कि वो कैसे थे ? इलहाम का दावा करने से क्या गर्ज़ थी, मुलहिम की सवाने ऊमरी (जीवनी) यानि कौन था, नेक था या बद था ? दीनदार था या बेदीनदार था ? उसके हालात का हमें ज्ञान हो, जब तक उसका ज्ञान हमें न होगा तो हम राय (सम्मति) नहीं दे सकते। एक व्यक्ति जो तुमको सुनाता है कि मैं खुदा की तरफ़ से पैगम्बर या ऋषि बन कर आया हूं। हमारा फ़र्ज है कि हम उसके हालात को जांचे, पेशतर इसके कि हम उसके हालात की इत्तला चाहें, क्योंकर राय कायम कर सकते हैं ? कि बस ! इस मसले शरायत पर दस्तख़त कीजिए, और खुले शब्दों में बयान कीजिए कि ये शर्त जो आपकी पक्की है उस वक्त भी आपको मान्य है। आपने जो मुझ पर सवाल किया कि मखलूक किसको कहते हैं ? अब इसकी वही मिसाल है कि एक पण्डित जी ने किसी से कहा था कि भाई सन्ध्या किया करो, उसने कहा कि तुम्हारे बाप ने दावत की थी तो नमक ज्यादा डाल दिया था। पण्डित जी इस बात का मेरी बात से क्या ताल्लुक ! इसलिए कहा कि बात से बात निकल आती है। यही हाल हमारे दोस्त मास्टर साहब जी का है कि बात से बात को पैदा करते हैं। आप मखलूक उसको कहते हैं कि माद्दे (मैटर) का जोड़-जोड़कर पैदा कर दिए हैं। उसी को माने लेता हूं मखलूक ! वही है जिस पर खुदा के फ़ैल ख़ल्क (दुनियावी कार्य) का असर पहुंचा हो। और वो उसके फ़ैलखल्क से प्रभावित होकर मौजूद होवे। अमरीका के डाक्टर का नियोग को अच्छा कहना मेरे लिए प्रमाण नहीं। मुमकिन है कि वो गोश्तखोरी को भी अच्छा कहें। तसलीस (पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा) को भी अच्छा कहें। उन्होंने जिस दलील से माना है वो दलील पेश करो। योरुप के अविष्कार व फिलसफ़े ने जिनके दिमागों पर असर किया है। वो उन दलीलों को मानेंगे। परन्तु हम तो वे दलील सिर्फ किसी बड़े आदमी की तरह से मानेंगे। जबकि आपके कथनानुसार गोश्त खोरी (मांस खाना) अकल के ख़िलाफ है तो योरुप के तमाम डाक्टर गोश्तखोर है, अगर कोई वैजीटेरीयन है तो वो इससे ज्यादा नहीं कि उनका शुमार हाथ की उंगलियों पर हो सकता है। आप नियोग को न तो अकल से साबित कर सके, और न अपनी शरायत इलहाम को साबित कर सके। तो बस ! मेरी मुसल्लिमा शर्त पर दस्तख़त कीजिए, और मुकाबले पर आइए।

९ जून सन् १९०४ का मुबाहिसा आरम्भ—

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! कल के पर्चे में मौलवी साहब ने फ़रमाया था कि आप मख़लूक उसको कहते हैं कि जो माद्दे को जोड़-जाड़ कर पैदा की जावे, और मैं इसी को माने लेता हूं। तारीफ़ मुकम्मिल नहीं की आप माने लेते हैं, मैं भी माने लेता हूं। ये तारीफ़ नहीं है, साथ ही आप कहते हैं कि मखलूक वो चीज है कि जिस पर खुदा के फ़ैल ख़ल्क का असर हो। मौलवी साहब के इस बयान में दो भिन्न बातें हैं। अगर पहला हिस्सा सही है। तो हम ये मानते हैं। कि नेस्ती से हस्ती (बिना कारण के कार्य) नहीं होती। अगर दूसरा हिस्सा सही है तो वो मसलये मुसलमानी कायम रहता है। जिस पर जुमला उलमाये इस्लाम (इस्लाम के विद्वान) सहमत हैं। कि नेस्ती से हस्ती

होती है। अगर ये दलील सही नहीं है— तो मौलवी साहब इसका विश्लेषण करें। और बतलायें कि नेस्ती से हस्ती के मुसलमानी मसले को मानते हैं या हमारे मसले को ? जो उसके ख़िलाफ़ है। अगर मख़लूक की तारीफ़ करने में ख़ल्क़ वग़ैरा के शब्द इस्तेमाल करना ज़ाहिर करता है, कि आप उसकी तारीफ़ नहीं कर सकते। जिस लफ़ज की तारीफ़ की जावे उसमें दो लफ़्ज नहीं आने चाहिए। (2) मौलवी साहब कहते हैं कि पक्की शर्त पर हस्ताक्षर कीजिए, पक्की शर्त और हस्ताक्षर के क्या मायने ? मौलवी साहब फ़रमाते हैं, कि अगर आप उन शर्तों को साबित नहीं करते, लीजिए मैं एक नई शर्त पेश करता हूं। जो मुस्लिमा फ़रीकेन है यानी मुलहिम के जिन्दगी के हालत का मालूम होना जरूरी है। अगर ये शर्त मुसल्लिमा फ़रीकेन है तो मौलवी साहब बतलायें कि किस पर्चे में हमने या आपने इस शर्त का जिकर किया है ? अगर सिर्फ इसी बात से कि इलहाम सिर्फ़ हक़दार बन्दों पर होता है, के मौलवी साहब ने स्वीकार कर लिया है कि मुलहिम की जिन्दगी के हालात मालूम होने चाहिए। तो मैं नहीं समझता कि कहां मैंने या आपने मुलहिम की जिन्दगी का दर्याफ्त करना शर्त करार दिया है ? अगर नहीं है तो मुस्सल्लिमा क्यों कहे जाते ? और मुकालता देते हैं बस ये शर्त आपकी नई है। बावजूद नई होने के भी ये माकूल होती तो मुझे मान लेने में इन्कार न था, लेकिन ये शर्त अकल के खिलाफ़ है। आप फ़रमाते हैं कि मुलहिम की जिन्दगी के हालात मालूम होने चाहिए, कि वो नेक था या बद ? उस पर ऐतराज यह है कि कोई मुलहिम बग़ैर मदद इलहाम के नेक किस तरह हो सकता है ? अगर हो सकता है तो इलहाम की कतई जरूरत नहीं हो सकती, अगर ये कहो कि वो गुमराह था, और उसको इलहाम हुआ, तो मालूम हुआ कि गुमराह को भी इलहाम हो सकता है। जो बात ठीक नहीं हो सकती लिहाजा ये शर्त नहीं हो सकती अमरीका के डाक्टर साहब का कथन नियोग के दावे के सबूत में नहीं दिया बल्कि तसदीक दिया था, अगर बदतहज़ीबी के शब्द निकाल डाले जावें तो मसला नियोग सिर्फ ये रह जाता है कि औरत के लिए दूसरा ख़ाविन्द ज़ायज़ तरीकें और जरूरी शर्तों के साथ कराया ज़ावे। इसमें कौन सी बात अकल के खिलाफ है ? जो आपने ये फरमाया था कि ग़ैर के नुत्फ़े (वीर्य) से बेटा पैदा करा कर अपना बना लो, ये अलफ़ाज (शब्द) तो आपने बावजूद मेरे बार-बार ललकार कर कहने के वेद मन्त्र या किसी उर्दू तर्जुमे से भी नहीं दिखलाये। "हलाला-मुता-अजल वो कसरते अज्दवाज़" के मुताल्लिक कोई दलायल माकूल देते। अपने मज़मून से खारिज़ एक नई बहस गोश्त खोरी की पेश की, अमरीका और इंग्लिस्तान के आला डाक्टर गोशतखोर नहीं हैं। उनकी कम तादाद बतलाकर आपने गलत नतीजा निकाला कि गोश्त खोरी अच्छी है। जो ये नतीजा नही निकल सकता क्योंकि दुनिया में बुतपरस्त (मुर्तिपूजक) ज्यादा हैं। क्या बुतपरस्ती भी अच्छी है ? बहुत मत (बड़ी संख्या) होने से किसी मसले के दुरुस्त या गलत होने का फैसला नहीं किया जाता बल्कि माक़ूल दलायल से किया जाता है।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

खुदा के नाम से शुरू और उसके नेक बन्दों पर सलाम ! साहेबान ! कल मास्टर साहब ने ये फ़रमाया था कि कोई मुस्सल्लिमा (पक्की) शर्त पेश करो, ताकि कुरान और वेद को जांच लिया जावे। इस पर मैंने इस ख्याल से कि आपने मुस्तहिक व खास बन्दों की क़ैद लगाई है, और फिर ज़ाहिर है कि खास और नेक होना नेक कर्मों से हुआ करता है। लेकिन चूंके खुदा का किसी से रिश्ता नहीं है कि कोई उसका भाई भतीजा बेटा जिसकी बनिस्वत और लोगों की खसूसियत (विशेषता) हो। और उनको आर्य समाज नहीं मानता है, अब वो खास मुस्तहिक क्यों था ? सम्भवतः नेक कामों से बना जिसका मालूम होना जरूर है। अब मैंने कौन सी बात नई कह दी—

बहाना करता है साकिया, क्या नहीं है शीशे में मय का कतरा बाकी ॥
खुदा ने चाहा तो देख लेंगे तेरे सू भी नहीं रहेगा ॥

लावें तो कहां से लावें कि वेद के मुलहिम कौन थे ? कोई पता नहीं कि वेद के मुलहिम कहां के थे ? हिन्दुओं के खिलाफ़ जो आप या ऋषि चार वेदों को मानते हैं। और हिन्दू (सनातनी) कहते हैं कि ब्रह्माजी पर चारों वेद उतरे। और आर्य समाज चार ऋषियों पर चारों वेदों का उतरना मानता है। और ये भी स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि ऋग्वेद, अग्नि ऋषि पर उतरा, बस इसका सबूत वेद से दीजिए। कुरान लिखता है, "मोहम्मदरसूलल्लिल्लाह" यानी मोहम्मद अल्लाह का रसूल है। जिन पर कुरान शरीफ़ उतरा। इनसे मुकाबला कीजिए। पहले ये बतलाना आपका फ़र्ज था कि वो बन्दे खास कैसे हो गये ? दूसरा ये था कि आप ये बतलायें कि फलां वेद फलाँ ऋषि पर नाज़िल हुआ। और इसका सबूत वेद से देते और अब ये बतलाते कि खास कामों की विशेषता उनमें किन कामों की वजह से पैदा हुई? मगर इसका क्या इलाज! कि आप कल की तरह रंगत बदल गये।

हमकुशा तेरी नाज के हैं, याद रहे।
ओ ! जमाने की तरह रंग बदलने वाले ॥

हम तो चाहते थे कि समाज की ही तरफ़ से जवाब आवेगा, अफ़सोस नहीं बल्कि खुशी है कि मेरा तजुर्बा सही साबित हुआ, आप खुले तौर से पब्लिक में कहिए कि चार मुंह वाले ब्रह्मा पर वेद नाजिल नहीं हुए। बल्कि अग्नि, वायु, वगैरा पर नाज़िल हुए। जिनकी जिन्दगी के हालात ये हैं, ये कहा गया है कि नेक होना इलहाम से पहले कैसा ? इसका जवाब ये है, कि खुद सोचकर ये शर्त लगानी चाहिए थी, मेरा सवाल तो ये है तो खसूसीयत वो इस्तक़ाक़ (सत्यता की विशेषता) की। जिसका प्रतिबन्ध खुद आपने लगाया है। जो के बगैर कर्मों के नहीं हो सकती। इसलिए उनका फर्ज है कि वो अमल बतलायें, हां जब आप उस पर कोई जवाब नहीं दे सकेंगे तब मैं आपको बतलाऊंगा कि मुलहिम नेक ऐमाल क्योंकर होते हैं ? पहले इलहाम के होने में या पीछे ! मगर आपका ये लफ़्ज के वो खसूसियत व इस्तकाक की वजह से मुलहिम होते हैं, इसकी व्याख्या करना आपका कर्तव्य है। आप बार-बार मुता का जिकर करते हैं। आप ये बतलायें कि नियोग व मुता में क्या अन्तर है ? ये वही बात है कि संध्या करने की सूरत में ये कहना कि तेरे बाप ने नमक ज्यादा डाला था, जैसे मैंने बयान किया था कि नियोग क्या है ? अर्थात् ख़ाविन्द का अपनी औरत को दूसरे से बेटा लेने की इजाजत देना, और सत्यार्थ प्रकाश सफ़ा १५६ वह बेटा उस शख्स का जिसकी असली बीबी है, उसका जायज वारिस करार दिया जाता है। मुता—गो मुख्तलिफ किस्म का मसला है, मेरी इसके मुत्तल्लिक कुछ भी राय हो, मगर आपको बतलाना चाहिए कि, मुता—अजल वगैरा की क्या तारीफ है ? और उसका नियोग से क्या मुकाबला ? आप कहते हैं कि नियोग क्या है ? औरत को दूसरा ख़ाविन्द करार देना। जो पहले ख़ाविन्द की जिन्दगी में करा दिया जाता हैं। जिन्ना-बमन दूसरा खाविन्द कराने पर सात साल की क़ैद ताज़िराते हिन्द में मुकर्रिर है। व औरत को दूसरा ख़ाविन्द करा देना अंग्रेजी अमलदारी क्योंकर हो सकता है ? आपने मुझसे मखलूक (सृष्टि) के मायने पूछे हैं। मखलूक, मफ़ऊल का सीगा (विभक्ति या वचन) है। आप ख़लक के मायने कर दें कि ख़लक क्या चीज है ? जो खुदा का मुखल (बनाया हुआ) है। मख़लूक अपने आप मालूम हो जावेगा। आप कहते हैं कि बुत परस्तों की तादाद ज्यादा है। आपको उनसे अदावत हो तो हो, हमें इससे क्या ? अलबत्ता स्वामी जी कहते हैं कि जिस मजहब को करोड़ों मानते हैं उसको झूठा कहना खुद झूठा बनना है। अगर आप बुत परस्तों को झूठे कहेंगे, आप खुद बकौल स्वामी जी के खुद झूठे बनेंगे। बस आप मुलहिम की लाइफ़ (जीवनी) बतलावें कि वे कैसे थे नेक या बद ? ताकि पब्लिक और हम फैसला दे सकें।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! मौलवी साहब ने तकरीर फ़रमाई, इसमें पहली बात यह थी कि इलहाम के लिए अधिकारी बन्दे क्यों होते हैं ? जनाबेमन् खुदा खूब जानता है कि क्यों वह मुस्तहिक़ (अधिकारी) हैं ? खुदा रहस्य की बातों को जानने वाला तथा सर्वज्ञ है। उसको इलहाम नाज़िल करना है । इसलिए यह उसका फर्ज है कि वह मुस्तहिक बन्दों की जान ले। हमारे-आपके जानने की जरूरत नहीं है। अगर हमने किसी को खैरात देनी है तो यह जानना जरूरी है कि वह मुस्तहिक है या नहीं। न कि हमारे पड़ौसी को। इसी तरह से इलहाम का मुस्तहिक जानना खुदा का फर्ज होना चाहिए। न कि उसके मौजूदा और बाद की नस्लों का। अगर खुदा नहीं जानता तो खुदा की हमा-दानी (सर्वज्ञता) और आदिल (न्यायकारी) होने पर सख्त धब्बा आता है । मौलवी साहब फ़रमाते हैं कि मुलहिम की जिन्दगी के हालात मालूम होने चाहिए। मैंने उस पर कहा था कि मुलहिम की जिन्दगी के हालात इलहाम की सदाकत का आधार नहीं हो सकते। क्योंकि उस पर ये सवाल होगा कि आया मुलहिम नेक था या बद ? अगर नेक था तो किस तरह वगैर इलहाम के हो गया ? अगर बद था तो हर एक बद शख्स को इलहाम होना चाहिए, जिन्दगी के हालात बगैर इलहाम के पैदा नहीं हो सकते। इलहाम हमलाते जिन्दगी से पहले होता है । इसलिए ये शर्त ठीक नहीं। आप इसका जवाब दीजिए । (१) मैं अदब से प्रार्थना करता हूं कि आप इसको अनदेखी न करें, (२) मौलवी साहब का ये कहना कि हिन्दू अग्नि आदि को नहीं जानते बल्कि चार मुख वाले ब्रह्मा को मानते हैं। आप इनके खिलाफ़ मानते हैं । ये गलत है । क्योंकि ब्रह्मा इन चार ऋषियों के अव्वल शागिर्द का नाम था। और इन मायनों में ब्रह्मा को आदि देव कहा जाता है। ये सवाल फ़ुरसत के हैं। इनके कहने का ये मौका नहीं है। जब समय आएगा तो जवाब दिया जावेगा। सिद्धांत में हमारा कोई आपस में मतभेद नहीं है। क्योंकि जिन शास्त्रों के मन्तकों से हम मानते हैं उनसे उनको भी इन्कार नहीं। मगर ये सब गड़बड़झाला में गलती फैल रही है। (३) मौलवी साहब फरमाते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश के सफा १५६ पर जो असल खाविन्द का वारिस जायज करार दिया जावे वगैरा ये लफज नहीं है। प्रार्थना करता हूं कि आप जरूर बतलावें कि ये किस वेद मन्त्र का तर्जुमा है ? आप इस जगह ऋषियों की राय पेश करके सवाल करना चाहते हैं या वेद मन्त्रों पर ऐतराज करते हैं ? रहा आप ये के खाविन्द की जिन्दगी में नियोग पर ऐतराज करते हैं। वाजे हो के एक नौ जवान औरत जिसके खाविन्द को नासूर की बिमारी हो, और वो औरत अपने इन्द्रियों पर काबू न पा सके तो ऐसी हालत में उसके दूसरे खाविन्द करने पर आपको क्या ऐतराज है ? क्या आप ये चाहते हैं कि वो औरत गुप्त रूप से दुराचार करती रहे । खाविन्द से इजाजत लेना और इजाजत देने वाले को आपका बुरा कहना ये अजीब बात है। ताजीराते हिन्द का आपने खूब हवाला दिया ! क्या आप ताजीराते हिन्द को इलहामी किताब की बराबर या उससे बढ़िया मानते हैं ? अगर तरेपन साला शख्स नौ बरस की लड़की से उस लड़की को बिना देखे-भाले उससे शादी करे तो क्या ताजीराते हिन्द की रू से काले पानी की सज़ा उसे न होगी ? नेस्ती (अभाव) से हस्ती (भाव) के मसले पर आपने अजीब खामोशी अख्तियार की है। जनाब ! क्यों नहीं कहते कि हम अभाव से भाव का होना मानते हैं या नहीं ? या इस्लाम के बहुत से विद्वानों के विरुद्ध हमारी तरह इल्मों अकल के मुताबिक ये कहते कि नेस्ती से हस्ती नहीं हो सकती, अर्थात् नापेद से पैदा नहीं हो सकता या यूं कहिए कि अभाव से भाव नहीं हो सकता।

नेस्ती से हस्ती का न होना ज़ाहिर करते हुए क्यों डरते हो ! मौलवी साहब ने सृष्टि की तारीफ की, वो सरासर अशुद्ध है। ये तो वो बात हुई कि जैसे कोई इन्सान की तारीफ करें और कहें कि इन्सान वो है जिसमें इन्सानियत हो, क्या ये तारीफ कभी मुकम्मिल कहला सकती है ? महर्षि दयानन्द जी का ये कहना कि जिस धर्म को सैकड़ों दुरुस्त मानते हों ! ये फ़िकरा आपने गलत कहा, क्योंकि आपको धर्म और मजहब में भेद मालुम नहीं

धर्म सच्चाई को कहते हैं। बस ! अगर सच्चाई के मानने वाले बहुत हों तो उसके खिलाफ मानने वाला दुरुस्त नहीं हो सकता। "**नास्ति सत्यात् परोधर्मः**" अर्थात् सच से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। आखिर में बुत परस्तों से आप हमारी अदावत (दुश्मनी) बताते हैं। आपको ही बुत परस्ती (मूर्ति पूजा) से प्यार मुबारिक रहे।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान ! बहरहाल अब तो ये फैसला बिल्कुल हो गया। और ये कोई मामूली बात नहीं है कि मैं बार-बार कहूं कि फैसला हो गया, और आप खुद समझ लें, कि वाकई फैसला हो गया, और खुदा का शुक्र है कि हमारी मेहनत ठिकाने लगी। शुरु से बहस इसी पर थी कि इलहाम वही होता है जो सृष्टि के आरम्भ से हो। इस पर जो वेद मन्त्र मैंने पेश किया उसके सम्बन्ध में कैसे-कैसे पाकीज़ा ख्यालात् आपने पेश किए ? अब जो नियोग का मसला पेश हुआ कि अकल के ये खिलाफ़ है। जिससे मेरा सवाल ये था कि दूसरे के नुत्फे (वीर्य) से पैदा हुआ बच्चा पहले शख्स का जायज वारिस क्योंकर हो सकता है ? और इसका ये हवाला सत्यार्थ प्रकाश से दिया था, मगर आज एक आर्य समाज के लायक मेम्बर से ये सुनने में आया है कि ऋषियों की राय हम नहीं चाहते। वेद का मन्त्र बतलायें।

मैं फाट दूं पहाड़ को, पत्थर को तोड़ दूं।
पर क्यूं कर खन्जर से, बुत काफिर को तोड़ दूं॥

बहरहाल मेरा फ़र्ज है कि मैं नियोग के मुतल्लक आपको वेद मन्त्र का तर्जुमा बतला दूं। "**परमेश्वर आज्ञा देता है कि जो औलाद इस तरह से पैदा होगी वो तेरे असली पति को होगी**" सत्यार्थ प्रकाश में पृष्ठ संख्या १५४ में स्वामी दयानन्द ने साफ़ कहा है "**ऐ नेक बख्त औलाद की ख्वाहिश करने वाली औरत तू मेरे सिवाय दूसरे खाविन्द की ख्वाहिश कर**" इन दोनों बातों को मिलाकर देख लीजिए कि नतीजा क्या है ? दूसरे के पैदा शुदा बच्चे को उस असली महाशय का बच्चा कहना कौन-सी अकल की बात है ? इलहाम की तारीफ़ मैंने आपसे खुद मांगी है कि हम नेक हों, मगर हमें क्या जरूरत ! खुदा जाने, वो जाने, खुदा को मालूम है कि वो नेक हैं या बद ! पब्लिक मालूम कर सकती है कि उनको नेक होना चाहिए, रहा ये कि खुदा जाने हमें क्या मालूम, कहेंगे वही कि वेद पर अमल करें, वही नियोग कराएं। हमें इससे क्या ? जब वो हुकम देता है कि वेद पर अमल करो, और मैं बगैर नेक अमलों के ऋषि नहीं बनाता, अगर हम वेदों के पाबन्द हैं तो हमारा यही फर्ज है कि मुलहिमों के हालात दर्याफ़त करें। अगर वो वेद के पाबन्द हैं तो वो जाने। हां ! कुदरती कानून में हमारा हक़ नहीं। बारिश जब चाहे करे, आंधी जब चाहे चलाए। लेकिन जब हमें कहा जाएगा कि फलां किताब के पाबन्द हो, वो भी खासकर ऐसे मौके पर कि जब इलहामी किताबें लड़ रही हैं, कि हम इलहामी हैं। इन्जील अलग कहती है, और कुरान तो मैदान में ललकार रहा है और वेद यही कह रहा है कि मैं इलहामी हूं। ये तो वही मिसाल हुई कि—"हमें चार दुकानों से एक पैसे का सौदा लेना है, जहां से खरा मिलेगा वहीं से लेंगे" आप कहते हैं कि हिन्दुओं से हमारा परिचय है, अच्छा सही—"**चश्म मा रोशन, दिलेमाशाद**" और आप जानें। और लाला नन्दकिशोर व तुम्हारी धर्म सभा जानें ! हमारी यही आंखें वो खुद पाबन्द हैं तो हमें भी उनके हालात मालूम करने से कुछ गर्ज नहीं। अगर वो हमें कहेगा कि मानों तो हम भी पूछने का हक़ रखते हैं। वरना आप भी कुरान को मान लें। ताज़ीराते हिन्द की मातहत हिन्दी हैं दूसरे मुलक के नहीं, बस संक्षेप में मेरा कहना ये है कि आप इलहामियों के हालात बतलायें। अग्नि कौन

था ? वायु कौन था तथा इन्द्र कौन था ? दूसरे साहब कौन थे ? इनके चाल-चलन कैसे थे ? बहिस्त में या दोजख़ में हम देखना चाहते हैं कि वो कैसे थे ? जब आप मान गए कि वो नेक थे तो उनकी ज़िन्दगी के हालात बतलायें ? ओर खुदा हमें वेदों का पाबन्द नही करता ।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! मौलवी साहब कहते हैं कि फैसला हो गया, तो आपको मानना चाहिए कि फैसला हो गया, और असल में हुआ नहीं है । लो अब होने वाला है । क्योंकि नेस्ती (अभाव) से हस्ती (भाव) नहीं होती जैसा-कि आर्य समाज मानता है । अगर मौलवी साहब इसको मानते जैसा कि वो कहते हैं, हम मानते हैं, तो साफ कह दीजिए की नेस्ती से हस्ती नहीं होती । फिर तो फैसला हो चुका, लेकिन चूंके मुसलमानी मत के सभी विद्वान इस मसले के खिलाफ़ हैं और खुद कुरान में लिखा है, खुदा ने कहा कि—'हो जा" और वो "हो गए" क्या मौलवी साहब ये मसला अकल के खिलाफ है या नहीं? किसको कहा और कौन हो गया? आप कहते हैं कि ख़ल्क की तारीफ़ आप ही करलो इससे मुराद ये है कि वो कोई तारीफ़ नहीं कर सकते, अजब मुश्किल का सामना है, माकूलियत इस तरफ़ है जुबान मौलवी साहब की बन्द हो रही है, सच है, क्या कहें, मुलहिम की जिन्दगी के हालात को इलहाम से ताल्लुक क्या है ? इसको साबित क़रके मौलवी साहब दिखलावें, क्योंकि इलहाम अगर नेक को होता है तो मेरा दावा ये है कि बग़ैर इलहाम के नेक कोई हो ही नही सकता । अगर बद को होता है तो हर एक बद को को होना चाहिए, मौलवी साहब कहते हैं कि मास्टर साहब मान गए, ये आपकी भूल है, मैंने तो ये कहा था कि खुदा मुस्तहिक को जानता है । लेकिन अगर आप ये कहते कि मुलहिम के ऐमाल (आचरण) नेक थे तो सूरत उनसहा में लिखा है कि हज़रत मौहम्मद साहब गुमराह थे, तो—दो या तीन विरुद्ध बातें हो नहीं सकती । खुदा जाने और अमल करने का भी लतीफ़ा आपने खूब कहा, ये तो वो बात हुई कि जो सवाल करे वही जवाब दे । आगे मौलवी साहब फ़रमाते हैं कि इलहामी किताबों का बजार लगा हुआ है । बाईबिल, कुरान, वेद, वग़ैरा सब इलहाम का दावा रखते हैं, हम किसको माने ? लो जनाबेमन् अब आप अकल से परख कर मानिए जो अकल के मुताबिक न हो उसको दावा करने पर भी झूठा समझें, झूठें इश्तहार बाजों की तरह नेस्ती से हस्ती का जो मसला है, आइए अव्वल (पहले) उसी पर बहस करें । और देखे आया रुह, माद्दा, खुदा, (ईश्वर, जीव, प्रकृति) ये तीन चीजें अनादि ठहरती हैं या महज खुदा ? इससे सब मसाईल का खुद ही फैसला हो जावेगा । क्योंकि मसाईल उनकी आदत में से हैं, आगे आपका ये फ़रमाना ताज़ीराते हिन्द अरबी मुल्क के लिए नहीं है, डाक्टरों का हवाला देकर मज़ाक उड़ाया जाता था अब आप बतलावें कि पीर साला (वृद्ध) शख्स (व्यक्ति) से नाबालिग़ लड़की की शादी कराना कुरानी मसले के क्योंकर इलमो व अक्ल के मुताबिक है ? ये हमें आज ही मालूम हुआ कि कुरान की रु से बाल विवाह या सग़ीर सनि की शादी जायज़ है । आगे नियोग के मुताल्लिक जो तर्जुमा आप पेश करते हैं वो असल मन्त्र का लफ़्ज़ी तर्जुमा नहीं, स्वामी जी के तर्जुमे से इबारत पेश कीजिए, और शौक से जवाब लीजिए, रहा आपका ये कहना कि मूता और कसरत अजदवाज़ की तारीफ़ आप ही करें अजीब बात है, पहले नियोग की तारीफ हमसे लीजिए और उनकी आप कीजिए, अगर आपको उन लफजों की तारीफ मालूम नहीं या कुरान में है तो साफ कह दीजिए अगर नहीं लिखी तो क्यों नहीं कहते ? मौलवी साहब एक-एक मसले को लीजिए और उस पर बहस कीजिए । आर्य समाज का अहम मसला जीव, ईश्वर, व प्रकृति का अनादित्व है, क्यों नहीं आप उस पर बहस करते ? ताकि हमारे और आपके बीच के मतभेद दूर हों । और फ़रुआत सब पीछे आ जावेंगे ।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब -

हज़रात ! मास्टर जी की किन-किन उलझी हुई बातों को सुलझाऊं—"**बनें क्योंकर ? है सबकार उलटा**" हम उलटे, बात उलटी, यार उलटा, कभी तो आप मान जाते हैं कि इलहामियों के हालात नेक होने चाहिए। अभी आपने फ़रमाया था कि ब्राह्मण ग्रन्थ मेरे पास मौजूद है, हम बतलायेंगे कि हमारे इलहामी कैसे हैं ? मैं बहुत खुश हुआ था कि मेरी मुराद पूरी हुई। मगर अब देखता हूं कि आप इन्कार पर आमादा हो गए।

विसाले यार सैर हो; किस तरह जामन।
हमेशा घात में रहता है, आस्मां सैय्याद ॥

आप लोगों को मालूम हो कि मुबाहिसा इस बात पर था कि वेद इलहामी हैं या कुरान शरीफ़ ? अब झगड़ा हो गया कि नेस्ती से हस्ती (अभाव से भाव) है या नहीं ? आप कहते हैं कि फ़रुआत को छोड़ो, ये तो वही मिसाल हुई कि एक शख्स को किसी से सौ रुपया लेने हैं, दावा भी है, और गवाह भी उसी के, अब वो कहता है उठाइए इसी पर फैसला है कि मैं तेरी सहादत को गया था, बस ! इसी पर फैसला है, झगड़ा तो ये है कि वेद को आपने कहा था कि वो इब्तदाई (आरम्भ से) है। जिस पर मैंने वो मन्त्र पेश किया था, जो मन्त्र की तरह असर कर गया, फिर ये झगड़ा चला कि "**अकल के मुताबिक है**" इस पर मैंने नियोग का मसला पेश किया, स्वामी दयानन्द जी की किताब सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के तर्जुमों से बता दिया था। अब आप कहते हैं कि—हम इन तर्जुमों के जिम्मेदार नहीं हैं आप कह दें कि मेरा मजहब हर्गिज नहीं, और आर्य समाज इसे हर्गिज नहीं मानता कि वो बच्चा नियोग का पैदा हुआ किसी हाल में असली खाविन्द का होगा। अगर स्वामी जी ने लिखा है तो कह दें कि गलत लिखा है। वेद में उनकी कोई तालीम नहीं। फिर आप देखेंगे कि आप आर्य समाज में किस मर्तबा पर बैठेंगे ? आप ये बात असूलन तो मानते नहीं कि इलहामियों के हालात मालूम हों और सुरह अलफ़ी का ज़िकर छेड़ दिया आप खुशी से सुरह अलफ़ी पढ़ें, और खुदा वो दिन दिखलाए, कि हम आर्य समाज के मुंह से कुरान शरीफ़ पढ़ते हुए सुनें। अभी तो ये फैसला बाकी है कि इलहामियों के हालात मालूम होना जरूरी है, फिर इसके बाद कहते हैं कि अग्नि ऐसे थे, वायु ऐसे थे, फिर हम भी बतायेंगे कि हमारे मुलहिम कैसे थे ? अभी असली बात बाकी है कि झगड़ा इसी बीच आपने दूसरा भी छेड़ दिया, आप सुरह अलफ़ी से अपने पास महफ़ूज़ (सुरक्षित) रखिए। मगर पहले ये मान लीजिए, कि इलहामियों का हाल मालूम करना जरूर हैं। अग्नि कौन थे ? वायु कौन थे ? अगर आप कहें कि नेस्ती से हस्ती का झगड़ा है तो इश्तहार मौजूद है। देख लीजिए, मतलब तो ये है कि कुरान इलहामी है या वेद ? अगर नेस्ती से हस्ती का होना अकल के खिलाफ़ है, तो जब मैं कुरान को अकल के मुताबिक करने को खड़ा हूंगा तो आप उसको पेश करें। सरेदस्त (फिलहाल) ये बतायें कि वो मुलहिम कौन थे ? ताकि हम भी देखें कि क्या थे ? आप फिर कहते हैं कुदरती कसौटी "**अकल**" है क्या ये अकल का तकाजा नहीं ? कि एक दूसरे मुल्क का शख्स कहता है, कि मैं ऋषि हूं या नबी ! हमारी अकल कहेगी या नहीं कि हम उसके हालात देखें, आप खुद अकल के बर्खिलाफ कह रहे हैं। आप साफ बतायें कि आपके मुलहिम कौन थे ? कैसे थे ? वर्ना ये कह दें कि हमने सिर्फ अपने बाप-दादों से सुना है, कि वेद इलहामी किताब है। इसलिए हमने ये ही मान लिया, आर्य समाज का ये कहना कि जहां पहुचेगा वहां वेद का झण्डा पहले फहराएगा। ये एक मामूली बात है। पहले जो ये कहा है कि आप इलहामियों के हालात बतलायें आपने फ़रमाया था कि हम ब्राह्मण ग्रन्थों से बतलायेगे। तो बतलाइए ? हम ऐसे इलहामियों को तभी मानेंगे जब आपके हालात मालूम हो जायेंगे।

या ये मान लें कि हमारे पास उनके हालात नहीं। जब आप बतलायेंगे कि हमारे अग्नि ऋषि के ये हालात हैं तो हम अपने पैगम्बर के हालात बतलायेंगे।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

मौलवी साहब ने बड़ा भारी पब्लिक को भ्रम में डाला है कि मास्टर साहब स्वामी दयानन्द जी का अनुवाद नहीं मानते। मेरा मतलब सिर्फ ये था कि कोई उर्दू तर्जुमा बहस में सनन्द नहीं लाया जा सकता। मौलवी साहब ! क्या मैंने यह नहीं कहा था कि महर्षि स्वामी दयानन्द जी के तर्जुमा के मुकाबला मुन्शी निहाल सिंह जी व लाला मुन्शीराम जी या दूसरे तर्जुमा मुबाहिसा में मुस्तनिद (प्रामाणिक) करार नहीं दिए जा सकते। इसको आपने गलत बयान करके ज़ाहिर किया कि मास्टर जी स्वामी दयानन्द जी के तर्जुमे को नहीं मानते। जो कि वास्तविकता के खिलाफ़ है। आपने जो ये फ़रमाया कि ब्राह्मण ग्रंथों से मुलहिम के हालात बतलाये जायेंगे। और अब इनकार करते हैं। ये आपका भ्रम में डालना नं० २ है। मैंने तो ये कहा था कि ब्राह्मण ग्रंथों से हालात बतलाए जा सकते हैं। न कि बतलायेंगे ! आगे आपने कहा है कि जल्द वो दिन आए कि आर्य समाज कुरान शरीफ़ पढ़कर सुनाए। मैं भी "आमीन" कहता हूं और प्रार्थना करता हूं कि ईश्वर वो दिन करे कि मुसलमान साहेबान भी वेद के मन्त्रों को हमें पढ़कर सुनायें। रहा मौलवी साहब का ये कहना कि गैर का बच्चा कैसे खानदान का वारिस हो सकता है ? मैं नहीं समझ सकता कि ये कौनसी मुश्किल बात है ? जब अमीरों की औलाद नहीं होती तो सरकार उनकी वारिस हुआ करती है। क्या सरकार उनकी औलाद हुआ करती है ? वारिस महज़ पैदाईश पर मुनहसिर नहीं हो सकते ! आपने ये कहा कि अगर एक गांव का रहने वाला उनको ये कहे कि मैं रसूल या ऋषि हूं तो क्या हम बगैर उसकी ज़िन्दगी के हालात जाने उसको तसलीम कर सकते हैं ? तो उसके जवाब में अर्ज है कि तालीम के देने वाले दो ही हुआ करते हैं। मौवल्लम या वायज (व्याख्याता) जो लोग कालिज में प्रिंसिपल साहब से पढ़ते हैं क्या उन्होंने भी प्रिंसिपल साहब की मेम का नाम या उसकी जिन्दगी के हालात दर्याफ्त किए ? अगर जिन्दगी के हालात मालूम करना जरूरी है तो वो जरूर करते। मौलवी साहब खुद एक मकतब में मौवल्लम हैं और मैं भी मास्टर रह चुका हूं। क्या लड़के पढ़ने से पेशतर (पहले) मौलवी साहब की जिन्दगी के हालात दर्याफ़त करते हैं ? हम और आप मुबाहिसा कर रहे हैं, आप हमारी तालीम की परीक्षा दलायल (दलीलों) से करते हैं ना कि जिन्दगी के हालात से ! लिहाजा आप क्यों नहीं साबित करते जैसा कि मैं पहले भी बार-बार कह चुका हूं। और अब फिर पुन: बड़े जोर और अदब के साथ इल्मास (प्रार्थना) करता हूं कि बतलाएं ! क्या इलहाम से पहले कोई नेक व्यक्ति वेद को पहचान सकता है या नहीं ? मैं कहता हूं कि मौवल्लम की जिन्दगी के हालात इलहाम के मियार (आधार) नहीं हो सकते। दलील मियार हुआ करती है। नेस्ती से हस्ती का मसला मैंने नहीं छेड़ा, बल्कि मौलवी साहब ने खुद छेड़ा, क्योंकि वो तालीम को अकल से जांचना बता रहे हैं। और अकल से कुरान की ये तालीम "हो" और "होजा" साबित नहीं होती। लिहाजा मैंने इसको पेश किया है ! और वो भी मखलूक की तारीफ़ पूछते हुए। जिसका जवाब मुझे अभी तक भी नहीं मिला।

१० जून सन् १९०४ ई. का मुबहिसा आरम्भ—

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

"खुदा के नाम से शुरू और उसके नेक बन्दों को सलाम" !!

हज़रात् कल जो मेरे दोस्त ने मजमून बयान किया था, वो बहुत लम्बा और चौड़ा था। मगर जवाब तलब दो ही बातें थी। इस अमर (विषय) के मुतल्लक मुलहिम के हालात मालूम होने चाहिए। मैंने इस मजमून को मुद्दल्लल (दलील से) किया था और आपके ही मजमून से बताया था। क्योंकि हालात मालूम होने जरूरी हैं। क्योंकि आप खुद मानते हैं कि वो खुदा के नज़दीक नेक और मुस्तहिक (अधिकारी) होंगे। इसलिए कि आर्य समाज का ये मजहब है। कि खुदा ताला किसी को बगैर नेक काम के कुछ नहीं दे सकता, इस असूल पर आप तनासुख (आवागमन) को मानते हैं। इस पर बहुत से नतायज (परिणाम) लागू होते हैं। लेकिन सवाल ये है कि अग्नि और वायु को जो आपसे बड़े थे, उनको वेद का ज्ञान दिया। वो किस-किस नेक काम के बदले में दिया ? या यूं ही दे दिया। आप मानते हैं कि वो नेक थे। मगर खुदा को मालूम है और हमें मालूम करना जरूरी नहीं। अगर खुदा ही को मालूम है वही वेदों पर अमल करे। और खुदा हमको हुकम देता है कि तुम वेदों की पाबन्दी करो, खासकर उस ज़माने में जब कि वेद को बने हुए एक अरब छियानवें करोड़ वर्ष बीत चुके हैं, ये तहकीक (निश्चय) जरूर करेंगे कि उनके बनाने वाले कौन थे, तथा कैसे थे ? आपने प्रौफेसर की एक मिसाल दी है जिस पर मेरी भी ताईद है, लड़के उस्ताद से नहीं पूछते कि तुम्हारी बीबी कौन है ? मेहरबान आपने या तो खुद गलती खाई या मुझे गलती में डालना चाहा, महकमा तालीम में उसको कहा जाता है जिसके पास युनिवर्सिटी की सनन्द हो। इसी तरह इलहामी के हालत मालूम होना तसल्ली (सन्तोषप्रद) है। इस बात की, कि वो हमें रूहानी (आत्मिक) तालीम दे सकता है। आपने किताबी और रूहानी (आत्मिक) तालीम में फर्क न जाना। जिस तरह किताबी तालीम के लिए सनन्द की जरूरत है वैसे ही रूहानी तालीम के लिए मुलहिम के हालात जानना जरूरी है। ताकी हम तसल्ली पा सकें कि वो आला दर्जे का महात्मा वा नेक व्यक्ति है। इस काबिल है कि वो खुदा की तरफ़ से है। उसे इलहाम भेजे। क्या आप ऐसे शख्स को प्रोफेसर बना सकते हैं जिसके पास प्रमाण पत्र न हो। इसलिए मैं कहता हूं—

आखिर बशर के वास्ते कुछ शुगुल चाहिए।
क्या कीजिए इस सितम ना रवां के साथ।।

आप फ़रमाते हैं कि नियोग के मुतल्लक जो तुमने कहा कि वारिस हो सकता है। सरकार भी तो वारिस होती है। ये आपकी गलत फ़हमी है कि सरकार को वारिस करार देते हैं। चूंकें वो हमारे जिस्म-माल की मुहाफ़िज (सुरक्षा करने वाली) है। इसलिए उसको तलफ (नाश) से बचाकर अपने कब्जे में ले लेती है। अगर उसका कोई जायज वारिस है या किसी के वास्ते उसने वसीयत की हुई है तो सरकार उसमें दखल नहीं देती। लेकिन आर्य समाज की किताब में साफ लिखा है कि जैसे कोई बच्चा अपने बाप का वारिस होता है ऐसे ही नियोग का बच्चा औरत के खाविन्द का वारिस होता है। सरकार ने कब कहा ?—कि मैं तुम्हारा बाप या बेटा बन कर वारिस हूं ? बस संक्षेप में मेरा कहना ये है कि मैंने साबित कर दिया कि इलहाम के मुतल्लिक मुलहिमों के हालात जानने की जरूरत है। आज वो ब्राह्मण ग्रन्थ खोलिये और हालात सुनाइये ! मगर ये आप याद रक्खें कि ब्राह्मण ग्रन्थों की बाबत जो आपकी राय है वो मुझे मालूम है। आप हिन्दुओं की तरह उनको इलहामी नहीं मानते। फ़िर

आपने कहा कि मैं स्वामी दयानन्द के तर्जुमें से इनकार नहीं करता। मैंने भी स्वामी दयानन्द जी से आपको मुन्किर (मुकरना) नहीं कहा था, बस सफा १५४ व १५६ को देखें कि वहां वेद मन्त्र का स्वामी दयानन्द जी ने क्या तर्जुमा किया है और क्या मतलब बताया है ? मैं अपनी तकरीर को इस बात पर खत्म करता हूं कि आप मुलहिमों के हालात सुना दें,—

मुख्तसर बात हो, मज़मून मुतव्वल होवे।
वहन व जुल्फ़ का, मज़कूर मुसलसल होवे॥

श्री मास्टर आत्मा राम जी अमृतसरी—

मौलवी साहब ने मेरे कल के पर्चे का कैसा मुकम्मल जवाब दिया है ? मखलूक की तारीफ़ तलब की थी कि आया आपको हमारी तारीफ यानी नेस्ती से हस्ती का ना होना मन्जूर है या जिस तरह से उलमाये इस्लाम (इस्लामी विद्वान) मुत्तफ़िक (सहमत) हैं कि नेस्ती से हस्ती हो सकती है। और कुरान में लिखा है कि "**कुण फंकूण**" (अल्ला तआला किसी चीज को कहता है कि "**हो जा**" और वह हो जाती है।) इसको आप मानते हैं ? अगर ये मानते हैं तो बतलाइये कि कौन चीज थी ? जिसे कहा कि "**हो**" और वो "**हो गई**" क्या तेल बिना तिलों के तथा पानी बिना बारिस के हो सकता है ? क्या कभी बांझ औरत के औलाद हुआ करती है ? इस बात को आप दलीलों सहित अकल से साबित कीजिए। मैं आपकी तवज्जो इस तरफ़ दोबारा दिलाता हूं। मौलवी साहब फ़रमाते हैं क्या हसब वायदा (वायदानुकूल) इलहामी के हालात बताने लाज़मी थे ? बताइये कि कौन से पर्चे में मैंने इसका वायदा किया था ? या कोई फ़िकरा पढ़कर बतलाइये कि जिसमें वायदा किया हो ! मैं मुलहिमों के हालात बताऊंगा। मैंने ये कहा था कि अगर आप ये साबित कर दें कि इलहाम की सच्चाई का मियार (आधार) मुलहिमों के हालात का जानना हो सकता है ? जब तक ये असल उसूल साबित न हो जाये तब तक मुलहिमों के हालात बताना मुझे जरूरी नहीं, तथा व्यर्थ है। मौलवी साहब फ़रमाते हैं कि लड़का अपने मोवल्लम की जिन्दगी के हालात मालूम नहीं किया करता। लेकिन युनिवर्सिटी के डाईरेक्टर जो इसका सन्नद (प्रमाण पत्र) देते हैं उसको अच्छी तरह हम जानते हैं। लिहाजा इसी तरह पर कुदरत की युनीवर्सिटी हैं। आला डाईरेक्टर खुदा है। और वो खुदा मुस्तहिक प्रोफेसर खूब जान कर तालीम के लिए मुकर्रर करता है। लड़का यानी दुनियां के आदमी उसी से तालीम पाना शुरू करते हैं, और उनको मुलहमान (अव्वल) पहले मुलहिमों के जिन्दगी के हालात जानना जरूरी नहीं। अगर कुदरत का मुन्तजिम (इन्तजाम करने वाला) खुदा है तो इलहाम की बरकत में लाने के वास्ते ऐसा शख्स मुतैये (तैनात) नहीं कर सकता। जो मुस्तहिक (अधिकारी) ना हो। तालीम से भी जांचने की ताकत पैदा होती है। बस ! अव्वल तालीम यानी इलहाम ही सब तमीज सिखाता है। बस ! ये कहां साबित हुआ कि जो तालीम पाते हैं वो उस्ताद की जिन्दगी के हालात मालूम करते हैं ? फर्ज करो एक शख्स मुलहिम सौ वर्ष जिन्दा रहा, और बाद में मर गया, तो क्या इसके हालात खुदा नोट करके एक शख्स पर बतौर इलहाम उतारेगा ? कैसा मुहाल (मुश्किल) है ? कि ये दूसरा शख्स उसके हालात में तारीफ़ कर सके, अगर इस पर मरने के पेशतर उतारे तो जो बात खुदा उतारेगा उसके खिलाफ कहे तो वो उसको ज़ाहिर न होने दे, इस हालात में रहा त्वारीख हो जाने का ये के जैसा की मैं और आप मुबाहिसा के शुरू में पर्चा नं० १ में मान चुके हैं कि इलहाम सही इलम का नाम है, न कि त्वारीख का ? क्या एक माल का दूसरे पर मुन्तकिर (परिवर्तन होना) बजरिया वारिस के होता है ? और क्या

वारिस बजरिया नुत्फ़ा ही के होती है ? अगर ऐसा ही हो तो कोई औरत जो खाविन्द की वारिस होती है, वो खाविन्द के नुत्फ़ा से होती है।

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

साहेबान अब आप यकीनन् समझें कि फैसला शुद्ध ! (हो गया) शुरू से आप जानते हैं, कि जब मुबाहिसा चला तो इस ख्याल से मुबाहिसा करार पाया था कि मजहबी तहकीकात दयानतदारी (ईमानदारी) से होगी, दयानतदारी का यह लाजमा है कि जो सवाल किया जावे अगर वह किसी हद तक माकूल है तो इसका जवाब देना जरूरी है। और मुखालिफ़ जो सच्ची बात कहे उसका मानना दयानतदारी है। मगर मैं देखता हूं कि मेरे साथ यह मामला नहीं बरता जाता। पहले कहा था कि वेद इब्तदायी आफ़रीनस (सृष्टि के आरम्भ) से हैं, मैंने उसके मुखालिफ़ मन्त्र पेश किया, जिससे साबित होता था कि इब्तदायी दुनियां से नहीं, मगर इस वक्त तक मेरे दोस्त ने कोई माकूल जवाब नहीं दिया, आप खुद सोच लीजिए और इन्साफ कीजिए कि-क्या जवाब दिया ? और ईमान धर्म से फैसला कीजिए।

फिर ये सवाल हुआ कि अकल के खिलाफ़ वेद तालीम देता हैं, दूसरे के नुत्फ़े (वीर्य) से पैदा शुदा बच्चे को कैसे शख्स से जोड़ना है जिसका वह नहीं है। इसका जवाब भी न मिला कि इसमें क्या फ़िलासफ़ी, लोजिक और मन्तक भरी हुई हैं ? जो कुछ जवाब मास्टर साहब ने दिया वह आप लोगों ने ग़ौर से सुना। अगर मैं किसी बात की जिद्द पर हूं तो आप लोग तो जिद्द पर नहीं हैं। मेरा सवाल ये था कि जो शख्स हमको इलहामी किताब दिखलाए और दावा करे कि मैं ऋषि या मुनि हूं और खासकर इतनी मुद्दत के बाद कि करोड़ों साल हो गए हैं फिर हमको कैसे मालूम हो कि वह कैसा था ? इस पर आपने मदरसों की मिसाल दी कि लड़कों को मालूम नहीं होता कि प्रोफेसर कैसा है ? मदरसों के मुकर्रिर करने वाले, उनको मुकर्रिर करते और जानते हैं, लड़कों को मालूम हो जाता है कि वह बिना इजाजत डाईरेक्टर के नहीं बैठा। डाईरेक्टर उनसे खतोकिताबत (पत्र व्यवहार) करता है, हुकम अहकाम (आदेश) भेजता है, तो लड़कों को मालूम होता है कि वह डाइरेक्टर की इजाजत से आया है, वही कालिज और स्कूल का मकान ऐसा होता है कि वहां बगैर हुकम डाईरेक्टर के कोई दूसरा नहीं बैठ सकता, कभी उनको शक-सुबाह नहीं होता कि शायद बगैर हुकम आकर बैठ गया हो।

हम सबके सब एक स्कूल के विद्यार्थी हैं, अग्नि ऋषि कहते हैं कि मैं इलहामी हूं मेरे वेद को मानों, क्या बात तसल्ली देती है कि वेद इलहामी है या नहीं ? तो आप उन विद्यार्थियों से पूछिए कि उनको भी ऐसा ही शक होता है जैसा कि हमको अग्नि वगैरा के मुत्तल्लक ! खुदा कुदरती डाईरेक्टर ठीक है, मगर उसने उस वक्त तो हमारे सामने अग्नि वगैरा को कुर्सी पर नहीं बैठा दिया हमें क्योंकर तसल्ली हो सके ? जबकि उस स्कूल में कई मुद्दई इलहामी हैं, तो जरूरी है कि सच्चा उनमें वही हो सकता है जिसके हालात व आमाल वगैरा काबिले तस्कीन (तसल्ली बख्श) वा इत्मीनान हो। आप कहते हैं कि इस कुदरती स्कूल में इलहाम का झूठा दावा करने वाला नहीं हो सकता। तो आप पहले बतलाएं कि जितने लोग इलहाम का दावा करते हैं तो क्या आप उन सबको सच्चा मानते हैं ? मेहरबान आप बार-बार गलती खा रहे हैं, और गलती में डाल रहे हैं। बतलाइए कि क्या आपके पास ऐसी कोई सनन्द है कि अग्नि वगैरा इलहामी थे ? कल के आखरी पर्चा में आप मान चुके हैं कि मुलहिम की जिन्दगी के हालात इलहाम के सही होने की मयार (आधार) हो सकते हैं। तो मैं बतलाऊंगा कि वो क्या हालात हैं ? मैं इससे ज्यादा और क्या बतलाऊं कि आपके पास सनन्द होनी चाहिए। अगर कोई इलहाम से पहले नेक

नहीं हो सकता तो उसमें मुलहिम होने की खसूसियत (विशेषता) क्यों कर पैदा होती ? जिसको आप भी मानते हैं। ये तो आपकी मुकालतादेयी है कि आप साफ लफ़्जों में कहते हैं कि हमारे मुलहिमों के हालात हमारे पास नही हैं। नेस्ती से हस्ती वाले मसले का जवाब मैंने दो कारणों से नहीं दिया—एक तो कल तय हो गया था, कि फरूआत में बहस नहीं हो सकती दूसरे आपका कोई हक़ नहीं कि जब तक आप मेरे सवालात का जवाब न दें मुझ पर कोई सवाल न करें।

सरकार को मैंने मालिक नहीं कहा था, बल्कि मुहाफ़िज (रक्षक) कहा था, ताहम मैं आपको वही इबारत (पाठ) सुनाता हूं कि जिससे ब्याहे खाविन्द का पैदा शुदा लड़का—बाप की जायदाद का वारिस होता है ऐसे ही मेरे बाप का वारिस होगा, अब ये मेरा बाप कौन हो ? वो ही जिसकी बीबी ने दूसरे से नियोग किया था। जैसे आप मेरे दोस्त हैं, मैं भी आपका दोस्त मुख़्तसर ये है कि आप बतलायें कि मुलहमीन कैसे थे ? किसी त्वारिख से बतलायें ख्वा कुरान या हदीस से ही बतलायें। वर्ना हम क्योंकर अपने गले पर उनका जुवा रख लें। एक शख्स इंग्लैण्ड में बैठा कह रहा है कि मैं ऋषि हूं। उसको बिना दलील क्योंकर सही समझ लें ? अगर इलहाम न नेक को हो, न बद को हो ! तो फिर किसको होगा ?

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! मौलवी साहब ने फिर तकिया कलाम छेड़ दिया कि—फैसला हो गया, फैसला हो गया ! ! खैर जिस दयानतदारी (ईमानदारी) का आप जिकर करते हैं उसके मुत्तल्लिक अमल क्यों नहीं करते ? मेरे मकूल सवाल का जवाब क्यों नहीं देते ? और अगर समझते हैं कि सवाल माकूल नहीं तो साबित करके दिखायें कि इसमें क्या नुख्श है ? और क्यों माकूल नहीं ? महज जज़बात को अपील करना दुरुस्त नहीं, वेद इब्तदाये आफ़रीनस (सृष्टि के आरम्भ) से हैं और जो मन्त्र आपने पेश किया था उसकी तसरीह (व्याख्या) मुकम्मल आपको सुना चुका हूं, कि वाक्यात वकू में आने से पेशतर हमादान (वास्तविक) खुदा इब्तदा से ही हिदायत दे सकता है, अगर इस पर भी आप न समझें तो बतलायें कि मेरी दलील में क्या नुख्श है ? ईमान और धर्म से सोचने वाले सोचेंगे ? लेकिन आप दलील से मेरे बयान को रद्द करते तो लुत्फ़ (मजे) की बात थी। आगे आपका ये कहना कि किसी के नुत्फ़े से पैदा शुदा बच्चे को जोड़ने का जवाब नहीं मिला इसके मुत्तल्लिक अर्ज ये है कि जिस तरह औरत अपने नुत्फ़े से पैदा न होने पर एक शख्स के खानदान में जोड़ी जाती है, इस तरह नियोग का बच्चा भी जोड़ा जाता है, ये हमने कब कहा है कि नियोग के बच्चे में और शादी के बच्चे में कोई फर्क ही नहीं। मनुस्मृति में ब्याह से पैदा शुदा बच्चे को "**औरस**" और नियोग से पैदा शुदा बच्चे को "**क्षेत्रज्ञ**" कहा गया है। जब फ़रक मौजूद है तो आप दोनों को एक किस तरह कहकर सवाल करते हैं ?

इलहामी किताब की मैंने सदाकत को किसी मुलहिम के दावे से आप और हम नहीं मान सकते, ख्वा (भले ही) किताब कितनी भी पुरानी क्यों न हो ? दलील से उसकी सदाकत (सच्चाई) जान सकते हैं। आप कहते हैं कि लड़कों को प्रोफेसर की तक्करी (नियुक्ति) का हाल मालूम हो जाता है। लेकिन जनाबेमन् ये तो कालिज के लड़कों को मालूम हो सकता है, न कि अलिफ़-बे- पढ़ने वाले लड़कों को ! जो कि डायरेक्टर साहब और उस्ताद का लफ्ज भी बग़ैर उस्ताद के सिखाए बोल नहीं सकते। इस मिसाल से आपकी मिसाल रद्द हो गई। वह लोग जिनको मुलहिमों ने तालीम दी वह अलिफ़-बे-पे- पढ़ने वाले बच्चों की मानिन्द थे न कि कालिज के विद्यार्थियों की तरह ! जो कई साल मुतवातिर (निरन्तर) तालीम पाकर डायरेक्टर साहब पर खतोकिताबत जानने के

काबिल हो गए। बस ! ये साबित हुआ कि इलहाम की तालीम हासिल करने वालों के लिए मुलहिमों के हालात का जानना जरूरी नहीं।

मौलवी साहब ये कहते हैं कि मास्टर जी ये मान चुके हैं कि मुलहिम की जिन्दगी के हालात इलहाम के सही होने के मियार (आधार) हो सकते हैं। मैंने कहां ये माना है ? क्या यह शरीहन (साफ) मुग़ालता नहीं है ? मौलवी साहब ! आप शायद नहीं का लफ़ज पढ़ना छोड़ गए होंगे, फिर आपने ये कहा है कि मास्टर जी कहते हैं कि झूठे इलहाम का दावा करने वाला तो कोई हो नहीं सकता। जनाबेमन् मैंने यह लफ़ज कहीं पर नहीं कहे। जो कुछ मैंने कहा था उसका मतलब ये है कि महज दावये इलहाम से इलहाम सही नहीं माना जा सकता। जब तक कि इसकी तालीम को अकल की कसौटी से न परखें। मौलवी साहब ने जो ये कहा कि तुलबा प्रोफेसर की कुर्सी पर बैठे हुए देखते हैं और इससे साबित करना चाहा था कि लोगों को मुलहिम के हालात जानना जरूरी है, जनाबेमन् यह भी गलत है, वजह ये है कि क्या बच्चा जो आज पैदा हुआ है वह अपने बाप को पैदा होते ही जान सकता है ? या उसके हालात पूछ सकता है ? मैंने कहा था कि जब मौलवी साहब साबित कर देंगे तो मुलहिम के हालात का जानना सदाकते इलहाम के लिए जरूरी है तब मैं बतलाऊंगा कि हमारे मुलहिमों के हालात ये हैं। लेकिन मौलवी साहब ये बात साबित न कर सके और जो दलायल मैंने मौलवी साहब के दलाइल की तरदीद में पेश किए उनका रदद भी नहीं कर सके। इसलिए जब तक मौलवी साहब ये बात साबित न कर दें कि मुलहिमों के हालात का जानना सदाकते इलहाम के लिए जरूरी है। तब तक मैं उनके हालात नहीं बतलाऊंगा, आप पूछते हैं कि अगर इलहाम न नेक को हो, न बद को ! तो फिर किसको होगा ?तो जनाबेमन् इलहाम मुस्तहक (अधिकारी) को होगा। और मुस्तहक कौन ? उसको खुदा जानता है जिसने इलहाम देना है। आपका ये ख्याल इस वजह से पैदा होता है कि आप मुलहिम के हालात जिन्दगी मयार (आधार) सदाकते इलहाम मानते हैं, जिसको आप साबित नहीं कर सकते। भला आप ही बतलाइए कि बिला इलहाम के कोई नेक क्यों कर हो सकता है ? आपने सत्यार्थ प्रकाश से जो यह पढ़ा कि जैसे ब्याहे खाविन्द से पैदा शुदा लड़का वारिस होता है, वैसे ही नियोग से पैदा हुए लड़के मरे बाप के वारिस होते हैं, इसमें लफ़ज जैसे-वैसे हैं से तफ़रीक (फर्क) साबित है। गोया ब्याहे से पैदा शुदा लड़का और नियोग का लड़का एक नहीं। मसलन बाप के जितने लड़के होते हैं वह भाई कहलाते है। और मैं अगर सब साहेबान को इस वक्त भाई साहेबान कहूं तो क्या इससे हमारा खून का रिश्ता कायम हो गया ? यहां भाई बलिहाज इन्सानियत के कहा जाता है इस वजह से मनु जी ने "**औरस**" और "**क्षेत्रज**" जो लफ़ज इस्तेमाल किए हैं। जिसके मायने ये हैं कि जो बाप के अपने लड़के हैं वह "**औरस**" है तथा जो नियोग के हैं वह "**क्षेत्रज**" है। फिर आप बार-बार कैसे कहते हैं कि नियोग का लड़का और ब्याह से पैदा शुदा एक है ? जब कि फर्क मौजूद है। नेस्ती से हस्ती होने के सवाल को आप फ़रुआत में डालना चाहते हैं। हालांकि अकल को इलहाम का मियार (आधार) मान चुके हैं। बस यह मसला अकल के मुताबिक साबित कीजिए।

श्री मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

बे नियाजी हद से गुजरी, बन्दा परवर कब तलक।
हम कहेंगे हाले दिल, और आप फ़रमायेंगे क्या ? ॥

एक नहीं, दो नहीं, तीन नही, चार नहीं, कई दफा दलायल दिए, मगर मन्जूर न किए। दस्तखत अब तक न दिए। वही मिसल (मिसाल) हुई कि "**बकरी जान से गई, खाने वाले को मजा न आया**" मेहरबान ! आप

क्यों पहलू बचाते हैं ? आखिर क्या कोई दुनियां में कहने-सुनने वाला नहीं ? कभी आप मास्टर बन जाते हैं, कभी आप शीरख्वार (दूध पीने वाला) बच्चा बन जाते हैं । आप तो उनकी उमर में नहीं, आप इस वक्त अच्छी उमर को पहुंचे हुए हैं । तथा एक तालीमयाफता सोसायटी के लायक मेम्बर हैं । अगर वह बच्चे डायरेक्टरों को न जानते हों, मगर आप तो जानते हैं ! ये ही आपकी गलतफ़हमी है । बच्चे डायरेक्टरों को नहीं जानते, मगर उनका शागिद (शिष्य) बताता है कि ये हमारा उस्ताद है । आप आज़माईस करें जब उनका उस्ताद उनमें न बैठा हो और वो आपस में लड़ते हों, और उनमें आप बैठे हों, फिर आप देखें कि उस दिन आपसे डरते हैं ? और आपको कुछ मानते हैं ? कोई बात तो आखिर उनको यकीन दिलाती है कि ये हमारा उस्ताद है । इसी तरह हमको भी किसी तरह यकीन दिला दीजिए कि हमारे अग्नि ऋषि इलहामी थे । कोई बच्चा डायरेक्टर को न जाने, फिर मास्टर को न जाने, बला से ! न जाने !! मगर कोई बात तो दोनों को यकीन दिलाती है कि ये हमारा उस्ताद है । आप कहते हैं कि बच्चे ने ये नहीं देखा कि अपने बाप के नुत्फ़े से पैदा हुआ हूं ? मैंने क्या कहा था कि अग्नि को लाकर दिखा दीजिए ? जैसा कि हम और आप जानते हैं कि आप अपने-अपने बाप के बेटे हैं, लोगों के बतलाने से या पड़ोसियों के कहने से या और किसी के कहने से या अखबार के माध्यम से या त्वारीख से आप बतलायें कि अग्नि ऋषि कौन थे ? जिस तरह आपने अखबार के माध्यम से अपने आपको जाना है, इसी तरह ये भी बतायें कि अग्नि ऋषि कैसे थे ? आप बांझ औरत के बच्चा होने पर सवाल करते हैं, हालांकी स्वामी जी बतलाते हैं कि—"**बिना मां-बाप के कई एक जवान पैदा हो गए**" वो परमेश्वर जो उन्हें बगैर मां-बाप के पैदा कर देता है, क्या वो बांझ को औलाद नहीं दे सकता ? आप इसको तरह (कन्नी काटते) देते चले जाते हैं कि अग्नि ऋषि कैसे बने ? और ज़ोर कलाम देखिए कि कहे जाते हैं कि साबित कीजिए । हां ! जब आप मान जायेंगे तो साबित होगा । मगर बकौल शख्स से काज़ी जी हराए हैं, ये बात आप कैसे लोगों पर साबित करेंगे ? आपने नियोग के सम्बन्ध में कहा है कि जैसे को वैसा ही यानि जाहिर करना चाहिए, कि वो तमसील (उदाहरण) बनती है । मगर स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के सफा १४६ व १४७ पर साफ लिखते हैं कि—"**अगर खानदान का सिलसिला जारी रखने के लिए किसी अपने जात वाले का लड़का गोद लेलें, इससे खानदान चलेगा, और ज़िनाकारी (व्यभिचार) भी न होगा । और अगर ब्रह्मचर्य न रख सकेंगे तो नियोग करके औलाद पैदा कर लें ।**" यानि जिसके यहां लड़का पैदा नहीं होता तो वह अपनी बीबी से कहे कि भली मानस तू जा और मेरे लिए लड़का पैदा करके ला । आगे फिर विवाह और नियोग में अन्तर बताते हैं कि, नियोगिना (जिसने नियोग किया हो) औरत के लड़के, वीर्यदाता के न तो लड़के ही कहलाते हैं और न ही उसका गोत्र होता है और न ही उसका अख्तियार लड़कों पर रहता है । बल्कि वो मुतवफ्फ़ी खाविन्द (मृतकपति) के कहलाते हैं । उसी का गोत्र रहता है । उसी के खानदान के वारिस होकर उसके घर रहते हैं । जिसके घर खाया, दूध पीया, और वीर्य दाता बना जिससे नुत्फ़ा (वीर्य) निकला वो तो बेताल्लुक रहा ? और मालिक औरत का खाविन्द बन गया । जिसके नुत्फ़ा से कोई ताल्लुक नहीं, परमेश्वर की दया है जिसको दे दें ! "**बिन मांगे मोती मिले, मांगी मिले ना भीख**" आप कहते हैं कि ऐसी किताब को मेरे हवाले करो । मैं नहीं बिरादर जानते हैं कि मैं उनको पढ़कर सुनाऊं आपका मनशा ये है कि इस मैदाने मुबाहिसा से निकल जायें । मेहरबानेमन् । मैं आपको इत्तला देता हूं और पब्लिक से इन्साफ़ चाहता हूं कि आपने मेरे किसी भी सवाल का जबाब नहीं दिया । ना आपने ये बताया कि ऋग्वेद "**अग्नि**" ऋषि पर नाज़िल (उतरना) हुआ और यजुर्वेद "**वायु**" पर ! क्या इसका कोई सबूत दिया ? आपके पास अगर है तो पेश करो । मैं आपका विशेष ध्यान दिलाता हूं । क्योंकि आपने मेरे उन सवालात के जवाब नहीं दिए इस लिए मैं कल एक नए तरीके से सवाल उठाऊंगा ।

श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी—

साहेबान ! आपने सुना है मौलवी साहब ने दो बातों पर जोर दिया है। एक तो यह कि **"नियोग का अकल के खिलाफ होना"** तथा दूसरे **"मुलहिम को जिन्दगी के हालात का जानना"** पहले के सम्बन्ध में मेरा कहना ये है कि—एक औरत खाविन्द के बचे माल की वारिस होती है। सोचना चाहिए कि क्या वो खाविन्द के नुत्फ़ा से पैदा हुई है ? ये अमर वाकया है कि कोई औरत खाविन्द के नुत्फ़ा से पैदा नहीं होती। इसलिए इनका कहना दुरुस्त नहीं है। एक लड़की जो एक शख़्स की औरत बन जाती है और उसके खानदान की मेम्बर होती है वो क्यों कर खानदान में शामिल हो जाती है ? क्योंकि मुवायदा (फैसला निश्चयानुसार) या सोशल कन्ट्रैक्ट एक चीज है जो उसको ग़ैर मर्द के साथ उसके खानदान का मेम्बर बना देता है। बस इससे मालूम हुआ कि मुवायदा (फ़ैसला) भी एक ग़ैर को खानदान का मेम्बर और वारिस बनाने के लिए काफी वजह हुआ करता है। बग़ैर मुआवदा एक शख़्स का किसी औरत के साथ ज़माव (समागम) करना उसको ज़िनाकारी (व्यभिचार) में दाखिल कर देता है। तो जबकि मुआवदा और रज़ा दो चीजे मौजूद हैं तो वो बच्चा इन कारणों से क्यों ग़ैर का वारिस नहीं बन सकता ? ये खिलाफ़ अकल नहीं है। मैं एक मिसाल पेश करता हूं। कि एक मुसलमान भाई किसी बेवा (विधवा) से ब्याह करता है, ओर उसके साथ एक दूध पीता बच्चा है, क्या ये दूध पीता बच्चा उसके दूसरे खाविन्द का भी कहला सकता है या नहीं ? अगर नहीं तो उस खाविन्द का इस बच्चे से क्या तालुल्क ? और उसकी परवरिश पर क्यों लाज़िम (जरूरी) है ? और इसका वारिस है या नहीं ? मैंने कहा था कि **"सुरह निशां"** में लिखा है कि—**"मुता की बाबत उजरत तलब करो, अपने माल के बदले कैद में लाने को ना मस्ती निकालने को फिर जो काम में लाये उन औरतों में से दो उनके हक़ जो मुकर्रर होने और गुनाह में तुमको इसमें जो ठहरा"** तो दोनों की रज़ा से उजरत देकर एक ग़ैर औरत से ताल्लुक पैदा करना इसमें बतलाया गया है। मौलवी साहब इसकी तसरीह (विस्तार पूर्वक) बतावें कि ये कौन सी अकल के मुताबिक है ? इस बात को कहते हुए कि—**"इलहाम में अकल के खिलाफ कोई बात नहीं है"** मैंने कहा था कि एक बांझ औरत का बेटा जितना मुहाल अकल (अकल के खिलाफ़) है। मौलवी साहब कहते हैं कि हो तो हो हमारी बला से, यह कह कर टाल दिया, साहेबान ! बताओ ये मौलवी साहब की कौन सी दलील है ? क्यों नहीं बतलाते कि नेस्ती से हस्ती क्यों कर होती है ? और जो कहता है कि—**"हो'** और **'हो जा"** वो क्यों कर तथा कैसे व कौन सी अकल के अनुसार है ? मैं फिर मौलवी साहब की तवज्जो इस तरफ दिलाता हूं कि मैं कुरान के हवाले देकर बतला चुका हूं कि कुरान की आयतों से लिखी हुई किताब या कलाम बतलाती है ये मुख्तलिफ (भिन्न-भिन्न) बातें जो कि शैतान का मानना, आसमान का फटना, बहिस्त के किस्से कहानियां, पहाड़ों का चलना, जमीन का गवाही देना, खुदा का लोगों के दिलों पर मोहरे लगा देना और उनको बुराई की तरफ रग़बत (प्रेरणा) दिलाना ! ये सब बातें क्यों अकल के खिलाफ़ नहीं हैं ? मैंने यजुर्वेद का मन्त्र देकर बतलाया था कि इसमें रूह (जीव) की हस्ती ओर सिफ़ात (गुणों) की तालीम (शिक्षा) दी गई है। और इसके मुकाबले में मौलवी साहब ने कुरान की किसी आयत से रूह की हस्ती और सिफ़ात न बतला सके। मौलवी साहब ने मुलहिम की ज़िन्दगी के हालात के मुतल्लक कहा था कि मुलहिम कालिज के लड़कों की मानिन्द (तरह) हैं, ना कि छोटे बच्चों की तरह ! लेकिन मैं बतलाता हूं, कि बच्चे बग़ैर इब्तदायी तालीम के कालिज तक नहीं पहुंच सकते। और ना उनको डाईरेक्टर के पहचानने की काबलियत हो सकती है। बस इब्तदाई तालीम यानी इलहाम डाईरेक्टर यानी मुलहिम के हालात जानने से पेशतर (पहले) जरूरी साबित हुआ। लिहाज़ा आपका ये कहना कि मुलहिम के हालात जानना जरूरी है इलहाम की सच्चाई के लिए जरूरी नहीं हो सकता।

११ जून सन् १९०४ का मुबाहिसा आरम्भ—

श्री मौलवी सनाउल्ला साहिब—

"खुदा के नाम से शुरू और उसके तमाम नेक बन्दों को सलाम" साहेबान ! आप लोगों ने मास्टर साहब की ये तकरीर (व्याख्यान) सुन ली, आप खुद ही फ़रमाते हैं कि मैं दो बातों पर जोर दे रहा हूं, एक तो ये कि मैं नियोग की फिलासफ़ी पूछता हूं, यानी मैं पूछता था कि नियोग से पैदा शुदा बच्चा नस्ल को बहाल रखने वाला और उसका जायज वारिस क्यों कर हो सकता है ? चुनांचे इस दावे के सम्बन्ध में, मैं सत्यार्थ प्रकाश से कल इबारत (पाठ) बतलाई थी कि बच्चा औरत के असली खाविन्द की नस्ल कायम करने वाला होता है। इसलिए वो नियोग कराया जाता है ? ताकि वो इसकी नसल कायम करें। मैंने ये नहीं कहा था कि कोई बगैर नुत्फे के वारिस नहीं हो सकता। लिहाजा मैं मुसलमान होकर क्यों कर कह सकता हूं ? अगर वैदिक धर्म शास्त्र के अनुसार औरत वारिस हो, मगर इस्लाम में, बीबी, भाई, भतीजे वारिस हो सकते हैं, मैंने ये कहा था, कि वो लड़का जो दूसरे के नुत्फे से पैदा हुआ है, वो क्यों कर वारिस हो सकता है ? आपने दानिस्ता (जान बूझकर) मेरी इस गुजारिश को मलियामेट करना चाहा, आप फ़रमाते हैं कि औरत के रज्ज से पैदा हुआ है। मान लिया कि वो औरत के रज्ज से पैदा हुआ है लेकिन वो खाविन्द से क्यों जोड़ा जाता है ? जिसका नुत्फ़ा नहीं। आपने यजुर्वेद का हवाला दिया, और कुरान मजीद में रूहानियत* की तालीम मांगी अगरचे मैं आपके किसी सवाल के जवाब देने का जिम्मेदार नहीं हूं। क्योंकि मैं सायल (सवाल करने वाला) हूं, ताहम आपको मत्तलह (सूचित) करता हूं कि कुरान रूहानियत की तालीम देता है। (यहां पर अरबी में मूल आयत छपी थी जो प्रयास करने पर भी पढ़ी न जा सकी उसका अर्थ भी साथ छपा था, वह यहां दिया गया है।) अर्थात्—**"ऐ लोगो ! सुनों !! कुरान को सरापा रहमत और सीनों की बिमारियों का इलाज भेजते हैं। जो लोग उसको पढ़ने पर अमल नहीं करते, वो सरासर नुकसान उठाते हैं, ।"** इसमें तबियत का कोई नुकसान और कोई हर्ज नहीं, आप वो असली बात छोड़ गये कि मुलहिम के हालात नहीं बतलाये। मेहरबान ! आप क्यों छुपाते हैं ? अगर आपके पास अग्नि ऋषि वगैरा के हालात नहीं, तो साफ क्यों नहीं मना कर देते !

आप खुद जानते हैं कि दयानन्द जी की सवाने ऊमरी (जीवनी) और लेखराम की सवाने ऊमरी आपने क्यों लिखी ? महज इस गर्ज से कि उनके कारनामों से पिछली नस्लों को मुत्तलह (परिचित) कराया जाये। ताकि वो उनके मशक (परम्परा) की पैरवी करें। जब आपने-अपने ऋषि दयानन्द के हालात लिखे हैं तो क्या इसके मुताबिक हम आपको मजबूर नहीं कर सकते ? और क्या हम आपसे सवाल नहीं कर सकते ? कि आप मुलहिमों के हालात बतलावें !

आप ये कहते हैं कि इलहाम† से पहले नेक क्यों कर हो सकता है ? बहुत अच्छा ! इलहाम के पीछे के हालात क्या थे ? खुद वेद पर अमल करते थे या नहीं ? जब तक आप उनके हालात रोशनी में न लावेंगे, तब

टिप्पणी:—*आयात तलब की रूह के सम्बन्ध में जवाब देते हैं रूहानियत के मुत्तास्लिक, मुकालतादेही (धोखा देना) इसी का नाम है।

†**"जादू वह जो सर चढ़ कर बोले"** आप खुद मान गये कि इलहाम के पहले हालात नहीं समझे गये, सही। लेकिन पिछले हालात का भी ताल्लुक **"सदाकत इस्लाम"** से है।

तक हम कोई राय कायम नहीं कर सकते। क्योंकि किसी को मुलहिम मानना उसका गुलाम बनना है। इसलिए जब तक हमें इत्मिनान न हो तब तक हम ये ग़ुलामी अख्तियार नहीं कर सकते। कुरान कहता है—"**उलूइन्नमा इजकुम वाहिदल्ला तकोइन को मुल्लाहिमसनावखुरादम तकफ्रू वो मासाजिकुम मनजन्दा**"...... अर्थात्– **ऐ लोगों ! कि तुम मेरे मामले पर ग़ौरकरो कि मैं जुनूनी तो नहीं हूं।** और देखिए—अर्थात् –"**मैं तुममें चालीस वर्ष रह चुका हूं और कभीझूठ नहीं बोला। क्या तुम समझे नहीं हो ?**" बस ये उसूल हमको बतलाया जाता है ! कि इस कदर मुलहिम की जिन्दगी के हालात जानना निहायत जरूरी है। कम से कम ये तो मालूम हो जाये कि वो इस इलहाम पर अमल करता था या नहीं ? मगर अफसोस ! आप इस तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं देते। **और** बेफ़ायदा समय **बर्बाद** करते हैं।—

वो कब खातिर में लाता है, मेरे आजुर्दा होने को।
समजोर कहा यह नहीं, दिल कब निकलता है॥

और* नेस्ती से हस्ती का जिकर करते हैं, और चूंकि प्रेजीडैन्ट की तरफ़ से मुझको रोका गया है, कि फरूआत (व्यर्थ की बातों) पर बहस न करूं, और इस लिए कि सरे दस्त (इस समय) आपको सवाल करने का हक़ नहीं। इसलिए मैं जवाब नहीं देता। आपको यकीन है कि मैं आपको जवाब दे सकता हूं और आर्य समाज के कुल एतराजों के सवालों के जवाब दिये हैं, आपने शुरू से मेरे सवालों को नजरअन्दाज़ किया है। इलहाम की तारीफ़ करते हुए तकसीम नहीं की, और दूसरे आपने, मेरे मन्त्र का ठीक जवाब नहीं दिया है। सदाकत वेद (वेदों की सच्चाई) साबित बातिल (झूठ) हुई है। नियोग को अकल के मुताबिक नहीं किया। इलहामी के हालात नहीं सुनाए—

गालिब तुम्हीं कहो, के मिलेगा जवाब क्या ?।
माना कि तुम कहा किये, और हम सुना किये॥

श्री नसीर अहमद, सदर अंजुमन अहले इस्लाम—

आज ग्यारह जून १९०४ ई० को तहरीरी (लिखित) बहस होकर ये बात करार पा गई कि मुनाज़रा (शास्त्रार्थ) तकरीरी (मौखिक) होगा। और वो तकरीर जो इस मुनाज़रा में होगी, वह साया (प्रकाशित) न होगी। और पिछला मुनाज़रा गुज़स्ता (गुजरा हुआ) की तहरीर साया (प्रकाशित) होगी।

दस्तख़त—"**नसीर अहमद**"

टिप्पणी—

*नेस्ती से हस्ती का मसला और बहिश्त के किस्से कहानियां, शैतान के मानने, पहाड़ों के चलने, आसमान के फटने, जमीन की गवाही देने, कसरत अज़दवाज़, मुत्ता, वगैरा-वगैरा का जवाब, असूल नं० २ के मुताबिक आपको देना जरूरी था, जब नियोग पर ऐतराज करते और जवाब लेते रहे, तो आपको कुरान के उन मसायल (सिद्धांत) की फिलासफ़ी बताना जरूरी था। असूल के मामले को फ़रूआत (व्यर्थ की बातें) कहना आपकी और आपके प्रेजीडेन्ट साहब की गलती है। फिर आपका ये कहना कि उन्होंने जवाब देने से रोका; ये ज़ाहिर करता है कि अहले इस्लाम के पास इन बातों का कोई जवाब नहीं। अगर था तो किस वक़्त के लिए रखा हुआ था ? जिस पर आपकी ये दिलेरी अजीब है कि "**मैं जवाब दे सकता हूं**" !

'मंत्री'—आर्य समाज

१२ जून सन् १९०४ ई. का विवरण

श्री पंडित भगवानदीन साहेब, प्रेजीडेन्ट मुनाज़रा नगीना मिन्जानिब आर्य समाज—

दो-दो घण्टा, फ़रीकेन (दोनों पक्ष वाले) वाज़ (तकरीर-भाषण) करें, और पहले आर्य साहेबान वाज़ फ़रमायेंगे। बाद में मुसलमान साहब फ़रमायेंगे। और दूसरे रोज़ से वही मुनाज़रा, मज़कूरे वाला (उपरोक्त) जारी रहेगा। और आधा घण्टा एक फ़रीक़ और निस्फ़ (आधा) घण्टा दूसरा फ़रीक़! दस बजे तक मुनाज़रा करेगा। चूंकि शुरू करने का हक़ आर्य साहेबान को है लिहाज़ा पहले बहस वही शुरू करेंगे। और असना वाज़ (बोलते समय) मैं सिर्फ अपने मज़हब के मुज़ामीन (सिद्धान्त) और अपनी किताब की तालीम और उसका फ़ायदा बयान करना होगा। और किसी शख्स को दूसरे मज़हब पर एतराज़ व हमला करने का हक़ नहीं है।

—"भगवान दीन"

श्री अलावद नसीर अहमद सदर अन्जुमन—

श्री पण्डित भगवानदीन साहब (प्रेजीडेन्ट) मुनाज़रा मिन्जानिब आर्य समाज, ज़ाद अनायत तस्लीम अर्ज़! (आपकी कृपा मानता हूं और ये स्वीकार है) आपकी असीया (मुनाजरा की कापी) मेरे पास है, और अभी तक मैंने उसको साफ़ (संशोधन) नहीं किया है। जिस वक़्त साफ़ करूंगा आपको जरूर नक़ल (प्रति) भेज दूंगा। लेकिन कहीं-कहीं मज़मून रह गया है, जिस वक़्त मुक्कमल हो गया तो दर्ज मुनाज़रा की जावेगी। या अगर आप दूसरी तहरीर फ़रमाकर भेज दें तो वो दर्ज की जावे। एक हफ्ते के अन्दर म रहमत (कृपा) फरमायें। बड़ी अनायत होगी।

"Nasser Ahmad"
(Sadar Anjuman)

श्री अनायत अहमद जी—

नाज़रीन! ये तो सिर्फ तहरीरी मुबाहिसा हमने शाया (प्रकाशित) किया है। अगर अहले इस्लाम खिलाफ़ मुवायदा (प्रतिज्ञा के खिलाफ़) तक़रीरी मुबाहिसा (लिखित शास्त्रार्थ) को शाया (प्रकाशित) करेंगे तो हम भी मजबूरन उसको शाया (प्रकाशित) करेंगे।

निवेदक—
"अनायत अहमद"
(उर्दू में दस्तख़त)

नोट : - इस नगीना वाले शास्त्रार्थ में काफी बातें, विवादास्पद आई हैं। उनके स्पष्ट करने के लिए पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज से निवेदन किया गया। उन्होंने इस पूरे शास्त्रार्थ का अवलोकन करते हुए एक लेख दिया है। जो आपके समक्ष अगले पृष्ठ पर है। इससे शास्त्रार्थ मे आई कुछ बातें स्पष्ट हो जाती है। आप भी पढ़िए और लाभ उठाइए ?

निवेदक—
"लाजपतराय अग्रवाल",

(इस नगीना वाले शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में)

—"अमर स्वामी सरस्वती"

मैं चाहता था कि इस नगीना वाले शास्त्रार्थ पर विस्तार से लिखूं, परन्तु इससे पहले ही देव योग से मैं बीमार हो गया, मुझे डाक्टरों ने "**गले का कैन्सर**" घोषित कर दिया, उठना, बैठना, चलना, फिरना, खाना आदि सब बन्द। मात्र फलों के रस पर जीवन आधारित हो गया। तो भी मैंने लेटे-लेटे यह बहुत ही संक्षेप में लिखवाया है।

इस सारे शास्त्रार्थ में मौलवी सनाउल्ला ने तो नियोग पर व अन्य विषयों पर विस्तार से कहा, परन्तु मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी ने उनकी किसी बात की कलई नहीं खोली, मोलाना साहब की चतुरता यह रही कि जब भी कभी कलई खुलने की बात आई, तुरन्त पैंतरा बदल गये। और बात वहीं गुप-चुप रह गई, मास्टर साहब, मौलवी सनाउल्ला की इस चालाकी को नहीं समझें।

अपना कहा, तुम आप ही, समझें तो क्या समझे?।
मजा कहने का तब है, जब एक कहे और दूसरा समझे॥

मास्टर साहब ने इस बात का ध्यान नहीं रखा, जैसे "**हलाला**"— "**मुता**" "**कसरते अज्दवाज**" आदि बातों को कहते तो रहे, परन्तु वहां जनता के सामने यह ज़ाहिर नहीं किया कि ये सब क्या बला हैं? इन सबको कभी खोल कर नहीं कहा, जिससे मुसलमानों की कलई खुलती। आप नीचे संक्षेप में इनके बारे में जानकारी हासिल करिये मैं इस समय श्री लाजपत राय जी का हृदय से धन्यवाद करता हूं जो मेरे अस्वस्थ रहते हुए भी इस कार्य को सुचारु रूप से देख रहे हैं, उनकी मेहनत व भाग-दौड़ वास्तव में प्रशंसा के योग्य हैं। कर्मठ व परिश्रमी व्यक्ति की प्रशंसा होनी ही चाहिये। मेरा स्वास्थ्य अब ज्यादा लिखवाने की इजाजत नहीं दे रहा है। अतः आप संक्षेप में उन सब बातों के बारे में देखिये—

१. मुता ?—

किसी भी औरत को कुछ भी उसकी जरूरत की चीज या पैसा देकर उसे दो-चार रोज के लिए अपनी ख्वाहिस (कामना वासना) पूरी करने हेतु रख लिया जावे, काम निकलने के बाद या जब तबियत भर जावे तो उसे छोड़ दिया जाये, वो औरत अपने घर खुश, आदमी अपने घर! इस प्रथा का नाम इस्लामी मज़हब में "**मुता**" है, जो प्राचीन काल से चली आ रही है।

नोट जो सुन्नी मुसलमान हैं वो यह मानते हैं कि एक बार युद्ध के समय में कुछ दिन के लिए यह प्रथा लागू की गई थी, बाद में समाप्त कर दी गई थी। परन्तु सिया फ़िरकापरस्ती कहते हैं कि यह '**मुता**" की प्रथा प्राचीन काल में भी जायज थी, और आज भी जायज है।

एक बार २५-३० साल पहले बुलन्दशहर में वैश्याओं को हटाने का अभियान चला तो वहां की मशहूर वैश्या "**बेगम अख्तर**" ने अदालत में मुकदमा दायर किया कि, यह हमारी प्राचीन परम्परा है, जो हमारे लिए जायज है, ऐसा करने में हमारे मजहब की कोई मनाही नहीं बल्कि रज़ामन्दी है। उसने इस्लामी ग्रन्थों के बड़े हवाले दिये कि यह प्रथा कोई नई नहीं है। एक इस्लामी ग्रन्थ का हवाला बतौर नमूना देखिये--

"सही मुस्लिम जिल्द चहारम (चार) में शबराजनी ने कहा है कि—"**इजाजत दी हमको रसूल ने मुता की**" तथा मैं और एक शख्स दोनों निकले, तो एक औरत को देखा, जिसकी गर्दन मासल्ला क्या सुराहीनुमा लम्बी थी, बस! हमने देखते ही अपने को उस पर पेश किया, तब वह बोली मुझे क्या देते हो? मैंने कहा मेरी चादर हाज़िर है, तभी मेरे रफ़ीक (दोस्त) ने भी कहा कि मेरी भी चादर हाज़िर है, (बोल कहां बिछाऊं?) मगर मेरे

दोस्त की चादर मेरी चादर से नई व खूबसूरत थी, मगर मैं उस अपने दोस्त की निस्बत जवान व सुन्दर था, तो वह जवान पट्ठी जो चढ़ती जवानी की ऊमर में थी, कभी मुझे देखती कभी मेरे दोस्त की चादर को ! क्योंकि इधर मैं उसे अच्छा लग रहा था तो मेरी चादर ठीक नहीं थी। उधर मेरे दोस्त की चादर ठीक थी तो वह दोस्त निकम्मा दिखाई दे रहा था। अन्त में वह जवान ऊंटनी की तरह गर्दन मटकाती हुई बोली कि—"**मुझे तू और तेरी चादर ही काफी है**" उसके साथ चादर तो ठीक है पर कुछ मजाका नहीं आयेगा। और मैं उसके पास तीन रोज रहा, फिर रसूल ने फ़रमाया कि जिसके पास ऐसी औरत हो कि उसने उससे "**मुता**" किया हो तो उसे छोड़ दे, सफ़ा १४२६ मुस्लिम मुतरजम (अनुवाद सहित) बा हवाला मजकूर (यानी ऊपर लिखे का हवाला) तथा ऐसा ही ज़िकर "**सनन्, इब्न् माजा जिल्द सानी" में है**। जहां पहले समय में भूख के वक्त खजूरें भी मुता के बदले देते रहे। देखो सनन्-इब्न् उर्दू मुतरजम सफ़ा ४५ मतबूआ सद्दोकी "लाहोर"। अब आप "**हलाला**" के बारे में देखिये कि ये क्या बला है ?

२. हलाला ?—

कोई मुस्लिम मर्द अपनी औरत को, या औरत अपने मर्द को तलाक ! तलाक !! तलाक !!! इस प्रकार तीन बार कहदे तो वह औरत तलाकशुदा हो जाती है। अगर कुछ समय बाद फिर दोनों की रजामन्दी हो जावे अर्थात् मर्द उसे लाना चाहे और औरत भी आना चाहे तो उसके लिए इस्लाम मजहब में ये शर्त है कि—वह औरत सीधे उस खाविन्द (पति) के घर नहीं आ सकती जब तक कि वह किसी अन्य मर्द के साथ निकाह करके उसकी बीबी के रूप में रातें न गुजार ले ! और अगर इसी बीच उसे उस दूसरे खाविन्द से गर्भ रह जाये तो उसे छुपावे नहीं, तथा जब पहले पति के पास आने की इच्छा हो तो उस दूसरे से तलाक ले, तब पहले वाले के पास आ सकती है। इस पूरी प्रथा का नाम "हलाला" है। और अगर खुदानखास्ता दूसरे पति से तलाक लेने के बाद औरत की तबियत बदल जावे और वह किसी नये मर्द का स्वाद चखना चाहे तो पुनः यही क्रिया दोहरानी पड़ेगी। अर्थात् हर पहले खाविन्द की शरण में जाने से पहले जब तक किसी नये खाविन्द से "चाँद मारी" न करा ले तब तक इस्लाम धर्म उसे पहले पति के पास बीबी के रूप में रहने की इजाजत नहीं देता। अतः साफ पता चला कि इस "**चाँदमारी प्रथा**" का नाम "हलाला" है। देखिये खुद कुरान क्या कहता है ?—

औरत को इस्लाम में तलाक तीन बार दी जाती है। कुरान कहता है कि—"**अब अगर तलाक दे दी तो इसके बाद जब तक औरत दूसरे पति के साथ निकाह न कर ले उसके लिए हलाल नहीं, हाँ ! अगर उसका दूसरा पति उससे विषय भोग करके तलाक दे दे तो मियां बीबी पर कुछ पाप नहीं कि फिर दूसरे से प्रेम कर लें बशर्ते कि दोनों को आशा हो कि अल्लाह की बंधी हुई हद पर कायम रह सकेंगे**॥ २३०॥

(कुरान पारा २ सूबकर रुकू २९)

अब आप "**हलाला**" से अवश्य परिचित हो गये होंगे। आइये अब एक नजर "**कसरते अज्दवाज्**" पर भी डाल लें, ये क्या हैं ? इस्लाम धर्म में यह नाम किस चिड़िया का है ?

(३) कसरते अज्दवाज् ?—

कुरान व प्रामाणिक इस्लामी ग्रंथों के आधार पर हर मुसलमान को एक समय में चार औरतें रखने का अधिकार है। परन्तु रसूल के लिये इसकी कोई पाबन्दी नहीं, वह जितनी चाहे रख सकता है। अर्थात् इस्लाम के अन्दर बहुपत्नी का रिवाज पहले भी जायज था, और अब भी जायज है।

नोटः—बल्कि मुस्लिम प्रामाणिक ग्रंथ तो यहां तक कहते हैं कि अगर आप अपनी विवाहित पत्नियों के अलावा घर में जो औरतें सेविकाओं के रूप में रहती हैं। उनको भी पत्नी के रूप में प्रयोग करना चाहो तो कोई मनाही नहीं है। न ही उन औरतों को मनाही है। अर्थात् ऐसा करना भी जायज करार दिया गया है। इसका नाम है "**कसरते अजदवाज**" ! मैं बिमारी की वजह से मजबूर हूं। इस शास्त्रार्थ में और भी काफी बातें ऐसी आई थी जिन पर लिखना आवश्यक था। अब यहीं समाप्त करता हूं। इतिशम्॥

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"

पच्चपनवां शास्त्रार्थ—

स्थान : **राजमहल—दरबार हाई स्कूल ! जोधपुर (राजस्थान)**

दिनांक : **४ नवम्बर सन् १८८९ ई०**

विषय : **वेद में मूर्ति पूजा है या नही ?**

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : **श्री आचार्य पण्डित ठाकुरप्रसाद जी शास्त्री**

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : **श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री**

शास्त्रार्थ के सभापति : **श्री महाराजाधिराज कर्नल सर प्रतापसिंह जी साहब बहादुर (K.C.S.I.)**

उपस्थिति : **लगभग दो हजार श्रोतागण एवं अनेकों प्रतिष्ठित विद्वान**

नोट : (१) यह शास्त्रार्थ सामग्री **श्री भैरवसिंह जी आर्य (निवासी-जोधपुर)** द्वारा प्राप्त हुई ।

(२) उपरोक्त प्राचीन शास्त्रार्थ का जो स्थान था, वहां पर अब जूनी धान मण्डी में जनाना अस्पताल है ।

(३) यह सामग्री श्री भैरवसिंह जी आर्य ने **"मारवाड गजट"** स्थानीय साप्ताहिक समाचार पत्र की जिल्द नं० **३ से** प्राप्त की है । जो बहुत ही प्रामाणिक व अप्राप्य सामग्री थी ।

—सम्पादक

शास्त्रार्थ से पहले

तारीख २५ अक्टूबर सन् १८८९ ई० को दरबार हाई स्कूल में एक बड़ी सभा हुई, जिसके लिए आर्य समाज की ओर से प्रथम ही विज्ञापन हो चुका था, इस समय में महाराजाधिराज कर्नल सर प्रताप सिंह जी साहब बहादुर के० सी० एस० आई० और अन्य प्रतिष्ठित राजकीय तथा नागरिक महाशय सुशोभित हुए। अनुमान से २००० के लगभग मनुष्य थे। इस सभा में **पण्डित श्रीराम जी शास्त्री** सनातन धर्म की ओर से तथा आर्य समाज की ओर से **पण्डित श्री ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री** शास्त्रार्थ कर्ता के रूप में नियुक्त हुए। शास्त्रार्थ का विषय **"क्या वेदों में मूर्ति पूजा है"** था। आर्य समाज जोधपुर (मारवाड़) राजपूताना के आज सम्वत् २०४४ सन् १९८७ ई० से ९८ वर्ष पूर्व हुए इस शास्त्रार्थ की प्राप्ति (मारवाड़ गजट ४ नवम्बर सन् १८८९ ई० के जिल्द नं० ३) के द्वारा का प्रमाणिक विवरण दिया जाता है। आप पढ़िए और निर्णय करिये—

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

कहिए, कुछ विषय छेड़िए या खण्डन कीजिए, हम मण्डन करेंगे।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

यदि कोई वस्तु ही नहीं तो हम खण्डन किसका करें? हम तो मूर्ति को परमेश्वर मानते ही नहीं, फिर खण्डन काहे का? यदि कोई मण्डन करे तो हम खण्डन करने को उद्यत हैं।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

मूर्ति पूजा पर आपका क्या आक्षेप है? और मूर्ति पूजा को आप क्यों नहीं मानते? क्या "प्रतिमा" शब्द वेद में नहीं है? अथवा "प्रतिमा" शब्द ईश्वर का बोधक नहीं है?

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

वेद में पाषाण धातु आदि की मूर्ति बना के पूजना कही नहीं लिखा है। और न पाषाण आदि की मूर्ति परमेश्वर हो सकता है। इसलिए मूर्ति पूजा हम नहीं मानते। यदि कही उपरोक्त प्रकार से वेद में लेख हो तो बतलाइए? हां प्रतिमा शब्द वेदों में है, परन्तु ईश्वर का बोधक नही बल्कि तोल आदि पदार्थों का बोधक है, आपको तो ऐसा दिखाना योग्य है कि—वेद में ईश्वर आज्ञा देता है कि मेरी धातु पाषाणादि की मूर्ति बना के पूजनी चाहिए।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

"**त्र्यम्बकं यजामहे**······" यह यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के मन्त्र का पद है। और वह ऐसे सिद्ध होता है- "**त्रीणी अम्बकानि नेत्राणियस्य सः त्र्यम्बकः तं त्र्यम्बकं (शिवं) यजामहे**" इसका अर्थ यह है कि तीन नेत्र वाले शिवजी की मूर्ति पूजनी चाहिए।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

"**त्र्यम्बकं**" शब्द से तीन नेत्र वाली मूर्ति लेवेंगे तो इसी पद के आगे "**सुगन्धि पुष्टिवर्धनं**" इत्यादि विशेषण *ठीक नहीं लग सकेंगे, क्योंकि उसमें सुगन्धि पुष्टि वर्धक रूप सामर्थ्य नहीं है। और वह मूर्ति जिसके आप तीन नेत्र* सिद्ध करते हैं स्वयं कुछ नहीं देख सकती, इससे आपका यह अर्थ ठीक नहीं लगता "**त्र्यम्बकं**" से भूमि, स्वर्ग और पाताल आदि सर्व स्थलों में सम्पूर्ण ज्ञान रखने वाला अर्थात् सर्व दृष्टा यह अर्थ करने से आगे के "**सुगन्धि पुष्टि वर्धनं**" इत्यादि पदों का अर्थ ठीक हो सकता हैं।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

"**हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्**" इसका अर्थ यह है कि—सम्पूर्ण भूतों का पति अर्थात् स्वामी है, और सोने की मूर्ति भी है, क्योंकि मन्त्र में "**उत्त**" शब्द है, इसका यहां भी अर्थ है; इससे ऐसा अर्थ ठीक हो सकता है कि—सृष्टि की आदि में वह परमेश्वर सर्व प्राणियों का पति है, और सोने की मूर्ति भी है।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

यह अर्थ कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि सर्व जगत के पहले सुवर्ण भी नहीं था, तो मूर्ति कैसे बनी? और ऐसा अर्थ करने से इसी मन्त्र के आगे का आधा मन्त्र "**सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां**" इत्यादि मन्त्र का अर्थ ठीक नहीं बन सकेगा। यहां ठीक अर्थ यह है कि "**हिरण्यानां तेजोमयानां गर्भः उत्पत्ति स्थानं**" अर्थात् तेजोमय पदार्थों का उत्पत्ति स्थान है। और स्थावर जंगम सम्पूर्ण जगत का मालिक वही ईश्वर है। और सूर्यादि लोकों का धारण भी करता है। सोने की मूर्ति तो दस मन का बोझ भी नहीं उठा सकती यह प्रत्यक्ष है, और आपको "**त्र्यम्बकं**" से तीन नेत्र वाली मूर्ति सिद्ध करने का कोई दृढ़ प्रमाण देना चाहिए। और "**हिरण्यगर्भः**" इस शब्द से ईश्वर—सोने की मूर्ति बन गया? इसका प्रमाण देना चाहिए, किसी मूर्ति में ईश्वर का कोई गुण नहीं दीख पड़ता, इससे आपका किया हुआ अर्थ असंगत है।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

"**त्र्यम्बकं**" शब्द महादेव का वाची है। इसमें आधुनिक "हलायुद्ध कोष" प्रमाण है, आपने कहा कि ईश्वर नहीं होने से मूर्ति ईश्वर नहीं हो सकती। क्या माता-पिता के सारे गुण सन्तानों में नहीं होने से सन्तान माता-पिता के नहीं कहलायेंगे? ईश्वर साकार भी है और निराकार भी है।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

"**त्र्यम्बकं**" शब्द से तीन नेत्र वाली मूर्ति होने में "निघण्टु" आदि का प्रमाण दीजिए। यह निघण्टु आपके सामने रखा है! निकालिए!! आपने मूर्ति में और ईश्वर में माता-पिता का दृष्टान्त दिया, इससे तो ईश्वर और मूर्ति दो हो गए, क्योंकि माता-पिता जनक और सन्तान जन्य होने से अलग-अलग है। वैसे ही ईश्वर जन्य-जनक सम्बन्ध से मूर्ति से प्रथक हो गया। और ईश्वर का गुण न होने से अवश्य मूर्ति ईश्वर नहीं। क्योंकि मूर्ति न बोलती है, न चलती है तो वह ईश्वर कैसे हो सकती है? और आपने ईश्वरको साकारओर निराकार बतलाया, सो कैसे हो सके? क्योंकि अत्यन्त परस्पर विरुद्ध धर्म कभी एक स्थान में नहीं रह सकते, जैसे रात और दिन तथा चोर और साहूकार आदि विरुद्ध धर्म हैं, वैसे साकार और निराकार भी हैं, यदि कहो कि ऐसे ही हैं तो आपके सारे साकार अवतार तो मर गए हैं, अब निराकार का ही आश्रय लेना चाहिए।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री –

"**सहस्त्रशीर्षा**" इत्यादि वाक्यों से ईश्वर सावयव सिद्ध होता है, इसी से मूर्ति माननी चाहिए ।

श्री पण्डित आचार्य ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

यहां "**सहस्त्र**" शब्द अनन्त का वाची है, अर्थात् "**सहस्त्रशः**" सिर और नेत्र हम लोगों के परमात्मा में ही हैं । तात्पर्य यह है कि सबका आधार परमात्मा ही है । अथवा उसके नेत्र, सिर-सर्वत्र हैं । इससे सर्व व्यापक हुआ । यदि सावयव मानोगे तो "**सहस्त्राक्ष**" और "**सहस्त्रपात**" नहीं बन सकेगा । और ऐसा करने से काणां और लंगड़ा बन जाएगा । क्योंकि एक सिर पीछे दो नेत्र और दो पैर हुआ करते हैं ।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

यह कोई नियम नहीं है कि एक सिर पीछे, दो ही नेत्र और दो ही पैर हों, अपितु भ्रमर के एक सिर होता है और पैर छः और सर्प के सिर होता है कान और पैर नहीं, इसी से इसको संस्कृत में "**चक्षुश्रवा**" और उरग भी कहते हैं ।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

भ्रमर आदि की सत्रष्ठी (सृष्टि) के अनुसार यदि ईश्वर का भी अवतार मान लोगे, जो कि आपके पुराणों के भी विरुद्ध है तो "**स भूमि स पर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठदशांङ्गुलम्**" कैसे लगेगा ? जिसका अर्थ यह है कि परमात्मा सब जगत के चारों तरफ से व्याप्त होकर और उससे अधिक भी है क्योंकि साकार मूर्ति एक ठौर खड़ी रहेगी, न कि सर्वत्र व्याप्त होकर जगत से अधिक भी रहे ।

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

"**यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवा**" इसका अर्थ यह है कि यद्यपि यज्ञ धातु यह "**यज्ञ, देवपूजा, संगतिकरण, दानेषु,**" इन चार अर्थों में हैं, तथापि धातु के अनेक अर्थ मान के हम यज्ञ शब्द से मूर्ति अर्थ करेंगे । और आपने कहा कि मूर्ति बोलती नहीं । सो तो जैसे बड़े मनुष्य अपने बड़प्पन के कारण कुछ भी हानि लाभ होने पर नहीं बोलते वैसे ही वह अपने बड़प्पन से नहीं बोलती ।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

यज्ञ शब्द चारों अर्थों में न लगा के अनेकार्थ मान के असम्भव मूर्ति अर्थ लेवेंगे तो अनेक अर्थ मान के वृक्ष क्यों नहीं मान लेते ? और मूर्ति की अंगुली काट के चोर अंगूठी ले जावें और फिर भी न बोले तो यह मूर्ति का कैसा बड़प्पन है ? मूर्ति को कईयों ने तोड़ डाली, तो भी नहीं बोली । यह जन्म भर के लिए बड़प्पन आपकी मूर्ति ने किया है । वाह जी ! शोक है आपकी मूर्ति के जन्म भर के मौनव्रत पर ! (श्रोताओं में चारों तरफ हंसी व तालियों की गड़गड़ाहट·········)

श्री पण्डित श्रीराम जी शास्त्री—

"**कासीत प्रतिमा किं नाम**" इसका अर्थ यह है कि ईश्वर के ज्ञान का साधनभूत "**प्रतिमा**" ही है ।

श्री आचार्य पण्डित ठाकुर प्रसाद जी शास्त्री—

यह कौन सा वेद मन्त्र है ? और इसके कहने से भी तो मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं हो सकती, वहां पर यह अर्थ है कि—कार्य रूप जगत को देख के कारण रूप परमेश्वर का ही ज्ञान होना योग्य है । इससे मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं हुई । बस ! इसके बाद करतल ध्वनि के साथ सभा विसर्जित हुई । एवं शास्त्रार्थ समाप्त किया गया । □

छप्पनवां शास्त्रार्थ—

स्थान : "नरसिंहगढ़" (राजस्थान)

दिनाङ्क : १५ अक्टूबर सन् १८८८ ई० (बूंदी शास्त्रार्थ से पहले)

विषय : गुरुमन्त्र एक है वा अनेक ? यदि अनेक हैं तो उनमें से सत्य कौन-सा है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : (१) ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज
(२) श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी सरस्वती

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित यमुनादास जी (खिलचीपुर निवासी)

शास्त्रार्थ के मध्यस्थ : श्री नरसिंहगढ़ाधीश महाराजा प्रतापसिंह जी

नोट :—यह शास्त्रार्थ सामग्री "श्री भैरवसिंह जी आर्य" जोधपुर द्वारा प्राप्त हुई, उनके हम हृदय से आभारी हैं।

"संकलन कर्त्ता"

शास्त्रार्थ से पहले

पाठकों को ज्ञात हो कि, महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के देहावसान के पश्चात ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी महाराज ने महर्षि के उद्देश्यों की पूर्ति में अपनी आयु समर्पित कर दी और निरन्तर तीस वर्षों तक वैदिक नाद गुंजाया और भारतीय नरेशों को विशेष रूप से सदुपदेश दिए। ब्रह्मचारी जी ने जो अनेकों शास्त्रार्थ और शंका समाधान किए उनमें से, ब्रह्मचारी जी की १०१ वीं जयन्ती जो भाद्रपद शुक्ल १४ सं० २०१६ विक्रमी गुरुवार तारीख १३-६-१६६२ को हैं, के उपलक्ष में श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी और पौराणिकों के मध्य हुआ यह **"नरसिंहगढ़ शास्त्रार्थ"** सादर सप्रेम भेंट किया जाता है। इस शास्त्रार्थ का यह प्रभाव पड़ा कि महाराज नरसिंह गढ़ ने ५०० से अधिक जागीरदारों सहित कण्ठी के स्थान में यज्ञोपवीत धारण किया। सिहोर (म.प्र.) से श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज नरसिंहगढ़ आए, और नगर के बाहर महादेव के मन्दिर में ठहरे। नगर में जब स्वामी जी के आगमन के समाचार फैले तो बहुत लोग आने लगें, स्वामी जी की विद्वता की ख्याति नगर भर में फैल गई, राज पण्डित आए और वार्तालाप के पश्चात संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया, स्वामी जी के नरसिंह गढ़ आने का समाचार **"नरसिंहगढ़ाधीश महाराजा प्रतापसिंह जी"** तक पहुंचा और वे स्वामी जी तक मिलने के लिए पधारे। एक घण्टे से अधिक ठहरे और वार्तालाप से अधिक प्रसन्न हुए और आपने-अपने प्रतिष्ठित मित्र ठाकुर मेहरसिंह जी को आज्ञा दी कि स्वामी जी महाराज को किले में लाकर चातुर्मास तक ठहरावें। ठाकुर साहब के विचार आर्य सामाजिक थे, और ये महाराजा साहब के हार्दिक मित्र थे। अतः स्वामी जी महाराज को बड़े आदर सत्कार और समारोह से किले में ले गए और सवारी के लिए हाथी भेजा गया। यहां स्वामी जी अनुमानतः चार महिनों तक ठहरे। और महाराजा साहब से नित्य दोनों समय आर्य धर्म पर वार्तालाप होता रहा महाराजा और महारानी साहिबा बल्लभ सम्प्रदाय के शिष्य थे। इन्होंने जब स्वामी जी की बातें सुनी तो खिलचीपुर निवासी विद्वान पण्डित यमुनादास जी को बुलवाया और शास्त्रार्थ का आयोजन (प्रबन्ध) किया। महाराजा साहब ने शास्त्रार्थ के निमित्त एक दरबार किया और उभय पक्षों से आठ प्रश्नों के उत्तर देने की जिज्ञासा प्रकट की, प्रारम्भ में महाराजा साहब ने कहा······।

श्री महाराजा प्रताप सिंह जी—

वर्तमान समय में हम जिधर भी आंख उठा कर देखते हैं तो इस संसार में बहुत से मत देखने में आते हैं। और प्रत्येक मत वाला अपने मत को सत्य और अन्य मतों को मिथ्या बतलाता है, इन सब मतों में वेद का मत (जिसको मानने वाले सर्व आर्य यानी सब हिन्दू हैं) भी एक मत हैं, इन हिन्दुओं में भी बहुत से मत हैं, जैसे कोई शैव, कोई शाक्त, कोई वैष्णवादि है। इनमें भी ये लोग आपस में ईश्वर का रूप अलग-अलग वर्णन करते हैं, कोई शिव कोई, विष्णु, कोई गणेश, कोई शक्ति, कोई सूर्य आदि पृथक २ बतलाते हैं। और इनका स्थान भी पृथक २ कथन करते हैं। अर्थात् कोई गोलोक, कोई वैकुण्ठ, कोई क्षीर समुद्र, व कैलाशादि में बतलाते हैं। अब इन सर्व मतावलम्बियों में कौन की बात सत्य समझें ? हम इस विचार में थे कि देव योग से इसी समय में श्रीमान् स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी महाराज, स्वामी नित्यानन्द जी महाराज और श्रीमान पण्डित यमुना दास जी ये विद्वान उपस्थित हुए। अतएव हम इन विज्ञों से ईश्वर का स्वरूप तथा ईश्वर का स्थान निर्णय किया चाहते हैं, हम इन (निम्न) आठ प्रश्नों से सत्य और असत्य को ठीक-ठीक जान लेवें। वे आठ प्रश्न इस प्रकार हैं।

शास्त्रार्थ विषयक आठ प्रश्न—

(१) गुरु मन्त्र एक है वा अनेक ? यदि अनेक हैं तो उनमें से सत्य कौन सा है ?

(२) ईश्वर क्या पदार्थ है और कहां रहता है ? साकार है वा निराकार ? यदि साकार है तो चतुर्भुज वा त्रिनेत्र वा वक्रतुण्डादि में से किस प्रकार का है ?

(३) चार सम्प्रदाय दादूपन्थी, कबीर पन्थी आदि मतों में से कौन सा मत सत्य है ?

(४) ईश्वर के अवतार १० वा २४ हैं ? और वेद में कितने लिखे हैं ?

(५) हमको नित्य क्या-क्या कर्म करने चाहिए ?

(६) संसार का कर्त्ता कौन है ? और उसने किस प्रकार से संसार को बनाया ?

(७) मुक्ति क्या पदार्थ है ? कोई स्थान विशेष है वा क्या ? और किन कर्मों से वह प्राप्त होती है ?

(८) ईश्वर की उपासना का प्रकार क्या है ?

बस ! इन्हीं विषयों पर हम सत्य-सत्य निर्णय जानना चाहते हैं, पण्डित लोग हमें वेद के अनुसार इन प्रश्नों पर वाद-विवाद कर सही नीर-क्षीर करें।

"**प्रतापसिंह**"
(नरसिंह गढ़ाधीश)

प्रथम दिन का शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित यमुना दास जी -

सज्जनों ! हम पहले महाराज जी के प्रथम प्रश्न पर ही विचार करेंगे पश्चात बारी-बारी शेष सातों प्रश्नों पर शास्त्रार्थ होगा। "ब्रह्म गायत्री मन्त्र" का जप करना आपको उचित है, और जो गुरू आपको मन्त्र देगा वह गायत्री मन्त्र ही देगा।

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

आप कहते हैं कि "**ब्रह्म गायत्री**" का उपदेश होना चाहिए, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य के वास्ते और आप तो "**क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**" इत्यादि वेद विरूद्ध गुरु मन्त्र का उपदेश क्यों करते हैं ?" **श्री कृष्णः शरणं मम्**" इत्यादि मन्त्र वेदों के अनुकूल हैं तो हम आपसे पूछते हैं कि ये मन्त्र कौन से वेद के कौन से अध्याय के कौन से सूक्त में लिखे हैं। और ऐसे ही और सम्प्रदायों के मन्त्र भी आपको वेदों में दिखलाने होगें, क्योंकि आपने नियम पत्र में शंकर मत के सहित चारों सम्प्रदायों के सब ग्रन्थों का प्रमाण मानना स्वीकार किया है।

श्री पंडित यमुनादास जी -

वेद और मनु के अनुकूल समय में जो क्षत्रिय जातकर्मादिक संस्कार युक्त होकर श्रद्धापूर्वक उपनयन करते हैं उनको उपनयन समय में वेदोक्त मन्त्रोपदेश किया जाता है। और उपदेश योग्य यावत् कर्म में वेदोक्त मन्त्र संपूर्ण

वेदाध्ययन और वेद का अर्थ विचार क्षत्रिय सम्बन्धी प्रजापालनादि कर्म में उपयोगी सब सद् ग्रंथ अध्ययन करना चाहिए और जो क्षत्रियादि जाति वेद मनु के उक्त समय में उक्त संस्कार रहित हो गए और जिनके कुल में अपना क्षत्रियादिक कर्म परम्परा से छूट गया उनको मनुस्मृति में सावित्रीपतित कहते हैं, उनमें दो भेद हैं जो सावित्रीपतित होकर पीछे परिताप करें और उनको यह अभिलाषा होवे कि हम पीछे क्षत्रिय धर्म अंगीकार करेंगे उनको स्मृति के अनुकूल प्रायश्चित देकर शुद्ध क्षत्रियादि का सब संस्कारादि किया जावे। और वेदाध्ययन आदि का उनको अधिकार होगा, और कितनेक क्षत्रियादि को दैववश में ऐसा कुव्यवहार पड़ा है, कि शुद्ध धर्म सर्वथा छूट गया, उनसे पीछे शुद्ध धर्म सिद्ध होना अति कठिन संभावित है, इनके वास्ते साधारण ईश्वर नाम का उपदेश करते हैं, इसमें प्रमाण महाभारत शांकर भाष्य आदि में प्रमाण "**हरिर्नामैव नामैव**" यह प्रमाण महाभारत शांकर भाष्य में है।

[शास्त्रार्थ का द्वितीय दिन]

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

प्रथम तो जो हमने खण्डन किया था, उसका उत्तर पण्डित जी ने नहीं दिया, क्योंकि हमारा कहना यह था कि चारों वेदों में आप ऐसा बतलावें कि साम्प्रदायिक मन्त्रों का उपदेश क्षत्रियादिक को होना चाहिए, सो वेदों में तो आपने कहीं बताया नहीं। हमारे कहने के विरुद्ध आपका उत्तर है। दूसरा वो कि क्षत्रिय धर्म से पतित हो गए हैं, उनके वास्ते प्रायश्चित कराके गायत्री मंत्र ही देना चाहिए। और पण्डित जी कहते हैं कि जो क्षत्रिय धर्म पर नहीं आ सकता उनके वास्ते साधारण ईश्वर नामादिक देना चाहिए इस पर हम यह पूछते हैं कि जो क्षत्रियादिक सुधर्म पर नहीं आ सकता है, उसके लिए सम्प्रदायी मन्त्र का उपदेश किया जावे यह किस वेद में या किस स्मृति में लिखा है? तीसरे—जो श्लोक पण्डित जी ने लिखाया है, यह वेद विरुद्ध है। क्योंकि इस श्लोक का आशय यह है कि हरि के केवल नाम से ही मुक्ति होती है। परन्तु वेद में लिखा है कि—"**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" अर्थ यह है कि, परमात्मा के ज्ञान बिना मुक्ति नहीं होती, इसलिए महाभारत का प्रमाण वेद विरुद्ध होने से माना नहीं जा सकता, जैसा मनुस्मृति में लिखा है कि "**या वेद बाह्याः स्मृतयो**' वेद के विरुद्ध कोई ग्रन्थ नहीं मानना चाहिए। चौथा—क्या गायत्री ईश्वर का नाम नहीं है? जो पतित क्षत्रिय को गायत्री का उपदेश न करना, पण्डित जी कहते हैं सो ये बात कौन से वेद में या कौन सी स्मृति में लिखी है कि पतित क्षत्रिय को गायत्री मन्त्र का उपदेश न करके साम्प्रदायिक मन्त्र का उपदेश करना चाहिए?

श्री पण्डित यमुना दास जी—

स्वामी जी ने कहा, ईश्वर का नाम क्षत्रिय को सेवन करना चाहिये, इसमें वेद का प्रमाण चाहिए— "**सोऽमृता अमृतस्येति भूरि नाम मनामहे**" यह वचन मनुष्य मात्र को ईश्वर के नाम के सेवन का अधिकार सिद्ध करता है, यह उत्सर्ग वचन है। और तीन वर्ण को वेद मन्त्र द्वारा ईश्वर सेवनादि करना यह अपवाद वचन है। अब शुद्ध तीन वर्ण से बाकी यावन् मनुष्य को साधारण नाम का सेवनादिक में अधिकार है।

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

पण्डित जी कहते हैं, सावित्री पतित क्षत्रियादिक को ईश्वर नाम का अधिकार है। और वेद स्मृति के अनुकूल संस्कार के सहित क्षत्रियादिक को गायत्री मन्त्र का अधिकार है। इसमें पण्डित जी कहते हैं कि, एक उत्सर्ग

होता है, और एक अपवाद होता है। यह पण्डित जी का कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जहां अपवाद प्रवृत्त होता है वहां उत्सर्ग प्रवृत्त नहीं होता और हम देखते हैं कि बहुत से ब्राह्मणादिक गायत्री का भी उपदेश लेकर पीछे से कृष्ण मन्त्र लेते हैं, और गुंसाई जी वगैरह ब्राह्मणादि को कृष्णादिक मन्त्र का उपदेश करते हैं, यह पण्डित जी के कथन के विरुद्ध हैं। और शास्त्र का यह नियम है कि जहां अपवाद प्रवृत्त हो जाए वहां उत्सर्ग प्रवृत्त नहीं होता।

श्री पण्डित यमुना दास जी—

जिन ब्राह्मणादिक को वेद के कर्म का पूर्ण अधिकार है, यानी स्नान सन्ध्या ब्रह्मयज्ञादि का पूर्ण अधिकार है उसको महात्मा पुरुष गायत्री के जप का और गायत्री के अर्थानुसंधान का ही दृढ़ उपदेश करेंगे, और किसी सम्प्रदायिक मन्त्र का उपदेश नहीं करेंगे ?

[शास्त्रार्थ का तृतीय दिन]

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

अब पण्डित जी ने इस बात को तो अंगीकार कर लिया कि जिन ब्राह्मण क्षत्रियादि को उपनयन संस्कार यानी ब्रह्म गायत्री का उपदेश किया गया है, उन ब्राह्मण क्षत्रियादि को वल्लभादि जो मन्त्र हैं उन मन्त्रों को लेना न चाहिए। अब रहा यह कि जो पतित ब्राह्मण क्षत्रियादिक हैं उनको प्रायश्चित कराके पुनः उपनयन संस्कार कराना चाहिए, यह मनुस्मृति में मनु जी महाराज ने ग्यारहवें अध्याय में कहा है, अब यह कहीं पर विधि नहीं पाई जाती है कि जो पतित क्षत्रियादिक हैं उनको प्रायश्चित न कराके और उपनयन संस्कार न कराके सम्प्रदायी मन्त्रों का उपदेश लेना चाहिए, यदि पण्डित जी ऐसा कहें कि जो पतित क्षत्रियादिक हैं वे किसी प्रकार से स्वधर्म पर नहीं आ सकते हैं। सो यह बात सर्वथा झूठ है। क्योंकि तीन कृच्छ व्रत हर एक मनुष्य कर सकता है। उसमें कुछ खर्च भी नहीं होता है। अब किसी मनुष्य से पूछा जाए कि तुम तीन कृच्छ् व्रत करने से अपने असली वर्ण पर आ जाओगे, और यदि न करोगे तो पतित (यानी पापी) बने रहोगे। और तुम्हारा किसी जात वाले से कुछ सम्बन्ध नहीं रहेगा, ऐसा मनु जी ने दूसरे अध्याय में लिखा है। तुमको कोन सी बात अंगीकार है ? तो वह मनुष्य यही कहेगा कि, तीन व्रत करके अपने पूर्व वर्ण पर आरूढ़ हो जाऊं, और ऐसा वह कभी नहीं कहेगा कि मैं सम्प्रदायी मन्त्र वालों के मन्त्र को लेकर पतित बना रहूंगा। और अपने इस लोक और परलोक के अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूपी फल से रहित होके मनुष्य जन्म को नष्ट-भ्रष्ट करुं, क्योंकि गीता में लिखा है **"स्वे-स्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः"** यानी अपने-अपने वर्णाश्रमों के कर्मों को जो करते हैं उनका ही कल्याण होता है अन्यथा नहीं, और हमने पहले जो कुछ पण्डित जी के कथन का खण्डन किया है, उसका पन्डित जी ने एक भी उत्तर नहीं दिया है। अब पण्डित जी को उचित है कि उन सबका पते वार उत्तर दें।

श्री पण्डित यमुनादास जी—

स्वामी जी ने जैसा लिखा है वैसा मैंने मन्जूर नहीं किया, स्वामी जी लिखते हैं जिसने ब्रह्मगायत्री उपदेश लिया उसको सम्प्रदायी मन्त्र नहीं लेना चाहिए। पीछे देखा जाय, मैंने यह नहीं लिखा है कि जो ब्राह्मणादिक वर्ण जात कर्म संस्कार युक्त होवे और संकल्प ब्रह्मकर्मादि आचरण करते हों उन ब्राह्मणादिक को महात्मा पुरुष गायत्री के

अर्थानुसन्धान का उपदेश करते हैं, मैंने यही लिखा है, स्वामी जी लिखवाते हैं कि—पण्डित जी कहते हैं जो सावित्री पतित क्षत्रियादिक होते हैं उनको प्रायश्चित पूर्वक उपनयन कराके सम्प्रदायी मन्त्र लेना चाहिए, जो सावित्री पतित क्षत्रियादिक किसी प्रकार सुधर्म पर नहीं आ सकते उनको सम्प्रदायी मन्त्र लेना। और स्वामी जी लिखते हैं कि यह झूठ है। तीन कृच्छ्व्रत हरेक मनुष्य कर सकता है। और कृच्छ् का अर्थ स्वामीजी लिखवाते हैं। अब इसमें मेरा यह कहना है कि अपने धर्म को सर्वथा पूर्ण साधने का निश्चय जिस क्षत्रियादिक को है उनको हम कभी नहीं रोक सकते। तीन कृच्छ् व्रत कौन से हैं, इसमे हमको बड़ी शंका है मनुजी ने कृच्छ् कई तरह के लिखे हैं, उसमें तीन कृच्छ् व्रत कौन कृच्छ् हैं ? मनुस्मृति में बताना चाहिए। और सावित्री पतित को तीन व्रत से प्रायश्चित होने से सशुद्ध होते हैं, यह भी मनुवाक्य बताना चाहिए, जैसा आप कहते हैं वैसा मनुजी नहीं लिखते हैं। और लिखा कि पतित को सम्प्रदायी मन्त्र विधान है सो इसका जवाब उत्सर्ग वाक्य प्रथम कह दिया और यह काम तीन व्रत से नहीं होता, कुछ और भी करना पड़ता है, और प्रायश्चित करके पीछे भी सर्वधर्म करना पड़ता है। तब क्षत्रियादिक वर्ण होता है। अब किसी क्षत्रिय को साफ-साफ अपना धर्म सुना के प्रायश्चित सुना के सन्मुख करिए कि इस ग्राम में कितने मंजूर होते हैं ? और आजन्म कौन साधेगा ? देखिए प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्वामी लिखते हैं हमारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, इस पर कहता हूं कि मैंने सबका उत्तर दिया। आप हठ करते हैं या समझते नहीं हैं मिसाल बुद्धिमानों को बताई जावे। इति ॥

नोट:—

इस प्रकार यह तीसरे दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। उपरि उदधृत कथन पण्डित जी का अन्तिम कथन था, इसके पश्चात स्वामी जी ने उनके कथन का पूर्वापर विरोध दिखाया, और यह लेख सभा को सम्बोधित करते हुए पण्डित जी के पास भेजा। यह शास्त्रार्थ अपने समय में बड़ा ही प्रसिद्ध हुआ कारण····· आप इसके अन्त में **"शास्त्रार्थ का परिणाम"** नामक पाठ देखिए, इस शास्त्रार्थ के बाद ही **"बून्दी राज्य में स्वामी नित्यानन्द जी महाराज ने शास्त्रार्थ किया था"** जो अत्याधिक प्रसिद्ध हुआ, जिसके सम्बन्ध में, श्री पण्डित गुरुदत्त जी विद्यार्थी व श्री पण्डित नरदेव जी शास्त्री जी ने कहा था कि—**"महर्षि दयानन्द जी की मृत्यु के पीछे ऐसा महत्व पूर्ण कोई शास्त्रार्थ आर्य समाज ने नहीं किया।"** अब आप इस शास्त्रार्थ का उपसंहार रूप श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज का अन्तिम निवेदन पढ़िए।

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

अब बुद्धिमान लोगों ! पण्डित जी की विद्या और बुद्धि को देख लीजिए, कि इनके कथन में कितना पूर्वापर विरोध हैं ? प्रथम तो पण्डित जी लिखते हैं कि क्षत्रियादि को ब्रह्मगायत्री मन्त्र ही का उपदेश होना चाहिए और फिर लिखते हैं कि जो क्षत्रिय जात कर्म संस्कार युक्त होकर श्रद्धापूर्वक उपनयन करते हैं उनको वेदोक्त मन्त्र का उपदेश किया जाता है। फिर लिखा है कि जो क्षत्रिय अपने धर्म पर नहीं आ सकते, उनके वास्ते हम ईश्वर का नाम अर्थात् साम्प्रदायिक मन्त्र का उपदेश करते हैं। तो इस बात से साफ जाना गया कि, अधर्मियों के वास्ते साम्प्रदायिक मन्त्र का उपदेश है। यह पण्डित जी ने खुद लिख दिया है और पण्डितजी ने खुद लिखवाया है कि पतित क्षत्रिय के वास्ते ईश्वर के नाम का उपदेश करना चाहिए। यह महाभारत और शांकर भाष्य में लिखा है, अब इस बात से साफ मालूम होता है कि, पण्डित जी ने महाभारत व शांकर भाष्य का दर्शन भी नहीं किया है। क्योंकि महाभारत व शांकर भाष्य में ये बातें कहीं भी नहीं लिखी कि पतित क्षत्रिय को सम्प्रदायी मन्त्र देना चाहिए और यह भी देखिए कि—पण्डित जी से पूछते कुछ और हैं, पण्डित जी कहते कुछ और हैं, जैसे पूछा गया था कि—"पतित

क्षत्रियादि को सम्प्रदायी मन्त्र का उपदेश करना यह कौन से वेद में या स्मृति में लिखा है?" इसका उत्तर पण्डित जी देते हैं कि ब्रह्मचारी जी ने कहा कि क्षत्रियादिक को ईश्वर नाम सेवन करना इसमें वेद प्रमाण चाहिए। अब देखिए पण्डित जी से पूछा क्या गया था और जवाब क्या मिला? और यह पण्डित जी की उल्टी समझ देखिए कि पण्डित जी ने लिखवाया कि जिन ब्राह्मणादि को स्नान सन्ध्या ब्रह्मयागादि का अधिकार है उनको महात्मा गायत्री मन्त्र का उपदेश करेंगे, अब विचारिये टुक ध्यान देकर कि ऐसा कौन मनुष्य है कि जिसे स्नान का अधिकार न होगा? और यह देखिये कि शास्त्र की तो यह आज्ञा है कि पहले गायत्री मन्त्र का उपदेश करके फिर उनको सन्ध्या ब्रह्मयज्ञ का अधिकार होता है, और पण्डित जी का उल्टा कहना यह है कि, सन्ध्या ब्रह्मयज्ञ का अधिकारी हो जावे तब उसको गायत्री मन्त्र देना चाहिए। धन्य है पंडित जी की विद्या और बुद्धि को! अब एक यह भी पण्डित जी का झूठ देखिए कि, साफ तो पण्डित जी ने लिखवाया है कि सम्प्रदायी मन्त्र लेना चाहिए और पण्डित जी कहते हैं कि, मैंने यह नहीं कहा। तो उत्सर्ग अपवाद से क्या बात सिद्ध हुई? वाह! पण्डित जी!! आपकी मिथ्या लीला को देखकर बुद्धिमान लोग हंसेंगे। और पण्डित जी ने लिखवाया है कि तीन कृच्छ्र व्रत कौन से हैं? और पतित, तीनकृच्छ्र व्रत करने से शुद्ध होता है। यह मनुस्मृति में कहीं नहीं लिखा बल्कि पण्डित जी का स्वयं का कहना है, अब पण्डित जी के इन प्रश्नों के उत्तर देते हैं, परन्तु इन प्रश्नों से बिल्कुल मालूम होता है कि पण्डित जी ने मनुस्मृति को नहीं पढ़ा है। अब प्रमाण देते हैं। **येषां द्विजानां सावित्री, नानूच्येत यथाविधि। तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान यथाविध्युपनाययेत॥** यह मनुस्मृति के ११ वें अध्याय का १९१ वां श्लोक है जिसका अर्थ है कि—जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, को अपने अपने नियत समय पर अर्थात् ब्राह्मण को आठ से सोलह वर्ष तक गायत्री मन्त्र व यज्ञोपवीत न दिया जावे उसको तीन कृच्छ्र व्रत करा पुनः गायत्री मन्त्र देना चाहिए। और क्षत्रिय को ग्यारहवें से २२ वर्ष तक और वैश्य को १२ वें वर्ष से २४ वें वर्ष तक गायत्री व यज्ञोपवीत न दिया जावे तो उनको तीन कृच्छ्र व्रत कराके यज्ञोपवीत देना चाहिए। अब जो पूछा कि कौन सा कृच्छ्र कराना चाहिए? सो मनु जी ने तो इसका नियम नहीं किया कि वो ही कृच्छ्र कराना चाहिए, परन्तु टीकाकार मेधातिथि आदि ने तीन प्रजापति कृच्छ्र लिखें हैं। अब पण्डित जी का एक कहना यह है कि किसी क्षत्रिय को अपना धर्म सुना कर धर्म पर चलाना मन्जूर कराइए। इस नगर में कितने क्षत्रिय अपने धर्म पर चलना मन्जूर करेंगे? अब पण्डित जी का कहना यह है कि सब धर्म क्षत्रिय पाल सकें तब उनको जनेऊ और गायत्री मन्त्र देना चाहिए। इसका जवाब यह है कि ब्राह्मणादि भी सब धर्म पालन कर सकें तभी उनको भी जनेऊ, व गायत्री मन्त्र लेना चाहिए। जैसा ब्राह्मण के ये कर्म हैं। **"शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्"** (भगवद्गीता) मन को जीतना, इन्द्रियों को जीतना, सर्व तप करना, शुद्ध रहना, नम्रता रखना, बाह्य ज्ञान होना, शिल्प, विद्या, कला कौशल का ज्ञान और आस्तिक्य होना ये कर्म ब्राह्मण के हैं, अब पण्डित जी के कथनानुसार ये कर्म जिन ब्राह्मणों में न होवें उन ब्राह्मणों को भी जनेऊ और गायत्री का उपदेश न देना चाहिए सो यही हाल पण्डित यमुनादास जी का भी है। क्योंकि पण्डित जी ब्राह्मण के धर्म पर आरूढ़ होते तो गोकुलिये गुंसाई के चेले क्यों होते? क्योंकि पण्डित जी ने प्रथम लिखवाया है कि पतित तीन वर्णों को सम्प्रदायी मन्त्र लेना चाहिए। अब पण्डित जी सम्प्रदायी मन्त्र लेकर आप भी पतित हुए औरों को भी पतित करते हैं, यह बड़े शोक की बात है। अब बुद्धिमान लोग सत्यासत्य का विचार आप ही कर लेंगे, और बुद्धिमानों को यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि शास्त्रार्थ के नियमों में एक यह नियम है कि जिस विषय का शास्त्रार्थ होवे उस विषय के समाप्त होने पर दूसरा विषय पकड़ना चाहिए, इस नियम के विरुद्ध चलकर पण्डितजी ने अपनी प्रतिज्ञा की हानि कर ली।

श्री पण्डित यमुनादास जी—

वेदों में राजाओं की कथा है, और ब्रह्मचारी जी कहते हैं कि वेद में तो किसी मनुष्य का नाम नहीं है। इसलिये स्वामी जी वेद को नहीं जानते।

नरसिंहगढ़ाधीश श्री हुजूर महाराजा साहब—

जो शास्त्रार्थ हो रहा है, उसके पूरा होने के बाद यह शास्त्रार्थ करना कि "वेद में किसी आदमी का नाम है या नहीं" ?

श्री ठाकुर मेहरसिंह जी—

अब पण्डित जी स्वमुख से वेदों के मन्त्र सहित अर्थ को लिखवावें और ब्रह्मचारी जी भी लिखवावें । जो लिखवाता-लिखवाता हार जावेगा वो ही वेद नहीं पढ़ा है । (इस बात को पण्डित जी ने कान पर को उतार दिया) ।

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

पण्डित जी महाराज ! आप बुरा न मानिये, आपने न तो व्याकरण पढ़ा और न छः शास्त्रों में से कोई शास्त्र पढ़ा और वेद को भी आप नहीं पढ़े । जो आप पढ़े होते तो हम एक वेद का मन्त्र बोलते हैं, तो बताओ यह कौन से वेद का है ? वो मन्त्र ये है..."**वेनस्तत् पश्यन्**..." (यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय का आठवां मन्त्र है जिसे पण्डित जी ने कह दिया कि यह वेद का मन्त्र नहीं बल्कि उपनिषद का वचन है ।) **ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज**...पण्डित जी महाराज तुम ! लिख दो के ये वेद का मन्त्र नहीं है ।

श्री पंडित यमुनादास जी—

स्वामी जी आप भी लिख कर दो कि वेद में राजाओं की कथा नहीं है ।

ब्रह्मचारी श्री स्वामी नित्यानन्द जी महाराज—

(लिख कर देते हुए) लीजिए पण्डित जी ! मैं लिख कर दे रहा हूं कि—वेद में किसी राजा की कथा नहीं है । किन्तु वेद अनादि हैं । अब आप लिखिए कि मेरे द्वारा कहा गया वचन वेद मन्त्र नहीं है ।

नोट :—

बार-बार आग्रह करने के बाद भी पण्डित जी ने नहीं लिखा, जब चारों ओर से कहा गया तो झल्ला कर कहने लगे कि "ये वेद में भी है तथा उपनिषद में भी" चारों तरफ हंसी ··इस प्रकार महाराजा साहब के किये हुए प्रथम प्रश्न के समाधान करने में ही पण्डित यमुनादास जी ने तीन दिन बिता कर अपने पक्ष की निर्बलता का पूरा प्रमाण दे दिया, और आगे के शेष सात प्रश्नों का समाधान करने से साफ इन्कार कर दिया । अन्त में स्वामी जी ने प्रत्येक प्रश्न पर व्याख्यानों द्वारा दरबार में उपस्थित सब सज्जनों की सन्तुष्टि की ।

शास्त्रार्थ का परिणाम—

इस शास्त्रार्थ के परिणाम स्वरूप महाराजा और उसकी श्रद्धालु प्रजा को वैदिक धर्म की सत्यता पर निश्चय हो गया और अनुमान ५०० क्षत्रियों के सहित, जिनमें जागीरदार विशेष थे, श्रावणी पूर्णिमा १९४५ विक्रमी सन् १८८८ई० को महाराजा ने "पातालपानी" नामक रमणीक स्थान पर बड़ी भक्ति और प्रेम से तीन दिन व्रत रखकर बृहत् यज्ञ के उपरान्त यज्ञोपवीत धारण किया । नरसिंहगढ़ में आर्य समाज की स्थापना बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ हुई । अन्त में महाराजा ने बड़े प्रेम से स्वामी जी को दुबारा शीघ्र पधारने का आग्रह करते हुए बड़े सम्मान और भक्ति से विदा किया ।। इति ।। (मूल कापी से) ।

सत्तावनवां शास्त्रार्थ--

स्थान : रोसड़ा (जि० दरभंगा) विहार

दिनाङ्क : २-१०-१९१४ ई० (प्रथम दिन)
विषय : मूर्ति पूजा ? और अवतारवाद ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
सनातन धर्म (धर्मसभा) की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पण्डित ज्वाला प्रसाद जी मुरादाबादी
सहायक : श्री पंडित तारादत्त जी
अन्य उपस्थित विद्वान : श्री पं० श्यामजी शर्मा (आर्यावर्त के सम्पादक) तथा श्री स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी, आदि
(शान्ति स्थापनार्थ) उभय पक्षीय सभापति : श्री सैय्यद ए० एम० यूसुफ (सब इन्सपैक्टर रोसड़ा)
आर्य समाज के मन्त्री : श्री पण्डित अयोध्या मिश्र जी,
सनातन धर्म (धर्म सभा) की ओर से मन्त्री : श्री महन्त जगन्नाथ दास जी,

---

नोट :—१. इस शास्त्रार्थ के समय "श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न" आर्य समाज में ही थे।
२. यह रोसड़ा की शास्त्रार्थ सामग्री "श्री डा० ज्वलन्त कुमार जी शास्त्री" प्राध्यापक, रणवीर रणञ्जय स्नातकोत्तर-महाविद्यालय—"अमेठी" द्वारा "रणञ्जय पुस्तकालय" से प्राप्त कराई। "सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

सर्व सज्जन महानुभावों को विदित हो कि दरभंगा जिला के अन्तर्गत "**रोसड़ा**" में आर्य समाज तथा धर्मसभा के बीच २ से ४ अक्तूबर सन् १६१४ ई० तक जो शास्त्रार्थ हुआ है। उसको सबके लाभार्थ हम ज्यों-का त्यों प्रकाशित करते हैं, पाठक उसका अवलोकन कर सत्यासत्य का निर्णय कर लें। सबसे प्रथम श्याम सुन्दर मन्दिर के महन्त श्री "**जगन्नाथ दास**" जी ने मिथिला मिहिर प्रैस में छपवा कर एक नोटिस निकाला था। जिसमें "मूर्ति-पूजन, अवतार, श्राद्ध, वर्णाश्रम, नियोग, विधवा विवाह, दयानन्द की आप्तता" इन विषयों पर शास्त्रार्थ करने के लिए आर्य समाज को चैलेञ्ज दिया, और सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र को बुलवाया, उनकी यह कार्यवाही देखकर आर्य समाज रोसड़ा ने भी कविरत्न पण्डित अखिलानन्द जी को बुलाना निश्चय किया और दोनों ओर से अपने-अपने पण्डितों के लिए पत्र लिखे गये। इसी बीच में सनातन धर्म के मन्त्री ने एक पत्र पण्डित भीमसैन जी को भी लिखा जिसके उत्तर में भीमसैन जी ने स्वयं अस्वीकार करके धर्म सभा के मन्त्री को लिखा कि, यदि आर्य समाज की ओर से संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित अखिलानन्द जी आते हैं तो सनातन धर्म की ओर से भी कोई संस्कृत का विद्वान बुलाना चाहिये। पण्डित ज्वालाप्रसाद जी, पण्डित अखिलानन्द जी के सामने संस्कृत नहीं बोल सकेंगे, और इसमें सनातन धर्म का पक्ष गिर जायेगा। इस भीमसैनी पत्र के आते ही दरभंगा प्रान्त के पण्डितों में हलचल मच गई। और सब पण्डितों ने पूरा बल देकर इस शास्त्रार्थ में भाग लेना स्वीकार किया। उधर आर्य समाज की ओर से पण्डित अखिलानन्द जी ने आना स्वीकार कर लिया। और दोनों ओर से नियम तय करने का प्रस्ताव उपस्थित हुआ। प्रस्ताव उपस्थित होते ही काली बाबू की दुकान पर दोनों ओर के सज्जन एकत्र हुए और आर्य समाज की ओर से नीचे लिखे नियम निश्चित्त हुए।

शास्त्रार्थ के नियम—

(१) आर्य समाज केवल वेदों को स्वतः प्रमाण और उत्तर ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानता है, इसलिए सनातनी पण्डितों को आर्य समाज के समक्ष केवल वेदों या वेदानुकूल ग्रन्थों का प्रमाण देना होगा। (२) दोनों ओर से एक-एक पण्डित ही प्रश्नोत्तर करेंगे। दूसरा कोई और न बोल सकेगा। यदि किसी को कुछ कहना होगा, तो वह लिखकर बोल सकेगा। जो पण्डित किसी कारण वश अपनी जगह पर किसी अन्य पण्डित को नियुक्त करेगा तो उस नियुक्त पण्डित को भी पूर्व प्रचलित विषय पर ही बोलना होगा। कोई अन्य विषय प्रस्तुत नहीं होगा। (३) शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में होगा और उसका अनुवाद करके सबको समझाना होगा, दोनों ओर के पण्डित पन्द्रह-पन्द्रह मिनट बोलेंगे और ताली पीटने तथा जयकारे लगाने का किसी को कोई अधिकार न होगा। जो पक्ष ऐसा करेगा वही पराजित समझा जावेगा। (४) शास्त्रार्थ प्रतिदिन तीन घण्टे तक होगा और एक-एक दिन दोनों ओर के पण्डितों को अपना पक्ष सिद्ध करना होगा। पहिले दिन प्रथम आर्य समाज अपना पक्ष स्थापित् करेगा। उसका उत्तर सनातनियों को देना होगा। दूसरे दिन सनातनी प्रथम बोलेंगे और आर्य समाजी उनका उत्तर देंगे। यही प्रकार अगाड़ी चलता रहेगा। (५) शास्त्रार्थ में शान्ति स्थापना के लिए दोनों ओर के पदाधिकारियों को जिलाधीश के पास जाकर प्रार्थना करनी होगी। बिना जिलाधीश के प्रबन्ध के शास्त्रार्थ आरम्भ न होगा। इन नियमों पर दोनों ओर के मन्त्रियों ने हस्ताक्षर किये और नियम निश्चित हो गये।

इन नियमों की एक-एक कापी दोनों ओर के पण्डितों के पास भेजी गई और पण्डित अखिलानन्द जी ने इनको स्वीकार कर लिया परन्तु ज्वालाप्रसाद जी ने इनके स्वीकार करने में कुछ आना कानी करी। मगर क्या किया जाय ? स्थानीय सनातन धर्म सभा के मन्त्री इनको स्वीकार कर चुके थे। इसलिए अदल-बदल न हो सका। नियम तय हो जाने के बाद दोनों ओर के मन्त्री महोदय ज़िलाधीश के पास प्रार्थना करने गये। प्रार्थना पत्र देते समय ज़िलाधीश ने पूछा कि, शास्त्रार्थ का चैलेंज किसकी ओर से किसको दिया गया है ? इसके उत्तर में मन्त्री आर्य समाज ने सनातनियों के उस नोटिस को जिसको कि उन्होंने सबसे प्रथम निकाला था ज़िलाधीश के सामने उपस्थित किया। ज़िलाधीश ने उसको देखकर शास्त्रार्थ की अनुमति दे दी। और स्थानीय पुलिस को शान्ति स्थापन के लिए नियुक्त कर दिया। स्थान का प्रबन्ध करने के लिए कतिपय सज्जन अनेक प्रकार की कल्पनाएं करते रहे. परन्तु अन्त में सर्वसम्मति से **"पुलिस का अहाता"** ही शास्त्रार्थ करने के लिए स्थानरूप में निश्चय हुआ, और दोनों ओर के शामियाने उसमें गढ़ने लगे। इधर आर्य समाज की ओर से नियत समय पर कविरत्न पण्डित अखिलानन्द जी उपस्थित हुए और आर्यवर्त के सम्पादक पण्डित श्याम जी शर्मा काव्यतीर्थ तथा श्री स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी भी ठीक समय पर पहुंच गये परन्तु सनातनी पण्डित अभी तक नहीं आये। इसका कारण यह था कि, पण्डित ज्वाला प्रसाद जी संस्कृत बोलने में सर्वथा असमर्थ थे। और बिना संस्कृत बोलने वाले के काम नहीं चल सकता था। इसलिए मिश्र जी मार्ग में से पण्डित तारादत्त को साथ लेते आये। इसलिए एक दिन की देर हुई। ज़िलाधीश ने जिन चार दिनों की आज्ञा दी थी उनमें एक दिन व्यर्थ गया। दूसरे दिन दोपहर के बाद नियत समय से कुछ पूर्व आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित अखिलानन्द जी वेदादि सत्यशास्त्रों को लेकर सभा-मण्डप में उपस्थित हुए और उनके साथ-२ अन्य आर्य विद्वान भी अपने-अपने आसनों पर जा विराजे। परन्तु सनातनी मण्डप अभी तक खाली था। ठीक ४५ मिनट लेट होकर श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी भी श्री पण्डित तारादत्त जी को साथ लिये हुए आ गये। उनके आते ही समय ठीक करने को घड़ी सामने रक्खी गई और सैय्यद ए० एम० यूसुफ सब इन्सपैक्टर रोसड़ा शान्ति स्थापनार्थ उभय पक्ष की ओर से सभापति बनाये गये। सभापति की आज्ञा पाते ही कविरत्न श्री पण्डित अखिलानन्द जी उठे और नियमानुसार मूर्ति पूजा और अवतारवाद इन दो विषयों के ऊपर दस मिनट तक धारा प्रवाह से संस्कृत में खण्डन करना आरम्भ किया। फिर अनुवाद करके जनता को सुनाया, यही क्रम अन्त तक चलता रहा। अब आप भी उसी वार्ता को पढ़िये और लाभ उठाइये।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(दस मिनट संस्कृत में धारा प्रवाह बोलकर उसका अनुवाद करते हुए बोले)—**सज्जनों !** (१) **"वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ"** इस मनु वाक्य के अनुसार जो वेदानुकूल हो वही धर्म कहाता है। मूर्ति पूजन करना वेद में कहीं नहीं लिखा है। इसलिए अधर्म है। (२) **"विरोधेत्वनपेक्ष्यंस्यादसतिह्यनुमानं"** इस मीमांसा सूत्र से जिसका वेद में विरोध हो, वह त्याज्य माना गया है, वेद में **"न द्यावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते"** तथा **"न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः"** एवं **"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्"** इत्यादि मन्त्रों से ईश्वर का निराकार होना सिद्ध है, इसलिए भी मूर्ति पूजन करना ठीक नहीं है। (३) दर्शनों में भी **"क्लेशकर्मविपाकाशयै**

रपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" तथा "**जन्माद्यस्य यतः**" इत्यादि सूत्रों से ईश्वर निराकार ही माना गया है। इसलिए—"**यच्चक्षुषा न पश्यतियन्मनसा न मनुते**" इत्यादि वचन उपनिषदों में भी मिलते हैं। तब ईश्वर को साकार मानना कैसे ठीक है ? (४) "**मूलं नास्ति कुतः शाखा**" इस कहावत के अनुसार जब वेदों में अवतार शब्द ही नहीं है तब उसका मानना न मानना यह विवाद व्यर्थ है। यदि आप दिखा सकते हों तो ये चारों वेद हैं, इनमें दिखा दीजिये। टर्न टन टन ऽ ऽ ऽ ······

नोट : –घन्टी बजते ही कुछ देर तक श्री पण्डित ज्वाला प्रसाद और पण्डित तारादत्त कुछ आपस में काना फूंसी करके समय बिताते रहे। अन्त में पण्डित तारादत्त जी उत्तर देने को खड़े हुए।

शास्त्रार्थ के प्रधान—

श्री पण्डित तारादत्त का नाम नोटिस में नहीं है इसलिए श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ही इसका उत्तर दें।

नोट : --यह सुनते ही मिश्र जी के देवता कूच कर गये। और ज्वालाप्रसाद जी ने कहा कि आज मैं नहीं बोलूंगा। कल बोलूंगा आज पण्डित तारादत्त ही उत्तर देगें। इतना कह कर मिश्र जी बैठ गये। और तारादत्त जी ने ५ मिनट तक संस्कृत में कुछ कहा। कहते-२ तारादत्त जी का गला बैठ गया और आवाज घरघराने लगी मनुष्यों को कुछ भी सुनाई नहीं देता था। जब यह दशा होने लगी तब तारादत्त ने "**दयानन्द तिमिर भास्कर**" नामक ग्रन्थ हाथ में लेकर कहा कि वेदों में मूर्ति पूजा का विधान और अवतार वर्णन मिलता है। "**भद्रो भद्रया**" इस मन्त्र से रामावतार और "**इदं विष्णुर्विचक्रमे**" इससे वामनावतार सिद्ध होता है। (इतना कह कर पण्डित तारादत्त जी अपने बोलने का समय पूरा किये बिना ही बैठ गये)।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मैंने जिन प्रमाणों को आपके सामने रक्खा और जिन युक्तियों से साकारवाद का खण्डन किया उनमें से एक का भी उत्तर न देकर—"**आम्रान् पृष्ठः कोविदारानाचष्टे**" इस कहावत के अनुसार आप "**भद्रो भद्रया**" पढ़ कर रामावतार सिद्ध करने चले हैं। आपकी तो शक्ति ही क्या है ? जिनका पुस्तक लेकर आप खड़े हुए हैं, वे ज्वालाप्रसाद जी भी इसका उत्तर नहीं दे सकते। यदि दे सकते हों तो खड़े होकर कहें कि '**भद्र**" का अर्थ '**राम**" और "**भद्रा**" का अर्थ "**सीता**" तथा "**जार**" का अर्थ "**रावण**" किस कोषकार ने किया है ? यदि नहीं किया है तो सायण व महिधर के विरुद्ध ऊटपटांग यह अर्थ आप कहां से करते हैं ? स्वामी दयानन्द के ऊपर तो आप यह आक्षेप करते हैं कि उन्होंने मन्त्रों के अर्थ बदल दिये परन्तु आपने यह अर्थ का अनर्थ करना कहां से सीखा है ? "**या तेनोच्यते सा देवता**" इस निरुक्त वाक्य के अनुसार जिस मन्त्र में जिस विषय का प्रतिपादन होता है वही विषय उस मन्त्र का देवता कहाता है। यदि आप राम, कृष्ण, वामन वेद से सिद्ध करने चले हैं तो किसी मन्त्र के ऊपर "**रामो देवता कृष्णो देवता**" यह शब्द दिखा दीजिये। यदि नहीं दिखा सकते तो व्यर्थ विवाद करने आप क्यों आये हैं ? टर्न टन टन ऽ ऽ ·········

नोट :—अब श्री पण्डित तारादत्त जी के बोलने की बारी थी, परन्तु पण्डित अखिलानन्द जी के चुप होते ही पण्डित ज्वाला प्रसाद जी ने देखा कि इस समय हमारी ओर से असर अच्छा नहीं पड़ रहा है। इसलिए आप स्वयं ही बोलने खड़े हो गये, इनके खड़े होते ही श्री पण्डित अखिलानन्द जी ने कहा--

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न –

पण्डित जी ! जब आप अभी-अभी कह चुके हैं कि मैं आज नहीं बल्कि कल बोलूंगा। तब आप "प्रतिज्ञा हानि" में क्यों पड़ते हैं ? आप तारादत्त को ही बोलने दीजिये।

श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र—

इनका गला पड़ा हुआ है। इनको सभा में बोलने का अभ्यास नहीं है इसलिए हमको बोलना पड़ेगा।

शास्त्रार्थ के सभापति महोदय—

यदि आप बोलते हैं तो नियमानुसार पहले संस्कृत में कहकर फिर भाषा में इसका अनुवाद कीजिये। यदि आप बहुत देर तक संस्कृत में नहीं बोल सकते तो नमूने के लिए कम से कम पांच मिनट तो बोल ही दीजिये।

नोट :—

सभापति की यह बात सुनते ही सनातनी दल में सन्नाटा छा गया। और पण्डित ज्वालाप्रसाद जी सुन्न पड़ गये। जब उनकी यह दशा देखी तो सभापति ने श्री पण्डित अखिलानन्द जी से कहा कि अब जाने दीजिये, अधिक तंग करना अच्छा नहीं है इनको भाषा में ही बोलने दीजिये। इस पर पण्डित तारादत्त ने कहा कि वृद्धता के कारण पण्डित ज्वालाप्रसाद जी के दांत नहीं रहे हैं। इसलिए संस्कृत नहीं बोल सकते हैं। (हंसी···)

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

सज्जनों सुनो ! सुनों !! ध्यान से सुनों !!! अभी-२ पण्डित तारादत्त ने कहा कि दांतों के न होने की वजह से मिश्र जी संस्कृत नहीं बोल सकते। मैं जिन अक्षरों का दन्त स्थान है उनकी गलती नहीं पकड़ूंगा बाकी अक्षर तो आप कहिये। रही वृद्धता की बात ! वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि कोई वृद्ध अंग्रेज वृद्धता के कारण अंग्रेज़ी बोलना नहीं छोड़ता है। इतने कहने पर भी मिश्र जी संस्कृत बोलने के लिए उद्यत न हुए। तब सर्व साधारण में उनकी विद्वता की कलई खुल गई। अन्त में सभापति ने हिन्दी में ही बोलने का आदेश दिया।

श्री पंडित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र—

भाईयो ! "**वेंकटेश्वर प्रेस**" में छपे हुए "**नीलकंठी भाष्य**" में भद्र का अर्थ राम और भद्रा का अर्थ सीता लिखा है। परन्तु पुस्तक न होने के कारण मैं दिखा नहीं सकता हूं। और "**न तस्य प्रतिमा अस्ति** ······" इस मन्त्र में प्रतिमा पद आया हुआ है जिसका अर्थ मूर्ति होता है तब वेदों में मूर्ति पूजा सिद्ध क्यों नहीं है ? (समय पूरा किये बिना ही बैठ गये)।

श्री पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न –

(पहले संस्कृत में बोल कर) फिर भाषा में—सज्जनों नील कंठी भाष्य कोई कोष नही है। जिसका प्रमाण माना जावे। यदि उस भाष्य में किसी अन्य कोष का प्रमाण दिया है तो आप बतला दीजिये। जब इस समय आपके पास पुस्तक नहीं है, तब मेरे साथ शास्त्रार्थ करने आप क्यों आये हैं ? घर में शस्त्र रख कर स्वयं रणभूमि में जाना इसी को कहते है। (जनता में हंसी···) वेदों में अवतार शब्द के न मिलने पर जिस प्रतिमा शब्द को आपने प्रस्तुत किया है उसका अर्थ मूर्ति नहीं किन्तु उपमान और बाट यह दो अर्थ होते हैं। देखिये— "**रूपेण प्रतिमोभुवि**···" यहां पर उपमानार्थक प्रतिमा शब्द का प्रयोग है। और "**संवत्सरस्य प्रतिमां यांत्वा राज्युपास्महे**···" इस मन्त्र के अन्दर बाट के अर्थ में प्रतिमा शब्द आया हुआ है। संवत्सर के ३६० दिन तोलने के लिए रात्रि बाट है।

नोट : —इतना कहते-कहते आज का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया और सर्व साधारण को आर्य समाज की विजय और धर्म सभा की पराजय भली भाँति विदित हो गई। ❑

अट्ठावनवां शास्त्रार्थ—

स्थान : रोसड़ा (जिला दरभंगा) बिहार

दिनाङ्क : ३-१०-१९१४ ई० (द्वितीय दिवस)

विषय : स्वामी दयानन्द की आप्तता

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र (मुरादाबादी)

सहायक : श्री पण्डित तारादत्त जी

अन्य उपस्थित विद्वान : श्री पंडित श्याम जी शर्मा (आर्यवर्त्त के सम्पादक) तथा स्वामी ओंकार सच्चिदानन्द जी आदि

(शान्ति स्थापनार्थ) उभय पक्षीय सभापति : श्री सैय्यद ए० एम० यूसुफ (सब इन्सपैक्टर)

आर्य समाज के मन्त्री : श्री पण्डित अयोध्या मिश्र जी

सनातन धर्म सभा की ओर से मन्त्री : श्री महन्त जगन्नाथ दास जी

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

नोट—आज के दिन शास्त्रार्थ का विषय "**स्वामी दयानन्द की आप्तता**" और पूर्व पक्ष करने वाले पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र ही रहे। नियत समय पर दोनों दल के पण्डित अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। और ज्वालाप्रसाद जी को बार-बार संस्कृत में बोलने पर विवश करने के बावजूद भी वह केवल भाषा में बोलने को खड़े हुए। आज श्रोताओं की हाजरी पहले दिन की अपेक्षा कई गुनी ज्यादा थी।

श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र—

सज्जनों! सुनों!! प्रथम तो मैं पूछता हूं कि—स्वामी जी ने जब "**गणेश**" नाम परमात्मा का माना है तब "**श्री गणेशाय नमः**" लिखने का निषेध क्यों किया? (२)—गर्भाधान के समय "**मुख के समक्ष मुख**" करना किस ग्रन्थ के आधार पर लिखा और क्यों लिखा? (३)—भागवत में "**रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति**" ऐसा पाठ नहीं है। फिर स्वाजी जी ने ऐसा क्यों लिखा? (४)—वेदों में जब विधवा विवाह का विधान नहीं है, तब आर्य समाज उसको क्यों मानता है? और नियोग के द्वारा भ्रष्टाचार को क्यों फैलाता है? (५)—मुनुस्मृति में "**विविधानि च रत्नानि**······" यह पाठ नहीं है। तब स्वामी जी ने कहां से लिखा? (६) किसी पुराण में "**पृथ्वी को चटाई की तरह लपेटना**" नहीं लिखा है। स्वामी जी ने झूठ क्यों लिखा? (७)—स्वामी जी ने बालकों का गुप्त स्थान स्पर्श करना वेदों से लिखा है, परन्तु वेदों में यह नहीं है। (८)—महाभारत में "**मतंग**" का चांण्डाल से ब्राह्मण बनना कहीं भी नहीं लिखा है। (९)—भागवत में तप्तस्तम्भ पर चींटी का रेंगना नहीं लिखा है फिर स्वामी जी ने कहां से लिखा है? (१०)—मुक्ति में भी स्वामी जी भीड़ होना मानते हैं, सो कैसे?

नोट—इन दस प्रश्नों के बाद ज्वालाप्रसाद जी बैठ गए। उनके बैठते ही पण्डित अखिलानन्द जी नियमानुकूल पहले संस्कृत में बोल कर फिर भाषा में कहने लगे—

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(१) स्वामी दयानन्द जी महाराज ने पोराणिक सूंड वाले गणेश का निषेध किया है। ईश्वर वाचक यौगिक गणेश का नहीं। वास्तव में गणेश ईश्वर ही हो सकता है अन्य नहीं। (२)—गर्भाधान के समय सृष्टि नियमानुकूल मनुष्य जाति में मुख के सामने मुख करना बृहदारण्यकोपनिषद् में "**मुखेन मुखं संधाय**" इस वचन से पाया जाता है। इसी लिए स्वामी जी ने पशुव्यवहार से मनुष्यव्यवहार को अलग करने के लिए ऐसा लिखा है। (३)—भागवत में "**रथेन वायुवेगेन प्रययौ नन्द गोकुलं**" ऐसा पाठ मिलता है। और "**प्रययौ नन्द गोकुलं**" इसका अर्थ "**जगाम गोकुलं प्रति**" होता है। इसलिए स्वामी जी के अर्थ में दोष नहीं आता। (४)—स्वामी जी ने अक्षत योनि कन्या का द्विजों में पुनर्लग्न माना है। क्षतयोनि का नहीं। और वेद में "**विधवेव देवरं**" इस मन्त्र से विधवा विवाह माना गया है। जब तक वेद में यह मन्त्र विद्यमान है तब तक विधवा विवाह का खण्डन करने वाला कोई नहीं है। रहा नियोग! वह भी नवीन नहीं है, महाभारत में उसका करना "**सनातन धर्म**" बतलाया गया है। अहिल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा, मन्दोदरी, दिव्या देवी आदि रानी और प्रतिष्ठित देवियों ने द्वापरादि युगों में उसका अनुष्ठान किया है। और ऋग्वेदीय यमयमी सूक्त का जब आप भी विधिपूर्वक परिशीलन कर चुके तब आपको इस विषय में क्या शंका रही है? आर्य समाज वेद में लिखी हुई बातों को मानता है। और व्यास ने जिस नियोग

का समर्थन किया वह भ्रष्ट नहीं हो सकता (५)—मनुस्मृति में वर्तमान समय के पाठ में कुछ अन्तर आ गया है। परन्तु प्राचीन पुस्तकों में **"विविधानि च रत्नानि"** यह पाठ मिलता है देखिए और जिस **"नाना विधानि"** का आपने सत्यार्थ प्रकाश में होना बताया है, वह वर्तमान पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में आप दिखा दीजिए। (६)—वाराह पुराण में हिरण्यकश्यप ने पृथ्वी को चटाई की तरह लपेट लिया, यह साफ-साफ लिखा है, जिसको देखना हो वह देख सकता है। (७) —माता-पिता और आचार्य छोटे-छोटे बालकों के सब इन्द्रिय, मुख, नाक, आँख, कान, पायु आदि को पवित्र करते हैं, और यही आज्ञा यजुर्वेद में **"वाचं ते शुन्धामि"** इस मन्त्र में मिलती है। और संसार में ऐसा ही होता है। (८)—महाभारत में **"मतंग"** का चाण्डाल होना लिखा है। सत्यार्थ प्रकाश में **"मतंग"** की जगह **"मांतग"** है, यह प्रेस (कम्पोजिंग) की गलती है। स्वामी जी की नहीं। गरुड़ पुराण के अनुसार जब देवलक चाण्डाल हो जाता है, तब चाण्डाल यदि ब्राह्मण हो जाता है तो क्या आश्चर्य है ? (९)—फ़ीज़ी में लिखे हुए (उर्दू) भागवत में "चींटी का रेंगना" लिखा है, देखना हो देख लीजिए। वर्तमान भागवत में उसका न मिलना पुराणों की अदल-बदल में प्रत्यक्ष प्रमाण है, ज़रा आप विचार करें। (१०) —स्वामी जी मुक्ति से वापिस आना मानते हैं, आप नहीं मानते हैं, यह प्रश्न आप ही की ओर से वहां पर लिखा गया है। यह स्वामी जी का सिद्धान्त नहीं है। जब जाना ही जाना बना रहे और आना न हो तब आपके ही मत से वहां भीड़ होती है। जो वहां से आना भी मानता हो उसके सिद्धान्त में भीड़ होना असम्भव है। टर्न टर्न टन टन ऽ ऽ ········॥

श्री पण्डित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र—

(१)—देखिए आज मैं अक्षरशः सत्यार्थ प्रकाश का कैसे खण्डन करता हूं ? स्वामी जी ने गर्भाधान समय की बात अपने ग्रन्थ में लिखी है। वह सन्यास धर्म के विरुद्ध है। (२)—देवर से सन्तान पैदा करना कलियुग में ही नहीं किन्तु पूर्व काल के लिए पुराणों में लिखा है। (३)—स्वामी जी ने जो अपने प्रयोजनार्थ भिन्न-भिन्न स्थल के दो चरण मिला कर **"रथेन वायुवेगेन"** लिखा है, वह धोखा देने को लिखा है। पूरा ऐसा पाठ कहीं नहीं है। (४)—बालक बालिकाओं का गुप्तेन्द्रिय स्पर्श करना अत्यन्त लज्जा कर है। और **"वाचं ते शुन्धामि"** इस मन्त्र का जो अर्थ स्वामी जी ने किया वह निर्मूल है। (५) ..फ़ीज़ी का लिखा हुआ उर्दू भागवत जब वर्तमान समय में प्रचलित नहीं हैं, तब उसका प्रमाण देना स्वामीजी को उचित न था। टर्न टन टनऽ ऽ ········शेष आगे कहेंगे।

श्री पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(१) (पहले संस्कृत में बोलकर) जो सत्यार्थ प्रकाश का अक्षरशः खंडन करने का दावा किया है। वह तब हो सकता है जब कि आप सर्वथा उसके विपरीत करने को उद्यत हों। जैसे स्वामी जी ने "सत्य बोलना, ईश्वर का मानना, वेद पढ़ना" आदि लिखा है। इसका पूरा खंडन तब हो जब कि आप "सत्य न बोलना, ईश्वर को न मानना, वेद न पढ़ना" यह सिद्ध करें, यह आप कर नहीं सकते। तब आपका दावा ही झूठा पड़ता है। और तो करना ही क्या है ? (२) जब द्वापर व त्रेता युग में देवर से सन्तान पैदा कराना धर्म था तो अब अधर्म कैसे माना जावे? इतना ही नहीं, प्राचीन समय में गुरु स्त्री से गमन करना भी पाप नहीं माना जाता था। उदाहरणार्थ पुराणों में बृहस्पति की स्त्री से चन्द्रमा ने गमन कर बुध नामक पुत्र को उत्पन्न किया। क्या इसका भी आप खंडन करेंगे? (३) जो कार्य स्वामी दयानन्द ने अब किया वही कार्य अपने प्रयोजनार्थ शंकर स्वामी ने पहिले किया। देखिए — **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** यह वाक्य एक उपनिषद में लिखा है। **"नेह नानास्ति किञ्चन"** यह दूसरी में। दोनों को मिला कर अब एक वाक्य—**"सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किञ्चन"** इतना शंकर भाष्य में मिलता है। क्या शंकर ने भी धोखा दिया है ? वास्तव में यह बात नहीं है। यह आचार्यों की शैली होती है। (४) छोटे-छोटे बच्चे जब घरों में पाखाना-पेशाब जाते हैं तब उनके माता-पिता उनको अपने हाथों से धोते हैं, आचार्य कुल में जब बालक

५, ६, ८, साल का हो जाता है, तब उसको भी यह कार्य करना पड़ता है। यही आज्ञा वेद की "**वाचं ते शुन्धामि**" **इस मन्त्र** में विद्यमान है। वेद की आज्ञा का पालन करना धर्म है। लज्जा नहीं है यही अर्थ आपने भी अपने ग्रन्थों में माना है। तब निर्मूल कैसे ? (५) फ़ीजी का उर्दू भागवत पुस्तकालयों में विद्यमान है। उसका प्रमाण देना कोई अनुचित बात नहीं है। ग्रन्थों का प्रचलित होना या न होना देशकालाधीन है। जिन ग्रन्थों का आप प्रमाण देते हैं, वह क्या सब इस समय प्रचलित ही हैं ? देखिये—"**कलिसंतारणोपनिषद्**" आप मानते हैं परन्तु वह प्रचलित नहीं है।

श्री पंडित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र—

(१) सृष्टि का होना स्वामी दयानन्द जी ने वृथा लिखा है। (२) और वेदों में "**यज्ञोपवीतं परमंपवित्रं**" यह मन्त्र नहीं है। तब स्वामी जी ने इसको क्यों माना है ? आर्य समाज तो केवल वेदों को ही मानता है। (केवल यही दो नवीन प्रश्न करके बाकी हंसी-मजाक में समय बिता कर बैठ गये)।

श्री पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(पहले संस्कृत भाषण करने के पश्चात् भाषा में बोले)—भाईयों ! प्रथम बात तो यह है कि पहिले १० प्रश्नों का उत्तर तो पंडित ज्वालाप्रसाद जी मान गये। अब रही दो शंकायें ! उनका उत्तर यह है कि, जब तक श्री स्वामी जी की दी हुई युक्तियों का खंडन न करके आप कोई नवीन प्रकार न बतलावें तब तक स्वामी जी का कहना ठीक माना जायेगा। (२) अब रहा यज्ञोपवीत का मन्त्र ! उसके लिए इतना कहना पर्याप्त होगा कि आर्य समाज वेदानुकूल आर्ष ग्रन्थों को भी प्रमाण मानता है। आप उसके विरोध में कोई वेद मन्त्र कहें तब वह त्याज्य माना जावे। अन्यथा "**असति ह्यनुमानम्**" इस जैमिनि सूत्र से यह वेद मूलक अवश्य माना जायेगा और वेद में मूल रूप से उपवीत शब्द आया है ज़रा देखिये—यजुर्वेद को।

नोट—पंडित अखिलानन्द जी के बैठते ही पंडित ज्वालाप्रसाद जी उठे, और पुराना प्रश्न नियोग वाला लेकर फिर बोले। थोड़ी देर बोल कर अपना जय आप ही बोलने लगे। यह दशा देखकर पंडित अखिलानन्द जी ने नियम विरुद्ध कार्य रोकने के लिए श्री युत सभापति जी से प्रार्थना की कि नियमानुकूल सनातनधर्म सभा जय बोलने के कारण क्यों न परास्त मानी जावें ? इसका समर्थन ज्यों ही सभापति जी ने किया तैसे ही आज का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

[शास्त्रार्थ का तृतीय दिवस]

आज आर्य समाज की ओर से "**पुराणों की आप्तता**" पर प्रश्न होने थे। और सनातनधर्म सभा का असर दो दिनों से खराब पड़ रहा था। इस भय से पंडित ज्वालाप्रसाद जी मिश्र, पंडित तारादत्त जी को साथ लेकर साढ़े आठ बजे की रेल पर चलने लगे। सनातनियों ने अधिक लालच देकर उनको ठहराना चाहा और एक पत्र प्रधान जी ने भी लिखा कि—आप शास्त्रार्थ अधूरा छोड़ कर क्यों भागते हैं ? परन्तु इन बातों की कुछ परवाह न करके पंडित ज्वालाप्रसाद जी चले गये और उनके चले जाने के बाद नियत समय पर श्री पंडित श्याम जी शर्मा काव्यतीर्थ का व्याख्यान हुआ। और युद्ध में ब्रिटिश राज्य की जय कामना करते हुए शान्ति पाठ के बाद सभा विसर्जन हुई। यह सच्चा शास्त्रार्थ इतना असर कर गया कि बिहार भर में पंडित ज्वालाप्रसाद परास्त माने जाने लगे।

ओ३म् शम्॥

निवेदक—

"**अयोध्या प्रसाद मिश्र**"

(मन्त्री) आर्य समाज—**रोसड़ा**

जिला—दरभंगा बिहार)

उनसठवां शास्त्रार्थ--

स्थान : बल्हारपुर (चांदा) मध्यप्रदेश

दिनांक : २८ सितम्बर सन् १९१४ ई०

विषय : क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री (दानापुर निवासी)

पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित श्याम बिहारी जी शास्त्री (प्रतापगढ़ निवासी)

आर्य समाज के मन्त्री : श्री सुरजू प्रसाद ठेकेदार

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष : श्री सरफल साहब जी (पुलिस इन्सपैक्टर)

मध्यस्थ : १. श्री १०८ स्वामी सच्चिदानन्द जी सनातनी
२. श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती उपदेशक

सनातनधर्म सभा के मन्त्री : श्री पण्डित रामप्रसाद जी शर्मा

नोट : --यह शास्त्रार्थ सामग्री "**श्री रामशंकर जी गुप्त**" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई ।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

सज्जनों विदित हो कि आर्य समाज बल्हारपुर (चांदा) अपने साप्ताहिक अधिवेशन आठ मास से शान्ति पूर्वक करता चला आ रहा था, पर पौराणिकों से न रहा गया, आर्य समाज की उन्नति देखकर द्वन्द मचाना प्रारम्भ कर दिया, और कहने लगे कि "**इन कुजातियों को अपने-अपने मुहल्ले से निकाल देना चाहिए, अरे ये तो ईश्वर को भी नहीं मानते हैं**" कुछ लोगों ने इकट्ठे होकर एक सनातनधर्म सभा भी बना डाली, फिर क्या था ? आर्य समाज के संस्थापक श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज को कोसना आरम्भ किया कि उसके तो माता और पिता का भी ठिकाना नहीं है । न जाने किस नीच जाति का ये "**हत्यानन्दी**" था जिसने एक "**हत्यार्थ प्रकाश**" नाम की किताब बनाई है उसमें हमारे महावीर व दुर्गा देवी की पूजा का खण्डन कर डाला है । अतएव किसी पण्डित जी को बुलवा कर इन आर्यों की समाज को खण्ड-खण्ड कर देना चाहिए, (सनातनियों द्वारा तत्काल पत्र लिखकर पं० श्याम बिहारी शास्त्री) को प्रताप गढ़ से बुलवाया, और भागवत् की कथा के बहाने आर्य समाज को पण्डित जी ने भी बहुत ही कुवाक्य कहे, एक घन्टा भागवत होती थी, और चार घण्टा गाली प्रदान करते थे, शास्त्रार्थ के लिए आर्यों को ललकारा कि जिसमें दम होवे संस्कृत या भाषा में आज शेरे बबर के सामने आवें । मैं अब यहां से इनको बिना जाति पाति से निकलवाये नहीं मानूंगा, यह लोग सब ईसाई-मुसलमानों के साथ खाते-पीते हैं । यह सुनकर श्री सुरजू ठेकेदार (जो आर्य समाज बल्हारपुर के मन्त्री थे) ने एक तार गुरुकुल, वृन्दावन, मथुरा को दिया कि एक अच्छा योग्य पण्डित भेजो "**यहां पौराणिकों से शास्त्रार्थ है**" उत्तर आया कि श्री पण्डित रामश्रय जी शास्त्री को दानापुर (बिहार) तार दिया गया है, अवश्य आवेंगे । श्री पण्डित जी उस समय 'श्री मति आर्य प्रतिनिधि सभा सयुक्त प्रान्त के उपदेशक थे ।" फिर क्या था ! हम भी प्रसन्न चित्त होकर नियम निर्धारित करने को उद्यत हुए, इतने में ८ बजे रात्रि में हमारे भी शास्त्री जी आ गए, बस्ती भर में व दूर-दूर तक रोशन हो गया कि कल २८-६-१४ को "**मूर्ति पूजा**" विषय पर शास्त्रार्थ होगा ।

पुलिस इन्सपेक्टर श्री सरकल साहब जी ने आर्य समाज व सनातन धर्म के दोनों मन्त्रियों को अपने यहां बुलाकर १००) रुपये के मुचलके लिये, इस कारण कि जो कोई शास्त्रार्थ में ताली बजायेगा या शोर गुल करेगा उसके रुपये जब्त करके और भी उचित कार्यवाही करूंगा । जय-पराजय का फैसला मध्यस्थ लोग देंगे, सब नियम तय होकर श्री १०८ स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती (सनातनी) और स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती व श्री पं० रामप्रसाद जी शर्मा (मन्त्री सनातनधर्म सभा) मध्यस्थ होकर श्री सरकल साहब पुलिस इन्सपेक्टर के प्रबन्ध में शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ ।

"**सुरजू प्रसाद ठेकेदार**"
मन्त्री-आर्य समाज बल्हारपुर (चांदा)

नोटः—यह शास्त्रार्थ प्रथम वार "**श्री पण्डित मनोहरलाल जी मिश्र**" के प्रबन्ध से इन्डियन प्रेस कानपुर में सन् १६१५ ई० में मुद्रित हुआ था, उसके बाद अब प्रकाशित किया जा रहा है । इसके प्रकाशन का भार उस समय "**श्री वैद्य पं० काशी नाथ शर्मा**" मन्त्री आर्य समाज चौक (कानपुर) ने लिया था । जिसके पढ़ने पर अतीत काल की सम्पूर्ण झलकियां मिलती हैं । एवं आज के युग व उस युग में कितना बड़ा अन्तर था ? उस समय के लोगों के साहस, प्रचार, व लग्न का एक अच्छा-खासा परिचय मिलता है । जिससे चाहें तो वर्तमान आर्य प्रचारक व अधिकारी गण शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं ।

"संग्रह कर्त्ता'
(**लाजपत राय अग्रवाल**)

शास्त्रार्थ आरम्भ

सनातनी पण्डित श्री श्याम बिहारी जी—

इदानीन्तनकाले ये केचित् परमेश्वरादि मूर्ति पूजन बहिर्मुखा आर्य्य मानिनः किन्त्वनार्यास्तेषां श्रुतिस्मृति विरुद्धांप्रज्ञां धिग्धिगिति मन्यामहे।

यतो वेदस्मृति विहितोधर्मः पुरुषोत्तमस्य निश्वासतो जनिर्जायते तथा च पुरुषस्यनाभिपंकजात् ब्रह्मणो पि जनिश्श्रुयते यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वमेकोहम् बहुस्यामित्यादिकथनेऽहंकारस्यनिष्ठा मूर्तिमत्वेघटेत नत्वमर्तिमत्वे तथा च स्मृति रपि एक एव हि विश्वात्मा भूते-भूते व्यवस्थितः तथान्या श्रुतिः

"ब्राह्मणोस्य मुखमासीत बाहूराजन्यः कृतः। उरू तदस्य यद्वैश्यः पदभ्यांशूद्रोऽजायत" ॥

इत्यत्र ब्राह्मणोस्य मुखमासीतेत्यादि कथने मुखस्यनिष्ठा मूर्तिमत्वेघटेत नत्व मूर्तित्वे तथा चकाचिदन्याग्रे वर्तते। "सहस्त्र शीर्षा पुरुषस्सहस्त्राक्षस्साहस्त्रपाद" इत्यादि उपनिषद् वाक्यैः मूर्तित्व मायाति सहस्त्राणि शिरोपि विद्यन्तेयस्य पुरुषस्य स सहस्त्रशीर्षेति प्रसिद्धा नितेष्वपि मूर्ति पूजादि लक्षणं द्रष्टव्यमिति अग्रे ये नास्तिका अनार्य्या आर्य्य मानिनो धूर्त्ताः पर वंचन परास्ते अस्यां सभायां स्वबल।

पौरुषम् एतदर्थ मिदानी दर्शयामि अलमितिकिम् बहुनालापेन।

संस्कृत का अर्थ जो जनता में सुनाया गया—

इस समय जो ये लोग परमेश्वरादि की मूर्ति पूजन से रहित हैं, अपने को आर्य मानने वाले,! किन्तु हैं अनार्य्य, श्रुति वेद तथा स्मृति से विमुख इनकी बुद्धि को धिक्कार मानते हैं, जिस वेद स्मृति से विहित धर्म का आदि मूल विष्णु उस उत्तम पुरुष के श्वास से पैदा और उत्तम पुरुष की कमल नाभि से ब्रह्मा पैदा हुए सुने जाते हैं, जो ब्रह्मा को भी धारण करता है। "एक रूप से अनेक वाला होऊं" इस कथन से सिद्ध होता है कि अहंकार की निष्ठा से ही मूर्तिपना उसमें घटता है। और भी स्मृति में कहा है जैसे "एक ही निश्चय सब संसार के प्राणियों में आत्मा रूप होकर ठहरा हुआ है।" वैसे ही और भी श्रुति हैं, यथा—"ब्राह्मण उस ईश्वर के मुख से पैदा हुए, क्षत्रिय उसकी भुजाओं, और वैश्य उसके पेट से तथा शूद्र पैरों से पैदा होते गए"। यहां पर ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण हुए, तथा मुख की निष्ठा होने से, परमेश्वर की पूजा पाषाणादि में घटती है अन्यत्र नहीं, वैसे ही और भी प्रमाण हैं, आगे परमात्मा सहस्त्र हजार सिर, आंखें, और पैर वाला भी हैं, इत्यादि उपनिषद वाक्यों से मूर्तिपना आता है। सहस्त्रों सिर हैं उस पुरुष के, ये प्रसिद्ध है। उसमें भी तो मूर्ति पूजा का लक्षण देखना चाहिए, आगे ये नास्तिक, अनार्य्य! अपने को आर्य मानने वाले धूर्त परबंचन में चतुर परास्त हैं। इस सभा में अपने बल को इसीलिए इस समय दिखाता हूं। बस! बहुत कहने से क्या?

पौराणिक पंडित "श्यामबिहारी"

श्री पण्डित रामश्रय जी शास्त्री—

य इह केचन जगति सच्चिदानन्दादि लक्षण लक्षितं परमात्मानं वेद विरुद्धान् स्वकपोलकल्पितेतिहास पुराणा भासान् वेदानुकूलान् मान्यमाना मूर्त्तिमन्तं मन्यन्ते तेषां तत्तद्ग्रन्थानुसृतपांषढमत ध्वंसनायोत्तरमाविषक्रियते।

भगवन् प्रमाणभूतांकामपिश्रुतिं स्मृतिं वा नावोचि पुरुषोत्तमस्य निःश्वासतोजनिर्जायते नाभिपंकजाद्ब्रह्मणोऽपिजनिश्रूयत इनि या चाग्ने मो ब्रह्माणंविद्धातिसोपनिषद नतु श्रीमतां पक्षपोषण क्षमा शक्तेति ब्रह्मपुरुषोत्तमस्यनाभिपंकजादुत्पन्न इत्यक्षरमात्रमपि न दृश्यत अतएव भवद्भाषण मुपेक्ष्यत अग्नेऽपिनंनमभि प्रायं पुष्यति । अहंकारस्यनिष्टा मूर्त्तिमत्वे घटेतेत्यत्रापि प्रमाणभावादिति तथाचान्याश्रुति : "ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यःकृत:" निराकारत्व प्रतिपादक मन्त्र विरोधादितिन भवदभिप्रेतार्थस्साधुर्मुखादासीदित्यदर्शनाच् । अस्य पुरुषस्य मुखं ये विद्यादयो मुख्य गुणाः सत्यभाषणोपदेशादीनि कर्म्माणि च सन्ति तेभ्यो ब्राह्मण आसीदुपन्नोभवतीति। बलवीर्यादि लक्षणान्वितो राजन्यः क्षत्रियस्तेन कृतः (उरु) कृषि व्यापारादयो गुणाः मध्यमास्तेभ्यो वैश्योस्य पुरुषस्योपदेशादुपन्नो भवतीति वेद्यम् । पादेन्द्रियनीचत्वमर्थाज्जड़ बुद्धित्वादि गुणेभ्यः शुद्रः सेवा गुण विशिष्ठः प्रवर्त्तमानोऽजायत इति बोध्यम् । "ऐवमेव सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपादिति पुरुष" इति पदं इत्यस्मिन् मन्त्रे विशेष्यमस्ति पुरि संसारे सर्वमभिव्याप्य वर्तते स पुरुषः परमेश्वरः सहस्राण्य संख्मान्यस्मदादीनां शिरांसि यस्मिन् पूर्णे पुरुषे परमात्मनि स सहस्रशीर्षा पुरुषरस्मदादीनां सहस्राण्य क्षीण्यस्मिन् एवमेवा संख्याताः पादाश्च यस्मिन् वर्तन्ते स सहस्राक्षः सहस्रपाच्च । मन्त्र पराऽर्धे सर्वभूमि स्पर्शनाशक्यत्वात् । अग्रे न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशस्तस्य कस्य परमेश्वरस्य प्रतिकृतिर्नास्ति प्रतिमेति वेदोष्वित्यपि न लिखिमस्ति पाषाणादि मूर्त्ति रचयित्वा मन्दिरे संस्थाप्यगंधादि भिरर्चयेदिति भवद्भाषणेऽशुद्धयोऽपिसन्ति यथा ज्ञायते जायते श्रुयते श्रूयते श्रासीत, आसीत् आसीदिति मयोपेक्ष्यते । कुवाचोऽपशब्दाश्चोताः खलुभवद्भिर्न तदुत्तरयितुमुत्सहामहे यतो ददतुददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो वयमिह तदभावान्नैवदातुम् समर्थाः । जगति विदितमेतद्दीजते विद्यमानं नहिं शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददातीति । इत्यलम् भुत्सु किम् बहुना ।

"रामाश्रय शास्त्री"

संस्कृत का अर्थ जो जनता में सुनाया गया—

ये लोग जो वेद विरूद्ध अपने रचित इतिहास वा पुराणाभासों को वेदानुकूल मानते हुए सचिदानन्दादि लक्षणों वाले ईश्वर को मूर्तिमान् मानते हैं उनके उन-उन ग्रन्थों से प्रचलित पाषाण मत के खण्डनार्थ उत्तर देता हूं। आपने ईश्वर के श्वांस से वेद और नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति कही, परन्तु इसमें कोई श्रुति वा स्मृति का प्रमाण, भूत प्रमाण नही दिया और उत्तम पुरुष की नाभि से भी आपका पक्ष पुष्ट नहीं होता है। क्योंकि नाभि से उत्पत्ति का अक्षर मात्र भी उसमें नहीं आया। आगे उपनिषद से भी सिद्ध नहीं इसलिए आपके भाषण की उपेक्षा है। अहंकार निष्ठा मूर्तिमत्व में भी प्रमाण नहीं दिया तथा च श्रुति में निराकार प्रतिपादक मन्त्र के विरोध से आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता क्योंकि ईश्वर के मुख न देखने से असंगत है, वेद विद्या व सत्य भाषणादि कर्म करने से ब्राह्मण मुख्य शरीर में मुख के सदृश है। और बल वीर्य्यादि युक्त बाहु सदृश क्षत्रिय कहाता है। कृषि व्यापारादि गुण युक्त धन-धान्य समृद्ध वैश्य इस विराट पुरुष की दया से पैदा होता है। ऐसा जानना चाहिए, जड़तादि गुण विशिष्ठ पादस्थानी सेवादि धर्म शूद्र का कर्म है यह वेदोपदेश है। इसी प्रकार आपका साकार ईश्वर क्या अन्धा, लंगड़ा भी है? "सहस्त्रशीर्षा" इस मन्त्र में पुरुष पद विशेष्य है पुरि ससार में सब ओर से व्यापक होकर वर्तमान हैं। सहस्त्र माने असंख्य हम लोगों के सिर जिस पूर्ण पुरुष में रहते हैं इसी प्रकार हजार आंखें व पाद क्यों नहीं है? असंख्य आंखें व पाद भी उसी विराट के बीच में है। "स भूमि ए सर्व······" उसी मन्त्र के उत्तरार्ध से विरोध आवेगा। क्योंकि जो परिमित है वह व्यापक नहीं हो सकता, आगे उस परमेश्वर की प्रतिमा नहीं है। जिसका यश बड़ा है, वेद में इतना भी नहीं लिखा है कि पाषाण की मूर्ति बनाकर मन्दिर में रखकर चन्दन, पुष्पादि से पूजन करे। आपके भाषण में

अशुद्धियां हैं जैसे जायते का ज्ञायते तथा श्रूयते का श्रुयते और आसीत् का आसीत, अस्तु ! तो भी मैंने उपेक्षा की, आगे कुवाच्य शब्दों का उत्तर देना नहीं चाहता, जो वस्तु जिसके पास होती है वह उसी को देता है। श्लोकार्थ सरल है बुद्धिमानों में बहुत से क्या ?

हस्ताक्षर—
"रामाश्रय शास्त्री"
(उपदेशक—सभा)

नोटः—

इतने भाषण के पश्चात पब्लिक ने व सरकल साहब जी ने कहा—अब आगे विवाद भाषा ही में होना चाहिए, जिससे सब लोग समझ सकें। इसलिए आगे भाषा में ही शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

सनातनी पंडित श्री श्याम बिहारी जी—

जब कि भाइयों वेद, शास्त्र व रामायण, पुराणादि में मूर्ति पूजा का विधान है, तभी तो लाखों रुपए लगा कर हमारे पूर्वजों ने जगह-जगह मन्दिर, शिवालय, ठाकुरद्वारे बनवाकर ईश्वर भक्ति का रास्ता सुगम करके संसार भर में आस्तिकपने का प्रचार किया, और हम लोग भी उन्ही का अनुकरण करते हैं, क्योंकि ऐसा कौन निर्बुद्धि अधम होगा जो के अपने बाप-दादे की रीति-भांति छोड़कर झूठे गपोड़ों पर चलना पसन्द करेगा ? साक्षात् ईश्वर का अवतार श्री रामचन्द्र जी हैं, परन्तु ये नास्तिक लोग उनको भी मनुष्य बताते हैं, जिन्होंने जन्मते ही मैया कौशल्याजी को अपना वास्तविक भगवान रूप प्रकट होकर दिखलाया, और उस दिव्य रूप को देखकर माता जी ने भी उनकी स्तुति की, फिर वह रूप बदल कर बालकों की तरह आप रूप ही रोने लगे। यह लोग इन सब बातों पर पानी फेरा करते हैं अतएव हमने इन्हें जाति-पाति व श्री जगन्नाथ जी की भक्ति से इलाहदे (अलग) कर दिया है। जबके बालमीकि रामायण से सिद्ध हैं कि श्री रामचन्द्र जी ने भी समुद्र के पास महादेव रामेश्वर के लिंग की स्थापना की है, स्वामी दयानन्द जी को भी पूरा श्लोक लिखते संकोच हो गया, "**अत्रपूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः**" इतना ही लिखकर रह गए आगे लिखते तो सारी दयानन्दी उड़ जाती, और मूर्ति पूजा सिद्ध हो जाती तो इनका गुरुडम संसार में नहीं चलने पाता, फिर कैसे रुपये बटोर-बटोर कर इकट्ठा करते ! ओर कहते हैं कि—"**साधु को खूब धन दिया करो**" यही नहीं आगे चलकर उत्तर काण्ड बाल्मीकीय रामायण में कहा है—"**यत्र यत्र सयातिस्म रावणोराक्षसेश्वरः**" इत्यादि से सिद्ध है कि रावण भी हर समय जाम्बूनद सोने का लिङ्ग अपने साथ रखता था, और गन्ध व पुष्पादि से लिङ्गेश्वर श्री महादेव का पूजन करता था।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

श्रीमान सभापति जी तथा सभ्य पुरुषों ! वेद शास्त्र व रामायणादि में जड़ प्रकृति, पाषाण, काष्ठ, तांबे, सोने, चांदी व पार्थिवादी की मूर्ति इतनी लम्बी, चौड़ी, ऊंची, नीची, काली, पीली, श्वेतादि बनाकर पूजने का लेशमात्र भी विधान नहीं है। अब रहा लाखों रुपये लगाकर मन्दिर आदि बनाकर कंगूरा खड़ा करना और बताना कि यही एक आस्तिक बनाने का सीधा रास्ता है, सो यह सब लीला वेदों के पठन-पाठन के बिगड़ने से पुराणों की आभास मात्र कपोल कल्पना है, आगे हां ! बेशक कौन ऐसा निबुद्धि मनुष्य होगा कि जो बाप-दादों की वेद पढ़ने की

चाल छोड़कर पुराणों के थोथे गपोड़े सृष्टि विरूद्ध सुनना पसन्द करेगा ? यदि श्री रामचन्द्र जी साक्षात् आपके मतानुकूल अवतार ही थे तो मैं उन्हीं के वचनों का प्रमाण सुनाता हूं। जब श्री रामचन्द्रजी के पास देवता लोग आकर पूछते हैं कि आप अवतार हैं ? तब उन्होंने उत्तर दिया कि—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामंदशरथात्मजम् ।
सोऽहमयश्चयतश्चाहम् भगवांस्तद् ब्रवीत में ॥११॥
(युद्धकाण्ड बालमीकीय रामायण सर्ग ११६ श्लोक ११)

सत्यवादी मर्यादा पुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र जी कहते हैं कि मैं तो मनुष्य अपने को मानता हूं। दशरथ का आत्मज पुत्र हूं। ईश्वर नहीं हूं और न मैं अवतार हूं।

अब कहिए रोना रूप आदि दिखाना काफूर हो गया या नहीं ? पानी तो आपने वैदिक धर्म पर ५००० वर्षों से फेर रखा है। आगे जाति-पाति की रक्षार्थ रजिस्टर कब बनाया गया था ? जिसमें से आप आर्यों का नाम नामावली से काट दोगे···जनता में हंसी···आपके श्री जगन्नाथ जी अपने लूले हाथ पाव भी आज तक न बना सके, फिर संसार को क्या बनावेंगे ? जिस जगन्नाथ को विक्रमी सम्वत् १२३१ में उड़िसा के राजा अनंग भीमदेव ने बनवाया था, क्या मैं पूछ सकता हूं कि उससे पूर्व कौन से जगन्नाथ जी पूजे जाते थे ? पता देना चाहिए। दयानन्दी वैदिक धर्म संसार में फैलेगा, पर लिङ्ग पूजा चल बसी—"**एतन्तुदृश्य ते तीर्थं सागरस्य महात्मनः। से तु बन्धइतिख्यातं त्रैलोक्य परिपूजितम् ॥ एतत्पवित्रपरमं महापातक नाशनम्। अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादम करोदविभुः॥** (युद्धकांड सर्ग १२५ श्लोक २०/२) अर्थात् श्रीराम जी कहते हैं कि···हे सीते यह जो समुद्र का घाट दीखता है, यह पुल सर्व व्यापक देवों में बड़े महादेव परमात्मा ने जब हम पर कृपा की है तब बंध पाया, परम पवित्र है, और पापी लोग पापों का प्रायश्चित करते हैं, बस ! लिंग का तो शब्द भी नहीं है। मूर्ति स्थान व पूजन कैसा ? तथा "**सर्ग शतान् पंच**" के प्रमाण में उत्तर कांड प्रक्षिप्त है, राक्षस रावण यदि लिंग पूजक था तो उसके अनुगामी ही लिंग पूजें। रावण ने अनेक अनर्थ भी तो किये थे, परन्तु राम भक्तों को लिङ्ग नहीं पूजना चाहिए, हम सभी रामचन्द्र जी महाराज के अनुगामी हैं रावण के नहीं, आप रावण के अनुगामी हो सकते हैं,······जनता में हंसी······। अस्तु।

सनातनी पण्डित श्री श्याम बिहारी जी—

परमात्मा निराकार-साकार दोनों प्रकार का है। जब तक अवतार न लेगा, इतना बड़ा संसार कैसे बना सकता है ? जब तक कुम्भकार के हाथ-पैर न होंगे कभी भी घड़ा नहीं बन सकेगा। इसी प्रकार वह अंशावतार ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि बन कर हम लोगों को अपनी लीला करके दिखाता है। कभी ब्रह्मा, कभी महादेव रूप धारण करके संसार के उपदेशार्थ चरित्र करता है। सनातन से चौबीस अवतारों की कथायें चली आ रही हैं।

भाइयों यह कभी झूंठी हो नहीं सकती हैं। जब-जब संसार में पाप बहुत बढ़ जाता है तभी स्वयम् भगवान जन्म लेकर पापों के भार को उतारने के अर्थ रामावतार व श्री कृष्णावतार समय-समय पर होता चला आया है। श्रीमद्भगवद् गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी ने स्वयम् अपने को ईश्वर का अवतार कहा है। कि हे अर्जुन मैं ईश्वर का अवतार हूं, मुझे तुम ईश्वर का अवतार समझो; लेकिन इन लोगों ने गीता पर भी पानी फेर दिया है। और अर्थ बदल कर गीता के गौरव को नष्ट कर रखा है गीता में—"**यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिभवति भारत**" इस श्लोक में साफ तौर से श्री कृष्णजी ने अपने को ईश्वर का अवतार कहा है। और यही नहीं गीता व वेद में भी अवतार कहा

हुआ है कि मैं वेदों का कर्त्ता हूं, जो कोई मेरी शरण में आता है उसे मैं मुक्ति अपना परम्धाम देता हूं। देखिये श्लोक— **नमेविदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः अहमादिर्हिदेवानां महर्षीणां च सर्वशः॥** अर्थात् मुझे देवता, ऋषि, महर्षि लोग भी बड़े तप से पाते हैं, मैं ही सबका आदि मूल परमेश्वर हूं। इत्यादि प्रमाणों से मूर्ति पूजा सिद्ध हो गई है, मैं सबको विश्वास दिलाता हूं कि आप लोग ईश्वर की ऐसी भक्ति करते हैं। इनकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ जावेंगे तो मुक्ति कभी नहीं पा सकोगे, यमराज के दूत पकड़ कर ले जावेंगे और घोर नरक में पड़ना पड़ेगा, देखिये तीर्थ, व्रत करने से व दान पुण्य करते रहने से भगवान के मथुरा, काशी प्रयाग व हरिद्वार आदि में दर्शन करने से साक्षात् स्वर्ग को जाते हैं। भाईयों क्या हमारे पुरिखा (पूर्वज) मूर्ख थे? जो यह सनातन धर्म कायम करके अपने बाप-दादों की चाल सदा से चलते आये हैं, मैं आगे और क्या कहूं? यह तो माता-पिता के श्राद्ध-तर्पण और ब्राह्मणों को "**लेटरबक्स**" बताया करते हैं—जनता में हंसी···भला कौन ऐसा पुत्र पापी होगा जो अपने पितरों के अर्थ पितृलोक में सुख पहुंचाने के लिए यहां श्राद्ध-तर्पण करना बुरा समझेगा। अस्तु! कहां तक गिनाऊं, वेद से लेकर आज तक छोटी-छोटी पुस्तकों में भी पूर्ति पूजा का विधान व श्रेष्ठाचार चला आ रहा है। पर अब हम सबको धर्म से भ्रष्ट करने के लिए जगह-जगह लोगों ने अटल सनातन धर्म पर धावा करना शुरू किया है। पर मैं आज पूर्ति पूजा सिद्ध करके इनसे भी पूजवा लूंगा, और ये भी तो छुरे तक को पूजते हैं, सबेरे उठकर दयानन्द जी की तस्वीर के हाथ जोड़ते हैं। क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है? अवश्य है।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

ईश्वर निराकार जन्मरहित है। आपके मतानुसार जब निराकार से साकार बनकर सृष्टि रचता है, इससे भी निराकार ही संसार रच सकता है। क्योंकि जिस अपनी स्वशक्ति से साकार होना आप सिद्ध करते हैं उसी अपनी स्वशक्ति से ईश्वर स्वयम् साकार न बनकर इस जगत को साकार रूप रचकर सर्वत्र निर्वयव होने से निराकार व व्यापक है। उसे बड़ा होने से ब्रह्मा, व्यापक होने से विष्णु, और प्रलय करने से महादेव व रुद्र कहते हैं। देखिये वेद में कहा है—

"सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्॥　　(यजुर्वेद अध्याय ४०, मन्त्र ८)

इसका पदच्छेद भी सुनिये—"**सपरि आगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम् शुद्धम्। अपाप विद्धम्॥** अर्थात् (**अकायम**) देह रहित (**अव्रणम्**) छिद्रों से रहित (**अस्नाविरम्**) नस नाडियों से रहित अर्थात् ईश्वर यह स्थूल शरीर व सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों से रहित आकाशवत् शुद्ध-पवित्र-पापतिरिक्त रूप रंग से रहित सर्वत्र व्यापक है, कभी भी अवतार नहीं लेता, ऐसा ही महिधर ने भी अपने भाष्य में अर्थ किया है २४ अवतार ये वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण हैं। श्री मच्छंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र २-३-४४ पर "**अंश इवांशों नहि निर्णयवस्य**" ईश्वर में अन्शा-अन्शी भाव नहीं है सर्वत्र व्यापक होने से गीता में श्री कृष्ण जी अर्जुन के प्रति क्या कहते हैं? देखो—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्ययईश्वरः॥ १७॥

(गीता अध्याय १५ श्लोक १७)

अर्थात्—वह उत्तम पुरुष, परमात्मा जिसका नाम है। मुझसे बड़ा है, तीनों लोकों में उपचय-अपचय से रहित व्यापक ईश्वर एक है, मैं ईश्वर नहीं हूं। "**यदा यदाहि धर्मस्य**···" इस श्लोक से ईश्वर का अवतार सिद्ध नहीं होता किन्तु पुण्यात्मायें ईश्वर की प्रेरणा से अपने कर्मानुसार जन्म लेकर पापों का नाश धर्म का अभ्युत्थान, समय-समय

पर करती आई हैं। यदि पक्षपात का चश्मा दूर करके धर्मभाव से विचारें तो आगे भी गीता से सृष्टि कर्त्ता ईश्वर के अवतार व जड़ मूर्ति पूजा की विधि लेशमात्र भी नहीं है प्रत्युत अर्जुन से योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र जी उस प्रभु की शरण में जाने का उपदेश करते हैं, देखो—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥६१॥
तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानंप्राप्यस्यसि शाश्वतम् ॥६२॥
(गीता अध्याय १८ श्लोक ६१ व ६२)

इसमें श्री कृष्ण जी अर्जुन को साफ तौर पर उपदेश करते हैं कि – हे अर्जुन ! वह ईश्वर सब प्राणियों के हृदयों में ठहरा हुआ है। अपनी स्वाभाविकी क्रिया से जीवों को कारण रूप (प्रकृति) माया से कार्ययन्त्र पर घुमा रहा है। अतएव, हे भारत ! सब ओर से उस ही शरण को चलो। निरन्तर निश्चय उस प्रभु की दया से उत्तम मुक्ति रूपी शान्ति स्थान को प्राप्त होंगे अर्थात् बिना अजन्मा ईश्वर की शरण में चले संसार का मोह नहीं छूटेगा इस प्रकार अर्जुन को उपदेश किया है, परन्तु खेद है कि श्रावण मास की हरियाली देखकर सर्वत्र सब काल में भी ईप्सा करता है। तस्वीर व छुरे को हम नहीं पूजते हैं, पर आप सबको यमदूतों की धमकी देखकर पुजवाना चाहते हैं, सो अब लोग चाल की बातें समझते हैं; आगे देखिये मुण्डकोपनिषद में कहा है—"**दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः सवाह्याभ्यन्तोह्यजः**" अर्थात् इसमें भी "अमूर्ति" व "अज" शब्द ईश्वर के विशेषण हैं, और जो आपने मृतक श्राद्ध-तर्पण की चर्चा की है सो याय शास्त्र पंचमाध्याय के अनुसार "प्रतिक्षा विरोध निगृह स्थान" में ग्रस्त हो गये हैं। अस्तु ॥

सनातनी पण्डित श्री श्याम बिहारी जी—

यह वार्ता सब पर विदित है कि जब बहुत से मतों को चलते देखा तो उसी अन्धाधुन्ध में स्वामी दयानन्द ने भी एक मत अपना नवीन खड़ा किया, जिसमें सब वेद विरुद्ध बातें भरी पड़ी हैं, वेद मन्त्रों के अर्थ बदल कर अपने मतलब के लिए मूर्ति पूजा और तीर्थों का भरपेट खण्डन किया है। इस हत्यानन्दी मत का मुख्य प्रयोजन यही मालूम होता है कि; संसार में जितनी पुरानी बातें सदा से चली आ रही हैं, उन सबका सत्यानाश हो जावे, पर वेद में भी तो मन्त्रों से पाषाण में प्राण प्रतिष्ठा का विधान पाया जाता है, जैसे—"**अश्मा भवतु ते तनूः**" कि हे ईश्वर ! इस पत्थर की मूर्ति में आप आइये, आपका यह शरीर है हम आपकी प्रतिष्ठा करते हैं। और वेद मन्त्रों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा करके पूजन भी करते हैं, जब वेद इस प्रकार मूर्ति पूजा की विधि बताते हैं तो, हम लोग नास्तिकों की बातों में कभी भी नहीं आ सकते थे। "**न तस्य प्रतिमास्ति**" इस मन्त्र के अर्थ को ही यह लोग नहीं जानते हैं, क्योंकि "**अश्म**" नाम पत्थर का है। यह ईश्वर का शरीर है, तब यह कहना कि उस ईश्वर की प्रतिमा नहीं है यह बात ऐसी है "जैसे वन्ध्या स्त्री का पुत्र याने लड़का कहा जावे" अरे भाई ! ये लोग अपठितों में गप्प सप्प मारा करते हैं, हम आशा करते हैं कि आप लोग इन समाजियों की झूंठी बातों से बचे रहेंगे कि—ईश्वर साकार नहीं है। भाइयों ! ईश्वर में अवश्य ही सब शक्तियां हैं वह जो चाहे सो कर सकता है।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

महाभारत के पश्चात पुराणों ने नाना मत खड़े किये हैं, क्योंकि वेदोक्त धर्म के अतिरिक्त अन्य सब मतों को ५००० वर्ष से इधर नवीनत्व स्वयम् स्वीकृत है; श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कोई अपना मत खड़ा नहीं किया, किन्तु नाना मतों को हटाकर एक वेदोक्त धर्म का प्रचार वेद भाष्यादि द्वारा किया है।

आपके वेद भाष्याचार्य्य महिधर ने यजुर्वेद अध्याय २३ के मन्त्र २० पर भ्रष्ट अर्थ किया है। क्या आप इसे मानते हैं ? मन्त्र भी सुनिये—

"अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति । महिषी स्वयमेवाश्व शिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति ॥"

मुझे तो महिधर का यह किया हुआ अर्थ कहते हुवे भी शर्म आती है, आप ही शब्दार्थ करके पब्लिक को सुना दीजियेगा आगे देखिये—

"एह्यश्मानमातिष्ठाश्मा भवतु ते तनूः। कृण्वन्तु विश्वेदेवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥"

(अथर्ववेद काण्ड २ सूक्त १३ मन्त्र ४)

इस मन्त्र को सायणाचार्य जी ने गोदान संस्कार में विनियुक्त किया है। जैसे—हे बालक ! "**एहिआगच्छ**" आ पत्थर पर बैठ ! तेरा शरीर पत्थर अर्थात् पत्थर के तुल्य रोगादि रहित पुष्ठ हो, ईश्वर तेरी आयु १०० वर्ष की करे। आपका किया हुआ अर्थ अतयन्त अशुद्ध है। अस्तु ॥

(श्री पंडित श्याम बिहारी जी महिधरार्थ नहीं सुना सके) अतएव—"**आर्य समाजस्यविजयोऽभदिति**" ॥

शास्त्रार्थ के अन्त में—

अन्त में "**श्री सुरजु ठेकेदार**" मन्त्री— आर्य समाज इस बात पर अड़ गये कि विजय पत्र अवश्य दिया जावे, सभी मध्यस्थों को बिठा कर उनसे निम्न प्रकार विजय पत्र हासिल किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि पौराणिकों ने फिर कभी सिर नहीं उठाया।

विजयपत्रमिदम्

॥ ओ३म् ॥

आश्विन संम्वत् १९७१-तारीख २८-९-१९१४ इ०

यह विजय पत्र आर्य समाज बल्हारपुर जिला चांदा (सी० पी०) तथा (उपस्थित) पांच हजार संख्या जन समूह की ओर से श्री मान पंडित रामाश्रय जी शर्मा शास्त्री जी को दिया जाता है।

"उक्त पण्डित जी ने सनातनी पण्डित श्याम बिहारी शर्मा जी को पुलिस इन्सपेक्टर तथा अन्य विद्वानों के समक्ष संस्कृत व भाषा दोनों में परास्त कर दिया" अलम् भुत्सु॥

हस्ताक्षर—

शास्त्रार्थ के मध्यस्थों द्वारा— १. श्री रामप्रसाद शर्मा (मन्त्री) सनातनधर्म सभा बल्हारपुर, (चांदा)
२. श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती
३. श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती (मुकाम चीखलबर्धा)

"अब आप सभी को पौराणिक लीला छोड़ कर सच्चे वैदिक धर्म का सेवक होना चाहिये।"

निवेदक—"**सुरजु ठेकेदार**"
मन्त्री—आर्य समाज बल्हारपुर (चांदा)

आठवां शास्त्रार्थ--

स्थान : जलेसर (एटा) उ० प्र०

दिनांक : २४ अप्रैल सन् १९१४ ई० (प्रातः ८ से १० बजे)
विषय : नियोग आदि
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पण्डित मुरारि लाल जी शर्मा, सिकन्दराबाद (उ० प्र०)
सनातनधर्म सभाकी ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पण्डित कालूराम शास्त्री, अमरोधा (कानपुर)-निवासी तथा अनोखेलाल भजनीक, तिलहर (शाहजहांपुर) निवासी
आर्य समाज के मन्त्री : श्री पण्डित राम स्वरूपजी शर्मा
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री हरद्वारी पण्डित दुर्गादत्त पन्त
आर्य समाज की ओर से अन्य उपस्थित विद्वान : श्री ठाकुर इन्द्रवर्मा जी,
पण्डित त्रिलोकी नाथ जी शास्त्री,
पण्डित नानकराम जी
ठाकुर खमानसिंहजी (बरौठा निवासी)
सनातन धर्म की ओर से अन्य उपस्थित विद्वान : श्री स्वामी दयानन्द बी० ए०, तथा
श्री अनोखेलालजी भजनीक, आदि
समय विभाजन हेतु (प्रबन्धकर्त्ता) : सब इन्सपेक्टर (पुलिस) जलेसर (एटा) उ० प्र०

नोट : यह अप्राप्य सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" निवासी जलेसर टाउन (एटा) ने भिजवाई, उनके हम हृदय से आभारी हैं।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

इस ट्रैक्ट का नाम है "कालूराम में कालिमा" जिसमें लिखा है—जैसे तैसे जलेसर के पौराणिक हिन्दू सभा के वार्षिक उत्सव का समय आया, स्थानीय आर्य समाज में फ़रवरी और अप्रैल मास में साधारण की अपेक्षा विशेष प्रचार होने के कारण अब लोगों में विशेष स्फूर्ति और ज्ञान प्राप्ति की पिपासा बढ़ने लगी, इन पौराणिक पंडितों के लिए यदि कोई भयानक बात हो सकती हैं तो वह यह है कि–सर्व साधारण में विद्या व ज्ञान की वृद्धि जनता की सत्य शास्त्रों में प्रवृत्ति, लोगों में तर्क की उत्पत्ति आदि-२ आर्य समाज के प्रचार के साथ-साथ यह बातें तुरन्त फलरूप प्रकट हुआ करती है और इन बातों के विकास के साथ पौराणिक आकाश भी नये-२ रंग बदला करता है। वही बात यहां भी हुई और आर्य समाज के प्रचार को रोक कर अपने स्वार्थ की सिद्धि करनी चाही। भोले-भाले धन वालों को अपने पञ्जे में फंसा कर यहां की उस पौराणिक धर्म सभा ने जिसका कभी नाम भी नहीं सुना था, अपने वार्षिक उत्सव की जड़ जमा कर अनुचित कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया। "**आर्य समाज से शास्त्रार्थ होगा। बल पूर्वक आर्य समाज के मन्तव्यों का खण्डन किया जावेगा, जो लोग आर्य समाजी हो गये हैं उनको प्रायश्चित करना पड़ेगा, मिस्टर दयानन्द बी० ए० अब असली धर्म सिखायेंगे, पण्डित कालूराम की वाक्पटुता का कौन सामना करने को उद्यत होगा? क्या पण्डित दुर्गादत्त जी पन्त के भी कूर्माचल भूषण में कोई दूषण दिखायेगा? आर्य समाज के नियोग, निराकार मण्डन आदि सिद्धान्तों की पूरी-पूरी पोल खोली जायेगी आदि-२**"।

पौराणिकों की बन्दर भभकियों ने अच्छा खासा ऊधम मचा रक्खा था। और सर्व साधारण जनों को विदित होने लगा था कि आर्य समाज की अन्त्येष्टि के पुण्य का भाग यहां के पौराणिक धर्म सभा के ही भाग्य में रहेगा, हमको तो निश्चिय हो था कि "**मरने वाली चींटी के पर निकल आते हैं**" और ईश्वर को धन्यवाद है कि हमारी यह धारणा ज्यों की त्यों सिद्ध हुई, पौराणिक धर्म सभा की ओर से २१ से २४ अप्रैल सन् १९१४ ई० तारीखों में उत्सव होने का नोटिस निकाल दिया था, और प्रति दिवस प्रातः काल में दो घन्टे शंका समाधान के लिए रख कर सर्व साधारण में घोषित कर दिया था कि—यहीं शास्त्रार्थ के लिए आह्वान होगा, किन्तु उधर तो आर्य समाज ने निश्चय ही कर लिया था कि जब तक आर्य समाज को लेख बद्ध शास्त्रार्थ के लिए आह्वान न होगा तब तक वह शास्त्रार्थ करने को उद्यत नहीं होगा, तो भी इन दिनों में एक अद्भुत ही दृश्य था, जो देखते ही बनता था। यदि आर्य समाज का कोई भी सज्जन पुरुष किसी कार्यवश नगर से बाहर को जाता और वह इसी अवसर में दैवयोग से वापिस आ जाता तो तुरन्त ही यह अफ़वाह उड़ायी जाती कि—"**अमुक महाशय शास्त्रार्थ के लिए पण्डितों को लिवाने हेतु गये थे, मगर खाली ही आये**" हमको तो खेद और आश्चर्य होता है कि—वे यदि ये बातें अपने हृदय से कहते थे और इनके विचार में आर्य जगत पंडितों से रहित हो गया था तो यह लोग उस समय तक क्यों नहीं आर्य समाज को लेख बद्ध चैलेंज दे सके जब तक कि इनके शिरोधार्य हरद्वारी पन्डे दुर्गादत्त पन्त न आ गये और मजा तो यह है कि जिनके बलबूते पर इन लोगों को शास्त्रार्थ करने की हिम्मत हुई वे ही शास्त्रार्थ में बोले नहीं २२ अप्रैल को पंडित दुर्गादत्त पन्त के आने पर आर्य समाज को पौराणिक सभा के लोगों ने शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज दिया, और उसमें स्पष्ट लिख दिया कि नियमों के निश्चय करने की आड़ में टाल-मटोल न की जावे, बस! आर्य समाज क्या चाहता था? वह तो ऐसे अवसरों का अभिलाषी सदैव से है, तुरन्त ही इनके पिण्डाल में

सर्व साधारण के सामने जाकर और लेख द्वारा भी उनके आह्वान की स्वीकारी कर निश्चय कर चुका था कि शास्त्रार्थ किया जावे। इस स्थान पर हमको शोक के साथ पौराणिकों की एक चाल से सर्व साधारण को अवगत कराना पड़ता है कि जब आर्य सामाजिक सज्जन उनकी सभा में से उनका चैलेंज स्वीकार करके चले तो, या तो इस उद्देश्य से कि आर्य समाज को वे लोग बदनाम करें कि इन्होंने उत्सव में विघ्न डाला या इस अभिप्राय से कि उनकी विजय प्रकट हो ! नियम विरुद्ध और असभ्यता पूर्वक अपने मनुष्यों से तालियां पिटवाईं, और जयकारे बुलवाये, खेद है कि दूसरे दिन तारीख २३ अप्रैल को यह निश्चय होने पर भी कि दोनों पक्ष के मनुष्यों में से न तो कोई जय शब्द बोले न तालियां पीटें, परन्तु पौराणिक फिर भी अपने इस अनुचित व्यवहार से न चूके। कासगंज के पौराणिक लोगों की कार्यवाही सर्व साधारणों में प्रकट हो चुकी थी वही श्रीमान पण्डित मुरारि लाल जी शर्मा ने—रूलियाराम 'अमृतसरी' तथा दयानन्द बी० ए० व अनोखेलाल की अच्छी तरह पोल खोली थी, वहां के कार्य को अधूरा छोड़कर रूलियाराम ने तो लाहौर का रास्ता लिया, और शेष दो महाशयों ने जलेसर आकर दम लिया, किन्तु आप सब लोग पण्डित मुरारिलाल जी को तो जानते ही हैं, वे भी अपने शिकार का पीछा करते हुए जलेसर आ पहुंचे और साथ में श्रीमान पण्डित त्रिलोकीनाथ जी शास्त्री और पण्डित नानकराम जी (अध्यापक-पाठशाला कासगंज) और ठाकुर खमानसिंह जी मन्त्री आर्य समाज बरौठा (अलीगढ़) आ गये **"महाशय इन्द्र वर्मा जी उपदेशक"** गुरुकुल (सिकन्द्राबाद) एक भजन मण्डली सहित इसी अवसर पर आ पहुंचे। मिस्टर दयानन्द "बी०ए०" (कासगंज) में श्रीमान मर्यादा पुरुषोत्तम आर्य सम्राट महाराजा रामचन्द्र जी और योगीराज श्री कृष्णचन्द्र जी को तमोगुणी ठहरा कर मांस भक्षक और परस्त्रीगामी कह कर चले आए थे, हम नहीं जानते कि इनको कौन से मठ से सन्यास आश्रम की दीक्षा मिली है ? जहां सरस्वती, गिरी, पुरी, भारती आदि उपनामों के स्थानों में बी० ए० की उपाधि मिला करती है, सम्भव है कि उसी आश्रम में प्रातः स्मरणीय श्रीराम-कृष्ण आदि पूर्व पुरुषो को तमोगुणी व रजोगुणी आदि कहकर कलंकित करने की शिक्षा भी दी जाती हो। हमारे विचारों में तो कोई भी शिखाधारी अपने पूज्यों के विषय में ऐसा नहीं कह सकता और निःस्सदेह ऐसे शिक्षक यदि कोई हो सकते हैं तो वे यवन या ईसाई ही हैं। अस्तु ॥

शंका समाधान का समय पौराणिक धर्म सभा की ओर से प्रातःकाल आठ बजे से दस बजे तक रखा गया था, आर्य समाज के पण्डित और अन्य सभासद साढ़े सात बजे ही पौराणिक धर्म सभा के मण्डप में जा पहुंचे, इस रोज जलेसर के सर्व साधारण लोग ही नहीं किन्तु आसपास के लगभग पांच हज़ार मनुष्य उपस्थित थे, जिनसे कि पण्डाल सम्पूर्ण भरा हुआ था, और उत्साह पूर्वक लोग देख रहे थे, कि आज किस प्रकार आर्य समाजी व पौराणिक पण्डितों में शास्त्रार्थ होता है ? आज मालूम पड़ेगा कि पौराणिक पण्डित किस प्रकार नियोग और निराकार सिद्धांत का खण्डन कर मूर्तिपूजा की स्थापना करेंगे, कौन से वैदिक प्रमाणों से वे लोग मृतक श्राद्ध का मण्डन कर पुनर्जन्म में प्राप्त हुए पितरों को भोजन प्राप्त होने की सिद्धि करेंगे, दोनों तरफ से वाद-विवाद होने के पश्चात निश्चय हुआ कि उत्सव के शेष दो दिनों में शंका समाधान के समय में तो आर्य समाज के पंडित शंका किया करेंगे, और पौराणिक पंडित उनका समाधान करेंगे और रात्रि के आठ बजे से ११ बजे तक शास्त्रार्थ हुआ करेगा, शास्त्रार्थ में आर्य समाज का मंडन विषय "**नियोग**" निश्चय हुआ, और पौराणिकों की तरफ से यह निश्चय किया कि वे **गर्भाधान संस्कार को अवैदिक सिद्ध करेंगे**। पाठकों का ध्यान हम यहां पर पौराणिक धर्म की एक विशेष कमजोरी पर खींचना चाहते हैं कि नियोग आर्य समाज का एक सिद्धांत है और उसके मण्डन का भार आर्य समाज ने अपने ऊपर लिया, इसी प्रकार मूर्तिपूजा या साकार मण्डन सनातन धर्मियों को करना था, परन्तु वैसा न करके एक नये विषय को ही छेड़ दिया और इस प्रकार उन्होंने अपने किसी भी सिद्धांत के मंडन करने में अपनी शक्ति न दिखाई, दूसरे यदि उनको संस्कार विधि से विरोध था तो अपने प्रचलित संस्कार-विधि से ग्रन्थ संस्कारभास्कर से तो उन्हें विरोध न था।

जिसमें गर्भाधान संस्कार की पूरी व्याख्या हैं। इस प्रकार पौराणिक पण्डितों ने नियोग व गर्भाधान संस्कार का खण्डन करना ही स्वीकार किया, और अपने किसी भी सिद्धांत का मण्डन करने में उन्होंने अपनी योग्यता प्रकट न की, पाठकों ! यदि वह कुछ भी योग्य और विद्वान होते तो जिस प्रकार आर्य समाज ने अपने नियोग के सिद्धांत का मण्डन करना स्वीकार किया था, उसी प्रकार इन्हें भी मूर्तिपूजा, मृतकश्राद्ध या अन्य किसी सिद्धांत का मण्डन करना उचित था, सो उन्होंने नहीं किया, जिसका स्पष्ट कारण यह है कि पौराणिक धर्म के ये सिद्धांत तीन काल में भी वैदिक सिद्ध नहीं हो सकते, अस्तु।

आर्य समाज की ओर से श्रीमान पण्डित मुरारिलाल जी शर्मा मन्त्री, गुरुकुल सिकन्द्राबाद जिला बुलन्दशहर निवासी और पण्डित त्रिलोकीनाथ जी शास्त्री बोलने वाले थे। क्योंकि मिस्टर दयानन्द बी० ए० को आज सुबह ही से दस्त होने लग गये थे। इसलिए पौराणिक धर्म सभा की ओर से पण्डित कालूराम जी शास्त्री (अमरोधा) कानपुर निवासी और अनोखेलाल भजनीक(तिलहर) शहाजहांपुर निवासी उत्तर देने के लिए नियत हुए तथा हरद्वारी पण्डित दुर्गादित्त पन्त उस दिन प्रधान की कुर्सी पर बैठे। जलेसर के सब इन्सपेक्टर साहिब भी जो कि इन्तजाम के लिए वहां थे कुर्सी डालकर और घड़ी हाथ में लेकर बैठ गये, यह नियम किया गया कि पहले पंडित मुरारिलाल जी शर्मा शंका करेंगे। पंडित कालूराम या भजनीक अनोखेलाल उत्तर दाता होंगे, इस वक्त पौराणिक धर्म के पंडितों ने कई एक ऐसी चालें चली कि जिससे न तो शास्त्रार्थ ही हो और न शंका समाधान ! तो भी स्थिति को देखते हुए पंडित मुरारिलाल जी खड़े हुए तथा प्रश्न करते हुए शास्त्रार्थ का आरम्भ कर दिया।

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित मुरारिलाल जी शर्मा—

हमने बाल्मीकि रचित रामायण में ऐसा लिखा देखा है कि श्री रामचन्द्र जी ने बनवास की अवस्था में काले हिरण मारकर उनका भुना मांस स्वयं भी खाया और अपने भाई तथा धर्म पत्नी सीता को भी खिलाया, हमारे विचार में तो श्री रामचन्द्र जी आर्य सम्राट वेदानुयायी मर्यादा पुरुषोत्तम और परम धार्मिक थे, वेदोक्त पूर्ण भक्त तथा वेदानुयायी थे। तथा उनका चरित्र भी हम ऐसा ही मानते हैं। और वेदों में मांस खाने का विधान कहीं भी नहीं है। अतः यह प्रकरण किसी मांसाहारी ने बाल्मीकि जी के नाम से बढ़ा दिया है, हम धर्म रक्षक श्रीमान् रामचन्द्र जी को आदर्श पुरुष मानते हैं, या तो पौराणिक धर्म सभा भी उसको मिलावट माने या उसका समाधान करे।

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री—

(बड़े जोर से चिल्ला कर)......अगर यह बात तुम बाल्मीकि रामायण में दिखा दो तो मैं आर्य समाजी हो जाऊंगा, और तुम्हारे स्वामी दयानन्द ने तो नील गाय को मार कर खाना लिखा है। और बहुत से पशुओं वाला हवन करके उसका शेष मांस खाना भी लिखा है।

नोटः—श्री पंडित मुरारिलाल शर्मा जी द्वारा दिया गया उत्तर लिखने से पहले एक बात हम यहां पाठकों को और बतलाते हैं कि शंका समाधान के नियमानुसार प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न का उत्तर देने का अधिकार भी समाधान कर्ता को होता है न कि वह भी अपनी शंका रखकर उनका समाधान कराने को बैठ जाये ! कहां तो औरों का

समाधान करते थे। और कहां अपना ही समाधान कराने लगे इस प्रकार न्याय पथ से हटकर कालूराम ने जनता को स्पष्ट जता दिया कि वे न्याय शास्त्र के अनुसार वाद-विवाद के नियमों को नहीं जानते तो भी इनका इस प्रकार न्याय शास्त्र से गिरना किसी चालाकी से ख़ाली नहीं था, हमारे विचार से इस चाल का अभिप्राय कालूराम का यह था कि पौराणिक धर्म सभा की तो छी: छी: होती ही है, चलो आर्य समाज को तो बदनाम कर लें, जिससे सभा की भेंट पूजा व्यर्थ न जाये, अस्तु।

श्री पण्डित मुरारि लाल जी शर्मा—

देखिए! यह बाल्मीकि रामायण जो श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई की छपी हुई है, जिस पर पौराणिक धर्म महामंडल के महामहोपाध्याय विद्या वारिधि पंडित ज्वाला प्रसाद जी मुरादाबादी की टीका हैं। (पुस्तक में से वही पाठ दिखाते हुए बोले), ये सब वर्णन हैं कि नहीं? रही नील गाय वाली बात! महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने नील गाय को मारकर खाना कहीं भी नहीं लिखा है। तुम झूठ बोलकर सर्व साधारण को धोखा देते हो, किन्तु जिस प्रकार सरकार खूनी मुलज़िमों को फांसी का हुक्म देती है, उसी प्रकार नील गाय आदि हिंसक पशुओं को प्राणदण्ड देने की आज्ञा वेदों में राजा को है। और बहुत से पशुओं वाले यज्ञ का अभिप्राय यह है कि जिसके यहां बहुत से पशु होंगे उसी के यहां बहुत सा दूध-घी होगा, और तभी तो वह बहुत से घी से बड़े-बड़े यज्ञ कर सकेगा।

नोट:—इसी बीच पंडित त्रिलोकीनाथ जी शास्त्री ने बाल्मीकि रामायण से वही श्लोक पढ़कर सर्व साधारण को अर्थ सहित सुना दिया, इतने पर भी कालूराम जी को विश्वास नहीं आया, और स्वयं वहीं पुस्तक लेकर वह श्लोक पढ़कर और पब्लिक में उसका अर्थ करके जब दो बार सुना चुके तब कहीं उनको होश आया, तो अपनी कालिमा मिटाने के लिए पैंतरा बदल कर, आंखें चढ़ाकर, अंगुली नचाते हुए यह बोले कि—**"श्री रामचन्द्र जी ने मांस खाया तो जरुर मगर तीन दिनों भूखा मरने की हालत में खाया"** शोक और लज्जा की बात है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी को ईश्वरावतार मानने वाले यह हिन्दु अपने इष्ट के विषय में यह कहें कि वह भूखों मरते थे। कालूराम ने साथ ही यह भी बड़े अभिमान के साथ और बड़े दर्प के साथ कहा कि—**"हम तो विधि पूर्वक खाकर मजे उड़ाते हैं और तुम टिपटिपाते रहते हो"** अर्थात् हम तो गोश्त को मजे से खाते हैं और तुम देखते ही रहते हो, तीन बार उन्होंने अपनी इस घृणित भाषा को पांच हजार मनुष्यों के मध्य में पौराणिक धर्म सभा के प्लेटफार्म पर खड़े होकर कुछ भी न विचारते हुए अपने हिन्दुपन की योग्यता प्रकट कर दी।

श्री सर्व मान्य महाराज रामचन्द्र जी महाराज के विषय में ऐसे कुत्सित, निन्दित, घृणित और वीभत्सा-पूर्ण शब्द कहते हुए एक शिखा धारी अपने आपको वेदानुयायी, हिन्दू का मन क्षणमात्र को भी चलायमान न हुआ, शोक! कि पांच हजार मनुष्यों के मध्य में जिस बात को आर्य जाति के परम विरोधी ईसाई-मुसलमान भी कहने का साहस नहीं करते, उसी बात को इन संस्कृत के पंडित ने अपूर्व धैर्य के साथ कह सुनाई और आश्चर्य है कि स्थानीय धर्म सभाओं के नेताओं के कानों पर जूं तक न रेंगी। कि हमारे प्लेटफार्म पर खड़े होकर इस ब्राह्मण कहलाने वाले महाराज का यह कहना उचित भी था कि नहीं? किसी ने ठीक ही कहा है—

शेख जी रखते थे, शेखी का घमण्ड।
यार के पूंचे में था, उनकी हजामत बन गई॥

(मूल कापी में २ पन्ने और इसी सम्बन्ध में लिखे थे, शास्त्रार्थ से पौराणिक लोग भाग खड़े हुए यहां तक कि शंका समाधान को भी मना कर दिया। (उसे अनावश्यक समझ कर नहीं दिया गया)। **मन्त्री**—आर्य समाज

(जलेसर)

श्री पंडित कालूराम शास्त्री जी से आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान शास्त्रार्थ महारथी पूज्य महात्मा अमर स्वामीजी महाराज का भी खूब पाला पड़ा है। भगवान की असीम कृपा हैं कि वो हमारे बीच में विद्यमान हैं, पुराने महारथियों के बारे में उनसे भी कुछ परिचय लेते चलें। तो आइये श्री पंडित कालूराम जी शास्त्री जी के विषय में पूज्य अमर स्वामी जी के विचार पढ़ें !

"संग्रह कर्त्ता"
"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री—(एक परिचय)—

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री, "**अमरोधा**" जिला कानपुर (उत्तर प्रदेश) निवासी थे। मैंने उनको केवल दो बार देखा, एक बार सन् १९२० ई० में—गीदड़बाहा मण्डी जिला फीरोजपुर (पंजाब) में पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न के साथ मेरा "**क्या पुराण वेदानुकूल है** ? इस पर शास्त्रार्थ हुआ तब पंडित कालूराम जी उस शास्त्रार्थ के प्रधान बने थे। दूसरी बार—होश्यारपुर (पंजाब) में कालूराम जी के साथ मेरा शास्त्रार्थ "**क्या विधवा विवाह सनातन धर्म ग्रन्थों के विरुद्ध है** ?" या क्या सनातनधर्म के प्रामाणिक ग्रंथों से विधवा विवाह का खंडन हो सकता है ? इस विषय पर २४ मार्च सन् १९३५ ई० को हुआ था। उस शास्त्रार्थ की यह विचित्रता थी कि—वह शास्त्रार्थ "**सनातन धर्मियों का सनातन धर्मियों के साथ था।**" होश्यारपुर में एक सनातन धर्म सभा थी जिसके मन्त्री श्री पंडित जगतराम जी प्रिंसिपल सनातन धर्म कालिज होश्यारपुर थे और एक संस्था—"**सनातन धर्म विधवा विवाह सहायक सभा**" थी उसके मन्त्री श्री पंडित दौलतराम जी शर्मा बी. ए. एल. एल. बी. (एडवोकेट) थे। दोनों के मध्य उपरिलिखित विषय पर शास्त्रार्थ था। सनातन धर्मी उदार विचार के—श्री पंडित दीनदयाल जी व्याख्यान वाचस्पति के सुपुत्र— श्री पं. मौलिचन्द्र जी तथा प्रसिद्ध सनातन धर्मी नेता श्री पंडित नेकीराम जी शर्मा (भिवानी) की सम्मति से "**सनातन धर्म विधवा विवाह सहायक सभा**" की ओर से शास्त्रार्थ करने के लिए मुझे (अमरसिंह आर्य पथिक) को बुला लिया गया सनातन धर्म सभा की ओर से पंडित कालूराम जी शास्त्रार्थ कर्त्ता थे उनके साथ कविरत्न पंडित अखिलानन्द जी भी थे। तीन घन्टे शास्त्रार्थ हुआ जो "**निर्णय के तट पर प्रथम भाग**" में छपा है उस शास्त्रार्थ में उनकी घोर पराजय हुई मेरी सारे नगर में बड़े गाजे-बाजे के साथ भारी शोभा यात्रा निकाली गई। सनातन धर्म सभा ने पंडित कालूराम जी का कुछ भी सम्मान न किया। मैंने—अथर्व वेद का मन्त्र विधवा विवाह के पक्ष में दिया यथा—"**या पूर्वं पतिं वित्वा अथान्यं विन्दते पतिम्**" अर्थात् जो स्त्री पहले पति को प्राप्त करके (विधवा होने पर) दूसरे पति को प्राप्त करती है वह यज्ञ करे। पंडित कालूराम जी ने कहा कि—शब्द "**वित्वा**" विद्ज्ञाने धातु से बनता है जिसका अर्थ "**प्राप्त करके**" नहीं "**जानकर**" है अर्थात विवाह नहीं हुआ "**वाग्दान**" सगाई मात्र हुई, स्त्री ने यह जाना कि—यह मेरा पति होगा। "**पति प्राप्त करके नहीं**"। इस पर मैंने कहा—धन्य हो शास्त्री जी ! आपने व्याकरण कहां पढ़ा है ? महाराज जी ! विद्=ज्ञाने धातु से—"**वित्वा**" नहीं "**विदित्वा**" बनता है "**वित्वा**" "**विद्लृ लाभे**" धातु से बनता है जिसका अर्थ—पति को प्राप्त करके है अर्थात् पति को प्राप्त करने (विवाह हो जाने) आदि के पीछे विधवा हो जाने पर दूसरे पति का इस मन्त्र में विधान है। इस पर कालूराम जी को बहुत लज्जित होना पड़ा था। मेरे अनुभव से कालूराम जी किसी विषय के प्रकाण्ड पंडित नहीं थे। "**पण्डित सोई जो गाल बजावा।**"

शास्त्रार्थ को उस ग्रंथ (**निर्णय के तट पर प्रथम भाग**) में पढ़िए मेरे द्वारा प्रमाणों की वर्षा देखिए।

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

इकसठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : आगरा (उ० प्र०)

दिनाङ्क : १९-२०-२१ फरवरी सन् १९०१ ई०

विषय : क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी

सहायक : श्री पण्डित देवदत्त शास्त्री जी

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा (पौराणिक होने के बाद)

सहायक : श्री पंडित मुकुन्द देव जी आदि विद्वान

आर्य समाज के प्रधान : श्री पण्डित रामप्रसाद जी

आर्य समाज के मन्त्री : श्री कृपाशंकर प्राज्ञ जी

नोट :— यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा (इटावा निवासी) ने निम्नलिखित पत्र विज्ञापन, प्रथम सर्वत्र फैलाया कि—

(वर्तमान आर्य समाज से मेरे पृथक होने का कारण)

सर्व साधारण महाशयों को विदित हो कि यद्यपि पूर्व काल से भी मैं वेदादि शास्त्र के अनुकूल ही लिखने, कहने तथा मानने का उद्योग करता रहा, तथापि जब से मुझे एक यज्ञ कराने के लिए श्रौतस्मार्त कर्मकांड सम्बन्धी वैदिक ग्रन्थ विशेष कर देखने पड़े तब से विशेष कर ज्ञात हो गया कि वर्तमान आर्य समाज वेदोक्त धर्म-कर्म को वास्तव मे नहीं मानता आर्य समाज में केवल वैदिक धर्म शब्द का प्रचार मात्र है, परन्तु वैदिक धर्म के तत्व को जानने वा मानने वालों का अभाव सा है, जब मुझे अनुमान डेढ़ वर्ष से ऐसा ज्ञात हुआ कि—आर्य समाज में वैदिक धर्म का अभाव सा है, तभी से मैं इस समुदाय से अलग हो गया था, बीच में यह भी विचार मन में आया कि ये लोग धर्मानुकूल सुहृद्भाव से मुझे समझा दें वा मुझसे कोई समझ लेवें तो अच्छा है। इसी कारण मैंने इन्द्रप्रस्थ में "श्रावण मास विक्रमी ५७ सम्वत्" जबकि सनातन धर्म सभाओं का बृहत् अधिवेशन था तो मैंने "लाला मुन्शीराम जी, तथा सेठ लच्छीराम जी, मुन्शी नारायणप्रसाद जी आदि सभ्य पुरुषों के सम्मुख यज्ञ कर्मान्तर्गत स्वनिश्चित पितृ श्राद्ध को विचार पक्ष में लेना स्वीकार किया था, जैसाकि मैं आर्य सिद्धांत भाग १० अंक ७-९ के पृष्ठ ४५ में पूर्व ही छपा चुका था, परन्तु आश्चर्य है कि पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश की प्रतिनिधि सभाओं के अग्रगन्ताओं ने प्रतिज्ञा करने पर भी इन विषयों के विचार के लिए कुछ भी उद्योग न किया वरन् कृपा कर मेरी इस सुआशा को निराशा में मिला दिया। यद्यपि मैंने डेढ़ वर्ष से समाज में जाना भी छोड़ दिया था, और आर्य सिद्धांत भाग १० के दस व बारहवें अंकों में छपा भी चुका था, कि **जब तक मेरे विचार पक्षस्थ यज्ञादि कर्म का ठीक-ठीक निर्णय न हो तब तक मुझे कोई आर्य न समझे, "मैं वर्तमान में आर्य समाजी नहीं हूं"** विचार का स्थान है कि—जब मैं आर्य समाज से स्वयमेव प्रकट करके पृथक हो गया था तो "**हम लोगों ने इन भीमसेन शर्मा को आर्य समाज से पृथक कर दिया**" ऐसा छपवा कर प्रकाशित करना क्या आवश्यक वा उचित था? (ऐसे द्वेष पूर्वक हुवे वा होने वाले आक्षेपों का कुछ भी उत्तर देना मैं उचित नहीं समझता) तथापि मैं उन महाशयों के इस प्रस्ताव को अपने लिये विशेषकर हितकारी समझता हूं, अर्थात् मेरी चाहना को इन आर्य लोगों ने पूरा किया, **अब मुझे इसका बड़ा हर्ष है कि मेरे साथ किसी मत का बन्धन नहीं रहा। केवल वेद-शास्त्रों का बन्धन तो मुझे सर्वदा रखना स्वीकार ही है।** मैं आर्य प्रतिनिधि सभा मुरादाबाद को धन्यवाद देता हूं कि मेरे पूर्व प्रस्ताव को प्रकारान्तर से स्वीकार किया है। **मैं आर्य समाज और धर्म सभा आदि के सभी समुदायों से मेल रखूंगा, मेरा किसी से द्वेष वा बैर नहीं है।** सबके लिए निष्पक्ष वेदानुकूल सत्य धर्म को कहूंगा वा लिखूंगा। **आर्य समाज में भी अनेक मनुष्य धर्मान्वेषी धर्म के श्रद्धालु हैं।** उनके लिए वा अन्य धर्म से प्रेम रखने वालो के लिए अब अच्छा समय आया। मेरे साथ वर्तमान आर्य समाज का जो विवाद हुआ उसका कारण केवल श्राद्ध वा मेष मेषी ही नहीं है। किन्तु धर्म वैदिक कर्म कांड विवाद का हेतु है। **मैं स्पष्ट कहता हूं कि आर्य समाज श्रीमान स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मन्तव्य पर भी आरूढ़ नहीं है। इसलिए संस्कार विधि भी आर्यों में ठीक-ठीक नहीं मानी जाती।** धर्म के अन्वेषी, श्रद्धालु, धर्म प्रेमी, आर्य वा हिन्दू सब लोगों की सेवा

में मेरा विशेष कर निवेदन यह है कि वे महाशय मेरे इस कथन पर विश्वास और शान्ति संतोष रखें कि श्राद्ध वेदोक्त है। जीवित माता-पिता आदि की सेवा शुश्रुषा यद्यपि कर्त्तव्य धर्म हैं, तथापि उसका नाम श्राद्ध नहीं है, और जिज्ञासु लोगों को अवश्य ही ठीक-ठीक इसका निर्णय हो जावेगा। तथा हठी लोग कदापि नहीं मानेंगे, यह धर्म का विचार है, कोई ले भगई का काम नहीं है। जो शीघ्र ही मनमाना छपा कर कोई सिद्ध कर लेवे। मैं जिज्ञासु लोगों को थोड़े काल में भ्रमणकर इस विषय का ठीक-ठीक निश्चय करा दूंगा तथा लेख द्वारा भी प्रमाणादि देकर निश्चय कराऊंगा, थोड़ा सन्तोष करें॥

मुझे ठीक-ठीक निश्चित विश्वास है कि मेरे साथ निष्पक्ष होकर सुहृदयभाव से कोई सुबोध शास्त्रज्ञ पुरुष कर्म कांड विषय में चार-छः दिन भी विचार करे तो मुझे मनवा दे वा मेरी बात को वह मान ले। मैं पूर्व से भी ऐसा चाहता था, और अब भी चाहता हूं, पर इसकी आशा बहुत कम है। और श्राद्धादि के विषय में कोलाहल सम्प्रति अधिक है। लिखने वाले सम्प्रति अविद्वान अनेक हैं। अपने-अपने संस्कारों के अनुसार सब लिखते हैं, अनेक लिखने वालों का मैं एक मनुष्य उत्तर दे भी नहीं सकता और जो उत्तर दे भी सकता हूं तो भी इतने से ही धर्म जिज्ञासुओं को किसी प्रकार का सन्तोषदायक विशेष निर्णय शीघ्र प्राप्त हो नहीं सकता। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि श्राद्धादि कर्म, मुख्य वैदिक धर्म है वा कोई अन्य वैदिक धर्म है? इत्यादि निर्णय होना अवश्य चाहिए। इस कारण मैंने इस कार्य की सिद्धि का सुगम उपाय यह सोचा है कि मैं देशाटन करके वैदिक धर्म का निर्णय करूं तथा कराऊं। यद्यपि पूर्व काल से यह रीति थी कि जिज्ञासु लोग ज्ञानदाता के निकट आया करते थे, पर अब ऐसा समय नहीं है, इससे मैं ही जिज्ञासुओं के पास जा-जाकर उपदेश करूं, यह विचार स्थिर किया हैं, परन्तु इस दशा में छापेखाने आदि का प्रबन्ध वा भार मुझसे कोई सच्चा धर्मात्मा सर्वथा ही ले लेवें वही अधिकारी वा अध्यक्ष बन के अपनी इच्छानुसार इसका प्रबन्ध करे। यदि कोई महाशय कार्यालय का पूर्णाधिकार लेना चाहें तो वे मेरे साथ पत्र व्यवहार करें। अथवा कोई अच्छा अभिज्ञ संस्कृत पुरुष इसका मैनेजर प्रबन्धकर्ता नियत होकर मेरी ओर से ही चलावे, ऐसा होने पर देशाटन हो सकेगा, यदि कोई संस्कृतज्ञ महाशय प्रबन्ध करना चाहें तो वे मुझे लिखें, वेतन यथोचित पत्र द्वारा निश्चित होगा। मैं इस प्रर्यटन को वैधिक धर्म प्रचार के लिये विशेष उपकारी समझता हुआ अवश्य करना चाहता हूं। इसलिए जिज्ञासु लोग मुझे सूचना देवें कि अमुक-अमुक प्रांत में हम लोग श्राद्धादि वैदिक धर्म-कर्म का निर्णय करना-कराना चाहते हैं, उन-उन महाशयों का नाम व पता पर्यटन के रजिस्टर में लिखा जावे, और जिस प्रांत में जिज्ञासुओं की अधिकता देखी जाये उधर को पहले प्रस्थान किया जावे॥ इति॥

आपका—"**भीमसेन शर्मा**"
(इटावा)

आगरा आर्य समाज ने उपरोक्त लेख का निम्न उत्तर दिया—

॥ ओ३म्॥

[धर्मान्दोलनार्थ शास्त्रार्थ कि सूचना]

श्रीमान पंडित भीमसैन जी शर्मा महाशय! सविनय नमस्ते। आपकी धर्मान्दोलनार्थ सूचना के सम्बन्ध में आपसे यह प्रार्थना है कि आर्य समाज आपके निश्चित मृतक पितृ श्राद्ध पर सच्छास्त्रानुसार शास्त्रार्थ करने को सर्वथा उद्यत है, और अब—जबकि आपने स्वयं लोगों को ज्ञान देने की प्रतिज्ञा की है, तो जिज्ञासुओं और धर्मानुरागियों की विशेष कर यह अभिलाषा है कि इस विषय पर यदि सम्भव हो तो आपसे ज्ञान लें। नहीं तो यदि

आपका ही निश्चित सिद्धांत भ्रममूलक हो तो उसका निर्णय यथावत् हो जावे। मनुष्य देह बार-बार नहीं मिलता है। और न सब मनुष्यों को स्वयं शास्त्र पढ़ने-देखने, और विचारने का अवसर मिल सकता है। और यह तो निश्चित ही है, और आपको भी स्वीकृत ही होगा "कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने के लिये मनुष्य मात्र को सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।" इसलिए आर्य समाज आगरा ने इस धर्मान्दोलन को अतीव आवश्यक समझकर यह निश्चित किया है कि अपने (आगरा आर्य समाज के) आगामी २१ वें वार्षिकोत्सव पर आप और आर्य्य प्रतिष्ठित उपदेशक विद्वान इस विषय पर पूरा-पूरा आंदोलन करें, इसलिए आपसे यह प्रार्थना है कि, आप कृपा करके इस अवसर को हाथ से न जाने दें, और अवश्य ही प्रेम पूर्वक केवल धर्मान्दोलनार्थ शास्त्रार्थ स्वीकार करें इससे दो लाभ तो स्पष्ट दीख पड़ते हैं—(१) यह सम्भव है कि आपका निश्चित सिद्धांत आपके पहले सिद्धांतों की तरह भ्रममूलक हो तो आपकी ही भ्रांति दूर हो जावेगी। और यदि किसी प्रकार आपका ही वर्तमान सिद्धान्त वेदानुकूल निकले तो आर्य समाज को भी बहुत बड़ा लाभ होगा। (२) आपकी उक्त सूचना से यह प्रतीत होता है कि आर्य समाज में कोई ऐसा मनुष्य नहीं है कि जो अपने निश्चित सिद्धांत पर आपसे विचार करने के लिये उद्यत हो, परन्तु आगरा आर्य समाज का यह अनुभव और विश्वास है कि, बहुत से विद्वान, शास्त्रवेत्ता, धर्म प्रेमी, बड़े उत्साह से इस विषय पर विचार करने के लिए उद्यत हैं, इससे सर्व साधारण को यह निश्चित हो जायेगा कि आर्य समाज अन्धपरम्परा पर चलने वालों का समुदाय नहीं किन्तु सत्य के ग्रहण करने के लिये सदैव उद्यत है। इसलिए आप अवश्य ही कृपा करके तारीख १७, १८, १९, फरवरी सन् १९०१ पर आगरा पधारें! और आर्य समाज आगरा आपके आने-जाने और ठहरने का कुल खर्च अपने ऊपर लेने को तैयार हैं।

आपका दर्शनाभिलाषी सेवक—

"कृपाशंकर प्राश"

मन्त्री-आर्य समाज-आगरा (उ. प्र.)

नोटः—इस पत्र के उत्तर का प्रत्युत्तर पहुंचने में देरी होने से पंडित भीमसेन जी ने आगरा आर्य समाज को लिखा कि—

॥ ओ३म् ॥

सरस्वती प्रेस इटावा

९-२-१९०१ ई०

श्रीमन् महाशय! नमस्ते, आपकी सेवा में तारीख ६-२-०१ का रजिस्ट्री पत्र भेज चुका हूं, उत्तर आज तक नहीं आया, मैं शास्त्रार्थ का स्वीकार लिख चुका हूं। आप जब तक उत्तर न दें, तब तक मेरे आने का निश्चय नहीं हो सकता। आप पर बुलाने का भार है, मैं प्रथम भी लिख चुका हूं। आप अति शीघ्र उत्तर दें। उत्तर न आने पर शास्त्रार्थ के रुक जाने का "**कारण**" आप लोग ही होंगे।

आपका—**"भीमसेन शर्मा"**

नोटः—और साथ ही दस रुपये, पांच मनुष्यों के मार्ग व्ययार्थ पंडित भीमसेन जी के पास भेजा गये, जिसकी प्राप्ति का स्वीकार पूर्व नाम पंडित सुन्दरलाल शर्मा वर्तमान नाम सत्यव्रत शर्मा (जो पंडित भीमसेन जी के जामाता व सरस्वती यन्त्रालय के प्रबन्धकर्ता हैं) ने इस प्रकार दी कि—

"आपका भेजा हुआ दस रुपया प्राप्त हो गया, पंडित जी आवेंगे अवश्य तीन तारीख को बिजनौर गये हैं वहां से सीधे आपके पास "आगरा" पहुंचेंगे ।"

भवत्सु—"**सत्यव्रत शर्मा आर्य**"

नोट:—इस उपरोक्त पत्र से पहले पंडित भीमसैन जी का यह निम्न पत्र समाज को आ चुका था कि—

॥ ओ३म् ॥

१०-२-०१

सरस्वती प्रेस (इटावा)

श्रीमन् ! महाशय !! नमस्ते !!! कृपा पत्र उपलब्ध हुआ, वृत्त ज्ञात हुआ, हम आपके लेखानुसार जैसा कि हम पूर्व लिख चुके हैं । अर्थात् १८-१६ फरवरी तक आगरा पहुंचने का अवश्य उद्योग करेंगे । आपका भेजा हुआ रुपया भी कल प्राप्त हो जायेगा । यह आशा है । रहा यह कि चतुर्थ नियम ! सो वहां आने पर जैसा होगा वैसा निश्चय हो जायेगा ॥ किमधिकम् ॥

भवच्छुभेच्छु :—"**भीमसेन शर्मा**"

तदनुसार १६ तारीख को आगरा पधारकर श्री पंडित भीमसैन जी ने समाज को निम्नलिखित सूचना दी कि—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमान, मन्त्री आर्य समाज आगरा, योग्य ! मैं आज तारीख १६ को १२ बजे दिन के आगरे में आपके बुलाने अनुसार आ गया हूं । आप शास्त्रार्थ की तैयारी यथा सम्भव शीघ्र करें, जिससे व्यर्थ समय न जावे, शास्त्रार्थ का स्थान यहां के किसी रईस का हो तो अच्छा है । तथा समय नियत होना आदि भी विचार स्थिर कीजिये मेरी प्रकृत्यनुसार यह स्थान (सनाढ्य सभा का मन्दिर) विशेष कर था ! इससे यहीं ठहरना उचित समझा गया, उत्तर शीघ्र देवें ।

तारीख १६-२-०१, वजीरपुरा आगरा । आपका—"**भीमसेन शर्मा**"

नोट :—क्या आपको मथुरा में यह मन्त्र नहीं दिया गया था कि समाज के किसी स्थान पर आप न ठहरें, किन्तु सनातनधर्मियों के स्थान पर ठहरें ?

यह उपरोक्त पत्र दिनांक १६ का सायंकाल को समाज में आया था अगले दिन तारीख १७ को प्रातःकाल दूसरा पत्र आया कि—

॥ ओ३म् ॥

वजीरपुरा— (आगरा) दिनांक १७-२-०१

श्रीमान्, मन्त्री आर्य समाज आगरा, योग्य ! आपकी सेवा में कल एक पत्र भेज चुका हूं कि मैं आपके बुलाने से शास्त्रार्थ के लिये आ गया, आप शास्त्रार्थ की शीघ्र तैयारी करें, पर आपने मेरे उस पत्र का अब तक कुछ उत्तर

नहीं दिया, मैं नियमादि स्थिर करने के लिये ही एक दिन पहले से आया हूं। आप २४ घन्टा पहले मुझे यह भी सूचित करें कि मेरे साथ कौन पंडित महाशय आपकी ओर से शास्त्रार्थ के लिए नियत होंगे ? कृपाकर आप अपनी ओर से शास्त्रार्थ के विषय व नियम भी लिख भेजिये। जिनको देखकर मैं अपनी राय लिखूंगा, और शास्त्रार्थ लेखबद्ध तो होना ही चाहिये। इसको तो आप भी अच्छा ही समझेंगे, लिखा-पढ़ी में देर होना सम्भव है, इसलिए आप भी उचित समझकर दो भद्र पुरुष भेजिये जो यहां आकर समक्ष में सब विचार स्थिर कर लेवें।

आपका—"**भीमसेन शर्मा**"

नोट:—इस उपरोक्त पत्र के उत्तर में पत्र द्वारा नियम स्थिर करने से "काल वृथा व्यतीत अधिक होगा" इस विचार से समाज के मन्त्री आदि कई पुरुष पंडित भीमसेन जी के पास स्वयं ही चले गए, और जुबानी यह स्थिर कर आये कि जैसा नीचे के पत्र से जाना जायेगा। परन्तु पंडित भीमसेन जी ने उस स्थिरता पर भी यह कहा था कि—"कुछ देर विचार करके पक्का विचार होगा" इसलिये वहां लिखा-पढ़ी न हो सकी। पंडित भीमसेन जी के पक्के विचार की प्रतिक्षा करके साढ़े तीन बजे दोपहर को निम्नलिखित पत्र समाज ने पंडित भीमसेन जी के पास भेजा···

आर्य समाज की ओर से लिखा गया पत्र—

॥ ओ३म् ॥

श्री युत् पंडित भीमसेन जी नमस्ते ! आपके तारीख १७-२-०१ के पत्रानुसार आपकी सेवा में उपस्थित होकर मैंने निवेदन किया था और आपने स्वीकार किया था। तदनुसार आपको सूचित करता हूं कि, कल तारीख १८ को १० बजे से २ बजे दिन में चार घन्टे तक प्रतिदिन शास्त्रार्थ होना चाहिए जिसमें···(१) आप और आर्य समाजिस्थ पंडित लोग श्री मद्दयानन्द अनाथालय आगरे में पधारें। (२) स्थान के एक भाग में आप और आपके सहायक पंडित और दूसरे भाग में आर्य समाजिस्थ पंडित बैठकर एक-एक घन्टा समय तक लेख-प्रतिलेख करते जावें और हस्ताक्षर करके एक दूसरे के पास भेजते जावे। (३) समय विभागादि के ठीकबर्ताव कराने के लिये मुझे नियत किया गया है। (४) इन चार घन्टों में जो लेख-प्रतिलेख हुआ करेगा वह सुस्पष्ट करके प्रतिदिन रात्रि में सात बजे से दस बजे तक तीन घन्टे में डेढ़-डेढ़ घन्टे के दो भाग करके अपने-अपने व्याख्यानों द्वारा सर्व साधारण को सुना दिया जाया करेगा। (५) शास्त्रार्थ में आप मृत पितृनिमित्तक पिंड प्रदान सर्वाङ्ग सिद्ध करेंगे, और आर्य लोग उसका खंडन करेंगे। कृपया हस्ताक्षर करके उक्त विधान को स्वीकृत कर भेजिये।

१७-२-०१ समय साढ़े तीन बजे।

"**कृपाशंकर प्राज्ञ**"
मन्त्री—आर्य समाज (आगरा)

नोट:—उपरोक्त पत्र को लेकर एक मनुष्य वजीरपुरा आगरा को गया ही था कि इतने में अनुमान साढ़े चार बजे पंडित भीमसेन जी का एक पत्र जो नीचे छपा है, एक विज्ञापन के साथ आया। यह विज्ञापन भी पाठकों के अवलोकनार्थ अगले पृष्ठ पर छापते हैं। देखिए तो सही इस चातुर्य्य को कि आर्य समाज की ओर से यह विज्ञापन बंटवाया जावे कि जिससे बिना ही शास्त्रार्थ किये आर्य समाज ने पंडित भीमसेन जी के पक्ष को स्वीकार कर लिया "समझा जावे।" भला इन चातुर्य्यों को समाज न समझती ?

पण्डित भीमसेन जी का पत्र और विज्ञापन—

॥ ओ३म् ॥

वजीरपुरा (आगरा) १७-२-०१

श्रीमान्, मन्त्री आर्य समाज आगरा, योग्य !

आप प्रातःकाल मेरे पास आये, और जैसी रीति शास्त्रार्थ के लिये आपने कही वह अधिकांश मुझे स्वीकार है। उसमें एक तो निवेदन है कि आप जो कुछ कहते हैं, वे सब नियम लिख देवें। द्वितीय यह है कि मेरे लिए व्याख्यान का स्थान अन्य कोई मकान हो, और आप लोगों का व्याख्यान अपने आर्य समाज के स्थान में रहे, मैं भी वहीं आकर सुना करुंगा तथा नोट करुंगा। और यदि आप चाहें कि मेरा भी व्याख्यान आर्य समाज के मकान में ही हो तो इस विज्ञापन को आप अपनी ओर से छपाकर ५०० छपे पर्चे मेरे पास भेज दें। मैं बटवा दूंगा। तृतीय यह है कि आर्य समाज में किसी की ओर से असभ्य, अनुचित या कठोर व्यवहार न होने की प्रतिज्ञा आप लिखें। चतुर्थ यह है कि शास्त्रार्थ की अन्त समाप्ति के दिन मेरा ही व्याख्यान हो, आप इसका स्वीकार भी लिखिये ! शास्त्रार्थ सम्बन्धी सब नियमों पर दोनों के हस्ताक्षर होकर दोनों पक्षों के पास रहें। लिखने के समय लिखने वाला स्वयं अपने ही हस्ताक्षर करे, ऐसा न हो कि अन्य के लेख पर अन्य कोई एक ही हस्ताक्षर करता रहे।

आपका—"भीमसेन शर्मा"

"विज्ञापन" जो उपरोक्त पत्र के साथ आया था—

आगरा निवासी सर्व साधारण भद्र पुरुषों को सूचित किया जाता है कि जिस मृतक श्राद्ध का वर्तमान आर्य समाज खंडन करता है, उसी मृतक श्राद्ध विषय पर इटावा निवासी पंडित भीमसेन शर्मा आज तारीख······ फरवरी सन् १९०१ को······बजे से············स्थान में व्याख्यान देवेंगे, अर्थात् मरे हुए पिता आदि का श्राद्ध करना वेद तथा आर्ष ग्रन्थों से सिद्ध करेंगे, आशा है कि सब सज्जन पुरुष इस वेदोक्त धर्म को सुनने के लिए कृपा कर पधारेंगे और हम लोगों को कृतार्थ करेंगे।

(इस पत्र के रिक्त स्थान को आप स्वयं भर कर छपा दें)

भवदीय निवेदयिता...

उपरोक्त पत्र का उत्तर आर्य समाज ने निम्न प्रकार दिया

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत्, पण्डित भीमसेन शर्मा जी योग्य ! नमस्ते, (१) आपके १७-२-०१ के द्वितीय पत्र के उत्तर में निवेदन है कि, आपकी सेवा से तद्विषयक पत्र आज तारीख १७-२-०१ को साढ़े तीन बजे भेजा गया है। जिस विषय में मुझसे आपकी बातचीत हो चुकी थी। (२) शास्त्रार्थ को लेखबद्ध करने और सायंकाल में व्याख्यान द्वारा स्पष्ट करने के लिये एक ही स्थान (आर्यसमाज मन्दिर ठीक है) (३) विज्ञापन केवल आपके व्याख्यान का नहीं बंटेगा, किन्तु दोनों पक्ष के व्याख्यानों का एक ही विज्ञापन होगा। (४) असभ्य शब्द प्रयोग न कर सकने की प्रतिज्ञा आपकी ओर से भी लिखकर भिजवानी होगी, आर्य समाज को तो यह स्वीकृत ही है कि अपशब्द किसी को कभी न कहा जावे। (५) शास्त्रार्थ के वादी आप हैं, अतः अन्तिम लेख और व्याख्यान आर्य समाज की ओर का रहेगा। (६) शास्त्रार्थ के

नियमों पर उभयपक्ष के हस्ताक्षर युक्त लेख दोनों पक्षों के पास रहें, यह नियम ठीक और स्वीकृत है। (७) लिखने के समय आद्योपान्त शास्त्रार्थ पत्रों पर उभय पक्ष से एक ही पुरुष होगा।

(छः बजे सांयकाल)

आपका सुहृद्—"**कृपाशंकर**"
मन्त्री—आर्य समाज, (आगरा)

श्री पंडित भीमसेन जी शर्मा—

॥ ओ३म् ॥

वजीरपुरा (आगरा) साढ़े सात बजे सायम्
१७-२-०१

श्री मान मन्त्री आर्य समाज, आगरा योग्य ! आपके पत्र नं. एक व दो का उत्तर यह है कि आज प्रातःकाल आप मुझसे मिलने के समय जो कह गये थे, तथा अपने पूर्व पत्रों के लेख से अब आपका यह लेख विरुद्ध हैं कि चार घन्टे लेखनी बद्ध और डेढ़ घन्टे व्याख्यान द्वारा शास्त्रार्थ हो। इस दशा में मेरा निश्चय है कि ऐसे पत्रों से बहुत कालक्षेप होगा और शास्त्रार्थ करना कठिन होगा। इसलिए यदि आप शास्त्रार्थ कराना चाहते हैं तो दो अथवा तीन मुख्य भद्र पुरुष यहां चले आइयेगा जिससे कि सम्मुख बात-चीत होकर शास्त्रार्थ के नियम स्थिर हो जावें और उन्हीं नियमों पर शास्त्रार्थ कर्त्ता वादी-प्रतिवादी दोनों के हस्ताक्षर दोनों कापियों पर होकर परस्पर एक को दूसरे की हस्ताक्षरी कापी मिल जावे। तो सम्भव है कि कल प्रातःकाल से शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हो, इत्यलम् ॥

हस्ताक्षर—"**भीमसेन शर्मा**"

नोटः—यद्यपि समाज के लेख में जुबानी (मौखिक) स्थिर किए हुये के विरुद्ध कुछ भी न था, और न पण्डित भीमसेन जी ने ब्यौरेवार कुछ विरोध बताया, परन्तु उनका तो अभ्यास ही गोल माल इबारत "अधिकांश" आदि लिखने का है। समाज ने यह समझा कि कभी इसी मिष से शास्त्रार्थ न हो, जैसे बने वैसे और जैसे ये कहें वैसे ही नियम मानकर शास्त्रार्थ कर लिया जाय, समाज के लोग फिर पण्डित भीमसेन जी के पास गए और निम्नलिखित नियम स्थिर करके हस्ताक्षर कर और करा कर लाए।

शास्त्रार्थ के उभय पक्ष से स्वीकृत नियम—

(१) शास्त्रार्थ दयानन्द अनाथालय हींग की मण्डी में तारीख १९ फरवरी सन् १९०१ ई. से होगा। (२) स्थान के एक भाग में पण्डित भीमसेन शर्मा और उनके सहायक पण्डित बैठकर तथा दूसरे भाग में आर्य समाजिस्थ, पण्डित बैठकर आध-आध घन्टा तक लेख-प्रतिलेख करते जावें, और हस्ताक्षर करके एक-दूसरे के पास भेजते जावें। समय नौ बजे से बारह बजे तक दिन में होगा। उक्त स्थान के जिस भाग को पण्डित भीमसेन शर्मा पसन्द करें, ले लेवें। (३) इन नियमों के पालन कराने का काम सेठ श्यामलाल जी, लुहार गली वाले करेंगे। (४) आर्य समाज मन्दिर में जो कुछ लेख-प्रतिलेख हुआ करेगा, वह सुस्पष्ट करके प्रतिदिन ढाई घन्टे में व्याख्यान द्वारा सर्व साधारण को सुना दिया करेंगे। जिसमें प्रथम दिवस प्रथम व्याख्यान आर्य समाजिस्थ पण्डित सवा घण्टे करेंगे। पश्चात

श्री पंडित भीमसेन शर्मा सवा घन्टा करेंगे। और दूसरे दिन प्रथम पण्डित भीमसेन शर्मा पश्चात आर्य समाजिस्थ पण्डित करेंगे और इसी क्रम से आगे होगा। (५) आर्य समाज का यह पक्ष हैं कि जीवित माता-पिता आदि पितृ कहलाते हैं, उन्हीं की सेवा करना पितृयज्ञ है, और पण्डित भीमसेन शर्मा का यह पक्ष है कि मृतक माता-पिता आदि के नाम से पिंडादि देने का नाम पितृयज्ञ और श्राद्ध है। और जीवित की सेवा का नाम पितृयज्ञ वा श्राद्ध नहीं है। (६) दोनों अपने-अपने पक्ष का मण्डन और दूसरे का खण्डन वेद और आर्ष ग्रन्थों के द्वारा करेंगे (७) आर्य समाज की ओर से कोई अनुचित व्यवहार शास्त्रार्थ में न होगा, जिससे किसी प्रकार से शास्त्रार्थ में विघ्न न होने पावे। और न पण्डित भीमसेन शर्मा की तरफ से विघ्न होने पावे।

(समय—पौने तीन बजे तारीख (१८-२-०१)

हस्ताक्षर— हस्ताक्षर— "कृपाशंकर प्राज्ञ"
"भीमसेन शर्मा" मन्त्री—आर्यसमाज, (आगरा)

॥विज्ञापनम्॥

आगरा निवासी सर्व साधारण भद्र पुरुषों को सूचना दी जाती है कि, तारीख उन्नीस फरवरी सन्ध्या के सात बजे से साढ़े नौ बजे तक आर्य समाज के मकान मोती कटरा में आर्य समाज के पण्डितों के साथ पण्डित भीमसेन शर्मा का शास्त्रार्थ होगा अर्थात् पण्डित भीमसेन शर्मा वेद और आर्ष ग्रंथों के प्रमाणों से मृतक पुरुषों का श्राद्ध करना अपने व्याख्यान द्वारा सिद्ध करेंगे। और आर्य समाजी पण्डित लोग मृतक श्राद्ध का खंडन तथा जीवितों के श्राद्ध का मंडन वेद प्रमाणों से सिद्ध करेंगे, इसलिए सब महाशय पूर्वोक्त समय उक्त स्थान में पधारें और सुनकर लाभ उठावें।

"कृपाशंकर"
मन्त्री—आर्य समाज (आगरा)

नोट :—यह उपरोक्त विज्ञापन छपाकर पूरे नगर में बांटा गया, इन नियमों के अनुसार तारीख उन्नीस को नौ बजे से श्रीमद्दयानन्द अनाथालय के स्थान में उभयपक्ष के पण्डित शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुवे। स्थान के एक भाग में पंडित भीमसेन जी शर्मा और पंडित मुकुन्द देव आदि उनके सहायक पंडित लोग, तथा दूसरे भाग में श्री पंडित तुलसीराम स्वामी तथा उनके सहायक श्री पंडित देवदत्त शास्त्री आदि समाज के पंडित आसीन हुये। समय विभाग का प्रबन्ध सेठ श्यामलालजी के हाथ में दिया गया, प्रथम घन्टी बजते ही दोनों पक्ष वालों ने अपने-अपने पक्ष के मंडन और पर पक्ष पर प्रश्न इस प्रकार उपस्थित किये, जैसा कि आगे छपे लेखों से जाना जाएगा।

"मन्त्री"
आर्य समाज, (आगरा)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पंडित तुलसीराम स्वामी जी—

उपस्थित धर्म प्रेमी भद्र पुरुषों ! यजुर्वेद के अध्याय दो के मन्त्र इक्कतीस "**अत्र पितरो मादयध्वम यथाभाग······**" इस मन्त्र के पूर्वार्ध में पितृ पितामहादि वृद्धों को तृप्त करने, भोजन कराने के लिए (परमेश्वर की) आज्ञा है और उत्तरार्ध में जब वे भोजन कर चुकें तब उनसे तृप्ति का प्रश्न है। आगे यजुर्वेद के इसी अध्याय के तेतीसवें मन्त्र * "**आधत्त पितरो गर्भ कुमारं······**" इस मन्त्र में पितरों को (परमेश्वर द्वारा) गर्भाधान करने का आदेश है। आगे यजुर्वेद में ही देखिये—"**ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः·····**" (यजुर्वेद २-३४) में अन्न जल दुग्धादि से पितरों का तृप्त करना विहित है। (१) जबकि भोजन कराने और कर चुकने पर तृप्ति का प्रश्न है तो यह सम्भव नहीं कि लोकान्तरस्थ पितरों की तृप्ति का प्रश्न किया जा सके। "**आयन्तु नः पितर·····**" (यजुर्वेद १९-५८) इस मन्त्र में पितरों का आना, जाना, बोलना अन्न से तृप्त होना लिखा है यह तो जीवितों में ही सम्भव हैं, मृतकों में नहीं, अपने पुत्रों की रक्षा भी जीवित ही कर सकते हैं, मृतक नहीं। (२) गर्भाधान भी जीवित ही कर सकते हैं मृतक नहीं। (३) आपका पक्ष इन मन्त्रों से इतना ही नहीं रहता कि श्राद्ध मृतनिमित्तक पिंडदानादि का नाम है। किन्तु मृत पितरों का आना, जाना, बोलना, रक्षा करने, भोजन करने आदि को मृतों में घटाना भी आपका पक्ष है। "**एतद्वः पितरो वास······**" (यजुर्वेद २-३२) में पितरों को वस्त्र पहराना लिखा है, जबकि पितरों का आना, जाना, बोलना, वस्त्र पहरना आदि सभी व्यवहार है, तब जीवितों में क्या सन्देह हैं ? कृपाकर निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर युक्ति तथा प्रमाण सहित दीजिये—

(१) वेद में "**गर्भमाधत्त पितरः ···**" (यजुर्वेद अध्याय २ मन्त्र ३४) में यह वाक्य आया है। तो क्या मृत पितृ गर्भाधान कर सकते हैं ? यदि कर सकते हैं तो सशरीर है वा अशरीर ? और उनके शरीर पञ्चभौतिक है वा किसी भूत विशेष के ? यदि किसी भूत विशेष के हैं तो रेतः सेचन क्रिया कैसे बनेगी और वे कहां रहते हैं ? यदि अशरीर है तो भोग कैसे होता है ? पुनः नित्य हैं वा अनित्य हैं ? यदि जन्म लेते हैं तो नित्य कैसे ? और जन्म लेने का कौन हेतु ? और नित्य की सृष्टि सम्भव है तो सृष्टि नित्य होती है, वा अनित्य ? और नित्य ही है तो जन्म मरण का समय कितना नियत है ? और जिनका वंशोच्छेद हो जावे उनके पितृ क्या खाते हैं और कहां से ? और तीन ही पीढ़ी की कैद (शर्त) क्यों ? और पितर केवल मानुषी सृष्टि के ही बनते हैं या पशु आदि के भी ?

टिप्पणी :—

*इस आधात ···" मन्त्र का अर्थ स्वामी दयानन्द जी महाराज के आशय से यह है जैसा कि नीचे लिखा है। परन्तु समाज ने स्वामी दयानन्द जी कृत अर्थ को इस शास्त्रार्थ में विवादास्पद समझा जाने से बचाने के लिए प्रस्तुत नहीं किया। (**पितरः**) हे पितृ जनों (**गर्भम्**) अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न औरस (**कुमारम**) अपने पुत्र को (**पुष्करस्त्रजम्**) जो पुण्यमाला पहिने अर्थात् समावर्तन कराके आया है, उसे (**आधत्त**) सब प्रकार धारण कीजिए (**यथा**) जिस प्रकार से कि (**इह**) इस कुल में (**पुरुषः**) पुरुष=सन्तति (**असत्**) होवे।

(२) पितृयज्ञ नित्य कर्म है तो जिसके पिता आदि तीनों पुरुष जीते हैं, वह किसके सम्बन्ध से पितृयज्ञ करें ? यदि नित्य नहीं तो पञ्चमहायज्ञों की पूर्ति आपके यहां कैसे ?

(३) और पितरों का आवगमन है तो "किं हेतुक" और "कियत्कालिक" हैं ?

(४) पितृ सम्बन्ध केवल जीव वा शरीर वा विशिष्ठ में होता है ? और पितर (मृत) रक्षा कैसे करते हैं ? ॥ इति ॥

श्री पंडित भीमसेन जी—

"अत्र पितरो मादयध्वं............" मन्त्रे जीवितानांना मेवनास्ति । यथा मया मृतपितृणां श्राद्धमृतानामितिदर्शित तथा भवद्भिपिजीवितानां श्राद्धं कार्यमिति मन्त्रादि प्रमाणेषु दर्शयितव्यम् ॥

"आधत्त पितरो......" अस्य मन्त्रस्य शतपथादि ग्रन्थ प्रमाणैर्मध्यमपिण्डस्यपत्न्याः प्राशनेविनियोगः । मनुनाप्युक्तम— मध्यमंतुततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी । तत्र पिण्डप्राशने मृताएवपितरः प्रार्थ्यन्ते— हे पितरोयूयंकुमारंपुमासं गर्भमाधत्त । गर्भधारणं कुरुत— येन स्थिर एवस्यादिति ॥ ऊर्जंवहन्तीरितिमन्त्रस्य पिण्डानामु परिजल सेचने विनियोगोऽस्ति तत्रोर्जवहन्तीरितिस्त्रीलिंगा आपः प्रार्थ्यन्ते यूयंमेपितृन्तर्पयत । (इतिशब्दाऽप्रयोगश्चिन्त्यः) लोकान्तरस्था एव पितर आहूयन्ते आगच्छन्ति त एव भुञ्जते । "आयन्तु नः पितर......" अत्रायान्तु-इत्यशुद्धम् । अत्रापिशतपथादै प्रमाणैः प्रतीयते लोकान्तरस्था एवा गच्छन्ति । (इति शब्दाऽप्रयोगश्चिन्त्यः) यथा चेश्वरः सूक्ष्मः परोक्षोऽपिसर्व प्रकारैः प्रार्थ्यते तथा पितरोऽपि ॥

"एतद्वः पितरोवासः..." इति मन्त्रेण पिण्डानामुपरिसूत्र पाहनं पितृभ्योवस्त्र दान मपि शतपथ-नुकूलम् ॥

हस्ताक्षर—"**भीमसैन शर्मा**"

नोट—समाज का अनुमान था कि शास्त्रार्थ भाषा में होगा। क्योंकि संस्कृत का भी पीछे भाषानुवाद करना ही पड़ेगा, परन्तु पण्डित भीमसेन जी ने संस्कृत में लिखना आरम्भ किया, तब आगे से उनकी रूच्यानुसार समाज ने भी संस्कृत में लिखना आरम्भ किया।

भाषानुवादः –

"अत्र पितरो मादयध्वम्......" इस मन्त्र में "**जीवतों**" का नाम ही नहीं है । जैसे मैंने मृत पितरों के श्राद्ध में '**मृतों का**" यह दिखलाया । इसी प्रकार आप भी मन्त्रादि के प्रमाणों में "**जिवतों का श्राद्ध करना**" यह दिखलाइए । * शतपथादि के प्रमाणों से "**आधत्त पितरो गर्भम्** ..." इस मन्त्र का विनियोग इस विषय में है कि पत्नी बीच वाले पिण्ड को खावे ऐसा ही "**मध्यमं तुततः पिण्डम्**......" मनु ने भी कहा है । वहां पिंड खाने में मृता पितरों

टिप्पणी—

* ज्ञात हो कि "**आधत्त पितरः**......" मन्त्र का शतपथ में वर्णन ही नहीं फिर "**मध्यमपिण्ड प्राशन**" की कथा ही क्या है ?

से ही प्रार्थना है कि हे पितरों ! आप पुरुष गर्भ का आधान करें = गर्भाधान करें जिससे स्थिर ही हो । "**ऊर्जं वहन्ती** ······" इस मन्त्र का विनियोग पिंडों पर जल सेचन में है । उसमें इस मन्त्र से स्त्रीलिङ्ग (आप:) जलों की प्रार्थना है कि तुम मेरे पितरों को तृप्त करो "**आयन्तु नः पितरः**······' † इसमें आयान्तु यह अशुद्ध है, इसमें भी शतापथादि प्रमाणों से प्रतीत होता है कि लोकान्तरस्थ ही आते हैं जैसे ईश्वर सूक्ष्म और परोक्ष भी सब प्रकारों से प्रार्थना किया किया जाता है वैसे पितर भी ।।"**एतदः पितरोवासः**······ " इस मन्त्र से पिण्डों पर सूत डालना, पितरों को वस्त्र देना भी शतपथ के अनुकूल है ।

हस्ताक्षर—"**भीमसेन शर्मा**"

नोट:—आप देखते हैं कि—पण्डित भीमसेन जी ने समाज के प्रश्नों का उत्तर कहां तक दिया है ? अस्तु। अब पंडित भीमसेन जी का पूर्व पक्ष और समाज का उत्तर पक्ष देखिए पंडित्त भीमसेन जी का पूर्वपक्ष यह था कि—

"ओ३म् ।। अथ मृत पित्रादीनांश्राद्धस्यप्रतिपादनम् । अपसव्य मग्नौकृत्वा सर्वमावृत्यविक्रमम् । अपसव्येनहस्तेन-निर्वपेदुदकंभुवि ।।१।। त्रींस्तुस्तस्माद्धविः—शेषात्पिण्डान्कृत्वासमाहितः ओदकेनैल विधिनामिर्वपद्दक्षिणामुखः ।।२१५।। इत्यादिमानवधर्मशास्त्र श्लोकैः पिण्डदानं मृतेभ्य एव संगच्छते । ध्रियमाणेतु पितरिपूर्वेषामेव निर्वपेत । विप्रवद्वापितं श्राद्धेस्वकं पितरमाशयेत् ।। मनुस्मृति ३·२२० ।। ध्रियमाणंजीवतिसतिपितरि पूर्वेषां पितामहादीनामेव नातम्नापिण्डान्निर्वपेदितिकथना दवसी यते मृते पितरितन्नाम्नापिण्डदानमस्त्येवेत्ति । अन्यच्च—विप्रान्तिके पितृन्ध्यायन्निति (२२४) कथनाद पिसुस्पष्ट मेवायाति यद्भोजनीय विप्रेभ्योभिन्ना एव मृताः पितरस्तेषामेवध्या-नंकार्यम् ।। तथा—पितायस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः ।।२२१।। इतिकथना दपियस्यपितामृतः स्यात्तंनस्वापितृनाम्नापिण्डदानंकार्यम् । एभिर्मानव धर्मशास्त्र प्रमाणैर्मतानां श्राद्धं सिद्धमेवास्ति । यो ब्रूयाद्वेदविरुद्धं कथनमिदं स वेदमन्त्रानुदाहृत्यमन्त्रैः साकंविरोधमुदर्शयेत् । असति विरोधेमीमांसादर्शने प्रतिपादनानुकूल्य-मेवावगन्तव्यम् ।।

हस्ताक्षर—"**भीमसेन शर्मा**"

भाषार्थ:—

अब मृत पिता आदि के श्राद्ध का प्रतिपादन किया जाता है "**अपसव्यमग्नौ**······"इत्यादि मनु के श्लोकों से मरों ही के लिए पिण्डदान घटता है । **ध्रियमाणेतु पितरि**···" इत्यादि मनुस्मृति (३-२२०) से निश्चय होता है कि पिता जिन्दा हो तो पितामहादि के ही नाम से पिण्ड दे । और पिता मर जाये तब उसके नाम से पिण्ड दे । और "**विप्रान्तिके पितृन्ध्यायन्**···" इत्यादि (मनुस्मृति – २२४) से भी स्पष्ट होता है कि भोजनीय ब्राह्मणों से भिन्न ही मृत पितर हैं, उन्हीं का ध्यान करना चाहिए । तथा "**पितायस्य निवृतः स्यात्**···" (इत्यादि मनुस्मृति २२१) के कथन से भी जिसका पिता मर जाए उसको अपने पिता के नाम से पिण्डदान करना चाहिए । इन मनुस्मृति के प्रमाणों

टिप्पणी—

† अपनी अशुद्धियें भी नोट में "**चिन्त्य**" कहकर दिखलाई हुइयों (हुई) पर ध्यान दीजिएगा । "**यन्तु**" का "**यान्तु**' तो लेख भ्रम ही है ।

से मुर्दों का श्राद्ध सिद्ध ही है। जो कहे कि यह कथन वेद विरुद्ध है। यह वेद मन्त्रों को उदाहृत करके मन्त्रों के साथ विरोध दिखलावें विरोध न हो तो मीमांसा दर्शन के प्रतिपादनानुसार आनुकूल्य ही समझना चाहिए।

हस्ताक्षर—"**भीमसेन शर्मा**"

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी –

ओ३म् ॥ आर्ष धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना। यस्तर्केणानुसंधत्तेसधर्मंवेदनेतरः। इति मनुवचने नैव भवद्भिर्न्यस्तानिमनुवचनानि विरुध्यन्ते। तत्र वेदशास्त्राऽविरोधिनातर्केणाऽनुसंधानस्यविहितत्वात्। तानिवचनानिचाऽस्मदुद्धृतेभ्यो वेदमन्त्रेभ्यो विरूध्यन्त एव, अस्मल्लिखित तर्केभ्यश्च। (२) "बुद्धिपूर्वोददातिः···" इति वैशेषिक सूत्रेऽपि बुद्धिपूर्वंदानस्यविहितत्वात् मृतेषु च बुद्धिपूर्वक दानासंभवात्। वैशेषिक दर्शने (५-३-४) आत्मान्तर गुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् इति वचनादपि भवल्लेखोविरुध्यते। कृतहानमकृताभ्यागमश्चप्रसज्येत् ॥ (३) न कर्मणाऽन्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च (सांख्यदर्शन १ १६) (४)—नायौक्तिकस्य संग्रहोन्यथाबालोन्मत्तादिसमत्वम् (सांख्यदर्शन-१-२६) अनेन सूत्रेणाऽपिभवद्भिर्न्यस्ता निवचनानि अयौक्तिकानिविरोधं प्राप्तानि। (५) वेद प्रमाणरहित्येन केवलं मनुवचनविन्यसनेनचाऽपिप्रतिज्ञातोभवत्पक्षः शिथिलोभवति। तत्रवेदमन्त्रप्रमाणानामावश्यकत्वेन नियतत्वात् ॥ (६)—जीवतां श्राद्ध निषेधवचनस्याऽपिभवद्भिर्न्यस्तवचनेष्वसत्वात्। प्रतिज्ञातपक्षप्रतिपक्षयोश्चभवत्पक्षेऽस्पष्टत्वात् साध्यसाधनाऽभावप्रसक्तिश्च ॥

भावार्थ—

"**आर्ष धर्मो** ···" इत्यादि मनु के वचन से ही आपके लिखे मनु वचन विरुद्ध हैं, क्योंकि उसमें वेद शास्त्र के अविरोधी तर्क से अनुसंधान (तहकीक) करना कहा है। वे (आपके लिखे) वचन, हमारे लिखे देखो तथा वेद मन्त्रों के जो हमने तर्क लिखे हैं उनके भी विरुद्ध हैं। (२) '**बुद्धि पूर्वोददातिः**" इस वैशेषिक सूत्र में भी बुद्धि पूर्वक (जान बूझकर) दान कहा है, और मरों को जान बूझकर दे नहीं सकते।

"**आत्मान्तर गुणा** " इस वैशेषिक सूत्र ५-३-४, में भी कहा है कि अन्य के गुण अन्य में कारण नहीं हो सकते इससे भी आपका लेख विरुद्ध है। और (मृत श्राद्ध का फल पितरों को पहुंचता माने तो) कृत कर्म की हानि और बिना किये कर्म का फल मिलना रूप-दोष भी आपके मत में आता है। (३) "**न कर्मणाऽन्य धमत्वादति प्रसक्तेश्च** " सांख्य दर्शन १-१६, (४) "**नायौक्तिकस्य संग्रहोन्यथा**······" इत्यादि १-२६ से भी आपके लिखे वचन युक्तिहीन होने से विरुद्ध हैं। (५) आपका पक्ष यह प्रतिज्ञात हुआ था कि वेद और आर्ष ग्रन्थों से सिद्ध करेंगे, परन्तु आपके लेख में वेद का कोई प्रमाण नहीं है। इसलिए भी आपका पक्ष शिथिल होता है। क्योंकि उसमें वेद के प्रमाण अवश्य होने चाहिए थे। (६) प्रतिज्ञात पक्ष प्रतिपक्षों में यह भी लिखा था कि जीवतों का श्राद्ध नहीं होता। परन्तु आपके लिखे वचनों में कोई वचन जीवित श्राद्ध निषेधक नहीं है। इसलिए अपने पक्ष (साध्य) को सिद्ध न करने का दोष भी आपके लेख में आता है।

श्री पण्डित भीमसेन शर्मा—

नैषातर्केणमतिरापनेया—इतिकठे। तर्कोऽप्रतिष्ठइतिभारते। योऽवमन्येततेमूलेहेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ससाधुभिर्बहिष्कार्योनास्तिकोवेदनिन्दकः इत्यादि वचनैरिवमायाति यत्रश्रुत्यैस्मृत्तोवास्पष्टं प्रमाणंततोविरुद्धं

का व्यापकत्व विवादास्पद है, न कि सिद्ध ! साध्य को साधन रूप से लिखना अयुक्त ही है । (१३) जब तक पितरों का परमेश्वरवत् व्यापकत्व असिद्ध है । तब तक उनका सब जगह होना नहीं लिख सकते । (१४) व्यापक होने पर यहां से देह त्याग कर लोकान्तर को जाना नहीं बनता । आप का माना हुआ पितृलोक, हमारे लोक से भिन्न हो तो पितरों का व्यापकपना नहीं बना सकता । (१५) (**आधत्त पितरः**···) इस मन्त्र में पत्नी और पिण्ड का नाम भी नहीं है । (१६) आपका यह कथन भी ठीक नहीं है कि—स्त्रीलिंग (आपः) जलों से प्रार्थना है । उसमें जलों के जड़ होने से प्रार्थनीयता नहीं बनती और व्यत्यय से यह विधान है कि जल और दुग्धादि से पितृजनों की तृप्ति की जावे, न कि जलों की प्रार्थना ! (१७) आपके लेख में शतपथ आदि ग्रन्थों के वचन भी उद्धृत नहीं हैं, न उनका पता ही है । जो वचन आपने उद्धृत ही नहीं किए उनसे आपका पक्ष सिद्ध नहीं हो सकता । (१८) वस्त्र के स्थान में सूत डालना भी अयुक्त है, क्योंकि वस्त्र कार्य है, और सूत कारण ! कार्य की जगह कारण लिखना उचित नहीं है । (१९) उन (पहले के प्रमाणों =वेद मन्त्रों) में यदि जीवित शब्द नहीं है तो मृत शब्द भी नहीं हैं । परन्तु जीवितों की सम्भावना वहां के पदों से भले प्रकार स्पष्ट है ।

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा—

।। ओ३म् ।। (१)—भवल्लिखितं पुनरुक्तं विहायाप्रासङ्गिकं च सर्वस्योत्तरंमयाऽलेखि । (२)—नास्ति भवद्धेतूनां प्रामाण्यम पितु वेदमन्त्रानुदाहृत्यतैर्विरोधं दर्शयन्तु । पितरोन व्याप्ता अपितु सूक्ष्माः परोक्षाश्चातोगमनागमनं सम्भवति । (३)—न मया पितृणाम् सार्वत्रिकी सत्तोल्लिखिताऽतः प्रतिलेखो व्यर्थ एव । (४) एवमेवव्यर्थं लेखनम् । (५)—आधत्तेत्ति मध्यमंपिण्डं पत्नी प्राश्नाति पुत्रकामा । का० श्रौ० ४-१-२२ इति कातीय श्रौतसूत्रम् । तत्र मनुवचनमपिमयापूर्वपत्रे लिखितम् । मन्त्रे पत्नीशब्दोनास्ति । परन्तु आर्ष ग्रन्थोक्त विनियोगादिनातदर्थः प्रतीयते । यथा च शन्नो देवीरितीमन्त्रे—आचमन शब्दो नास्ति । तथा पिशिष्टोक्त विनियोगाद्भवद्भिराचमनं प्रतीयते । एवमघमर्षणमार्जनादिष्वपिध्येयम् । (६)—"ऊर्जं वहन्तो······" — अत्र वहन्ती रितिबहुवचन स्त्रीलिङ्ग पदेनयुष्माभिः कोऽर्थः क्रियते अपामभिमानि देवतायास्तत्रप्रार्थनायुक्ता । अपांजड़त्वेऽपिनदेवतायाजड़त्वम् ।। (६)—"ऊर्जं वहन्ती······" —ऊर्ज मित्यपोनिषिञ्चति । का० ४-१-१९, इति कातीय सूत्र प्रमाणात् पिण्डोपरिजलनिषेकेविनियोगः । (८) वासः पदेन सूत्रस्य ग्रहणमाच्छदनार्थत्वात्सम्भवति । (९)—मृत कर्मणि—आर्षग्रन्थ कृत विनियोगान्मृताः प्रतीयन्ते जीवितः केन हेतुना प्रतीयेत ।।

हस्ताक्षर—
"भीमसेन शर्मा"

भावार्थ—

(१) आपके लिखे पुनरुक्त और अप्रासंगिक को छोड़कर मैंने सबका उत्तर लिख दिया है । (२) आपके हेतुओं को प्रमाणता नहीं है । किन्तु वेद मन्त्रों को उदाहृत करके उनसे विरोध दिखलाइए । पितर व्याप्त नहीं है किन्तु सूक्ष्म और परोक्ष है इससे जाना-आना हो सकता है । (३) मैंने पितरों की सर्वत्र सत्ता नहीं लिखी इससे इसका उत्तर लिखना व्यर्थ ही है । (४) इसी प्रकार व्यर्थ लेख है । (५) (आधत्तेति······) कात्यायन श्रौत सूत्र ४-१-२२ में पत्नी को मध्यम पिण्ड खाना लिखा है, और इस विषय का मनुवचन भी मैंने पूर्व पत्र में लिखा था । मन्त्र में पत्नी शब्द नहीं है । परन्तु आर्ष ग्रंथों में कहे विनियोगादि से उसका अर्थ प्रतीत होता है । जैसाकि "शन्नो

देवी…' इस मन्त्र में आचमन शब्द नहीं है, तथापि शिष्ट लोगों के कहे विनियोग से आपको आचमन प्रतीत होता है। ऐसा ही अघमर्षण, मार्जनादि में भी जानिए। (६) (ऊर्जं वहन्ती…) इस बहुवचन स्त्रीलिंग पद से आप क्या अर्थ करते हैं, जलों के अभिमानी देवता की प्रार्थना वहां ठीक है। जल के जड़ होने पर भी देवता को जड़ता नहीं है। (७) "ऊर्जं वहन्तीः इससे जल सेचन करता है" कात्यायन श्रौ० ४-१-१६ यह प्रमाण है पिंडों पर जल सेचन में विनियोग है। (८) "वासस्" शब्द से सूत्र का ग्रहण आच्छादनार्थ होने से बन सकता है। (६) मृत कर्म में आर्ष ग्रन्थों के विनियोग से मृतक प्रतीत होते हैं। जीवित किस हेतु से प्रतीत हों?

श्री पण्डित तुलसीराम जी स्वामी—

॥ ओ३म् ॥ (१)—नास्माभिः पुनरुक्तं किमप्यलेखि अप्रासङ्गिकं चायद्यलेखिर्ताह्रिदर्शनीयः स लेखः। (२)—नास्माभिः स्वकल्पिताः हेतवो विन्यस्ता अपितु सांख्य—वैशेषिकाद्यार्षग्रन्थवचनानि स्पष्टमुद्धृतानि। न चार्ष-वचन परित्यागे कोपिहेतुर्भवद्भिरुद्भावितः॥ (३)—कात्यायनवचन प्रामाण्येसति किं श्री भवद्भिरिदंनालोक्यते— "वावकीर्णिनोगर्दभेज्या" १-१-१३ तथा "भूमौपशुपुरोडाशश्रवणम्" १-१-१४ "अप्स्ववदानहोमः" १-१-१६ अवदानानां हृदय जिह्वा क्रिडादीनां होमोप्सु उत्फेषुभवतिनाग्नौ। वचनात्। इति तद् भाष्यम्। यच्चि (अग्निंदूतं पुरोदधे) इत्यादि यजुर्वचनात् विरुध्यते। वेदेग्नेर्दूतत्वेनविहितत्वान्न चक्वापिजलस्य देवदूतत्वे न वेद विहितत्वम्॥ (४)—"शिश्नात्प्राशित्रावदानम्" १-१-१७ इति गर्दभशिश्नेनप्राशित्रादिरचनरूपजघन्य कर्मणां विहितत्वेन विन्यासः॥ विशंतितमसूत्र भाष्ये च (कात्यायनः कर्मप्रदीपे २-६-१७-१८) नस्वेग्नावन्य होमः स्यादिति श्लोकरचनादृश्यते। अस्ति च श्लोकरचना सूत्र रचना काल तो नवीन कालीना। कर्म प्रदीपोऽपिकात्यायन कृत इति च तत्र दृश्यते॥ न च वयं कातीय सूत्र कृत मध्यम पिण्ड प्राशन विनियोगसंमानमपमानं वा मृतपितृ निमित्तकपिण्डदान साधन परं पश्यामः। अस्तु विनियोगः को पिपरंनास्ति जीवित श्राद्ध विघातकोमृतश्राद्धविधाय-कश्च। वहन्तीरित्यादीनिपदानिस्वधा विशेषणानि, देवतायाश्चेतनत्वेता वत्साध्ये, असतिचतत्रदेवतापदेनतल्लेखोयुक्तः।

भावार्थ—

(१) हमने कुछ पुनरुक्त नहीं लिखा, न अप्रासंगिक! यदि लिखा है तो वह दिखाइये। (२) हमने निज कल्पित हेतु (दलीलें) नहीं लिखी किन्तु सांख्य वैशेषिकादि के वचन स्पष्ट उद्धृत किए हैं, और (उन) आर्ष वचनों (सूत्रों) के परित्याग (न मानने) में आपने कोई हेतु प्रकट नहीं किया है। (३) यदि कात्यायन के वचन प्रामाणिक हों तो क्या आप इसको नहीं देखते हैं कि—"वावकीर्णिनोगर्दभेज्या १-१-१३, भूमौ पशुपुरोडाशश्रवणम् १ १-१४ अप्स्ववदानहोमः १-१-१६, अवदानानां हृदय जिह्वा क्रोड़ादीनां होमोप्सु उत्केषु भवति, नाग्नौ, वच नात् -१-१७।" अर्थात् अवकीर्णी ब्रह्मचारी, गधे के मांस से यज्ञ करे।१३।, भूमि में गधे के मांस का पुरोडाश पकावे।१ ।, पानी में उसके हृदय, जीभ, पसली, आदि का होम करे, अग्नि मे नहीं (वचन से) १६-१७ यह उसका भाष्य हैं, जो कि—"अग्निं दूतं पुरोदधे…" इत्यादि यजुर्वेद (२२-१७) के मन्त्र से विपरीत है। क्योंकि यहां वेद अग्नि को देवदूत कहा है, और जल को कहीं देवदूत नहीं कहा। (४) 'शिश्नात्प्राशित्तावदानम् १-१७" इस सूत्र में कहा है कि, गधे के उपस्थेन्द्रिय से प्राशित्रावदान बनावे। ऐसे-ऐसे निन्दित कर्मों को विहित भाव से लिखा है। और बीसवें सूत्र के भाष्य में कात्या-यन कृतकर्मप्रदीपका २-६-१७-१८, (नस्वेग्नावन्य होम…) इत्यादि श्लोक लिखा है, और श्लोक रचना का समय सूत्र रचना के समय से नवीन है। और कर्मप्रदीप को भी इस भाष्य में कात्यायन कृत लिखा देखा जाता है।

(इससे यह कात्यायन कृत ग्रन्थ नूतन ग्रंथ जाना जाता है) और हम कात्यायन सूत्र के किए (पत्नी पिंडप्राशन करे) इस विनियोग के मानने न मानने को इस विषय का साधक वा बाधक भी नहीं देखते कि मरे हुए पितरों के निमित्त पिंड दान किया जावे। किन्तु विनियोग कुछ भी क्यों न हो, किन्तु वह जीवित श्राद्ध का बाधक या मृतक श्राद्ध का साधक नहीं है। "वहन्तीः" इत्यादि पद "स्वधा" के विशेषण हैं, देवता का चेतन होना भी प्रथम तो साध्य है, (सिद्ध नहीं) तिस पर भी वहां देवता शब्द नहीं आया, अतः देवता लिखना ठीक नहीं है।

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा—

॥ओ३म्॥ (१)—"**नैषा तर्केण······**" इतिवचनं तर्केण बुद्धिश्चलतीतिज्ञा पयितुम। भारतवचनम्-अपि धर्मपरम्। कर्म काण्डं च सर्वं धर्ममूलमेवास्ति। (२)—योऽवमन्येतेतिपद्यहेतु शास्त्र वचनं तर्क शास्त्रपरम्। यस्तर्केणानुसंधत्ते-इत्यादि वचनानिवेदार्थस्यानुसन्धानार्थानि। ग्रन्थानुकूलोऽर्थः प्रत्येतव्यः न तु प्रत्यक्षोऽर्थस्तर्केण-निराकरणीय इति योवमन्येतेत्याविना सूचितम्। (३)—शतपथ कातीयसूत्रादिभ्योभवत्कल्पनं वेद मन्त्रेषु विरुद्धं जीवतां श्राद्ध मिति। (४)—वैशेषिक वचनानां न कोऽपिश्राद्धेन सम्बन्धः। (५)—श्रुत्यर्थोयथारीत्यासम्यग् युक्तः प्रतीयतेसायुक्तिस्तुसर्वास्तिकाभिमतैवास्ति। (६)—न हि पूर्वोक्तभवल्लिखित वेद वचनेषु जीवतां श्राद्धं भवति। जीवतां सेवा कार्यासैव श्राद्धपदवाच्येतिनववाप्यायातम्। तस्माद् युष्माभिर्नस्वपक्षः समर्थितः। (७)—जीवतां श्राद्धं भवत्पक्षोनास्माकं। यदि स्वपक्षोयुष्माभिर्नसाधयितुं शक्यते तर्हि निग्रहस्थानमायातम्। (८)—जीवित प्रमाणं न तत्रास्ति न जीवित शब्दस्तत्र विद्यते। कस्मिन्मन्त्रे—जीवतां सेवनं श्राद्ध मितिलिखितं। तल्लेख्यम्॥ (९)—ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्तामध्येदिवः स्वधयामादयन्ते। यजु० १९-६०, या नाग्निरेवदहन्त्स्वदयतितेपितरो अग्निष्वात्ताः। शतपथ २-६-१-७, अन्य वेदेषु त एव अग्निदग्ध पदेनोक्ता अतः सिद्धं मृतपितॄणां श्राद्धं पितृयज्ञोवा।

हस्ताक्षर—
"भीमसेन शर्मा"

द्वितीय पत्रम् —

(१)—वैशेषिक सांख्यशास्त्रयोः प्रमाणान्यप्रासङ्गिकान्येवसन्ति न च तेषां प्रमाणानां श्राद्ध पितृयज्ञाभ्यां (अक्षर स्रंशोद्विवचनं च चिन्त्यम्) विशिष्ठः सम्बन्धोदृश्यते। (२)—परमेश्वरस्य व्यापकत्वा दयोहेतवोभवतांस्व कल्पिता एव सन्ति। (३)—कात्यायन वचनानांवेदानुकूलतयाऽस्त्येवप्रामाण्यम्। न च गर्दभेज्यादयोवेदाद्विरुद्धाः। अपितु वेदानुकूला एव। सम्प्रतितेषांसमयोऽधिकारित्वा भावान्नास्ति वेदः सार्वकालिकोऽस्ति। न च सर्वं वेदोक्तं कर्म सर्वदा कर्तुं शक्यते। अग्नेर्दूतत्वमप्सुहोमेनेनैवविरुध्यते सामान्य विशेष न्यायनद्वयोरेवसार्थकत्वात्। शिश्नात्प्राशित्रावदानमित्यलौकिकं भिन्न कालीनं च। कर्मप्रदीप ग्रन्थो विशेषेण स्मार्त्त इदं च श्रौतं न तयोः सर्वांशे साम्यम्। अर्वाचीनं यदि सर्वम् प्रमाणं तर्हि सत्यार्थ काशादी नामाधुनिकत्वादप्य प्रामाण्यमङ्गीकार्यम् यस्य मन्त्रस्य यत्र विनियोगस्तादृशएव तदर्थोऽपि भवत्येवातो मृत पितृ श्राद्धे न तस्य सम्बन्धः। स्वधापदं विशेष्यं कस्य वाचकं? मन्त्रे कर्तृवाचकंपदं किमस्ति। विशेष्य विशेषणयोः किं लक्षणम्?।

हस्ताक्षर—
"भीमसेन शर्मा"

भावार्थ—

(**नैषा तर्केण···**) यह वचन यह जतलाने को है कि—तर्क से बुद्धि चलती है। भारत का वचन भी धर्म विषयक हैं। और सब कर्मकाण्ड का मूल भी धर्म ही है। (२) (**योवमन्यते···**) इस श्लोक में हेतु शास्त्र कथन तर्क शास्त्र विषयक है। (**यस्तर्केणानुसंधते··**) इत्यादि वचन वेदादि के अर्थ का अनुसन्धान करने के लिए है। ग्रन्थानुकूल अर्थ समझना चाहिए न कि प्रत्यक्ष अर्थ का तर्क से खंडन करना चाहिए। यह (**योवमन्ये···**) इत्यादि से सूचित है। (३) शतपथ कातीय सूत्रादि से, आप की कल्पना जीवितों का श्राद्ध वेद मन्त्रों में विरुद्ध है। (४) वैशेषिक वचनों का श्राद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है। (५) वेदार्थ जिस रीति से ठीक युक्त समझा जाता है, वह युक्ति तो सब आस्तिकों की मानी हुई ही है। (६) पूर्वोक्त वेद मन्त्रों में जो आपने लिखें हैं, जीवितों का श्राद्ध नहीं है। जीवितों की सेवा करनी चाहिए वही श्राद्ध कहाती है ऐसा कहीं भी नहीं आया, इससे आपने अपना पक्ष सिद्ध नहीं किया। (७) जीवितों का श्राद्ध होता है। यह आपका पक्ष है। हमारा नहीं, यदि आप अपने पक्ष को सिद्ध नहीं कर सकते तो निग्रह स्थान आया। (८) जीवित का प्रमाण वहां नहीं है. न जीवित शब्द है किस वेद मन्त्र में जीवितों का लिखा है ? उसे लिखिए। (९) (**ये अग्निष्वात्ता··**) इत्यादि (यजुर्वेद १९-६०) या (**नग्निरेववहत्स्वदयति···**) इत्यादि शतपथ २-६-१-७ अन्य वेदों में उन्हीं को अग्निदग्ध पद से कहा है। अतः मृतश्राद्ध वा पितृयज्ञ सिद्ध हुआ।

दूसरा पत्र—

(१) वैशेषिक और सांख्य शास्त्र के प्रमाण अप्रासंगिक ही है, और उनका एक श्राद्ध दो पितृयज्ञ से विशेष सम्बन्ध नहीं दीखता (२) परमेश्वर के व्यापकत्वादि हेतु आपके निज कल्पित ही हैं। (३) कात्यायन के वचनों की वेदानुकूल होने से प्रामाणिकता है ही। और गर्दभेज्यादि यज्ञ वेद विरुद्ध नहीं है किन्तु वेदानुकूल ही है। और समस्त वेदोक्त कर्म सब काल में नहीं किया जा सकता। अग्नि का पूतपना जलों में होने से विरुद्ध नहीं है, क्योंकि सामान्य विशेष न्याय से दोनों सार्थक हैं। (गधे के) उपस्थेन्द्रिय से प्राशित्रावदान बनाना यह अलौकिक और भिन्न काल के लिए है। कर्म प्रदीप ग्रंथ विशेष करके स्मार्त्त है, और यह श्रौत है, इन दोनों में सर्वांश में समता नहीं है। यदि नवीन ग्रंथ सब अप्रमाण हैं तो सत्यार्थ प्रकाश आदि को भी नवीन होने से अप्रमाणता स्वीकार कीजिए। जिस मन्त्र का जिसमें विनियोग हैं, वैसा ही उसका अर्थ भी होता है, इससे मृतपितृ श्राद्ध से उसका सम्बन्ध है। स्वधापद विशेष्य किसका वाचक है ? मन्त्र में कर्तृवाचक पद क्या है ? विशेष्य-विशेषण का क्या लक्षण है ?

श्री पण्डित तुलसी राम जी स्वामी—

॥ओ३म्॥ (१)—नैषातर्केणेत्यादिवचने (एषेतिपदं) प्रकरणगत ब्रह्मविद्यापरंस्पष्टंनततोऽन्यत्कल्पनीयम्॥ (२)—योऽवमन्यतेत्यादि मनुवचनंनास्मत्पक्षे विरुध्यते। यतो न वयं केवल तर्क शास्त्राश्रयात्तन्निरादरं कुर्मोऽपितु तस्याऽवैदिकत्वात्। उक्तं च या वेदबाह्याःस्मृतयो याश्चका श्चकुदृष्टयः। सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्यतमो निष्ठाहिताः स्मृताः। इति। यदा च देवेषुमृतानांपिण्डदानं दिन दृश्यते अवलिलखितेषुमनुवचनेषु च दृश्यतेतदातानिमनुवचनानि अवैदिकानीतिमन्वानावयं नत्तद्दोषभाजः। (३)—आस्मिल्लिखितोऽर्थोन भवदुद्धृतब्राह्मणसूत्रादिभ्योऽपिविरुद्धयते अस्ति चेद्विरोधोदर्शनीयः। यानि चवक्ष्यमाणानिकातीयसूत्राणि अस्मत्पक्षविरुद्धानिनतानि मन्त्रविनियोगंपिण्डदान दो दर्शयन्ति। अतोनास्मत्पक्षेविरोधस्तैः॥ (४)—वैशेषिक वचनैर्नास्मिाभिः श्राद्धपक्षः साध्यत्वाऽसाध्यत्वंनीयतेऽपितु वैशेषिकादिभिरभिमतेनार्षाम्नायेनभवत्पक्ष विरोधोदृश्यते॥ (५)—असत्यपिजीवित शब्दे गमनाऽऽगमन भाषण

श्रवणादिव्यवहार दर्शनात् स्पष्टं जीवितत्वम् ।। (६) ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धाः। अथवा— अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ताः इत्यादीनिवेद वचनानि न भवदभिमतसूक्ष्मपरोक्ष पितृ पराणि, तेषांदाहादेरभावात्। किंच देहा एव दह्यन्ते नवाऽग्निनादह्यन्ते। ये पितरोस्मदादि पितृदेहाः अग्नि ना दग्धायेचकेन चित्कारणेन न दाहंप्राप्ताः ते दिवः आकाशस्यमध्येसूक्ष्माणुभाव परिणता सन्तः स्वधया पितृनिमित्तदत्ता हुत्याऽन्नेन मादयन्ते सदऽवस्थां प्राप्नुवन्ति। तेभ्यः तज्जीवेभ्यः स्वराड् परमात्मायमोवायुर्वा (एतामसुनीतिं) प्राण प्राप्ति (यथावशम्) स्वाधीन भावेन तन्वं कल्पयातिसमर्थयति। नात्रपिण्डदान विधान मापितु देहान्तर प्राप्ति रेषा भवद्भिमतार्थं नैव प्रतिपादिता। (७)—शतपथ वचनं चापि एतदर्थपरमेव। नानेनाऽपिमृत पिण्डदानंसिध्यति ।। (८)—मृत पितृ यज्ञे फलादेशवाक्यं विधिवाक्यंचलेख्यम्। वाक्यं च वेद वाक्यंस्यात् ।।

द्वितीय पत्रम्—

।।ओ३म्।। (१)—वैशेषिक सांख्य वचनानां प्रासंगिकत्वं पूर्व पत्रे स्माभिरूदितम् ।। (२)—गर्दभेज्या मूलंवेदेकवास्ति। नास्तिचेत्स्पष्टाऽवैदिकता। अस्तु च भवदभिमतोगर्दभेज्यादि धर्मः। अग्नेर्देवदूतत्ववेदविहितं परम पांदेवदूतत्वम पियदिवेद विहितं तर्हिवेदमन्त्रा वक्तव्याः। नास्मदादय आर्या इमम्ऽहिंसादि धर्म विरुद्धं धर्म (धर्माभासम) धर्मत्वेन मन्यामहे। "अग्नेयं यज्ञमध्वरं विश्वतः···" (ऋग्वेद १-१-४) अत्र वेदमन्त्रेऽध्वरं पदार्थे सायणेनाऽपिहिंसाराहित्यस्यप्रतिपादनं स्पष्टं कृतं ततश्च हिंसा विशिष्टा गर्दभेज्यास्पष्टैव वेद विरुद्धा ।। (३)— सत्यार्थप्रकाशदयोनस्वतन्त्रग्रन्था अपितु स्मृतिप्रतिपादितस्य श्रुति प्रभृतिप्रतिपादितस्य च धर्मस्य व्याख्यानभूताः। अतएवनैतेषांनूतनतयाकापिहानिः। स्वधापदं विशेष्यं जलवाचकमुदक वाचकं च निघण्टुप्रोक्तम्। तदेव च कर्त्तृवाचकम्। व्यावर्त्तकत्वंविशेषणत्वं, व्यावर्त्यत्वं विशेष्यत्वम्। परं भगवन् नैतेन प्रकरणाऽसहायकेन वाक्य जातेन प्रश्न जातेन वा किमपिहस्त गतं भविष्यति। प्रकरण मनु सरन्तु ।। (४)—असंभवस्याऽपि वेदाऽर्थस्य यदि भवद्भिः प्रमाण्यं मन्यतेतर्हि—बुद्धि पूर्वावाक् प्रकृतिर्वेदे (वैशेषिक ६-१-१) इत्यतोविरुध्यते ।।

भावार्थ—

(१) ("नैषातर्केण···") इत्यादि वचन में (एषा) यह पद ब्रह्मविद्या का वाचक है। जिससे ब्रह्मविद्या का प्रकरण स्पष्ट है। इससे अन्य कल्पना करनी नहीं चाहिए। (२) ("योऽवमन्येत···" यह मनुवचन हमारे पक्ष से विरूद्ध नहीं पड़ता क्योंकि हम केवल तर्क शास्त्र के ही आश्रय से (आपके लिखे मृत श्राद्ध विषयक) श्लोकों का निरादर नहीं करते हैं। किन्तु उस (मृत श्राद्ध विधि के जो आपने मनु से प्रस्तुत की हैं) के वेद मूलक न होने से (हम निरादर करते हैं) और कहा भी है कि —

> या वेद बाह्य स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
> सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्यतमोनिष्ठा हिताः स्मृताः ।।

जब कि वेदों में, मृतकों का पिंडदानादि नहीं देखा जाता और आपके लिखे मनु वचनों में देखा जाता है। तो वे मनु वचन अवैदिक है, तब उनको न मानने में हम पर वह (नास्तिकता) का दोष नही लगता। (३) बल्कि हमारा लिखा वेद मन्त्रार्थ आपके उद्धृत ब्राह्मण सूत्रादि से भी विरूद्ध नहीं है। यदि है तो विरोध दिखाइए ? और जो आगे आप कात्यायन सूत्र (अनुमान) प्रस्तुत करेंगे, जो हमारे पक्ष के विरूद्ध भी हों तो वे सूत्र पिण्डदानादि में मन्त्र

का विनियोग नहीं दिखलाते हैं। इससे उनके साथ हमारे साध्य (वेदार्थ) में विरोध नहीं आवेगा। (४) वैशेषिकादि के वचनों से हमने श्राद्ध पक्ष साध्य वा असाध्य नहीं बताया किन्तु वैशेषिकादि ऋषि परिपाटी से आपके पक्ष का विरोध दिखलाया है। (५) जीवित शब्द न होने पर भी जाना-आना-बोलना-सुनना आदि व्यवहार (वेद में) देखने से जीवतों में होना स्पष्ट है। (६) "**ये अग्निदग्धाः**···" इत्यादि अथवा '**ये अग्निष्वात्ताः**···" इत्यादि वेद वचन आपके अभिमत सूक्ष्म परोक्ष पितरों के विषय में नहीं है। क्योंकि वे (सूक्ष्म परोक्ष आपके माने हुए पितर) दग्ध नहीं किए जाते। किन्तु देह ही अग्नि से फूंके जाते हैं वा नहीं, फूंके जाने पाते। इससे उसका तात्पर्य यह है कि—**जो** (हमारे वा किसी के) **पितृजनों के देह अग्नि से दग्ध किये गए वा जो** (किसी कारण) **दग्ध नहीं कर पाये गए वे देह आकाश में सूक्ष्म अणुभाव में बदले हुए स्वधा = आहुति रूप अन्न से अच्छी अवस्था को प्राप्त होते** (रोगादि कारक न रहकर सुधर जाते) **हैं। उनके जीवों के लिए** (स्वराट) **परमात्मा यम वा वायु स्वाधीन भाव से प्राणप्राप्ति और दूसरा देह प्राप्त कराता है।**" इसमें पिंडदान का विधान नहीं है। किन्तु देहान्तर प्राप्ति है। जो कि यह आपके माने हुवे (महीधर कृत) अर्थ से ही दिखलाई गई। (७) शतपथ का वचन भी इसी अर्थ में है उससे भी मृत पिंडदान सिद्ध नहीं होता। (८) मृत पितृयज्ञ में फलां देशवाक्य और विधिवाक्य लिखिए और वह वेदवाक्य हों।

दूसरे पत्र का भावार्थ—

(१) वैशेषिक और सांख्य के वचनों की प्रसंगानुकूलता हम पूर्व पत्र में कह चुके हैं। (२) गर्दभेज्या का मूल वेद में कहां है? यदि नहीं है तो अवैदिक होना स्पष्ट है। आप चाहे गर्दभेज्यादि को धर्म माना करें। अग्नि का देवदूत होना "**अग्निं दूतं**···" (यजुर्वेद २२-१७) वेद विहित है। परन्तु यदि जलों का देवदूतत्व भी वेद विहित है तो वेद मन्त्र कहिए। हम आर्य लोग इस अहिंसादि धर्म के विरूद्ध धर्माभास को धर्म नहीं मानते। "**अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः**···" (ऋग्वेद १-१-४) इस वेद मन्त्र में "**अध्वरम्**" पद के अर्थ में सायणाचार्य ने भी यज्ञ को हिंसा रहित होना स्पष्ट प्रतिपादित किया है। जिससे कि हिंसाविशिष्ट गर्दभेज्या स्पष्ट वेद विरूद्ध है। (३) सत्यार्थ प्रकाशादि स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं है। किन्तु श्रुति स्मृति आदि से प्रतिपादित धर्म के व्याख्यान रूप हैं, इससे उनके नूतन होने से कोई हानि नहीं "**स्वधा**" पद विशेष्य है। और जल का नाम है जो निघण्टु में कहा है। और वही कर्तृ-वाचक है। व्यावर्तक को विशेषण और व्यावर्त्य को विशेष्य कहते हैं, परन्तु भगवन्! इस प्रकार के प्रकरण को सहायता न देने वाले वाक्यों वा प्रश्नों से कुछ हाथ न आवेगा, प्रकरण के साथ चलिए। (४) यदि आप असम्भव वेदार्थ को भी प्रमाण करते हैं तो "**बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे** ··" (वैशेषिक दर्शन ६-१-१) इससे विरूद्ध पड़ता है।

श्री पण्डित भीमसेन शर्मा—

॥ओ३म्॥ (१)—नैषात कर्णेतिपदं विशेषतया ब्रह्मविद्या प्रकरण उक्तमपि सामान्येनसर्वत्रैवसंघटते। यथा—दृष्टिपूतंन्यसेत्पादमिति संन्यास प्रकरणोक्तमपिसर्वाश्रमार्थं भवति। एवमत्रापिबोद्ध्यम्॥ (२)—मृतपितृयज्ञस्यब्राह्मण श्रुतिवाक्यैः स्पष्टं सिद्धस्य भवद्भिखमानं क्रियतेऽतोमोऽव मन्येते ति सनु वचनानुकूलंभवतांपक्षोह्लस समापन्न एव। पितृ यज्ञ साधक श्रुतीनां वेदानुकूलत्वं सिद्धमेव वेद ब्राह्मत्वं च साध्यकोटिस्थम्॥ (३)—ब्राह्मण सूत्रादिस्थपितृयज्ञविनियोगेन भवदर्थो विरुद्ध एव। मध्यम पिण्ड प्राशन मन्त्रार्थवत्॥ (४)—वैशेषिक वचनैर्नास्मपक्षे कोऽपि विरोधः (५)—गमनागमनादि व्यवहारो मृतेष्वपिसम्भवति। जीवित कल्पना च सर्वार्षप्रमाण विरुद्धा॥ (६)—आहुतिर्देवयज्ञो न तु पितृ यज्ञः। मृतपितृर्थमाहुति स्तुभवद्भिः स्वीकृता तत्राहुति फलं यदि तेभ्यः प्राप्नोति

तदा पिण्डदान परिणामोऽपिते नैव प्रकारेण प्राप्स्यति। शरीरस्था ये परमाण वो दह्यन्तेत एव परिणताः पितृत्व-माप्नुवन्ति। मृत पिण्डदानार्थं यच्छत पथादि प्रमाणं तत्पोषकामन्त्रा मयोदाहृताः न च तदर्थंब्राह्मणादि ग्रन्था भवदर्थानुकूला अपितु मदर्थानुकूलाः स्पष्टा एव। (७)—शतपथ वचनेन मृत पितृभ्योऽग्निष्वात्तेभ्योदानंस्पष्टमेव। (८)—यदा च सर्व एव मृत पितृ यज्ञ प्रतिपादको ग्रन्थ समुदायोविद्यते तदा किमुच्यते विधि वाक्यं लेख्य मिति। असावेतत्त इत्येवयजमानस्य पित्रे। शतपथ २-४-३-१६ इत्यादिनिवाक्यानि विधि पराणि। युष्माभिर्जीवितपितृयज्ञ विधिवाक्यं यतइच्छन्तिलेख्यमेव॥

हस्ताक्षर—

"भीमसेन शर्मा"

द्वितीय पत्रम्—

(१) मृत श्राद्धखण्डनं जीवितश्राद्धमण्डनं च भवतांपक्षो न तेनकोऽपि वैशेषिकादिव च नानां सम्बन्ध-स्तस्मादप्रासंगिकम्। (एतद्वचनम् चिन्त्यम्) (२) वेदेपाशुकं कर्म सर्वमेवगर्दभेज्यादिमूलंविहिता दितरप्रसंगे सर्व-एवहिंसा निषेधः। (३) सत्यार्थप्रकाशादिषु गरीयान् लेखोमनोऽनुकूलस्तत्रभवतांनतस्यश्रुति स्मृतिभ्यां कोऽपिसंगति-दर्शयितुंशक्त इति। स्वधापदमुदक वाचकमयमेवार्थोमयापि पूर्वमुक्तः। (४) नासिकोऽपि वेदार्थोऽसम्भवः। अपितु-भवतांबुद्धावेवसर्वोऽसम्भवोऽस्ति। अतएव बुद्धि पूर्वावाक्य कृतिरितितथ्यमेव॥

हस्ताक्षर—

"भीमसेन शर्मा"

अथ पितृयज्ञप्रमाणानि -

(१) पितृयज्ञः स्वकालविधानादनंगःस्यात्। तुल्यवच्चप्रसंख्यानात्। प्रतिषेधे च दर्शनात्। यज्ञ परिभाषा सूत्राणि। सू० ८३-८५ अमावास्यायांपिण्डपितृयज्ञेन पितृन्प्रीणातीति च ब्राह्मणन्। अमावस्यायामेवपितृयज्ञः किमर्थः किंभवत्पक्षेजीवित पितृभ्योमासिमासिसकृदेवान्नजलादिकं देयम्॥ (२) शतपथेयत् पिण्डदानं पिण्डपितृयज्ञ प्रकरण उक्तं तत्कस्मोद्वेदमन्त्राद्विरुद्धं स वेद मन्त्र उदाहार्यः॥ (३) आश्वलायन गृहेसूत्रेऽन्त्येष्टिकर्मानन्तरं यच्छ्राद्धानां-पार्वणादीनांप्रतिपादनं तद् प्रामाण्ये को हेतुः तदुक्तमधुपर्कादिकर्मस्वीकारे च किं वेदानुकूल्य मित्यालोच्य स्पष्टमुत्तरं स प्रमाणंददतुभवन्त इत्याशासे॥

हस्ताक्षर—

"भीमसेन शर्मा"

भावार्थ—

(१) "नैषा तर्केण ···" यह पद विशेषतया ब्रह्मविद्या के प्रकरण में कहा हुआ भी सामान्य से सब जगह ही घटता है। जैसे "दृष्टि पूतं न्यसेत् पादम्" यह सन्यास प्रकरण में कहा हुआ भी सब आश्रमियों के लिए हो जाता है, ऐसे ही यहां जानिये। (२) मृतपितृयज्ञ का, जो ब्राह्मण श्रुति वाक्यों से सिद्ध है। आप अपमान करते हैं। अतः "योऽवमन्येत···" इस मनुवचन के अनुसार आपका पक्ष गिरता ही है। और पितृ यज्ञ प्रति पादक श्रुतियों की वेदानुकूलता सिद्ध ही है। और वेद विरुद्धता साध्य कोटि में है। (३) ब्राह्मणसूत्रादिस्थ विनियोग से आपका अर्थ विरुद्ध ही है। मध्यम पिण्डप्राशन मन्त्रार्थ के तुल्य। (४) वैशेषिक के वचनों से हमारे पक्ष में कोई विरोध नहीं।

(५) जाना-आना आदि व्यवहार मृतों में ही हो सकता है । और जीवित की कल्पना सब आर्ष प्रमाणों से विरुद्ध है। (६) आहुति देवयज्ञ है, न कि पितृयज्ञ । मृत पितरों के अर्थ आहुति तो आपने मान ही ली, वहां यदि उनको आहुति का फल पहुंचता है तो पिण्डदान का फल भी उसी प्रकार से पहुंच जायेगा । शरीर के जो परमाणु फूंके गए वे ही बदलकर पितर बन जाते हैं। मृतपिण्ड दानार्थ जो शतपथादि का प्रमाण है, उसके पोषक मन्त्र मैंने दिखला दिये । और उनके अर्थ में ब्राह्मणादि ग्रंथ आपके अर्थ के अनुकूल नहीं किन्तु मेरे अर्थ के अनुकूल ही स्पष्ट है। (७) शतपथ के वचन से अग्निष्वात्त मृत पितरों को देना स्पष्ट ही है। (८) जबकि समस्त ही मृतपितृ यज्ञ का प्रतिपादक ग्रन्थ समुदाय विद्यमान है तब यह क्या कहा जाता है कि, विधिवाक्य लिखिए "**असावेतत्ते** ··" शतपथ, २-४-२-१६ इत्यादि विधिविषयक वाक्य हैं। आप जहां से चाहें जीवित पितृ यज्ञ के विधिवाक्य लिखें।

हस्ताक्षर—"**भीमसैन शर्मा**"

द्वितीय पत्र का भावार्थ--

(१) मृत श्राद्ध खण्डन और जीवित श्राद्ध मण्डन आपका पक्ष है। उससे वैशेषिकादि के वचनों का कोई सम्बन्ध नहीं, इससे अप्रासंगिक है। (२) वेद में सभी पशु सम्बन्धी कर्म, गर्द भेज्यादिका मूल है। और हिंसा के निषेध, विहित (हिंसा) से अन्यत्र लगते हैं। (३) सत्यार्थ प्रकाशादिकों में बहुत सा लेख मनमाना है, आप में से कोई भी श्रुति स्मृति के साथ उसकी संगति नहीं लगा सकता, स्वधा पद जल वाचक है। यहीं अर्थ मैंने भी पूर्व कहा था। (४) वेद का कोई भी अर्थ असम्भव नहीं। किन्तु आपकी बुद्धि में ही असम्भव है। इसी लिए—"**बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिः**" यह ठीक ही है।

हस्ताक्षर —"**भीमसैन शर्मा**"

अथ पितृयज्ञ प्रमाणानि—

(१) "**पितृयज्ञः स्वकाल विधानादनङ्गःस्यात् ॥ तुल्यवच्चप्रसंख्यानात् ॥ प्रतिषेधेच दर्शनात्**" (यज्ञ परिभाषा सूत्र ८३-८५) अर्थात् अमावस्या में पिण्ड पितृ यज्ञ से पितरों को तृप्त करता है। यह ब्राह्मण है। अमावस्या ही में पितृयज्ञ किस कारण ? क्या आपके पक्ष में जीवित पितरों को मास-मास में एक बार ही अन्न जल आदि देना चाहिए ? (२) शतपथ में जो पिण्डदान पिण्ड पितृ यज्ञ के प्रकरण में कहा है, वह किस वेद मन्त्र से विरुद्ध है ? वह मन्त्र उदाहरण में दीजिए। (३) आश्वलायन गृह्यसूत्र में अन्त्येष्टि कर्म के पश्चात जो पार्वणादि श्राद्धों का प्रतिपादन है, उसके प्रमाण न मानने में क्या हेतु है ? और उसमें कहे मधुपर्कादि को स्वीकार करने में क्या वेदानुकूलता है ? यह विचार कर आप प्रमाण सहित स्पष्ट उत्तर दीजिये। यह आशा करता हूं।

हस्ताक्षर —"**भीमसैन शर्मा**"

श्री पंडित तुलसीराम जी स्वामी—

॥ ओ३म् ॥ (१) वैशेषिकादि वचनानांपूर्वपत्रे भवद्भिर प्रासंगिकत्वमुक्तमिदानीं च प्रासंगिकत्वं स्वीकृत्यविरोधाऽभावोलिख्यतेऽतः परस्परविरोधोऽपिभवल्लेखेविद्यते ॥ (२) दृष्टिपूतन्यसेतपादमित्यस्याऽन्यत्र निषेधोनास्ति अतः सर्वत्र कस्मिंश्चिदंशेसंघटनंयुक्तम् । परंतकश्चियस्याऽन्याऽन्यत्र प्रयुज्यमानत्वातनैतेन साम्य-

मस्याऽऽयाति । (३)—ब्राह्मणवाक्यानिवेदवाक्यानिवाकानितानिसन्तियैर्मृता पित्रादिभ्योदानं पिण्डस्यसिद्धयति ? विन्यस्यमानानामांवचनानां च व्यवस्था संगतिर्वाजीवितपक्षेऽस्माभिस्साध्यत एव ॥ (४)—ब्राह्मणोक्त विनियोगेनकोस्मदर्थो विरुध्यते कथं च ॥ (५)—सूत्र ग्रन्थ विहित गर्दभेज्यादीनांवेद विरुद्धताऽस्माभिर्वेदवचन-मुद् धृत्य स्पष्टं प्रतिपादितैव ॥ (६)—जीवित पक्षेयागमनागमन भाषण श्रवणा दिव्यवस्थासंङ्गतिर्वास्माभिः क्रियतेसा ब्राह्मणवाक्येनकेन विरुध्यते ? (७)—आहुत्या मृत शरीराणां वायौपरिणतानां परिशोधोस्माभिर्लिखितः न च तत्रैषा विधारणासौ पितृयज्ञोनवेति । देव यज्ञोवा ॥८॥—मृत पित्रर्थं माहुतिरस्माभि र्मृतशरीर दाह परोक्ता, नान्या । साचाऽग्नि द्वारा वेद विहिता, न पिण्ड द्वारा ॥ (९)—मृत शरीर परमाण व एव परिणताः पितृत्वमाप्नुवन्तीत्यत्र किमानम् । तेन च भवतां का पक्ष सिद्धिः । पक्षस्तुतदर्थेपिण्डदान विधानदर्शनम् । न हितेषांसत्तामात्रसाधनम् ॥ (१०)—शतपथेऽग्निष्वात्तेभ्यः पिण्डदानं क्वास्ति । (११)—असावेतत्त इत्यादितु जीवित परमेव ॥

हस्ताक्षर—"तुलसीराम"

द्वितीय पत्रम्—

॥ओ३म्॥ (१)—यदि च वैशेषिकादिवचनानांभवत्पक्षेण विरोधोनास्तितर्हि सम्बन्धा भावादि कथनं किमर्थम् ॥ (२)-वेदे स्मृतौवाहिंसा विशिष्टोयज्ञौन शिष्ठ संमतः । किञ्चसर्वं कर्मस्वहिंसांहिधर्मात्मा मनुंरब्रवीत् । धूर्तैः प्रकल्पितं ह्य तन्नैतद्वेषुकल्पितम् ॥ (भारते शान्तिपर्वणि २६४ अध्याये) इति भवद्भिमत भारतीय शिष्ट वचने नैव स्पष्ट मायाति, यद्धिसापरयज्ञादि कर्मविधिर्धूर्त कल्पित इति ॥ (३)—यदा च सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थोपरि शास्त्रार्थो भविष्यति कदाचित् तदातद्विषयक शास्त्रार्थंवक्ष्यामः किमपि ॥ (४)—यदि च श्राद्धविषयं परित्यज्य सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ प्रामाण्याऽप्रामाण्ययोः शास्त्रार्थं चिकीर्षत्कोपितर्हितदंशे विचारः प्रवृत्तोभविष्यति । इदानीं तु उभयपक्षाभिमत ग्रन्थ प्रमाण सिद्ध विषय विचारः प्रवर्त्तते ॥ (५)—यदि कोऽपिवेदार्थोऽसंभवोनास्तितर्हिदयादि स्वाभिलिखित वेदार्थेऽसंभवः कथं मन्यते भवता । न चेन्मन्यते तथा जीवितार्थं परं पितृयज्ञ साधकं तद् भाष्यमेव प्रमाणमस्तु ।,नान्यार्था पेक्षा विद्यते ॥ (६)—पितृयज्ञ परिभाषा सूत्राणिभवता विन्यस्तानि न मृतपितृयज्ञपराणि अपितु जीवितपराणिसंभवन्ति नास्तिपत्रमृत शब्दः ॥ (७)—अमावास्यायांयोहि पितृयज्ञः सतुविशिष्टः नानेन पितृणां नित्यं सेवनं निषिध्यते ॥ (८)—शतपथोक्त पिण्डदानं न मृत परं किं चजावित परं ततो नैवास्माभिवर्दं विरुधता तस्यदर्शनीया । नतेनास्माकं सिद्धान्तहानिः ॥ (९)—आश्वलायनादि प्रोक्त पार्वणादि श्राद्धस्यसैवदशाया भवलिखत मनुवचनानामितिदिक् ॥

हस्ताक्षर—"तुलसीराम"

भावार्थ—

(१) पूर्वपत्र में वैशेषिकादि के वचनों को आपने अप्रासंगिक कहा था, अब इस पत्र में प्रासंगिक मानकर विरोध न होना लिखा है। इस कारण आपके लेख में परस्पर विरोध भी है। (२) "दृष्टिपूतं न्यसेत···" इसका अन्य आश्रमों में निषेध नहीं है, इससे अन्यत्र घटा लेना ठीक है। परन्तु तर्क का आश्रय (ब्रह्म विद्या को छोड़कर) अन्यत्र (शास्त्रों में) काम में लाया गया है, इस कारण उस "दृष्टि पूतं···" की समता इस "नैषा तर्केण··" के साथ नहीं है। (३) वे ब्राह्मण वाक्य वा वेद वाक्य कौन से हैं? जिनसे मृत पित्रादिकों के लिए पिण्ड का दान सिद्ध होता है। जो वचन आपने अब तक लिखे हैं उनकी व्यवस्था वा संगति तो हम जीवित पक्ष में ही लगा रहे हैं। (४) ब्राह्मणग्रंथ में कहे विनियोग से हमारा कौन सा अर्थ विरुद्ध है और किस प्रकार विरुद्ध है? (५) सूत्र ग्रंथ में

विधान की हुई गर्द भेज्या की वेद विरुद्धता हमने वेद मन्त्र लिखकर पहले स्पष्ट दिखलादी है। (६) हमने जो जीवित पक्ष में जाने-आने-बोलने-सुनने आदि की व्यवस्था वा संगति की है वह किस ब्राह्मण वाक्य से विरुद्ध है ? (७) हमने वायु में परिणत मृत शरीरों की शुद्धि आहुति से पहले लिखी थी वहां यह विचार नहीं है कि, वह मृत यज्ञ वा देव यज्ञ है वा नहीं। (८) मृत पित्रार्थ आहुति जो हमने लिखी है वह मृत शरीरों के दाह विषयक कही है। अन्य कोई नहीं, और वह वेद ने अग्नि द्वारा कही है न कि पिण्ड द्वारा। (९) इस विषय में क्या प्रमाण है कि मृत शरीर के परमाणु ही परिणत होकर पितर बन जाते है ? और उससे आपके पक्ष की क्या सिद्धि है ? पक्ष तो (आपका) यह है कि, उनके लिए पिण्ड दान दिखलाना, न कि उनका होना मात्र सिद्ध करना। (१०) शतपथ में अग्निस्वातों के लिए पिण्डदान कहां है ? (११) "**असावेतत्ते**···" यह आपके लिए है। यह तो जीवितों के लिये ही (शतपथ में) कहा गया है।

हस्ताक्षर—"**तुलसीराम**"

दूसरे पत्र का भावार्थ—

यदि वैशेषिकादि के वचनों का आपके पक्ष से विरोध नहीं है, तो "**उनका सम्बन्ध कुछ नहीं**" इत्यादि कथन आपने क्यों किया था ? (२) वेद वा स्मृति में किसी शिष्ट ने हिंसा विशिष्ट यज्ञ नहीं माना। प्रत्युत—"**सर्व कर्म स्वहिंसाहि धर्मात्मा मनुरब्रवीत। धूर्तैः प्रकल्पितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्**" (महाभारत शान्ति पर्व अध्याय २६४) इस आपके माननीय ग्रंथ महाभारत के वचन से ही स्पष्ट पाया जाता है कि हिंसा युक्त यज्ञादि कर्म विधि धूर्तों ने कल्पित की है, (मनुस्मृति वा वेद में नहीं थी) (३) यदि कभी सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थों पर शास्त्रार्थ होगा तो उस विषय के शास्त्रार्थ में कुछ (उस विषय में) कहेंगे। (४) यदि श्राद्ध विषय को छोड़कर सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों के प्रामाण्यऽप्रामाण्य पर कोई शास्त्रार्थ करना चाहेगा तो उस अंश पर विचार चलेगा। अभी तो उभय पक्ष सम्मत ग्रन्थों के प्रमाण से सिद्ध विषय का विचार प्रवृत्त है। (५) यदि कोई भी वेदार्थ असम्भव नहीं है तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखित वेदार्थ में आप असम्भव क्यों मानते हैं ? यदि नहीं मानते तो जीवितार्थ विषयक पितृयज्ञ साधक उनका भाष्य ही प्रमाण हो। (६) आपने जो पितृयज्ञ विषयक परिभाषा सूत्र लिखें हैं, वे मृत पितृयज्ञ परक नहीं है। किन्तु वे जीवित पितृयज्ञ परक है। उनमें मृत शब्द नहीं है। (७) अमावस्या का पितृयज्ञ विशेष है उससे नित्य पितृ सेवा का निषेध नहीं आता। (८) शतपथोक्त पिण्डदान भी मृत विषयक नहीं, किन्तु जीवित विषयक है। इसलिए हमको उसकी वेद विरूद्धता नहीं दिखलानी है। उससे हमारी सिद्धांत हानि नहीं है। (९) आश्वलायनादि के कहे पार्वणादि श्राद्ध की वही दशा है जो आपके लिखे मनुवचनो की है। यह संक्षेप है॥

हस्ताक्षर—"**तुलसीराम शर्मा**"

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा—

॥ओ३म्॥ (१)—वैशेषिका (अक्षर भ्रंशः, लिङ्गस्याऽज्ञानं च चिन्त्यम्) **वचनानमप्रासङ्गिकत्व मेव मयाप्रत्यपादि न प्रासङ्गिकत्वम्** ॥ (२)—**वस्त्रपतंजलंपिबेदित्यस्या न्यत्रविधिर्नास्ति न सामान्यनया सार्वत्रिकं वचोविशेषेणसंन्यासिनां तर्कोऽप्रतिष्ठ इति वचोधर्म विषयक एव—ब्रह्मज्ञान मपि धर्म एवास्ति** ॥ (३)—"**सददाति—असावेतत्ते**······" इत्यादिनि ब्राह्मणवाक्यानि पिण्डदान पराणि॥ (४)—"**आधत्त पितरो**··· **अत्र पितरो**·····"—**इत्यादि मन्त्रार्थो यथा विनियोगेन विरुध्यते तथा मयाह्यः प्रदर्शितः स्वव्याख्याने** ॥ (५)—

न को पिवेदमन्त्रेणगर्दभेजयाया विरोधस्त दंशेविपादोऽपिनार्थ साधकः । (६)—जीवित पक्षेगमनगमनादि व्यवस्थौदक विधिना ब्राह्मणोक्त पिण्डदानेन विरुध्यते तद्यथा चक्षुषेऽभिषिञ्चेदेवंतत् । शतपथ २-४-२-२३ इत्यादि वाक्यैविरुद्ध एव जीविताग्रहः । (७)—परिशोध एव फलावाप्तिस्तदेवागतम् । (८)—मृत पित्रर्थमाहुतिर्न दाह परोक्तालेखस्तु विद्यत एवन तदन्या भावितु मर्हन्ति । (९)—ये अग्निदग्धा इत्यादि मन्त्रा एव दग्धानां पितृत्वे-मानम् । मृतपितृभ्यः श्राद्धदानमितिपक्ष सिद्धिः स्पष्टैव । (१०)—अग्निष्वात्तामृताः पितरस्तेभ्य आहुतिदान स्वीकारे भवतां विकल्पोऽस्ति न वा । (११)—असावेतत्त इति कथं जीवितपरम् ।

हस्ताक्षर—"भीमसेन शर्म्मनः"

द्वितीय पत्रम्—

(१)—वैशेषिकादि वचनानि न जीवित प्रतिपादिकानिनच मृत श्राद्ध निषेध पराणिपुनरजेन प्रकरणेनकः सम्बन्धः । (२)—वेद विरुद्धं स्मृति वचस्त्याज्यं न भारता (अक्षर अंशश्चिन्त्यः) प्रमाणैर्वेदः खण्डयितुं शक्यः । (३)—सत्यार्थ प्रकाशादिवद्वैशेषिक वचनान्यपिभिन्नार्थं पराणिनात्र प्रयोजयन्ति । (४)—यो वेदार्थोब्राह्मण सूत्रादि ग्रन्थानुकूलः स एव सम्भवति स्वामिनोऽन्यस्यवानान्यः (५)—पिण्ड पितृयज्ञोजीवत्सुनकदापिसं घटतेऽपितुमृतेष्वेवसं घटतेनायं नियमोऽस्ति मृत शब्द मन्तरामृतार्थो न सम्भव तीति । (६)—स्वपितृणां नित्य सेवनस्य श्राद्धं नामास्ति न वा अस्ति चेतस्य को विधिः किं च लेख प्रमाणम् ।। (७)—पिण्डपितृयज्ञे पितरोमनुष्येभ्यो भिन्ना इति शतपथ लेखातेभ्य एव पिण्डदानं न जीवद्भ्यो मनुष्येभ्य इति । (८)—आश्वलायनमन्वादिवाक्यानि श्राद्ध प्रतिपादकानि वेदानुकूलानि सन्त्येव । यो ब्रूयाद्वेदविरुद्धानीति स विरोधं दर्शयेत् । (९)—भवतांमते नित्य श्राद्धं किमस्तिकव लिखितं च लिखन्तु ।।

हस्ताक्षर—"भीमसेनशर्म्मनः"

भावार्थ—

(१) वैशेषिकादि के वचनों की अप्रासंगिकता ही मैंने प्रतिपादन की थी, प्रासंगिकता नहीं । (२) "वस्त्रपूतं जलंपिबेत्···" इसका अन्यत्र विधान नहीं है, इससे सामान्य करके सर्वत्र के लिए जो वचन है, वह विशेष करके सन्यासियों का (तर्कोऽप्रतिष्ठः······) यह वचन धर्म विषयक ही है । ब्रह्म ज्ञान भी धर्म ही है । (३) "सददाति-असावेतत्ते···" इत्यादि ब्राह्मण वाक्य पिण्डदान के विषय में है । (४) "आधत्त पितरः···" इसमें मन्त्र का अर्थ जिस प्रकार विनियोग से विरुद्ध है सो मैं कल अपने (मौखिक) व्याख्यान) में दिखा चुका हूं । (५) गर्द भेज्या का मन्त्र में कोई विरोध नहीं इस अंश में विवाद भी अर्थ साधक नहीं । (६) जीवित पक्ष में गमन-आगमन आदि व्यस्था ब्राह्मोक्त उदकविधि से विरुद्ध है "तद्यथाचक्षुषेभिषिञ्चेदेवंतत्··· शतपथ ब्राह्मण २/४/२/२३" इत्यादि वाक्यों से का पक्षपात विरुद्ध है । (७) शुद्ध होना ही फल प्राप्ति है, वही आ गया । (८) मृत पित्रर्थ आहुति दाह परक नहीं जीवित कहीं, लेख तो विद्यमान है ही, उससे अन्य नहीं हो सकती । (९) "ये अग्नि दग्धा···" इत्यादि मन्त्र ही दग्धो के पितृत्व में प्रमाण हैं । मृत पितरों के लिए श्राद्ध देना, यह स्पष्ट ही पक्ष की सिद्धि है । (१०) अग्निष्वात्त मृत पितरों के लिए आहुति देना स्वीकार करने में आपको विकल्प है वा नहीं । (१) 'असावेतत्ते···" यह जीवित परक किस प्रकार है ?

हस्ताक्षर—"भीमसेन शर्मा"

दूसरे पत्र का भावार्थ—

(१) वैशेषिकादि के वचन न तो जीवित श्राद्ध के विधायक हैं। न मृत श्राद्ध के निषेधक हैं, फिर इस प्रकरण से क्या सम्बन्ध है ? (२) वेद विरुद्ध स्मृति त्याज्य है न कि महाभारत के प्रमाणों से वेद का खंडन किया जा सकता है। (३) सत्यार्थ प्रकाशादि के तुल्य वैशेषिक के वचन भी भिन्न अर्थ विषयक है। इसमें काम नहीं आते। (४) जो वेद का अर्थ ब्राह्मण सूत्रादि ग्रंथों के अनुकूल है, वही सम्भव है। अन्य स्वामी वा अन्य किसी का नहीं। (५) पिण्ड पितृयज्ञ जीवितों में कभी नहीं घट सकता किन्तु मृतों में ही घटता है। यह नियम नहीं है कि--"मृत" शब्द के बिना "मृत का अर्थ" नहीं लिया जा सके। (६) अपने पितरों की नित्य सेवा का नाम श्राद्ध है वा नहीं ? यदि है तो उसकी क्या विधि है और लेख प्रमाण क्या है ? (७) शतपथ में पिण्ड पितृयज्ञ में मनुष्यों से पितरों को भिन्न लिखा है। इससे उन्हीं के लिए पिण्डदान है, जीवित मनुष्यों के लिए नहीं। (८) आश्वलायन, मनुस्मृति आदि के श्राद्ध प्रतिपादक वचन वेदानुकुल ही हैं, जो वेद विरुद्ध बतावे वह विरोध दिखलावे। (९) आपके मत में नित्य श्राद्ध क्या है और कहां लिखा है ? लिखिये।

हस्ताक्षर—"भीमसैन शर्मा"

श्री पण्डित तुलसीराम जी स्वामी—

॥ ओ३म् ॥

पत्र सं०—१, दिनांक २१-२-१९०१

(१) –वैशेषिकादिवचनानिनाऽप्रासङ्गिकानि। तत्र—"**अथातोधर्मंव्याख्या स्यामः**" (वैशेषिक दर्शन) "**यतोअभ्युदय निः श्रेयससिद्धि स धर्मः। तद्वचनादाम्ना यस्य प्रामाण्यम्। बुद्धिपूर्वावाक् प्रकृतिर्वेदे। बुद्धिपूर्वोददातिः।**" इत्यादिनि सूत्राणि बहु शोधर्म सम्बन्धपराणि वेद सम्बन्ध पराणि च सन्ति। तस्मान्नैतद्वक्तुं शक्यंयत्तानि शास्त्राणि विज्ञान—(फिलासफी) पराण्येवेति। (२)—"**सददाति असावेतत्ते**··· " इत्यादि ब्राह्मणवचनानि जीवतां शुश्रूषा भोजनादि दान पराण्येव न मृत पराणि। मृत शब्दाऽदर्शनात्॥ (३)—"**आधत्त पितर**·····" इत्यस्य सूत्रोक्तो विनियोगोऽमूलकः (४)—गर्द भेज्यायांहिसा दोष दुष्टत्वात् हिंसायाश्च वेद विरुद्धत्वात् गर्दभेज्या वेदविरुद्धैव। यथा च पूर्वं दिवसेऽस्माभिः प्रदर्शितो वेद मन्त्रः (**अग्नेयं यज्ञ मध्वरम्**·····) इति। अन्यच्च—"**यः पौरुषेयेणक्रविषासमङ्क्ते यो अश्व्येन पशुनायातुधानः। यो अघ्नयायाभरति क्षीरमग्नेतेषांशीर्षाणि हर सापिवृश्च॥** (ऋग्वेद १०-८७-१६) तदीयं सायणकृत भाष्यम् पिचसाधयति यन्मांस भक्षण पराराक्षसा भवन्ति निवारणीयाश्च ते इति। तथा च पशु हिंसाया वर्ज्यत्वे सिद्धे गर्द भेज्यादि हिंसा विशिष्टा न धर्मभवितुर्महन्ति वेद विरुद्धत्वात्। चक्षुषेभिषिञ्चे दित्यादिना जीवित पक्षे न कोऽपि दोषः भवत्पक्षे जीवात्मनां परलोक गतानां पितृत्वं प्राप्तानां पितृत्वात् तदर्थे एव पिण्ड दानादि साध्य साधनस्य कर्त्तव्यत्वात् मृतदेह परिणत विकृत रोगादि हेतु भूताणुशोधनाभि प्राय दत्ता हुतिर्न भवदभिमत पितृपरा। असावेतत्ते इतिहि वाक्यं जीवित परं तथैवयोजनीयं यथा विवाहादौपाद्यं प्रति गृह्यता मित्यादिवचनानि विद्यमान वरायदीयमान जलादि पराणिसंगच्छन्ते।

आश्वलायनादयो न सर्वांशेप्रमाणिभूताः येव विरुद्धां शैत्याज्यत्वात् । आत्रमन्नाथ कामः ।२। तंत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः ।३। (आश्वलायन-१-१६) इत्यादिषु वेद विरुद्धमांस भक्षण प्रतिपादनात् ।।

हस्ताक्षर—"तुलसीराम स्वामी"

द्वितीय पत्रम्—

(१)—वैशेषिकादि विषये पूर्व पत्रेऽस्माभिर्लिखितं तत्पश्यन्तु । तेनास्माकं पक्ष सिद्धिर्भवत् खण्डनं च तेनायाति । (२)—भारत प्रमाणे न वेदो नास्माभिः क्वापि खण्डितः पुनस्तथाभवल्लेखो व्यर्थ एव किञ्चहिंसा प्रतिपादकमनुवाक्यानां प्रक्षिप्ततास्माभिः प्रतिपादिता । (३)—अस्योत्तरं प्रथम पङ्क्तिवत् । (४)—विवादास्पदी मृत मन्त्रार्थे शतपथ ब्राह्मण वचनं नास्माकं विरोधः । अस्ति चेद्दर्शनीयः । (५)— किमयं नियमोऽस्ति ? यः मृत शब्द मन्तरापिमृतार्थो गृह्येत ? जीवित शब्द मन्तरा च जीवितार्थो न ग्राह्यः ? एवं चेन्मद्वयस्य वस्थाऽसंगता भविष्यति । (६)—जीवतां श्रद्धापूर्वकं सेवनं श्राद्धं तच्चाऽस्माभिः पूर्वमेव मन्त्रैः प्रतिपादितं न च तन्मृताऽऽशङ्कापि संभवति । श्राद्धशब्दस्तुवेदेन दृश्यते । (७)—पितृणां जीवतां मनुष्य पद वाच्यत्वेऽपि विशिष्ट सम्बन्धार्थद्योतकत्वे, भिन्नपदेन पितृषुव्यवहारो न तेषां मनुष्यत्व बाधकः । यथा लोकेऽपिपुत्रः स्वपितरं मनुष्यमेवजानन्नपि मनुष्य पदेन सम्बोधयति किन्तु पितृशब्दे नैव । एव मृषयोऽपि मनुष्याः सन्तो भिन्नेनापि शब्दे न व्यवहृतन्ते । (८)—मनुवचनेषु श्राद्धप्रकरणे हिंसा दृश्यते गोभिलीये आश्वलायन सूत्रे चा तो हिंसाया वेद विरुद्धत्वाच्छ्राद्धस्यवेद विरुद्धताऽऽयाता । यथा—"मांसाभिधाराः पिण्डाभविष्यन्तीति" (गोभिल० ४-२-१३) एवं मनुस्मृतौ—"द्वौमासौमत्स्यमांसे-नेत्यादिद्रष्टव्यम्" । (९)—अस्मन्मते नित्य श्राद्धं वेद विहितं पूर्वं प्रतिपादितमेव यजुर्मन्त्रैः ।।

हस्ताक्षर—"तुलसीराम स्वामी"

भावार्थ—

(१)—वैशेषिकादि के वचन अप्रासंगिक नहीं है—"अथा तो धर्मं व्याख्यास्यामः (वैशेषिक १-१-१) यतोभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः ।। तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् । बुद्धि पूर्वावाक् प्रकृतिर्वेदे । बुद्धि पूर्वोददातिः ।। इत्यादि सूत्र बहुत हैं, जो धर्म और वेद से सम्बन्ध रखते हैं, इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि वे केवल विज्ञान (फ़िलासफ़ी) के विषय में हैं । (२)—"ददाति-प्रसावेतत्ते ' " इत्यादि ब्राह्मण वचन - जीवितों की सुश्रूषा और भोजनादि दान विषय में ही है, मृत विषय में नहीं, क्योंकि वहां "मृत" शब्द नहीं दीखता । (३)—"आधत्त पितरः···" इसका सूत्रोक्त विनियोग अमूलक है । (४)—गर्द भेज्या के हिंसा दोष युक्त दुष्ट होने से और हिंसा के वेद विरुद्ध होने से गर्द भेज्या वेद विरुद्ध ही है, जैसा कि हम कल वेद मन्त्र दिखला चुके हैं, कि—"अग्नेयं यज्ञमध्वरम्···" और भी —"यः पौरुषेयेणक्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः यो अघ्न्यायाभरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ।। ऋग्वेद १०-८७-१६) इस मन्त्र का सायण कृत भाष्य भी सिद्ध करता है कि मांस भक्षी राक्षस होते हैं, और वे निवारण करने योग्य हैं, जब इस प्रकार पशु हिंसा का बर्जनीय होना सिद्ध हुआ, तब वेद विरुद्ध होने से गर्दभेज्यादि हिंसा विशिष्ट कर्म, धर्म नहीं हो सकते "जक्षुर्वेभिषिञ्चेत्···" भोजन करने वालों को जल दें) इत्यादि (शतपथ) से जीवित पक्ष में कोई दोष नहीं आता । आपके पक्ष में परलोक को गए हुए, पितृ बन चुके हुए, जीवात्माओं का नाम पितृ होने से और उन्हीं के निमित्त पिण्डदानादि साध्य (दावा-प्रतिज्ञा) को सिद्ध करना (आपका) कर्तव्य होने से, मृतक देह के परिणत विकारयुक्त रोगादि के हेतु अणुओं की शुद्धि के अभिप्राय से दी हुई आहुति

आपके माने हुए पितरों के विषय में नहीं है। (**असावेतत्ते**···) इत्यादि वाक्य को जीवित पक्ष में उसी प्रकार समझना चाहिए। जिस प्रकार विवाह आदि में वर को (**प्रतिगृह्यताम्**) "**लीजिए**" कहकर विद्यमान वर के लिये दिये जाने वाले जलादि (**पाद्य अर्घ्य, आचमनीय, मधुपर्क, गोदानादि**) के विषय में संगत होते हैं। आश्वलायनादि सर्वांश में प्रमाण नहीं, क्योंकि वेद विरुद्धांश में त्याज्य हैं। "**आजमन्नाद्यकामः ॥२॥ तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः ॥३॥**" (आश्वलायन गृह्य सूत्र १-१६) इत्यादि सूत्र वेद विरुद्ध मांस भक्षण का प्रतिपादन करते हैं।

हस्ताक्षर—"**तुलसीराम स्वामी**"

द्वितीय पत्र का भावार्थ

(१)—वैशेषिकादि के विषय में हम पूर्व पत्रों में लिख चुके हैं। उसे देखिये। उससे हमारे पक्ष की सिद्धि और आपके पक्ष का खण्डन आता है। (२)—महाभारत के प्रमाण से हमने वेद का खण्डन कहीं नहीं किया। फिर (आपका) वैसा लिखना व्यर्थ ही है। किन्तु हमने हिंसा प्रतिपादक मनुवाक्यों की प्रक्षिप्तता दिखलाई थी। (३)—इस (वैशेषिक के वचन भिन्नार्थ परक हैं) का उत्तर संख्या १ के समान जानिये। (४) जिस मन्त्र के अर्थ पर विवाद है, उसका शतपथ ब्राह्मण हमारे विरुद्ध नहीं, यदि है तो विरोध दिखलाइए। (५)—क्या यह नियम है कि—"**मृत**" शब्द के बिना भी "**मृत का अर्थ**" लिया जावे और "**जीवित**" शब्द के बिना "**जीवितार्थ**" न लिया जावे? यदि ऐसा हो तो बड़ी भारी अव्यवस्था आवेगी। (६)—जीवितों की श्रद्धापूर्वक सेवा श्राद्ध है। जो हमने प्रथम ही मन्त्रों से सिद्ध कर दी है। और उसमें "**मृत**" की शंका तक भी नही बनती, परन्तु हां! श्राद्ध शब्द तो वेद में नहीं दीखता। (७)—जीवित पितृजन यद्यपि मनुष्य पदवाच्य हैं। परन्तु तथापि विशेष सम्बन्ध (रिश्ते) का अर्थ जतलाने वाला होने पर भिन्न पद से पितृजनों में व्यवहार होना, उनके मनुष्यत्व का बाधक नहीं। जैसे लोक में भी पुत्र अपने पिता को "**मनुष्य**" जानता हुआ भी "**मनुष्य**" शब्द से नहीं पुकारता, किन्तु पिता शब्द से व्यवहार करता है। ऐसे ही ऋषि भी यद्यपि मनुष्य हैं, परन्तु भिन्न "**ऋषि**" शब्द से बोले जाते हैं। (८)—मनु के श्राद्ध प्रकरणस्थ वचनों में भी हिंसा देखी जाती है। और गोभिलीय तथा आश्वलायन सूत्र में भी। इस कारण हिंसा के वेद विरुद्ध होने से भी (आपके अभिमत) श्राद्ध को वेद विरुद्धता आई। जैसे कि—"**मांसाभिघाराः पिण्डा भविष्यन्तीति** (गोभि० ४-२-१३) ऐसे ही मनुस्मृति में भी—"**द्वौ मासौमत्स्यमांसेन**···" (३-६८) इत्यादि को (हिंसा परायण) देखिए। (९)—हमारे मत में जो नित्य श्राद्ध वेद विहित है सो पूर्व यजुर्वेद के (२-३२-३४) मन्त्रों से सिद्ध कर आये हैं।

हस्ताक्षर—"**तुलसीराम स्वामी**"

श्री पण्डित भीमसेन जी शर्मा—

(१)—वैशेषिकादिवचांसि न श्राद्धं कर्म विद्धति न च प्रतिषेधन्ति। सन्तु सामान्य न धर्मपराणि विशेष तश्च मीमांसादीनिकर्मकाण्डं समर्थ यन्ति। (२)—मनुष्येभ्योभिन्ना: पितरस्तेषामेव शतपथे पितृयज्ञो न च जीवन्तोमनुष्या मनुष्येभ्यो भिन्ना भवितु मर्हन्ति। (३)—गर्दभेज्यादि कर्माणि भिन्न कालार्थान्यपियथा वेदानुकूलानि तथा पूर्व मेवास्माभिरुक्तम। (४)—विनियोगोनास्त्यमूलकोऽपितुभवतां सर्व मेवकथममूलकमस्ति। (५)—मांस भक्षिणोराक्षसा इतितु सर्वास्तिकसम्मतम्। तेन न यज्ञो विरुध्यते न यज्ञे मांस भक्षण मुद्दिश्यते न च भवदुदाहृत मन्त्राभ्यांतत्पाशुक कर्म विरुध्यते। (६)—तद्यथाजक्षुशेऽभिषिञ्चेदित्याकं मृत परमेवपितरो मनुष्यो-भिन्नाभिन्नाइतिशतपथे दर्शनात्। (७)—मृतदेहाणुशोधनायाहुतिरितिकिमंत्र प्रमाणं कथम् समञ्ज संकल्प्यते।

(८)—मनुष्येतरत्वात् पितृणासमावेतत्त इत्यादि पदानि मृत पराणि सिद्धान्येव । (९)—आश्वलायनादि वाक्यानितियदि वेद विरुद्धानि तर्हि कस्माद्वेदाद्विरुद्धानीति दर्शयत नोचेन्मौनमास्ताम् । स्मरन्तु प्रकरणान्तरकरणात्प्रतिज्ञा संन्यास दोष-ग्रस्ताभवन्तः ॥

हस्ताक्षर—"भीमसेन शर्मा"

द्वितीय पत्रम्—

(१)—वैशेषिकादि विषयेमयापि स्पष्टमेव लिखितम् । येन युस्माकं पक्षो निगृहीत ऐव । (२)—यज्ञियवेदे स्पष्ट मेव पाशुकं कर्मास्ति तेनास्त्येव विरोधः । असत्यपि प्रसंगत्यागे प्रतिज्ञा हानिर्दोष आयात्येव भवत्सु । (३)—अस्याऽप्युत्तरं प्रथम संख्यावदेवास्ति । (४)—सूत्रग्रन्थस्थ विनियोग परित्यागे भवदन्तिके किं प्रमाणम् । नास्तिचेत्स ऐव विरोधः । (५)—मनुष्येतरत्वात् पितृणांमृत गृहणंसुस्पष्टमेव तेनागत एवमृत नियमः । (६) जीवतां श्राद्ध विषयेयत्पूर्वं भवद्भिरुक्तं तत्तथैव खण्डितमपि मया । बहवोभवदभिमता अपिशब्दावेदे न दृश्यन्ते तेनकिम् । (७)—मनुष्यादिभिन्नापितरो न सन्ति चेन्मनुष्यपदेन किमर्थं न स्वीकृताभिन्नत्वेन प्रतिपादने कोऽपिहेतुर्भवद्भिर्नोक्त एव तस्मात्पितृणां भिन्नत्वेमृतश्राद्धं सिद्धमेव । नास्ति भवदन्तिके प्रमाणंकिमपि । (८)—यदि भवत्कथनमात्रान्मन्वादि वचांसिवेद विरुद्धानितर्हि मृतकथनात्सर्वं भवत्कथनं वेदविरुद्धमस्तु । (९) पूर्वं-भवद्भिः पिण्ड पितृयज्ञमन्त्रादर्शितायत्करणममावास्यायां स्वीकृतमपि । नित्य श्राद्ध प्रमाणं च भवत्सन्नि धौनास्ती तिनिरस्तोभवतपक्ष इति सावधानतया प्रत्यगात्मनि विचारणीय मित्याशासे ।

हस्ताक्षर—"भीमसेन शर्मा"

प्रथम पत्र का भावार्थ—

(१) वैशेषिकादि के वचन न तो श्राद्ध को सिद्ध करते, न निषिद्ध करते हैं । सामान्य से धर्म विषयक हों, विशेषतः मीमांसादि कर्म काण्ड का समर्थन करते है । (२) मनुष्यों से पितर भिन्न हैं उन्हीं का शतपथ में पितृयज्ञ है । और जीवित मनुष्य, मनुष्यों से भिन्न नहीं हो सकते । (३) गर्द भेज्यादि कर्म यद्यपि अन्य समयों के लिए हैं, और जैसे वे वेदानुकूल हैं वैसा हमने पहले कह दिया है । (४) विनियोग अमूलक नहीं है, किन्तु आपका ही सब कथन अमूलक है । (५) यह सब आस्तिक मानते हैं कि मांसभक्षी राक्षस कहाते हैं, उससे यज्ञ को विरुद्धता नहीं, यज्ञ का उद्देश्य मांस भक्षण नहीं और आपके उदाहृत दोनों मन्त्रों से वह पशु सम्बन्धी कर्म विरुद्ध नहीं है । (६) "तद्यथा जक्षु···" यह मृत परक ही है ? क्योंकि शतपथ में पितर मनुष्यों से भिन्न हैं, ऐसा देखा जाता है । (७) मृत देह के अणुशोधनार्थ आहुति है इसमें क्या प्रमाण है । क्यों बढ़ंगी कल्पना की जाती है ? (८) मनुष्यों से पितरों के भिन्न होने से (असावे···) इत्यादि वाक्य मृत परक ही सिद्ध हैं । (९) आश्वलायन के वचन यदि वेद विरुद्ध हैं तो किस वेद मन्त्र से विरुद्ध हैं ? यह दिखलाओ, नहीं तो चुप हो जाओ । स्मरण करो कि प्रतिज्ञान्तर करने से प्रतिज्ञा सन्यास दोष में आप लोग फंस गए ।

हस्ताक्षर—"भीमसेन शर्मा"

दूसरे पत्र का भावार्थ—

(१) वैशेषिकादि के विषय में मैंने भी स्पष्ट ही लिखा है जिससे तुम्हारा पक्ष गिर ही गया है । (२) यजुर्वेद में स्पष्ट ही पशुकर्म है उससे विरोध है ही । प्रसंङ्ग न त्यागने पर भी आप में प्रतिज्ञा हानि दोष आता ही

है। (३) इसका उत्तर प्रथम संख्या के तुल्य ही है। (४) सूत्रग्रन्थस्थ विनियोग के त्यागने में आपके समीप क्या प्रमाण है ? यदि नहीं है तो वही विरोध है। (५) पितर मनुष्यों से भिन्न हैं। इससे मृतों का ग्रहण स्पष्ट है ही, इससे मृत का नियम आ ही गया। (६) जीवतों के श्राद्ध विषय में जो आपने पूर्व कहा वह मैंने उसी प्रकार खण्डित भी किया। आपके अभिमत भी बहुत से शब्द वेद में नहीं दीखते, इससे क्या ? (७) यदि पितर मनुष्यों से भिन्न नहीं हैं तो मनुष्य पद से क्यों नहीं स्वीकार किये गये ? भिन्न भाव से प्रतिपादन में आपने कोई हेतु नहीं कहा। इससे पितरों के भिन्न भाव में मृत श्राद्ध सिद्ध ही है। आपके पास कोई प्रमाण नहीं। (८) यदि आपके कथन मात्र से मनु आदि के वचन वेद विरुद्ध हैं तो मेरे कथन से आपका सब कथन वेद विरुद्ध हो। (९) प्रथम आपने पिण्ड पितृयज्ञ के मन्त्र दिखलाये थे। जिसका करना अमावस्या में स्वीकार भी किया था। और नित्य श्राद्ध का प्रमाण आपके पास नहीं है, इससे आपका पक्ष गिर गया। यह सावधानता से अपने मन में विचार कीजियेगा, यह आशा करता हूं।

हस्ताक्षर—"भीमसेन शर्मा"

श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी—

॥ओ३म्॥ (१)—मृतपितृषु भाषण समर्थनं न क्वापि लेखे भवद्भिरद्यावधिकृतम्। नापिमृतेषुवस्त्र-परिधानादिकं समर्थितं क्वापि लेखे। (२)—मनुष्येभ्योभिन्न त्व व्यवस्था पितृणां कृत पूर्वास्माभिः। (३)—गर्द भेज्यादि (कर्माणि) किं कालार्थानि, यत्कालार्थानितस्मिन्काले वेदा आसन्नवा। आ संश्चेत तद् विरोधवारिणा-यतत्समयेऽपि को हेतु रासीत्। (४)—अस्माकं किं कल्पनं मूल वेद विरुद्धं पितृ यज्ञ विषये ? (५)—यदि मांस-भक्षिणो राक्षसा इति स्वीकारे, अस्मल्लिखित मन्त्र द्वय प्रतिपादित मांस भक्षण निषेध स्वीकारे च पाशुकं कर्मकथं न विरुद्धम्। (६)—येदह्यन्ते ते देहा एव त एव चाग्नि दग्ध पदवाच्यास्तदर्थे एवा हुतेर्विधानात्स्पष्टंवतें मंत्रे रे वदेहदाहाहुतिः॥ (७)—आश्वलायन मनुगोभिलादि वचस्सुश्राद्ध प्रकरणोक्तंमांसं वेदाद्विरुध्यते तस्मात्तदुक्तं श्राद्धं वेद विरुद्ध मिति सिद्धम्। न च तत्र प्रकरणान्तर गमनम्। यदि मृत शब्दानुपादानेऽपि मृताभिप्रायोगृह्यतेभवद्भि स्तवानिम्नाङ्कित स्थले कथं न मृताऽभि प्रायो गृह्यते ?—

(अ)—मानोवधीः पितरं मोतमातरम् (य० १६-१५) (आ)—मानस्तोकेतनयेमान आयुषिमानोगोषुमानो अश्वेषुरीरिषः (य० १६-१६) (इ)—प्रियं मा कृणुदेवेषु······ (अथर्व० १६-७-६२-१) इत्यादिषु मृतानां पितृणां मातृणां, तोकानां, तनयानां, गवाम्, अश्वानां, देवानां, राज्ञां च कस्मान्न गृहणम् ?। (ई)—सम्भवाऽसंभवयोः सभवे कार्य सं प्रत्ययः कर्त्तव्य स्तस्मान्मृत पदानुपादाने जीवितार्थं ग्रहणं सुकरमेव॥ अथ शूलगव (आश्व० ४-६-१) इत्यादिषुतुगोहिंसापिभवदभिमताश्वलायनादि लिखिता स्वीक्रियतेकिम् ?॥

हस्ताक्षर—"तुलसीराम स्वामी"

भावार्थ—

(१) मृत पितरों के (बोलने) का समर्थन अभी तक आपने किसी लेख में भी नहीं किया है। और न मुर्दों में वस्त्र धारण करने का समर्थन किसी लेख में किया है। (२) मनुष्यों से पितरों के भिन्न होने की व्यवस्था हमने पूर्व लिख दी है। (३) गर्द भेज्यादि कर्म किस काल के लिए है ? जिस काल के लिए हैं। उस काल में वेद थे वा नहीं ? यदि थे तो उन वेदों से विरोध दूर करने का उस समय में भी क्या हेतु था ? (४) पितृयज्ञ विषय में हमारी कौन सी कल्पना मूल वेद के विरुद्ध है ? (५) यदि मांस भक्षियों का राक्षसत्व स्वीकृत है, और हमारे लिखे दोनों

मन्त्रों में प्रतिपादित मांस भक्षण निषेध भी स्वीकृत है तो फिर पशु सम्बन्धी कर्म विरुद्ध कैसे नहीं है ? (६) जो दग्ध किये जाते हैं, वे देह हैं, और वे ही अग्निदग्ध पद के अर्थ हैं, तो उन्हीं की शुद्धि के लिए आहुति का विधान होने से, उन्हीं मन्त्रों से देहदाहाऽऽहुति स्पष्ट सिद्ध है । (७) आश्वलायन, मनु, गोभिलादि के वचनों में श्राद्ध प्रकरणोक्त मांस वेद से विरुद्ध है, इस कारण भी उनका कहा श्राद्ध वेद विरुद्ध सिद्ध हुआ, और प्रकरणान्तर में जाना भी नहीं हुआ यदि आप मृत शब्द के बिना भी मृतक का अर्थ लगाते हैं तो निम्नलिखित स्थलों में मृताऽभिप्राय क्यों नहीं ग्रहण करते ?

(अ) "**मानोवधीः पितरम्**···" (यजुर्वेद १६-१५) (आ) "**मानस्तो के तनयेमान आयुषिमानो गोषु मानो अश्वेषुरीरिषः । इत्यादि** (यजुर्वेद १६-१६) (इ) "**प्रियंमाकृणुदेवेषु**···" (अथर्व०-१६-७-६२-१) इत्यादि में मरे हुवे पितरों, माताओं, बच्चों, पुत्रों, गोवों, घोड़ों, देवों, और राजाओं का ग्रहण किस कारण नहीं ? (ई) सम्भव-असम्भव में से सम्भव में कार्य मानना चाहिए, इस कारण मृत पद न होने पर जीवितार्थ ग्रहण करना सुगम ही है । "**अथ शूलगवः**" (आश्वलायन गृह्यसूत्र ४-६-१) इत्यादि में तो गौ हिंसा भी आपके माने हुवे आश्वलायनादि में लिखी है, सो क्या आप मानते हैं ?

हस्ताक्षर—"**तुलसीराम स्वामी**"

शास्त्रार्थ के अन्त में, श्री रामप्रसाद जी (प्रधान) आर्य समाज आगरा का वक्तव्य—

आज २१-२-०१ ई० को तीसरे दिन का लेखबद्ध शास्त्रार्थ यहीं तक हुआ था, जिसमें समाज का पत्र अन्तिम था, इसका उत्तर पण्डित भीमसेन जी की ओर से नहीं हुआ था और अगर तारीख २२ को शास्त्रार्थ होता तो पंडित जी उत्तर देते । तथा पण्डित भीमसेन जी के अन्तिम पत्र का उत्तर भी विस्तार से हमारे पण्डित जी देते । क्योंकि २१ तारीख को शास्त्रार्थ का समय पूर्ण हो गया था, सायंकाल को नित्य नियम के अनुसार दोनों पक्ष वालों ने अपने-अपने पक्ष, प्रतिपक्षों को व्याख्यान द्वारा स्पष्ट किया, श्रोताओं ने तीनों दिन के व्याख्यानों से स्वयं शास्त्रार्थ का परिणाम समझ लिया होगा । हम पण्डित भीमसेन जी के समान अपने मुख से अपनी विजय और पराये पराजय की दुन्दुभि बजाना उचित नहीं समझते क्योंकि वादी वा प्रतिवादी के कहने से जय-पराजय नहीं हो सकता । किन्तु मध्यस्थ के कहने से होता है । तदनुसार इस शास्त्रार्थ में एक पुरुष मध्यस्थ न था । किन्तु सर्व साधारण श्रोतागण ही मध्यस्थ थे, अतः इस लेखबद्ध के पढ़ने और व्याख्यानों के सुनने वालों को ही जय-पराजय के निर्णय का अधिकार है । जो सब जान लेंगे, और श्रोताओं ने जान भी लिया ।

तारीख २१ को लिखे समाज के अन्तिम पत्र का उत्तर जो तारीख २२ के शास्त्रार्थ में पण्डित भीमसेन जी को देना था, सो २२ को शास्त्रार्थ न किया किन्तु अपने स्थान से ही उत्तर लिख लाये और सायंकाल को समाज में दे दिया, यद्यपि यह उत्तर नियम विरुद्ध स्थान से लिखकर लाया हुआ इस शास्त्रार्थ का अंग नहीं है, और समाज को लेना भी आवश्यक न था, परन्तु समाज ने पण्डित भीमसैन जी के सन्तोषार्थ ले लिया । जिसको नीचे प्रकाशित भी किये देते हैं । पाठक देखेंगे कि, उससे हमारे प्रश्नों का उत्तर कहाँ तक सन्तोष दायक होता है ? यह पत्र लेना आवश्यक इसलिए न था कि वास्तव में तारीख २२ को नियमानुसार दोनों पक्ष वाले बैठते तब वहीं नियमानुसार इसको पण्डित भीमसैन जी लिखते और उनके अन्तिम पत्र का उत्तर भी समाज की ओर से वहीं दिया जाता, परन्तु पण्डित भीमसैन जी ने शास्त्रार्थ तो उस दिन न किया किन्तु स्वस्थान से उत्तर लिखकर इस लिए भेज दिया कि ऐसा करने से तारीख २१ के अन्तिम पत्र और इस अपने स्थान पर से लिखे पत्र (इन दोनों पत्रों) का उत्तर समाज की ओर से शून्य रहे तो समाज निरुत्तर समझा जावे । परन्तु सत्याऽसत्य के निर्णयार्थी को ऐसा करना उचित नहीं इन दो पत्रों से क्या फल निकलेगा ? जबकि ३ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ और तभी कुछ मृत श्राद्ध के वेदोक्त प्रमाण न मिल सके । अब तारीख २२ की कथा भी सुनिए—

६ बजे से शास्त्रार्थ का नियत समय था, साढ़े नौ बजे पण्डित भीमसैन जी शास्त्रार्थ के स्थान (अनाथालय) में आये और अन्य दिनों के समान मकान के भीतर पुस्तक भी न लाये, गाड़ी में ही छोड़ आये, जानों अपने घर से ही आज शास्त्रार्थ का विचार त्याग आये हों। आकर कहा कि—तुम्हारे सभापति कहाँ हैं ? उत्तर दिया गया कि—पण्डित लोग हैं ही, सभापति जी के न आने से कोई हानि नहीं। कल और परसों भी तो सभापति जी नहीं आये थे। इससे आपके शास्त्रार्थ में क्या विघ्न पड़ा ? हस्ताक्षर तो वे सब परचों पर कर ही देते हैं। आज भी कर देंगे। परन्तु वे न माने तब पण्डित कृपाराम जी (स्वामी दर्शनानन्द जी) व पण्डित भीमसेन जी आदि कई पुरुष, समाज के सभापति के स्थान पर गये। पण्डित भीमसेन जी से बार-बार पूछा गया कि क्या विघ्न हो जायेगा ? बताइये तो सही। कुछ न बताया, तो यह भी कहा गया कि आप जिस कारण से शास्त्रार्थ को रोकना ही उचित समझते हैं, उसे लिखकर दे दें, इसे भी स्वीकार न किया, अन्त में सभापति जी ने कह दिया कि—आप हटते हैं तो जाने दीजिए विघ्न हम भी नहीं चाहते। ११ बजे पण्डित भीमसेन जी घर को लोट गये और दोपहर को ही एक छपा हुआ विज्ञापन (सनातन) धर्म सभा आगरा का निकला कि—पण्डित भीमसेन जी मुहल्ला छिलीटूंट में व्याख्यान देंगे इत्यादि जिससे पाया गया कि तारीख २१ की रात्रि में ही वे धर्म सभा में व्याख्यानादि का यह निश्चय कर चुके थे और उस समय में आर्य समाज मन्दिर में शास्त्रार्थ विषयक व्याख्यान नहीं देना पहले ही से मान लिया था। नहीं तो ११ बजे जाकर थोड़ी ही देर में छपा-छपाया विज्ञापन नहीं निकलता, किन्तु बहुत जल्दी करते तो भी सायंकाल तक छपता॥

शास्त्रार्थ से बाह्य श्री पण्डित भीमसैन शर्मा जी का पत्र—

(१)—मृतपितृषुभाषणं सम्भवति प्राण भाषणवत्। छान्दोग्य लेखेनयथा प्राणोभाषते तत्समाहिताः श्रृण्वन्तितद्वदत्रापिसमाहिताः श्रद्धालव एव पित्रुपदेशंश्रृण्वन्ति मृतेषुसूत्र परिधानमेववासः परिधानं प्रमाणसिद्धम्। न च प्रमाणसिद्धं प्रत्यक्षादिनाबाध्यते। (२)—मनुष्या एव पितर इत्यत्र न किमपि प्रमाणं भवद्भिरूदीरितम्। न च भवत्कथनं प्रमाणाहिंसांध्यत्वात्। (३)—गर्द भेज्यादि कर्माण्यधिकारि कालार्थानि वेदाश्चासन् वेदानूकूलानि च तानि। परिहृतोमया विरोधः पूर्वम। (४)—मूलवेदे अग्निष्वात्त मृतादि पितृ यज्ञ पर मन्त्रस्थ पदैः स एवार्थः सूच्यते यो ब्राह्मणसूत्रादिषुस्पष्टीकृतस्तस्मात्सर्वस्माद् भवत्कल्पनं विरुद्धमस्त्येव। (५)—पाशुकं कर्म धर्मो द्दिष्टं यज्ञान्तर्गतं न तत्र मांस भक्षणोद्देशः। यत्र मांस भक्षणोद्देशस्त द्राक्षसं कर्म। (६)—पितृ पद वाच्यादेह सम्बद्धा एव। दग्धाः परमाणवो योन्यन्तरे पितृ रूपेण परिणता भवन्ति त एव पितरोऽग्नि दग्धा अग्निष्वात्ता वा। (७)—आश्वलायनादि सूत्रेषु श्राद्ध प्रकरणस्थं मांसं वेदानुकूलं न विरुद्धं वेदे मांस प्रतिपादनस्यदष्टचरत्वात्। तच्चान्ययुगार्थमतो न दोषाय। भवत्कथनमेव वेद विरुद्धं श्राद्धन्तु वेदानुकूलमेवास्ति। दुर्जन तोषन्या येन स्वीकृतेऽपि मांस रहितं श्राद्धं किमङ्गी क्रियते। (८)—मानोवधीरित्यादिनि वचाँसि न पितृ यज्ञ प्रकरण स्थान्यतो न मृत पित्रादि पराणि। (९)—तत्र मृत जीवित योर्मृतेष्वेषार्थः सम्भवति सम्भवः। (१०)—शूल गवादयोयज्ञावेदानुकूला एव भिन्न कालीनाः कलिवर्ज्याः सं प्रत्यकर्त्तव्या एव॥

हस्ताक्षर—"भीमसैन शर्मा"

भावार्थ—

(१) मृत पितरों में बोलना हो सकता है। जैसे प्राण का बोलना। छान्दोग्य के लेख से जैसे प्राण बोलता है, उसे एकाग्रचित वाले सुनते हैं, वैसे ही यहां भी समाहित श्रद्धालु ही पितरों का उपदेश सुनते हैं, मृतों में सूत पहरना ही वस्त्र पहरना अर्थात् धारण करना प्रमाण सिद्ध है। और प्रमाण सिद्ध को प्रत्यक्षादि हटा नहीं सकते। (२) मनुष्य ही पित रहैं, इसमें आपने कोई प्रमाण नहीं दिया, और साध्य होने से आपका कथन प्रमाण नहीं।

(३) गदभेज्यादि कर्म अधिकारी लोगों के समय के लिए थे। वेद भी थे, और वे कर्म वेदानुकूल भी थे, मैं विरोध का परिहार पूर्व कर चुका हूं। (४) मूलवेद में अग्निष्वात्त मृतादि पितृयज्ञ मन्त्रस्थ पदों से वही अर्थ सूचित होता है जो ब्राह्मणसूत्रादिकों में स्पष्ट किया गया है। उन सबसे आपकी कल्पना विरुद्ध है ही। (५) पशुवध सम्बन्धी कर्म का उद्देश्य धर्म है। जो यज्ञ के अन्तर्गत है। उसमें मांसभक्षण उद्देश्य (मुख्य तात्पर्य) नहीं होता। जिस (पशुवध) में मांस खाना उद्देश्य हो वह राक्षस कर्म है। (६) देह सम्बन्धी परमाणु जो पितर हैं वे ही दग्ध हो कर दूसरी योनि में पितर बनते हैं, वे ही पितर अग्निदग्ध वा अग्निष्वात्त हैं। (७) श्राद्ध प्रकरण में आश्वलायनादि सूत्रों में कहा—मांस वेदानुकूल है, विरुद्ध नहीं, क्योंकि वेद में मांस का प्रतिपादन देखा जाता है और वह अन्य युग के लिए है, इसलिए दोष नहीं। आपका कथन ही वेद विरुद्ध है। श्राद्ध तो वेदानुकूल ही है। दुर्जन तोष न्याय से स्वीकार भी किया जाए तो मांस रहित श्राद्ध को क्या मानियेगा? (८) "मानोवधि···" इत्यादि वचन पितृयज्ञ प्रकरण के नहीं हैं, इससे वहां मृत अर्थ नहीं लिया जाता। (९) मरों और जीवतों में से मरों में ही सम्भव अर्थ है। (१०) "शूलगवादि" (गोहिसा युक्त) यज्ञ भी वेदानुकूल है। परन्तु अन्य काल के लिए है। कलियुग में वर्जित है। आजकल करने नहीं चाहिए।

हस्ताक्षर—"**भीमसेन शर्मा**"

धन्य हो! अब भेद खुला कि आप तो श्राद्ध क्या? सभी पौराणिक और तान्त्रिक लीलाओं को मानते हैं। (१) वैशेषिकादि के वचनों का आपने-अपने पक्ष में क्या अविरोध किया? जबकि वे शास्त्र धर्म विषयक होने से न तो अप्रासङ्गिक हैं, न उनमें कहे युक्ति और तर्क तथा बुद्धि पूर्वकत्व को ही आपने माना है। अलौकिक अर्थ कह कर टाल दिया है। (२) यजुर्वेद का वह पशुवध कर्म किसी मन्त्र से दिखलाया होता तो उस पर विचार किया जाता। (३) सूत्र ग्रंथ के विनियोग का मूल से सम्बन्ध ही नहीं, सूत्र कहता है कि "**पिण्डों पर धागा चढ़ाओ**" वेद मन्त्र कहता है कि "**पितरों! यह वस्त्र पहनिए**" यह विनियोग ऐसा है जैसा कि—"**शन्नो देवी**···" इस मन्त्र के पदों (आपो भवन्तु पीतये) "**जल होवें पीने के लिए**" से आचमन में विनियोग तो सार्थक है। परन्तु इसको अटकलपच्चू शनैश्चर का मन्त्र बताना ऊट-पटांग है। ऐसे ही—"**पत्नी मध्यम पिंड खावें**" यह भी मूल मन्त्र से विरुद्ध है। (४) पिता को मनुष्य नाम से कोई व्यवहार नहीं करता सो आदरार्थ है। न कि पिता मनुष्य नहीं है। इसी प्रकार पितृ यज्ञ, मनुष्य यज्ञ के अन्तर्गत नहीं मानना आदरार्थ है। न कि पितर मनुष्यों से भिन्न हैं। (५) मनुस्मृति के मृत श्राद्ध को हम अपने कथन मात्र से अवैदिक नहीं बताते किन्तु आप उसका मूल वेद में नहीं दिखला सकते। इससे अवैदिक ही रहा। (६) जो मन्त्र हमने नित्य पितृ सेवा के दिखलाये थे उन मन्त्रों का ब्राह्मण कहता है कि अमावस्या के नैमित्तिक पितृयज्ञ में उन मन्त्रों को अमुक अमुक अन्न जल आदि देने के कार्य में पढ़ना होता है। इससे यह नहीं आया कि उन मन्त्रों का यही आशय है कि अमावस्या के ही दिन पितृजनों की श्रद्धापूर्वक सेवा की जावे। जिस प्रकार विवाह में (**सह रेतों दधाव है**) अर्थात् "साथ वीर्य को रखें हम दोनों" इत्यादि मन्त्र का विनियोग विवाह संस्कार में होने पर भी यह तात्पर्य मन्त्र का नहीं है कि इसे विवाह में ही पढ़ दो, किन्तु स्त्री पुरुष के सदा के व्यवहार का भी वर्णन है। इसी प्रकार इन मन्त्रों का ब्राह्मणानुसार अमावस्या के पितृयज्ञ (विशेष कार्य) में विनियोग होने पर भी नित्य पितृ सेवा का अर्थ दूर नहीं होता इससे सिद्ध हुआ कि—हमारे दिये मूल मन्त्र प्रमाणों से नित्य पितृजनों का सत्कार विहित है। और ब्राह्मणानुसार विद्यमान पिता आदि को देवयज्ञ (**अग्निष्टोमादि**) के अन्तर्गत पितृयज्ञ में इस प्रकार मन्त्र विनियोगपूर्वक सत्कार विहित है कि—(**जक्षुषेभिषिञ्चेत्**) "**शतपथ०**" भोजन से पूर्व जल से हस्त-पादादि धुलावे (**असावेतत्ते**) इस वाक्य को वह कर कि—"**आपके लिए यह भोजन है**" भोजन दें। भोजन कर चुकने पर फिर जल से प्रत्यवनेजन—कुल्ला आदि को जल दे। इस सब ब्राह्मण में भी मृतकों को देना नहीं लिखा। (७) छान्दोग्य का वह पाठ आपने प्रमाण में नहीं दिया जिससे प्राण के भाषण के तुल्य मृत-सूक्ष्म परोक्ष = आंख

आदि इन्द्रियों से न जानने योग्य आपके माने हुए पितरों का बोलना सिद्ध होता। वर्णोच्चारणशिक्षा मात्र पढ़े लोग भी जानते हैं कि- "आत्मा बुद्धया समेत्यार्थान् मनोयुङ्क्ते विवक्षया" इत्यादि का तात्पर्य यही हो सकता है कि— बोलने से वक्ता का तात्पर्य श्रोता को समझाने का होता है। फिर आपके अभिमत सूक्ष्म पितर जब अन्य लोक और अन्य योनि के सूक्ष्म देहधारी अतीन्द्रिय हैं तो उनकी भाषा मनुष्य की भाषा न होने से मनुष्य समझ नहीं सकता। फिर बोलना व्यर्थ हुआ। इसलिए वेद में मृत शब्द न होने पर भी जो आपने मृत की कल्पना की सो आपकी कल्पना वेद पर व्यर्थता का दोष लगाने वाली होने से भी वैशेषिकादि के ऋषि वचनों से विरुद्ध हुई। जिसके सुनने में जो असमर्थ है वह श्रद्धालु होने पर भी नहीं सुन सकता। सूत्रकार ने मन्त्र के "वस्त्र" को छोड़कर सूत के तागे (धागे) को यदि इस लिए माना हो कि पितर सूक्ष्म है, उनको हलका वस्त्र चाहिए तो सूत का डोरा कितना ही हलका होने पर भी अतीन्द्रिय सूक्ष्म पितरों से तो भारी ही रहेगा अतः पितर उससे दब मरेंगे, और पिण्ड भी इतना बड़ा-बड़ा गोला न खा सकेंगे, किन्तु एक पिण्ड से सहस्त्रों पितर दबकर चकनाचूर हो जायेंगे। और वस्त्र पितरों को पहनाना चाहिए न कि पिण्डों को। (८) गर्द भेज्या में गधा मारना वा शूलगव में गोवध करना वेद के किसी मन्त्र से विहित नहीं, न आपने कोई मन्त्र लिखा। कलियुग में वर्जित होना आदि भी आपने अन्य स्मृति वा पुराणों से लिया होगा। उन-उन ग्रन्थों में तो काल भेद नहीं लिखा कि यह अमुक युग का धर्म है। और हमने जो "अग्नेयं यज्ञ मध्वरम्···" इत्यादि दो मन्त्र लिखकर मांस भक्षण और यज्ञ में भी हिंसा न करना दिखलाया था, उसका आपके पास कोई उत्तर नहीं। अतः हिंसाशिविष्ट श्राद्ध वा अन्य यज्ञ वेद विरुद्ध सिद्ध है। मृतपितृयज्ञ के पिण्डदान का वेद वा शतपथ में प्रमाण न मिलने से आपका पक्ष सिद्ध नहीं हुआ। और कात्यायन, आश्वलायन तथा मनु के वे दो वचन अवैदिक होने से माननीय नहीं। (९) आपका पशु कर्म यदि धर्मोद्दिष्ट है तो क्या उसमें हुई वेद विरुद्ध हिंसा अधर्म होने से धर्मोद्देश का नाश करके अधर्म की प्रचारक नहीं हुई ? (१०) यह लिखना कैसा मनमाना है कि— मृतक के शरीर के ही परमाणु दूसरी योनि में पितृ शरीर बन जाते हैं, किञ्चित सनातन धर्मी भी इस पर ध्यान देंगे। यदि यही परमाणु पितृयोनि का देह बनावें तो दशगात्र का पिण्डदान आपके मत से विरुद्ध होगा। तथा यही स्थूल देह पितरों के लक्षों देहों को परमाणु देने योग्य है। फिर प्रथम स्थूलदेह को फूंकने से अनेक पितृ शरीरों के लिए अनेक जीव भी मानने पड़ेंगे। तथा भस्मादिरूप से अनेक परमाणु समुदाय पृथ्वी पर भी पड़े वा गढ़े रहते हैं, उनके परिणाम से अन्य लोकस्थ पितर नहीं बनते।

इस शास्त्रार्थ में पण्डित भीमसेन जी ने वेद मन्त्र का केवल एक प्रमाण दिया था। "ये अग्निदग्धाः···" इत्यादि। जिसमें देह को जलाने वा न जलाने पर भी दूसरा जन्म होने मात्र का वर्णन है। पिण्डों का वहां नाम भी नहीं। शतपथ के सब प्रमाण मृतक शब्द से रहित हैं, वे विद्यमान पिता आदि को भोजनादि देने का प्रतिपादन करते हैं। बस केवल मनुस्मृति के दो श्लोकों से अतिरिक्त आद्योपान्त पढ़ जाइये कोई प्रमाण मृत श्राद्ध का समर्थक नहीं मिलेगा। मनुवचन वेद मूलक न होने से माननीय नहीं। न मनु से मृत श्राद्ध पर विचार करने को यह शास्त्रार्थ हुआ था। किन्तु श्रोताओं को तो यह आशा थी कि इतने दिन तक आर्य समाज के मुख्य पण्डित बने रहने और श्राद्ध विषय पर मति परिवर्तन होने के कारण भूत यज्ञ के दीर्घकालीन विचार करने वाले पं० भीमसेन शर्मा जी अवश्य कोई अनूठे वेद मन्त्रों के प्रमाण देगें। सो आशा-निराशा हो गई। आर्य समाज ने अपने पक्ष में। क्रमशः ५ वेद मन्त्र, १ मनु वचन, २ वैशेषिक सूत्र, २ सांख्य सूत्र, १ निरुक्त का प्रमाण, ४ कात्यायन सूत्र पर पक्षखण्डनार्थ, १ वेद मन्त्र "अग्निं दूतं पु०" १ मनु वचन, १ वेद मन्त्र, १ महाभारत का प्रमाण (हिंसा की प्रक्षिप्ता में) दिया। जो सभी अकाट्य प्रमाण है। आप लोग भी पढ़े ! देखें !! तथा विचार कर निर्णय लें। इति शम्॥

"राम प्रसाद" (प्रधान आर्य समाज आगरा)

इस शास्त्रार्थ के विषय में मेरे विचार

यह दो दिग्गज पण्डितों के मध्य हुआ अच्छा पाण्डित्य पूर्ण शास्त्रार्थ है। दोनों पण्डितों के लेखों में पाण्डित्य की झलक है पर दोनों विद्वान् मूल विषय के ऊपर-ऊपर ही बहुत फिरे हैं। श्री पण्डित भीमसेन जी अपने आपको बड़ी देर तक ऋषि दयानन्द जी का शिष्य मानते रहे। ऋषि दयानन्द जी के बलिदान के पीछे १५ वर्ष से भी अधिक समय तक आप समाज का बहुत कार्य करते रहे। "**आर्य सिद्धांत**" नामक मासिक पत्र का पण्डित भीमसेन जी सम्पादन करते थे इस पत्र के मालिक भी वह स्वयं ही थे। उस "**आर्य सिद्धांत**" मासिक पत्र में श्री पण्डित भीमसेन जी पौराणिक लोगों के प्रश्नों का बहुत अच्छा उत्तर देते और आक्षेपों का युक्ति व प्रमाणों से खण्डन करते थे। काशी में एक पुस्तक—"**महामोह विद्रावरण**" नाम से संस्कृत में प्रकाशित हुई थी उसमें ऋषि दयानन्द जी के लिए बहुत अपशब्दों का प्रयोग किया गया था, उसका बहुत ही उत्तम रीति से खण्डन—श्री पण्डित भीमसेन जी ने किया था वह सन् १८९६ ई० के '**आर्य सिद्धांत**" के अंकों में छपा था। मेरे पास इस सन् के बहुत से अंक है जिनमें पौराणिकों के आक्षेपों का प्रबल खण्डन श्री पण्डित भीमसेन जी द्वारा किया गया है।

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादी ने—"**दयानन्द तिमिर भास्कर**" नाम पुस्तक सम्वत् १९५१ विक्रमी में सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध छपाई, उसका उत्तर श्री पण्डित तुलसीरामजी स्वामी (मेरठ) ने "**भास्कर प्रकाश**" नाम से सम्वत् १९७० विक्रमी में छपा वह अच्छा है पर यदि यह श्री पण्डित भीमसेन जी द्वारा लिखा जाता तो बहुत ही उत्तम होता। श्री पण्डित भीमसेन जी महान पण्डित थे और "**खण्डन-मण्डन**" के कार्य में वह बहुत ही प्रवीण थे ईसा की १८ वीं शताब्दी समाप्त होते-होते उनके द्वारा एक यज्ञ में एक ऐसा कार्य हो गया जो आर्य समाज की मान्यता के विरुद्ध था उसके कारण आर्य समाजियों ने उनको बुरी तरह झंझोड़ा तथा आर्य समाज से उनको निकाल दिया। मनुष्य सामाजिक प्राणी है आर्य समाज से निकाले जाने पर—पौराणिक पंथ ही निकट था उसही में वह जा सकते थे, सो चले गए। मेरे विचार में उस पंथ में जाने के बाद यह उनका प्रथम ही शास्त्रार्थ का प्रयास है।

आर्य समाज आगरा को इटावा से जो दो पत्र श्री पण्डित भीमसेन जी ने ९ और १० फरबरी सन १९०१ को लिखे हैं उन दोनों पत्रों में "**नमस्ते**" लिखा है फिर आगरा आने पर और पौराणिकों के पास ठहरने पर जो पत्र लिखे हैं उनमें "**नमस्ते**" न लिखकर "**योग्य**" यह शब्द लिखा है इसको भी गुप्त रूप में "**नमस्ते**" ही समझना चाहिए क्योंकि—यहां "**योग्य**" का यह ही अर्थ है कि अभिवादन के विषय में आर्य सज्जन जो अपने लिए "**योग्य**" समझें तो समझ लें। आर्य सज्जन "**नमस्ते**" से भिन्न क्या "**योग्य**" समझ सकते थे ? अत: यहां "**योग्य**" को भी "**नमस्ते**" ही समझना चाहिए, नहीं तो पौराणिक पण्डित लोग अपने पत्रों में अनेकों ऊटपटांग शब्द लिखते हैं।

पण्डित भीमसेन जी के विषय में और कुछ न लिखकर—इस शास्त्रार्थ के विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त समझता हूं कि—**शास्त्रार्थ पण्डित्य पूर्ण है और इसमें पक्ष श्री पण्डित तुलसीराम जी स्वामी का ही अधिक प्रबल रहा है पण्डित भीमसेन जी का नहीं। "यह पक्षपात रहित मेरा मत है।"**

वैदिक धर्मका—

"अमर स्वामी सरस्वती"

बासठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : हैदराबाद (दक्षिण)

दिनाङ्क : २४ अप्रैल सन् १६०३ ई०

विषय : क्या यज्ञ में पशुवध वेद प्रतिपाद्य है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : १· श्री पण्डित आर्यमुनि जी
२· श्री युत् पण्डित पूर्णानन्दजी जी,
३· श्री तुलसीराम स्वामी जी
४. श्री युत् पण्डित रुद्रदत्त जी

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : १· श्री स्वामी अच्युताश्रम जी
२· श्री शंकर हरिहर तीर्थ

आर्य समाज के प्रधान : श्री महाशय केशव राव जी शर्मा, "एडवोकेट"

आर्य समाज के मन्त्री : श्री कुमार बहादुर जी

नोट : यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "**श्री रामशंकर जी गुप्त**" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।

"संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ से पहले

पाठकों को ज्ञात हो कि श्रीयुत् अच्युताश्रम स्वामी जी ने शास्त्रार्थ हेतु एक वर्ष से टालते-टालते अन्त में २४ अप्रैल १९०३ ई० नियत की थी, तदनुसार १७ अप्रैल को श्रीयुत् पंडित आर्यमुनि जी, १९ तारीख को श्रीयुत पंडित पूर्णानन्द जी, २२ ता० को तुलसीराम स्वामी जी, और २३ ता० को श्रीयुत् पंडित रुद्रदत्त जी हैदराबाद पहुंच गये थे। २२ तारीख को आर्य समाज की ओर से नीचे लिखे शास्त्रार्थ के नियम सनातनी पक्षस्थ श्रीमान स्वामी अच्युताश्रम जी आदि के समीप भेजे गये, यथा—श्री अच्युताश्रम स्वामी जी का पक्ष—"**यज्ञ में पशुवध वेद प्रतिपाद्य है**" तथा आर्य समाज का पक्ष—"**यज्ञ में पशुवध वेद विरुद्ध है**" नियत किये गये, तथा उस शास्त्रार्थ के नियम निम्नलिखित होंगे—

(१) दोनों ओर से एक सभापति होना चाहिये, जिसका काम निम्नलिखित नियमों पर चलाना और शास्त्रार्थ को उभय पक्ष के द्रव्य से छपवाना होगा, न कि किसी को विजय-पराजय का प्रशंसा पत्र देना! इस लेख-बद्ध शास्त्रार्थ का परिणाम पाठक लोग स्वयं पढ़कर निकाल लेंगे। (२) शास्त्रार्थ लेखबद्ध और मौखिक दोनों प्रकार से होगा, अर्थात् उभयपक्ष की ओर से निर्णीत पुरुष प्रथम स्वयं पक्ष को लिखेगा, हस्ताक्षर करेगा तथा सुनावेगा, उसकी कापी प्रतिवादी को देगा। (३) समय शास्त्रार्थ का उभय पक्ष के वक्ताओं को पन्द्रह-पन्द्रह मिनट दिये जायेंगे, इस प्रकार छ:-छ: बार वादी-प्रतिवादी को दिया जावेगा, अनन्तर एक विषय समाप्त समझा जावेगा। (४) विधि वाले वक्ता को उपक्रम करना होगा और निषेधवादी को उपसंहार। (५) शास्त्रार्थ में कोई पुरुष अपशब्द का प्रयोग नहीं कर सकेगा, यदि कोई ऐसा करेगा तो प्रधान को अधिकार होगा कि उस विषय से उसे प्रथम रोक दे यदि फिर भी वह नियम भंग करे तो उस पुरुष को बाहर निकाल दिया जायेगा। (६) शास्त्रार्थ में मुख्य प्रमाण वेद संहिता के दिये जावेंगे, परन्तु पुष्टि के लिए अन्य ग्रन्थों के भी प्रमाण दिये जायेंगे। (७) शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में लिखा जायेगा, परन्तु तत्कालिक अनुवाद हिन्दी भाषा में होगा।

इन नियमों का उत्तर ३ दिन में तारीख २४-४-०३ ई० को जो शास्त्रार्थ की तिथि महिनों पूर्व से नियत थी, दोपहर पीछे यह आया—

सनातन धर्म पर पशुवध विषयक आर्य समाज का आक्षेप और आक्षेप का समय वा शास्त्रार्थ के नियम—

श्रीयुत वासुदेव नायक जी ने कृष्णा तट पर याग (यज्ञ) किया था, याग में श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमान अच्युताश्रम स्वामी जी सहित कई सौ विद्वान उपस्थित थे, उसी वक्त आर्य समाज ने सामने आकर अनेक नोटिस बांट कर प्रसिद्ध कर दिया था कि याग (यज्ञ) में पशुवध करना शास्त्र विरुद्ध और अनुचित है। इसके बाद स्वामी जी के नाम से शास्त्रार्थ करने के लिए आर्य समाज ने तीन पत्र भेजे कि "**शास्त्रार्थ करो**" परन्तु स्वामी जी ने पत्रों का उत्तर न दिया। आर्य समाज ने फिर पत्र लिखा कि शास्त्रार्थ करो और पत्र का उत्तर दो नहीं तो हम इस विषय को समाचार पत्र में छपाते हैं। स्वामी जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया तथा पत्र का उत्तर दिया, तथा शास्त्रार्थ के लिए नियम वा तिथि वगैरा ठहराने की लिखा-पढ़ी वा परस्पर बात-चीत चली, परन्तु देहली दरबार की धूमधाम की तरफ से उस वक्त तिथि नियत न हो सकी, किन्तु स्वामी जी ने सिकन्दराबाद (हैदराबाद) के सेठ बंसीलाल अबीरचन्द्र जी के बाग में ठहरे हुए "**शंकर हरिहर तीर्थ**" के द्वारा पत्र लिखवा कर

चैत्र कृष्णा १२ अर्थात् तारीख २४ अप्रैल नियत करा दी यह समय का सामान्य क्रम है, अब नियम देखिये—

(१) सनातन धर्म और आर्य समाज की तरफ से वेद-वेदांग व उपांग दर्शन ग्रन्थार्थवेत्ता फैसला करने वाला व बन्दोबस्त करने वाला योग्य सदाचार सम्पन्न "**मध्यस्थ**" होना चाहिये। यदि वेद वेदांग जानने वाला न मिल सके तो धार्मिक, बुद्धिमान, पक्षपात शून्य, योग्य, नगर के किसी एक कर्मचारी को वा दो कर्मचारी वा पांच अथवा दश व्यक्तियों या पच्चीस कर्मचारी तथा पढ़े-लिखे धार्मिक धनाढ्य व्यक्तियों पर फैसले का भार सौंपा जावे अथवा सौ-दोसौ-पांच सौ हजार वा आम लोगों पर इस फैसले का भार माना जावे, और एक-दो व्यक्ति दोनों पक्षों का उचित अनुवाद करके सुना देवें कि दोनों पक्ष वालों का यह कथन है। आप लोगों को इन दोनों पक्षों में जिसका कथन सच्चा, उचित, योग्य, जंचता हो आप लोग उस पर अपनी धार्मिक सम्मति दे दीजिये। (२) शास्त्रार्थ में वेद वेदांग या उपांग अर्थात् दर्शन ग्रन्थ और उन पर प्राचीन महाभाष्यादि संख्या पूर्वक ग्रन्थों का प्रमाण दिया जावे और वे ग्रन्थ सर्वथा और समग्र, सदैव प्रमाण माने जावें, क्योंकि वेद अपने अंगों-उपांगो बिना नहीं लग सकता है, अथवा केवल वेद मात्र माना जावे। (३) शास्त्रार्थ संस्कृत-प्राकृत दोनों में होवे जिसकी इच्छा हो कि मैं संस्कृत में भाषण करूंगा वह संस्कृत, तथा प्राकृत की इच्छा वाला प्राकृत भाषा में शास्त्रार्थ करे। दोनों तरफ के विद्वानों की गणना होकर उन्हों के नाम लिखे जावें। कोन विद्वान पहले अथवा पीछे शास्त्रार्थ संस्कृत अथवा प्राकृत में करेगा यह बात अपने-अपने पक्ष में विचार लेवें और आक्षेपकर्त्ता भाषण जिस भाषा में स्वीकार करे उसी भाषा में आरम्भ होना चाहिये। (४) पहले दोनों तरफ के जब दो विद्वान शास्त्रार्थ शुरू करें उनको दोनों तरफ के विद्वान अपने-अपने पक्ष के विद्वानों को सम्बोधित करके अपना तात्पर्य समझा देवें, अर्थात् सहाय करते रहें परन्तु दूसरे पक्ष के विद्वान से भाषण न कर सकेंगे। (५) जब दोनों शास्त्रार्थ करने वाले विद्वानों में से एक शिथल या निरुत्तर हो जावे उस वक्त पूर्वोक्त कोई प्रकार का मध्यस्थ शिथल पक्ष वाले मुखिया को पूछ अर्थात् आप इसके निरुत्तर से निरुत्तर हैं या दूसरा विद्वान स्थापित् करना चाहते हैं, उस स्थिति में स्थापित् कर देवें या निरुत्तर समझ लेवें। (६) समय जिसको जितना लगे उतना प्रश्नोत्तर के लिए देता जावे परन्तु आधे घण्टे से अधिक समय किसी को न दिया जावे व वितण्डावाद के लिए भी मध्यस्थ, समय अधिक न देवे व बिल्कुल न देवे, यदि मध्यस्थ चाहे वा आम लोग चाहें तो शास्त्रार्थ लेखबद्ध हो सकेगा, नहीं तो मौखिक अच्छा होगा। (७) शास्त्रार्थ में कोई भी पुरुष मर्मभेदी व अयोग्य शब्द न बोल सकेगा, कदाचित कोई बोलेगा तो एकदफ़ा मना कर मध्यस्थ दूसरी दफ़ा उचित रीति से उसको बन्द कर दूर करवा देवेगा। (८) गवर्नमैंट की नीति के खिलाफ़ कोई पक्षपात वगैरा नहीं कर सकेगा। (९) शास्त्रार्थ छापने वगैरा की यदि जरूरत होवे तो न्यायानुसार आक्षेपकर्त्ता का काम, अथवा जिसका पक्ष गिर जावे वह छपवावे। (१०) नियम पास होने पर क्रम से दोनों पक्ष वालों के हस्ताक्षर करा लेना चाहिये। (११) मध्यस्थ का स्वीकार न करने वाला पक्ष शास्त्रार्थ नहीं करना चाहता है, ऐसा समझा जावेगा और कहा जावेगा कि यह केवल वितण्डा कर लोगों को दुःख देना चाहता है तथा व्यर्थ सताता है। (१२) यह भी कहना योग्य न होगा कि यहां कोई मध्यस्थ के योग्य नहीं है। क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमैंट व निजाम सरकार के कर्मचारी व वकील बैरिस्टर वगैरा साक्षात् संस्कृत व उर्दू फ़ारसी तथा अंग्रेजी में अनुवादित वैदिक प्रभृति ग्रन्थों को देख वा सुन कर हमेशा अदालतों में फैसला किया व सुना करते हैं। (१३) समय शास्त्रार्थ का ८ बजे रात से ११ बजे रात तक होगा। (१४) एक विषय आठ रोज तक चल सकेगा, आगे नहीं। आठ रोज का समय एक विषय का समय समझा जावेगा।

इन चौदह नियमों के साथ श्री शंकर हरिहर तीर्थ द्वारा लिखित एक पत्र भी भेज रहे हैं तत्काल उत्तर दें (पत्र)—"केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आपको विदित हो कि आपके पास ये नियम भेजता हूं, आप

लेकर शास्त्रार्थ का नियत तिथि पर पूरा बन्दोबस्त किजिये, समय व्यर्थ नहीं खराब करियेगा, तारीख २३ छपा हुआ नोटिस भी दे चुके हो, अगर कुछ आगे पीछे हो तो इत्तला दीजियेगा।

[तारीख=२४-४-१९०३ ई०]

"शंकर हरिहर तीर्थ"

तारीख २४ को ही इसका उत्तर आर्य समाज ने तत्काल दिया कि—

श्री युत् अच्युत स्वामी जी नमस्ते ! आज स्वामी शंकर हरिहर तीर्थ जी ने तीन दिन पश्चात् शास्त्रार्थ के नियमों में परिवर्तन करके निज कृत नियम भेजे हैं जिनमें अन्य वार्ता तो कोई विवाद की नहीं है और जो अनावश्यक उपोद्घात लिखा है उससे भी हम लोगों को कुछ प्रयोजन नहीं है, किन्तु शास्त्रार्थ का मध्यस्थ होना जो आवश्यक लिखा है सो तटस्थ पुरुष मध्यस्थ मिलना बहुत कठिन है। इसलिए हमारे लिखे नियमों के अनुसार शास्त्रार्थ आज से ही आरम्भ कीजिये तो हम लोगों का श्रम और हमारे पण्डितों का आगमन सफल हो जावे, मध्यस्थ की विचारणा करनी थी तो पूर्व में करनी थी, अब शास्त्रार्थ की नियत तिथि पर भी पूर्वाह्न व्यतीत करके अपराह्न में मध्यस्थ की आवश्यकता लिखना शास्त्रार्थ में विघ्नकारक होगा, विगत वर्ष महाराज टीहरी नरेश के समक्ष भी शास्त्रार्थ के लिए मध्यस्थ नहीं मिला और अन्त को यही स्थिर हुआ कि लेख-प्रतिलेख एकत्रित करके छपा दिये जावेंगे, और पढ़ने वाला फल समझ लेगा, ऐसा ही आगरा आदि में हुआ और यहां भी ऐसा ही होना चाहिये, ऐसा ही आपने भी पूर्व स्वीकार किया था, कि प्रबन्धकर्त्ता केवल शान्ति रक्षक होगा, निर्णेता नहीं। इस पर भी यदि पूर्व प्रतिज्ञा को त्याग कर अब आपको मध्यस्थ का आग्रह विशेष हो तो हैदराबाद में रहने वाले किसी ऐसे मध्यस्थ योग्यता सम्पन्न पुरुष को हम नहीं जानते हैं; किन्तु गंगाप्रसाद एम०ए० पण्डित, डिप्टीकलैक्टर (गढ़वाल) वा पण्डित विष्णु लाल एम०ए० मुन्सिफ (मुजफ्फरनगर) के पास लेख-प्रतिलेख भेज कर फ़ैसला करा लें स्थानिक संभावित पुरुष राजा ज्ञानगिरि जी को प्रबन्धकर्त्ता मात्र नियत कर लें (फैसला करने वाला नहीं) और शास्त्रार्थ आरम्भ कर दें, यदि उक्त दोनों पुरुष स्वीकृत नहीं हों तो आप किन्हीं का नाम बतावें और हम यह विचारें कि वह पुरुष वेद-वेदांग ज्ञान सम्पन्न है कि नहीं, और एक पक्ष का पक्षपाती है कि तटस्थ ? हमारे दूसरे नियमानुसार निजपक्ष को नियत समय में लिख कर हस्ताक्षर करके परपक्ष को देते जाना अवश्य स्वीकृत कीजिये जो इस नियम को स्वीकार नहीं करेगा वही पक्ष शास्त्रार्थ का अनिच्छुक समझा जावेगा। तीन व चार नियम पर शंकर हरिहर तीर्थ जी ने स्वीकृत वा अस्वीकृत कुछ भी नहीं किया, सो करना चाहिये। षष्ठ नियमानुसार वेदादि का प्रमाण स्वीकृत करना चाहिये। सातवें नियमानुसार संस्कृत में शास्त्रार्थ लिखना और हिन्दी में अनुवाद सुनाना नियमित होना चाहिये, क्योंकि देश भेद से संस्कृताऽतिरिक्त भाषा को पूर्णतया पक्ष-प्रतिपक्ष वाले कदाचित न समझें। अन्य आप जो उचित समझें सो लिखें, हम उस पर विचार करके सम्मति देंगे, समग्र ग्रन्थों का प्रमाण सर्वदा-सर्वदा के लिए करना न करना नहीं बन सकता किन्तु वेद स्वतः प्रमाण और उससे अविरुद्ध अन्य ग्रन्थ भी हम मानते हैं जैसा कि पूर्वाचार्य मानते आये हैं।

माध्यम—**"केशव राव एडवोकेट"**
(प्रधान-आर्य समाज सुलतान बाजार-हैदराबाद)

नोट—इस पर तारीख २५ भी व्यतीत हो गई और कोई उत्तर नहीं आया, तथा शंकर हरिहर तीर्थ जी ने क्रोध के अतिरिक्त कोई काम नहीं किया, हां ! मान्यवर गोस्वामी श्री नरसिंह गिरि जी ने आर्य पण्डितों को बुलाकर समागम किया और पूछा कि शास्त्रार्थ में क्या अवरोध है ? पण्डितों ने उत्तर दिया कि—मध्यस्थ की अनहोनी सी

शर्त ही शास्त्रार्थ में बाधक है। आप ऐसा यत्न करें कि शास्त्रार्थ हो जावे, मान्यवर ने फरमाया कि हां मैं उस पक्ष का अभिप्राय जानने का उद्योग करूंगा इत्यादि-इत्यादि। आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित तुलसीराम स्वामी जी का व्याख्यान "**वैदिक धर्म और मतभेद**" पर तारीख २४ को हुआ, जिसमें मान्यवर "बख्शी रघुनाथ प्रसाद साहब" जज हाईकोर्ट इत्यादि माननीय पुरुषों सहित ३००० से अधिक जनसंख्या थी, व्याख्यानान्त में शास्त्रार्थ का पत्र व्यवहार सुनाया गया, और पब्लिक को सुझाया गया कि पौराणिक पक्ष मध्यस्थ की ओट में शास्त्रार्थ से बचना चाहता है, हम लोग दूर देश से आये हैं, आप लोग यत्न करें कि शास्त्रार्थ अवश्य हो जावे इत्यादि-इत्यादि, दूसरे दिन पण्डित आर्यमुनि जी का व्याख्यान "**वर्णाश्रम धर्मोद्धार पर आर्य समाज का प्रयत्न**" विषय पर प्रभावजनक हुआ, पण्डित काशीनाथ वामनलेले जो पूना से आये थे वर्णव्यवस्था आदि पर व्याख्यान तो मराठी में देते रहे, परन्तु संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इन्कार करते रहे। जिनके पाण्डित्य का हम लोगों को भी बड़ा भरोसा था, उन्होंने यह भी कहा कि— मैं तो अच्युत स्वामी जी व आर्य समाज के शास्त्रार्थ को देखने आया हूं। शास्त्रार्थ करने नहीं आया हूं, और मध्यस्थ आदि स्थिर हो जाने पर यदि शास्त्रार्थ करना भी पड़े तो संस्कृत में भाषण न करूंगा। आज ही तारीख २५ को रात्रि साढ़े आठ बजे फिर टालमटोल का दूसरा पत्र निम्न लिखित आया—

निवेदक—"**केशवराव**"
(प्रधान-आर्य समाज)

॥ श्रीमन् नारायण ॥

२५ अप्रैल सन् १६०३ ई०
(समय ६ बजे सायं)

श्रीयुत् प्रधान आर्य समाज हैदराबाद महाशय केशवराव जी! मेरे नारायण स्मरण के पश्चात् आपको सम्यग विदित हो कि आपका पांच नम्बरी पत्र कल तारीख २४ अप्रैल का लिखा हुआ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमान अच्युताश्रम स्वामी जी महाराज के नाम पर आया हुआ, स्वामी जी महाराज के द्वारा कल छ: बजे के करीब आपके (अच्युत स्वामी) समक्ष मुझे मिला—मैं आपसे निवेदन करता हूं कि—जब पत्र प्रभृति व्यवहार का भार स्वामी जी ने मेरे ऊपर रक्खा है कि जिसको आप अच्छी तरह जानते हैं और मेरे साथ व्यवहार आपका चल रहा है मेरे द्वारा शास्त्रार्थ की तिथि का पत्र आपके पास मौजूद है फिर न मालूम आपने व्यवहार का पत्र मेरे पास न भेजकर स्वामी जी महाराज को क्यों तकलीफ दी? अस्तु॥ इस पांच नम्बर के पत्र में आपने लिखा है कि शंकर हरिहर तीर्थ ने तीन दिन के बाद शास्त्रार्थ के नियमों में परिवर्तन करके निज कृत नियम भेजे हैं जिनमें अन्य वार्ता तो कोई विवाद की नहीं है परन्तु जो अनावश्यक उपोद्घात लिखा है उससे भी हम लोगों को कुछ प्रयोजन नहीं है। महाशय! आप वकील हैं मैं एक साधारण आपका सन्यासी हूं मैं आपके इस लेख से सन्तुष्ट हुआ हूं कि "**अन्य वार्ता तो कोई विवाद की नहीं है**' तथा उपोद्घात का चाहे आपको कोई प्रयोजन न हो परन्तु हमको तो है। और कल आपकी तरफ से आये व्याख्यान में व्याख्यानदाता महोदय को भी उपोद्घात की जरूरत पड़ी थी, और शायद आगे भी पड़ेगी। शायद आपको स्मरण होगा कि मैंने आप से ही पूछा था कि आप कहिये विवाद का मूल क्या है? मैं नियमों के आदि में लिखूंगा परमेश्वर जाने यह बात आप को क्यों भूल गयी आप प्लीडर हैं और तीन दिन के बाद नियमों में परिवर्तन कर निज कृत नियम भेजे हैं; यह आपका लेख कैसा ही क्यों न हो किन्तु भाई साहेब यह एक इस वक्त विवादास्पद महान कार्य है इसके बाबत जब तक नियम वगैरा रीति से ठीक न कर लिये जावें उनके बिना यह कार्य समझदार लोगों को आदरणीय न होगा। आपने लिखा कि तटस्थ-मध्यस्थ मिलना बहुत कठिन है, लेकिन बहुत कठिन बतला कर भी श्रीमान पंडित गंगाप्रसाद एम० ए०, मुंसिफ विष्णुलाल एम० ए० जी को मध्यस्थ मान

कर लेख भेजने को लिखा है। हम उन लोगों से परिचित हैं, लेकिन श्रीमान निज़ाम महोदय के प्रधान मन्त्री महाराजा कृष्णप्रसाद बहादुर वा श्रीमान राजाराम राय श्रीमान शिवराजा बहादुर श्रीमान राजा मुरलीमनोहर बहादुर श्रीमान रावरम्भा श्रीमान राजा बहादुर ज्ञान गिरी नृसिंह गिरि जी श्रीमान सेठ मोतीलाल जी, अंग्रेजी सरकार के मान्य परम पात्र उत्तम न्यायी जोशी साहेब वा डाक्टर अघोरनाथ जी षटकोपाचार्य जी एम० ए० वा राजा बहादुर विश्वेश्वर गिरि जी बैरिस्टर रंगयियानायडू वगैरा साहबों से आप अपरिचित नहीं हैं ये सब साहब अनेक अंशों में भद्र और प्रतिष्ठित पुरुष हैं, कदाचित आप पक्षपात वा टालाटूली कर जावें यह दूसरी बात है। इन मान्यवर पुरुषों में से चुनिये, और प्रयत्न कीजिये। और उन्हों से हां भरा कर मध्यस्थ बना अपने और हमारे विद्वानों का परिश्रम दूर कीजिये, यह आपका कर्त्तव्य है, झगड़े के मूल पत्र व्यवहारादि में कारण आप ही हैं। आपने लिखा कि मध्यस्थ की आवश्यकता लिखना शास्त्रार्थ में विघ्नकारक होगी, सो उल्टी बात है। बल्कि मध्यस्थ की आवश्यकता विघ्न निवारक होगी, बिना मध्यस्थ के आर्य समाज और दूसरे लोग झगड़ा कर बड़े घर (कारागार) की हवा खा चुके हैं, यदि आपके यहां समाचार पत्रों की नत्थी पड़ी हो तो उठाकर देख लीजिये, और टीहरी के उदाहरण देना आपको आपकी पक्ष पूर्ति का साधन होगा, हमको दृष्टान्तों की जरूरत नहीं है। हमको आपकी बात-चीत पर आश्चर्य होता है कि जब विषय का समझने वाला कोई पुरुष निर्णय करने को समर्थ नहीं है, फिर सर्व साधारण स्वयं समझ लेवेंगे यह वदतोव्याघात है। आपने स्वामी जी को लिखा कि—आपने भी मध्यस्थ न होने का पहिले स्वीकार कर लिया था, यह आपकी वकालत है, मेरे साथ भी आप वकालत कर चुके हैं, स्वामी जी ने आपके समक्ष कह दिया था कि मध्यस्थ का होना हमको स्वीकार था, और है तथा रहेगा, मध्यस्थ बिना योग्य पुरुषों के नियमित व्यवहार निरर्थक होते हैं, आपको स्मरण रखना चाहिये, आपकी हस्ताक्षर वगैरा की बात हम अवश्य मान लेवेंगे। किन्तु मध्यस्थ की व्यवस्था उसमें कारण है, नहीं तो बालको जैसा यह शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ न होकर मात्र तमाशा हो जावेगा, इससे दोनों पक्षों की क्षति होगी शास्त्रार्थ का अनिच्छु वही होगा जो व्यवस्था की सामग्री जोड़ने में आना-कानी करता हो, शास्त्रार्थ संस्कृत में हो वा भाषा में, हमको अभिष्ट नहीं है, हम अपने लेख में लिख चुके हैं आप उठाकर फिर भी एक दफ़ा देख लीजिये। प्रमाणों के बाबत भी लिख चुके हैं, पिष्टपेषण करना न चाहिये आपको और भी जो कुछ विचार करना हो कर लीजिये, जिससे आपके विद्वानों का आना सफल हो आपके पत्र का उत्तर क्रमभंग पूर्वक समालोचना कर लिखा, सो मुझे इष्ट था, माफ़ कीजियेगा।

"शंकर हरिहर तीर्थ"

इस उपरोक्त पत्र का उत्तर समाज की ओर से उसी रात्रि समय साढ़े ग्यारह बजे ही निम्न प्रकार दे दिया गया—

॥ ओ३म् ॥

श्री शंकर हरिहर तीर्थ स्वामी जी नमस्ते ! कल के पत्र का उत्तर आज साढ़े आठ बजे सांय आया, आप इतनी देर से उत्तर देते हैं, यह भी तो शास्त्रार्थ का समय व्यर्थ खोने की बात है वा नहीं ? आपने नियम देते समय स्वयं कहा था कि अच्युत स्वामी जी के समक्ष जाकर स्थिर कर लें, उसी अभिप्राय से हमने जो उनके नाम उत्तर भेज दिया, जो पत्र पढ़ने में उन्हें तकलीफ हुई सो वे क्षमा करें, तीन दिन में उत्तर देना शास्त्रार्थ को टालना नहीं तो क्या है ? मध्यस्थ के विषय में श्रीमान स्वामी अच्युताश्रम जी का कथन तो आज ये था कि मध्यस्थ न्याय-शास्त्रानुसार निग्रहादि का जानने वाला विद्वान हो सकता है। और आप उनके प्रतिनिधि होकर भी ऐसे पुरुषों के नाम क्यों लिखते हैं जो कि सांसारिक प्रतिष्ठा में परम उच्च सम्भावित हैं, तथापि (१) गोतमीय न्याय शास्त्रादि

के मर्मज्ञ होने का स्वयं भी दावा करें ऐसी आशा नहीं, (२) आपके सनातन धर्म कहलाने वाले मत के अनुयायी होने से एक पक्ष के अन्तर्गत हैं, (३) एक पुरुष वेद को अपौरुषेय धर्म ग्रन्थ ही नहीं मानते हैं किन्तु आर्य समाज से भी बहुत दूरस्थ ब्रह्मसमाजी हैं, और वेद को जैसा आप वा हम मानते हैं, वे नहीं मानते, मध्यस्थ विघ्ननिवारक इतने से भी हो सकता है कि वह प्रबन्धकर्त्ता मात्र हो, फैसला देने वाला न हो, सर्व साधारण पढ़ने वाले अपने लिए निर्णय करने को पर्याप्त हैं; किन्तु एक पुरुष अनेकों सहस्रों मनुष्यों के लिए निर्णय करने को प्रर्याप्त हो, ऐसा होना कठिन है, श्री अच्युताश्रम स्वामी जी के कथनानुसार वादी वा प्रतिवादी को मध्यस्थ की परीक्षा का अधिकार देना क्या युक्त है ? सम्भव है कि एक दूसरे को अल्पज्ञ बतावें और विवाद एक नया खड़ा हो जावे। आप समाचार पत्रों से क्या किन्तु कहीं भी एक भी दृष्टान्त इस बात का नहीं दे सकते कि किसी शास्त्रार्थ में मध्यस्थ न होने से कहां कौन बड़े घर (कारागार) की हवा खा चुका है। टिहरी नरेश से माननीय राजा साहब का दृष्टान्त यदि हमारा पक्ष पोषक है तो क्या आपके लिखाये नाम आपके पक्ष पोषक होंगे, यह कहना अनुचित होगा ? मध्यस्थ के बिना *महाराज टिहरी नरेश के समक्ष हुए शास्त्रार्थ की रीति पर होने वाले शास्त्रार्थ को बालक्रीड़ा बताना आपका साहस* है। प्रमाणों की बाबत आपका लिखना हमारे सम्मत नहीं, आपको हमारा लेख सम्मत न हो, तब उसका पुनर्लेख पिष्टपेषण क्यों हुआ ? *अब कहिये कि हमारे २२-४-०३ को भेजे सात नियमों में आपको क्या और क्यों अस्वीकृत* हैं ? वा सब स्वीकृत हैं वा नहीं ? पत्र व्यवहार झगड़े का मूल नहीं, किन्तु झगड़ा न हो इसके लिए बन्धन है, देखिये कृपया शीघ्र उत्तर दें।

"केशवराव एडवोकेट"

तारीख = २५-४-१९०३
समय = ११॥ बजे

श्री शंकर हरिहर जी तीर्थ द्वारा उपरोक्त पत्र का निम्न उत्तर आया—

१—श्रीयुत प्रधान आर्य समाज हैदराबाद ! महाशय केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आपको विदित हो कि कल तारीख २५ अप्रैल की रात्रि को साढ़े ग्यारह बजे श्री भवानी शंकर जी के द्वारा पत्र एक नग आपका मिला, जिसकी समालोचना करके निवेदन करता हूं। २—महाशय आपने लिखा कि आज साढ़े आठ बजे रात्रि को उत्तर आया, आप इतनी देर में उत्तर देते हैं, यह भी तो शास्त्रार्थ का समय व्यर्थ खोने की बात है वा नहीं ? ३—केशव जी आपको सोचना चाहिये कि मैं प्रातः काल से लेकर १२ बजे तक तो अपने अनुष्ठान में लगा रहता हूं। बाद इसके भोजन आदि में समय चला जाता है, दो-ढाई बजे के बाद आपकी तरफ से लगाई हुई झगड़े की पंचायत की लिखा-पढ़ी के उत्तर वगैरा देने में प्रवृत्त होता हूं। और यदि आपका शास्त्रार्थ और शास्त्रार्थ का समय इतना नाजुक है कि १२ वा १४ घण्टों में व्यर्थ चला वा बहा जाता है तो आपने इतना साहस क्यों किया ? जब आप एक कट्टर देश हितैषी हैं, आपने अपना तन-मन-धन अपने सिद्धान्त के अनुसार देशोन्नति के लिए अर्पण किया है फिर ना मालूम आप क्यों घबराते हैं ? और एक गरीब सन्यासी के ऊपर जबर्दस्ती कलंक लगा कर निकल जाना चाहते हैं, भाई यदि शास्त्रार्थ का पूरा-२ दावा रखते हों तो घबरायें नहीं, शान्ति से कार्य कीजिये कोई किसी का ताबेदार नहीं है, लिखा-पढ़ी रीति से हुआ करती है, हम लोग तो शान्ति से कार्य करना अच्छा समझते हैं, आपको कदाचित इतनी जल्दी थी तो काम सोच-विचार के साथ करना था, काम छेड़कर पुनः व्याकुल होना आपको उचित नहीं है, ऐसे धर्म कार्य में शरीरपात पर्यन्त वा जन्मान्तर का भी दावा रखना सज्जन देश हितैषियों का प्रधान कर्तव्य है, और इसीलिए शायद समाज ने आपको प्रधान बनाया है। (४) स्वामी जी महाराज को तकलीफ़ देने की बाबत आपने स्वामी जी से क्षमा प्रार्थना की, इसलिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। (५) आपने लिखा कि तीन दिन के बाद उत्तर देना शास्त्रार्थ को टालना नहीं तो और क्या है ? इसके बाबत इस पत्र में लिख चुका हूं कि "शास्त्रार्थ

चला वा बहा जाता है क्या ?" सौ देख लो एक बात को सौ जगह लिखने का नाम ही पिष्टपेषण है। मैंने स्वामी जी का प्रतिनिधि होकर जिन लोगों के नाम लिखे थे, वे आपकी आज्ञा के अनुसार लिखे थे, क्योंकि आपने लिखा था कि श्रीयुत् पण्डित गंगाप्रसाद जी वा पण्डित विष्णु लाल जी योग्य हैं, उन्हीं के पास दोनों पक्षों का लेख भेज दिया जावे वा आप किन्हीं को बतलावें, महाशय इसलिए मैंने यहां के दीवान, विद्वान श्रीमान महाराजा कृष्ण प्रसाद बहादुर प्रभृति के नाम लिखे थे, मैंने बुरा क्या किया? आप एक अच्छे वकील होकर विद्वान और सम्भावित लोगों को केवल सांसारिक प्रतिष्ठा में उच्च मानते हैं, अवश्य यह आपका साहस है, और दर्शन ग्रन्थों को तो वे सम्भावित नायब हुजूर महोदय वगैरा जानते ही होंगे, लेकिन थियोसाफिसट् लोग षट्दर्शन ग्रंथों को अच्छी तरह जानते हैं थियोसाफिकल सोसायटी में कदाचित् आप गए होंगें तो अवश्यमेव आपको मालूम होगा कि—दर्शन ग्रन्थ जानने वाले कितने लोग मौजूद हैं, आपके विद्वान लोग चाहे कदाचित फैंसले करने वाले मध्यस्थ के करने से नहीं भी घबराते होंगे, लेकिन आपको अवश्य घबराहट है, आपको अपनी घबराहट की शान्ति के उपाय दो-तीन मिल भी जाते हैं, एक तो समग्र सर्वदा किसी ग्रन्थ को नहीं मानना । दूसरा मध्यस्थ किसी के भी पक्ष का है यह कह देना अथवा किसी ने कुछ योग्य प्रकरण चला था, उस पर कुछ भी कह देना और किसी की न मानना, इसका भी आप कुछ उत्तर दे देवेंगे, परन्तु भाई साहब लिखा-पढ़ी किञ्चित सोच विचार कर कीजिए, लेखों की नत्थी बन रही है, समय विलक्षण है, धर्म की रक्षा समय देखकर योग्यता से करनी अच्छी है। (६) जिस किसी अन्य मतस्थ को हम लोग मध्यस्थ पंञ्च बनावेंगे, वह पुरुष अपने मत की कथा हमारे फैंसले में मिला देवेगा यह एक आश्चर्य की कथा है, क्या कोई मुसलमान किसी धनी पुरुष के घरु झगड़े को तै करने में अपने मत की बात मिलाता है ? जो मिलाने वाला है वह पञ्च नहीं और हजारों पंचायते वेद के अनेक फिरकों वाले दूसरों की पंचायते किया करते हैं। (७) एक ही मजिस्ट्रेट वा योग्य राजा महाराजा किसी भी विद्या का विद्वान व्यवहार प्रवीण किसी भी जुबान में अनुवादित ग्रंथों का क्या फैंसला नहीं करता है ? (८) जिसके प्रमाण आदि मजबूत होते हैं अवश्यमेव परीक्षा अधिकार दे सकता है। यह बात दोनों पक्षों को समान है, मध्यस्थ परीक्षा में डर क्या है ? (९) जीव तो अल्पज्ञ है ऐसा आपका भी शायद सिद्धांत है, और बिना कारण किसी को अल्पज्ञ नहीं कहना चाहिए, किन्तु कारण बता देना उचित है। (१०) मत मतान्तर के झगड़ों में लोगों को सजा हुई है, यह बात प्रसिद्ध है और आर्य समाज व आलाराम सागर की बात को स्मरण कीजिए। (११) मैंने टिहरी महाराज की बात पर वा शास्त्रार्थ बालकों के सा लेख नहीं लिखा है, किन्तु मेरी नाकिस बुद्धि के अनुसार यहां शास्त्रार्थ में गड़बड़ हो जाने से ऐसा फल होगा, ऐसा मेरा अभिप्रायः है आप "**वटस्य शाखापिप्पले**" मत कीजिए, इसके सिवाय आप मुझे बुरा-भला जो कहें अधिकार है। आपको मैं महाराष्ट्र मण्डली के अनुसार सद् ग्रहस्थ मानता हूं। इसलिए आपके प्रभृति वाक्य सहन करता हूं। यह मेरा कर्त्तव्य है, परमेश्वर आपका भला करे। (१२) प्रमाणों को आप माने वा न माने आपको अपने कर्त्तव्य पर पूरा-पूरा अधिकार है, लेकिन जो बात आप अपने लेख में लिख चुके है कि—"**अन्य वार्ता तो कोई विवाद की नहीं है**" इसका अर्थ तो जरूर ही कुछ करना होगा (१३) आपके कितने उचित नियम हमने अपने नियमों में मान लिये हैं, उनको हमारे नियमों पर सम्यक् दृष्टि देकर आप देख लीलिए। (१४) आपसे पूछता हूं कि एक आदमी ने प्रतिज्ञा की कि शास्त्रों में पशुवध नहीं है, अब हेतु बताना चाहिए वा नहीं ? अगर स्वयं हेतु न बतावे तो दूसरे के पूछने पर तो बताना होगा कि नहीं ? अथवा आक्षेप कर्त्ता पूछे कि याग (यज्ञ) में पशुवध करना अनुचित है, इसमें कोई भी प्रमाण नहीं है, कदाचित प्रमाण है तो दो और उसने प्रमाण दिया और आक्षेप कर्त्ता ने फिर आक्षेप किया, उसने फिर भी मण्डन किया अब समझ लीजिये उपसंहार किस की तरफ रहा, कुछ अनुचित कहा हो तो माफ कीजियेगा।

"शंकर हरिहर तीर्थ"

आर्य समाज की ओर से उपरोक्त पत्र का उत्तर—

श्रीयुत् शंकर हरिहर स्वामी जी नमस्ते । यह तीसरा पत्र भी देर से आया, स्वामी जी महाराज ! इस पत्र के तेरहवें वाक्य में जो हमारे उचित नियमों का स्वीकार किया है, हम इसका आपको धन्यवाद देते हैं, कृपया यह स्पष्ट और बतला दीजिए कि सात नियमों में से किस-किस संख्या के नियम को आपने उचित समझकर स्वीकार किया है । आपने जो पांचवें वाक्य में हमारी शान्ति के चार उपाय बतलाये हैं उनमें से दो उपाय तो आप भी अपनी शांति के मानते हैं । (१) वेदातिरिक्त किसी समग्र ग्रन्थ को न मानना हम यह बता सकते हैं कि स्वामी शंकराचार्य ने भी वेदातिरिक्त ग्रंथों को समग्र नहीं माना, सर्वदा किसी ग्रंथ को न मानना भी आप पर ही घटता है क्योंकि "अश्वालम्भ गवालम्भं" इत्यादि समयानुकूल ग्रंथों की मंसूखी बहाली आप ही करते हैं, इसलिए यह परमोपाय आप ही की शान्ति का है, (२) मध्यस्थ किसी पक्ष का नहीं यह जो आपने हमारी शान्ति का उपाय बतलाया है इससे मालूम होता है कि आपकी शान्ति एक पक्षस्थ मध्यस्थ से भी हो जाती है । यदि इतनी उदारता हैं तो झगड़ा क्या ? आप हमारे मध्यस्थ का ही स्वीकार कर लीजिए, अन्य दो जो आपने शान्ति के उपाय बतलाये कि प्रकरण चलाते-चलाते कुछ कह देना और किसी की न मानना, हमारी शान्ति के उपाय तो ये नहीं, प्रत्युत हमको इससे भय है । इसलिए हमने लेखबद्ध शास्त्रार्थ करने का नियम लिखा है, जिससे उक्त दोष नहीं हो सकता, छटे वाक्य में जो आपने यह लिखा है कि क्या कोई मुसलमान किसी घरु झगड़े को तै करने में अपने मत की बात मिला देता है ? यह विषम दृष्टान्त है । क्योंकि वह घरु झगड़े में मत की बात नहीं मिलाता, परन्तु जब मत का झगड़ा होता है तो मत की बात मिलाने का सन्देह अवश्य हुआ करता है । बहुत क्या ! आप जो अपनी शान्ति के इसी उपाय पर जमे हुए हैं कि अपने मत का मध्यस्थ नियत करके शास्त्रार्थ में जय का सर्टीफिकेट ले लें, यह कदापि न होगा, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि आप इस सहारे को छोड़कर उदारता से काम लें जिसमे कि पक्षपात न पाया जावे और मुन्तज़िम के तरीके को स्वीकार करें, इसको ध्यान में रखें कि मुन्तज़िम भी वही होगा जो उभय पक्ष से स्वीकार किया जावेगा । इसलिए मुन्तज़िम के तरीकों को स्वीकार करके कृपया पृथक कागज पर स्पष्ट लिख भेजें कि हमारे सात नियमों में से अमुक-अमुक नियम इस प्रकार स्वीकृत हैं । शीघ्रता करना इसलिए आवश्यक है कि आप तो अपने स्थान पर बैठे हैं, और बहुत काल तक बैठे रह सकते है । और आप सन्यासी होने से आपके किसी कार्य की हानि नहीं, किन्तु हमारे विद्वान गृहस्थ है और अनेक कार्य छोड़कर आए हुए हैं, जो बहुत काल तक व्यर्थ नहीं ठहर सकेंगे, इस बात को आप भी जान सकते हैं ।" अन्य वाक्यों में जो आपने कट्टर आदि उपालम्भ दिए हैं उनका उत्तर हम नहीं देना चाहते ।

निवेदक—"केशवराव"

(२७-४-१९०३ समय १ बजे दिन)

पौराणिकों की ओर से उपरोक्त पत्र का निम्न उत्तर आया—

श्री युत् प्रधान आर्य समाज, हैदराबाद ! महाशय सज्जन भाई केशवराव जी मेरे नारायण स्मरण के बाद आपको मालूम होवे कि आपका ६ नम्बरी पत्र मुझे मिला, पढ़कर सन्तोष हुआ । भाई साहेब आपने अवश्य कुछ न कुछ उत्तर के नाम से लिख दिया । लिखा कीजिए, आपको अपने लेख वगैरा की रचना का अधिकार है । आपने दो साधनों को अंगीकार किया यह आपकी सज्जनता है । बाकी शंकराचार्य जी महाराज ने वैदिक स्मृति सिद्धांत अनुयायी ग्रंथों की सर्वथा-सर्वदा निर्भ्रम माना है, और उन्हों की मर्यादा से व्यवस्था की है । और जिस वाक्य को आपने उद्धृत कर समाधान करना चाहा है वह प्रचलित आपके पक्ष का बाधक है । कदाचित् आप स्वीकार कर लेवें कि

"कलौपञ्च विवर्जयेत्" तो विवाद ही क्या है ? इस सामान्य वाक्य और "यावद्वर्ण विभागोस्ति" इस विशेष वाक्य का विचार न करना ही गपड़चौथ का कारण है। यह बात हम जानते हैं कि अर्थपशाद्विद्वानों को भी एक नवीन मार्ग का आश्रय लेना पड़ता है, और लोक-परलोक की भीति को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, कि सज्जन अपने पुरुषार्थ को तोलकर खर्च किया करते हैं, आप मुझ पर जो चाहें सो घटाते रहें, परन्तु घटाना उसी का नाम है, जो बात घट सके, कलम-दवात-स्याही-काग़ज दोनों की कमी नहीं है, हम तो दूषण-भूषण उसी को समझते हैं, जिसको लोग अंगुलि न उठा सकें, हम अवश्यमेव शान्त हैं, आप झगड़ा फैलाकर अशान्ति करने को उपस्थित हैं, आपको अच्छी तरह सोचना चाहिए। दूसरी बात के लिए आप ही उदारता कीजिए, परोपदेशे पण्डित्यं और बातूनी जमा खर्च से लाभ ही क्या है ? अवश्य आपको भय है, मगर भय होकर भी भय नहीं है, यह एक विचित्र गाथा है। आप लेखबद्ध शास्त्रार्थ की पुकार का ही सार्टीफिकेट ले लीजिये मगर रीति से सार्टीफिकेट लेकर आप अपने पक्ष को कब रवाने करने में समर्थ होंगे ? हमको असम्भव मान होता है, और आपको भी केवल गल गर्जना करनी शायद अच्छी न जंचती होगी। हम मध्यस्थ का होना अच्छा समझते हैं, लेकिन आपका सार्टिफिकेट कैसे होगा ? आपने तो सार्टिफिकेट मध्यस्थ के बिना माना है। आपने बीड़ा उठाया है, मैं बीड़ा उठाने वाला नहीं हूं, आप अनेक अंशों में स्वार्थवशात् निर्भय हैं, मेरा कोई स्थान नहीं है, आपकी लगाई हुई पंचायत से मुझे यहां आना पड़ा है, मुझको इस झगड़े से छुड़ाइये, मैं आपको आशीर्वाद दूंगा। सहारा आप ही ले रहे हैं, जो कि बिना मजिस्ट्रेट के फैसला करना और करवाना चाहते हैं, आप ग्रहस्थ हैं, आपके पास सब कुछ है, आप वकील हैं, सज्जन हैं, उदारता इस वक्त आपकी ओर ताक रही है। आप अवश्यमेव ही उदारता दिखाइए। मैं मेरे (अपने) नियमों पर जमा हुआ हूं। मगर आप अपने नियमों को छोड़कर शायद निर्भय हुये हैं, आपने मध्यस्थ स्वीकार कर लिया है, नियमों का नाम ही शांति कारक है। मेरे नियम देखकर अपने नियमों से मिलान कर लीजिए, उससे आपको मालूम हो जावेगा। क्या कोई कहेगा कि यहां मध्व और वैष्णवों में विवाद हुआ था ? और तीसरे मध्यस्थ वैदिक स्मार्त ने अपना मत उसमें मिला दिया था, यह यहीं हैदराबाद की बात है लोगों से पूछ लीजिये, अवश्य आपके विद्वान ग्रहस्थ हैं, मगर अच्छी तरह देखा जावे तो आप ही ने सबको तकलीफ़ दी है, आपने जिनको उपालम्भ समझकर उत्तर नहीं दिये हैं, यह आपकी योग्यता है। अब भी गड़बड़ छोड़कर शान्ति का उपाय सोचिये, हम लोगों को झगड़े से बड़ा दुख है।

दिनांक—२७-४-०३ ई० "शंकर हरिहर तीर्थ"

नोटः—जब किसी प्रकार कुछ स्थिरता न पाई गई तो आर्य समाज ने नियम और पत्र "**अन्तिम निवेदन**" के साथ इस प्रकार भेजा कि—

॥ ओ३म् ॥

[अन्तिम-निवेदन]

२८-४-१९०३ ई०

स्वामी जी नमस्ते ! आज जो बात स्वामी अच्युताश्रम जी ने बाबु कुमार बहादुर जी से कही है कि सभापति स्वयं नियम बना लेगा, उन्हीं को दोनों पक्ष मान लेंगे, यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ, हम नहीं जानते कि तीन दिन से जुबानी बात-चीत में भी आपकी राय कभी कुछ और कभी कुछ क्यों बदलती रहती है ? (२) कुछ नियम हमने-आपने बैठकर बनाये, इस बात से वो सब निष्फल हो गए। (३) पत्र द्वारा जो बात-चीत नियमों की

चल रही थी उसे आपने जुबानी बात-चीत से निष्फल कर दिया था। (४) यदि इसी प्रकार अपने बचाव के लिए क्षण-क्षण में आपकी राय बदलती रहेगी तो कुछ निर्णय न होगा, इसलिए हम आज अब तक के पत्र व्यवहार और जुबानी बातचीत से जो सारांश निकला है तदनुसार नियमावली भेजते हैं, (५) इन नियमों पर आज रात्रि के दस बजे तक आप स्वामी अच्युताश्रम जी के हस्ताक्षर कराकर हमारे पास भेज दें, हम अपने पण्डित के हस्ताक्षर कराकर भेजते हैं। (६) यदि आप श्री पण्डित आर्य मुनि जी से शास्त्रार्थ न करना चाहें, और पण्डित तुलसीराम स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का आग्रह करें तो हमको यह भी मन्जूर है। दोनों में से जिसे आप अपने लिए सुगमता समझें, करें, हमें कुछ विवाद नहीं; किन्तु पण्डित तुलसीराम जी के साथ शास्त्रार्थ करने में केवल एक नियम यह अधिक होगा कि-"दोनों वादी-प्रतिवादी अपने-अपने कथन को उसी नियत समय में संस्कृत में लिखकर हस्ताक्षर करके, बोल के, देश भाषा में अनुवाद करके वा कराके एक दूसरे को देते जायेंगे"। (७) हमारे विचार में तो आपको उक्त प्रकार के शास्त्रार्थ में कोई ननुनच नहीं होना चाहिए, क्योंकि आपके विचार में आपके स्वामी जी में ऐसा बल है कि उनको किसी प्रकार और किसी पण्डित जी से भी शास्त्रार्थ करने में भय नहीं है, और हम लोगों को तो स्वामी जी की विद्या की थाह इतने ही से मिल गई है कि उन्होंने गौतम सूत्र अ० आ० २ सूत्र १ में जो सिद्धांताऽविरुद्धः का यह अर्थ किया कि "**जिनका एक सिद्धांत हो**" इसलिए वाद कथा का होना गुरु शिष्य में ही पाया जाता है, अस्तु, यह प्रकरणवश लिखा गया। (८) सार यह है कि इन नियमों पर हस्ताक्षर दोनों पण्डितों के करा लें, और फिर इन नियमों पर चलाने वाला सभापति चुनकर कल साढ़े चार बजे सायं से शास्त्रार्थ आरम्भ कर दें, नहीं तो इसके पश्चात हम जुबानी वा पत्र द्वारा कोई बात-चीत न करेंगे।

"**केशवराव शर्मा एडवोकेट**"
प्रधान-आर्य समाज-सुलतान बाजार, हैदराबाद (दक्षिण)

इस उपरोक्त पत्र के साथ निम्नस्थ नियम पत्र भी भेजा गया—

॥ ओ३म् ॥

"शास्त्रार्थ के नियम"

(१) इस शास्त्रार्थ में अच्युताश्रम स्वामी जी सनातन धर्म की ओर से तथा पण्डित आर्य मुनि जी आर्य समाज की ओर से वक्ता होंगे। (२) विषय "यज्ञ में पशुवध वेद विहित है वा नहीं ?" होगा जिसमें सनातन धर्मी को विधि और आर्य समाज को निषेध उपपन्न करना होगा, परन्तु यह निर्णय करने को कि जिस वेद से पशुवध पर विचार होगा वह वेद मन्त्र ब्राह्मणात्मक है वा केवल मन्त्रात्मक। प्रथम इसी अवान्तर विषय पर शास्त्रार्थ होकर प्रकृत पशुवध विषय पर शास्त्रार्थ होगा। (३) दोनों ओर के वक्ता अपने-अपने हस्ताक्षर करके ‥को सभापति स्वीकार करेंगे, सभापति इन नियमों से किसी पक्ष को उलांघने नहीं देगा, उसको जय-पराजय के निर्णय देने का अधिकार न होगा, (४) शास्त्रार्थ संस्कृत भाषण से होगा, और उसका देश भाषा में अनुवाद सर्वसाधारण को समझाने के लिये साथ-साथ ही वक्ता स्वयं करता जायेगा, वा अपने पक्ष के अन्य पण्डित से कराता जायेगा। (५) शास्त्रार्थ में प्रथम आर्य पण्डित उपक्रम १५ मिनट तक करेगा, फिर २०-२० मिनट बराबर उत्तर-प्रत्युत्तर चलेगा, जब तक कि शाम के आठ न बज जावें, शास्त्रार्थ ठीक साढ़े चार बजे से आठ बजे शाम तक हुआ करेगा, जब प्रकृत पशुवध विषय पर पांच-पांच बार, उत्तर-प्रत्युत्तर हो चुकेंगे तब उस विषय का शास्त्रार्थ बन्द कर दिया जायेगा। (६) कोई पुरुष शोर मचावे वा जय बोले वा उच्च स्वर से हंसेगा तो सभापति उसको रोक देंगे, फिर भी ऐसा करे तो सभा से बाहर कर देंगे, (७) एक वक्ता के नियत समय के बीच में उसका वादी वा प्रतिवादी वक्ता बोलेगा वा कटु शब्द कहेगा तो वह शास्त्रार्थ

के अयोग्य समझा जायेगा, अर्थात् परास्त समझा जायेगा। (८) वादी-प्रतिवादी दोनों को बैठने और आसनादि की प्रतिष्ठा समान दी जायेगी। (९) कोई वादी वा प्रतिवादी किसी को सम्बोधन करके अपने वर्णन में शहादत (साक्ष्य) नहीं ले सकेगा, लेगा तो रोका जावेगा। (१०) ब्राह्मणादि के वेदत्व खंडन वा मण्डन में उनके असल मज़मून में परस्पर विरोधादि हेतु काम में लाये जायेंगे। (११) इन नियमों की तीन कापी की जायेगी जिनमें से हर एक पर वादी-प्रतिवादी के हस्ताक्षर होंगे, एक कापी सभापति को तथा एक-एक कापी वादी-प्रतिवादी को दी जावेगी। सभापति चाहे तो उर्दू तर्जुमा करके नियमों की अपनी कापी पर वादी-प्रतिवादी के हस्ताक्षर करा लेगा। (१२) शास्त्रार्थ की सभा में कितने-कितने टिकट दोनों पक्ष वालों को दिये जावें, जिससे उन टिकटों द्वारा सभ्य लोग बुलाये जावें, यह विषय पुलिस के आधीन रखा जावे, जितने-जितने टिकट पुलिस मुनासिब समझे, उतने-उतने दोनों पक्ष वालों को इशू (Issue) करें।

हस्ताक्षर—"आर्य मुनि"

इस उपरोक्त पत्र का उत्तर सनातन धर्म की ओर से अगले दिन निम्न प्रकार आया—

॥ श्रीराम ॥

सनातनधर्मसमाजार्यसमाज योर्योयम्विवाद उत्पन्नस्सचतथैववरीर्वात्ति तन्निवृत्यर्थउदयुक्ता भवन्तस्तच्छान्त-येऽसमर्थाः वयन्तथैव अतोऽवश्यंश्चस्सायं तने सभा आरब्धव्या तत्रैव सर्वोपिनियमो भविता अतस्सभाध्यक्षो, नियम नीयस्स एव सर्वंनियम यति एतदन्यो विचारोनालोचनीयः ॥ मैत्रेणैवविचारः कर्तव्य इति शिवम् ॥

[वैशाख शुक्ला २ सम्बत १९६०] **"शंकर हरिहर तीर्थ"**

नोट—इस पत्र में हमारे भेजे नियमों का कोई उत्तर नहीं केवल यह आशय है कि कल सभा करके नियम स्थिर होंगे। अस्तु! इसके पश्चात नीचे लिखा विज्ञापन सनातन धर्म के पक्ष से प्रकाशित होकर २९-४-०३ ई० को बांटा गया, उन्होंने मन में समझा होगा कि कदाचित् इस मनमानी सभा में समाजी लोग न आवें तो मुफ्त में जयकार बोलकर खड़े हो जाने से काम बन जायेगा, सो न बना, विज्ञापन यह था—

सनातनियों की ओर से विज्ञापन—

तारीख २९ अप्रैल १९०३ ई०

श्री सनातन धर्मावलम्बी द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अर्थात् श्री शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, श्री बल्लभाचार्य, श्री मध्वाचार्य मतस्थ पूज्य विद्वान वर्णाश्रमी महोदयों की चरण सेवा में प्रार्थना है कि आर्य समाजी लोगों ने यज्ञादि के ऊपर जो आक्षेप किया है उसका नियमादिक पूर्वक शास्त्रार्थ का विचार कल तारीख ३० अप्रैल सन् १९०३ ई० रोज (दिन) गुरुवार को चार बजे से श्रीमान राजा बहादुर ज्ञानगिर नरसिंह गिर जी की बंगाल बैंक के सामने वाली बड़ी कोठी चादर घाट में होगा, इसलिए प्रार्थना है कि आप लोग कृपा करके नियत समय पर पधारियेगा।

"रामगोपाल मालानी"

नोट: --इस उपरोक्त विज्ञापन का अनुवाद उर्दू व अंग्रेजी भाषा में भी छपा था, इसके अनुसार ही सनातन धर्म की ओर से सायंकाल तारीख ३०-४-०३ ई० को सभा हुई, जिसमें नीचे लिखा निमन्त्रणपत्र पण्डित तुलसीराम स्वामी जी के नाम आया जो निम्न प्रकार था—

॥ श्री ॥

तारीख ३० अप्रैल १६०३ ई०

श्री पण्डित तुलसीराम जी को राम गोपाल मालानी की तरफ से जय श्री ! हमारी तरफ से शास्त्रार्थ के लिए सब तैयारी है, कृपा करके पधारिए।

"रामगोपाल मालानी"

इस उपरोक्त पत्र के उत्तर में समाज की ओर से श्री राम गोपाल मालानी से पूछा गया कि—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमान सेठ रामगोपाल मालानी जी योग्य ! पत्र आया, विज्ञापन छपे में नियम तै करना आज का काम है, चिट्ठी का आशय शास्त्रार्थ करना है, आप साफ लिखें कि मेरे बुलाने का क्या प्रयोजन है ? हम शास्त्रार्थ करने को तो आये ही हैं, परन्तु नियमादि की स्थिरता बिना एक सभा में उभय पक्ष का संघट होगा, ठीक नहीं है। ऐसा ही पुलिस चाहती है। ३०-४-०३।

"तुलसीराम स्वामी"

श्री मालानी जी की तरफ से उपरोक्त पत्र का उत्तर निम्न प्रकार मिला—

॥ श्री ॥

श्रीयुत पण्डित तुलसीराम जी की तरफ से श्री राम गोपाल मालानी को आपकी चिट्ठी पहुंची जैसा हिन्दी भाषा के नोटिस में प्रसिद्ध किया गया है, पहले नियम ठहरा कर पश्चात इसी सभा में शास्त्रार्थ होगा, आप कृपा करके जल्दी पधारिये। ३०-४-०३। (माध्यम) **"अच्युतस्वामी"**

नोट—इस उपरोक्त पत्र को पाकर सभा में तुलसीराम स्वामीजी गये, और सेठ रामलाल जी को सभापतित्व स्वीकृत कराकर कहा कि अब तक जो ढील श्री स्वामी अच्युताश्रम जी की ओर से हुई और तारीख २४ के स्थान में ३० तारीख हो गई, सात दिन बीत गये, इस बात को स्पष्ट करने के लिये मैं अब तक का पत्र व्यवहार सुनाना चाहता हूं, स्वामी अच्युताश्रम जी बोले कि—"**अब तक जो पत्र व्यवहार हुआ उसे झूठा समझो। अब आगे आज जो स्थिर हो सो ठीक है**" अस्तु। पण्डित तुलसीराम स्वामी जी एक-एक करके नियम प्रस्तुत करते गए और उभय पक्ष की स्वीकृति से ये निम्न नियम स्थिर हुए—

॥ ओ३म् ॥

शास्त्रार्थ के नियम

१—इस शास्त्रार्थ में स्वामी अच्युताश्रम स्वामी जी सनातन धर्म की तरफ से तथा पण्डित आर्य मुनि जी आर्य समाज की तरफ़ से वक्ता होंगे। २—विषय "यज्ञ में पशुवध वेद विहित है वा नहीं" जिसमें सनातन धर्मी

को विधि और आर्य समाजी को निषेध उत्पन्न करना होगा । परन्तु यह निर्णय करने को कि जिस वेद से पशुवध पर विचार होगा, वह वेद मन्त्र ब्राह्मणात्मक है वा केवल मन्त्रात्मक है ? प्रथम इसी अवान्तर विषय पर शास्त्रार्थ होकर प्रकृत पशुवध विषय पर शास्त्रार्थ होगा ३—दोनों ओर के वक्ता अपने-२ हस्ताक्षर करके···जी को सभापति स्वीकार करेंगे सभापति इन नियमों से किसी पक्ष को उलांघने नहीं देगा उसको जय-पराजय के निर्णय देने का अधिकार न होगा । ४—शास्त्रार्थ संस्कृत भाषण में होगा, और उसका देश भाषा में अनुवाद सर्व साधारण को समझाने के लिए साथ ही वक्ता करते जायेंगे, वा अपने पक्ष के अन्य पण्डितों से कराते जायेंगे । ५—शास्त्रार्थ में प्रथम आर्य पण्डित उपक्रम करेगा पन्द्रह मिनट तक । फिर २०-२० मिनट बराबर उत्तर-प्रत्युत्तर चलेगा जब तक शाम के आठ न बज जावें, शास्त्रार्थ ठीक साढ़े चार बजे से ८ बजे शाम तक हुआ करेगा । जब पशुवध विषय पर चार दिन उत्तर-प्रत्युत्तर हो चुकेंगे तब उस विषय का शास्त्रार्थ बन्द कर दिया जावेगा । ६—कोई पुरुष शोर मचावे, जय बोले, ताली बजावे, वा ऊँचे स्वर से हंसेगा तो सभापति उसको रोक देगें, फिर भी ऐसा करें तो सभा से बाहर कर देगें । ७—एक वक्ता के नियत समय के बीच में उसका वादी व प्रतिवादी वक्ता बोले वा कटु शब्द कहेगा तो उसे सभापति रोक देगें । ८—वादी-प्रतिवादी दोनों को बैठने और आसनादि की प्रतिष्ठा समान दी जायेगी । ९—कोई वादी वा प्रतिवादी किसी को सम्बोधन करके अपने वर्णन में साक्ष्य नहीं ले सकेगा, लेगा तो रोका जायेगा । १०—इन नियमों की पांच कापी की जायेंगी जिनमें से हर एक पर वादी-प्रतिवादी के हस्ताक्षर होंगे, तथा उसकी प्रतियाँ १ वादी, १ प्रतिवादी, १ सभापति, १ सुपरिटेंडेन्ट पुलिस, १ मजिस्ट्रेट को भेजी जायेंगी, आज्ञा आने पर शास्त्रार्थ होगा, ११—विज्ञापन केशवराव जी वकील और सेठ राम गोपाल जी मालानी जी के हस्ताक्षर से छपेगें, मिति वैशाख शु० ३ गुरुवार १९६० सम्वत् ।।

हस्ताक्षर :—"अच्युत स्वामी" हस्ताक्षर :—"आर्य मुनि"

(संक्षिप्त अरबी शब्दों में)

नोट - ये उपरोक्त नियम स्थिर हो चुके थे कि करे-कराये काम पर पानी फेरने को स्वामी अच्युताश्रमजी कहने लगे कि हम हस्ताक्षर नहीं करेंगें, बहुत आग्रह किया, परन्तु अन्त में सभापति (जो उन्हीं की सनातन धर्म सभा के साथी थे) आदि मान्य पुरुषों के अनुरोध से हस्ताक्षर कर दिये, उस समय पुलिस के इन्सपेक्टर महाशय भी विद्यमान थे, उनकी इच्छानुसार उनको भी नियम पढ़कर सुनाए गये, उन्हीं से यह भी ज्ञात हुआ कि नियमों की कापी सुपरिटैन्डेन्ट पुलिस व मजिस्ट्रेट साहब को भी देनी चाहिये और उन्हीं की अनुमति से यह भी स्थिर हुआ कि स्वामी अच्युताश्रम जी की ओर से सेठ रामगोपाल मालानी और आर्य समाज की ओर से पण्डित केशवराव जी, प्रधान-आर्य समाज, मिल कर दरख्वास्त, मजिस्ट्रेट साहब की सेवा में करेंगे । जिससे पुलिस का समुचित प्रबन्ध रहे, सभापति के नाम की जगह यह स्थिर हुआ कि श्रीमान बख्शी रघुनाथ प्रसाद साहब जज हाईकोर्ट और वे न हों तो सेठ रामलाल जी जो, आज की सभा के सभापति हैं, शास्त्रार्थ सभा के सभापति नियत किये जायेंगे ।। बस इस समय से हम लोगों ने समझ लिया था कि कल तारीख १ को साढ़े चार बजे से शास्त्रार्थ आरम्भ हो जावेगा । तथा —मेरठ आदि को पण्डितों के अवकाशार्थ तार भेजे गये कि—कल से शास्त्रार्थ होगा, इत्यादि ।। यद्यपि आर्य समाज पर भार न था कि १०वें नियमानुसार नियमों की पांच कापी समाज करावे, परन्तु फिर भी समाज ने पांच कापी भी कराई, समाज के प्रधान व मन्त्री जी सेठ रामलाल जी के पास भी गये कि बख्शी जी साहब को सभापतित्व स्वीकार करणार्थ प्रार्थना करें, सेठ जी से ज्ञात हुआ कि—उन्हें अवकाश नहीं होगा, इस लिए उनके अभाव में नियमानुसार सेठ रामलाल जी ही सभापति समझे गये, और समाज ने शेष कापी नियमों की तारीख १-५-०३ को ही स्वामी अच्युताश्रम जी के पास हस्ताक्षर करने को भेज दी, और आर्य पण्डित के हस्ताक्षर प्रथम ही सब पर

करा भेजे। इस पर तीन दिन बीत गये, न तो स्वामी अच्युताश्रम जी ने नियमों की अन्य कापियों पर हस्ताक्षर किये, न सेठ रामगोपाल मालानी जी ने कुछ किया, जब कई बार कहलाने पर सनातनी भाइयों में से कोई भी प्रबन्धार्थ न उठा, तो समाज ने एक पब्लिक नोटिस छपवाकर बांटा, जिसकी एक कापी सेठ राम गोपाल मालानी जी व एक कापी स्वामी अच्युताश्रम जी को भेजी। जिसका आशय यह था कि स्वामी अच्युताश्रम जी ने प्रथम तो २४ से ३० तारीख तक सात दिन नियमों में टलाये फिर तारीख तीस अप्रैल को नियम भी जैसे-तैसे स्वीकार किये तो अब सेठ रामगोपाल मालानी जी नियत रीति से ३ दिन हो गये, समाज के सभापति के साथ दरख्वास्त देने में ढील कर रहे हैं, प्रत्युत उन्होंने एक चिट्ठी जबकि १४ घण्टे आदमी तकाज़े वाला द्वार पर रहा तो लिख भेजी कि आप जानें वा स्वामी अच्युताश्रम जी जानें ! मैं कुछ न करूंगा। उस पत्र का यह आशय है। हम उस पत्र का उर्दू से नागरी अनुवाद करके भी छापते हैं, (**पत्र**) यथा—"६ मई सन् १६०३ ई० श्रीमान कुंवर बहादुर सैक्रेटरी आर्य समाज—हैदराबाद, दक्षिण ॥ आपका पत्र उस बड़े नोटिस के सहित जो तीन अप्रैल (मई) १६०३ ई० का छपा था प्राप्त हुआ, अब प्रार्थना है कि मैंने आपकी चार दिन तक प्रतीक्षा की, कोई कार्यवाही आपने उचित रीति पर नहीं की है। और पत्र आपका समस्त व्यर्थ लेख से भरा है। अतः अब आपको उचित है कि शास्त्रार्थ का फैसला श्री स्वामी अच्युताश्रम महाराज से कर लीजिये" ॥

आपका—"**राम गोपाल मालानी**"

नोट—धन्य हो सेठ साहब ! आपने चार दिन क्या प्रतिक्षा की ? और क्यों की ? जब आप सिकन्द्राबाद रहते हैं, और आर्य समाज रेजीडैन्सी में है, और दरख्वास्त भी रेजीडैन्सी में ही देनी थी, तो आपको यहां पधारना था, न कि चार दिन तक चुप साध जाना ! और जब पब्लिक नोटिस से आपको जगाया गया तब आपकी निद्रा भंग हुई तो यह कि स्वामी अच्युताश्रम जी से शास्त्रार्थ का निश्चय कर लो। उनसे क्या निश्चय करें और क्यों करें ? जबकि जिम्मा आपका ठहरा था, कि केशवराव जी प्रधान आर्य समाज और आप दोनों मिल कर दरख्वास्त करेंगे, अब आप स्वामी अच्युताश्रम जी पर टालने लगे, क्या आपने यह तो नहीं सोच लिया कि—स्वामी अच्युताश्रम जी ने भोलेपन से शास्त्रार्थ के नियम भी स्वीकार कर लिये और अब मध्यस्थादि के बहाने शास्त्रार्थ से बचना असम्भव है, तो चलो दरख्वास्त न करने से ही टले। इस पर आश्चर्य यह है कि—इधर तो आपका स्वामी अच्युताश्रम जी पर टालना, उधर स्वामी जी का यह कह देना कि—अदालती काम से हमें प्रयोजन नहीं, फिर अन्य किसी सनातनी भाई को इस कार्य के निर्वाहार्थ नियत न करना और इस पर भी उलटा यह लिखना कि चार दिन इन्तज़ार किया और अन्त तक कचहरी न पधारना। अस्तु ॥

इधर स्वामी अच्युताश्रम जी ने समाज के विज्ञापन के उत्तर में यह निम्न पत्र भेजा—

॥ श्रीराम ॥

यद् भवताराजकीयलिप्यालिखित्वा पत्र प्रैषितम् तदवलोकितम् तत्रयेयमलसता सूचिता सानास्मदीयायतो भवान् सभाध्यक्ष विषयक विशयमुत्यादितवान् नियमपत्रिका लेखने न एकः रघुनाथ प्रसादः सनोचेत् रामलाल इति अन्यतरः कोपिन निश्चितः अतोमन्येन भवतांशास्त्र विचारेऽश्रद्धास्तीति। या मत्रयादर्वागेवतन्निर्णी यज्ञा पितश्चेत् पत्रं प्रषमिष्येप्रतोऽरमेवनिर्णय पत्रिका प्रेष्यानोचेदल सभावो भवत एवेतिमन्ये अन्यादृशं पत्रं प्रकटीकृतं चेत्तद्दोषो-पिभवदुपर्यवतिष्ठतीति किमधिकं लेखनीयम् ॥

दस्तखत—

"**अच्युत स्वामी**" (अरबी में)

नोट—तारीख ३ मई सन् १९०३ ई० समय एक बजे का उत्तर डेढ़ बजे दिया गया इस पर स्वामी जी के अरबी में हस्ताक्षर हैं। जिसका आशय इस प्रकार है—

"हमने हस्ताक्षर करने में ढील इस लिए की कि बख्शी रघुनाथ प्रसाद जी वा सेठ रामलाल जी में से कोई एक सभापति नियत नहीं हुआ" इसका समाज ने तत्काल उत्तर निम्न प्रकार दिया कि—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमन् ! पत्रमागतं वृत्तमवगतं नात्रास्माकं शैथिल्यं यतोऽस्माभिस्तु श्री रघुनाथ प्रसाद विषयेऽपि पृष्ठः श्री रामलाल स्तेनोक्तं श्री रघुनाथा भिद्यो न स्वीकुरुत इति। तद भावे रामलाल एव स्वीकृतो बोध्यः। अन्यान्यावश्यक कृत्यानि भवत्पक्षस्थैः श्री रामगोपालादिभिः कथंकृतानि नवेति भवानेव जानातु ॥

(३-५-०३, दिन के दो बजे) हस्ताक्षर—

"कुमारबहादुर"—मन्त्री (आर्य समाज)

भावार्थ—

अर्थात् हमने ढील नहीं की, किन्तु हमने सेठ रामलाल जी से पूछा तो ज्ञात हुआ कि बख्शी रघुनाथ प्रसाद साहब स्वीकार नहीं करते तो उनके न मिलने से यह तो स्थिर ही हो चुका था कि सेठ रामलाल जी सभापति हों। इसके प्रबन्ध सम्बन्धी अन्य कार्य आपके पक्षस्थ सेठ राम गोपाल मालानी जी आदि ने किस प्रकार किये वा नहीं ? आप ही जानें ॥

नोट—इस उपरोक्त पत्र का उत्तर श्री अच्युत स्वामी जी की ओर से फिर निम्न प्रकार आया कि—

दृष्ट भवदीय पत्रस्सन्लिखतिखलु रामलाल नामासभाध्यक्षोनिश्चितः नियम पत्रिकायाम् हस्ताक्षरं निक्षिप्य प्रेषिता अग्रेयत्कार्यं कर्त्तव्यम् तत्रत्वराक्रियताम् यतोभवानेवाभिषिक्तः सर्व कार्य करणेनायंतत्रप्रवर्त्तते-भवदीयैर्वा अस्मदीयैर्वायद्यत्कृतंतत्सर्वं विज्ञाय क्षिप्रंशास्त्रार्थे उद्योगोभवतामस्तु अयन्तु समये शास्त्रार्थं कर्तुं आगमिष्यति इति भवान् जानातु ॥ दस्तखत—

(३-५-०३) "**अच्युत स्वामी**" (अरबी में)

भावार्थ—

अर्थात्—पत्र देख कर जाना कि सेठ राम लाल जी सभापति हुवे। नियमों की कापी पर हस्ताक्षर करके भेजी है, आगे शीघ्र कार्य जो करना हो आप ही करें क्योंकि सब कार्य भार आप पर ही नियत है, यह (मैं) किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता आपके वा हमारे पक्षस्थों ने जो-जो किया सो सब जानकर आप शास्त्रार्थ का उद्योग करें। यह (मैं) तो शास्त्रार्थ करने को समय पर आ जाऊंगा ॥

इसका उत्तर आर्य समाज ने नीचे लिखे अनुसार दिया कि—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमन ! **भवता दिनत्रयानन्तरं नियमपत्रेषु हस्ताक्षराणि कृतानि एतेन भवच्छैथिल्यं सुव्यक्तं, तस्मादेव च प्रबन्धकार्याणि न जातानि। अतो भवानेव शास्त्रार्थभीतः प्रतिभाति। अद्य भवत्कराक्षराङ्कितं नियमपत्रं राजाज्ञार्थं**

प्रार्थनापत्रं च प्रेषितमस्माभिः सभापतिसनीड़े । श्रमता भवन्मताव लम्बिना रामगोपालेन चाऽपि नाद्यावधि वयं विताषिता न च कोपि यत्नोनुष्ठितोतस्तत्कृतं शैथिल्यमपि नास्मासु दोषावहम् ॥

(३-५-०३) "कुमार बहादुर" मन्त्री (आर्य समाज)

भावार्थ—

अर्थात् आपने जो तीन दिन बिताकर नियम पत्रों पर हस्ताक्षर किये, इससे आपकी शिथिलता स्पष्ट है। इसी से प्रबन्ध कार्य भी न हुवे। इससे आप ही शास्त्रार्थ से भयभीत जान पड़ते हैं। आज आपका हस्ताक्षर युक्त नियम पत्र और राजाज्ञाप्राप्त्यर्थ प्रार्थना पत्र हमने सभापति जी के पास भेज दिया है। और आपके पक्षावलम्बी श्री मान सेठ राम गोपाल मालानी जी ने भी न कोई यत्न किया, न हमको कोई सूचना दी इसलिए उनकी शिथिलता भी हम पर नहीं (उन्हीं) पर दोष लगाती है।

वक्तव्य—और बातें तो हैं सो हैं ही परन्तु हमको श्री स्वामी अच्युताश्रम स्वामी जी के संस्कृत पत्र की रचना पर दृष्टि देने से बड़ी हंसी आती है। उन्होंने अपने आपको "**अस्मत्**" शब्द से न लिखकर "**इदम्**" शब्द से न जाने क्यों लिखा है? यदि उनको देहादि में अहं (मैं) का भाव नहीं भासता, ज्ञानी हो गये हैं, तो उसी पत्र में (**अस्मदीयैः**) हमारे प्रयोग क्यों करते हैं? और हम लोगों को भी अपने से अभिन्न मानते हैं, तो हमारे लिए '**भवदादि**' शब्द प्रयोग क्यों करते हैं? अथवा अपने को "**इदम्**" शब्द (प्रथम पुरुष) से लिखने का कोई अन्य अपूर्व तात्पर्य होगा। परन्तु उस तात्पर्य में भी "**अस्मदीयैः**" प्रयोग अवश्य चिन्त्य रहेगा॥

श्री अच्युताश्रम स्वामी जी—

॥ श्री सम्ब ॥

यदिदं पत्रं मैत्रभावान्यसूचकं प्रेषितंतदेवमे सन्तोषकरम् येनभवदीयमतखण्डेयत्नोभवितामे परन्तु सभा अध्यक्षविषयक संशय निवृत्तिमकृत्वा हस्ताक्षरयुक्त पत्रस्यप्रेषणम् न युक्तं तन्निवृतौकृतायान्तुयुक्तमिति एवं स्थितौसत्यां यल्लिखितं न तन्मेदोषा वहम् मध्यस्थपूर्वक जया पराजयव्यवस्थापूर्वक शास्त्रार्थ विचारे कस्य हृदिभिति रुत्पन्नावामन एव जानाति अथापि परहृदयानुसारेणगमनेपिन क्षतिरिति आर्यसामाजिकनियम एवाहृतः तत्रापिनियम काले सभाध्यक्ष विषये रामलालोपरिविश्वासमकृत्वा व्यक्तिद्वयोपरि अध्यक्षत्वं स्थापितम्। अतस्सर्वथापिभीतिताविकीम् पश्यामि अस्तुनाम क्षिप्रं सभा विधेया तत्रं वमत शैथिल्यम् पश्यन्ति सभासदः॥

(३-५-०३, रात्रि ८॥। बजे) "**अच्युत स्वामी**" (अरबी में हस्ताक्षर)

भावार्थ—

अर्थात्—जो यह पत्र मित्रभाव से अन्य (शत्रु?) भाव का सूचक भेजा, यही मुझे सन्तोष कर हुआ। जिससे आपके मत खण्डन में मेरा यत्न होगा। सभापति विषयक संशय निवारण के बिना हस्ताक्षर करने उचित न थे, संशय निवृत्ति पर तो ठीक ही थे, इस दशा में जो लिखा गया, वह मुझ पर दोष नहीं लगाता। मध्यस्थ पूर्वक जय-पराजय पूर्वक व्यवस्थायुक्त शास्त्रार्थ में किसके हृदय में डर उत्पन्न हुआ, मन ही जानता है। इस पर भी पराई रुचि के अनुसार चलने में भी कोई हानि न जानकर आर्य समाज का नियम ही मान लिया। उस पर भी नियम

स्थिर करते समय सभापति के विषय में रामलाल जी पर विश्वास न करके दो व्यक्तियों पर सभापतित्व स्थापित किया, इससे सर्वथा तेरा भय देखता हूं, ख़ैर ! अब शीघ्र सभा करो, वही, सभासद् मेरी शिथिलता देखते हैं।

नोट– अब तक के पत्र व्यवहार से पाठक लोग निश्चय कर लेंगे कि सच्चाई क्या है ? यहां पर मूल कापी में और भी पत्राचार था, परन्तु लम्बा लेख हो जाने के भय से उसका सार ही लिखते हैं, आर्य पण्डित अन्त में शास्त्रार्थ को न होते हुए देखकर जाने की तैयारी करने लगे तो सनातन धर्मियों ने पण्डितों पर शास्त्रार्थ से भागने का आरोप लगाकर एक विज्ञापन प्रकाशित कराया, सनातनधर्मियों की करतूत कि शास्त्रार्थ करते नहीं वैसे ही वाह ! वाह !! लूटना चाहते हैं। परन्तु इस शास्त्रार्थ के कारण यह परिणाम हुआ कि आर्य विद्वानों के इस समय के मध्य ११ व्याख्यान हुए जिनका सारे इलाके में जबर्दस्त प्रभाव पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप १२ सभासद बढ़े, लोगों में सनातनधर्मियों के प्रति स्वयं ही पराजित होने की भावना सर्वत्र फैल गई, '**श्री १०८ श्रीमान् महाराजा कृष्णप्रसाद" बहादुर" महामन्त्री निजाम सरकार** की सेवा में जनाब "**दीवान गणपतिराय साहब**" ने मुलाकात के समय आर्य धर्म की चर्चा चलाई, महाराजा साहिब ने प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रार्थ के लिए आये हुए आर्य पण्डितों से मिलना स्वीकार किया, तदनुसार सब पण्डित मिलने गये ६-५-०३ को श्री महाराजा साहब से मिले।

श्री पण्डित आर्यमुनिजी व श्री १०८ श्रीमान् महाराजा कृष्णप्रसाद बहादुर, महामन्त्री निज़ाम सरकार के मध्य धर्म वार्तालाप—

श्री पण्डित आर्य मुनि जी तारीख ६ मई सन् १९०३ ई० को महाराजा कृष्णप्रसाद बहादुर साहब मदारूलमुहाम, हैदराबाद (दक्षिण) से साढ़े पांच बजे शाम को मिले एक घण्टा दस मिनट तक जो वार्तालाप हुआ उसे पढ़िए—

प्रश्न—प्रथम मिलते ही महाराज ने यह पूछा कि आर्य समाज और सनातन धर्म सभा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—आर्य समाज परमेश्वर को सजातीय-विजातीय स्वगत भेदशून्य (वाहिद लाशरीक) मानता है और हिन्दू ऐसा नहीं मानते। (इसे महाराज ने बहुत ही पसन्द किया।)

प्रश्न—(२) तदुपरान्त तीर्थ विषय पर चर्चा हुई। बतलाया गया कि ऋषियों मुनियों ने जो स्वच्छ स्थान अपने निवास भजन आदि के निमित्त नियत किये, वे स्थान जल और वायु शुद्ध होने और ऋषि मुनियों के सत्संग विद्यालाभादि के कारण तीर्थ कहलाने लगे, अब इन वार्ताओं पर तो लोगों की दृष्टि बिल्कुल नहीं रही। केवल स्थान जल आदि को ही तीर्थ मानने लगे हैं, और केवल वहां जाना ही मुक्तिदायक समझने लगे हैं। उसको भी उन्होंने बहुत पसन्द किया, और आर्य समाज की बहुत प्रशंसा की, (३) फिर महाराजा बहादुर ने स्वयं स्त्री शिक्षा का प्रसंग चलाया और अपने को उसका सहायक प्रकट किया। (४) यज्ञ में पशुवध से उन्होंने बहुत घृणा की और कहा कि जिन ग्रन्थों में ऐसी निदयता से पशुवध करने का वर्णन है वह ईश्वरीय कैसे हो सकते हैं ? (५) शुद्धि के विषय में आर्य समाज का नियम सुनकर बहुत खुश हुए। और कहा कि हिन्दू जाति इसी लिए निर्बल हो गई है, कि वह अपने में से लोगों को निकाल तो देती है, परन्तु मिलाती नहीं, इस नियम में उन्होंने सिक्खजाति की प्रशंसा की, कि—सिक्ख लोग हिन्दू मात्र को अपने में मिलाने के लिए घृणा नहीं करते। (६) वार्तालाप की समाप्ति पर पण्डित जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका जो बाबु निहालसिंह द्वारा अनुवादित और मनुस्मृति जिस पर स्वामी तुलसीराम जी का भाष्य था, और अंग्रेजी में छपे आर्य समाज के नियम महाराज को भेंट किए, आपने धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किये, और उनको ध्यानपूर्वक देर तक देखा व पढ़ा और आर्य समाज की प्रशंसा की, फिर सभा विसर्जन हुई ॥

नोट:– वाचकगण ! एक ऐसे उच्च प्रतिष्ठित महाराजा के कर्णगोचर वैदिक धर्मोपदेश होना भी एक अभूतपूर्व शास्त्रार्थ का ही उपकार है, इस प्रकार विचारा जावे तो इस संघट्ट का बहुत बड़ा लाभ हुआ। एक और लाभ हुआ कि भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तीय समाजों ने जो अनुमान ११००) के लगभग चन्दे की सहायता दी उससे सिद्ध हुआ कि आर्य समाजियों मात्र में वैदिक धर्म की रक्षा और प्रचार निमित्त एक अच्छी सहानुभूति है। पाठक वर्ग ! जिस हैदराबाद के यागीय पशुवध विषयक शास्त्रार्थ के अवसर की आप चिरकाल से प्रतिक्षा कर रहे थे वह इस प्रकार ही समाप्त हो गया। श्री स्वामी अच्युताश्रम जी की चिटठी जो इस शास्त्रार्थ के मध्य आर्य समाज में आई थी, इसको उत्तर सहित छापकर इस प्रकरण को समाप्त किया जाता है, इस चिठ्ठी से ही संक्षेप में पता चल जाता है कि स्वामी अच्युताश्रम जी शास्त्रार्थ में ही क्या गुल खिलाते ? अनुमान हैं इसी लिए उन्होंने शास्त्रार्थ को अपनी ओर से हर कोशिश टाला, उनकी सिद्धान्त सम्बन्धी योग्यता व पशुवध सिद्धि के शास्त्रीय बल का परिचय इस चिट्ठी से भली भांति मिलता है। पाठकों के अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जाता है। हैदराबाद से चलकर सभी आर्य पण्डितों ने "**गुलबर्गा**" में प्रचार किया, लोगों के सहयोग व प्रेम भाव से अनुमान लगाया गया कि यहां पर समाज स्थापित् हो सकता है। और उसके द्वारा अच्छा कार्य किया जा सकता है। इस कस्बे के बहुत से भाई आर्य धर्म से बड़े प्रभावित हुवे हैं। अब आप स्वामी अच्युताश्रम जी की संस्कृत में चिट्ठी भाषा सहित व उसका उत्तर भी संस्कृत व भाषा दोनों में पढ़िये और लाभ उठाइये !

श्री स्वामी अच्युताश्रम जी द्वारा भेजी गई शास्त्रार्थ विषयक प्रथम चिट्ठी—

॥श्री सुदर्शन सहाय:॥

श्री गणेशायनमः !

केचित्र यागीयहिंसा विषये विप्रतिपद्यन्ते। विप्रति पतिश्च, यागीयहिंसा विधि बोध्यानवावेदवो ध्यानवामन्त्र बोध्यानवेति अत्र विधि कोटिर्वैदिकानां निषेध कोटिस्तु ब्राह्मणस्य वेदत्वमनङ्गीकुर्वतां दयानन्दीयानाम्। अत्र हिंसात्वमात्रं न पक्षतावच्छेदकं राग प्रयुक्त हिंसादौ बाधात् यागीयेति विशेषणं रागश्च प्रत्यक्षादि प्रमाण जन्येष्ट साधनत्व प्रकारक ज्ञान जन्येच्छा सा च चिकीर्षा द्वारा पुरुषं प्रवर्तयति। नैवं स्वर्ग विषयणी प्रवृत्तिस्तादृशेच्छा जन्या वैशेष्यानुपादाने सिद्ध साधनं=लौकिकवाक्यबोध्यत्व व्यावृत्यैविधिरिति साध्य विशेषणम्=एवं विप्रति पत्तौयागीयहिंसावेदबोध्याङ्गागतयाक्रियमाणत्वात् सोमाभिषववत् योयदङ्गत्वेन क्रियते सतद्बोधकवेदबोध्यइतिव्याप्ते र्वेदबोध्यत्वसिद्धिः- नापिविशेषणासिद्धिः=उक्ता हिंसाऽङम् प्रधान क्रियाप्रयुक्त क्रियात्वात् प्रयाजवत्=अत्र वायव्यंश्वेतमालभेतेतियागोविहितः स च देवतोद्देशेन द्रव्य त्यागात्म कोयागो भवति स च त्यागः क्वचिदुत सर्जन पूर्व कश्च यत्र होम पूर्वकस्तत्र पशुरूपद्रव्यस्यान्तरेण विशसनं न घटत इति विशसनमपेक्षते॥ अतोस्याहिंसायाः प्रधानरूप-याग क्रिया प्रयुक्त त्वात् न हेत्व सिद्धिः। नह्यत्रपशोरेवहोमः॥ वपाहोमादि श्रवणानुपपत्तेः॥ जातवेदो*

टिप्पणी—

***तृतीयाष्टके प्रथम प्रश्ने जातवेदोवपयागच्छदेवान् त्वं ऀ हि होता प्रथमो बभूथ॥ घृतेन त्वं तनुवो वर्धयस्व स्वाहा। हे जातवेदः त्वं वपया देवान्प्रति गच्छ हि यस्मात् त्वं प्रथमो होता बभूथ त्वं घृतेन घृतवपया देवानां तनुवो वर्धयस्व स्वाहा कृतं हविदरन्तु देवाः कृत ऀ हविरदन्तु देवाः॥**

वपयेत्यृग्धि वपाहोम माचष्टे ॥ हृदयस्याग्रेवद्यतीति हृदयाववानम् । सच पशु संज्ञपनं विनाव पोत्खेदनासंभवात्कथं सिद्धयति अवदानं च पशोर्हवनेपि सिद्धं न समीहित मिति हिंसाया अनतिवृत्तिः हिंसा हि नाम सा यया क्रियया प्राणो-वियुज्यते ॥ पशोर्होमेपि प्राणोवियुज्यतएव । यद्यप्यत्रसंहितायां पशुपदंनास्तीति वक्तुं शक्नोति ॥ वसन्तायक पिञ्जलानालभते इति शुक्लयजुः संहितायाँ कपिञ्जलालम्भनं विहितम् । कपिञ्जलपदंहि प्राणि विशेषं वदति आहचजैमिनिः ११ अ० प्र० ८ अ० दृष्टः प्रयोग इति चे दिति ॥ छागो वा मन्त्र वर्णादिति सूत्रेण १२ अध्यायस्थेन छात्रस्य व पायामेदसोनु ब्रूहीतिमन्त्रेण छाग सम्बन्धिवपारूपमेदो विशेषस्यग्रहणं प्रतिपाद्यते ॥ अतो मन्त्रेणापि हिंसोक्तेर्तिहिंसायागांगम् = मार्हिस्यात् सर्वभूतानीति वचनं सामान्यतो हिंसानिषेधकं न विशेषतः हिंसाविधिश्च विशेष विषयः विरोधे उत्सर्गापवाद न्याय आश्रयणीयः यस्तु मन्त्रवर्णः औषधे त्रायस्वेतिस्वधितेमैन ꣳ सीरिति च । स च हे ओषधे उपाकरण द्वितीय बर्हे एनं पशुं त्रायस्व छदेनार्थं रक्षस्वेत्यर्थः प्रकरणात्वर्हिषमन्तर्धाय छेदनं हि रक्षणं । अनन्तर्धाय छदेनेहि पशुर्नरक्षितस्स्यात् देर्वाह न स्यादित्यर्थः ॥ हे स्वधिते एनं पशुं मनुष्यवन्मार्हिसीरित्यर्थः तथा च ब्राह्मणं तैत्तिरीय संहितायां षष्ठ फाण्डे तृतीय प्रपाठके नवमानुवाके ओषधे त्रायस्वैन ꣳ स्वधिते मैन ꣳ हि ꣳ सीरित्याह वज्रोवैस्वधितिर सांत्यै ॥ पाश्र्वत आच्छंयति मध्यतोहिमनुष्या आच्छयन्ति तिरश्चीनमाच्छयंत्यनुचीन ꣳ हि मनुष्या आच्छर्यन्ति व्यावृत्या इति ॥ नायमपि मन्त्रो हिंसा भावं बोधयति यदितद्भावं बोधयेत् यूपच्छेदनेन विनियुंज्याद्विनियोगं चाहापस्तम्बः ओषधेत्रायस्वैनमित्यूर्ध्वाग्रं दर्भमन्तर्धाय स्वधिते मैन ꣳ हिंसीरिति स्वधितिना प्रहरतीति । तेन दर्भद्वयमनन्तर्धाय माछिन्दयात् किन्तु अन्तर्धाय छिन्दयात् अन्यथा आव्रश्चन होम विधानं न कुर्यात् । प्रकरण पाठश्च व्यर्थः स्यात् फलवदर्थज्ञानोद्देश्येनाध्ययनं विहितं फलवत्वं चार्थज्ञानस्य क्रतु द्वारकं विद्वान्य जेतेत्यादिनार्थ ज्ञानस्य यागांगत्वाव गमात् ॥ अथ मन्त्रार्थं विरुद्धं ब्राह्मणमप्रमाण मिति न वाच्यं = संहितान्तर्गत्वात् अथ संहितायामपि कश्चिद्भागोऽ प्रमाणमिति चेत् न मन्त्र भागस्यापि तथात्वेकाक्षतिः मम तु यथा श्रुते विरोधेपि उक्तरीत्यैकवाक्यतोप पत्तेर्नक्षतिः ॥ मन्त्रव्याख्यारूपस्य ब्राह्मणस्याप्रामाण्ये त्वद्व्याख्यानस्यापि प्रामाण्यं चिन्त्यं । अस्तु तत् मन्त्रोप्युक्तार्थ एव जातवेदो वपयेतिमन्त्रेण वपाश्रपणान्यथानुपपत्या हिंसा क्षेपणात् तस्मात् वेद बोध्या हिंसेति सिद्धं ······"योर्हिहिंसा बंधों न मनुते स्पष्टव्यः किम धर्म इति न विधिबोध्योतनिषिद्धत्वात् नाद्य हिंसाया अधर्मत्वे मानाभावात् अधर्मत्वं च धर्मविरुद्धत्वं तच्चवेद विहित भिन्नत्वं वेद विहित्तवं च लिङ्गादि पद बोध्यनियोगविषयत्वं अग्नीषोमीयं पशुमालभेत इति आलम्भननियोगस्य विषयत्वात् धर्मं एव । एवं वसन्ताय कपिञ्जलानालभत इत्यत्रापि । आलभतिश्च कूटादिप्रायश्चितपूर्वकोपाकरणरशनापरिव्य पणयूपनियोजन प्रोक्षणस्रुच्या घारानन्तरकालिक समं जन पर्यग्नीकरण वपाश्रपणान्वारम्भणाधिगु प्रैषसमकालशामित्रानुनयनाधस्तात् बर्हिरपासन प्रत्यङ्मुखावस्थापनवाशादि प्रायश्चित्त संज्ञप्त होमरखाना विमोकागांप्यायन वपोत्कृन्तनतत्प्रतित पन होमतदुद्धारणामिधारणै कादशावदानोद्धरण श्रत प्रश्न प्रतिवचनहविर्गुदकाण्ड जाघनीहोमादि क्रिया कलापः । अत्र यस्य कस्य चिल्लोपेपि प्रायश्चित्तविधानात् सर्वम् इदमालम्भन पदवाच्यम् । अतो हिंसा वेद विहितेति नाधर्मत्वं । नापि निषिद्धा निषेधवचनाभाऽवात् मार्हिसीरिति अर्थान्तरमित्युक्तम् = मांहिस्यात्सर्वा भूतानिति न संहितायामस्ति न ब्राह्मणे प्रमाणभावं कथय ॥ मूलवेद विरोधाभावात् प्रमाणमिति चेत् । न मूल वेदस्यैवाभावं पश्यतु भवान् यदि मूलवेदोदयान्दोक्तमेवार्थं ब्रूयात् तर्ह्यविरोधः स एव न प्रकरण विरोधात् । प्रकरणं च पाशुकमन्यर्थनमिति पदं पशुं कथं वदेत् वदति च भवान् एनं पशुमिति प्रकरणं नियामकं नो चेत् एनं यजमानमिति घटमिति वा किमिति न ब्रूयात्। अतः प्रकरणे नैव पशुं ब्रवीति तथा च न मां हिंसारिति यथा श्रुतएवार्थो मन्त्रः किञ्च सन्तेप्राणोवायुना गच्छतां स यज्ञत्रैरङ्गानि इतिमन्त्रोकथंसंगच्छेताम् आध्यात्मिकवायुः प्राणोबाह्यवायुना एकोभवतु पश्वङ्गानि यज्ञैस्सहगच्छतां यज्ञसाधनतांयात्वितितदर्थः प्राणागमने कथमेतदुपद्यताम् तस्मात्प्रकरणनियमोऽवश्यं वक्तव्यः हिंसापियुपेयेति कथं हिंसाधर्मोनिषिद्धोवा किञ्च भूतमार्त्रहिंसावर्ज्येति हिंसाब्रवीति तथा च कथं ते घृतादिना होमसिद्धिः अन्तरेणदोहनं पयोन निस्सरति दोहनं च

मातुर्वत्सस्य च दुःखं जनयति दुःखदापूर्वजननानुकूलव्यापारोहिहिंसा—पञ्चसूनागृहस्थस्येतिवचनं कण्डिन्यादीनांहिंसात्वं प्रतिपादयति यदि तत्र प्राणिवध एवाभिप्रेत इति मतं तदस्तु अनुमोदकस्य हिंसकत्वव्यपदेशः उक्तव्यापारस्यहिंसात्वं गमयति तथा च घृतादिसं पत्तिहिंसामूलेति वैदिक कर्ममात्रस्य लोपः अतः सिद्धा हिंसा वेद बोध्येति ॥ यजमानस्य पशून्पाहीति श्रुतिनर्यज्ञाङ्गपशून्पाहीतिपदं बोधयति किंतु अनङ्गभूतान् गृहे विद्यमानान् प्रकरणं चान्यदीयं दर्शपूर्णमासौहि अनुष्ठेयत योपदिश्येते तत्रपशोर प्रसक्तिः कस्य रक्षणं प्रार्थ्यम् अतोनेयं तवेष्टं श्रुतिः साधयति—बैल्वः खदिरोवा यूपस्स्यात् यूपश्च नाम पश्वनुबंधार्थमुपदीयते शपथंचानेनकंचिदेवकाष्ठ मुच्छ्रित्यानुच्छ्रित्य वा पशुरनुबंधु तत्र नियमः क्रियत इति यदि दमार्यसमाजवचनंतन्न सुन्दरम्—नियमफलानुपलब्धेः नियमोहिपक्षे प्राप्तस्यपरिपूर्णम् ॥ विनापि अवहननं साधनांतरं तण्डुलनिष्पत्तौ प्राप्नोति तदाऽप्राप्ति खहननस्यतत्पूरणं करोति विधिः नहिपशुबन्धनसाधने यूपे खादिरत्वमप्राप्तं येन पूर्येत ॥ अथ यूपं तक्षति यूपमष्ठास्त्री करोतीति वचनेन तक्षणसंस्कार विशिष्ठकाष्ठविशेषः यूप इतिज्ञातेकाष्ठ विशेष इतिजिज्ञासायां यः कोपिकाष्ठ विशेष इति प्राप्तः तदामेन खादिरत्वं नियम्यत इति यदि ब्रूयात् तदास्तु नाम नियमः "अथापियत्तात्पर्यं वर्णनम् क्षीराद्यादानार्थम यज्ञे पशुबंधनं लोकयत् तेन् सुरक्षिताः पयांसिदास्यंति तैश्च घृतोतपत्या यागस्तिद्धयतीति तत्र सुख मेधते" एतदर्थं यू पान पेक्षणात् लोकत एव प्राप्तेः यूपे पशुं बध्नातीति व्यर्थ एवविधिः अतएव नियमोपिव्यर्थः अपूर्वाभावात् ॥ यदाह पशुबन्धनार्थं यू पइत्युक्त्वा गौरनुबन्ध्योजोग्नीषोमीय इति ओदिति सूत्रे उदाहृतं तेन अग्निदेवतायास्सोमदेवतायाश्च गोरजस्य च बन्धनं गम्यते न हननमिति तदसत् न हीदमनुबन्ध्य इतिपदं बन्धनं वदति किन्तु अवभृथोत्तरं क्रियमाणं पाशुकंकर्मवक्ति अग्नीषोमीयः सवनीयोनुबन्ध्य इतित्रयः पशवः तत्राग्नीषोमीयोजः गौरनुबन्ध्य इति तत्रानुबन्ध्यपदं यदि बंधनं ब्रूयात् गौरितिपदं व्यर्थम् । नह्यग्नीषोमीयोजोनुबन्ध्य इत्यन्वये गौरिति पदं तत्रान्वेतुं युक्तं अजोहितत्रान्वितः तेनावरुद्धश्च कथं गवि आकांक्षाफला भावाश्चयच्चाहशन्नो अस्तुद्विपदे शं चतुष्पदे इति श्रुतिर्हिंसानिवर्तिकेति तन्न । अयं च मन्त्रः यज्ञानं गतयाक्लृप्तानां द्विपदानां सेवकानां च चतुष्पदानां पश्वादीनां कुशलं यजमानप्रार्थ्यं बोधयति न तु यज्ञांगतया क्लृप्तानां पशुनामहि सनं । यदपि पशोः सशरीरस्य सुखमुपलभ्यते मृते कथं सुखंशरीराभावादिति न चास्त्यनुमानम शरीरस्यात्मनो भोगः कश्चिदस्तीति तदपिन, यदिदं वात्स्यायनसम्मतं मतं मृत शरीरो न प्राप्नुयात् पुण्यफलं पारलौकिकं सुखम् नाकांक्षेत् कृतहान्यकृताभ्यागम दोषं देहात्मवादे वदन् कथं नांगी कुर्यात् पारलौकिकं सुखं तथा चैतच्छरीरे गते शरीरान्तरेण शरीरं भुनक्तीति हृदयं तथैव अजस्य शरीरे मृते शरीरान्तरेण पुण्यफलं भुनक्ति पशुः । योपि अध्वर शब्दो न हिंसावाचकः यज्ञश्चाध्वरः कथं तत्र हिंसेति सोपिननञ् नाभावमाचष्टेकिं त्वल्पार्थ अल्पा हिंसा यत्र सोध्वरः हिंसायामल्पत्वं च बलवदनिष्टाननुबन्धित्वंध्वरोहिंसाराग प्राप्तोनास्तीति वाऽध्वरः अध्वरशब्दश्च यज्ञे न यौगिकः किन्तु रूढ़ः प्रवीण कुशलादिवत् । तथा च हिंसावती यागेऽयं शब्दः प्रवृत्तः हिंसा भावमेवाह-न हि वैधी हिंसा हिंसा भवति यद्धि शास्त्रं हिंसादोष इति प्रत्यपादि तदेव दोषाभावं प्रतिपादयदि शास्त्रोक्ते को विवादः तत्रैव विवादः यत्र न शास्त्रमस्ति अतएव राज्ञां शिक्षण रक्षणयोरधिकृतानां हन्तुर्हननदोष इत्याहस्म शास्त्रं तन्नयायोत्रयोज्यतामिति । अतएव जैमिनिः मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषादिति तृतीयाष्ठमे तरसाः पुरोडाशास्सवनीया भवन्तीत्याहस्म शमिता च शब्द भेदात् इति तृतीय सप्तमे शमितु ऋत्विगन्यत्वमुक्तमेतेन यागीयहिंसा जैमिन्यादिसम्मता । यदि भावान्नांगीकरोति जैमिन्यादि सूत्राणाम् प्रामाण्यमुपेयात् वेदार्थ निर्णयार्थमपि सूत्राणां प्रामाण्यमिति लेखनं व्यर्थ स्यात्सूत्रप्रामाण्ये गतं ते मतं—"अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषं" । मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यत इति । तदपि न हिंसाधर्म इति ब्रूते । नहि विहिता साऽधर्मो भावितुमर्हति अतएव मोहादारभ्यत इत्युक्तं न हि शास्त्र प्रयुक्ता प्रवृत्तिः मोहमूला न वा शास्त्रमधर्मे पुरुषं प्रवर्त्तयति तस्मात् सम्प्रदायावेदनमूलमिदं लेखनम्—यान्यपि—बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमितिवैवैदिकी श्रुतिः । अज संज्ञानि बीजानि छागं नो हन्तुमर्हथ । नैषधर्मः सतां देवा यत्र बध्येत वै पशुरिति महाभारतानुशासिकवचनानि तान्यपि उपरिचरवसुवाक्येन ॥३३२॥ निषिद्धानि—देवानांतु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्ष संश्रयात् । छागेनाजेन

यष्टव्यमेव मुक्तं वचस्तवेति । यदपि —सुरा मतस्या मधुमांसमासवं कृशरौदनम् । धूर्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितामिति भारतवचनं कामकृत निन्दापरम् । अत्र तदधृदयं धर्मव्याधोहिजाजलिमुपदिशन् आत्मज्ञानसाधनाऽहिंसादि-धर्मं प्रशंसन् वैदिक कर्मकामकृतं कर्म चानिन्दत् अहिंसाप्राशस्त्यार्थं न हि निन्देतिन्यायात् अहिंसा स्तौति वस्तुतस्तु एक वाक्यतया भारतादि प्रामाण्यानङ्गीकारात् न भारतादिवचने नेष्ठासिद्धिस्ते =वैदिकाभ्युगगतार्थस्य त्वयानभ्यु पगमात् यदि भवानस्म दुक्तमर्थमुपैति कथं मन्मतखण्डनम् अतस्ते पामरजनमोहकरमेव वचन मिति ।

यदपि विरोधे त्वनपेक्षमसतिह्यनुमानमितिसूत्रमुदाजहारतन्नेष्ट सम्पादकं यत इदं सूत्रं स्मृत्यर्थविरुद्धार्थ-बोधकं प्रत्यक्षवेदवचनं भवेत् स्मृतिः स्वकल्पितवेदमूलासती न प्रमाणमित्यर्थकं यद्यपि सामाजिकः मूलवेद विरुद्ध ब्राह्मणं प्रदर्शयेत् तर्हि अप्रमाणं भवेत् नैव तादृशं प्रमाणं उपलभामहे अथत्वत्कृतव्याख्यया विरुद्धयेत् चेत् विरुद्धयतां नामकानोहानिः त्वद्व्याख्याया एवोपेक्ष्यत्वात् अविरोधे मूलवेद कल्पयानां प्रामाण्यं चिन्तनीयं अतस्सर्वथात्वनमतं शिथिलमेव अधिकं पत्रान्तरे वक्ष्यामि ।। तस्मात् वैदिकानामधिकृतानां कर्मणि यागीयहिंसा न दोषमावहतीत्यन्यत्र विस्तार इति चतुरस्र तुल्यः सर्वेषां पशुविधिः प्रकरणाविशेषादिति जैमिनिः पशुधर्माणां यूपनियोजन विशसनादी-नामग्नी षोमीयपशौ नियमितवान् यदि ऋषिवाक्यं प्रमाणंस्यात् अन्यथा तवापिमतं तत्तुल्यमिति किं विचारणीयं इति शिवम् ।।

"अच्युत स्वामी"

श्री अच्युत स्वामी जी की चिट्ठी का भावार्थ —

कोई लोग यज्ञ की हिंसा पर विवाद करते हैं, कि यह विधि बोधित-वेद बोधित और मन्त्र बोधित है वा नहीं ? इसमें हिंसा विधान पक्ष वैदिकों का (हमारा) और निषेध पक्ष दयानन्दियों का है, कि जो ब्राह्मण को वेद नहीं मानते इसमें "हिंसा" मात्र पक्ष नहीं है । क्योंकि रागपूर्वक हिंसा में बाध है, किन्तु "यज्ञ की हिंसा" पक्ष है । राग लौकिक है, परन्तु स्वर्ग विषयक प्रवृत्ति उससे भिन्न है । इस विवाद में यज्ञ की हिंसा विधि बोध्य है, क्योंकि यज्ञ का अंग है। जैसा कि "सोमाऽभिषव"। जो जिसका अंग होकर दिया जाता है । वह उस कर्मके बोधक वेद का बोध्य हुआ । इस व्याप्तिके अनुसार हिंसा भी वेद बोध्य सिद्ध है । प्रयाज के तुल्य प्रधान कर्म प्रयुक्त क्रिया होने से उक्त हिंसा अङ्ग है । इससे विशेषण भी सिद्ध है इस प्रसंग में "वायव्यंश्वेतमालभेत" इस प्रकार याग कहा गया । वह यज्ञ देवतोद्देश से द्रव्यत्यागात्मक होता है, वह त्याग कहीं होम पूर्वक और कहीं छोड़ने से त्याग होता है । जहां होम पूर्वक है वहां पशुरूपी द्रव्य बिना हत्या के सम्भव नहीं । इससे हत्या की अपेक्षा है, इससे इस हिंसा के मुख्ययज्ञ रूप कर्म में काम में आने से हेतु की असिद्धि नहीं (सिद्धि है) न केवल यहां पशु का होम ही है । प्रत्युत वपा श्रपणादि का भी श्रुति विधान करती है । "जात वेदोवपयागच्छ देवान् त्वँहि होता प्रथमो वभूय । घृतेन त्वं तनुवोवर्धयस्व स्वाहा ।। तृतीय अष्टक, प्रथम प्रश्न, इस ऋचा में वपा का होम कहा है कि हे अग्ने ! तू वपा से देवतों की ओर जा क्योंकि तू ही मुख्य होता है, तू घृत—घृतस्य वपा से देवतों के देहों को बढ़ा । इस हव्य को देवता खावें ।। "हृदयस्याग्रेवद्यति" इससे हृदय काटना, सो यह पशु मारे बिना नहीं हो सकता, क्योंकि इसके बिना न वपा उखडती न काटना बन सकता है । बस ! हिंसा नहीं बच सकती है, क्योंकि प्राणवियोगानुकूल व्यापार को हिंसा कहते हैं और पशु के होम में भी प्राण वियुक्त होता है । यद्यपि यहां संहिता में पशु पद नहीं है । यह (प्रतिवादी) कह सकता है । "वसन्ताय कपिञ्जलानालभते" यह शुक्ल यजुर्वेद संहिता में कपिञ्जल का आलमन कहा है, कपिञ्जल शब्द प्राणि विशेष का वाचक है, जैमिनि भी कहता है कि—(११ अ० प्र० ८ अ०) "दृष्टः प्रयोग इतिचेत्" और अध्याय १२ के सूत्र

"**छागोवा मन्त्रवर्णात्**" से बकरे की वपा रूप मेदोविशेष का ग्रहण प्रतिपादित है। इससे मन्त्र में भी हिंसा कही गई है। इस कारण हिंसा यज्ञाङ्ग है।। "**मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि**" यह वचन सामान्यतः हिंसा निषेधक है, न कि विशेषतः! और हिंसा की विधि, विशेष विधि है। विरोध में उत्सर्ग अपवाद=सामान्य विशेष का न्याय लगाया जाता है, और यह जो मन्त्र हैं कि—"**औषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः**" इसका अर्थ यह है कि=हे औषधे!—उपाकरण की दूसरी कुशा! तू इस पशु की रक्षा कर छेदनार्थ बचा!! प्रकरण से कुशा बीच में करके छेदने का नाम रक्षा है, कुशा बीच में बिना किये छेदने में पशु रक्षित न रहेगा। अर्थात् देवताओं के योग्य न रहेगा। हे पैनीधार के! तू इस पशु को मनुष्य के समान मत मार। तथा च ब्राह्मण, त्तैतरीय संहिता छठे कांड तीसरे प्रपाठक नवें अनुवाक में कहा है कि—"**औषधे**" **त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीरित्याह वज्रो वै स्वधितिः**" इत्यादि।। इस मन्त्र में भी हिंसा भाव नहीं समझा जाता है। यदि समझा जाता तो यूप छेदन में विनियोग न करता। और विनियोग आपस्तम्ब मे कहा है कि—"**ओषधे त्रायस्वैनमित्यूर्ध्वाग्रदर्भमन्तर्धाय स्वधिते मैनं हिंसीरिति स्वधितिना प्रहरतीति**"।। इससे पाया जाता है कि दो कुशा बीच में बिना किये न काटे, किन्तु बीच में (२ कुशा) का व्यवधान करके काटे, नहीं तो 'काटने' होम करने का विधान न करता और प्रकरण का पाठ भी व्यर्थ होता; फलवान् अर्थज्ञान के लिये अध्ययन का विधान है और अर्थ ज्ञान की सफलता यज्ञ द्वारा है क्योंकि—"**विद्वान्यजेत**" विद्वान यज्ञ करे, इत्यादि से अर्थ ज्ञान को यज्ञागंता समझी जाती है। यह भी नहीं कह सकते कि—मन्त्रार्थ विरुद्ध ब्राह्मण अप्रमाण है, क्योंकि ब्राह्मण संहिता के अन्तर्गत है, यदि कहो कि संहिता में भी कोई भाग अप्रमाण है सो नहीं। मन्त्र भाग भी वैसा ही हो तो क्या हानि है? वेद में विरोध की भी उक्त रीति से एक वाक्यता सिद्ध होने में मेरी तो कोई हानि नहीं। मन्त्र की व्याख्या रूप ब्राह्मण को प्रमाण न मानने पर तेरी व्याख्या की प्रामाणिकता पर भी सन्देह होगा। अस्तु मन्त्र भी तो उक्त अर्थ का ही पोषक है, जैसाकि "**जातवेदोवपया**" इस मन्त्र से वपाश्रपण की सिद्धि कही गई। इससे हिंसावेदबोध्य सिद्ध है।।

जो हिंसा को विहित नहीं मानता उससे पूछना चाहिए कि—हिंसा क्या अधर्म है? यदि अधर्म है तो क्या—१. वेद विहित न होने से? वा २. निषिद्ध होने से? १. पहला पक्ष इसलिए ठीक नहीं कि हिंसा के अधर्म होने में प्रमाण नहीं। अधर्म वेद विरुद्ध को कहते हैं, वेद विरुद्ध उसको कहते हैं जो वेद विहित से भिन्न हो। वेद विहित वह हैं जो लिंगलकारादि द्वारा आज्ञा का विषय हो।। "**अग्नीषोमीयं पशुमालभेत**" इस वचन से आलम्भन की आज्ञा होने से हिंसा धर्म ही हुई। ऐसे ही—"**वसन्ताय कपिञ्जलानालभते**" यहां भी जानों।। आलम्भन का अर्थ कूटादि प्रायश्चित्त पूर्वक उपाकरण, रस्सी लपेटना, यूप से बांधना, प्रोक्षण, स्त्रुच्याधार के पश्चात समञ्जन, पर्यग्नीकरण, वपम्पकाना, अन्वारम्भण अधिगु की आज्ञा के साथ शामित्रशाला को ले जाना, नीचे कुशा बिछाना, पश्चिमाभिमुख खड़ा करना, वाशादि प्रायश्चित्त, संज्ञप्तहोम, रस्सी खोलना, अंगाऽऽप्यापन, वपा उधेड़ना, उसका तपाना, उसका निकालना, उसका अभिधारण, एकादशावदान, उद्धरण, पशीजने को पूछना, उसका उत्तर देना, हविगुदकांड जाघनी होम इत्यादि क्रियाओं को "**आलम्भन**" कहते हैं। इनमें से किसी एक के लोप होने पर, प्रायश्चित है। इससे यह सब आलम्भन पद का वाच्य है, इससे हिंसा वेद विहित है। इससे अधर्म नहीं हिंसा निषिद्ध भी नहीं, क्योंकि निषेध वचन कोई नहीं है। "**माहिंसीः**" का दूसरा अर्थ है। यह कह चुके हैं। "**माहिंस्यात्म् सर्वाभूतानि**" यह न संहिता में, न ब्राह्मण में है। प्रमाणता बतलाओ। यदि कहो कि मूल वेद के अविरुद्ध होने से प्रमाण हैं। सो भी नहीं। आप मूल वेद के ही अभाव को देखें, यदि मूलवेद दयानन्दोक्त अर्थ को ही कहता तो अविरोध होता। यह भी नहीं, क्योंकि प्रकरण विरुद्ध है। प्रकरण पशु का है। अन्यथा "**एनम्**" पद पशु वाचक क्यों होता? और आप भी कहते हैं कि "**एनम् पशुम्**"=इस पशु को। यदि प्रकरण नियामक न होता तो "**इसको**" कहने से "**यजमान को**" वा "**घट को**" क्यों न समझ लिया जावे? इससे प्रकरण से ही "**पशु को**" आप कहते हैं। इससे "**माहिंसीः**" का वह अर्थ नहीं। और—"**सन्ते प्राणो वायुना गच्छतां सं यजत्रैरंगानि**"।। ये मन्त्र कैसे संगत होंगे? "**आध्यत्मिक वायु**

प्राण बाह्य वायु से मिले, पशु के अंग यज्ञ के साधन बनें" ।। यह उनका अर्थ है, सो जब तक प्राण न जावें तब तक कैसे सम्भव है ? इससे प्रकरण का नियम अवश्य कहना चाहिए, कि हिंसा ग्राह्य है, किस प्रकार हिंसा अधर्म वा निषिद्ध है ? और हिंसा का तात्पर्य भूत मात्र की हिंसा वर्जित है। इस दशा में तेरे होम की सिद्धि भी घृतादि से कैसे होगी ? बिना दुहे दुग्ध नहीं निकलता और दुहना माता व बछड़े को दुःखजनक है। दुःखदायक अपूर्व जननानुकूल व्यापार ही हिंसा है। **"पञ्चसूना गृहस्थस्य"** यह वचन कण्डिनी आदि की हिंसा का प्रतिपादन करता है, यदि इसमें प्राणी के वध का नाम ही हिंसा होता तो अनुमोदक को भी हिंसक कहा जाना उक्त कर्म को हिंसा सिद्ध करता है ! तथा च घृतादि बनने की जड़ हिंसा हुई, तो समस्त वैदिक कर्म का लोप हो जायेगा। इससे सिद्ध हुआ कि **"हिंसा वेद बोध्य है"** तथा **"यजमानस्य पशून्पाहि"** यह श्रुति (जो पशुवध के विरुद्ध प्रस्तुत की जावे) यज्ञाङ्ग पशु विषयक नहीं है, किन्तु घरेलू पशुओं की रक्षा विधान करती हैं। यहां प्रकरण भी अन्य है, दशपौर्णमासानुष्ठान का यहां वर्णन है। जिसमें पशु का प्रसंग नहीं फिर किसकी रक्षा हेतु प्रार्थना की जावे? इसमें यह श्रुति भी तेरा इष्ट नहीं साधती ।। **"बेल का वा खदिर का यूप हो"** इत्यादि में जो महाभाष्य के प्रमाण से समाज ने कहा कि खदिरादि विधान नियमार्थ हैं, क्योंकि नियम का फल पाया जाता, इत्यादि ।। सार यह है कि जैसे कूटने बिना भी चावल निकल सकते हैं, ऐसे यूप बिना भी लोकतः यूप कार्य सिद्ध हो सकता है। इस लिए जब बिना यूप के भी बाजार आदि लोक से घृतादि ले सकते हैं, तब यूप की क्या जरुरत है ? इस प्रकार समाज जो यूप का प्रयोजन बताता है कि उसमें बन्धे यज्ञार्थ पशु दुग्धादि देंगे। जिससे यज्ञ होगा, सो व्यर्थ है। फिर समाज के मत में खदिरादि का नियम भी व्यर्थ है, कोई अपूर्व फल नहीं ।। और जो आपने कहा कि – पशु बन्धनार्थ यूप होता है, इसके पश्चात जो कहा कि—**"गौरनुबन्ध्य"** इत्यादि "ओत्" इस सूत्र पर महाभाष्य में उदाहरण हैं जिससे अग्नि देवता और सोम देवता के गौ और बकरे का बांधना पाया जाता है, न कि मारना ! यह कथन भी असत् है। यह अनुबन्ध्यः पद बन्धनार्थक नहीं है, किन्तु="**अवभृथ**"=यज्ञान्त स्नान के पीछे किये जाने वाले पशुकर्म का वाचक है, अग्निषोमीय, सवनीय, अनुबन्ध्य, ये तीन पशु होते हैं, इनमें अग्नीषोमीय अज और अनुबन्ध्य अज होता है। यदि वहां अनुबन्ध्य पद का अर्थ बन्धन होता तो गौः कहना व्यर्थ था। इस अन्वय में कि—**"अग्नीषोमीय अज बांधना"** गौः यह पद अन्वित नहीं हो सकता। वहां तो अज का अन्वय है क्योंकि गौः पद की आकांक्षा कलाभाव भी है और जो आपने कहा कि—**"शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे"** यह श्रुति हिंसा की निवर्त्तक है। सो नहीं ! यह मन्त्र उन दुपायों और चौपायों के विषय में हैं, जो यज्ञ के अंग नहीं, उनका यजमान प्रार्थ्य कुशल मन्त्र से बोधित होता है। न कि यज्ञांग-पशुओं का न मारना। और वात्स्यायन के मत से जो यह कहा है कि मरे पशु को सुख कैसे हो सकता है, ? क्योंकि शरीर रहित आत्मा को भोग नहीं बनता। सो भी ठीक नहीं। यदि वात्स्यायन का यह मत हो तो मरने के पीछे परलोक में कोई पुण्य का फल न चाहे, और इस दशा में किया कर्म निष्फल और बिना किये का फल पाना रूप दोष देहात्मवाद में कहते हुए कैसे पारलौकिक सुख को न माने ? तथा च —इस शरीर के नष्ट होने पर, दूसरे शरीर से फल भोगता है। यह तात्पर्य है। इसी प्रकार बकरे का शरीर नष्ट होने पर पशु अन्य देह से पुण्यफल भोगता है। यदि कहो कि—**"अध्वर"** यज्ञ का नाम है, और **"अध्वर"** का अर्थ हिंसा रहित है, फिर यज्ञ में हिंसा कैसी? सो भी नहीं। अध्वर शब्द में नञ्, (अ) है यह निषेधार्थक नहीं, किन्तु अल्पार्थ है, अर्थात् जिसमें थोड़ी हिंसा हो वह **"अध्वर"** है। हिंसा का थोड़ा पन यही है कि बलवान अभिष्ट का अनुबन्धी न होना। अथवा राग-प्राप्त हिंसा जिसमें न हो वह **"अध्वर"** है। तथा **"अध्वर"** शब्द यज्ञ में रूढ़ी है, न कि योगिक! इसलिए उसका अर्थ नहीं लिया जायेगा। जैसे प्रवीण-कुशल इत्यादि में **"धात्वर्थ"** की अपेक्षा नहीं होती, तथा हिंसावान यज्ञ में **"अध्वर"** शब्द प्रवृत्त है सो हिंसा को ही कहता है। विधिपूर्वक हिंसा-हिंसा नहीं होती। जिस शास्त्र ने हिंसा को दोष बतलाया है, उसी शास्त्र ने यज्ञ में दोष नहीं बताया, फिर भला शास्त्रोक्त काम में क्या विवाद ? विवाद तो वहीं है जहां शास्त्र नहीं। इसलिए शिक्षा-रक्षा में अधिकारी राज-

पुरुषों में मारने वाले को हत्या नहीं लगती । यह शास्त्र ने कहा है । वह न्याय यहाँ जोड़ लीजिए । इसीलिए —"**मांसं तु सवनीयानां चादेनाविशेषात्**" जैमिनी ३-८ में और "**शमिता च शब्दभेदात्**" इसे जैमिनी जी ३-७ में कहते हैं कि शमिता अन्य ऋत्विजों से भिन्न है इससे यज्ञ की हिंसा जैमिन्यादि की सम्मत हुई । यदि आप न मानें और जैमिन्यादि का प्रमाण न करें तो आपका यह लिखना व्यर्थ होगा कि —"**वेदार्थ निर्णय के लिये छहों शास्त्र प्रमाण हैं**" यदि सूत्र को माने तो तेरा मत गया ॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् । मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥

यह वचन भी हिंसा को अधर्म नहीं बताता । विहित हिंसा अधर्म नहीं हो सकती । इसीलिए इसमें "**मोहादारभ्यते**" कहा गया है । शास्त्र की आज्ञा से किया कर्म मोह मूलक नहीं, अथवा शास्त्र मनुष्य को अधर्म में प्रेरित नहीं करता, इसलिए यह लिखना सम्प्रदाय के अज्ञानमूलक है । और जो महाभारत अनुशासन पर्व के वचन है कि— '**बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यम्**......" इत्यादि वे भी आगे के वसु के वाक्य ३३२ से निषिद्ध है —

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्ष संश्रयात् । छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ॥

इस प्रकार वसु (मध्यस्थ) ने देवताओं के पक्ष पात से कह दिया कि—"**बकरे से यज्ञ करना चाहिए**" । तथा भारत का यह वचन भी कि—

सुरा मतस्या मधु मांसयासवं कृशरोदनम् । धूर्तैः प्रवर्त्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम् ॥

कामकृत कर्म की निन्दापरक है । इसका तत्व यह है कि –धर्म व्याध ने जाजलि को उपदेश करते हुए आत्मज्ञान साधन अहिंसादि धर्म की प्रशंसा करते हुए वैदिक कर्म और कामकृत कर्म की निन्दा की है । अहिंसा की प्रशंसा के लिए निन्दा नहीं, इस न्याय से अहिंसा की स्तुति करता है । वस्तुतः तो एक वाक्यता: से भारतादि का प्रमाण न मानने से भारतादि के वचनों से तेरी (आर्य सामाजिक की) इष्ट सिद्धि नहीं । क्योंकि वैदिकों के माने अर्थ को तू नहीं मानता । यदि आप (आर्य समाजी) हमारे मत (भारतादि) को मानते हैं, तो मेरे मत का खंडन कैसा ? इससे तेरा वचन मूर्खों को बहकाने वाला ही है ॥ "**विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्याद सतिह्यनुमानम्**" । यह मिमांसा का सूत्र जो आपने उदधृत किया सो इसका यह अर्थ है कि साक्षात् मूल वेद से विरुद्ध कोई वचन स्मृति आदि में हो तो न मानना ॥ सो आर्य समाजी यदि मूल वेद के विरुद्ध ब्राह्मण वाक्य दिखलावें तो अप्रमाण हो । ऐसा प्रमाण हम नहीं पाते, और यदि तेरी व्याख्या से विरुद्ध पड़ता हो तो पड़ता रहे । इसमें हमारी क्या हानि है ? क्योंकि हमको तो तेरी व्याख्या ही उपेक्षणीय है, अविरोध में मूलवेद कल्पना में प्रामाण्य सोचना चाहिए, इसलिए सर्वथा तेरा मत शिथिल ही है । अधिक दूसरे पत्र में कहूंगा । इस कारण अधिकारी वैदिकों के कर्म यज्ञ में हिंसा दोष नहीं लगाती । इसका अन्यत्र विस्तार से वर्णन है, यह स्पष्ट है—"**तुल्यः सर्वेषां पशुविधिः प्रकरणा विशेषात्**" यह जैमिनी ने कहा कि—पशु धर्म – यूप में नियुक्त करना, काटना आदिकों का अग्निषोमीय पशु में नियम है । यदि ऋषि वाक्य प्रमाण हों । अन्यथा तेरा मत भी उसी के तुल्य है, इसका विचार ही क्या है ? इति शिवम् ॥

आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित आर्यमुनि जी द्वारा श्री अच्युत स्वामी के प्रथम पत्र का उत्तर –

यागीयहिंसामवैदिकीं प्रतिपादयन्तोवयं विप्रतिपत्त्यादिस्पष्टीकरणवाक्य जातानि दृष्ट्वाऽथ प्रमाणभूतानि वचांसि विचारयामः । वायव्यं श्वेतमालभेतेति वचनं न यागीयहिंसाया वेद बोध्यत्वस्य साधकं तत्र हेतुः—

प्रकृतवाक्ये पशु पदादर्शनात्, यदि कथंचित् श्वेतमिति विशेषणेन् विशेष्यस्य पशोर्ग्रहणं स्यात्तदाऽपि आलभेतेति क्रिया पदस्य हिंसाऽर्थं परत्वाभावात्, आलम्भन क्रियायाः पर्याय क्रियापदं महीधरेणाऽपि स्वभाष्ये इत्थं विन्यस्तं दृश्यते। यथा—२४-२० यजुषि—"आलभते=नियुनक्ति"। इति। नहि केनाऽपि नियुनक्ति इत्यस्यार्थो हिनस्तीति प्रतिपादयितुं शक्यः। यच्चोक्तं "विधिबोध्या न वा वेदबोध्या न वा मन्त्रबोध्यानवेति" तदसत्। भवन्नये विधि शब्देन ब्राह्मण ग्रहणात् विधिमन्त्रातिरिक्तस्य वेदस्याभावात्। विधिमन्त्रयोर्वेदपदवाच्यत्वे सति त्योरेकतरेणैव भवदभिप्रायसिद्धेः पदत्रयविन्यासोव्यर्थः पुनरूक्तश्च। आलम्भन क्रियाऽर्थो हिंसातिरिक्तो हि कात्यायनेनाप्यऽलेखि। यथा पौर्णमासेष्टि प्रकरणेसंयौति जनयत्यैत्वेति समं विभज्यास ऄ हरिष्यन्नालभत इदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिति हविरालम्भने। सहाज्यं देवस्यत्वेति श्रपणं माभे रित्यालभते तमेरूरिति पुरोड़ाशश्रपण विषये। इत्यादिषु यथांङ्पूर्वस्य लभधातोः स्पर्शने वृत्तिस्तथैव "वायव्यं श्वेतमाल भेतेत्यत्रापि ऊह्यम्॥

जातवेदो वपयेत्यादि यद्वपाहोमसाधकं वाक्यं मत्वाऽलेखि, न तदपि भवदिष्ट साधकं, "तृतीयाष्टके प्रथम प्रश्ने" इति भवदुद्धृतस्यानेतावत्तु न भवता ऋग्वेदादावन्यतमस्य वेदस्य स्पष्ट मुल्लेखः कृतः यदि ह्यष्टकपदेन ऋग्वेदं कश्चिदनुमिनुयात् तदपि न। ऋग्वेदीय तृतीयाष्टके तादृगृचोऽदर्शनात् ऋग्वेदे च प्रश्नानां ग्रन्थभागत्वेनाःऽविन्यासात् नाप्यनुमानं सम्यगुपपन्नं भवति अतएव कुत्रत्येयमृगिति निर्धारण पर्यन्तं सत्यनाऽऽवश्यकेऽपि अस्मदुत्तरे किञ्चिमदद्मः॥ नेयमृग्वेद चतुष्ट्यान्तर्गता दृश्यते। नाप्यस्यां पशोर्वधोविधि-वचनत्वेन, नचाऽनुवादवचनत्वेन, नाप्यर्थवादवचनत्वेन विहितोदृश्यते। केवलया "जातवेदः वपयादेवान्गच्छ" इत्युक्तयानैव पशोर्वधोनिरू पयितुंशक्यः। यथाह्यन्त्येष्टिकर्माणि मृत्तानां जन्तूनां तत्तद्देहावयवानुद्दिश्योच्यते—"सूर्यंचक्षुर्गच्छतुवातमात्मा द्यांच गच्छ पृथिवीं च धर्मणा" इत्येवमादिवचनैश्चक्षरादीनां स्वस्वकारणलयो वर्ण्यते तथैवाग्नौ चितायां हूयमानानां जन्तूनां देहगतवपादेरपि वाय्वादिदेवान्प्रति गमनस्य प्रतिपादयितुं शक्यत्वात् नैतच्छक्यते वक्तुं यद्वपोत्खेदनं पशुवधमन्तरा न सभंवतीति। स्वयं मृतानामपि प्राणिनां वपाचर्माद्युत्खेदस्य लोके दृष्टचरत्वात्॥ हृदयस्याग्रेवद्यतिति नास्ति वेदवचनम्, नाप्यस्य कुत्रत्यमिदं वचनमित्युल्लेखः कृतस्तत्रभवताऽ-च्युताश्रमादिस्वामिना। नापि "अवदानं सच" इति पुंनपुंसकयोः सामानाधिकरण्योक्तिर्वक्तुर्बोधसौष्टवं व्यनक्ति। प्रत्यहमऽनेके पुत्रादयः पित्रादिषु कारणान्तरैर्मृतानां शरीराणि जुहूत्यग्नौ। तथा सति पशोर्गवाश्वोष्ट्रादेर्मनुष्योपकारक प्राणिवर्गस्य मृतस्य शरीरदाहदिषु नैव हिंसां पश्यामः "अत्र पशुपदं नास्तीति वक्तुं शक्यते" इति तु स्वयं चाह तत्रभवान्। समाधानं च न भवान्कृतवान्। तथात्वे पशु ग्रहणमप्यमूलमेव॥ वसन्तायक पिञ्जलानालभते। इत्यस्योत्तरं पूर्वोक्तमेव ज्ञेयं, तत्राप्यालम्भन क्रियायास्तथाऽर्थत्वात्॥ जैमिनीयसूत्रप्रमाणेन कपिञ्जलपदं हि प्राणिविशेषं वदतीति असाध्यसाधनं, न हि भवतां कपिञ्जलपदेन प्राणि विशेषग्रहणं साध्यं, किन्तु पशोर्वधः साध्योभवति। न च सोऽनेन मीमांसावचनेन साध्यते। टिप्पणीगतं भवत्कृतं व्याख्यानमपि न साधु "घृतेन=घृत्वपया" इति। यदि कथंचित् घृतान्तर्गता वपा घृत पदेन संगृह्येत, तदेदभस्मत्सौकयार्य भवति, न भवत्पक्षसाधनाय। तत्र तत्र वपा शब्देन घृताग्तर्गतां वपां तथात्वे ग्रहीष्यामः॥ दृष्टः प्रयोग इतिचेदिति सूत्रं मीमांसादर्शने ११-१-३६, विद्यते न तु ११ अ० प्र० ८ अ० इत्यस्मिन्संकेते न च मीमांसादर्शने प्र० इत्यक्षरसंकेतितः कोऽपि ग्रन्थ विभागोस्ति तत्रहि १२ अध्यायाः प्रत्यध्यायं ४ पादाः सूत्राणि च सन्ति, न किमपि प्र० इति संकेतितम्। अन्यच्चाश्चर्यम् यद्यपि कपिञ्जल-पदेन प्राणिविशेषग्रहणे न वयं विवदामहे, तथापि "कपिञ्जलंपदहि प्राणिविशेषं वदति आह च जैमिनिः दृष्टः प्रयोग इतिचेदिति" न समीचीनम्। दृष्टः प्रयोग इतिचेदितिसूत्रे तथा प्रतिपादनाभावात्। तत्सूत्रोपरि शबरस्वामिकृतं व्याख्यानं चेत्थम्—"अथोच्येत् दृष्टो बहुवचनस्य प्रयोगश्चतुरादिषु चत्वारो ब्राह्मणा इति। तथेह। इहापि कपिञ्जल शब्दस्यदृष्टः प्रयोगः कपोते मयूरे च। महान कपोत उच्यते, कपिञ्जलोऽयं न कपोत इति। तथाल्पोमयूरः कपिञ्जलोऽयं न मयूर इति"।

अत्रापि "कपिञ्जलानालभते" इति नोदाहियते किन्तु महान् कपोत उच्यते इत्यादि, लौकिकवाक्यमुदाहियते। अथ नापि इदं सूत्रं सिद्धान्त पक्षस्थमपि तु पूर्वपक्षे आशंङ्का वचनम्। इतः पूर्वं यदुक्तम् "बहुवचनेन सर्वं प्राप्तेर्विकल्पः स्यादिति ११-१-३८" तदुपरि पूर्वपक्षे आशंकावचनमेतत् "दृष्टः प्रयोग इति चेत्" ११-१-३९ इति। एतदुत्तरं च—"भक्त्येति चेत्" ११-१-४०, इति आशङ्कानिरासस्सूत्रम्। आशङ्कावचनम् च सिद्धान्तायोपयुज्यमानं न साधु भवति॥ यद्यपि मिमांसादर्शने १२ अध्याये वेद विरुद्धानि सूत्राणि—"शामित्रे च पशुपुरोडाशो न स्यादितरस्य प्रयुक्तत्वात् १२-१-१३ मांसपाकप्रतिषेधश्च तद्वत् १२-२-२ मांसपाको विहितप्रतिषेधः स्यादाहुति संयोगात् १२-२६ सवनीयेछिद्रापिधानार्थत्वात् पशुपुरोडाशो न स्यादन्येषामेवमर्थत्वात् १२-२-८ क्रिया वा देवतार्थत्वात् ६ लिङ्गदर्शनाच्च १०, पशौतुसंस्कृतेविधानात् १२ पशोश्चविप्रकर्षस्तन्त्रमध्ये विधानात् ३३ पशौ च पुरोडाशे समानतन्त्रं भवेत् ११-३-१७ पश्वतिरेकश्च ११-४-२५ पशुगणेकुम्भीशूलवपाश्रपणीनां भेदः स्यात् ३६" इत्यादीनि सन्ति बहूनि, परन्तु न तथास्मिन् (दृष्टः प्रयोगइति चेत् ११-१-३९) सूत्रेकाचिन्मांस होमस्य पशुवधस्य च पुष्टिरस्ति॥ छागोवामन्त्रवर्णादिति सूत्रं द्वादशाध्याये मीमांसादर्शने नैवास्ति। मुधैव द्वादशाध्यायस्थेन सूत्रेणेति भवल्लेखः। न च तादृक् सूत्रेण पशोवधस्य समर्थनं संभवति। वधक्रियाऽदर्शनात्। छागशब्दमात्रोपन्यासेन छागवधाऽसिद्धेः॥ छागस्यवपाया मेदसोऽनुब्रूहि। इति मन्त्रो न चतसृषुवेदसंहितासु दृश्यते, नापि कृष्णयजुषोऽपि संकेतस्तत्रभवता कृतोस्ति। किन्तु यजुर्वेदे २१-४१ पाठभेदेन—"छागस्य वपायामेदसोजुषेताम्" इत्यादिकः पाठोदृश्यते। तत्र ततः पूर्वतनस्याश्विनाविति पदस्यान्वयास्ति अश्विपदेन च तत्र सूर्याचन्द्रमसोर्ग्रहणं सुकरम् तथासति सर्वस्य प्राण्यऽप्राणिस्थस्निग्ध भागस्य सूर्ये चन्द्रमसि चोप युज्यमानत्वे सुकरं व्याख्यानं, न ततोहि पशुबधस्य सिद्धिः कथमपि संभवति। यथाह निरुक्तकारः—"अश्विनौयद्व्यश्नुवाते सर्वंरसेनान्योज्योतिषान्यः ····· अहोरात्रा वित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके"। निरुक्त १२-१ एवं सति "मन्त्रेणापि हिंसोक्तेति हिंसा यागाङ्गम्" इत्युक्तिरमूला॥ ओषधेत्रायस्व स्वधिते मैन ॅ हि ॅ सीः (यजुः ६-१५) इति स्पष्टं हिंसानिषेधकवाक्यस्यापि यत्रहिंसापरोर्थस्तत्र नास्ति पशूनां कुशलं, भाग्यं तेषां मन्दं मन्ये। अस्मादृशैरस्मदादिभिरिव पूर्वैरपि कैश्चिद्वेदतत्त्वार्थमजानाद्भिर्हिंसायां विनियोगः कृतोस्ति यं दृष्ट्वैव निरुक्तकार आह निरुक्त १-१५ "अथाप्युपपन्नार्था भवन्ति ओषधेत्रायस्वैनम्। स्वधिते मैनं हिंसीरित्याह हिंसन्" इत्याशङ्क्य—"यथोएतदनुपपन्नार्था भवन्ति इत्याम्नायवचनादहिं साप्रतीयेत्त"। निरुक्त १-१६॥ एतेन निरुक्तकर्त्तुर्यास्कस्य ध्वनिरियं प्रतीयते यत् अहिंसापरेणाम्नायवचनेन विनियुक्तेन हिंसा न कर्त्तव्येति। अन्यच्च—कात्यायनो महर्षिराह—मन्त्रान्तैः कर्मादिः सांनिपात्योभिधानात्। का० श्रौ० १-३-५, अर्थः—अभिधानान्मन्त्रै तत्तत्कर्म प्रतिपादनात् मन्त्रान्तैर्मन्त्राणामन्तवचनैः सह कर्मादिः सांनिपात्यः संनिपात योग्यः करणीय इति यावत्। मनसि विचिन्त्य यथा कथनमेव कर्म कर्त्ता करोति। तदत्र यदि वेदेहिंसाभीष्टाऽभविष्यत् तर्हि हिंसार्थपरामन्त्रा (येवस्तुतो नैव विद्यन्ते) एव विनियुक्ता अभविष्यन्। तथाऽसति वेदो हिंसानिषेधत्येव न तु विदधातीति सुव्यक्तम्। तथात्वे कात्यायन एव स्वोक्तिविरुद्धं कथं नाम सूत्रयेत्—उत्तानं पशुं कृत्वाऽग्रेणनाभितृणं निदधात्योषधेइति कात्यायन० ६-६-८ अतएवनैतच्छुद्धंयेत्कात्यायनोमहर्षिरेव स्वोक्तिविरुद्धं पशुवधे पशुरक्षा विधायकं मन्त्रं विनियुञ्ज्यादिति। अपि केनचिदन्येनैतत्प्रक्षिप्तमिति मन्ये। न च कात्यायनकृतानि श्रौत सूत्राणि तैत्तरीयशाखापराणि किन्तु मूलयजुर्वेदपराण्येतौ। तथात्वे तैत्तिरीयशाखमनुसृत्य तद् ब्राह्मणंवानुसृत्यतद्वय—वस्थापनं न युक्तम्। न च मूलयजुर्विरुद्धमापस्तम्बंकश्चित्प्रज्ञावान् छद्धास्यति। "मैनं हिंसीरीति स्वाधितिना प्रहरतीति"॥ "मन्त्र व्याख्यारुपस्य ब्राह्मणस्याऽप्रामाण्ये" इत्याद्युक्तया ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यात्वाङ्गीकारे व्याख्यायामूलाऽविरोधेनैव प्रमाणत्वात् न मूलमन्त्र विरुद्धा ब्राह्मणव्याख्या विद्वद्भिरादरणीया। अस्मद्व्याख्यानं तु न मूल विरुद्धं नापिवेदान्यदेशस्थहिंसा निषेधक वाक्यान्यस्मत्पक्षेविरुद्धयन्ते। जातवेदोवपयेत्यादि पूर्वं प्रत्याख्यातम्। तथाऽग्नीषोमीयं पशुमालभेत··· इति वचनं न चतसृणां वेद सहितानां मध्ये दृष्ट चरम् नापि तत्र वधोविहितः।

न च आलभेतेत्यस्यार्थो हिंस्यादिति वक्तुं शक्यम्। आलम्भनं च कूटादिप्रायश्चित्त पूर्वकोपाकरण रशनापरिव्ययण यूपनियोजन प्रोक्षण स्त्रुच्या धारानन्तरकालिक समञ्जन पर्यग्नीकरण वपाश्रपणान्वारम्भणाधि गुप्तैषसमकाल शामित्रानुनयनाधस्ताद्बर्हिरपासन प्रत्यङ्मुखावस्थापनवाशादिप्रायश्चित्त संज्ञप्तहोमरशनाविमोकादिवाचकमिति भवदुक्तौ न किमपि मानमुपन्यस्तं भवता। वेदेषु वधस्याऽविहितत्वादुत निषिद्धत्वात् तत्तत्यागे प्रायश्चित्ताऽनुक्तेर्नैत-दालम्भनपदवाच्यं वेद विहितम्। मैनं हिंसीरिति स्पष्टं निषेधवचनात् वेदविरुद्धा हिंसेति सुव्यक्तम्। मा हिंस्यात्सर्वा-भूतानि इति संहितावाक्यमाश्रुत। परं भवन्मतेऽन्येषां ग्रन्थानामपि प्रामाण्यात् न भवांस्तदऽनादरं कर्त्तुमर्हति। प्रकरणेन पशुग्रहणेऽपि तद्वधस्यानुक्तत्वादथ च तद्वधनिषेधात् (मैनं हिंसीरिति निषेधः) न हिंसा विहिता जायते॥ अथ यद्भवानाह—सन्ते प्राणोवायुना गच्छताꣳसमङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिरा शिषा (यजुः ६-१०) आध्यात्मिक वायुः प्राणो बाह्यवायुना एकीभवतु पश्वङ्गानि यजत्रैः सह संगच्छन्तां यज्ञसाधनतां यान्त्विति तदर्थः। प्राणागमने कथमेतदुपपद्यताम्—तस्मात्प्रकरणनियमोऽवश्यंवक्तव्यः। हिंसा उपेयेति। अत्रोच्यते—पशो! (ते) तव (प्राणः) प्राणवायुः (वातेन) बाह्यवायुना सह (संगच्छताम्) संङ्ग प्राप्नुयात् (यजत्रैः) यज्ञसाधन पदार्थैः सह ते (अङ्गानि) (संगच्छन्ताम्) (यज्ञपतिः) यजमानः (आशिषा) (संगच्छताम्) संङ्ग प्राप्नुयात्। संगमनं हि गमनार्थकं न संभवति। बाह्यवायुसंगेनविना कस्याऽपि प्राणाः क्षणमपि स्थातुं न शक्नुवन्ति किन्तु सर्वे जीवा बाह्यवायुसंगेनैव जीवन्ति। अतोबाह्यवायुसंगोक्त्या पशोर्जीवन मेवोच्यते न तु मरणम् न च मारणम्॥ यच्चोक्तमन्तरेण दोहनं पयो न निस्सरति, दोहनं च मातुर्वत्सस्य च दुःखं जनयति। दुःखदापूर्वजननानुकूलो व्यापारो हि हिंसा इत्यादि। तन्न समीचीनम्। यासां गवां पयो यजमानादि भिर्निस्सार्यते ताभ्यो विशिष्टं भक्ष्यं भोज्यं च दीयते तत्कृतोपकारप्रत्युपकाररूपेण यत्पयोगृह्यते न तद्धिंसाकरम् इतरथा तु वेतनेन दत्तेनाऽपि भृत्येषु हिंसा दोषापत्तिर्दुर्वारा। श्रीमता भवतापि च पूर्वं प्राण वियोगानुकूलोव्यापारो हिंसेति—हिंसालक्षणं लिखितं तथात्वे नहि पयोनिस्सारणे हिंसां पश्यामः। कण्डिन्यादिषु या क्षुद्रजन्तुहिंसा सा न यज्ञियाऽपितुलौकिकी, नापि सा प्राणिवधोद्देशकृताऽपितु अनुद्दिष्टा। तस्याश्चापि प्रायश्चित्तभूतं वैश्वदेवबलिकर्म प्रात्यहिकमृषिभिरुपदिष्टं येन स्पष्टं तस्या अपि पाप जनकत्व, तथैव रुद्रयागादिषु यैर्भवदादिभिरज्ञान-मूलं पशुहिंसनमुपदिश्यते कार्यतेऽनुमोदयते वा तदापि पाप जनकं प्रायश्चित्तार्हमधर्मं वा स्वीकुर्वन्तु तत्र भवन्तः। "यजमानस्यपशून्पाहि" (यजुः १-१) इति श्रुतिर्नयज्ञाङ्गपशून्पाहि इति पदं बोधयति इति भवदुक्ति रपि न युक्ता। तत्रैव यजमानशब्दसत्त्वात् यज्ञाङ्गत्वसुव्यक्तेः सर्वेष्वेव यज्ञेषु घृताद्युपयोगेन पशवः प्रयोजनीयास्तद्रक्षणं च कर्त्तव्यत्वेनोपदेश्यमेव। यूपस्यखादिरत्वादि विधिः शास्त्रसंमता तत्फलं च विज्ञातमविज्ञातंवाऽस्तु न तेन कस्यापि पक्षसिद्धिः पक्षहानं वा। विहित प्रतिकूलपथाहृतेन लौकिकेन घृतादिना होमसिद्धौ यूपादि व्यर्थतोक्ता सा न। एवं चेत् पशुहोमार्थेऽपि मांसलाभो लोकसिद्धः स्यात् किं यूपादिनेति समानोदोषः॥ माश्रुदनुबन्ध्यपदे हननशंङ्कातन्नि-रासश्च। कानो हानिः यजमानप्रार्थ्ये द्विपदचतुष्पदसुखे यजनक्रिया संनिधानात् अवश्यं यज्ञ साधन पशूनां सुखं जीवनं च प्रार्थ्यते इति व्यक्तम्। अस्तु नामेह कृतानां कर्मणां भोगोऽमुत्र। नेतावताऽत्र कृतवधस्य पशोर्लोकान्तरे योन्यन्तरे च पशुत्वाभावात् पशुनिर्देशपूर्वकाशीः संगतिरायाति॥ अध्वर शब्दे नञो निषेधार्थ मनङ्गीकृत्याऽल्पार्थाङ्गीकारोऽपि यज्ञमर्मानभिज्ञतामूलः निरुक्तेध्वरतिर्हिंसाकर्मातत्प्रतिषेधोऽध्वरः इत्यर्थस्य विद्यमानत्वात्। सायणाचार्येणाऽपि "अग्ने यं यज्ञमध्वरम्" ऋग्वेद १-१-४ एतन्मन्त्र भाष्ये हिंसानिषेधार्थं एव विन्यस्तो न त्वल्पाऽपि हिंसाऽङ्गीकृता। एवं वेदे यागीयहिंसानिषेधात् वेदविरुद्धा वेदनिषिद्धा च हिंसा सा सुधीभिर्वैदिकैः सर्वदा सर्वथा वर्ज्यैव॥ अन्यदपि चाथर्ववेदे='मुग्धादेवा उतशुनायजन्नोत गोरङ्गैः पुरुधायजन्त" ७-५-५॥ इत्यादिना पशुना यजनं मुग्धकृतं वदन् निन्दति निषेधति च वेदः। अत्र देवा इत्येतेन यजमानाः इति वदति च सायणाचार्यः। तथा च सायणमतेनापि पशुयजनस्याऽज्ञानियजमान कृतत्वात्पशुहिंसा न यज्ञेकेनापि ज्ञानिना वेदाभिप्रायविदाकर्त्तव्येति स्पष्टमेव॥ एवं बहुधा यागीय हिंसायावेदाऽप्रतिपाद्यत्वेवेदविरुद्धत्वे वेदनिषिद्धत्वे च सिद्धे को विद्वान् अस्याः समर्थनं कुर्यात्॥ अध्वरशब्दो

यदि यज्ञे रूढोऽभविष्यत् न योगरूढ़स्तर्हि निरुक्तकारोऽस्य निर्वचनं नाकरिष्यत् । "ध्वराहिंसा तदभावो यत्र" सोध्वर इति देवराजयज्वा निरुक्तभाष्यकारोऽपि नावदिष्यत् तस्मात् हिंसारहित् एव यज्ञो भवतीति सिद्धम् । न त्वल्पहिंसायुक्तोऽध्वरः । भवतांचेयमल्पार्थेनञ्कल्पनास्वकपोलकल्पनैव नान्यदिति दिक् ।। "यद्धिशास्त्रं हिंसा दोष इति प्रत्यपादि" इत्यत्र येन शास्त्रेणेति वक्तव्ये यद्धिशास्त्र मित्युक्तिरयुक्ता । न च वेद शास्त्रं सनातनं हिंसां प्रतिपादयति यागे । अतएव राज्ञां शिक्षणरक्षणयोरधिकृतानां हन्तुर्हनन दोषाऽभावइव यागीयाहिंसानवेदविहिता । अविहिता च सती न दृष्टान्तमर्हति । सन्न्यायोदेति वक्तव्ये तन्न्यायोऽत्रेत्युक्तिरपि वक्तुरुक्तेरयुक्तत्वसाधिका । मांसं तु सवनीयानां चोदनाविशेषादिति यदाह भवान् जैमिनिसूत्रम् । तदप्यसत् । तत्रोपन्यस्तहेतोरसत्त्वात् । "चोदनाविशेषात्" इति हेतोर्वेदविहितत्वाऽभावात् । अपि च तद्विरुद्धत्वात्निषिद्धत्वाद्वा ।। "वेदार्थनिर्णयार्थं षण्णामपिसूत्राणां प्रमाण्यम्" इति लेखनं मूलाविरोधपर्यन्ततात्पर्येण । न तु यदर्थनिर्णयार्थं षण्णां शास्त्राणां प्रामाण्यमभ्युपगम्यते तद्विरोधार्थं तत्प्रामाण्यमभ्युपगन्तुं शक्यम् । एतेनैव "शमिता च शब्दभेदात्" इत्यपिप्रत्युक्तं बोध्यम् ।।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामित्यादि वाक्यान्तगतं मोहजनित हिंसादिपापकर्मणांतामसत्वे यदाह भवान्—"नहिशास्त्रप्रयुक्ताप्रवृत्तिर्मोहमूला" इति तदसत् । तत्रानुबन्धादीनां सर्वेषामेव मोहमूलत्वोक्तेः । शास्त्रे च तदऽप्रतिपादनात् ।। वीजैर्यज्ञेषुयष्टव्यमित्यादिवचनानां वसुना प्रत्युक्तत्वेऽपि ऋषिमत विरुद्धत्वात् प्रत्युक्तेरहेतु कत्वाच्च समादर एव वैदिकैः कर्त्तव्यः । धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितमिति भारत वचने स्पष्टं हिंसानिषेधेऽवैदिकत्वे चोक्ते तस्य कामकृत निन्दापरत्वोक्तिः साहसमूलाऽमूला वा । न तत्र वैदिककर्मणो निन्दाऽपि तु हिंसायाअवैदिकत्वं धूर्तकल्पितत्वं चोक्तम् ।। उक्त प्रकारेण मीमांसादर्शनस्थ सूत्राणां तेषां स्पष्टमवैदिकत्वे सिद्धे तन्मतेनैव तदप्रामाण्यं सुव्यक्तम् ।। तथात्वे वेदस्मृति भारतादि शिष्टवचनैर्हिंसाया यज्ञे निषिद्धत्वादऽविहितत्वाच्च यागीया हिंसा वैदिकैस्त्याज्यैवेति निरवद्यम् ।। इति शिवम् ।। "आर्यमुनि"

भावार्थ—

हम लोग जो यज्ञ में हिंसा को अवैदिक मानते हैं, विवाद विषय के स्पष्ट करने के वाक्यों को देखने के पश्चात प्रमाणों पर विचार करते हैं, "**वायव्यं श्वेतमालभेत**" यह वचन यज्ञ में हिंसा को वेदबोध्य होना सिद्ध नहीं करता, क्योंकि उक्त वाक्य में प्रथम तो पशु शब्द ही नहीं, यदि किसी प्रकार "**श्वेत**" विशेषण से विशेष्य पशु का ग्रहण हो भी जावे तो भी "**मालभेत**" क्रिया का अर्थ "**मारे**" नहीं है। किन्तु यजुर्वेद २४-२० पर महिधर ने भी "**मालभते**" अर्थात् नियुक्त करता है अर्थ किया है। कोई नहीं कह सकता कि "**नियुक्त करना**" =मारना है।

और यह जो कहा कि—"**विधिबोध्य वा वेदबोध्य, वा मन्त्रबोध्य है वा नहीं**" सो व्यर्थ है। क्योंकि आपके मत में विधि और मन्त्र दोनों वेद हैं बस वेदबोध्य कहने से शेष दोनों का अर्थ आ जाता। इसलिए तीन पद लिखने व्यर्थ और पुनरुक्त हैं, एक वेदबोध्य लिखना प्रर्याप्त था मालम्भन का अर्थ हिंसा के अतिरिक्त कात्यायन ने भी लिखा है, यथा पौर्णमामेष्टि प्रकरण में—"**संयौति जनयत्यैत्वेति समं विभज्यास ऽ हरिष्यन्नालभत इवमग्नेरिदमग्नीषोमयोः** ।। यह हव्य के आलम्भन में प्रयोग है, और "**सहाज्यं देवस्यत्वेति श्रपणं माभेरित्यालभते**" यह पुरोड़ाशश्रपण विशेष में अलम्भन का प्रयोग है, इत्यादि स्थलों में जैसे माङ्पूर्वक लभ धातु का स्पर्शन अर्थ है वैसे ही—'**वायव्यं श्वेतमालभेत**" यहां भी समझो ।। "**जातवेदोवपयागच्छदेवान्**......" इस मन्त्र को जो वपा होम समझकर लिखा है सो भी आपका इष्ट साधक नहीं, आपने जो पता (३ अष्टक, १ प्रश्न) दिया है, प्रथम तो ऋग्वेदादि में किसी एक का नाम स्पष्ट नहीं बताया फिर यदि अष्टक कहने से ऋग्वेद समझें सो भी नहीं, क्योंकि उसमें प्रश्न नाम

से कोई ग्रन्थ विभाग नहीं है किन्तु अष्टक अध्याय वर्ग मन्त्र वा मण्डल अनुवाक सूक्त मन्त्र यह विभाग क्रम है । यदि अष्टक मात्र को ठीक माने, प्रश्न लिखना आपकी भूल समझें सो भी नहीं क्योंकि ऋग्वेद के तृतीयाष्टक में ऐसी कोई ऋचा नहीं देखते, इसलिये जब तक यह न बतलाया जावे कि यह ऋचा कहां की है, तब तक उत्तर देना आवश्यक नहीं है, तथापि कुछ कहते हैं । यह ऋचा चारों वेद संहिताओं में से किसी संहिता की नहीं दीखती । न इसमें विधि वचन की रीति पर पशुवध कहा है कि—"**पशु मारो**" न अनुवाद की रीति पर पशुवध कहा, न अर्थवाद की रीति पर ! केवल इतना कहने से कि—"**हे अग्ने ! वपा से देवों के प्रति जा**" पशु का मारना नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार कि अन्त्येष्टि कर्म में स्वयं मरे हुए प्राणियों के उस-उस देहावयव को लक्ष्य में रखकर कहा जाता है कि—"**सूर्यंचक्षुर्गच्छतुवातमात्मा । द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा**" चक्षु आत्मा आदि, सूर्य वायु आदि में चले जावें । इसी प्रकार यह भी प्रतिपादन किया जाता है कि—चिता फूंके जाते हुए प्राणियों के देह की वपा आदि अग्नि सम्पर्क से वायु आदि में देवों में जावे । इससे यह नहीं कहा जा सकता कि—यह कार्य···वपा उधेड़ना पशु के वध बिना सम्भव नहीं । लोक में देखा जाता है कि—अपनी मौत मरे प्राणियों के भी वपा चर्म आदि उधेड़े जाते हैं ।। "**हृदयस्याग्रेवद्यति**" यह न वेद वचन है । न यह लिखा कि—अमुक ग्रंथ का वचन है । **अवदानं** और **सः** का समानाधिकरण्य भी वक्ता के बोध की सुन्दरता को सूचित करता है । नित्य प्रति अनेक पुत्रादि अपने पिता आदि में से अनेक कारणों से मरे हुओं के देहों को अग्नि मे होमते हैं । इस दशा में पंशु जो मनुष्यों के उपकारक गौ, घोड़ा, ऊंट आदि हैं, उनके भी देह दाह आदि में हिंसा नहीं हो सकती, आपने स्वयं लिखा है कि "**इसमें पशु पद नहीं है यह कहा जा सकता है**" तथापि आपने कोई समाधान नहीं किया, कि पशुपद न होने पर भी क्यों पशुग्रहण किया जावे ? और वध क्रिया न होने पर भी क्यों पशुवध में इसको प्रमाण माना जावे ? इसलिए यहां पशु और उसका वध समझना निर्मूल है । "**वसन्तायकपिञ्जलानालभते**" इसका उत्तर भी पूर्वोक्त के तुल्य है । क्योंकि इसमें भी आलम्भन क्रिया का वही अर्थ है । जैमिनी सूत्र के प्रमाण से यह सिद्ध करना कि कपिञ्जल का अर्थ प्राणि विशेष है, व्यर्थ है । क्योंकि इस पर विवाद ही कुछ नहीं कि कपिञ्जल का अर्थ प्राणी है वा नहीं, असाध्य को सिद्ध करना व्यर्थ है किन्तु पशु का वध करना आपका साध्य है । उसमें आप प्रमाण दें, वह इस मीमांसा सूत्र से सिद्ध नहीं होता । आपने जो "**जातवेदोवपया**····· " के व्याख्यान की टिप्पणी में "**घृतेन**" का घृत वपा से अर्थ किया है, सो ठीक नहीं । यदि किसी प्रकार घृत शब्द से घृतस्थ वपा का ग्रहण करो तो यह हमारे पक्ष में सुगमता होगी, न कि आपके पक्ष में । क्योंकि इस दशा में जहां-जहां वपा शब्द आवेगा, हम घृतस्थ वपा का ग्रहण करेंगे । "**दृष्ट : प्रयोग इति चेत्**" यह सूत्र मीमांसादर्शन में ११-१-३९ में हैं, ११ अ०, प्र० ८ म० इस संकेत पर नहीं । और मीमांसा दर्शन में अध्याय का अ० । पाद का पा० सूत्र का सू० हो सकता है । यही उसमें क्रम है । हम नहीं जानते कि उसमें अ० प्र० म० क्यों लिखा है ? इसी प्रकार पूर्व भी अस्तव्यस्त अष्टक प्रश्न लिख दिए थे, और एक आश्चर्य देखिए । यद्यपि हम इस पर विवाद नहीं करते कि "कपिञ्जल" शब्द प्राणी विशेष का वाचक है वा नहीं, परन्तु इस पर "**दृष्टः प्रयोग इति चेत्**" प्रमाण देना ठीक नहीं क्योंकि इस सूत्र में यह नहीं कहा गया कि "कपिञ्जल" का अर्थ प्राणी विशेष है, हम उस सूत्र का शाबर भाष्य नीचे लिखते हैं—

"यदि कहा जावे कि बहुवचन का प्रयोग चार —४ आदि में देखा जाता है, जैसा चार—४ ब्राह्मण ऐसे ही यहां भी कपिञ्जल शब्द का प्रयोग कपोत=कबूतर और मयूर=मोर में देखा जाता है । कबूतर बड़ा कहा जाता है, यह "कपिञ्जल" है, कबूतर नहीं । मोर छोटा कहा जाता है, यह "कपिञ्जल" है, मोर नहीं ।।

इस भाष्य में यह नहीं लिखा कि "**कपिञ्जलामालभते**" वाक्य इसका उदाहरण हो । तथा यह सत्र सिद्धांत पक्ष का भी नहीं, किन्तु इससे पूर्व जो···"**बहुवचनेन सर्वप्राप्तेर्विकल्पः स्यात्**:" ११-१-३८ यह सूत्र है, इसी पर यह

"दृष्टः प्रयोग इतिचेत्" ११-१-३९ आशंकावचन है। और आगे "भपतयेतिचेत्" ११-१-४० यह आशंकानिवारण (निरास) सूत्र है, फिर आशंका सूत्र को सिद्धान्त सूत्र के स्थान में लगाना कैसे ठीक हो सकता है ? यद्यपि मीमांसा दर्शन अध्याय १२ में अनेक प्रक्षिप्त वा वेद विरुद्ध सूत्र हैं, (देखो पूर्व पृष्ठ ११७ में नमूने के लिए संस्कृत लेख में हम १२ सूत्र दिखला आये हैं) परन्तु "दृष्टः मयो···" इस सूत्र में कोई मांस होम वा पशुवध की पुष्टि नहीं।। "छागो वा मन्त्रवर्णात्" यह सूत्र मीमांसा दर्शन अध्याय १२ में नहीं है। मिथ्या ही आपने १२ अध्याय का पता लिख दिया है। फिर दूसरी बात यह भी है कि, इस प्रकार के सूत्र से पशुवध का समर्थन भी नहीं होता, क्योंकि उसमें वध क्रिया नहीं है। छाग शब्द मात्र लिखने से छाग (बकरे) का वध सिद्ध नहीं हो सकता, यूं तो मनुष्य शब्द आ जाने से कोई मनुष्य बलि सिद्ध करने लगेगा। "छागस्य वपाया मेदसोनुब्रूहि" यह मन्त्र चारों वेद संहिताओं में नहीं है, न आपने कृष्ण यजु: का कोई पता दिया है, किन्तु यजुर्वेद २१-४१ में पाठ भेद से "छागस्य वपाया मेदसो जुषेताम्" इत्यादि पाठ है, उसमें उससे पूर्व से अश्विपद का अन्वय है। अश्वि शब्द से वहां सूर्य चन्द्रमा का ग्रहण सुगम है। इस दशा में समस्त प्राणी और अप्राणी में स्थित स्निग्ध भाग का उपयोग होने से व्याख्यान करना, सुगम है। जिससे पशुवध की सिद्धि किसी प्रकार सम्भव नहीं, जैसा कि निरुक्त १२-१ का प्रमाण संस्कृत में दिया गया, (पृष्ठ ११८ पंक्ति ३-५) इससे आपका यह लिखना निर्मूल है कि "मन्त्र से भी हिंसा कही गई" इससे हिंसा यज्ञ का अंग है।। "ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैन ँहिँसीः" (यजुर्वेद ६-१५) जहां ऐसे स्पष्ट हिंसा निषेधक वाक्यों का भी हिंसापरक अर्थ हो, वहां पशुओं का कुशल नहीं, उनका मन्द भाग्य समझता हूं। जिस प्रकार आज अच्युताश्रम स्वामी जी हिंसा में विनियोग करते हैं, इसी प्रकार पूर्व भी किन्हीं वेद तत्त्वार्थ न जानने वालों ने इसका विनियोग किया जान पड़ता है, जिसको देखकर ही निरुक्तकार ने कहा था कि—"अथाप्युपपन्नार्था भवन्ति ओषधे त्रायस्वैनं स्वधिते मैनं हिंसीरित्याह हिंसन्। १-१५" यह शंका करके—"अथो एतदनुपपन्नार्था भवन्ति इत्याम्नाय वचनाद हिंसा प्रतीयेत। निरुक्त, १-१६।।" इससे निरुक्तकार यास्कमुनि की यह ध्वनि जान पड़ती है कि अहिंसापरक वेद वचन से हिंसा नहीं करनी चाहिये। वे कहते हैं कि यदि हिंसा करते हुए अहिंसापरक=हिंसानिषेधक वाक्यों से काम लिया जाय तो वेद अनर्थक होंगे। वेदों की सार्थकता इसी में है कि अहिंसक वाक्यों का विनियोग अहिंसा में ही हो।। इसके अतिरिक्त कात्यायन महर्षि भी कहते हैं कि—"मन्त्रान्तैः कर्मादिः सांनिपात्योभिधानात्"। (कात्यायन श्रौत सूत्र) १-३-५" अर्थात् मन्त्रों से जो-जो काम करते हैं उस-उसका मन्त्रों में वर्णन आने से चाहिए कि मन्त्रों के अन्त वचनों से कर्मादि किया जावे। मन में विचार कर, कर्त्ता निज कथनानुकूल ही कर्म किया करता है। सो यदि वेद में हिंसा अभीष्ट होती तो हिंसार्थ युक्त मन्त्र ही हिंसा में (कर्म काण्ड में) विनियुक्त होते। परन्तु ऐसा नहीं है। इस दशा में वेद हिंसा का निषेध ही करता है, न कि विधान ! यह स्पष्ट है। ऐसा है तब कात्यायन ही भला अपने कथन और नियम के विरुद्ध, हिंसा निषेधक मन्त्रों को हिंसा में विनियुक्त करता हुआ कैसे लिखता कि "उत्तानं पशुं कृत्वाऽग्रेण नाभिं तृणं निदधात्योषध इति" (कात्यायन श्रौत सूत्र ६-६-८) अर्थात्-पशु को उलटा करके नाभी के आगे तृण धरता है। और "ओषधे त्रायस्व" मन्त्र पढ़ता जाता है।। इससे मैं यह नहीं मानता कि - कात्यायन महर्षि ही अपने वचन नियम के विरुद्ध पशु रक्षा विधायक मन्त्र का विनियोग उलटा पशुवध में करता। मैं जानता हूं कि, यह किसी और ने कात्यायन श्रौत सूत्र में मिला दिया, तथा कात्यायन कृत श्रौत सूत्र तैत्तरीय शाखापरक नहीं है, किन्तु मूल (शुक्ल) यजुर्वेदपरक है। इस कारण तैत्तरीय शाखा वा उसके ब्राह्मण के अनुसार उसकी व्यवस्था लगाना ठीक नहीं। और मूल यजुर्वेद से विरुद्ध आपस्तम्ब पर कोई बुद्धिमान श्रद्धा न करेगा कि—"मैनं हिंसारिति स्वधितिना प्रहरतीति" "इसको मत मार" कहकर तीक्षणधार से मारता है। भला यह उलटा विनियोग कौन मानेगा ? आपने यह जो कहा कि– 'मन्त्र की व्याख्या एव ब्राह्मण···" इत्यादि इससे आपने ब्राह्मण को वेद की व्याख्या होना स्वीकार किया। यदि स्वीकार किया तो व्याख्या मूल के अविरुद्ध ही प्रमाण हो सकती है। न कि मूल मन्त्रों के विरुद्ध !

ब्राह्मणकृत व्याख्या विद्वानों को आदर योग्य हो। हमारा व्याख्यान न तो मूल के विरुद्ध है, न हमारी व्याख्या में वेद के अन्य देशस्थ वाक्य विरुद्ध पढ़ते हैं, "**जात वेदो वपया**…" का उत्तर पूर्व दे दिया है, "**अग्निषोमीयं पशुमालभेत**" यह वचन चारों वेद संहिताओं में नहीं देखा जाता, न इस वचन में वध करना कहा और "**आलभेत**" क्रिया का अर्थ "**मारे**" भी नहीं हो सकता आपने जो "आलम्भन" का अर्थ किया है कि—कृटादि प्रायश्चित पूर्वक उपाकरण, रस्सी लपेटना, यूप से बांधना, प्रोक्षण, स्त्रुच्याधार के पश्चात् समञ्जन, पर्यग्निकरण, वपा पकाना, अन्वारम्भण, अधिगु की आज्ञा के साथ (पशु को) शामित्रशाला को ले जाना, (पशु के) नीचे कुशा बिछाना, पश्चिमाभिमुख खड़ा करना वाशादि प्रायश्चित, संज्ञप्त होम, रस्सी खोलना आदि, "आलम्भन" का अर्थ है। आपके इस कथन में आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। वेदों के वध के विधान न होने और निषेध होने से और उस (वधादि) के त्याग में प्रायश्चित न कहने से यह आपका किया "आलम्भन" का अर्थ वेद विहित नहीं॥ '**मैनं हिंसी**' (यजु: ६-१५) इस स्पष्ट हिंसा निषेधक वाक्य से सिद्ध है कि, '"**हिंसा वेद के विरुद्ध है**"॥ "**मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि**" यह संहिता का वचन न हो पर आपके मत में तो अन्य पुस्तक भी माननीय है, तब आप इसका अनादर करें सो ठीक नहीं। प्रकरण से पशु का ग्रहण हो तब भी पशु का वध न कहने और पशुवध का निषेध होने से (मैनं हिंसीः) हिंसा वेद विहित नहीं, निषिद्ध है॥ आपने जो कहा कि—"**सन्ते प्राणो वायुना गच्छताँ᳕समगंनि यजत्रैः संयज्ञपतिराशिषा**" (यजु: ६-१०) अर्थात्—"आत्यात्मिक वायु प्राण बाह्य वायु के साथ एक होवे, पशु के अंग यज्ञ के साधन बनें" प्राण न जाने (न मारने) पर यह कैसे हो सकता है? इससे प्रकरण का नियम अवश्य वक्तव्य है। कि हिंसा ग्रहण करनी। उत्तर—इसका अर्थ यह है कि प्रकरण से हे पशो! (**ते**) तेरा (**प्राणः**) प्राण वायु (**वायुना**) बाह्य वायु से (**संगच्छताम**) संगत हों, (**यज्ञपतिः**) यज्ञमान (**आशिषा**) आर्शीवाद से (**संगच्छताम्**) मिले॥

"**संगमन**"=संगति=मिलना का अर्थ "**गमन**"=गति=जाना किसी प्रकार सम्भव नहीं, फिर आप प्राण निकलने का अर्थ कहाँ से करते हैं? बाह्य वायु संग के बिना किसी प्राणी के प्राण नहीं ठहर सकते, किन्तु सब जीव बाहर के वायु के श्वास लेकर ही जीवित रहते हैं, इसलिए बाह्य वायु के संग कहने से पशु के जीवन का आशिष पाया जाता है, न कि मरना वा मारना॥ यह जो आपने कहा कि—दुहे बिना दुग्ध नहीं निकलता, और दुहना माता और बछड़े को दुःखदायक है। दुखदायक अपूर्व जननानुकूल व्यापार का नाम ही हिंसा है, इत्यादि, सो ठीक नहीं, क्योंकि जिन गौवों का दुग्ध दुहा जाता है, उनको विशेष भक्ष्य भोज्य दिया जाता है। उस उपकार के प्रत्युपकार में वह दुग्ध लिया जाता हैं, सो हिंसाकर नहीं, यदि आप ऐसा मानेंगे तो आपके मत में भृत्यों को वेतन देकर दुःखद् काम लेना भी हिंसा से न बचेगा। आपने भी पहले हिंसा का यह लक्षण किया था कि—"**प्राण वियोगानुकूलो व्यापारो हिंसा**" इस दशा में दुग्ध निकालने में हिंसा नहीं पाई जाती, चुल्हा-चक्की आदि में जो क्षुद्र जन्तुओं की हिंसा होती है। वह यज्ञ सम्बन्धिनी नहीं है, किन्तु लौकिकी है, उसमें प्राणी के वध का उद्देश्य भी नहीं, किन्तु बिना उद्देश्य है। फिर उस हिंसा (पाप) का भी प्रायश्चित भूत बलि वैश्वदेव नित्य कर्म ऋषियों ने बताया हैं, जिससे उसका भी पाप होना स्पष्ट है। इसी प्रकार रूद्रयागादि में आप सरीखे जो लोग अज्ञान से पशुवध का उपदेश करते हैं, वा कराते वा अनुमोदन करते हैं, वह भी पाप जनक अधर्म प्रायश्चिताई है ऐसा स्वीकार कीजिये। "**यजमानस्य पशून पाहि**" (यजु० १-१) इसको आप कहते हैं कि इसमें यज्ञांगं पशुओं की रक्षा का विधान नहीं, किन्तु घरेलू पशुओं की रक्षा का विधान है, सो आपका कथन इसलिये ठीक नहीं कि—उसमें "**यजमानस्य**" पद उपस्थित है, जो यज्ञ करने वाले का नाम है, फिर घरेलू पशु का ग्रहण क्यों? और यज्ञ के पशु का त्याग कैसे हो सकता है? सब ही यज्ञों में घृतादि के उपयोगार्थ पशुओं की रक्षा और प्रयोजन पड़ता है। जो अवश्य उपदेश करना चाहिये, यूप का यह विधान कि वह खदिर=खैर (काष्ठ विशेष) का हो, शास्त्र सम्मत है। उसका फल भी चाहे कोई जानता हो वा न जानता हो

उससे किसी के पक्ष की सिद्धि वा हानि नहीं। आप जो कहते हैं कि शास्त्र विधान से विरुद्ध मार्ग द्वारा लाये हुवे धृतादि से होम हो जायगा, इससे यूप आदि व्यर्थ है, सो नहीं। यदि ऐसा हो तो मांस होमार्थ भी कसाई आदि की दुकान के मांस से (आपके मत से) होम हो सकता है, तब यह दोष दोनों पक्ष में समान रहेगा। वास्तव में यह दोष देना ही नास्तिकता है कि अशास्त्रीय धृतादि सिद्ध होम हो सकता है। क्योंकि जिसका विधान हो वही कर्त्तव्य है॥ अनुबन्ध्य पद में हनन की शंका मत हो और उसका खंडन भी न हो, हमारी क्या हानि है? यजमान को जहाँ दुपाये और चौपायों की रक्षा प्रार्थना वा विधान है, वहाँ यजन क्रिया के सम्बन्ध से अवश्य यज्ञ साधन पशुओं की ही रक्षा सुख और जीवन का तात्पर्य है। न कि अन्य साधारण पशुओं का! यहां किये हुवे कर्मों का फल भोग परलोक में हो, इससे वध किये हुए पशु को लोकान्तर वा अन्य योनि में पशुपना न रहने से पशु कहकर दिया आर्शीवाद संगत नहीं होता॥ "**अध्वर**" शब्द के अर्थ में जो "**नञ्**" का अर्थ आप "**अल्प**" करते है और निषेधार्थ को नही मानते सो यज्ञ का मर्म न जानने से। निरुक्त में ध्वरति का अर्थ हिंसा और "अध्वर"—यज्ञ का अर्थ हिंसा रहित है। सायणाचार्य ने भी "**अग्ने यं यज्ञमध्वरम्**" (ऋग्वेद १-१-४) इस मन्त्र के भाष्य में "अध्वर" का अर्थ अहिंसापरक ही किया है न कि अल्पहिंसा युक्त! इस प्रकार वेद में यज्ञ की हिंसा का निषेध होने से हिंसा वेदविरुद्धा और वेदनिषिद्धा है, जो सब वैदिक पण्डितों को सर्वथा त्याज्य ही है॥ अथर्व वेद में भी हिंसायुक्त यज्ञ का निषेध है, यथा—"**मुग्धा देवा उत-शुना यजन्तोत गोरगैः पुरुधान्यजन्त**"॥ ७-५-५॥ इसमें बतलाया गया है कि गौ और कुत्ते तक उत्तम और अधम पशुओं से यज्ञ करते हैं वे अज्ञानी हैं अर्थात् यज्ञ विधायक मन्त्रार्थों को नहीं समझते हैं। इससे स्पष्ट है कि आजकल जैसे आप लोग बिना तत्त्व समझे यज्ञ में पशुबलि का पक्ष लेते हैं, ऐसे लोगों को ही उक्त मन्त्र मुग्ध=अज्ञानी वा बेसमझ बताता है। इस मन्त्र में देवाः=यजमानाः सायणाचार्य ने भी लिखा हैं, इससे सायणमतानुसार भी सिद्ध हुआ कि यज्ञ में पशु मारना अज्ञानी=वेदार्थ न जानने वाले यजमानों का काम है जो वेद तत्वार्थ जानने वाले विद्वान् को नहीं करना चाहिए॥

इस प्रकार यज्ञ में पशुवध के वेद से अप्रतिपादित होने, वेद विरुद्ध होने और निषिद्ध सिद्ध होने पर कौन विद्वान इसका पक्ष लेगा? कोई नहीं। "अध्वर" शब्द यदि यज्ञ में रूढ़ि (बिना अर्थ) होता तो निरुक्तकार इसका निर्वचन न करते और देवराजयज्वा निरुक्त के भाष्यकार भी न कहते कि—"**ध्वरा हिंसा तदऽभावो यत्र**" अर्थात् "ध्वरा हिंसा का जिसमें अभाव हो उसको अध्वर=यज्ञ कहते हैं' इससे भी सिद्ध है कि यज्ञ हिंसारहित ही का नाम है, न कि अल्प हिंसायुक्त का! और आपकी यह कल्पना कि अध्वर का नञ्=अ, अल्पार्थ है, निषेधार्थ नहीं, यह केवल कपोल कल्पना है, अन्य कुछ नहीं॥ आप जो कहते हैं कि जो शास्त्र "**हिंसा**" को दोष बताता हैं, वही यज्ञ में हिंसा का विधान करता हैं, तब शास्त्राज्ञा में विवाद क्या? सो आपका कथन ठीक नहीं। "**येन शास्त्रेण**" लिखना था, '**यत् शास्त्रम्**" अशुद्ध है, क्योंकि प्रत्यपादि क्रिया कर्म प्रधान है। कर्त्ता में तृतीया होनी चाहिए। सनातन वेद शास्त्र यज्ञ में हिंसा का प्रतिपादन भी नहीं करता। इसलिए यह दृष्टान्त भी व्यर्थ है कि शिक्षा रक्षा में नियुक्त राजपुरुषों को जैसे राजज्ञानुसार किसी के मारने में दोष नहीं इसी प्रकार विहित हिंसा में दोष नहीं। क्योंकि दण्ड विधायक वचनों के सहारे तो यज्ञ में पशु नहीं मारे जाते वे तो निरपराध मारे जाते हैं, "**स न्याय**" का "**तन्नायः**" लिखना भी अशुद्ध हैं॥ आपने जो जैमिनी सूत्र लिखा कि—"**मांसं तु सवनीयानां चोदना विशेषात्**" यह इसलिए ठीक नहीं क्योंकि इस सूत्र में जो हेतु दिया है कि "**चोदना विशेषात्**"=वेद में विधान विशेष होने से। वेद में विधान नहीं है। इसलिए यह हेतु सत्य नहीं और वेद विरुद्ध होने से त्याज्य है। हमारा यह लिखना कि—"**वेदार्थ निर्णय के लिए छः शास्त्र प्रमाण होंगे**" वेदानुकूलता के तात्पर्य से था, न कि वेद विरुद्धता में! कि जिस वेद का अर्थ निर्णीत करने को ये शास्त्र प्रमाण किये गए उसी वेद के विरोधार्थ इनको प्रमाण माना जावे। इसी से "**शमिता च शब्द भेदात्**" यह

मीमांसा सूत्र भी उत्तरित समझिये ॥ हमने "**अनुबन्धं क्षयं हिंसाम्**" इत्यादि भारत के वचन से हिंसा को तामस कर्म बताया था, इसका जो अब आप यह उत्तर देते हैं कि यह मोह से किये कर्म को तामस कहा है। शास्त्र की आज्ञा से किया पशुवध मोहकृत नहीं, शास्त्र मनुष्य को अधर्म में नहीं लगाता, यह आपका उत्तर इसलिए ठीक नहीं कि—वहां भारत के उस वचन में अनुबन्ध क्षय, हिंसा सभी को मोह मूलक बताकर तामस बताया है। सत् शास्त्र कोई कहीं हिंसा का यज्ञार्थ प्रतिपादन नहीं करता, वेद विरुद्ध शास्त्र जो शास्त्राभास है, उनका कहना ही क्या है ? हमने जो यवादि बीजो से यज्ञ करने में भारत का वचन प्रमाण दिया था और बकरे का निषेध किया था आप जो हमारे उत्तर में यह लिखते हैं कि, उस विवाद के मध्यस्थ वसु ने बीजों से यज्ञ न करने और बकरे से करने का निर्णय कर दिया, इसलिए माननीय नहीं। आपका यह उत्तर इसलिए ठीक नहीं कि—उसमें ऋषियों का मत यह था कि, बीजों से यज्ञ करना देवताओं का यह कि बकरे से, तब वसु ने मध्यस्थ बनकर निर्णय किया सो आर्ष मत के विरुद्ध तथा पक्षपात से किया, निष्पक्ष नहीं। वहां स्पष्ट लिखा है कि "**वसुना पक्ष संश्रयात्**" वसु ने पक्षपात से निर्णय किया इसलिए वैदिक सिद्धांतों को जो निष्पक्ष हों, माननीय नहीं ॥ हमने जो भारत के वचनों से यज्ञ की हिंसा को धूर्तों का चलाया हुआ वेद विरुद्ध सिद्ध किया था उसका उत्तर जो आप यह देते हैं कि वहां धर्म व्याध ने जांजलि को उपदेश करते हुये कामकृत कर्म और वैदिक कर्म की निन्दा की है सो ज्ञान की प्रशंसा मात्र है, यह आपका उत्तर इसलिए ठीक नहीं कि वहां तो स्पष्ट लिखा है कि—"**धूर्तैः प्रकल्पितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्**" यह धूर्तो ने यज्ञ में हिंसा चलाई है, यह वेद में विहित नहीं, इससे वैदिक कर्म की निन्दा नही किन्तु इस कर्म का अवैदिक होना और वेद विरुद्ध होना स्पष्ट है तथा धूर्तो का प्रचरित किया होना सिद्ध है ॥ इस प्रकार से मीमांसा दर्शन के उन सूत्रों की अवैदिकता सिद्ध होने पर उसी (मीमांसा) के मत से अप्रमाणता स्पष्ट हुई यह वेद, स्मृति, भारत इत्यादि शिष्ठसम्मत ग्रन्थों के वाक्यों से यज्ञ में हिंसा के निषेध और अविहित होने से यज्ञ की हिंसा वैदिकों को त्यागने योग्य है, स्पष्ट है ॥

"आर्य मुनि"

श्री स्वामी अच्युताश्रम जी द्वारा भेजा गया द्वितीय पत्र—

द्वितीय पत्रस्योत्तरमिदं यदाह किं ते प्रमाणमिति प्रश्नस्य समाधानं चतसृणां मूलवेद संहितानां प्रामाण्यं क्रियत इति निजशक्तयभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यमिति कपिलोपि स्वतः प्रामाण्यं संहितानामाहेति च तदसत् न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेरिति पूर्वसूत्रेण वेदमात्रस्य ग्रहणेऽत्र संहिताग्रहणानुपपत्तेः न वेद पदं संहिता मात्रमाह मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमितिपरिशिष्टेकात्यायनर्षिराह आह च जैमिनिः वेदोवाप्रायदर्शनादिति परिशिष्ठं न परिभाषापरं प्रामाणिकार्थ वेदकत्वाच्च वेद इति व्युत्पत्तिसंभवात् मन्त्रेपि परिभाषापत्तेः मन्त्रो वा वेदशब्दभाङ् न स्यात् परिभाषां बिना व्यवहारासंभवात् अदेङ्गुणः इति तच्छास्त्रपरिभाषावत् वैदिकपरिभाषापि प्रयोजनवत्येव व्यवहारलाघवं हि प्रयोजनमतोपि वेद पदं मन्त्रब्राह्मण समुदायमेव वक्ति इत्थं च वेद सामान्यविचारं च प्रस्तुत्य संहितामात्रस्य प्रामाण्यं कथं ब्रूयात् कपिलर्षिः ॥ प्रमाणसिद्धाः कति पदार्था इति प्रश्नस्योत्तरं नालिखतत्र कारणं स एव जानाति यत्तु प्रमाणसिद्धाः यवादयोहव्यपदार्था इति तल्लेखनमनुपयुक्तं तस्य प्रश्नाविषयत्वात् विषयश्च प्रश्नस्य द्रव्यगुणादि रतोननुरूपं-यदर्थं तेषामुपगममिति तृतीयोपि प्रश्नोन समाहितः पदार्थानामनुक्तेस्तन्नि-बन्धितप्रयोजनानुक्ति संभवात् दयानन्दमुनेर्हृदयापरिज्ञानमूलं वेति विदांकुर्वन्तु सन्तः ॥ प्रमाणानां प्रामाण्यं किं रूपमिति प्रश्नतात्पर्यमजानन् मूले मूलाभावाद् मूलं मूलमिति यत्कपिलसूत्र मुदाहरत् तत्कारणस्य कारणान्तरांगीकारेऽनवस्थेति मूले कारणस्य कारणान्त राभावपरं नायं कारणान्तरं वा प्रमाणान्तरं वाऽपृच्छत् अज्ञातज्ञापकत्वं वा उततद्वृत्ति धर्मा प्रकारक ज्ञान जनकत्वं वा प्रामाण्यमिति तद्विदित्वा एवं लेखनं श्रमकरमेव ॥ मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदः प्रमाणं नवेति पृष्टप्रश्नस्य

समाधानं प्रथमप्रश्नान्तर्गतमेवेति तन्न सम्यक्प्रमाणसामान्य विषयकः प्रथमः प्रमाणविषयको द्वितीयः तथा च प्रथमेन न द्वितीय समाधिः । वेदोक्तं कर्मानुष्ठेयं नेति प्रश्नोन्तरमनुष्ठेयमिति तत् सम्यगेव । वेदैकदेशप्रामाण्ये किं मानमिति प्रश्नोत्तरं तदसदेव त्वनुक्तेः । वेदार्थ निर्णायकं शास्त्रं किमप्यस्ति चेति प्रश्नोपिवेदार्थ निर्णायकानि षट् शास्त्राणीति सम्यक् समाहितः ।। स्मृतीनां प्रामाण्यमस्ति नवेति प्रश्नोपि वेदानुकूलं प्रमाणं स्मृतय इति लेखनं युक्तमेव परन्तु पुरापि नवं भवतीति लाक्षणिकोयं पुराणशब्द इति लेखनं न संगतं रूढ्यर्थपरित्यागात् मुख्येकार्यसंप्रत्ययन्याय-विरोधात् ब्राह्मणं पुराणशब्दार्हं न भागवतादिकमिति तन्मंदं न ब्राह्मणं पुराणमिति प्रसिद्धं किं तु वेदत्वेन तथा च अक्षपादसूत्रं विध्यर्थवादानुवाद—वचनविनियोगादिति अत्र भाष्यं त्रिधाखलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधि-वचनान्यर्थवाद वचनानि अनुवादवचनानीति— जैमिनिरपि शेषे ब्राह्मण शब्दइत्याह अत्रभाष्यं शाबरं मन्त्राश्च ब्राह्मणं च वेद इति एवं वेदोवाप्रायदर्शनादिति ब्राह्मणे वेदपदप्रयोगः जैमिन्युक्तः ब्राह्मणस्य वेदत्वे संगतो भवति, अतो न ब्राह्मणं पुराणं । यदपि प्रयोगा साधुत्वं लिखितवान् स प्रष्टव्यः किं भाव्यमिति शब्दा-साधुत्वमुतार्थासाधुत्वं नाद्यः भूप्राप्ताविल्यस्मात् भावयितुं योग्यो भाव्य इति शब्द साधुतासंभवात् अत्र व्याकरणप्रमाणं पत्रान्तरेवक्ष्ये नामरूपगुणैर्भाव्य* मिति प्रयोगात् भवन्तमिति परसवर्णाभावोले—खकप्रमादः यत् लेखनीयमिति ना साधुसंधेर विवक्षितत्वाद्वाप्ये प्रश्न इत्येकवचनं नानुपपन्नं द्रव्यं गुणस्तथा कर्मेत्येकवचनं जात्यभिप्रायं यथा तद्वत्प्रकृतेप्युपपद्यते तस्यापि उत्तरमिति साधुरेव वाच्यत्वात् गीर्वाणवाण्येत्यपि साधुरेव वाणीपदस्य भाषा परत्व संभवात् कालोपि शास्त्रार्थ रसं पास्यतीतित्वत्प्रयोगवत् ।। स्वतः प्रामाण्यं क्रियत इति कथं ते प्रयोगः प्रामाण्ये कृतिसाध्यत्वबाधात् तद्वदेव प्रमाणाणं प्रमाणं भवितुमर्हतीति प्रयोगोनुचितः तद्वदेवेति वाच्यं हि यथा मूलममूलं तथा प्रमाणं प्रमाणरहित मित्येतमर्थं प्रति-पादयति तद्विरुद्धं चेवं प्रमाणानां प्रमाणं भवितुमर्हतीति कथं ह्यत्रबोधः प्रमाण सम्बन्धि प्रमाणमित्यङ्गीकारे तत्प्रमाणं निरूपणीयं नित्योनित्याना मितिवत् प्रमाण वृत्ति प्रमाणत्वसं पादकमिदं प्रमाणमिति उपगमोप्यनुपपन्नः प्रनवस्था-प्रसंगात् । षष्ठ प्रश्न इति वक्तव्ये तृतीय इति लेखनमशुद्धं किन्त्विवति वक्तव्ये किंचेति प्रयोगोनुपपन्नः ब्राह्मणानां न वेदत्वमित्यत्र हेत्वनुक्तेर्न्यूनतेति शिवम् ।।

आषाढ़स्यासिते पक्षे सप्तम्यामिन्दुवासरे । न युक्ताः वैदिकीत्येष शास्त्रविनिर्णयः ।।"

"अच्युतस्वामी"

भावार्थ—

तुम क्या प्रमाण मानते हो ? इस प्रश्न के उत्तर में जो कहा कि चार वेदों की मूल संहिता । और इसमें स्वतः प्रामाण्य का यह प्रमाण दिया है कि —"**निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्**" यह कपिल सूत्र संहिताओं को स्वतः प्रमाण कहता है सो ठीक नहीं क्योंकि "**न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्व श्रुतेः**" इस पूर्व सूत्र से वेद मात्र के ग्रहण में संहिता का ग्रहण सिद्ध नहीं । वेद पद का अर्थ संहिता मात्र नहीं । कात्यायन महर्षि ने परिशिष्ठ में— "**मन्त्र ब्राह्मण योर्वेदनामधेयम्**" कहा है और जैमिनि ने भी कहा है कि—"**वेदो वा प्रायदर्शनात्**" परिशिष्ठ परिभाषा परक नहीं । प्रामाणिक आर्य वेदक होने से "**वेद**" यह व्युत्पत्ति हो सकती है । इससे मन्त्र में भी परिभाषा की आपत्ति होने से वा मन्त्र भी वेद शब्द का भागी न रहेगा । परिभाषा के बिना व्यवहार नहीं चल सकता जैसा कि —"**अदेङ्गुणः**" इस व्याकरण की परिभाषा बिना वहां काम नहीं चल सकता, इसी प्रकार वैदिक परिभाषा भी फलवती ही

टिप्पणी—

*स्वाहुसाचिति सूत्रशेखरे न चैवं तत्रास्य वारितार्थत्वात् केवले परस्मात्तत्रासम्यम् भाव्यमिति प्रयोगाच्च ।।

है। व्यवहार की सुगमता ही फल वा प्रयोजन हैं। इससे भी वेद पद=मन्त्रब्राह्मणात्मक समुदाय का ही वाचक है। इस प्रकार वेद सामान्य का विचार प्रस्तुत करके कपिल जी कैसे संहिता मन्त्र का प्रमाण कहते ? प्रमाण सिद्ध पदार्थ कितने हैं ? इसका उत्तर नहीं लिखा इसमें कारण वही (लेखक) जानता है। और जो प्रमाण सिद्ध यवादि हव्य पदार्थ लिखे सो अनुपयुक्त हैं क्योंकि वह प्रश्न का विषय नहीं। प्रश्न का विषय द्रव्य गुण आदि थे। इससे उत्तर अनुकूल नहीं। "जिस लिए उनका उपगम है" इसका भी उत्तर ठीक नहीं दिया क्योंकि जब पदार्थ ही न बताये तब उनके प्रयोजन का बता सकना कब सम्भव था अथवा दयानन्द मुनि के तात्पर्य को न समझने से जानिये ॥ प्रमाणों की प्रमाणता किं मूलक है ? इस प्रश्न के तात्पर्य को बिना जाने जो "**मूलेमूलाभावादमूलंमूलम्**" यह सांख्य सूत्र दिया, वह कारण के कारण मानने में अनवस्था दोष निवारणार्थ है, पर हमने कारणान्तर वा प्रमाणान्तर नहीं पूछा था, किन्तु यह पूछा था कि प्रमाणों की प्रमाणता अज्ञात का ज्ञापक होना, वा उसमें अवर्तमान धर्म के अप्रकारक ज्ञान का उत्पादक होना प्रामाण्य है ? सो इसको बिना समझे लिखना केवल श्रमकर है ॥ "**मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदः प्रमाणं न वा?**" इस छटे प्रश्न का समाधान प्रथम प्रश्न के अन्तर्गत बताया सो ठीक नहीं। पहला प्रमाण भले प्रकार प्रमाण सामान्य विषयक है, दूसरा प्रमाण विषय है, इस दशा में प्रथम से द्वितीय का समाधान नहीं हो सकता। वेदोक्त कर्म कर्तव्य हैं वा नहीं ? इसका उत्तर ठीक हैं॥ वेद के एक देश (संहिता मात्र) को मानने में क्या प्रमाण है ? इसका उत्तर कुछ नहीं दिया। वेदार्थ निर्णायक छः शास्त्र है, यह उत्तर ठीक है॥ स्मृतियों का प्रामाण्य है वा नहीं ? इसका यह उत्तर तो ठीक है, कि वेदानुकूल स्मृति प्रमाण हैं। परन्तु पुराण का यह अर्थ ठीक नहीं कि —"**जो पूर्व नवीन होता है**" क्योंकि इसमें रूढ़ि अर्थ का त्याग है। और मुख्याऽमुख्य में मुख्य मानने के न्याय में भी विरोध है। इसमें "**ब्राह्मण पुराण है, भागवतादि नहीं**" यह मन्त्र है, क्योंकि ब्राह्मण पुराण नाम से प्रसिद्ध नहीं, किन्तु ब्राह्मण वेद नाम से प्रसिद्ध हैं। तथा च गौतम का सूत्र है कि—"**विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्**" इसका भाष्य यह है कि—ब्राह्मण वाक्य तीन-तीन प्रकार से विनियुक्त हैं। (१) विधि वाचक (२) अर्थवाद वाचक, (३) अनुवाद वाचक, जैमिनि ने भी "**शेषेब्राह्मणशब्दः**" कहा है, जिसका शाबर भाष्य यह है कि, मन्त्र और ब्राह्मण वेद हैं, इसी प्रकार—"**वेदो वा प्रायदर्शनात्**" यहां ब्राह्मण में वेद पद का प्रयोग जैमिनी ने किया है, सो ब्राह्मण के वेद होने पर संगत होना है। इससे ब्राह्मण पुराण नहीं॥ और जो प्रयोग (शब्द) अशुद्ध बताये हैं, सो पूछना यह है कि, "**किं भाव्यः**" में शब्द की अशुद्धि है वा अर्थ की ? शब्द की अशुद्धि इसलिए नहीं कि "**भूप्राप्तौ**" धातु से "**भवयितुं योग्यः भाव्यः**" यह शब्द सिद्धि सम्भव है, इसमें व्याकरण का प्रमाण दूसरे पत्र में कहूंगा "**नामरूपगुणैर्भाव्यम्**" ("**त्वहृसौ**" इस सूत्र के शेखर में=वहां इसकी चरितार्थता नहीं, केवल परत्व से "**त्वया आभ्यां भाव्यम्**") इस प्रयोग से "**भवन्तम् में पर सवर्णाऽभाव**" लिखने वाले का प्रमाद है। "**यत्लेखनीयम्**" में सन्धि अविवक्षित है। "**प्रश्नः**" यह एक वचन जात्यभिप्राय से है॥ "**तस्यापि उत्तरम्**" यह भी वाक्य होने से ठीक है। "**गीर्वाणवाण्या**" भी ठीक है क्योंकि वाणी पद भाषा पद का प्रर्याय है। "**कालोपि शास्त्रार्थरसं पास्यति**" इस तेरे प्रयोग के समान॥ "**स्वतः प्रामाण्यं क्रियते**" यह तेरा प्रयोग कैसे ? प्रमाणता में करना नहीं बनता। "**प्रमाणानाम् प्रमाणम्**···" यह भी नहीं हो सकता इसमें किस प्रकार बोध है ? यदि मानों कि प्रमाणों का प्रमाण ? तो यह प्रमाण बताओ। "**नित्योनित्यानाम्**" के तुल्य प्रमाणवृत्ति प्रमाणत्व सम्पादक यह प्रमाण है। यह समझना भी नहीं बनता। इसमें अनवस्था दोष आता हैं। षष्ठ प्रश्न को तृतीय प्रश्न लिखना अशुद्ध है। "**किन्तु**" के स्थान में "**किञ्च**" लिखना अशुद्ध है। ब्राह्मण वेद नहीं इसमें हेतु न कहने से न्यूनता दोष है॥ इति शिवम्॥

श्लोकार्थ=आषाढ़ कृष्णा ७ सोमवार में यह शास्त्रकृत निर्णय हुआ कि "न **युक्तावैदिकी**"॥

"**अच्युतस्वामी**"

आर्य समाज की ओर से द्वितीय पत्रोत्तर प्रत्युत्तरम्—

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यमिति वेदानां स्वतः प्रामाण्येऽस्मदीयं कपिलसूत्रम् न चाऽत्र ब्राह्मणसंग्रहे किमपि पदं पश्यामः पारिभाषिकं मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदत्वं न सार्वत्रिकं भवितुमर्हति परिभाषाहि तत्तद्ग्रन्थपरैव न तु सार्वत्रिकी। नहिकापिलीयं परिभाषा किन्तु कात्यायनकृता। तथासति वेद पदेन कथं कपिलोमन्त्रब्राह्मणात्मकं समुदायमभिप्रेयात्॥ प्रमाणसिद्धाः कति पदार्थाः इति प्रश्नस्योत्तरं प्रश्नाऽविषयत्व गतं तर्हि वक्तव्यं किमभिप्रायकः प्रश्न इति। प्रश्नविषयश्च स्पष्टीकरणीय इति॥ यदर्थं तेषामुपगममिति क्लीबत्वनिर्द्देशोदौर्बल्यं सूचयति॥ प्रमाणानां प्रामाण्यं किंरूप मिति यदि भवान् नास्मदुत्तरविषयमप्रच्छत् किन्तु इदानींपत्रेऽस्मिन्नुद् धृतमपृच्छत् तर्हि प्रश्न एवाऽज्ञानमूलो व्यर्थो वा "अज्ञातज्ञापकत्वं वा उत तदऽवृतिधर्माऽप्रकारक ज्ञान जनकत्वं वा प्रामाण्यम्" इति द्वयोस्तात्पर्यैक्यात्। द्वौनञौप्रकृतमर्थमनुगमयतः इति द्वाभ्यां नञ्भ्यां तद्वृत्तिधर्मप्रकारकज्ञानजनकत्वार्थावगमात्॥ पुरानवं भवतीति पुराणव्युत्पत्तिर्न योगरूढ़यर्थत्यागपरा। सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणिचेत्यादि लाक्षणिक पुराण पदस्य गोपथादिषु घटमानत्वाद् ब्राह्मणानां पुराणत्वं सुवचम्॥ अक्षपादसूत्रं यदाह भवान् विध्यर्थवादेत्यादि तन्न वेदपरम् किन्तु शब्द प्रमाण परम्। एतस्मात् अक्षपादमतेनाऽपि न ब्राह्मणं वेदः। नापि वात्स्यायनमतेन। "शेषेब्राह्मणशब्द" इति वदन् जैमिनिरपि "शेषः परार्थत्वात्" इत्युक्तावेदार्थोपनिबन्धोनिब्राह्मणानि वेदभिन्नान्येवाह, न तदन्तर्गन्तानि। मन्त्राश्च ब्राह्मणं च वेद इति शाबरंभाष्यं न जैमिनी हृदयपरमतो नाऽपेक्षणीयम्। शेषः परार्थत्धात् इति जैमिनिसूत्रविरोधात्॥ अथ प्रयोगसाधुत्वसमाधौ यदाह—विचारश्च भाव्यः इत्यस्य समाधानं तदसत्। तत्र भुवः प्राप्त्यर्थाभावात्। नामरूपगुणैर्भाव्यमिति प्रयोगात् इत्युक्ताऽस्मत्पक्षपरभवदुक्तेश्च॥ भवन्तमिति लेखकप्रमादस्तदामन्येत यदा यत्र—तत्र पीत वर्णन भवत्कृतो हि शोधो न स्यात्। अन्यत्र वा प्रायोऽयं दोषो न स्यात्॥ यत्लेखनीयमित्यत्रसंधेरविवक्षितत्वे विश्लेषपूर्वकोलेखो भविष्यत्॥ प्रश्नानां बहुत्वे प्रश्नइत्येकत्वनिर्देशोऽयुक्त एव। जातिपरत्वे प्रश्नानां बहुत्वसंख्यान्वितत्वस्याऽयुक्तत्वात्॥ गीर्वाणवाण्यालेख्यं इत्यत्र नास्माकमाक्षेपोवाणी पद प्रयोगे। किन्तु लेख्यं इत्यत्रानुस्वारोपरि अवसानत्वात्। तत्राऽधस्ताद्रेखासंकेतं दृष्ट्वाऽपियद् भवताऽन्यदा समाहितं तदऽज्ञानमूलमेव॥ प्रामाण्ये कृतिसाध्यत्वबाधादिति हेत्वाभासः अङ्गीकारादिष्वपि कृञः प्रयोग सत्त्वात्॥ प्रामाणानां प्रमाणरूपाणां ग्रन्थानां वचनं प्रमाणं भवितुमर्हतीति समाधानात्प्रमाणमिति साधु॥ "किं ते प्रमाणं? तत्सिद्धाः पदार्थाः कति? यदर्थं तेषामुपगमः" इति वाक्यत्रयस्यैकत्र समावेशात् तृतीय प्रश्नस्येति लेखो युक्त ऐव। अन्यथापि कथंचिदपि न षष्टत्वं, भवन्नयपि प्रथम प्रश्नस्य प्रश्नत्रयत्वाङ्गीकारे पञ्चमत्वमायाति न षष्ठत्वम्। किन्त्विति तत्रवक्तव्यमित्यत्र हेत्वनुक्तेस्तथोक्तिर्न्यूना। ब्राह्मणानां न वेदत्वमित्यत्र हेत्वनुक्तिर्नन्यूनता वेदत्वसाधक हेतूनां हेत्वाभासनिरुपणस्यैव पर्याप्तत्वात्, ॥इति"

"आर्य मुनि"

भावार्थ—

हमने वेद की स्वतः प्रमाणता मे यह प्रमाण दिया था कि—"निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रमाण्यम्" (सांख्य सूत्र) आप इसमें ब्राह्मण सहित वेद का ग्रहण करते हैं। सो इसमें ब्राह्मण ग्रहणार्थ कोई पद नहीं। इससे आपका कथन प्रमाण नहीं॥ मन्त्र ब्राह्मण की परिभाषा सिद्ध वेदत्व सर्वत्र नहीं मानी जा सकती। क्योंकि परिभाषा जिस ग्रन्थ में हो उसी के लिए हो सकती है, न कि सार्वत्रिक। यह परिभाषा सांख्य की नहीं। किन्तु कात्यायन सूत्र की है। इस दशा में कपिल जी सांख्य में वेद पद से मन्त्र ब्राह्मण दोनों का ग्रहण नहीं कर सकते प्रमाण सिद्ध कितने पदार्थ हैं? इस प्रश्न का उत्तर यदि इसलिए ठीक न था कि प्रश्न का अन्य अभिप्राय था तो वह अभिप्राय स्पष्ट करना था। "यदर्थं तेषामुपगमम्" यह नपुंसकलिङ्ग लिखना दुर्बल होना सूचित करता है।

प्रमाणों की प्रमाणकता किस प्रकार की ? यदि आपने यह प्रश्न इस अभिप्राय से किया था जो अब इस पत्र में लिखा है कि—**प्रज्ञात का जतलाने वाला प्रमाण है वा उसमें अवर्त्तमान धर्म के प्रप्रकारक ज्ञान का उत्पादक प्रमाण है ?**"= यदि यह विषय था तो प्रश्न ही व्यर्थ था क्योंकि इस प्रश्न के दोनों पक्ष एकार्थ हैं, भिन्नार्थ नहीं। क्योंकि दो "**नञ**" निषेध मिलकर "**हां**" को सिद्ध किया करते हैं ।। पुराण शब्द की हमारी की हुई यह व्युत्पत्ति कि—"**जो पुराने समय में नया बना था**" योग रुढ़ी अर्थ को नहीं त्यागती। सृष्टि प्रलय वंशादि के वर्णन युक्त होने से ब्राह्मणों की पुराणता सिद्ध है। आपने जो सूत्र न्याय दर्शन का लिखा है कि—"**विध्यर्थवादानुवादवचन विनियोगात्**" और इसका वात्स्यायन भाष्य लिखा है सो यह सूत्र केवल वेद परक नहीं, किन्तु शब्द प्रमाण परक है। शब्द प्रमाण में वेद ब्राह्मण आदि ग्रन्थ मात्र संग्रहीत हैं। इतने से वे सब ग्रंथ वेद नहीं बन बैठते। इसलिए गौतम वा वातस्यायन के मत से ब्राह्मण वेद नहीं हो जाते जैमिनी ने जो—"**शेषे ब्राह्मण शब्द**" सूत्र द्वारा "**ब्राह्मण** "संज्ञा की है, उसी जैमिनी ने "**शेषः परार्थत्वात्**" इस सूत्र में "**शेष**" का अर्थ "**परार्थ**" होना बतलाया है। अर्थात् जो पराया=अन्य ग्रंथ वेद का अर्थ करता है, वह शेष ब्राह्मण कहाता है। इससे वेदार्थ करने वाले ब्राह्मणों का वेद से भिन्न होना सिद्ध हुआ न कि वेद के अन्तर्गत होना ।। "**मन्त्र और ब्राह्मण वेद हैं**" यह शाबर भाष्य जैमिनी के अनुकूल नहीं। क्योंकि यह भाष्य जैमिनी के सूत्र "**शेषः परार्थत्वात्**" से विरुद्ध है। प्रयोगों की अशुद्धियों के समाधान में आपने जो कहा कि **विचारश्च भाव्यः" में** शब्द की वा अर्थ की अशुद्धि है ? शब्दाऽशुद्धि का समाधान इससे ठीक नहीं कि वहां भू धातु का प्राप्ति अर्थ नहीं घटता। "**नामरुपगुणैर्भाव्यम्**"। यह उदाहरण देकर आप हमारे पक्ष (**विचारेण तृतीया**) की पुष्टि कर बैठे। "**भवंतम्**" में परसवर्णाऽभाव लेखक का प्रमाद तब माना जाता जब कि अन्य अनेक स्थलों में ऐसा न होता और आपने हरताल से पीला शोधन न किया होता ।। "**यत्लेखनीयम्**" में सन्धि अविवक्षित होती तो "**यत् लेखनीयम्**" ऐसा पृथक लिखा होता। प्रश्न बहुत हैं, तब एक वचन लिखना जाति के अभिप्राय: से भी ठीक नहीं, ऐसा होता तो प्रश्नों में बहुत्व न करते ।। "**गीर्वाण वाण्या लेख्यं**" में हमारा आक्षेप वाणी शब्द के प्रयोग पर न था। किन्तु "**लेख्यं**" पर अनुस्वार को हमने अशुद्ध लिखा था, क्योंकि अवसान था। आपने हमारे रेखा नीचे खींचने पर भी न समझा कि क्या अशुद्धि है ।। "**प्रमाण करने**" में करना असिद्ध बताना इससे ठीक नहीं है कि अङ्गीकार आदि में भी कृञ् धातु का प्रयोग होता है ।। "**प्रमाणानां प्रमाणम्**" में प्रमाणानाम् का अर्थ प्रामाणिक ग्रन्थ है। "**किं ते प्रमाणम्**, **तत्सिद्धाः पदार्थाः कति, यदर्थं तेषामुपगमः**" इन तीन वाक्यों का एक में समावेश होने से हमारा तृतीय प्रश्न लिखना ठीक है। आप यदि इनको तीन मानें तो भी पांचवा कहना बनेगा, न कि छटा ! किन्तु=किञ्च क्यों अशुद्ध है ? हमने ब्राह्मणों के वेदत्व न होने में कोई हेतु न दिया हो, तब भी न्यूनता नहीं, क्योंकि हमारा पक्ष निषेध था, आपका पक्ष इनको वेदत्व सिद्ध करना था, बस ! जब आपके दिये हेतुओं का खण्डन हो गया तो ब्राह्मणों को वेदत्व स्वयं न रहा, हमको प्रमाण देना आवश्यक ही क्या है ? ।। इति ।।

नोट—इस प्रकार ये हैदराबाद का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, जिसका उस पूरे इलाके भर में यह जबर्दस्त प्रभाव पड़ा कि—"**यज्ञ में पशुवध के लिए वेद नहीं कहता**"। एवं आर्य समाज के मेम्बरों में अत्याधिक वृद्धि हुई, निज़ाम सरकार के सरकारी अफसरों पर भी आर्य समाज का प्रभाव साफ दिखाई दे रहा था ।।

"**मन्त्री**" (आर्य समाज)

तरेसठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : देहली (आर्यसमाज नया बांस)

दिनाङ्क : १ फरवरी सन् १९२९ ई० (प्रथम दिवस)

विषय : स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं।

सनातन धर्म की ओर से (वादी) शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित लक्ष्मीचन्दजी शर्मा (फोल, जिला करनाल निवासी)

सनातन धर्म की ओर से सहायक : (१) श्री पण्डित ताराचन्द जी शर्मा
(२) श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा, व्याकरणाचार्य (दिल्ली)

आर्य समाज की ओर से (प्रतिवादी) शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार (जो बाद में स्वामी समर्पणानन्द जी के नाम से विख्यात हुए)

आर्य समाज की ओर से सहायक : (१) श्री पण्डित लोकनाथ जी शर्मा "तर्कवाचस्पति"
(२) श्री पण्डित देवेन्द्र नाथजी शास्त्री "सांख्यतीर्थ"
(३) श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

आर्य समाज की ओर से प्रधान : श्रीमान् राय साहब लाला गंगाराम जी (शिमला)

सनातन धर्म की ओर से प्रधान : श्री मान् लाला कृष्णदास जी लोहिये

श्रोताओं की हाजिरी : लगभग २५ हजार

नोट : (१) उपरोक्त वादी शास्त्रार्थकर्ता, श्री स्व० पण्डित माधवाचार्य जी के पिता एवं वर्तमान शास्त्रार्थी श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री के पितामह थे।

नोट :– यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं। "संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ से पहले

धर्म चर्चा या शास्त्रार्थ से जहां मनुष्यों में धार्मिक जीवन का संञ्चार होता है, वहां सत्यासत्य का निर्णय भी हो जाता है। प्राचीन समय में भी तत्व निश्चय के लिये बड़े-बड़े शास्त्रार्थ होते थे, जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों के एवं अर्वाचीन समय में बौद्धों के साथ कुमारिल स्वामी तथा महात्मा शंकर के शास्त्रार्थ प्रसिद्ध हैं, सच पूछिये तो धर्म प्राण आर्य जाति को जीवित रखने वाले शास्त्रार्थ ही हैं, जब बौद्धों ने मिथ्या तर्क वाद से वेदों तथा वैदिक सिद्धांतों को नष्ट कर दिया था, उस समय महामति शंकर स्वामी ने उनके सिद्धान्तों पर प्रबल आक्रमण कर और बौद्ध विद्वानों को परास्त कर वेदों का पुनरुद्धार किया था। शंकर की कृपा से आर्य जाति का बौद्धों से पिण्ड छूटा तो पुराणों का आधिपत्य हुआ, पुराणों में यदि अनेक वेद विरुद्ध असंगत, अस्वाभाविक, अश्लील कथाओं का समावेश न होता, यदि उनमें अनेक देवी-देवतावाद के स्थान में एक सर्वव्यापक ईश्वर की उपासना का विधान होता, यदि मनघड़न्त कथाओं की जगह सच्चा इतिहास होता, मांस मदिरा, व्यभिचार, जुआ आदि की कथायें, उनमें न पाई जाती तो निःसन्देह पुराणों के सामने संसार सिर झुकाता, उनसे हमारा गौरव बढ़ता, किन्तु दुर्भाग्य से इनमें यह सब कुछ भरा पड़ा है। इन्हीं के कारण आर्य जाति के अन्दर अनेक दुर्गुणों का समावेश प्रवेश हुआ है। इन्हीं से मतमतान्तरों की वृद्धि और हिन्दुओं में परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और फूट की वृद्धि हुई है। यह देखकर करुणालय ऋषि दयानन्द ने इनके विरुद्ध आवाज उठाई, इनका खण्डन किया और इनसे आर्य जाति का पिण्ड छुड़ाया, आर्य समाज को किसी से द्वेष नहीं है। क्या शैव, क्या वैष्णव, सभी हमारे भाई हैं। किन्तु यह निश्चय है कि, जब तक मतमतान्तरों का नाश होकर सारी हिन्दू जाति एक सूत्र में आबद्ध नहीं होती, तब तक इसका मिथ्या कल्पनाओं पर विश्वास जमा हुआ है। तब तक इसका उद्धार होना असम्भव है। नामुमकिन है। कौन नहीं जानता कि शैव, वैष्णवों के शत्रु हैं। वैष्णव और शैव, शाक्तों के विरोधी हैं। तथा अन्य मतावलम्बी इनके परम शत्रु हैं। इसके अतिरिक्त शिव का नाम लेकर आज हजारों साधु गांजा और चरस पीते फिरते हैं बम भोला, बम भोला कह-कहकर करोड़ों हिन्दू भांग पीते हैं, देवी का नाम लेकर करोड़ों मनुष्य शराब और मांस खाते-पीते हैं। विष्णु और तुलसी की कथा का आश्रय लेकर व्यभिचार करते हैं, कहां तक लिखा जाय आज ऐसा कौन सा दुर्गुण है जो हिन्दुओं में विद्यमान न हो और उसका पुराणों में उल्लेख न मिले, इससे अधिक अधोगति और क्या होगी ? कि जिनको ईश्वर माना जाय, जिन देवियों की माता के समान पूजा की जावे, जिनके दर्शन से मुक्ति की आशा की जावे उन्हीं के स्वांग भर-भर के दुनिया के सामने नचाया जावे, अधः पतन की भी कोई सीमा होती है। गिरावट की भी कोई हद होती है। लेकिम यहां तो कोई हद है ही नहीं, कृष्ण और राधा और राम व सीता, शिव व पार्वती, सभी भगवान और सभी के स्वांग, और स्वांग भी कैसे कि, जिनके लिखने में भी क़लम कांपती है।

बस ! देहली के शास्त्रार्थ की जड़ भी नये बांस (आर्य समाज) का एक स्वांग ही है, देहली में अनेक शिव मन्दिर हैं, जिनका श्रावण मास में शृंगार हुआ करता है, सोमवार के दिन इन मन्दिरों में गाना बजाना भी होता है, किन्तु रसिक लोगों की इतने से तृप्ति नहीं होती वे वहां स्वांग भी कराते हैं, जनाना भेष भरके खूबसूरत लड़कों को नचाते और अश्लील से अश्लील गाने गाते हैं। इस वर्ष में भी यही दशा थी स्वांग पर स्वांग हो रहे थे, जिनको देख-देखकर बच्चों और स्त्रियों के चरित्र नष्ट होने की आशंका थी यह हालत देखकर समझदार सनातन धर्मियों और आर्य समाजियों

ने उनसे इनके बन्द करने की प्रार्थना की, कहा गया कि, शिव जी के सामने ऐसा काम करना महान अनर्थ का मूल है। किन्तु कोई न माना तब सर्व साधारण का ध्यान खींचने के लिए आर्य समाज नया बांस ने समाज में धर्म प्रचार का प्रबन्ध किया, आर्योपदेशक "श्री पण्डित रामचंद्र जी देहलवी" का व्याख्यान भी एक दिन हुआ। उन्होंने ईश्वर वर्णन करते हुए शिवलिंग स्थापन का वर्णन भी अति सभ्य शब्दों में कर दिया, और कह दिया कि, जिसको विशेष देखना हो वह शिव पुराण देखे।

सम्भवत: सनातनी भाइयों ने घर जाकर शिव पुराण पढ़ा होगा, तदनुसार कन्हैयालाल नामक सनातन धर्मी मारवाड़ी ने एक छोटा सा विज्ञापन निकाला जिसका सार यह था कि, नया बांस आर्य समाज के एक व्याख्यान द्वारा यह विदित हुआ है कि, शिवलिंग शिव जी की मूत्रेन्द्रिय और जलेहरी पार्वती की भगेन्द्रिय का नाम है, यदि यह झूठ है तो सनातन धर्मी विद्वान इसका खण्डन करें। नहीं तो यह सत्य माना जायेगा। इस विज्ञापन से देहली से पौराणिक विद्वत्मण्डल में भारी असन्तोष फैला, और इस विज्ञापन का सारा दोष आर्य समाज नया बांस पर मढ़ दिया गया, यही नहीं बल्कि सनातन धर्म मण्डल देहली की ओर से एक रजिस्टर्ड पत्र भी आया, जिसका आशय यह था कि, क्या किसी आर्य समाज में ऐसा व्याख्यान हुआ है? जिसमें उपरोक्त शब्द कहे गये हों। इसका उत्तर भी रजिस्टर्ड पत्र द्वारा दे दिया गया, कि आर्य समाज की वेदी से ऐसे अश्लील शब्द नहीं बोले जाते, क्योंकि वहां देवियां भी व्याख्यान सुनती हैं। व्याख्यान अवश्य हुआ था, और उसमें दारुक वन की कथा को भी अत्यन्त सभ्य रूप में कहा गया था, किन्तु ये शब्द नहीं कहे गये, यद्यपि शिव पुराण में ये शब्द लिंग और योनि के नाम से विद्यमान हैं। इस उत्तर से भी पौराणिक विद्वानों का समाधान न हुआ। धीरे-धीरे विज्ञापनों द्वारा यह चर्चा बढ़ती ही गई, अन्ततोगत्वा शिव सभा (सब्जी मण्डी) ने शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज दे ही दिया, जिसे आर्य समाज ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। ६ दिन शास्त्रार्थ हुआ, और बड़ी शान से हुआ। वृद्ध पुरुष कहते हैं कि, ऐसा उत्तम, शान्त सुप्रबन्ध युक्त तथा २५-३० हजार नर-नारी जिसमें भाग लेते रहे हों ऐसा शास्त्रार्थ उनके देखने में नहीं आया। वस्तुत: यह शास्त्रार्थ देहली के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस शास्त्रार्थ में प्राय: उन सभी विषयों पर कुछ न कुछ प्रकाश पड़ा है जिनमें आर्य समाज और सनातन धर्म का गहरा मत भेद है, और देहली निवासियों की न केवल सर्व साधारण की अपितु बड़े २ विद्वानों की भी इस शास्त्रार्थ से काया पलट हो गई है। यदि इसी प्रकार सदैव विचार होता रहे तो निश्चय है कि बहुत बड़ा लाभ हो अन्त में मैं सब आर्य व सनातनी भाईयों से निवेदन करूंगा कि वे प्रेम पूर्वक रहने एवं धर्म निर्णय को सहिष्णुता पूर्वक सुनने के अभ्यासी बने, हठ और दुराग्रह से कभी मनुष्य उन्नत नहीं होता, धर्म की जड़ सत्य में है। और अधर्म का स्थान दुराग्रह है। आर्य समाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द एवं हमारा निश्चित मत है कि स्मृति, सूत्र, पुराण, एवं नवीन वेद के भाष्यों में जो मांस भक्षण, मदिरा पान, पशु हिंसा, व्यभिचार, आदि की कथाओं का वर्णन है, उनके समावेश कर्त्ता वे लोग हुवे हैं, जो वैदिक धर्म को नष्ट करना चाहते थे। उन्होंने इन ग्रन्थों में मिलावट की है, वेदों के न तो ये सिद्धान्त हैं, और न वेदों में इनका वर्णन हैं, न ऋषियों की यह कृति हैं, आर्य समाज का पौराणिकों से मतभेद इतना ही हैं कि, वे इन ग्रंथों का संशोधन नहीं करना चाहते, और बराबर उन्हीं का पक्ष लिये जाते हैं। बनावटी बातों, कुतर्कों तथा मिथ्या कल्पनाओं से येन-केन अपने पक्ष को पुष्ट करना ही उत्तम समझते हैं। आर्य समाज कहता है कि, इन बातों से साफ इन्कार कर दिया जावे। और यह घोषणा कर दी जावे कि, यह बातें वेद के विरुद्ध होने से अमान्य हैं। बस यही मतभेद का गहरा स्थान है। भगवान करे ऐसी बुद्धि प्राप्त हो जिनसे इनका संशोधन होकर एकमत स्थापित् हो।

शास्त्रार्थ के नियम, विषय तथा प्रबन्ध—

शास्त्रार्थ के नियम संक्षेप से निम्नलिखित निश्चय किये गये थे—

(१) यह शास्त्रार्थ आर्य समाज नया बांस देहली एवं श्री सनातन धर्म (शिवसभा) सब्जी मण्डी के मध्य ६ दिवस

बराबर होता रहेगा। (२) शास्त्रार्थ का समय साढ़े सात बजे से साढ़े ९ बजे रात्री तक रहेगा। (३) वादी और प्रति-बादी को प्रथम पांच मिनट संस्कृत में और फिर पांच मिनट भाषा में प्रश्नोत्तर करने होंगे, अर्थात् दोनों पक्षों के विद्वानों को प्रत्येक बार पांच मिनट संस्कृत और पाँच मिनट भाषा में बोलना होगा। (४) निर्धारित विषयों में से प्रथम दिन सनातन धर्म के विद्वान प्रश्न करेंगे और आर्य सामाजिक पण्डित उत्तर देंगें, एवं दूसरे दिन आर्य समाज की ओर से प्रश्न होंगे। और सनातन धर्म की ओर से उत्तर दिया जावेगा। यही क्रम ६ दिन लगातार बना रहेगा। (५) दोनों ओर से दो मनोनीत सभापति होंगे जो केवल समय को देखेंगे एवं जनता के कन्ट्रोलर होंगे यदि ऐसी अव्यवस्था या बाधा उपस्थित होगी जिसके कारण शास्त्रार्थ बन्द करने की आवश्यकता आ पड़े तो दोनों सभा-पतियों की सलाह से शास्त्रार्थ बन्द कर दिया जावेगा। (६) दोनों पक्षों के श्रोता किसी समय भी जयकारा या ताली बजाना आदि न कर सकेंगे। (७) उभय पक्ष के विद्वान अपने भाषणों में किसी के भी माननीय महापुरुष के ऊपर व्यक्तिगत बुरा कटाक्ष न कर सकेंगे, इत्यादि।

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ के विषय—

(१) पुराण वेद विरुद्ध और परस्पर विरुद्ध होने से अमान्य हैं। (२) सनातन धर्म में पत्यन्तर विधान है वा नहीं ? (३) सनातन धर्म में मांस विधान वैदिक है या अवैदिक ?

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ के विषय—

(१) स्वामी दयानन्द ऋषि नहीं थे। (२) सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रंथ वेद विरुद्ध हैं। (३) क्या आर्य समाज की शिक्षा-इस योग्य है कि कार्य में परिणत हो सके ?

शास्त्रार्थ का प्रबन्ध—

(१) आर्य समाज और शिव सभा दोनों मिलकर सम्मिलित पण्डाल बनायेंगे, जिसका व्यय दोनों पक्ष बराबर-बराबर, आधा-आधा वहन करेंगे। (२) आर्य समाज की ओर से श्री मान राय साहब लाला गंगाराम जी (शिमला) एवं सनातन धर्म (शिव सभा) की ओर से लाला श्री कृष्णदास लोहिये प्रधान निश्चित होंगे। (३) आर्य समाज की वेदी के सामने आर्य समाजिक और सनातन धर्म की वेदी के सामने सनातन धर्मियों के बैठने का प्रबन्ध होगा, बीच में एक रास्ता छोड़ा जायेगा, जहां पर कुछ व्यक्तियों को बैठाया जावेगा, जो श्रोताओं में से गड़बड़ करने वालों को रोकेंगे।

शास्त्रार्थ में बोलने वाले विद्वान आर्य समाज की ओर से—

(१) श्री पण्डित बुद्धदेव जी शर्मा विद्यालंकार (उपदेशक, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब)।
(२) श्री पण्डित लोकनाथ जी, तर्क वाचस्पति (आर्योपदेशक)।
(३) श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी शास्त्री "सांख्यतीर्थ" आचार्य गुरुकुल सिकन्द्राबाद (उ० प्र०)

शास्त्रार्थ में बोलने वाले विद्वान सनातन धर्म की ओर से—

(१) श्री पण्डित तारा चन्द जी शर्मा।
(२) श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द जी शर्मा (कौल निवासी)।
(३) श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा, व्याकरणाचार्य, दिल्ली।

हस्ताक्षर—
"देवेन्द्रनाथ शास्त्री" सांख्यतीर्थ
(आचार्य, गुरुकुल सिकन्द्राबाद (बुलन्दशहर) उ० प्र०)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा—

कुछ समय तक घुटी हुई न्याय की पंक्तियां पढ़ने के अनन्तर कहा—स्वामी दयानन्द कृत सब ग्रंथ वेद विरुद्ध हैं, सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १०१ में लिखा है कि—"**सोमसदस्तृप्यन्ताम्**······" इन मन्त्रों से आहुतियां दो, और फिर बलिवैश्वदेव यज्ञ में —"**यमाय नमः**" इत्यादि मन्त्रों से ऊखल-मूसल को रोटी देना, भद्र काली को रोटी देना, लिखा है, सो वेदों में दिखाइये ? सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २२८ में—"**ततो मनुष्याअजायन्त**" लिखा है। तथा "**यमेन वायुना सत्य राजन्**·····" यह वेद का लिखा है, इसे वेद में दिखाओ ?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

वाह ! वाह !! संस्कृत की तो घुटी-घुटाई पंक्तियां बोली और भाषा में कुछ और कह दिया यह खूबी पंडित जी में ही है। आप "स" के स्थान में "श" बोलते हैं। इतना भी पता नहीं है कि, कहां क्या अक्षर शुद्ध बोलें· खैर ! अब आप उत्तर सुनिये। आपने जो—"**सोमसदस्यतृप्यन्ताम**···" यह मन्त्र वेद में पूछा सो जरा बताइये, कि स्वामी जी ने यह कहां लिखा कि यह "**अमुक वेद का मन्त्र है**" सो ब्राह्मणादि ग्रन्थों एवं सूत्र ग्रंथों के वाक्यों को भी· स्वामी जी मन्त्र मानते हैं। आप बताइये स्वामी जी ने—"**सानुगाय वरुणाय नमः**" आदि मन्त्रों को वेद मन्त्र कहां लिखा है ? केवल मन्त्र लिखा है। '**ततो मनुष्या अजायन्त**" यह वचन कुछ यजुर्वेद और कुछ शतपथ का है। आपकी प्रतिज्ञा है "**स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं**" सो कृपा कर आप वेद के साथ किसी का विरोध दिखाइये तब तो आपकी प्रतिज्ञा बने, यों ही वाक्य पढ़ देने से आपका पक्ष सिद्ध नहीं हो सकता ·

श्री पण्डित लक्ष्मी चन्द्र शर्मा—

स्वामी दयानन्द तो स्वमन्तव्यमन्तव्या में संहिता भाग को ही मन्त्र बताता है, (यहां पण्डित जी ने स्व-मन्तव्यामन्तव्य का आधा भाग पढ़ कर सुनाया) जब चार संहिता का नाम ही मन्त्र है तो ये मन्त्र आपको उन्हीं में दिखाने चाहिये, ऊखल-मूसल पर टुकड़ा रखना दिखलाओ, "**यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं**······" इस मन्त्र से जो यज्ञोपवीत पहनाते हो यह मन्त्र किस वेद में हैं ? सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि—"**पृथ्वी को चटाई की तरह लपेट**

टिप्पणी—

यहां शास्त्रार्थ में संस्कृत का भाषण नहीं लिखा गया है, केवल भाषा ही संक्षेप से दे दी गई है।

"**मूल कापी से**"

लिया" दिखाओ यह कहां लिखा है ? "**अच्युताय भौमाय स्वाहा**" यह किस वेद में लिखा है ? स्वामी दयानन्द ने दुनियां को धोखा दिया है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

"**अच्युताय भौमाय स्वाहा**" यह मन्त्र गृहसूत्र में मौजूद है, स्वामी जी धोखा तब देते जब लिखते कि यह मन्त्र वेद का है। आपने स्वमन्तव्यामन्तव्य का आधा भाग पढ़कर जनता को धोखा दिया है, पूरा भाग यह है—"**चारों वेदों**" (विद्या धर्म युक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं, वे स्वयं प्रमाण रूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य वा प्रदीप, अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथ्वीव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, ६ अंग, ६ उपांग, चार उपवेद, और ११२७ वेदों की शाखाएं, जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ हैं, उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं उनको अप्रमाण मानता हूं)। अब आप ही बताइये यह कहां लिखा है कि मैं वेद की चार संहिताओं को ही मन्त्र मानता हूं ? यहां तो मन्त्र भाग को स्वतः प्रमाण और शेष को परतः प्रमाण माना है इसलिए आपके समस्त आक्षेप निराधार हैं, विचार कीजिये आप तो "**नमः शिवाय**" तक को मन्त्र मानते हैं, इसलिए यज्ञोपवीत का मन्त्र "**अच्युताय भौमाय स्वाहा**" एवं अन्य आर्ष वाक्य भी मन्त्र कहे जा सकते हैं।

श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा—

(रटी रटाई, व घुटी-घुटाई, न्याय की पंक्तियां बोलते हुए)—मेरे प्रश्न आपकी समझ में नहीं आते। स्वामी जी वेदों के अतिरिक्त किसी को प्रमाण नहीं मानते यही स्वमन्तव्यामन्तव्य में लिखा है। जब '**यज्ञोपवीतम्**···" यह मन्त्र चारों वेदों में नहीं है तब तुम झूठ-मूठ जनेऊ देते फिरते हो। जनेऊ की जगह कण्ठी बाँधा करो। स्वामी दयानन्द ने ४५० मन्त्र अपने घर में से घड़े हैं, स्वामी जी तो चार संहिता ही मानते हैं। तुम अपने घर के वेद बनाते हो, भला—"**रथेन वायवेगेन**···" यह श्लोक कहां लिखा है ?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

आप व्यर्थ ही लोगों का समय खो रहे हैं, मैं पूछता हूं आपने अपनी प्रतिज्ञानुसार ऋषि दयानन्द के किसी भी वाक्य का वेद से विरोध दिखाया ? फिर स्वामी जी ने सर्वत्र "**अच्युतायभौमाय स्वाहा**" इत्यादि वाक्यों के लिये मन्त्र शब्द लिखा है। निरुक्त कार कहते हैं "**मन्त्राः मननात्**" मन्त्र का यह लक्षण इन आर्ष वाक्यों में मिलता है। अतः स्वामी जी ने इनको मन्त्र लिखा है, वेद मन्त्र नहीं लिखा है। आप पूछते हैं कि—"**रथेन वायु वेगेन**·····" यह कहां लिखा है ? सो यह भागवत का पाठ है और दो जगह का है। आपके प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका है।

श्री पण्डित लक्ष्मी चन्द्र जी शर्मा—

चलो आपने यह तो मान लिया कि ये वाक्य मन्त्र हैं। अब यह कहना कि वेद शब्द इनके साथ कहां लिखा है ? सो न लिखा सही, पर तुम तो वेद के अतिरिक्त कुछ मानते ही नहीं, इसलिए वेद में दिखाओ तब मानूंगा। संस्कार विधि में लिखा है, कि एक टुकड़ा तोड़कर भद्र काली को दो, रात्रि के भूतों को दो, ओखल-मूसल

को दो, तथा "नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः धन्वन्तरये नमः" बताओ इनका विधान वेद में कहां है ? (शेष बातें वही पुरानी दोहरा कर बैठ गये)।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

मन्त्र तो हम इनको मानते ही हैं, हम इससे इन्कार कब करते हैं ? परन्तु वेद के मन्त्र नहीं हैं। तथा बलि-वश्वदेव आदि कर्म जो स्मृत्यादि में वर्णित है इनका वेद के साथ विरोध नहीं है, इसलिए ये माननीय है। "**भद्र-काल्यै नमः नक्तं चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः**" आदि वाक्यों से बलिवैश्वदेव यज्ञ करें यह विधान "**वैश्व देवस्य सिद्धस्य**" इत्यादि मनुस्मृति अध्याय ३ के श्लोकों में स्पष्ट वर्णित है, आज आप कहते हैं कि, अमुक वाक्य वेद में दिखाओ, कल कहेंगे कि "होड़ाचक्र" में दिखाओ। मैं कहता हूं कि, यदि ये वाक्य सूत्र ग्रन्थों की जगह पुराणों के भी हों तब भी वेद से विरोद्ध आपने क्या दिखाया ? और यदि नहीं दिखा सकते तो आपकी शेष शंकाये व्यर्थ हैं।

श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा—

(बनावटी गुस्सा दिखाते हुए) मैंने १०० बार कहा कि वेद में दिखाओ। परन्तु आपने मनुस्मृति में दिखाया। अच्छा यही सही, तुम्हारे धनवन्तरी क्या लगते हैं ? यह बताओ ! "**वनस्पतिभ्यो नमः**" यहां किसको नमस्कार है ? भद्रकाली कौन है ? स्वामी दयानन्द ने झूठ-मूठ ये मन्त्र घड़ लिये हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

न तो मैं झूठा और न स्वामी जी झूठे। मुझे तो पण्डित लक्ष्मीचन्द जी झूठे दिखाई देते हैं। जो कहते हैं कि स्वामी जी ने इनको वेद मन्त्र लिखा है। शायद भद्रकाली का अर्थ आप कलकत्ते की काली को समझते हैं जो हजारो बकरों का खून पीती है। नहीं इसका अर्थ तो ईश्वर है "**भद्रं कल्याणं कलयतियासा भद्रकाली**" जो सबका कल्याण करे वह भद्रकाली ईश्वर है। "**वनस्पतिभ्यो नमः**" यह कात्यायन सूत्र में लिखा है। स्वामी जी ने बलिवैश्व देव प्रकरण में स्वयं लिखा है कि गृहस्थों को अभिमान निवृत्ति एवं प्रतिदिन जो साधारण जीव हिंसा हो जाती है। उसके प्रायश्चित्तार्थ बलि वैश्वदेव यज्ञ करना चाहिये। "**वनस्पतिभ्यो नमः**" आदि शब्दों के अर्थ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में देख लीजिये। आपने कहा कि स्वामी दयानन्द ने झूठे वेद मन्त्र बना लिये हैं। सो कृपाकर ऐसा कोई मन्त्र पेश कीजिए।

श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द जी शर्मा—

स्वामी दयानन्द ने ऐसे ही मन्त्र घढ़ लिये हैं जैसे ईसाईयों ने अपने मतलब की बात घढ़ ली है। तुम बार-बार पूछते हो कि वेद से विरोध दिखाओ। सो विरोध क्या दिखाऊं ? तुम वेद मानते ही नहीं। (जनता में हंसी) विरोध किसमें दिखाऊं ? कभी हरिहर भाष्य पढ़ते हो कभी कत्यायन सूत्र पढ़ते हो। मैं तो यह मन्त्र वेद में देखना चाहता हूं। मनुस्मृति तो हमारी है उसमें दिखाना व्यर्थ है। भद्र काली का अर्थ तो तुमने बतला दिया। परन्तु "**नक्तं चारिभ्यो नमः**" का क्या अर्थ बतलाया ? अच्छा भाई भद्र काली परमात्मा का नाम है। तो क्या परमात्मा को टुकड़े देते हो। क्या परमात्मा मांगता फिरता है ? सच तो यह है कि स्वामी दयानन्द ने जाटों को बहकाने के लिये झूठे वेद बना लिये हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

यह कितनी झूठ कल्पना है कि स्वामी दयानन्द ने वेद बना लिये हैं। हांलाकि किसी भी वाक्य का पंडित जी ने वेद से विरोध नहीं दिखाया। आपका विषय था कि **"स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ वेद विरुद्ध हैं"** परन्तु क्या कोई कह सकता है कि—किसी भी वाक्य का विरोध वेद से दिखाया हो। हम ऊखल-मूसल में आपकी तरह पूज्य बुद्धि नहीं रखते। हां यदि पूज्य बुद्धि मानें तो अवश्य वेद विरुद्ध है। क्योंकि वेद जड़ पूजन का विरोध करता है। यदि कोई ऊखल-मूसल पर जूते लगा दे तो भी हमको कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि उनको हम देवता नहीं मानते। ऊखल और मूसल छोटे-छोटे जीवों के रहने की जगह है। इसलिए वहां अन्न का भाग रखा जाता है। **"वनस्पतिभ्यो नमः"** यह वाक्य महकमे जंगलात का स्मरण कराता है। अर्थात् जो लोग वनस्पति का पालन-पोषण करते हैं। उनको भी कुछ भाग देना चाहिये। यहां रोटी के भाग रखने के लिए लिखा है। खिलाने के लिये नहीं। मनुस्मृति जिस तरह से तुमको माननीय है वैसे ही हमको भी माननीय है। बशर्ते कि वेद से कोई विरोध न पड़ता हो। अब ऐसी और कोई बात नहीं दिखती जिसका उत्तर देना शेष हो। बलिवैश्व देव को हम भी मानते हैं, उसमें हमारा व आपका कोई विरोध नहीं। इस प्रकार मैं आपके समस्त प्रश्नों का उत्तर दे चुका हूं। (आज का शास्त्रार्थ समाप्त)—

चौसठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : देहली (आर्य समाज—नया बांस)

दिनांक : २ फरवरी सन् १९५४ ई० (द्वितीय दिवस)

विषय : पुराण वेद विरुद्ध तथा परस्पर विरुद्ध होने से अमान्य हैं।

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा (कौल निवासी)

सहायक : (१) श्री पण्डित ताराचन्द जी शर्मा

(२) श्री पण्डित सुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य (दिल्ली)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

सहायक : (१) श्री पण्डित लोकनाथ जी "तर्क वाचस्पति"

(२) श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

आर्य समाज की ओर से प्रधान : श्रीमान् राय साहब लाला गंगाराम जी (शिमला)

सनातन धर्म की ओर से प्रधान : श्री लाला कृष्णदास जी लोहिये

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सुनिये ऋग्वेद मण्डल १० अध्याय १, सूक्त ५ मन्त्र ६—"**सप्त मर्यादा कवयस्त तक्षुः तासामेका मिदभ्यं हुरणोद । आर्योहस्कम्भ उपमस्य नीड़े यथा विसर्गे घरुणेषु तस्थौ** ।। इस मन्त्र का अर्थ निरुक्त कार ने यह किया है कि, वेद ने सात मर्यादायें कायम की हैं, उनका जो उल्लंघन करता है, वह पापी होता है । अर्थात्—चोरी, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, भ्रूण हत्या, बार-बार बुरे काम का करना, शराब पीना, और पाप करने पर झूठ बोलना, इन सात कर्मों के करने वाला पापी होता है । इसलिए ये सातों काम भूलकर भी न करने चाहिए । परन्तु इन वेद विरुद्ध कार्यों का करना पुराणों में सर्वत्र पाया जाता है । इसलिये "**पुराण वेद विरुद्ध हैं**" देखिये—भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व अध्याय ७३ श्लोक १७ से १९, यथा—

> **तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तः पुरफैर्जनैः । अनुभूय जल क्रीड़ां पान मासे वतेरहः ।।१७।।**
> **रम्य रैव तकोद्याने नाना द्रुम विभूषिते । सर्वर्तु कुसुमैर्नित्यं वासिते सर्व कानने ।।१८।।**
> **भूषितानां वर स्त्रीणां चार्वगीनां विशेषत । ताभिः संपीयते पानं शुभगन्धान्वित शुभम् ।।१९।।**

इनका आशय यह है कि, "**उस दिन श्री कृष्ण जी अपनी रानियों समेत जल क्रीड़ा के अनन्तर एकान्त स्थान में शराब पी रहे थे**" रैव तक के सुन्दर बगीचे में सुन्दर स्त्रियां सुगन्धित शराब पी रही थीं । बस सुरापान वेद विरुद्ध होने से भविष्य पुराण अमान्य है । आगे वेद कहता है—"**अक्षैर्मा दीव्यः**⋯" (ऋग्वेद मण्डल १० अ० ७, सू० ३४, मन्त्र १३) अर्थात् जुआ मत खेलो । परन्तु पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय १२२ श्लोक २५ से २७ में जुआ खेलने की आज्ञा पाई जाती है देखिये—

> **शंकरश्च भवानी च क्रीडया द्यूतामस्थितौ । भवान्याऽभ्यर्चितालक्ष्मीर्धेनु रुपेणसंस्थिता ।।२५।।**
> **गौर्य्या जित्वा पुराशम्भुः नग्नोघूते विर्सजित । अतोर्थं शकरो दुःखी गौरी नित्यं सुखान्विता ।।२६।।**
> **पराजयो विरुद्धः स्यात् प्रतिपद्युदितेरवौ । प्रातर्गोवर्धनः पूज्यो द्यूतञ्चापि समाचरेत् ।।२७।।**

अर्थात् पहिले शंकर और पार्वती ने जुआ खेला था । पार्वती ने शिव को जुए में जीत कर, नंगा छोड़ दिया था, इसलिए शंकर दुखी और पार्वती सदैव सुखी रहती थी, प्रतिपदा के दिन सूर्य निकलने पर पराजय विरुद्ध पड़ता है । अतः प्रातःकाल गोवर्धन की पूजा करे । और जुआ खेले । यह है पुराण की आज्ञा जो सर्वथा वेद विरुद्ध है । इसी प्रकार वेद की आज्ञा है कि, चोरी न करें । किन्तु भागवत में लिखा है कि, श्री कृष्ण ने मणि चुराने की कोशिश की, और उससे छीन ली । यह कथा भागवत के दशम स्कन्द के उत्तरार्ध के अध्याय ५६ में देखनी चाहिये । वेद बताता है कि, ब्रह्म हत्या पाप हैं । परन्तु शिव पुराण रुद्रसंहिता सती खण्ड २ अध्याय ३३ में वीर भद्र ने

सैकड़ों ऋषियों का वध किया, और यज्ञ का विध्वन्स किया, इन श्लोकों में उनका वर्णन सुनिये—देखिए शिव पुराण क्या कहता है ?

ततः प्रजापतिं धर्मं कश्यपंच प्रगृह्यसः । अरिष्ट नेमिनं वीरोबहु पुत्रं मुनीश्वरम् ॥४७॥
मुनि मंगिरसच्चैव कृशाश्वंचमहा गणः । जघानमूर्ध्नि पादेन दत्तञ्चमुनि पुंगवम् ॥४८॥
ततो न्यान पिदेवादीन् विदार्य पृथिवी तले । पातयामाससेऽयंवे क्रोधाक्रान्तातिलोचन ॥४६॥
नवपुस्ते पुरीषाणि वितानाग्नौ रुषागणाः । अनिर्वाच्यं तदाचक्षुर्गणा वीरा स्तमध्वरम् ॥५०॥

अर्थात् वीरभद्र ने प्रजापति धर्म, कश्यप आदि ऋषियों को मारा और बाकी देवताओं को फाड़कर पृथ्वी पर फैंक दिया, और उन्होंने यज्ञ में पाखाना डाल दिया, और ऐसा काम किया जो वर्णन के बाहर हैं। इसका नाम ब्रह्म हत्या है। जो वेद के विरुद्ध है। शेष विरोध अगली बारी में दिखाये जावेंगे।

श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा—

तुमने पांच मिनट में २० व २५ प्रश्न कर दिए, १५ मिनट में इनका उत्तर कैसे दिया जावेगा ? "**अक्षैर्मा दीव्य** " इसका प्रमाण नहीं दिया कि, यह मन्त्र कहां का है। तुमने कहा है कि "**कृष्ण ने शराब पी थी**" परन्तु वह तो परमात्मा थे। स्वयं शराब रूप थे, परब्रह्म में यह दोष नहीं आता, यह दोष मनुष्यों पर आता है। भागवत में दो कृष्णों का जिकर आता है। सो यह दोष मिथ्या वासुदेव के ऊपर है। एक मनुष्य ने अपने बेटे का कृष्ण का सा रूप बना लिया था। उसी का नाम मिथ्या वासुदेव है। कृष्ण का वर्णन तो वेद में भी है। जैसे पुराणों में राजा-रानी शहर-नगर आदि का वर्णन आता है, ऐसा ही वर्णन वेदों में भी पाया जाता है जैसे—"**चत्वारि शृङ्गात्रयोऽस्यपादा**···' आदि में एक बैल के चार सींग तीन पैर बताये हैं, परन्तु वस्तुतः यह वर्णन शब्द का है बैल का नहीं है। (समय पूरा किये बिना ही बैठ गए।

श्री पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सुन लिया सज्जनों आपने, शर्मा जी ने मेरे प्रश्नों का कैसा लाजवाब उत्तर दिया ? (जनता में हंसी···) आपने जो कहा कि—"**अक्षैर्मा दिव्य**······" यह कहां का प्रमाण है। सो सुनिये, शर्मा जी भी ध्यान से सुनें, यह प्रमाण ऋग्वेद मण्डल १० अ० ७ सू० ३४ का १३ वां मन्त्र है। इसके विरुद्ध पुराणों में जो जुए का विधान पाया जाता है। इसका उत्तर आप त्रिकाल में भी नहीं दे सकते। शेष जो प्रश्न आपसे किये गए थे। उनको श्राद्ध की खीर की तरह पी गये, उनका क्या हुआ ? उनका उत्तर आपने कुछ भी नहीं दिया। और न इनका उत्तर आपके पास है। आपने मिथ्या ही कह दिया है कि, यह मिथ्या वासुदेव का वर्णन है। जरा उस स्थान को पढ़कर देखिये –वहां मिथ्या वासुदेव का नाम भी नहीं है। अच्छा अब आगे शिव पुराण की दारुकवन की कथा सुनिये—"**शिव पुराण अध्याय ५ पूर्वार्द्ध**" एक दिन नंगे होकर शिव जी दारुक बन में गये—उस समय मुनि लोग वन में गए हुए थे, केवल वहां मुनियों की स्त्रियां ही मौजूद थी। शिव का नंगा रूप देखकर कुछ तो डरने लगीं। और कुछ हंस-हंसकर शिव को लिपट गई। उस समय शिव जी आंखों से कटाक्ष करते जाते थे और अपना लिंग हाथ में पकड़ रखा था, इसी समय मुनि लोग भी वहां आ गये, और यह हाल देखकर बड़े क्रोध के साथ बोले कि हे मूर्ख ! नारकी, अधर्मी यह

क्या पाप करता है ? तूने वेद के विरुद्ध कर्म करके हमारा धर्म बिगाड़ा, इसलिए तुम्हारा लिंग कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े । इतना कहते ही शिव का लिंग धरती पर गिर पड़ा, जिसके कारण पृथ्वी पर बड़े-बड़े उपद्रव उठने लगे । तीनों लोक जलने लगे । अन्त में दुखित होकर मुनीश्वर ब्राह्मण के पास पहुंचे और वहाँ से विष्णु के पास जाकर प्रार्थना की और विष्णु जी सबके साथ शिव जी के पास आकर बोले, कि आप अपने लिंग को फिर से धारण करें । शिव जी बोले कि हमारे लिंग को कौन धारण करेगी ? विष्णु ने कहा कि पार्वती योनि रूप होकर आपको धारण करेगी । तदनुसार जलहरी योनि का रूप है और शिवलिंग यह लिंग का रूप है । अब आप बताइये कि, जब स्वयं शिव जी का यह कार्य वेद विरुद्ध बताया गया है । तब पुराण किस प्रकार माननीय हो सकते हैं ?

श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा—

जैसे "**सहस्त्रशीर्षा**···"आदि वेद के मन्त्रों में अलंकार मिलते हैं, उसी प्रकार दारुक वन की कथा भी एक अलंकार है । वेदों में भयानक रोचक आदि चार प्रकार के वाक्य होते हैं । पुराणों में भी ऐसे होते हैं । वेद की ऐसी हजारों बातें हैं जो समझ में नहीं आती जैसे—"**आकृष्णे नरजसा**" और सांख्य का "**अजामेकाम्**" इत्यादि मन्त्र का अर्थ समझ में नहीं आता । लिंग-लिंग करते हो, आप लिंग का अर्थ भी जानते हो ? क्या आपको चारों तरफ लिंग ही लिंग दीखते हैं । (जनता में हंसी···) महाराज जी ! लिंग का अर्थ है "**ब्रह्म**" । और योनि का अर्थ "**माया**" है । देखो वेद में लिखा है—"**तस्य योनिं परि पश्यान्ति धीरा**" लिंग से तो सारी सृष्टि बनती है । और शिव तो स्वयं लिंग रूप थे ।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

आप की बुद्धि को धन्य है । जो आप सीधी-सादी कथाओं को अलंकार बताते हैं । भविष्य पुराण में ब्रह्म विष्णु और महादेव ने अत्रि की पत्नी अनुसूया से व्यभिचार किया यह कौन सा अलंकार है ? (जनता में हंसी ··) जरा इन श्लोकों का अर्थ तो कीजिए । "**लिंग हस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रस वर्धनः ब्रह्मा काम ब्रह्म लोप स्थित स्तस्या वशंगतः रतिं देहि मदा घूर्णो नोचें प्राणांस्त्य जाम्यहम् पतिव्रताऽनुसूया च श्रुत्वा तेषां बचोऽशुभम् नैव किञ्चिदवचः प्राह कोपभीता सुरान् प्रति मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदामैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्माया विमोहिताः ॥** अर्थात् रुद्र के हाथ में लिंग है । विष्णु उसका रस बढ़ा रहे हैं । ब्रह्मा वेद मर्यादा तोड़ने को तैयार है । सती अनुसूया से बोले कि—या तो व्यभिचार करने दे, नहीं तो मैं मरता हूं । अनुसूया यह हाल देखकर चुप हो गई । डर गई । तब सब मिलकर जबर्दस्ती उससे व्यभिचार करने का उद्योग करने लगे । अब बताइये कि इसमें कौन सा अलंकार है ? आप कहते हैं कि भगवान स्वयं शराब स्वरूप है । यह तो ऐसी बात हुई जैसे किसी ने किसी से कहा कि तुम्हारे शरीर पर पाखाना है । तो उसने उत्तर दिया कि, मैं तो स्वयं पाखाना स्वरूप हूं । (जनता में अपार हंसी···) इसमें क्या अलंकार है ? जुआ खेलने का आपने क्या उत्तर दिया ? कृष्ण ने चोरी की, इसमें भी कोई अलंकार बता दीजिये ।

श्री पण्डित लक्ष्मी चन्द्र जी शर्मा—

ज्ञान, सत्संग, वैराग्य, यह तीनों ईश्वर से पैदा हुए हैं । अभी तुम कहते हो अलंकार बताओ तो लिख लो, यहां "वाचक अलंकार" है । ऋषियों की तुम निन्दा करते हो अनुसूया का अर्थ है, भक्ति, भक्ति के सब वश में है ।

बस यह कथा भक्ति की कथा है। भक्ति तो मनुष्यों को जोड़कर बिठा देती है। तुम आर्यों ने तो दोष ही निकालने सीखें हैं। कोई अच्छी बात तो सीखी नही। तुम भी स्वामी दयानन्द की मूर्ति को घर में लगाते हो। और तुम भी मूर्ति पूजा करते हो तुम दयानन्द की मूर्ति से दयानन्द को याद करते हो। हम परमेश्वर की मूर्ति से परमेश्वर को याद करते हैं। "लिंग" नाम ईश्वर का हैं। और "लिंग" से ही सब पैदा होते हैं। (जनता में चारों तरफ हंसी ही हंसी का वातावरण······)।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

महाराज ! क्यों अपनी हंसी करवाते हो ? क्या इन कथाओं का यही उत्तर है ? वाचक लुप्त उपमा जो आपने बिना सोचे-विचारे कह दी, जरा उसका लक्षण तो कहिए ? इसका वर्णन आगे किया जायेगा। तो लिंग की कथा और सुनों। और बताओ कि यहां कौन-कौन सा अलंकार है ? देखिये -- **"नारद पञ्चरात्र प्रथमाध्याय-नारद ब्रह्म सम्वाद"** जब भगवान महादेव का सती के साथ विवाह हो गया, तब शंकर अनन्त समय तक सती के साथ समागम करते रहे। अन्त में शंकर के तेज को सती न सह सकी। और दीन होकर बोली कि महाराज ! मैं तुम्हारे भार को नहीं सह सकती मुझे छोड़ दो। यह सुनकर भगवान शंकर ने और भी वेग से सती को पकड़ लिया, और जब अच्छी तरह रमण कर चुके तब बड़ी कठिनता से सती का पिण्ड छुटा जिससे दोनों का रज और वीर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। जिससे शिवलिंग ही शिवलिंग संसार में बन गए। श्लोक भी सुन लीजिये।—

"अथ काले कदाचितु सत्यासह महेश्वर। रेमेन शेकेतं सोढुं सती श्रान्तातदाभवत्॥
उवाच दीनया वाचा देवदेवं जगदगुरुम्। भगवान्न हि शकनोमि तवभयं सुदुः सहम्॥
क्षमस्वमां महादेव कृपां कुरु जगत्पते। निशम्य वचनं तस्या भगवान वृषभ ध्वजे॥
निर्भरं रमणं चक्रे गाढ़ं निर्दय मानसः। कृत्वा सम्पूर्ण रमणं सती चत्यक्त मैथुनां॥
उत्थानाय मनश्चक्रे उभयो स्तेज उत्तमम्। पपात धरणी पृष्ठेतंव्याप्त मखिलं जगत्॥
पाताले भूतले स्वर्गे शिवलिंगा स्तदा भवन्। यत्रलिंग तत्रयोनिः यत्रयोनिः ततः शिवः॥
उभयोश्चैवते जो भीः शिवलिंग ब्यायत। शब्द कल्पद्रुम लिंग शब्दः॥

शराब, जुआ, व्यभिचार आदि के उत्तर आपने क्या दिये ? लिंग की और कथा पढ़नी हो तो पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय १२० खोलकर पढ़ो तब कहना कि यह अलंकार है या कुछ और है।

श्री पण्डित लक्ष्मी चन्द्र जी शर्मा—

शरीर तीन होते हैं, यह वेदान्त का रहस्य है इसे तुम क्या जानो, स्थूल शरीर तो यही है। सूक्ष्म स्वप्न में दीखता है। कारण शरीर अविद्या है। पुराणों में से तुम बुरी-बुरी बातें लेते हो सार वस्तु नहीं लेते। **"हस्ते लिंगञ्च धारयन्"** का अर्थ यह है कि—ज्ञान बिना ब्रह्म नहीं मिलता। हस्त नाम ज्ञान का है। और लिंग नाम ब्रह्म का है। लिंग तो हाथ से ही पकड़ा जाता है। अरे भाइयों इनको चालीस-पचास की नौकरी मिल गई, बस इसी लिए समाज के गीत गाते फिरते हैं। **"इतिहास पुराणं पञ्चमो वेदानाम् वेदः"** अर्थात् पुराण पांचवा वेद है। तुमने तो पांच में से चार ही वेद रख छोड़े और आगे तीन ही रह जायेंगे।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

हस्त नाम ज्ञान का है, यह कहां लिखा है ? फिर उस कथा में पातकी, अधर्मी तथा वेद विरोधी, शिव को क्यों कहा गया है ? जिस कथा में मैंने लिंग शब्द बताया है वहां "परमात्मा" अर्थ त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। क्योंकि कटना, गिरना, और भागा-भागा फिरना, ये लक्षण परमात्मा में नहीं मिलते, और नंगे होकर, हाथ में पकड़ कर कटाक्ष करते हुए स्त्रियों में आना ये लक्षण क्या ब्रह्म में मिलते हैं? इसलिए शिव पुराण की इस कथा में लिंग शब्द का अर्थ सिवाय गुप्तेन्द्रिय के और कुछ नहीं हो सकता।

श्री पण्डित लक्ष्मी चन्द्र जी शर्मा—

स्वामी दयानन्द ने ४५० झूठे मन्त्र बनाये हैं। किसी ईसाई को मध्यस्थ बनाकर शास्त्रार्थ करो मैंने मुलतान में बुद्ध से पूछा था कि तू क्यों सनातनी बना ? तो उसने कहा कि मैंने समाज में बड़ा पाप किया है। लिंग योनि का क्या वर्णन करते हो ? लिंग-योनि से तो सारा संसार बनता है। लिंग-योनि ही ब्रह्म माया है। दारुवन नाम शरीर का है और ऋषि पत्नी इन्द्रियां हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पण्डित जी ने जुए का कोई समाधान नहीं किया, शराब का उत्तर कोई उचित नहीं दिया, मिथ्या वासुदेव की यह कथा नहीं है यह हमने कहा था, इसका क्या उत्तर है ? हां ! आज पेट के लोभी, "कृष्ण को शराब रूप बताते हैं"। और व्यभिचारी मनुष्य कृष्ण पर तरह-तरह के झूठे लांछन लगाते हैं, इसलिए कि हम भी ऐसे ही कुकर्म करते रहें और लोग कुछ न कहें। याद रक्खो प्रजा जाग रही है और सनातनी भी जागेंगे, तब यही प्रश्न तुम से पूछेंगे। बस जब तक यह लोग नहीं जागते तभी तक खीर और हलुआ खालो, परन्तु वह दिन दूर नहीं है जब सबकी आँखें खुल जावेंगी।

श्री पण्डित लक्ष्मी चन्द्र जी शर्मा—

शराब और जुए का सैकड़ों जगह निषेध है और यह तो सब जानते हैं कि, पाण्डवों का जुए से नाश हुआ। कृष्ण ने १६००० गोपियों में से किसी से भी भोग नहीं किया। गोपियों की कामवासना तो कृष्ण के स्पर्श करने से ही नष्ट हो जाती थी। बस ! वह तो वासना के भूखे थे। भगवान में सब शक्तियां हैं। सत्यार्थ प्रकाश के नोवें सम्मुल्लास में लिखा है कि..."**शृण्वन् श्रोत्रं भवतित्यादि**" अर्थात् जब मुक्ति में जीव चाहे तो अपने सामर्थ्य से सुन सकता है। जा सकता है। ऐसे ही भगवान को समझो ॥ इति शम्। मेरे बोलने के समय के साथ-साथ ही आज का शास्त्रार्थ भी समाप्त होता है। धन्यवाद ॥

☆

पैंसठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : देहली (आर्यसमाज—नया बांस)

दिनाङ्क : ३ फरवरी सन् १६२६ ई० (तृतीय दिवस)

विषय : क्या दयानन्द ऋषि थे ?

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा

सहायक : (१) श्री पण्डित लक्ष्मीचन्दजी शर्मा
(कोल, जिला करनाल निवासी)

(२) श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा,
व्याकरणाचार्य (दिल्ली)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित लोकनाथ जी शर्मा "तर्कवाचस्पति"

सहायक : (१) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

(२) श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

आर्य समाज की ओर से प्रधान : श्रीमान् राय साहब लाला गंगाराम जी (शिमला)

सनातन धर्म की ओर से प्रधान : श्री मान् लाला कृष्णदास जी लोहिये

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

सज्जनों ! स्वामी जी को ऋषि मानने वाले "**ऋषि**" शब्द का अर्थ करें क्या है ? यदि "**ऋषिति गच्छति इति ऋषिः**" ऐसा अर्थ करें अर्थात् जो चलता है वह ऋषि होता है, "तो क्या गधा भी ऋषि होगा ?" (श्रोताओं में चारों तरफ शोरोगुल···) दयानन्द कभी ऋषि नहीं हो सकता, दयानन्द ने कहां तप किया ? ब्रह्मा ने कहां उसे मन्त्र बताया ? ऋषि कभी झूठ नहीं बोलते । दयानन्द ने झूठ बोला, छल किया, संस्कार विधि में लिखा है—"**अच्युताय भौमाय स्वाहा**" बताओ यह किस वेद का मन्त्र है ? मैं अभी आर्य हो जाऊँ यदि इसे कहीं दिखा दो तो । संस्कार विधि ४२ पृष्ठ में—"**देव सवितः प्रसुव यज्ञं**" इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल छिड़कना लिखा है । परन्तु इस मन्त्र में जल छिड़कना नहीं है । यह झूठ है । बताओ "**सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा**" किस वेद में लिखा है ? स्वामी दयानन्द ने अन्याय किया है, अनर्थ किया है । मैं आज वेदों की पोल खोलूंगा ।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

आपने स्वामी दयानन्द के ऋषि न होने में कोई भी हेतु नहीं दिया । बल्कि यह कहा कि, मैं वेदों की पोल खोलूंगा । ठीक है आपसे और क्या आशा हो सकती है । शोक है कि आज सनातन धर्म वेदों की पोल खोलने वाला है । आपने पूछा कि ब्रह्मा ने कहां उसे वेद मन्त्र बताया । तो हम पूछते हैं कि, पाराशर के हृदय में ब्रह्मा ने कहां मन्त्र डाले थे ? किस प्रकार डाले थे ? जिससे वह ऋषि कहलाये । जिस प्रकार ये सारे ऋषि बने । शोक है कि किश्ती में एक कन्या से व्यभिचार करने वाले को ऋषि मानते हो । और दयानन्द को नहीं जो सदैव ब्रह्मचारी रहे । "**सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा**' इत्यादि मन्त्र गृह्य सूत्रों के हैं ।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

बताओ "**अच्युताय भौमाय स्वाहा**" कहां लिखा है वेद में ? पुराण में, होड़ा चक्र में, थाली में, लोटे में, कटोरे में ! कहीं तो दिखाओ ? दिखा दोगे तो मैं समाजी हो जाऊंगा यह सब मन घढ़न्त है । समाजियों ने सत्यानाश कर दिया है । अभी सब धज्जियां उड़ा दूंगा । स्वामी दयानन्द ने रमा बाई के साथ भोग किया । दयानन्द ने भी पाराशर की हिर्स की तभी तो ऋषि बने । आज बगले झांकोगे । ऋषि वही है जिसे ब्रह्मा ने मन्त्र दिया हो । अगली बार बताऊंगा कि स्वामी दयानन्द ने गुदा से सांप पकड़ने लिखे हैं ।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

मैं यह महाभारत देता हूं। जिसमें साफ लिखा है कि पाराशर ने समागम किया, किन्तु आप झूंठ बोलते हैं। बताओ स्वामी जी की बाबत रमा से समागम करना कहां लिखा है ? दम हो तो दिखाओ। पाराशर के तप के समय ब्रह्मा ने मन्त्र दिया और जब व्यभिचार करने लगे तो ब्रह्मा कहां चला गया ? (जनता में हंसी···) विश्वामित्र ने मेनका के साथ व्यभिचार किया, फिर भी ऋषि बने, महाभारत आदि पर्व में उद्दालक व श्वेतकेतु की कथा इस प्रकार लिखी है कि उद्दालक और श्वेतकेतु दोनों पिता-पुत्र एक जगह बैठे थे, तब किसी ने श्वेतकेतु की मां को व्यभिचार करने हेतु पकड़ा, तब श्वेतकेतु को क्रोध आया। इस पर उद्दालक ने कहा—**"मातात कोपं कार्षी एष धर्म सनातन"**। अर्थात् "तुम क्रोध मत करो यह तो सनातन धर्म है" (श्रोताओं में चारों तरफ हंसी का वातावरण···) सज्जनों! ऐसे पुरुष भी ऋषि कहाते हैं। परन्तु ऋषि दयानन्द ऋषि नहीं हैं जो बाल ब्रह्मचारी हैं। शोक है, इस पक्षपातिनि बुद्धि पर ! आप बड़े छल से कहते हैं कि—**"अच्युताय भौमाय स्वाहा"** यह भी दयानन्द ने घड़ लिया है। आप कहते हैं कि—"थाली में, कटोरे में कहीं दिखा दो तो आर्य हो जाऊंगा" अच्छा ! लीजिए देखिये (पारस्कर गृह सूत्र को उठाकर यहां पढ़कर सुनाया गया, इसको सुनकर ताराचन्द्र के होशो हवास उड़ गये और मुह सूख गया)।

श्री पण्डित तारा चन्द्र जी शर्मा—

मैं आपसे पूछता हूं कि, कहीं सूत्रों से भी आहूति दी जाती है ? ऋग्वेद में, यजुर्वेद में, कहीं तो दिखाओ। बार-बार विश्वामित्र का जो आप नाम लेते हैं उसका अर्थ मैं आगे करूंगा, स्वामी जी ने लिखा है कि गुदा से सांप को पकड़ो तथा अण्डकोषों से घोड़ों को पकड़ो। यह है दयानन्द के भाष्य की पोल। क्या यह शर्म की बात नहीं है कि, नील गाय को रोज मारो। तब समाजी बनोगे, वेदों ने जो ऋषि का लक्षण किया है, उससे दयानन्द ऋषि नही होते।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

आपने कहा था कि, **"अच्युताय: भौमाय स्वाहा"** यह कहीं भी दिखा दोगे तो समाजी बन जाऊंगा, सो अब अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करो। जो आपने जल छिड़कने का मन्त्र पूछा था कहां लिखा है ? यह देखिये—गोभिल गृह्य सूत्र में मौजूद है। हम तो विश्वामित्र को ऋषि मानते हैं। और आपके पुराण उन्हें मेनका से व्यभिचार करना बताते हैं। गुदा से सांप पकड़ो, इसका आशय यह है कि, पूंछ की तरफ से सांप पकड़ो। शायद आप समझते हैं कि आपको अपनी गुदा से सांप पकड़ना पड़ेगा। जैसा कि आप बार-बार अपनी गुदा पर हाथ रखते हैं। (जनता में हंसी······) स्वामी जी के पत्र व्यवहार को देखो उन्होंने रमाबाई को उपदेश दिया है कि···क्या तुम गार्गी की तरह ब्रह्मचारिणी नहीं रह सकती हो ?

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

स्वामी दयानन्द ने अण्डकोष से जो घोड़ा पकड़ना लिखा है वह अश्लील है, तप न करने के कारण स्वामी दयानन्द ऋषि नहीं थे ! नहीं थे !! नहीं थे !!! (झल्लाते हुए समय पूरा किए बिना ही बैठ गए)।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

कहिए ! वह आपके अब "अच्युताय भौमाय" और जल छिड़कने के मन्त्र कहां चले गए ? अब आपका वह गर्जना तथा हाथ-पैर मारना क्यों बन्द हो गया ? आपने बड़े जोर से कहा है कि स्वामी दयानन्द ने नील गाय का मारना लिखा है। यह आपका सरासर धोखा है। नील गाय के मारने का मतलब वहाँ कतल करना नहीं है। बल्कि हटा देना होता है। घर में कुत्ता आ गया है इसे मार दो, इसका मतलब यह नहीं है कि उसे जान से मार दो। बल्कि हटा दो। यह अर्थ होता है और फिर राजा के लिए उन प्राणियों के मारने का भी विधान है जो प्रजा और खेती के नाशक हों, इसीलिए आप नील गाय को कहते हैं। मनुष्यों तक को राजा फांसी दे देता है। यहां राज धर्म का प्रकरण है। अतः जिस प्रकार भी हो राजा खेती की रक्षा का उपाय करे। यही आशय निकलता है। जरा ऊपर से पढ़िये स्वामी जी लिखते हैं कि···हे राज पुरुषों ! जिनके दूध से प्रजा की रक्षा होती है उसको कभी मत मारो। जो इनको मारे, राजा उसे दण्ड दे, जो नील गाय आदि खेती का नुकसान करे, राजा उसे मारे, इसमें दोष क्या आ गया ? घोड़े को अण्डकोषों से पकड़ो, इसका भी यह अर्थ हैं कि घोड़ा अण्डकोषों से ही वश में आता है, जब वह ख़स्सी होता है तभी सीधा होता है।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

"**अच्युताय भौमाय स्वाहा**" वेदों में दिखाओ ! सूत्रों में क्यों दिखाते हो ? तुम तो वेदों के मानने वाले हो, अब गाय-भेड़, तुम्हारा कुछ खावें तो मत हटाना, परचूनियों का तो दिवाला निकलने वाला है। (शेष पिछली बातें कहकर समय पूरा कर दिया)।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

भाइयों ! अब आप घर जाकर विचार करें कि आर्य और पौराणिक पण्डितों में किसका कथन सत्य है ? किसका असत्य है ? पहिले तो आप "**अच्युताय**······" इत्यादि मन्त्र लोटे-गिलास में दिखाने को कहते थे। अब जब दिखा दिया तो कहते हैं कि वेद में दिखाओ। बीसियों बार कहा कि···स्वामी जी ने झूठ लिखा है। अब वह सारी बातें कहां चली गई। स्वामी जी ने कब लिखा है कि वह वेद का मन्त्र है। अच्छा कृष्ण जी की शराब पीने की कथा सुनों······(बीच में)।

नोट—

इतना कहते ही सनातनियों द्वारा जबर्दस्त हल्ला मचाया जाने लगा। पन्द्रह मिनट तक हल्ला होता रहा जब हल्ला शांत हुआ तब दो मिनट दिए गए, जिसमें पण्डित जी ने कृष्ण जी के शराब पीने की कथा सुनाई। (यह कथा पीछे आ चुकी है) तदनन्तर आज का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

□

छियासठवां शास्त्रार्थ--

स्थान : देहली (आर्य समाज—नया बांस)

दिनांक : ४ फरवरी सन् १९२९ ई० (चतुर्थ दिवस)

विषय : सनातन धर्म में पतयन्तर विधान हैं या नहीं ?

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा

सहायक : (१) श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा (कौल निवासी)

(२) श्री पण्डित सुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य (दिल्ली)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित लोकनाथ जी "तर्क वाचस्पति"

सहायक : (१) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

(२) श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

(३) श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थ

आर्य समाज की ओर से प्रधान : श्रीमान् राय साहब लाला गंगाराम जी (शिमला)

सनातन धर्म की ओर से प्रधान : श्री लाला कृष्णदास जी लोहिये

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

भाइयों ! धर्म निर्णय के लिए वेद, स्मृति तथा शास्त्रों से अधिक और कोई प्रामाणिक नहीं हो सकता अतः मैं इस विषय के लिए कि "सनातन धर्म में पत्यन्तर विधान है या नहीं" प्रथम वेद का प्रमाण पेश करता हूं।

**"कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
कोवां शयुत्रा विधयेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थम।।"**

इस मन्त्र से सायण भी पत्यन्तर विधान करते हैं। (सायण भाष्य सुनाया गया) निरुक्तकार, "देवर" शब्द का, "**देवरः कस्माद् द्वितीयोवर उच्यते**" करते हैं।

अर्थात् द्वितीय वर का नाम देवर है। आप लोग कलियुग के लिए पाराशर स्मृति को प्रमाण मानते हैं। तो उसमें देखिए...."**नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ, पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते**' लिखा है। अर्थात् घर से निकल जाने पर, मरने पर, सन्यासी होने पर, एवं क्लीव दशा में एवं पतित होने पर स्त्रियों के लिए दूसरा पति होना चाहिये, इस प्रकार अक्षत योनि विधवा का विवाह क्षतयोनि शूद्रा का पुनर्विवाह एवं द्विजातियों के लिए नियोग की आज्ञा वेद और शास्त्रों से मिलती है। सनातन धर्म किसी रूप में भी किसी स्त्री का पुनर्विवाह नहीं मानता, तब बताइये कि यदि कोई स्त्री बाल्यावस्था में विधवा हो गई हो और वह किसी भी तरह ब्रह्मचारिणी न रह सके तो उसके लिए सनातन धर्म क्या विधान करता है ? क्या वह व्यभिचार करे ? या ईसाई वा मुसलमान हो जावे ! क्या करे ? आप इसका उत्तर क्या देते हैं ? दिव्या देवी ने २१ पति तक किए थे यह पद्म पुराण में साफ लिखा है।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

पण्डित लोकनाथ जी ने जो कुछ कहा वह सब अनर्गल प्रलाप हैं। इस मन्त्र से तो स्वामी जी ने नियोग सिद्ध किया है, विधवा विवाह स्वामी जी नहीं मानते। मैं आज इनका ऐसा खण्डन करूंगा जो इनसे कभी मण्डन न हो सकेगा। क्या तुम वेदों को दयानन्द जी से भी ज्यादा जानते हो ? स्वामी जी तो द्विजों का एक ही बार विवाह करना लिखते हैं।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

पण्डित जी महाराज ! स्वामी दयानन्द जी ने तो ठीक ही लिखा है। दुःख तो यह है कि तुम "**पत्यन्तर विधान**" शब्द का अर्थ नहीं जानते। केवल हाथ फेंकना और कोलाहल करना आता है। पुनर्विवाह का अर्थ भी

पत्यन्तर है, और नियोग का अर्थ भी यही है। पत्यन्तर में तो दोनों आ जाते हैं। महाभारत आदि पर्व उठाओ जहां व्यास जी ने अम्बिका के साथ नियोग किया जिससे धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर पैदा हुए। वहां लिखा है—

"कौशल्ये। देव रस्तेऽस्ति सोऽधत्वातु प्रवेक्ष्यति। अप्रमत्ता प्रतीक्षेनं निशीथेत्यागमिष्यति॥"

इसी तरह पाराशर ने नियोग किया, और भी बहुतों ने किया। तब आप ही की पुस्तकों से नियोग भी सिद्ध है। फिर आप क्या कहते हैं ?

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

दयानन्द ने तो एक बार ही विवाह लिखा है तुम दूसरा विवाह कैसे कहते हो ? यह पण्डिताई नहीं है यह तो धृष्टता है। "कुहस्विद्दोसा···" यह मन्त्र तो स्वामी जी ने नियोग पर लिखा, और आप पुनर्विवाह पर लगाते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि, जो पुनर्विवाह करे वह सब शूद्र हैं। तो क्या जो विधवा विवाह कर रहे हैं वे सब शूद्र हैं ? धन्य हो ! और सुनो स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि, "जब पति परदेश चला जावे तो स्त्री झट पीछे से दस पुत्र उत्पन्न कर ले" इस बात पर जरा लज्जा करो।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

आपने देवर शब्द का अर्थ नहीं किया। मनु जी ने जो क्षेत्रज पुत्र के लक्षण किए हैं, उनको आप क्यों नहीं देखते ? व्यास जी ने नियोग किया यह तो आपको भी स्वीकार है। नियोग के लिए और देखिए वशिष्ठ स्मृति **"पिता वा भ्राता नियोग कारयेत्तपसे, नसोन्मत्तां मवशां व्याधितां वानियुञ्चयात। प्राजापत्ये मुहूर्त्ते पाणिग्राहवदुपचरेत्।"** इत्यादि (वशिष्ठ स्मृति अध्याय १७) यहां वशिष्ठ जी ने साफ-साफ नियोग की आज्ञा दी है। हम भी स्वीकार करते हैं कि, द्विजातियों में एक ही विवाह होना चाहिए। परन्तु स्मृति विधान करती है कि, —**"उत्तमाद्देवरात्पुसः कांक्षन्ते पुत्र मापदि"** अर्थात् आपत्ति काल में उत्तम देवर से भी पुत्र प्राप्त किया जा सकता है. **"उत्यत् पतयो दशास्त्रियाः पूर्वेऽब्राह्मणाः"** इस मन्त्र से १० पति तक नियोग में हो सकते हैं, यह आज्ञा वेद में मौजूद है। गौतम कुल में से जटिला नाम की स्त्री ने ७ पुरुषों से विवाह किये, एवं द्रौपदी के भी पांच पति थे* यह आप भी मानते हैं। फिर कौन सी बात रही जो पत्यन्तर विधान को सिद्ध नहीं करती। **"पतौ"** शब्द को यदि आप अशुद्ध बतावें तो कृपया "तत्व बोधनी" नामक पुस्तक में पति समास एवं इस सूत्र को देखिये। वहां "पतौ" भी सिद्ध कर दिया है।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

तुम जो कहते हो व्यास ने नियोग किया, मैं बतलाऊंगा नियोग क्या है ? (मैं बतलाऊंगा नियोग क्या है इस वाक्य को बार-बार दोहराते थे, परन्तु बतलाते न थे, ऐसा लगता था जैसे यह उनका तकिया कलाम हो, इस

---

* **टिप्पणी**—इस विषय पर विस्तृत जानकारी हेतु हमारे द्वारा ही प्रकाशित, श्री अमर स्वामी जी सरस्वती कृत **"कौन कहता है द्रौपदी के ५ पति थे ?"** नामक पुस्तक मंगाकर पढ़ें, (मूल्य दस रुपये)।

"प्रबन्धक"

(अमर स्वामी प्रकाशन विभाग)

लिये जब भी वह इस वाक्य को बोलते थे तो जनता तुरन्त हंस पड़ती थी) "**नान्यस्मिन् विधवा नारीनियोक्तव्याद्विजातिभि**" इत्यादि श्लोकों से मनु ने नियोग को पशु धर्म बताया। देवर छोटे भाई का नाम है। "**नष्टे मृते**......"इस श्लोक में नष्टे का अर्थ है सगाई होने पर यदि पति मर जावे तो दूसरा पति हो सकता है।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

जटिला नाम की कन्या ने सात पति किये, इसका समाधान आपने क्या किया? "**नष्टे**" का अर्थ सगाई करने पर पति मर जावे ऐसा करना आपकी धृष्टता ही नहीं, बल्कि अज्ञानता है, क्योंकि सगाई कोई संस्कार नहीं है और सगाई से कोई किसी का पति नहीं हो सकता। "**नान्यस्मिन् विधवा नारी**" का अर्थ यह है कि विधवा को अन्य वर्ण में नियुक्त न करे। जैसे पाराशर ने किया बल्कि अपने ही वर्ण में नियोग करावे। आपने क्षेत्रज्ञ शब्द का कोई अर्थ नहीं किया। (पण्डित जी ने सत्यार्थ प्रकाश से नियोग का प्रकरण पढ़कर सुनाया और बताया कि नियोग न "**धर्म**" है, न "**अधर्म**" है, किन्तु "**आपद्धर्म**" है)

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

देवर छोटे भाई का नाम है। व्यास बड़े भाई थे इसलिए वे देवर नहीं थे, और उन्होंने नियोग नहीं किया। जैसा पाराशर ने नियोग किया वैसा करो तो सही, वह तो आधी रात को बाहर चला गया था। क्या तुम भी ऐसा कर सकते हो? बार-बार ऋषियों का नाम लेते हो ऋषियों में तो शक्ति होती है। इनको छोड़कर कोई और बात को बताओ। स्वामी जी लिखते हैं, कि पति का छोटा भाई भी नियोग कर सकता है।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

आप कहते हैं कि देवर छोटे भाई का नाम है। तो बताईये—"**कौशल्ये देवरस्ति**......" यहां ज्येष्ठ भाई व्यास जी के लिये देवर शब्द क्यों आया? आप व्यर्थ ही धोखा दिये जाते हैं। स्वामी जी तो छोटे बड़े दोनों भाइयों से नियोग मानते हैं। यही सत्यार्थ प्रकाश में लिखा हुआ है। आप कहते हैं कि, "**नष्टे मृते**......" इत्यादि श्लोक तो सगाई अर्थात् वाग्दान को बताता है तो जरा बताइये कि क्या वाग्दान भी कोई संस्कार है? और यह किस स्मृति में लिखा है? कृपा कर अथर्व वेद की इस श्रुति का अर्थ भी बताइये—"**या पूर्वं पति वित्वाऽथान्यं विन्दते परम् पंचौ दनंच तावजं ददतो न वियोपतः**" इस श्रुति का क्या अर्थ है? जो साफ-साफ पत्यन्तर विधान कर रही है एवं स्मृतियों में जो पुनर्भू शब्द का प्रयोग आया है, जिसका अर्थ स्वयं भीमसेन करते हैं कि, पति के मर जाने या उन्मत्त होने पर जो स्त्री दूसरा पति करती है, वह पुनर्भू कहाती है। इसमें बड़े छोटे का कोई जिकर नहीं है। खैर! आपने ऋषियों का तो नियोग मान लिया, जब ऋषियों का नियोग आप मान गए तो फिर न तो यह पाप रह सकता है न इसे आप व्यभिचार कह सकते हैं।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

वाह! वाह!! हमसे पूछते हो कि सगाई कौन सा संस्कार है? हम पूछते हैं कि विधवा विवाह कौन सा संस्कार है? (जनता में हंसी......) देखो स्वामी दयानन्द तो ११९ पृष्ठ पर सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि,

"तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवर:" अर्थात् छोटा भाई नियोग करे और तुम बड़े भाई से दस-दस लौंडे (लड़के) पैदा कराओ। (पण्डित जी व्यर्थ की अप्रांसगिक बातें ही बोलते रहे, लेख योग्य कुछ नहीं कहा)।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

सज्जनों! आप सुन रहे हैं कि हमारे प्रश्नों का कितना अच्छा उत्तर दिया जा रहा है। बेमतलब के भ्रष्ट शब्द बोल-बोल कर समय पूरा कर दिया जाता है। और उत्तर भी क्या हो? वेद, स्मृति, पुराण सभी तो पत्यन्तर विधान करते हैं। मैंने वेद का, वशिष्ठ स्मृति का, महाभारत का प्रमाण आपके सामने रखा। पुनर्भू शब्द से बताया कि, सभी स्मृतिकार पत्यन्तर विधान मानते हैं। परन्तु पण्डित जी न जाने कौन सा पक्षपात, हठ व दुराग्रह का चश्मा लगाकर खड़े हो गए, और गालियां देते हैं, जिनका प्रतिदिन का यही काम है। उनके सामने सभी प्रमाण व्यर्थ हैं। आपने बार-बार यही कहा कि महर्षियों ने नियोग किया सही, साधारण लोगों ने नहीं किया; लीजिए मैं साधारण लोगों में दिखाता हूं। महाभारत में परशुराम जी की कथा पढ़िये—**"एवं नि: क्षत्रिये लोके कृते तेन महात्मना, उत्पादि तान्य पत्यानि ब्राह्मणै वेदपारगै:"** अर्थात् इस प्रकार जब परशुराम जी ने सम्पूर्ण क्षत्रियों को नष्ट कर दिया, तब वेद पारंगत ब्राह्मणों ने उन स्त्रियों से सन्तानें उत्पन्न की। अब तो आप समझे कि साधारण लोगों के लिए भी नियोग मौजूद है। आपको तो अपनी पद्यति का भी ज्ञान नहीं है। जरा **"निबाहूराम"** की पद्यति देखिये जहां लिखा है, "अर्थ—**पुनर्विवाह प्रकरणं लिख्यते**"—और देवी भागवत आदि में तो एक-एक स्त्री के लाख-लाख पति लिखे हैं। आप किस मुख से निषेध कर सकते हैं?

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

जो समाजी पुनर्विवाह करते हैं वे सब शूद्र हैं। न तो पाराशर ने नियोग किया न व्यास ने। नियोग तो समाजी ही करते फिरते हैं। ऋषि तो दृष्टि से ही सन्तान पैदा कर लेते थे। विधवा विवाह कोई संस्कार नहीं है। (इसके अतिरिक्त पण्डित जी अप्रांसगिक, अश्लील, असम्बद्ध भाषण करते रहे जिसका लिखना यहां व्यर्थ है)। चौथे दिन का यह शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।

सड़सठवां शास्त्रार्थ—

स्थान : देहली (आर्यसमाज—नया बांस)

दिनाङ्क : ५ फरवरी सन् १६२६ ई० (पञ्चम दिवस)

विषय : आर्य समाज की शिक्षा अमल के योग्य नहीं है।

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : **श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा**

सहायक : (१) **श्री पण्डित लक्ष्मीचन्दजी शर्मा**
(कोल, जिला करनाल निवासी)

(२) **श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा,**
व्याकरणाचार्य (दिल्ली)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : **श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार**

सहायक : (१) **श्री पण्डित लोकनाथ जी शर्मा "तर्कवाचस्पति"**
(२) **श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी**
(३) **श्री पण्डित देवेन्द्र नाथजी शास्त्री, सांख्यतीर्थ**

आर्य समाज की ओर से प्रधान : **श्रीमान् राय साहब लाला गंगाराम जी** (शिमला)

सनातन धर्म की ओर से प्रधान : **श्री मान् लाला कृष्णदास जी लोहिये**

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

सज्जनों ! मैं आज दिखाऊंगा कि संस्कार विधि और वेद भाष्य में क्या लिखा है ? देखो स्वामीजी ने गर्भाधान संस्कार में कहा है कि, स्त्री पड़ी हुई योनि संकोच करे और पुरुष वीर्य सेचन करे। बताओ यह विधि किस शास्त्र में लिखी है ? जब स्त्री ने योनि को सिकोड़ लिया तो वीर्य बाहर गिर जायेगा तब गर्भाधान कैसे होगा ? यदि यह विधि किसी ग्रंथ में नहीं है, तो बताओ किस स्कूल में यह बेहूदा पढ़ाई, पढ़ाई जाती है ? तुमने इसके लिए कौन सा स्कूल खोल रखा है जहां यह शिक्षा दी जाती हो ? (इन्हीं वाक्यों को बार-बार दोहरा कर बैठ गए)।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

भाईयों ! पण्डित ताराचन्द ने जिस शिक्षा को बेहूदा बताया है उसमें दोष कोई भी नहीं बताया, मैं पूछता हूं कि सन्तान उत्पन्न करने की इस विधि के सिवाय आपके पास कोई और विधि है ? क्या सनातन धर्मी इस विधि के विपरीत करते हैं ? अगर आपको गर्भाधान की यह विधि स्वीकार नहीं है तो आप अपनी विधि बताइये वह कौन सी है ? क्या पुराणों के मतानुसार आपको यह विधि स्वीकार है कि, सूर्य ने घोड़ा बनकर संज्ञा देवी के नाक और मुंह में गर्भाधान किया था, यदि आपकी धर्मपत्नी मौजूद हो तो उनसे पूछकर आप ही बतलाइए कि गर्भाधान वे इसी प्रकार कराती हैं या कुछ अन्तर है ? अब आप कहते हैं कि यह किस वेद में लिखा है, तो कृपा-नाथ ! यजुर्वेद के १९ वें अध्याय का यह मन्त्र देखिए—**"रेतो मूत्रं बिजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्"** इत्यादि इसके भाष्य में स्पष्ट लिखा है—**"योनिं प्रविश्यइन्द्रियम्"** **"स्त्री मूत्रं बिजहाति"** इत्यादि। क्या आपकी राय में वेद की यह शिक्षा भी बेहूदा है ? सज्जनों ! ऋषि दयानन्द वीर्य को अमूल्य रसायन समझते थे इसलिए उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि, वीर्य को नष्ट मत करो। इसीलिए गर्भाधान की भी शास्त्रानुसार विधि लिख दी है। यदि स्त्री मूल भाग का आकर्षण न करेगी और योनि को संकुचित न करेगी तो कभी गर्भ स्थित न हो सकेगा। संसार इस विधि को करता है। न मालूम पण्डित ताराचन्द जी को किधर से इसमें बेहूदेपने की गन्ध आ रही है। हां ! पुराण अवश्य मुंह और नाक में गर्भाधान करना मानते हैं तो उधर तो आप देखते ही नहीं। आपने यह भी लीला पुराणों की देखी है कि कृष्ण ने अर्जुन को अर्जुनी बनाकर उसके साथ क्या-क्या किया था ? टन टन टन ऽ ऽ·········

श्री पण्डित ताराचंद्र जी शर्मा—

आपने जो कहा कि, कृष्ण ने अर्जुन को अर्जुनी बनाया था सो आपकी समझ में कुछ नहीं आता, कृष्ण तो ईश्वर हैं, और अर्जुनी माया है। जैसे बुद्ध में बुद्धि है। इसी तरह अर्जुन में अर्जुनी रहती है और जो मन्त्र आपने

पेश किया सो इसमें योनि संकोचन कहां लिखा है ? इसमें तो यह लिखा है कि इन्द्रिय को योनि में करें। मैं पूछता हूं कि तुमने किस लड़की को योनि संकोचन सिखाया है ? और सत्यार्थ प्रकाश में जो गुदा संकोचन लिखा है वह भी दिखाना होगा। (समय पूरा किए बिना ही बैठ गये)

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सत्यार्थ प्रकाश में तो गुदा का नाम भी नहीं है यह आप गलत कहते हैं। अर्जुन को माया बताना आपकी झूठी कल्पना है। वहां साफ लिखा है कि, अर्जुन तालाब में से स्त्री होकर निकला किसी को माया और किसी को ईश्वर बता देना यह तो आपके बांयें हाथ का खेल है। कोई गन्दी बात हो वही माया और ईश्वर बन जाता है। अच्छा आप पूछते हैं कि, योनि संकोचन कहाँ लिखा है ? सो सुश्रुत का शरीर स्थान देखिये वहां साफ लिखा है, क्योंकि योनि संकोच करने से ही तो वीर्य अन्दर रह सकता है, अन्यथा सन्तान उत्पन्न हो ही नहीं सकती। आप बार-बार कालेज पूछते हैं। मैं आपसे ही पूछता हूं कि आपने और आपके पिता ने गर्भाधान की शिक्षा किस ऋषि कुल में प्राप्त की थी ? पण्डित जी ! यह तो स्वाभाविक शिक्षा है, इसमें बुरी बात कौन-सी है ?

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

मैं पूछता हूं कि वेद में दिखाओ तुम सुश्रुत का प्रमाण देते हो। तुम तो वेदों को ही प्रमाण मानते हो। अच्छा मैं और प्रश्न पूछता हूं। देखो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि जिस स्त्री का पति मर जावे तो उस समय पुरुष खड़े होकर यह कहे कि, तू रोती क्यों है ? इनमें से किसी को छांट ले। यानि इनमें से किसी को कर ले। मैं पूछता हूं कि, क्या किसी आर्य ने ऐसा किया है ? क्या कभी घोड़े को खस्सी किया ? क्या कभी मेंढ़े से वाणी की शिक्षा ली, ? क्या कभी बैल से भोग किया ? क्या ये शिक्षाएं कार्य में परिणित हो सकती हैं ?

नोट—

सनातन धर्मी श्रोतागण इसी बीच में जय-जयकार करने लगे, जो कि नियम विरुद्ध था। और प्रधान के रोकने पर भी नहीं रुके, अन्त से सख्ताई से काम लेने पर शान्ति स्थापित् की जा सकी।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जनों ! आपने देखा कि गर्भाधान का मजाक उड़ा रहे थे। वह तो अब दो बार में ही बन्द हो गया। अब आगे आपकी हिम्मत नहीं, जो इस पर बोलें। क्योंकि जो आक्षेप पण्डित जी ने सत्यार्थ प्रकाश पर किये थे। वे ही स्वयं अपने ऊपर आते हैं। अब नियोग विषय छोड़ दिया साथ में, चार-पांच प्रश्न भी कर दिये। इसमें से बैल से भोग करना खास है। इसका उत्तर तो वेद भाष्य में ही मौजूद है वहां निबुद्धि मनुष्यों के लिए साफ-साफ लिखा है कि बैल, गाय, घोड़े आदि का आप भोग करो। अर्थात् इनको अपनी खेती आदि के उपयोग में लाओ। जिस अर्थ में आप भोग शब्द ले रहे हैं, उसको साफ-साफ देखना चाहें तो जरा रामायण को पढ़िये। और राम की उत्पत्ति के लिए जहां कौशल्या को घोड़े के नीचे सुलाया गया है उसे देखिये वहां यह शब्द साफ आया है। **"हयेन समयो जयन्"** जरा दीपक लेकर इसे देखिये या यों ही दूसरों पर असत्य आरोप करने की आदत पड़ गयी है, आपने

जो कहा कि सब पुरुष खड़े हों और उस स्त्री से कहें कि तू हममें से किसी को छांट ले कृपा कर ऐसा पाठ या इसी भाव का कोई पाठ सत्यार्थ प्रकाश में निकाल कर दिखाइये ? रहा नियोग का करना, सौ कृपानाथ ! जरा महाभारत के आदिपर्व को उठाकर अर्जुन आदि की उत्पत्ति तो पढ़िये जहां पाण्डु अपनी पत्नी कुन्ती से जीते-जी कह रहा है कि मैं सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता इसीलिए तू अन्य पुरुष से सन्तान प्राप्त कर, इसी प्रकार व्यास जी ने भी नियोग द्वारा ही पाण्डु और धृतराष्ट्र को उत्पन्न किया था। पुराण चिल्ला-चिल्ला कर कह रहें हैं कि, जब परशुराम जी ने पृथ्वी को क्षत्रिय रहित कर दिया था तब ब्राह्मणों ने ही नियोग द्वारा पुनः उनकी स्त्रियों में सन्तान उत्पन्न की थी देखिये—"**एवं निः क्षत्रिये लोके कृते तेन महात्मना उत्पादि तान्य पत्यानि ब्राह्मणैर्वेद पारगैः**" नियोग को यह श्लोक सिद्ध करता है या नहीं ? इस दशा में आपका नियोग की निन्दा करना व्यर्थ है, प्रथम अपने घर को देखिये तब आक्षेप कीजिये।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि—हे स्त्री तू मृत पति को त्याग कर इन जीतों में से किसी को छांट ले और दो पुत्र अपने लिए तथा दो पुत्र अन्य के लिये उत्पन्न कर और मरे हुवे पति को छोड़ कर जीते हुवों को प्राप्त हो। भला जब लाश पड़ी हो तब ऐसा कहना क्या शोभा देता है ? अच्छा बताओ आज तक तुमने कितने नियोग किये ? कितने लौंड़े (लड़के) पैदा किये ? कितने और करोगे ? कोई रजिस्टर हो तो दिखाओ ?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

आप पब्लिक को धोका देते हैं, स्वामी जी ने "**लाश पड़ी हुई**" कहीं नहीं लिखा। ऋषि तो बार-बार लिखते हैं कि यदि वह स्त्री ब्रह्मचर्य से न रह सके तब नियोग द्वारा सन्तान प्राप्त करे। व्यभिचार व भ्रूणहत्या आदि पाप कभी न करे जैसा की आजकल हो रहा है। पड़ी हुई लाश का तो साफ़-साफ़ आपके यहां लिखा है। लीजिये देखिये आश्वलायन गृह्य सूत्र—"**उत्तरतः प्रेतस्य पत्नी सं वेशयन्ति**..." अर्थात् मरे हुए मनुष्य के उत्तर भाग में स्त्री को सुलावे यहां साफ-साफ लिखा है, यदि आप धोखा नहीं देते हैं तो दिखाइये, सत्यार्थ प्रकाश में ऐसा कहां लिखा है? नियोग में आपने ऐसी कोई बात नहीं बताई, जिससे यह सिद्ध हो कि यह बात अमल में नहीं आ सकती, अमल में न आने की बात देखनी हो तो बताइये "**गणानांगणात्वागणपतिं**" इत्यादि प्रकरण का जो भाष्य सनातन धर्म मानता है। उसका आशय यह है कि=मरे हुये घोड़ों के लिंग को पकड़ कर यजमान की स्त्री अपनी योनि में दे। और घोड़े से विषय भोग करे। आप बताइये यह क्या अमल में आ सकता है ? राम की माता कौशल्या एक रात घोड़े के नीचे सोई ऋत्वजों ने घोड़े का सम्बन्ध कराया, क्या यह काबिले अमल है ? आप पूछते हैं कि—किस-किस ने नियोग किया ? सौ इस फ़ेरिस्त (तालिका) में पहिला नाम तो १८ पुराणों के कर्त्ता श्री व्यास मुनि का लिखिये फिर औरों का लिखवाऊंगा।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

वाह ! वाह !! भाई अगर व्यास ने किया तो आपको इससे क्या ? वे ऋषि थे, कर सकते थे, उन्होंने नियोग किया सही। स्वामी जी से बाद में किसने नियोग किये ? गुरुकुल में चमारों को भर्ती करते हो ? हमको तो

नियोग का कालिज बताओ कहां खोला हुआ है ? गुदेन्द्रिय का संकोचन सत्यार्थ प्रकाश में नहीं, संस्कार विधि में सही (शेष यही बातें बार-बार दोहरा कर बैठ गये) ।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

आचार्य कुल और गुरुकुल इनमें शब्दों का भेद है अर्थ का भेद नहीं है । संस्कार विधि में गुदा के संकोच का अर्थ आपकी समझ में क्यों नहीं आता ? गर्भाधान में योनि संकोचन जब होगा तो गुदा का भी संकोच ही होगा, यह साधारण बात है । आपको विश्वास न आता हो तो अपनी पत्नी से करा कर पूछ लीजिये कि योनि के साथ-साथ गुदा का संकोचन होता है या नहीं ? फिर इसमें पाप भी क्या है ? क्या ऐसा नहीं होता, या नहीं हो सकता ? इसमें असम्भवपना क्या है ? आखिर आप क्या सिद्ध करते हैं ? जब पेशाब करने के बाद एक-एक बूंद पेशाब निकलता है तो प्रत्येक मनुष्य की गुदा का संकोचन स्वयं ही हो जाता है । रही नियोग की बात ! सो यह क्या असम्भव बात है ? क्या नियोग पहले नहीं हुए ? क्या नियोग से पुत्र नहीं हो सकते ? आखिर इसमें असम्भवपना क्या है ? हां ! स्त्री का घोड़े से समागम असम्भव अवश्य है ।

श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा—

घोड़े के लिंग का तत्व आप नहीं जान सकते । पुराणों की बात समझने के लिए तुम में अकल नहीं है । तुम दुनियां को धोखा देते हो ।

नोट :—

इस प्रकार के असम्बद्ध प्रलाप करके ताराचन्द्र जी ने जनता को भड़काना चाहा, उनका पूरा प्रयास रहा कि किसी तरह झगड़ा हो जावे तो जान छूटे । मगर आर्य जनता को पण्डित बुद्धदेव जी ने बड़ी बुद्धिमानी से शान्त रखा । पण्डित ताराचन्द्र जी ने जैसे-तैसे अपना बोलने का समय पूरा किया एवं जो वह चाहते थे वे सब मन्सूबे मन के मन में ही लिये हुए बैठना पड़ा ।

श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार—

ठीक तो है, घोड़े के लिंग का तत्व हम जैसे साधारण बुद्धि वाले मनुष्य क्या जानें । यह बात तो आप ही की असाधारण मेधा बुद्धि में आती होगी कि घोड़े का इतना स्थूल लिंग स्त्री की योनि में कैसे जा सकता है ? पुराणों की कथा सुनाने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि, ऋषियों पर दोष लगे, मैं मानता हूं कि ये बातें वाम मार्गियों एवं वेद विरोधियों की मिलाई हुई हैं । मैं कहता हूं कि आप भी इनका परित्याग कीजिये जिससे ऋषि निर्दोष सिद्ध हों, नियोग प्रथा को ऋषि मानते थे । वेद भगवान उसका आदेश देते हैं । व्यास जैसे महर्षि नियोग को करते आये हैं, फिर व्यर्थ आप आक्षेप करते हैं । योनि संकोचन भी कोई पाप नहीं, मात्र एक स्वाभाविक बात है । जिसे, मैं, आप और सारा संसार मानता है तथा करता है । फिर असम्भव कैसे है ? इस प्रकार आप आज यह सिद्ध न कर सके कि आर्य समाज की यह शिक्षा काबिले अमल नहीं । खैर ! आपने दो घण्टे पूरे कर दिये । (जनता में हंसी.........) (आज का यह शास्त्रार्थ शांतिपूर्वक समाप्त हुआ) ॥

अड़सठवां शास्त्रार्थ--

स्थान : देहली (आर्य समाज—नया बांस)

दिनांक : ६ फरवरी सन् १६२६ ई० (शास्त्रार्थ का अन्तिम छठा दिवस)

विषय : सनातन धर्म में मांस विधान है या नहीं ?

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य (दिल्ली)

सहायक : (१) श्री पण्डित ताराचन्द्र जी शर्मा
(२) श्री पण्डित लक्ष्मीचन्द्र जी शर्मा (कौल निवासी)

विशेष : (३) श्री महामहोपाध्याय श्री पण्डित गिरधर शर्माजी चतुर्वेदी)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थ (सुपुत्र श्री पण्डित मुरारीलाल जी शर्मा)

सहायक : (१) श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
(२) श्री पण्डित लोकनाथ जी "तर्क वाचस्पति"
(३) श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

आर्य समाज की ओर से प्रधान : श्रीमान् राय साहब लाला गंगाराम जी (शिमला)

सनातन धर्म की ओर से प्रधान : श्री लाला कृष्णदास जी लोहिये

शास्त्रार्थ आरम्भ

नोट :—

आज शास्त्रार्थ का अन्तिम दिवस होने के कारण पिण्डाल में बड़ी भारी भीड़ थी। २७-२८ हजार नर-नारियों की उपस्थिति थी, कहीं तिल धरने को भी स्थान खाली नहीं था। देहली के प्रायः बड़े-बड़े सेठ साहूकार ऐसेम्बली के मेम्बर सनातन धर्म एवं आर्य समाज के प्रमुख-प्रमुख विद्वान् अपरिमित संख्या में पधारे हुए थे, श्री पण्डित गिरधर शर्मा महामहोपाध्याय विशेष रूप से आज भाग ले रहे थे। देहली के अतिरिक्त, खुर्जा, सिकन्द्राबाद गाजियाबाद, सोनीपत, पानीपत, करनाल, मेरठ, आदि से भी बहुत से सज्जन शास्त्रार्थ देखने के लिए आए थे। इतनी महती जनसंख्या होने पर भी चारों ओर सन्नाटा था तथा शान्ति विराज रही थी, मालूम होता था कि प्राचीन समय में इसी प्रकार यहां से नर-नारी धर्म निर्णय के लिए एकत्रित होते होंगे, यह समय जिसने देखा है वह कभी भूल नहीं सकता, अद्भुत दृश्य था, शास्त्रार्थ का समय हो जाने पर सभापति ने कहा कि आर्य समाज की ओर से आज "**देवेन्द्र नाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ**" प्रश्न करेंगे, तदनुसार पण्डित जी ने संस्कृत भाषण के अनन्तर जो भाषा में कहा वह यह हैं।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

सज्जन वृन्द ! आज मैं छटे दिन "**मांस**" विषय पर आपके सन्मुख सनातन धर्म सभा के विद्वानों से प्रश्न करूंगा, परन्तु इस विषय पर बोलते हुए मेरे रोंगटे खड़े होते हैं। कारण कि यह विषय ही ऐसा है। मांस भक्षण, एवं पशु हनन वेदों में तो कहीं नहीं है। किन्तु सनातन धर्म के माननीय वेद भाष्यों से लेकर स्मृति, सूत्र ग्रन्थ, पुराण, विवाह पद्धति तक में भरा पड़ा है। भेड़, बकरी, घोड़ों की तो बात ही क्या है, गौ हनन तक इन ग्रन्थों में मौजूद हैं जिनको सनातन धर्म अपना परम माननीय समझता है। मैं सबसे प्रथम यजुर्वेद अध्याय ३५ मन्त्र २० को पेश करता हूं। वह "**वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थनिहितान् पराके, मेदसः कुल्या उपतान्स्त्रवन्तु सत्या एषामाशिषः संनमन्ता ँ स्वाहा**" इसका उव्वट व महिधर का भाष्य देखिये। जिसमें स्पष्ट लिखा है कि—"**मध्यमाष्टका गोपशुनाकार्या**" अर्थात् मध्यम अष्टकका गाय को मारकर करना चाहिये। दूसरा मन्त्र देखिए जो यजुर्वेद अध्याय २५ का ३५ वां मन्त्र है—"**ये वाजिनं परि पश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति**" इत्यादि इस मन्त्र के भाष्य में घोड़े को मार कर पकाना साफ-साफ लिखा है। अब तीसरा मन्त्र पेश करता हूं जो यजुर्वेद के ही अध्याय ६ का १५ वां मन्त्र है देखिये —"**मनस्त आप्यायतां वाक्तऽआप्यातां**·········· **ओषधेत्रायस्व स्वधितेमैनं हि ँ सीः**" इत्यादि। यहां सोम यज्ञ में बकरे का मारना स्पष्ट मौजूद है। अब आगे सूत्र ग्रन्थ देखिये—"**गोभिलगृह्य सूत्र पृष्ठ १६४ व १७३**" **में**—"**तस्यामूर्ध्वं मष्टम्यां गोः**" यहां भी मांसाष्ट का गाय मारकर करे ऐसा साफ-साफ लिखा है इसी तरह आश्वलायन गृह सूत्र पृष्ठ १५४ पर **देखिये**—"**अनुस्तरणी में गाम्—अजां वैक वर्णाम्, हृदये हृदयम्**" इत्यादि से गौ के अंग अंग का काटना लिखा है। क्या सनातन धर्म इस गौ, अश्व, अजा,

इनको वैदिक मानता है ? यदि मानता है तो स्वीकार कीजिये, यदि नहीं मानता तो निषेध कीजिये और बताइये कि ये भाष्य और सूत्र आपको क्यों मान्य नहीं हैं ? ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के १२ वें सम्मुल्लास में लिखते हैं कि गौ को कभी भी नही मारना चहिये। हिन्दू धर्म में गाय को मारना महापातक माना है। फिर इसमें गौ मारने को आप धर्म किस प्रकार मानते हैं ? इनका समाधान होने पर आगे शेष उद्धरण पेश करूंगा।

श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य—

(उक्त पण्डित जी ने पहले से घुटी-घुटाई व्याकरण की कुछ पंक्तियां बोली परन्तु बीच में ही उपस्थित विद्वान हंसने लगे इसलिए पक्तियां बन्द कर दी तब आगे बोले) स्वामी दयानन्द जी ने जो-जो अत्याचार किये हैं, उनको बारी-बारी से सुनाऊंगा। भाइयो ! जो कुछ आपने सुना है, इससे आपका हृदय कांप गया होगा। हमारे ग्रन्थों में कहीं पर भी मांस नहीं है। स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में बड़े-२ सांडों का मारना लिखा है यह सब स्वामी दयानन्द के अत्याचार ग्रन्थ है। (इतना कह कर मुखराम शर्मा हांफने लगे)।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्य तीर्थ—

मैंने यजुर्वेद की तीन श्रुतियों से यह सिद्ध किया कि सनातन धर्म के ग्रन्थों में पशु हनन और मांस भक्षण मौजूद हैं। परन्तु पण्डित जी ने उन मन्त्रों का अर्थ करना तो दूर रहा उन्हें एक बार बोला भी नहीं आपने शायद सन् १८७५ के छपे सत्यार्थ प्रकाश की तरफ़ निर्देश किया है। इसका साफ-साफ उत्तर यह है कि, आर्य समाज इसको नहीं मानता, स्वामी जी महाराज अपने जीवन में इसे रद्द कर गये। हमारे लिए यह सर्वथा अमान्य है। अब आगे आप इसे पेश न करें। अगर आप में ज़रा भी पाण्डित्य हो तो आप हमारे पेश किए गये मन्त्रों का अर्थ करके जनता को सुनाइये अन्यथा व्यर्थ बोलने से इस भरी सभा में काम नहीं चलेगा, लो सुनो श्राद्ध प्रकरण में मनु क्या कहते हैं ?—**"नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांस नात्ति मानवः, सप्रेत्य पशुतां याति जन्मनामेक विंशतिम्"** तथा **"प्रोक्षितं भक्षयेन्मासं ब्राह्मणाणाञ्च काम्यया"** (मनुस्मृति अध्याय ५-२६) अर्थात् जो मनुष्य नियुक्त किया हुआ श्राद्ध में मांस नहीं खाता वह ग्यारह जन्मों तक मर-मर के पशु बनता है एवं मनुष्य को चाहिए कि प्रोक्षित मांस को खावे और ब्राह्मणों की कामना से भी मांस को खावे। इसी प्रकार यजुर्वेद के अश्वमेध प्रकरण में ३४६ पशुओं का मारना भी लिखा है। वशिष्ठ स्मृति पृष्ठ ४५८ पर लिखा है—**"पितृ देवताऽतिथि पूजायां पशु हिंस्यात्"** अर्थात् पितर, देवता, अतिथि पूजा में पशुओं को मारें। अब कहिये पण्डित जी इनका आपके पास क्या समाधान है ? बड़े रौब के साथ आपने भरी सभा में कह दिया कि हमारे यहां मांस विधान नहीं है। यह **"मांस विधान"** नहीं तो क्या **"हलुआ विधान"** हो रहा है ? (जनता में अपार हंसी·······) मैं फिर कहता हूं कि यदि आप मन्त्र " **वह वपां जातवेदः पितृभ्यो**············" वाले का अर्थ मांस रहित करके एक बार सुना दें तो बस शास्त्रार्थ समाप्त हो जायेगा, घोट लाये न्याय की पंक्तियां पण्डित जी ! यह स्थान विद्यार्थियों के पढ़ाने का नहीं है। यह शास्त्रार्थ का मैदान है। यहां बड़े-२ विद्वान बैठे हैं ये विद्यार्थी नहीं हैं कृपा करके अपनी बारी में इन सब प्रश्नों का समाधान करिये।

नोट—

बेचारे मुखराम शर्मा के हाथ पैर कांपने लगे, संस्कृत का उच्चारण भी ठीक न हो सका, पद-पद पर अशुद्ध बोलने लगे। तब पीछे बैठे हुए श्री पण्डित गिरधर शर्मा जी ने भी सहारा लगाया, वे मुखराम जी को

बताते थे तब वे बोलते परन्तु तब भी कुछ न बन पड़ा, पौराणिक पण्डित अपना प्रभाव कम देखकर मन ही मन बड़े लज्जित हो रहे थे। एवं पौराणिक समुदाय के चेहरे देखने लायक थे। तब मुखराम जी बड़ी हिम्मत करके बोले।

श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य—

स्वामी जी ने यह कहां लिखा है कि मैं इस सारे ग्रन्थ को नहीं मानता, आपने जो मन्त्र पढ़े उनका अर्थ तो किया ही नहीं। मैं तो आपको पढ़ाना चाहता हूं। आपके शिष्य मेरे यहां पढ़ते हैं, आप भी लज्जा छोड़कर पढ़ लो, यदि यह सत्यार्थ प्रकाश झूठा है तो छापने वाले को कैद करवाओ, अभी तो यह और छपेगा। मनुस्मृति में मांस कहां खाना लिखा है ? (इत्यादि न मालूम वात रोगी की तरह क्या-२ बोलने लगे अन्ततः समय पूरा कर बैठ गये)।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

धन्य इस विद्वता को ! सब मंत्रों के भाष्य सुनाये। फिर अन्त में कह दिया कि मन्त्रों के अर्थ तो किये ही नहीं। अच्छा अब पुनः सुनकर ही उत्तर दीजिये। (पुनः सभी मन्त्रों के भाष्य सुनाये गये) अब कहिये मांसष्ट का अनुस्तरणी श्राद्धादि में मांस विधान का क्या उत्तर है ? इस मन्त्र का अर्थ यदि आप कर देंगे तो जाइये शास्त्रार्थ समाप्त हो जायेगा। अच्छा जरा पुराणों की भी बानगी देख लीजिये ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृति खण्ड अध्याय ६१ श्लोक ६६—"**पञ्च कोटि गवां मांसं सा पूपं स्वन्नमेव च। एतेषाञ्चनदीराशीभुञ्जते ब्राह्मणा मुने।**" अर्थात् जहां ५ करोड़ गायों का मांस ब्राह्मण लोग खाते हैं, इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त्त कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय १०५ में रूक्मिणी के भाई रूक्मि ने अपने पिता से कहा कि, रूक्मिणी के विवाह में यह तैयारी करनी चाहिये। वह कहानी क्या है ? वह भी सुनिये—***गवां लक्षं छेदनञ्च हरिणानां द्विलक्षकम्। चतुर्लक्षं शशानाञ्च कूर्माणाञ्च तथा कुरु॥ दशलक्षं छागलानां, भेटानांतच्चतुर्गुणम्। एतेषां पंच मांसञ्च भोजनार्थञ्च कारय॥***" अर्थात् भोजन के लिए एक लाख गाय, २ लाख हिरण, चार लाख खरे, ४ लाख कछुए, १० लाख बकरे, १६ लाख भेड़, कटवा कर उनका मांस बनवाया जावे। बताइये इन श्लोकों का समाधान आपके पास क्या है ? बस जिस तरह हमने कह दिया कि सन् १८७५ ई० का छपा सत्यार्थ प्रकाश नहीं मानते इसी तरह इनको मानने से मना करिये या इनको मानिये या बताइये इनका अर्थ क्या है ?

श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य—

नोट—

इस बार व्याकरणाचार्य जी के रहे-सहे भी होश उड़ गये बोलना तो अलग रहा, कभी इस पुस्तक को उठाते, उसे रखते, कभी दूसरी उठाते। एवं बोले कि आप क्या कह रहे हैं, "लड़का पढ़ता है, दुकान खुली है, कपड़ा कहां है ?" आपके शब्द व वाक्य असंगत हैं, ऐसा कहकर कांपने लगे, बोले वपन का अर्थ मांड़ भी तो होता है। बताइये विधि किसे कहते हैं ? (इससे जनता पर सनातन धर्म की दुर्बलता स्पष्ट दिखाई दे रही थी)।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

वाह रे पांडित्य ! आप तो व्याकरणाचार्य हैं। क्यों यह क्या हुआ ? आपने शायद इस स्थान को यमुना जी का घाट समझ रक्खा है ! और आप शायद कथा कह रहे हैं कि "सूत जी कहने लगे कि जो हैं सो जाय करके, भगवन् ! आंख खोलकर देखिये यहां २५००० मनुष्य बैठे हैं, और हजारों धुरन्धर विद्वान भी मोजूद हैं। यदि आपमें बोलने की शक्ति नहीं है तो आप क्यों खड़े हुए थे ? (इतना सुनते ही पौराणिक समुदाय को जैसे सांप सूंघ गया हो। चारों ओर तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश गूंज उठा) सुनिये व्याकरणाचार्य जी अगर आपकी सामर्थ्य नहीं थी तो श्री पण्डित गिरधर शर्मा जी भी विराजमान है, वे बोलते या और कोई विद्वान खड़ा करते, क्यों इन बेचारे सनातन धर्मियों की मट्टी खराब करा रहे हो ? आपने समझा होगा कि शास्त्रार्थ एक साधारण बात है। मैं बड़े अभिमान के साथ कहता हूं कि, आप इन मन्त्रों का अर्थ त्रिकाल में भी नहीं कर सकते, आपने अभी तक "लघु कौमदी" के लड़के ही पढ़ाये हैं। आप आर्य समाज से शास्त्रार्थ नहीं कर सकते, अच्छा और सुनिये --मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक २२ — '**यतार्थं ब्राह्मणैर्वध्या प्रशस्ता मृग पक्षिणः।**" अर्थात् यज्ञ के लिए ब्राह्मणों को अच्छे-२ मृग और पक्षी मारने चाहिये। और देखिये महाभारत के वन पर्व अध्याय २०८ श्लोक ९ में महाराज रन्तिदेव की कथा में यह श्लोक है—"**अहन्यहनिवध्येते द्वेसहस्त्रे गवां तथा**······" अर्थात् २००० गाय प्रतिदिन रन्तिदेव के यहां मारी जाती थी, कहिए इन सबका क्या समाधान है ? भगवन् ! मेरा तात्पर्य इन उद्धरणों के देने से यह नहीं है कि किसी का मन दुःखित हो क्योंकि ये ग्रन्थ हमारे और आपके दोनों के हैं किन्तु इनमें वेद विरोधियों ने मिलावट कर दी है इसलिए इनको त्याग कर आप ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य को मानें, मांस विधान को त्याग दें। शास्त्रार्थ यहीं अभी समाप्त हो जावेगा।

श्रीपण्डित सुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य—

आपने व्याकरण नहीं पढ़ा, ऐसा मालूम होता है। स्वामी दयानन्द जी व्याकरण नहीं पढ़े थे। पहले स्वामी दयानन्द जी का प्रामाण्य सिद्ध करो। वेद का अर्थ आप नहीं जानते, आलम्भन का अर्थ मारना नहीं है। वपा शब्द का अर्थ स्वामी जी ने पृथ्वी जो लिखा है वह अशुद्ध है। (इत्यादि अनर्गल और असम्बद्ध प्रलाप करके बैठ गये)।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

भाइयों ! आपने व्याकरणाचार्य जी की विद्वता देख ली, यह भी देख लो कि इनकी दशा क्या हो रही है ? कहते हैं वपा शब्द की व्युत्पत्ति स्वामी जी ने ठीक नहीं की। लीजिये मैं शब्द कलपद्रुम में वपा शब्द की यही व्युत्पत्ति दिखाता हूं। (पुस्तक से दिखाया गया) बस ! जिन ग्रन्थों में, गाय, भेड, बकरी, घोड़े आदि को मार कर होम करना लिखा हो वे ग्रन्थ त्रिकाल में भी मान्य नहीं हो सकते। याद रक्खो इन्हीं बातों से लाखों हमारे भाई विधर्मी बन रहे हैं और पहले बने हैं। यदि आपमें दिल व दिमाग हो तो इन घृणित कथाओं को त्याग कर शुद्ध वैदिक धर्म की शरण लो। यदि कल को कोई विधर्मी खडा होकर शास्त्रार्थ करने लगे तो बताओ उसे क्या उत्तर दोगे ? है आपके पास इन बातों का कोई जवाब ?

शास्त्रार्थ के बीच में ही—श्री लाला कृष्णदास जी लोहिये (प्रधान—सनातन धर्म)—

मुझे कार्यवश स्टेशन पर जाना है। अतः शास्त्रार्थ आधा घन्टे से पहले ही पहले समाप्त हो जाना चाहिये। शास्त्री जी से प्रार्थना है कि अब आगे न बोलें।

राय साहब श्री लाला गंगाराम जी (प्रधान आर्य-समाज)—

माननीय लाला जी ! आप अकेले को शास्त्रार्थ बन्द करने का कोई अधिकार नहीं है यदि आप जा रहे हैं तो अपने स्थान पर दूसरा प्रधान नियुक्त कर सकते हैं। परन्तु यह पण्डितों के साथ अन्याय होगा कि उनका समय बिना कारण लिया जावे। उन्होंने क्या अपराध किया है कि जो आप ऐसा करते हैं ? आगे आपकी इच्छा हैं। (इसी कशमकश में ६ बजकर ४५ मिनट हो गये तब पण्डित मुखराम जी बोले)।

श्री पण्डित मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य—

अश्वमेध का अर्थ राष्ट्र है "**राष्ट्रं वा अश्वमेध**" भाइयो ! समाज में तो मांस पार्टी है। हम तो दूध से हवन करते हैं, आप उदर पूर्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। कोई मूली बेचता है, कोई गाजर ! गऊ का अर्थ पृथ्वी है इसके लिए मैं जन्म भर का चैलेञ्ज देता हूं।

नोट—

इतना कह कर पण्डित मुखराम शर्मा जी बैठ गए। तत्पश्चात उभय पक्ष के प्रधानों ने परस्पर को धन्यवाद दिया और ६ दिन का यह शास्त्रार्थ सानन्द समाप्त हुआ। परन्तु सनातन धर्म के प्रधान साढ़े दस बजे तक बैठे रहे, कहीं भी न गए, जिससे स्पष्ट हो गया कि शास्त्रार्थ के बन्द करने का यह बहाना था। शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। परन्तु जो छाप इस शास्त्रार्थ की देहली जनता पर लगी वह कभी मिटाई नहीं जा सकेगी। इससे आर्य समाज को जितना लाभ हुआ उतना तीस वर्ष में भी नहीं हुआ था और ना ही आगे होने की संभावना है। यह सेहरा आर्य समाज नया बांस के सर पर ही बंधना था सो बन्ध गया।

सातवां दिन दिनांक ७-२-१६२६ ई०—

इसी क्रम में आज सातवें दिन इसी शास्त्रार्थ वाले पंडाल में ही व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। आज की हाजरी पूर्व दिनों से भी बहुत ज्यादा थी। श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार, श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी और पंडित चन्द्रभानु जी शर्मा वैद्य एवं अन्य सभी आर्य विद्वानों के व्याख्यान एक से एक बढ़कर हुए। जहां विद्वानों के मर्म भेदी व्याख्यान हुए वहां श्री पण्डित चन्द्रभानु जी ने पण्डित गिरधर शर्मा जी के व्याख्यान पर टिप्पणी करते हुए तथा पुराणों का खण्डन करते हुए और जगन्नाथ जी के मन्दिर पर की फोश मूर्तियों का "**सवैयों**" द्वारा चित्र खींचकर जनता को हसांया। और आर्य समाज नया बांस का कार्य वर्णन किया।

शास्त्रार्थ का परिणाम—

इस शास्त्रार्थ से सभी श्रोताओं को असलियत का पता चल गया था जिसकी झलक सभी के चेहरों से साफ नजर आ रही थी, परन्तु इस सातवें दिन व्याख्यानों के बाद एक मारवाड़ी सज्जन खड़े हो कर कहने लगे— "**मैं आज से आर्य समाज का सभासद् बनता हूं**" यह घोषणा सुनते ही पण्डाल में चारों तरफ तालियां ही तालियां, जयकारे पर जयकारे बोलकर श्रोताओं ने आकाश गुंजा दिया। अन्त में आर्य समाज नया बांस के प्रधान ने सबको धन्यवाद देकर रात्रि को १२ बजे कार्यवाही समाप्त की।

विशेष—

आप लोगों ने इसे पढ़कर जान लिया कि "**शास्त्रार्थ**" वैदिक धर्म के प्रचार में कितने सहायक थे ? मैं चाहता हूं फिर से वह युग आवे, शास्त्रार्थकर्त्ता तैयार हों, चारो तरफ शास्त्रार्थों की धूम मचे, जिससे वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार उच्च स्तर पर पहुंचे।

निवेदक—

"अमर स्वामी सरस्वती"

उनहत्तरवां शास्त्रार्थ--

स्थान : दरियापुर (मुंगेर) बिहार

दिनांक : २१-४-१९२९ ई०

विषय : **ईसाई मत और उसकी तालीम ?**

ईसाईयों की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : **श्री ईसाई पादरी एलियास जी**

विपक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : **राष्ट्रीय विद्यालय का विद्यार्थी "रामू संथाल" व उसके साथी—**

नोट : यह अप्राप्य सामग्री—**श्री इन्द्रपाल जी शर्मा** मनौरी (इलाहाबाद) द्वारा प्राप्त हुई ।

शास्त्रार्थ से पहले

बहुतेरे ईसाई पादरी अब शहरों से निराश हो गांवों में अड्डा जमा रहे हैं। खास कर बिहार के संथाल परगना, भागलपुर, मुंगेर, पुरनिया और रांची आदि आस-पास के गांवों तथा जंगल तराइयों के कोल, मुण्डाहो, पहाड़ियां और संथालों को उनकी प्राचीन सीधी-सादी हिन्दू संस्कृति से छुड़ाकर ईसाई बना रहे हैं। अस्पताल, अनाथालय, पाठशाला आदि खोलकर असल में उन लोगो का उपकार न कर ईसाई बनाने का जाल बिछाया गया है। भागलपुर नगर का बैप्टिस्ट मिशन, वैद्यनाथ का जनाना मिशन, बामदा का चर्च स्काटलैण्ड मिशन आदि नमूना हैं। हवेली खरगपुर (मुंगेर) के हथिया गांव से ११-२-२९ को ६ संथाली बच्चे तथा २१-२-२९ को ३ लड़के पढ़ाने के बहाने भगाकर बेतिया मिशन पहुंचाने जा रहे थे कि बरौनी के महावीर दल के स्वयं सेवकों ने उनका उद्धार कर मन्त्री आर्य समाज खरगपुर द्वारा उनके माता-पिता के घर पहुंचाये। तब से इस प्रान्त के गांव वाले भी उन ईसाइयों के पेंच से चेत गये हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्थानों की दशा समझ लें। २१-४-१९२९ को पादरी लोग आस पास के **"दरियापुर"** तथा मधुबन गांव में प्रचार के लिए पहुंचे, पर वहां पर राष्ट्रीय विद्यालय के पढ़े-लिखे, दो-चार संथाल नवयुवक भी रहते थे। इन पादरियों के यीशु के गीत सुनते ही, सब आ जुटे। इन्हीं में से एक **"रामू संथाल"*** और **"एलियास पादरी"** में **"ईसाई मत और उसकी तालीम ?"** पर निम्न प्रकार से प्रश्नोत्तर (शास्त्रार्थ रूप में) बहस होने लगी।

"बाबू गिरीशचन्द्र पाल"
(आर्य समाज—खरगपुर

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

अच्छा भाई पूछो, तुम्हारा क्या सवाल है ?

रामू संथाल विद्यार्थी—

आप लोग पक्का धर्म किसको मानते हैं ?

---

*शोक है कि इस होनहार संथाल युवक की इसी वर्ष सन् १९२९ ई० में ही अकाल मृत्यु हो गई है। प्रभु उसकी आत्मा को शान्ति तथा परिवार को धैर्य दें। **"शीतल प्रसाद वैद्य"**
(आर्य समाज खगड़िया मुंगेर, बिहार)

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

हम बाईबिल के मसीही धर्म को मानते हैं। जो उन्हीं के द्वारा संसार में आया।

रामू संथाल विद्यार्थी—

यीशु मसीह कहां का था और कौन था ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

यीशु मसीह ईश्वर का पुत्र था।

रामू संथाल विद्यार्थी—

क्या ईश्वर को भी बेटा होता है ? तो उसके जोरू (पत्नी) और पोता-पोती भी होंगे ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

नहीं। वह कुंआरी मरियम से जन्मा था।

रामू संथाल विद्यार्थी—

क्या अकेली कुंआरी (लड़की) बेटा जन्मा सकती है ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

हां ! ईश्वर सर्व शक्ति वाला है, वह जो चाहे सो कर सकता है।

रामू संथाल विद्यार्थी—

क्या ईश्वर मर्द से बेटा जन्मा सकता है ? और वह अपने आप को मार भी सकता है ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

कभी नहीं ! कहीं मर्द के भी बेटा जन्मता है ? तुम हंसी करते हो।

रामू संथाल विद्यार्थी—

जब मर्द से बेटा जन्मना असम्भव है तो अकेली कुंआरी से बेटा जन्मना भी असम्भव है।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(मन ही मन **"आज किस जंगली से पाले पड़े"** बुड़बुड़ाते हुए)—सुनो भाई ! तुम लोग इन बातों को नहीं समझ सकते। अजी ! ईश्वर ने इच्छा प्रकट की और कुंआरी से बेटा पैदा कर दिया।

रामू संथाल विद्यार्थी—

ईश्वर मर्द से बेटा जन्माता तो इससे उसका चमत्कार व महिमा खूब बढ़ जाती, पर अकेली कुंआरी से बेटा पैदा कराने से तो उसमें बहुत से दोष लग रहे हैं क्योंकि उसी ने संसार में नर-मादे से जोड़ खाकर बच्चा पैदा होने का नियम बनाया है। पर उसी ने कुंआरी मरियम के पेट से यीशु को पैदा कर अपने बनाये नियम को आप ही

तोड़ दिया। कहिए आपके बाईबिल का मनमाना ईश्वर है ? यीशु की मां मरियम भी तो अपने मां-बाप के जोड़ से ही जन्मी थी। दोनों में कितना भेद है ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

क्या तुम मुंह बन्द कराना चाहते हो ?

रामू संथाल विद्यार्थी—

नहीं ! हम युक्ति-प्रमाण चाहते हैं जिससे ईसाई धर्म की सच्चाई जानी जावे। यदि गपोड़ कथा को अन्ध-विश्वासी बन कर मानते हुए दूसरों को भी बहका कर अन्ध-विश्वासी बनाते हो तो आपको भी निरुत्तर बनना ही पड़ेगा।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

युक्ति यही है कि कुंआरी के बेटा जन्माया और धर्म पोथी बाईबिल में प्रमाण लिखा है।

रामू संथाल विद्यार्थी—

आपकी युक्ति अन्ध विश्वासी है, और धर्म पोथी के प्रमाण असम्भव है। पर मेरा मानना यह है कि ऐसा होना प्रत्यक्ष के विरुद्ध, सृष्टि नियम के विरुद्ध और वैद्यक शास्त्र (डाक्टरी मत) के भी विरुद्ध है।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(घबराकर, मन ही मन—"तौबा-तौबा, आज किस बला के फेर में पड़ा, खैर इससे किसी तरह पीछा छुड़ाऊँ") अच्छा भई रामू ! अब नावक्त हो गया, कल बहस करना, आज माफ करो।

रामू संथाल विद्यार्थी—

माफ, वाफ कैसा ? मेरे सवाल का जवाब देकर समझाइये तब जाइयेगा, क्या जवाब नहीं सूझता है ?

सभी गांव के सज्जन—

नहीं-नहीं ठीक कहते हैं, आज निर्णय हो ही जाना चाहिए। आप बराबर एकान्त में आकर ईसाई मत का गुण गा-गा जाते थे, आज इन पढ़े-लिखों से पाला पड़ा है तो नावक्त हुआ कहकर टालते हैं। अच्छा यदि अबेर (देरी) हुआ है तो आप लोगों के खाने-पीने का बन्दोबस्त हम लोग कर देंगे।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(मन ही मन—"बड़ी लाचारी है, बिना जवाब दिए जाता हूं तो कमजोरी होगी, पर मौके का जवाब भी नहीं सूझता है") अच्छा भाई रामू तुम अपने धर्म का बखान करो, तब हम जवाब देंगे।

रामू संथाल विद्यार्थी—

वाह साहेब ! पीछा छुड़ाने का अच्छा ढंग निकाला है ? पहले मेरे सवाल का तो जवाब दीजिए तब पीछे अपने धर्म का व्याख्यान सुनाकर आपको सत्य मार्ग पर लाना ही है।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

यही सही, अच्छा तुम लोग ईश्वर के बारे में क्या ज्ञान रखते हो ? जो हमारे मुक्तिदाता यीशु पर इतने बेढब सवाल करते हो ?

रामू संथाल विद्यार्थी—

हम लोगों को ईश्वर का यथार्थ ज्ञान है कि वह एक है, निराकार है तथा सर्वव्यापक है, अजन्मा है, और सृष्टिकर्ता है। पर आपके बाईबिल का खुदा तो छोटा, बड़ा, दो, एक देशी, अल्प शक्ति, और जन्म लेने वाला, आदमी जैसा हैं। ऐसे को कोई ज्ञानवान पुरुष ईश्वर कैसे मानेगा ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(क्रोधित होकर) किस तरह जरा सिद्ध करो ?

रामू संथाल विद्यार्थी—

सुनिए, और अपनी हिन्दी बाईबिल खोलकर मिलाते जाईये। **"यिर्मियाह अध्याय ३२ आयत २७"**में खुदा अपने को सर्वशक्तिमान् होने का घमण्ड करता है जैसे **"मैं तो सारे प्राणियों का परमेश्वर हूं, क्या कोई काम मेरे लिए कठिन है"** पर जब बलवान से काम पड़ता है तो वही खुदा दुम दबाकर बैठ जाता है, जैसा कि—न्यायियों का अध्याय १ आयत १९,—**"यहोवा यहूदा के साथ रहा, सो उसने पहाड़ी देश के निवासियों को निकाल दिया, पर नीचे के निवासियों के पास लोहे के रथ थे, इसलिए उन्हें न निकाल सका"**। कहिए पादरी साहब ! इसी खुदा पर भरोसा रखकर हम लोगों के अनपढ़ सीधे-साधे भाइयों को बहकाने आते हैं ? जब हम लोगों के जंगली पहाड़िया भाइयों को आपके बाईबिल वाले खुदा ने निकाल ही दिया तो अब आप लोग हम लोगों को क्यों फुसलाते रहते हैं ? बाईबिल के ऐसे कमजोर ईश्वर को हम लोग दूर ही से हाथ जोड़ते हैं। क्योंकि अब तक हम लोग भी तीर धनुष रखते हैं। बल्कि ऐसे उलट-पलट वाले बाईबिल के खुदा पर दफा २११ व १८२ में चालान कर मुकदमा चलाना चाहिए। (जनता में हँसी......)

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(सिटपिटाते हुए) हां ! लिखे तो ठीक हैं। अगर मौके पर कहा कि नशेब के लोगों को न निकाल सका, ये पीछे की बातें हैं।

रामू संथाल विद्यार्थी—

अब कहिए सर्व शक्तिमान ईश्वर का दावा कहां गया ? इसी से कहते हैं कि आप लोग तो हम लोग जंगली अपढ़ जाति से भी बढ़कर अन्धविश्वास में पड़े हैं, फिर अन्धे को अन्धा क्या रास्ता बतावेगा ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

सुनो भाई ! तुम लोग ईश्वर के बारे में अकल से काम लेना चाहते हो, पर इन बातों में **"अकल को दखल नहीं है।"**

रामू संथाल विद्यार्थी—

आपकी अक्ल की कहावत से तो यही पता लगता है कि ईश्वर ने अकल को पैदा कर भारी भूल की है। आपकी ही बाईबिल में लिखा है कि, सब काम विचार कर करना चाहिये, तब आप अकल को क्यों काटते हैं ? आपके ही देश के बड़े-बड़े तत्ववेत्ता अरस्तु, सुकरात, बुकरात और हमारे देश के भी बड़े-बड़े ऋषि मुनियों ने भी कहा है कि—"**बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धिस्तु कुतो बलं**" अर्थात् जिसको बुद्धि (अकल) का बल है, वही बलवान है, निर्बुद्धि (मूर्ख) को कोई बल नहीं है। जैसे मोटी सी कहावत है कि—"**जाहिल जठ खुदा से लठ**" व "**काला अक्षर भैंस बराबर**" फिर ईश्वर के पहचान के बारे में भी तो कहावत है कि—"**अकल से खुदा पहचाना जाता है**" इसी पर महात्मा कबीरदास जी भी कहते हैं कि—"**ऊपर की दोनों गई हिय की गई हराय। कह कबीर तीनों गई, तासो कहा बसाय**" भाव इसका यह है कि ऊपर के दोनों नेत्र फूट गये, साथ-साथ भीतर के बुद्धि (ज्ञान-विचार) की आंख भी न रहे तो वे सत्य असत्य का विचार क्या करेंगे ? इसलिए सब कुछ अकल से ही विचार कर करना-कराना चाहिये। फिर हमने अकल से ही काम नहीं लिया है। बाईबिल का भी विरोध दिखाया है।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

खैर ! आप जो कहें, पर हम लोग तो यही विश्वास रखते हैं कि "**यीशु मसीह पापों से मुक्ति देने वाला है**"।

रामू संथाल विद्यार्थी—

पहले तो आप यीशु मसीह को कुंआरी के पेट से पैदा होना तथा उसका ईश्वर होना ही नहीं सिद्ध कर सके। फिर ईश्वर सर्वशक्ति वाला है, जो चाहे सो करे ऐसा भी सिद्ध न हुआ तो वह पापों से मुक्ति कैसे दिलावेगा ? भला जब कि आप लोग मानते हैं कि दुनियां से सभी के पापों की गठरी बांध कर यीशु मसीह ले गया तो अब आपके अन्धविश्वासानुसार पाप है कहां तथा वह पापी जिससे वह निस्तार दिलावेगा ? फिर बहका कर बपतिस्मा क्यों देते - दिलाते हैं ? शोक तो इस बात पर है कि जब यीशु मसीह को सूली पर चढ़ा कर कांटी—हाथ-पैर में ठोका जाता था तो उस समय भी वह "**एली-एली... ..**" चिल्ला-चिल्लाकर अपने बचने-बचाने की गोहार करता था पर उसके बाईबिल के पिता ने उसे नहीं बचाया, और वह मर ही गया तब जो अपनी रक्षा आप नहीं कर सका, वह असंख्य जीवों का मर जाने पर क्या उद्धार करेगा ? पाप भी हो ही रहे हैं। असल में ईश्वर एक अजन्मा पिता, हम लोग जीव उसके पुत्र और शुद्ध प्रकृति ही पवित्रात्मा हैं। यही त्रैतवाद सत्य है जिसे आप लोग भ्रम में पड़कर पिता-पुत्र और पवित्रात्मा का तसलीस कहते हैं।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

आपकी बात तो बहुत कुछ सत्य मालूम पड़ती है, तो क्या पाप क्षमा का वसूल गलत हैं ?

रामू संथाल विद्यार्थी—

यह सर्व सम्मत मत है कि प्राणीमात्र में मनुष्य योनि सबसे उत्तम है और अन्य योनियां केवल कर्म फल भोग योनियां है पर मनुष्य योनि कर्म तथा भोग दोनों ही के लिए है। हम लोग जो कुछ पाप-पुण्य कर्म करते हैं उनके फल अमिट हैं वे भोगने पर ही मिटते हैं। क्षमा का सिद्धान्त मानने से संसार में अन्याय, पाप, अत्याचार की भरमार हो रही हैं, और ईश्वर भी अन्यायी सिद्ध होता है। शास्त्र में लिखा है कि—"**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतम्-**

फर्मशुभाशुभम् । नान्यथा क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतेरपि" । अर्थात्—शुभाशुभ कर्मों के फल अवश्य भोगने योग्य हैं, वे सैकड़ों, करोड़ों, वर्ष में भी नाश नहीं होते । फिर भी रोज-रोज न मिलकर प्रलय काल में कर्मों के फल मिलने वह भी खुदा की मर्जी और पैगम्बरों की सिफारिश ! पर ये सब बातें एक दम अंधेरखाता है । अतः पाप, क्षमा का सिद्धान्त भी एकदम गलत है।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

ये सब तो जो कुछ भी हो पर हमारे ईसाई मत में भेदा-भेद मिटाकर बराबरी का बर्ताव अच्छा है।

रामू संथाल विद्यार्थी—

पादरी साहेब ! आपको बुरा न लगे तो मैं साफ-साफ कह देना चाहता हूं कि ईसाई मत के बराबरी का बर्ताव योरुप वाले गोरे साहेब ही को मुबारिक हो । और आपको भी चासनी मिल गई होगी । क्या रोमन कैथोलिक का झगड़ा अमेरिका के गोरे हवशी का भेद अफ्रीका के काले-गोरे का भेद खासकर "आपके" हिन्दुस्तान ही में देशी और विलायती क्रुस्तानों में भेद नहीं देख रहे हैं ? देशी ईसाईयों के गिरजा अलग, विवाह शादी अलग, खान-पान, रहन-सहन अलग तब फिर बराबरी क्या हुई ? हमारे यहां जाति और वर्णाश्रम भेद तो समाज चलाने के लिए हैं, और कर्म धर्म के आचरण पर ऊंचे नीचे का बर्ताव है, जब तक आप जैसे यहां नहीं आए थे, सब लोग मिलजुलकर रहते थे । अभी आप जैसों की सिखावन से जो सबसे बढ़कर सत्यानाश हो जाते हैं । वे ये हैं कि, अपने देश से प्रेम नहीं रहता, बोली-भाषा छूट जाती, खान-पान भ्रष्ट हो जाते, धर्म आचार बदल जाते, अपने सगे-सम्बन्धी छूट जाते और अन्त में जो सीधा-सादा किफायत का रहन-सहन है वे सब भी बदलकर साहेबी फैशन के खर्चीले ठाठ-बाट हो जाते हैं । जिससे हिन्दुस्तान गारत होता जाता है । इसी प्रकार से और भी बहुत-सी बातें हैं जो ज्ञान-विज्ञान से विरुद्ध बाईविल में गपोड़ा-कथा भरी है और ईसाई मत पौराणिक मत से भी गया-बीता है।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(घबराते हुए) अच्छा भाई, अब माफ करो । हम तुमसे बहस में जीत नहीं सकेंगे ।

रामू संथाल विद्यार्थी—

क्या सत्या सत्य निर्णय के लिए बहस करना पाप है ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी के सहायक पादरी मसीहुदास—

(अपने साथी को सम्बोधन करते हुए)—नहीं पादरी साहेब ! जवाब जरूर दीजिए, वरन् ईसाई मत झूठा ठहरेगा ।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

जवाब क्या दूं ? ये तो मुंह बन्द कराना चाहते हैं ।

श्री मसीहदास जी पादरी—

तो तुमने ईसाई धर्म की सच्चाई क्या समझी है ?

श्री एलियासजी ईसाई पादरी—

यही कि जैसी मसीह ने आज्ञा दी है कि, "**अमल करो**" पर किसी की एक न मानो।

श्री मसीहदास जी पादरी—

सत्यासत्य जाने बिना भला कोई अमल क्यों करने लगा ? मुझे भी अपनी संथाल जाति से बहका कर ईसाई बनाया, तब तो बड़े-बड़े बोल बोलते थे, अब खिसयाते क्यों हो ?

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

चलो, तुम्हें बंगले पर समझावेंगे।

श्री मसीहदास जी पादरी—

नहीं हमें यहीं समझाओ, वरन् हम शुद्ध होकर अपनी जाति में जा मिलेंगे।

श्री एलियास जी ईसाई पादरी—

(बेचेन हो मन ही मन "**चौबेजी गये छब्बे बनने पर दूबे भी न रहे**" वाली मिसाल हुई। एक रामू को खींचने आए थे पर अब एक घर से भी जाता हूँ) ऐ भाई ! मसीहदास !! तुम तो घर के आदमी हो इनके झमेले में मत पड़ो। बंगले पर सब समझा देंगे।

श्री मसीहदास जी ईसाई पादरी—

हरगिज नहीं, माफ कीजिये, मुझे अब बोध हुआ कि, आप जैसे ईसाई चालबाजों ही से हमारे ऐसे भोले-भाले संथालों को लोभ-लालच दे अपनी भेड़-चाल में फंसाते हैं। मैं ईसाई नहीं रह सकता, अपनी बोली में संथालों से— "**ऐ बोयहा रामू और सनाम होडको आये दो इन्च दो जो जातिय**"।

रामू संथाल विद्यार्थी—

हां ! हां !! भाई तुम तो अपने ही खून हो; बल्कि—**ऐ, बोयहा, आमदा बोयहा कनाम पादरी साहेब मेन लेखान उनी होले जो जातिय**"।

सभी ग्रामवासी संथाल—

बस आओ भाई हम लोग सभी ही मिलाने को तैयार हैं, चलो "**समाज**" में शुद्धि करावें, खाना-पीना भी तैयार ही है।

एक दूसरा संथाल—

ऐ भाई, आई लक्ष्मी को लात नहीं मारना चाहिए, कहा है कि, "**सबेरे का भूला शाम को घर आ जावे तो उसे भूला नहीं कहते**" सबके बहकाने से पेट के कारण लोग फंस जाते हैं। खैर अब इनका सब काम आज ही पूरा होना चाहिए क्योंकि कहा है कि—

अशुद्धो शुद्धतां जाति, नाति शुद्धति किल्विषं ।
न गंगा न गया, काशी, जाति गंगा गरीयसि ।।

अर्थात्—न गया जी जाने से न गंगा और काशी जाने से शुद्ध होता है, पर जाति रूपी बड़ी गंगा में सबके पाप धोकर शुद्ध हो जाते हैं । बस जिसे चाहें ले लें जिसे चाहें अजात कह कर बहा दें । अब पहले का सा अज्ञान नहीं रहा । अब तो **"महर्षि दयानन्द"** जी के पुण्य प्रताप से काटने-छांटने का सबक भुलाकर असल को मय ब्याज के वसूल करना सीख गए हैं । सर-मुण्डन करा चोटी रखवाओ । सब काम ठीक हो गए, पुनः होम-टोम होकर चट शुद्धि भी गई, और उन्हीं के हाथ से लड्डू-जलेबी बंटा दिए । सब खुशी-खुशी खाए और गले मिले । उनका नाम पुन: वैदिक धर्म में दीक्षित कर "**धर्म देव**" रख दिया । सब लोगों ने एक स्वर से **"वैदिक धर्म की जय"** तथा "**संथाल जाति की जय"** से आकाश गुंजा दिया ।

नोट—

उधर "**श्री एलियास जी ईसाई पादरी**" साहेब भी अपना-सा मुंह लेकर रास्ता लिए, पीछे पता लगा कि, यही पादरी साहेब भी वैद्यनाथ धाम में शुद्धि करा कर आजकल "**संथाल सेवाश्रम—कचहरी श्यामपुर, जिला मुंगेर**" में उपदेशक का काम कर रहे हैं । इस प्रकार इस परिणाम से यह वाद समाप्त हुआ । ओ३म् शम् ।।

वर्तमान आर्य भाईयों से—

इस उपरोक्त वाद से सबक लेना चाहिए । हालाँकि यह वाद किन्हीं दिग्गज विद्वानों का नहीं था, तो भी इस ग्रन्थ में इसको स्थान इसलिए दिया गया कि, आप लोग इससे सबक लें । प्राचीन काल में हमारे मामूली से मामूली व्यक्ति भी इतनी विद्या रखते थे कि विपक्षियों का मुंह बन्द कर सकें । आजकल बड़े-बड़े अधिकारी व उपदेशक भी स्वाध्याय न करने की वजह से उत्तर नहीं दे पाते । शास्त्रार्थ हमारे वैदिक धर्म प्रचार में कितने सहायक थे ? यह उपरोक्त वाद इस बात का प्रमाण है । हमें आज भी शास्त्रार्थ की प्राचीन परम्परा कायम रखनी चाहिए ।

विदुषामनुचर:
"लाजपत राय अग्रवाल"

सत्तरवां शास्त्रार्थ—

स्थान : महोबा (जिला हमीरपुर उ०प्र०)

दिनाङ्क : १६ सितम्बर सन् १६१७ ई०

विषय : क्या मूर्ति पूजा वेदोक्त है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री

सहायक : (१) श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी

(२) श्री पण्डित शिव शर्मा जी

(३) श्री आचार्य पण्डित नन्दकिशोर वैद्य जी

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न

सहायक : (१) श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

(२) श्री पण्डित छज्जूदत्त जी

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्रीमान मिस्टर डार्विन महोदय

(ज्वाईन्ट मजिस्ट्रेट)

शास्त्रार्थ के उपप्रधान : श्री राय बहादुर पण्डित शिवचरण लाल त्रिपाठी

आर्य समाज के प्रधान : श्री लद्धाराम साहनी

सनातन धर्म सभा के प्रधान : श्री राम गुलाम शुक्ल

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।

"संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज महोबा (हमीरपुर प्रान्तान्तगर्त एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थान) है, उसने श्रावणी पूर्णिमा के मेले में वैदिक धर्म का प्रचार किया, जिसका अत्युत्तम प्रभाव पड़ा, और बहुत से सज्जनों ने प्रेरणा की कि महोबा के मुहल्ले-मुहल्ले में प्रचार द्वारा वैदिक धर्म का डंका बजाया जाये, श्री पण्डित रघुनन्दन शर्मा भजनीक की भजन मण्डली और महाशय ठाकुर इन्द्र वर्मा के व्याख्यान, महोबा नगर के प्रत्येक मुहल्ले में एक मास तक होते रहे। उन ४८ व्याख्यानों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि लोगों का आर्य समाज के प्रति बहुत प्रेम हो गया, यद्यपि व्याख्यान सार्वजनिक होते रहे और उनके विषय स्त्री शिक्षा, ब्रह्मचर्य, मेल-मिलाप, ईश्वर भक्ति व सत्संगादि रक्खे गये थे, जिनमें किसी का किसी भी प्रकार का खण्डन न होता था। कि जिससे किसी का चित्त दुखे, सनातन धर्मियों ने भी प्रेरणा कर-२ के अपने स्थानों में व्याख्यान कराये। लोगों की आर्य समाज के प्रति सहानुभूति को देखकर कतिपय सनातन धर्मियों के पेट में खलबली पड़ गयी और उनके चित्त में ये भाव उत्पन्न हो गये कि कहीं सब लोग आर्य समाजी न हो जायें, जिससे हमारी जीविका में बाधा पड़े, उन्होंने स्थानीय सनातन धर्म सभा के अधिकारियों पर जोर देकर उपदेशक बुलाने की प्रेरणा की, परन्तु दक्षिणा की मात्रा पत्रों से जानकर उपदेशकों के बुलाने का साहस न हुआ। अन्त में एक भजनीक गजानन राव जी को बुलाया, आर्य समाज ने जितना इस बात का प्रयत्न किया था कि, आपस में मेल-मिलाप बढ़े उतना ही सनातन धर्म सभा ने आपस में द्वेषाग्नि भड़काने में कसर न रक्खी, जहां तक आर्य समाज पर वैयक्तिक आक्षेप होते रहे वहां तक समाज चुप रहा, किन्तु जब समाज के सिद्धान्तों पर अनर्गल आक्षेप होने लगे और स्वामी दयानन्द जी महाराज कृत ग्रन्थों के विषय में धोखा देकर मिथ्या विष फैलाया जाने लगा, यहीं तक नहीं बल्कि व्याख्यानों में यहां तक कहा जाने लगा कि मुसलमान व ईसाईयों से हमारा कोई विरोध नहीं, वे तो हमारे चोली दामन के साथी हैं, ये आर्य लोग हमारे पूर्ण शत्रु हैं। आर्यों का हमारे सम्बन्ध में दाईं भुजा कहना चापलूसी है। इत्यादि, भला ऐसी अवस्था में जबकि इतना कहते हुए फिर समझाने के लिए आवाहन भी किया जावे तो आर्य समाज कब चुप रह सकता था ? शास्त्रार्थ के लिए पत्र व्यवहार होने लगा, जो ज्यों का त्यों सर्व साधारण के लिए अवलोकनार्थ प्रकाशित किया जाता है जिसकी साक्षी शास्त्रार्थ में उपस्थित महाशय अवश्य देंगे, शास्त्रार्थ उन नोटों से तैयार किया गया है जिनको शास्त्रार्थ के समय श्री पण्डित पूर्णानन्द जी, ब्रह्मचारी धर्म दत्त जी, ब्रह्मचारी भूदेव जी और पण्डित नानक राम जी तथा सनातन धर्म की ओर से दो विद्वान नियुक्त किये गये, इन सबने मिलकर नोट किये थे।

यह शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा व मृतक श्राद्ध पर हुआ, आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ के लिए—*श्री ठाकुर इन्द्र

टिप्पणी—

*श्री ठाकुर इन्द्रवर्मा जी, "ग्राम न्होटी" जिला अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) निवासी बहुत प्रभावशाली वक्ता और शास्त्रार्थ महारथी थे। श्री ठाकुर (पं०) अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केसरी को उनकी बहन विवाही थी। श्री वर्मा जी के सुपुत्र श्री प्रोफेसर सुरेन्द्रपाल जी, स्नातक गुरुकुल वृन्दावन संस्कृत के उद्भट विद्वान आजकल खुर्जा में रह रहे हैं। —"लाजपतराय अग्रवाल"

वर्मा तथा पण्डित पूर्णानन्द जी उपदेशक उपप्रतिनिधि सभा बुंदेलखण्ड व पण्डित केदार नाथ साधु* तारीख १२ सितम्बर को ही महोबा में उपस्थित हो गये थे। क्योंकि शास्त्रार्थ की पहली तारीख १३-९-१९१७ थी, तारीख ८ सितम्बर को पण्डित रामाश्रय जी, पं० शिव शर्मा जी,† पण्डित वसन्त लाल ब्रह्मचारी, भूदेव ब्रह्मचारी, धर्मदत्त स्नातक गुरुकुल कांगड़ी व पण्डित नानक राम जी पहुंच गये, पण्डित मातृदत्तजी शास्त्री तथा आचार्य पण्डित नन्दकिशोर देवजी‡ तारीख १९ सितम्बर को पधारे। सनातन धर्म सभा की ओर से पण्डित अखिलानन्द जी तारीख १७ सितम्बर को **"गोप्यंगोप्यं महद्गोप्यं"** की उक्ति चरितार्थ करते हुए आये और आम रास्ते से न लाकर माल गोदाम के रास्ते से लाये गये, और छिपा कर रक्खे गये। पण्डित कन्हैया लाल १८ सितम्बर को, पण्डित कालूराम १९ सितम्बर को, पण्डित छज्जूदास २० सितम्बर को आये, शास्त्रार्थ के सुप्रबन्धार्थ उभयपक्ष के प्रतिनिधियों ने श्री मान मिस्टर डार्विन महोदय ज्वाईन्ट मजिस्ट्रेट की सेवा में प्रधान पदासीन होने की नम्र प्रार्थना की, जिससे शास्त्रार्थ शान्त तथा बाधा रहित समाप्त हो। श्री मान ने बड़ी कृपा पूर्वक प्रार्थना स्वीकार की जिसका परिणाम शास्त्रार्थ की निर्विघ्नता पूर्वक समाप्ति स्पष्ट है। ऐसे न्याय प्रिय उच्च विचार महोदय को उनकी महती कृपा पर कोटिशः धन्यवाद है। शास्त्रार्थ १९ सितम्बर से आरम्भ हो २३ सितम्बर को सम्पूर्ण हुआ वृष्टि के कारण २० सितम्बर को शास्त्रार्थ न हो सका। "शास्त्रार्थ से पहले काफी लम्बा पत्राचार आर्य समाज व सनातन धर्मियों के बीच हुआ, जिसे अनावश्यक समझ कर यहां नहीं दिया गया है केवल पत्राचार के बीच में जो शास्त्रार्थ के नियम तय किये गये थे या आवश्यक पत्राचार समझा गया वह दिया जाता है।"

"संग्रहकर्त्ता"

सनातन धर्म सभा की ओर से भेजे गये शास्त्रार्थ के नियम—

१. शास्त्रार्थ का विषय वर्णव्यवस्था, मृतक श्राद्ध और मूर्तिपूजनादि होगा। २. शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा, आवश्यकता होने पर हिन्दी में अनुवाद करके सर्व साधारण को सुनाया जावेगा। ३. दोनों ओर से एक मध्यस्थ होगा, जो सत्यासत्य का निर्णय करके जय-पराजय की सूचना देगा। ४. शास्त्रार्थ प्रतिदिन दो घन्टे तक होगा दोनों ओर के पण्डित दस-दस मिनट बोलेंगे, विषयान्तर में बोलने वाला परास्त समझा जावेगा। ५. दोनों ओर से बोलने वाला पण्डित एक-एक होगा जो अपने स्थान पर अन्य पण्डित को नियुक्त करेगा उस नियुक्त पण्डित को पूर्व वक्ता का सभी भार लेकर बोलना होगा। अन्य विषय पर बोलने वाला परास्त समझा जावेगा। ६. शास्त्रार्थ उस पण्डित से

टिप्पणी—

*पण्डित केदारनाथ साधु—आर्य मुसाफिर विद्यालय आगरा के स्नातक थे जो पीछे महापण्डित "राहुल सांकृतायन" के नाम से विख्यात हुए वह मेरे सहपाठी रहे थे?

†पं० शिवशर्मा जी "सम्भल" जि० मुरादाबाद निवासी।

‡पं० नन्दकिशोर देव जी महान् विद्वान थे तथा श्री पं० रामदत जी शुक्ल के पूज्य पिता दोनों आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के शास्त्रार्थ महारथी उपदेशक थे।

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

होगा जिसके पास संस्कृतज्ञ होने का प्रमाणपत्र प्रतिनिधि का दिया हुआ होगा। ७. शास्त्रार्थ में पूर्व पक्ष समाज की ओर से होगा और उत्तर पक्ष सनातन धर्म की ओर से होगा दोनों ओर के प्रश्नोत्तर अन्त में छाप कर प्रकाशित किये जावेंगे। ८. हमारी ओर से प्रमाण के लिए चार वेद और वेदानुकूल होने पर अन्य समस्त आर्ष ग्रन्थ होंगे मंत्रार्थ निर्णय में आगोंपांग माने जावेंगे, वेदानुकूल मन्वादि धर्म शास्त्र और भाष्यों में शतपथ आदि माने जायेंगे स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों को जब तक समाजी मानेंगे तब तक हम उनका खण्डन उनसे ही करेंगे। ६. इन नियमों का उल्लंघन करने वाला बोलने से रोक दिया जावेगा, शास्त्रार्थ की तिथि आपके लेखानुसार ही नियत की जाती है अर्थात् शास्त्रार्थ १६-६-१७ ई० से आरम्भ होगा। कृपया यह भी ध्यान रहे कि शास्त्रार्थ करने के लिए, आप ही ने हमें बाध्य किया है, इस लिए प्रबन्ध का भार आप ही को उचित है और पब्लिक की स्थिति पूर्व लेखानुसार ही रहेगी, अतः स्वीकृत्तोत्तर शीघ्र प्रदान कीजिये।

हस्ताक्षर :
सभापति—"राम गुलाम शुक्ल
तारीख ७-६-१७

हस्ताक्षर :
सनातन धर्म सभा मन्त्री—"नन्हेलाल"

उपरोक्त शर्तों के विषय में आर्य समाज ने निम्न उत्तर दिया—

॥ ओ३म् ॥

आर्य समाज (महोबा)

श्रीमान प्रधान जी महोदय सनातन धर्म सभा महोबा, अनेक बार सादर नमस्ते ! ८-६-१७

(१)—आपका पत्र दिनांक ७-६-१७ का उसी दिन संध्या को प्राप्त हुआ, शोक! कि आपकी सभा के जानते हुए व सभा के अधिकारियों के इकरार करते हुए पत्र के उत्तर में देरी हुई और आप देरी के उत्तरदायित्व से विलग होते हैं, हर्ष इस बात का है कि सनातन धर्म सभा महोबा केवल वेदानुकूल अन्य समस्त, आर्ष ग्रन्थ प्रमाण में होंगे, अब आपके सारे प्रश्नों का उत्तर आपके लेख से प्रकट होता है कि आपने हमारे किसी पूर्व पत्र का भी ध्यान नहीं दिया, जबकि आपकी सभा के कई सभ्य अधिकारीगण पत्र की प्राप्ति स्वीकार कर चुके थे। शास्त्रार्थ का स्थान सुरक्षित होना चाहिये, ताकि अज्ञात स्थान से विघ्न कर्त्ता पत्थर आदि फेंक कर विघ्न न कर सकें, ऐसे स्थान निम्नलिखित हैं, १. रामलीला का मैदान २. तिवारी जी का पेच घर ३. तिवारी जी का गोदाम ४. पाठशाला ५. आर्य समाज मन्दिर। अन्तिम दो स्थान संकुचित है, और वहां इमारत का काम जारी है। अतएव प्रथमोक्त तीन स्थानों में से जो भी आपको स्वीकृत हो वही हमें स्वीकार होगा। ग्रांटगंज आदि आपके लिखे हुए स्थान सुरक्षित नहीं हैं अतएव योग्य नहीं हैं। (२) —विदित होता है कि आपने हमारे पत्रों को ध्यान पूर्वक अवलोकन करने की बिल्कुल भी कृपा नहीं की है। आप यदि उन्हें फिर से देखने की कृपा करेंगे तो आपको विदित हो जायेगा कि हमने जनता के निर्णय के विषय में लिखा है। श्रोता लोग अपने मन में स्वयं ही जान लेंगे कि किस का पक्ष प्रबल रहा ? हमने अपने पूर्व पत्रों में लिखा है कि मध्यस्थ हमारी व आपकी, केवल जनता होगी। वह अपने अपने हृदय में सत्यासत्य का स्वयं ही विचार कर लेगी। और भी पत्रों में लिखा है, कि यही शास्त्रार्थ का अभिप्राय होता है। हमने यह नहीं लिखा कि जनता जय पराजय का सर्टिफिकेट देगी। भला विचारिये तो सही किस जनता का निर्णय दोनों पक्षों को मान्य होगा। सनातन धर्म जनता का, या आर्य समाज जनता का, या अन्यमतावलम्बी जनता का ? या सम्मलित जनता के वोट लिए जावेंगे ? (३)—अपनी जनता के कुव्यवहार का प्रत्येक पक्ष उत्तरदाता होता है।

शास्त्रार्थ का नियम तो यही होता आया हैं। आशा है कि कृपया आप इसे स्वीकार करेंगे। महोबा के लिए नये नियम इस विषय में बनाने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रतीत होता रहे कि जिस पक्ष की जनता किसी प्रकार के कुव्यवहार की चेष्टा तक करेगी, उस पक्ष की पराजय समझी जायेगी। (४)—हमने शास्त्रार्थ के कोई मुख्य विषय निर्धारित नहीं कर दिये थे वरन यह लिखा था कि सनातन धर्म के सिद्धान्तों पर हमारी ओर से व आर्य समाज के सिद्धान्तों पर आपकी ओर से विवाद होगा। आपके लिखे विषयों के अतिरिक्त हम सनातन धर्म महामण्डल स्वीकृत ग्रन्थों की सूची के किसी ग्रन्थ पर भी प्रश्न करेंगे, विशेषकर पुराणों पर विवाद करेंगे। (५)—शास्त्रार्थ प्रचलित भाषा में होना उचित है ताकि सर्वसाधारण समझ कर लाभ उठा सकें और शास्त्रार्थ का अभिप्राय पूर्ण हो, प्रमाण इत्यादि संस्कृत में होंगे, जिसका भाषानुवाद भी आवश्यक होगा। (६)—जय-पराजय के निर्णय की सूचना किस प्रकार हो सकती है, जब कि कोई एक निष्पक्ष और विद्वान मध्यस्थ नहीं मिल रहा? रहा जनता का फैसला? सो हम पहिले ही लिख चुके हैं कि अपने मन में जान लेगी। (७)—शास्त्रार्थ का समय दो घण्टे अति न्यून है कम से कम ४ घण्टे होना चाहिये पण्डितों का दस २ मिनट बोलना ठीक है। शास्त्रार्थ कम से कम ६ दिन होना चाहिए। (८)—शास्त्रार्थ दोनों पक्षों के सिद्धान्तों पर है और हर एक पक्ष वाले वाले को यह अधिकार है कि जिसको जिस समय उचित समझे खड़ा करे। इससे किसी पक्ष की हानि नहीं, यही होना चाहिये। यह मानी हुई बात है कि अपने-अपने पक्ष का भार हर बोलने वाला लेगा। (९)—शास्त्रार्थ सिद्धान्तों पर होगा, न कि पण्डितों की डिगरियों पर! आप जानते हैं कि हर एक पक्ष वाला अपनी ओर से योग्य पण्डितों को नियुक्त करता है और यही होगा। डिगरी की क़ैद अनावश्यक है। (१०)—आपके सातवें नियम पर विनय है कि आपके लेखानुसार प्रथम प्रश्न हम करेंगे, उत्तर आप देंगे, तत्पश्चात आपके प्रश्न हमारे सिद्धान्तों पर होंगे, हम उत्तर देंगे इसी प्रकार बारी-२ से प्रश्नोत्तर होंगे, शास्त्रार्थ उत्तर पर समाप्त होगा। (११) आपके लिखे आठवें नियम पर विनय है कि आर्य समाज वेदों को स्वतः प्रमाण और शेष ग्रन्थों को वेदानुकूल होने से माननीय और वेदविरुद्ध होने से त्याज्य मानता है। आपके उक्त नियम से बिल्कुल यही प्रकट होता है तो आप बतलाइये कि आप समस्त अठारह पुराणों को वेदानुकूल मानते हैं या नहीं और महीधर, सायण, उव्वट, आचार्यों के भाष्यों को प्रामाणिक मानते हैं या नहीं? यदि आप पुराणों को वेदानुकूल मानते हों तो हम पुराणों पर शेष प्रश्न करेंगे। और यदि पुराणों को वेदानुकूल न मानते हों तो हमारा आपका मतभेद ही नहीं है। इसी प्रकार महीधर आदि उक्त भाष्यों पर हम प्रश्न करेंगे, यदि आप उनको प्रामाणिक मानते हों? (१२)—उभय पक्ष के निर्धारित किये हुए नियमों का पालन दोनों पक्षों को आवश्यक होगा, यदि नियम स्वीकार हैं तो १८-८-१७ की तिथि स्वीकार है। (१३)—शास्त्रार्थ के लिये हमने आपको बाध्य नहीं किया, रहा प्रबन्ध? सो हम यथाशक्ति सेवा करने को उद्यत है। हमारी शक्ति इतनी नहीं कि हम पूर्णप्रबन्ध कर सकें प्रार्थना है कि आप प्रबन्ध करें और योग्य सेवा हमसे लें, पब्लिक की स्थिति के विषय में हम लिख चुके हैं।

भवदीय—
"लद्धाराम साहनी"
प्रधान—आर्य समाज (महोबा)

"इस प्रकार कई बार नियमों पर भी वाद-विवाद होता रहा, तथा लम्बा पत्राचार चलता रहा। अन्त में आर्य समाज की ओर से पत्र दिया गया कि हम कल अमुक समय पर शास्त्रार्थ के लिए अमुक स्थान पर पहुंच जायेंगे जो भी बातचीत तय करनी होगी वहीं पर शास्त्रार्थ से पहले तय कर दी जावेगी अतः समय पर पधारने की कृपा करें।"

"संग्रहकर्त्ता"

शास्त्रार्थ आरम्भ

प्रथम दिवस—

आर्य समाज के विद्वान वेदादि सत्य शास्त्रों तथा पुराणादि आधुनिक ग्रन्थों को ले ठीक चार बजे शास्त्रार्थ भूमि में पहुंच कर अपने निश्चित स्थान पर बैठ गये। पांच बजे सनातन धर्म सभा के पण्डितगण पधारे। ठीक पांच बज कर दस मिनट पर श्रीमान ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट का शुभागमन हुआ तदनन्तर लद्धाराम जी ने उनको प्रधान पद के लिए तथा राय बहादुर पण्डित शिवचरण लाल त्रिपाठी जी को उपप्रधान का आसन अलंकृत करने लिए प्रस्ताव किया, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। प्रधान जी के पदारूढ़ होने पर श्री लद्धाराम जी ने कहा—

आर्य समाज महोबा के प्रधान श्री लद्धाराम जी साहनी -

श्रीमान माननीय सभापति तथा सभ्य उपस्थित समुदाय ! इस शास्त्रार्थ के बारे में प्रथम ही से चर्चा चलती सुनी होगी, किन्तु हमें खेद है कि सनातन धर्म सभा ने जो छपे हुए विज्ञापन वितरित किये हैं, वह नियम विरुद्ध होने से कर्त्तव्य विरुद्ध हैं, ऐसा करना एक सभ्य सभा के लिए सर्वथा अयुक्त है। उसमें जो विषय व नियम उल्लिखित हैं, बिना हमारी सम्मति तथा परस्पर अनिर्धारित ही प्रकाशित कर दिये हैं, कल तक हमारा और सनातन धर्म सभा का इस विषय में पत्रव्यवहार ही चलता रहा है। विज्ञापन में लिखा है कि आर्य समाज की प्रेरणा से शास्त्रार्थ हो रहा है इस बात को सत्य मानते हुए हमारी समझ में नहीं आता कि सनातन धर्म सभा ने अपने ही आप बिना हमसे पूछे क्यों नियम प्रकाशित कर दिये ? प्रेरणा तो आर्य समाज करे और विषय तथा नियम निर्धारण में उसकी सम्मति तक अनावश्यक हो। यह कहां का न्याय है ? हमको मूर्तिपूजा, मृतकश्राद्ध, वर्णव्यवस्था, विज्ञापन लिखित विषयों पर शास्त्रार्थ करने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु हमके साथ-२ पुराण, नियोग, अवतार, जिनको कि पत्रव्यवहार में हमारी ओर से शास्त्रार्थीय विषय में प्रविष्ट करने के लिए जोर दिया जाता था। कारण नहीं प्रतीत होता कि उन्हें अपने पत्र व्यवहार की भांति विज्ञापन में भी क्यों उपेक्षित कर दिया गया ? सनातन धर्म सभा पुराणों से क्यों घबराती है ? अगर पुराणों को मान्य नहीं समझती तो स्पष्ट अस्वीकृति प्रकट करने में हिच-किचाहट कैसी ? विज्ञापन में शास्त्रार्थ केवल संस्कृत में हो इसका आग्रह क्यों ? हम नहीं समझते कि जब सर्व साधारण के रुपये से शास्त्रार्थ हो रहा है तो क्या शास्त्रार्थ सुनने और जानने के लिए सम्पूर्ण महोबे का जन समुदाय उत्कंठित नहीं है ? जो एतदर्थ ही अपने समय को यहां पधारकर व्यय कर रहा है भला उनको क्या लाभ होगा ? यदि जानता चाहे तो हमें संस्कृत में शास्त्रार्थ करने में अणुमात्र भी अस्वीकारता नहीं है। मैं आशा करता हूं कि अब इसमें अधिक समय व्यतीत न कर कार्यक्रम को शीघ्र आरम्भ किया जावे।

श्री पौराणिक पण्डित कन्हैया लाल जी—

सज्जनों ! बड़ी खुशी की बात है कि आज स्वयं जिला मजिस्ट्रेट इस सभा के सभापति हुए हैं। न्याय का सिंहासन इस समय सबके सामने उपस्थित हैं। दयानन्द और उसके मतानुयायी अपने को वैदिक बताते हैं जो कि

सर्वथा झूठ और विरुद्ध है आज तक न जाने कितने स्थलों पर हमारी ओर से लेखबद्ध शास्त्रार्थ के लिए ललकारा गया परन्तु एक बार के अतिरिक्त समाजियों ने दम नहीं मारा कि लेखबद्ध शास्त्रार्थ करें, मैंने कई स्थानों में शास्त्रार्थ किया एक स्थान पर पं० शिव शर्मा काव्यतीर्थ (इस पर पं० अखिलानन्द बोले कि—"पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ") से किया पर मौखिक ही किया लेख बद्ध नहीं। मौखिक में ये सबको धोखा देकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं, और शास्त्रार्थ भी करते हैं तो मूर्तिपूजा, वर्णव्यवस्था और मृतक श्राद्ध पर। मैं कहां तक कहूं यदि दम है तो एक ही बार अपने मत को वैदिक सिद्ध कर दें, हम मान लेंगे, नहीं तो हमारे मत को निष्पक्ष होकर वैदिक मान लेना चाहिये। इनका पक्ष कभी वैदिक नहीं हो सकता। जिन पुरुषों ने विचार किया वे झक मारके हमारे ही पक्ष में आ गये जैसे पण्डित भीमसेन, कविरत्न पण्डित अखिलानन्द जी, आदि···बीच में ही श्री पण्डित शिव शर्मा जी ने कहा—

श्री पण्डित शिव शर्मा जी शास्त्रार्थ महारथी—

सज्जनों! बड़े ही शोक की बात है कि पण्डित कन्हैया लाल जी ने इतनी बड़ी सभा को कि जिसमें "न्याय सिंहासन" भी हो धोका देने के लिए सफेद झूठ कहा। क्या समाज ने कभी लिखित शास्त्रार्थ नहीं किये? क्या "आगरा शास्त्रार्थ" पण्डित जी को याद नहीं या ज्ञात नहीं? (इस तरह सात-आठ छपे हुए शास्त्रार्थ दिखलाते हुए) बड़े लज्जा की बात है कि पण्डित कालूराम जी ने अपने साथी को ऐसा स्पष्ट मिथ्या भाषण करते हुए नहीं रोका। अभी हाल में उनसे और पण्डित प्रयागदत्त जी से लेखबद्ध शास्त्रार्थ इसी जिले के "कोरारा" स्थान में हो चुका है। क्या आप इतनी जल्दी भूल जाते हैं कि शास्त्रार्थ "स्याना" जिला बुलन्दशहर में मेरे (पण्डित शिव शर्मा के) साथ हो किन्तु, कहें कि श्रीमान पं०शिवशंकर काव्यतीर्थ के साथ। आर्य समाज ने कब लिखित शास्त्रार्थ से अस्वीकारता प्रकट की? अभी इसी शास्त्रार्थ के लिये ही पत्र सं० १ व ३ में आर्य समाज ने इस पर बल दिया है, जिसकी उपेक्षा सनातन धर्म सभा के पत्र सं० २ में स्पष्ट की गई है कि—लिखित न हो किन्तु मौखिक ही हो क्या इतने पर हम आशा रख सकते हैं कि पण्डित जी अपने मिथ्या भाषण पर पश्चात्ताप करेंगे? धर्मक्षेत्र में धर्मोपदेशक इतना धर्म रहित भाषण करे, क्या यह लज्जास्पद बात नहीं है? हां! आपके यहां तो लोग झक मार कर ही जाते हैं प्रसन्नतापूर्वक कौन जाता है? (१५०) रुपये और ५००) रुपये की फीसें भी तो उधर खींचती हैं। जनता में हंसी···परंच आपने झख मारकर लौटने वाले केवल दो ही गिनाये, किन्तु यह तो बतलाइये कि, ये चार-पांच लाख आर्य समाजी कहां से आये? सनातन धर्म से आये या आकाश से टूट पड़े वा पृथ्वी में से निकल पड़े? जनता में फिर हंसी···मैं पूछता हूं भला इन बातों में क्या रखा है? हम सब विषयों पर शास्त्रार्थ करने के लिए सन्नद्ध हैं। हमने कभी किसी विषय पर शास्त्रार्थ करने से आनाकानी नहीं की, और न कर रहे हैं, और न करेंगे।

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री—

बस! बस!! ठीक है, "मूर्ति पूजा" पर शास्त्रार्थ हो।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी शास्त्रार्थ महारथी—

यदि "मूर्ति पूजा" पर ही होना है तो पूर्व पक्ष सनातन धर्म सभा स्थापन करे, क्योंकि यही मूर्तिपूजा के वादी (मुद्दई) हैं।

सभापति महोदय—

ठीक है। आज सनातन धर्म सभा की ओर से पूर्व पक्ष हो। कल आर्य समाज की ओर से होगा। शास्त्रार्थ में ५ मिनट संस्कृत भाषा में बोलकर शेष ५ मिनट में उसका भाषानुवाद सुनाना होगा अब ठीक साढ़े पांच बजे हैं। प्रथम सनातन धर्म सभा अपनी ओर से विद्वान खड़ा करें और शास्त्रार्थ आरम्भ हो।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(प्रार्थनानन्तर थोड़ी देर संस्कृत में भाषण कर फिर भाषा में बोलने लगे) मेरे प्यारे भाइयो ! जब परमात्मा को सर्व व्यापक मानते हैं तो क्या व्याप्य-व्यापक को छोड़कर क्षण मात्र कहीं पृथक रह सकता है ? जब परमात्मा व्याप्य-व्यापक भाव से अधिष्ठित है तो कहां उससे अलग हो सकता है ? चूंकि मूर्ति में परमात्मा व्यापक होकर क्षण मात्र पृथक नहीं रह सकता अतः मूर्ति पूजा सिद्ध हुई, क्या वेदों में किसी मन्त्र का देवता परमात्मा का अवतार नहीं हो सकता ? फिर क्यों धोखा दिया जाता है कि अवतार तथा उनकी मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है, वेद में तो स्पष्ट कहा है देखिये यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र १, "**तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुरित्यादि**" अर्थात् वही अग्नि, वही वायु, वही सूर्य है। इससे पृथ्वी जल आदि की पूजा सिद्ध हुई। "**त्वं स्त्रीत्वंपुमानसि**" आदि से मोहनी, रामादि अवतार सिद्ध हैं।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

(प्रार्थनानन्तर निश्चित काल तक संस्कृत बोलकर फिर भाषा में कहने लगे)—सभ्यगण! परमात्मा सर्वव्यापक है परन्तु यह नियम नहीं कि व्याप्य भिन्न केवल परमात्मा की उपासना नहीं हो सकती। व्याप्य—व्यापक सम्बन्ध होने पर भी उपासक के ज्ञान में व्यापक का अस्तित्व व्याप्य से भिन्न है, ज्ञान में दोनों का अभेद मानना निर्भ्रान्त ज्ञान नहीं हो सकता यदि काष्ठ में अग्नि है तो काष्ठ अग्नित्वेन व्यवहार्य नहीं हो सकता। पण्डित जी ! अवतार शब्द वेदों से दिखलावें या कोई ऐसा मन्त्र दिखलावें जिसका देवता अवतार हो। जब अवतार नहीं तो उसकी मूर्ति भी नहीं हो सकती। क्योंकि वेदों में तो स्पष्ट आता है "**न तस्य प्रतिमा अस्ति**····· " यजुर्वेद ३२/२, जब प्रतिमा नहीं तो मूर्ति पूजा की सिद्धि कैसी ? टन टन ऽऽ·········

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

सज्जनों ! मैंने "**तदेवाग्नि**···" तथा "**त्वं स्त्री**···" आदि को पेश कर मूर्ति पूजा सिद्ध की। पण्डित जी कहते हैं कि—वेदों से अवतार दिखलाओ ! क्या राम और कृष्ण मन्त्रों के ऋषि नहीं हैं ? जब हैं तो अवतार सिद्ध हुआ। परमात्मा के साकारत्व के और प्रमाण लीजिए—"**विश्वतश्चक्षुरुत**·······" इत्यादि से आंख-पैर वाला तथा "**सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः**···" यजुर्वेद में कहा है, इत्यादि में हजार आंख और हजार पैर वाला ईश्वर बतलाया गया है क्या अब भी उसके साकार होने में कुछ संदेह है ? हम वैदिक हैं। जहां २ वेद विधि निषेध नहीं करता वहां-वहां हम स्मृतियों को मानते हैं। जब उसमें नहीं तो एतद्देशीय आचार हमारे लिए ग्राह्य है। हमारे सभी मान्य ग्रन्थ तथा लोकाचार हमारे पक्ष को पुष्ट करते हैं सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के प्रश्न के उत्तर में स्वामी जी ने हमारे लिए कहा है, "**जिनको तुम बुतपरस्त कहते हो वे भी मूर्ति को नहीं पूजते। किन्तु मूर्ति द्वारा ईश्वर को पूजते हैं**" अथर्ववेद में लिखा है कि—"**सर्वं भूमेरजायत्**······" इत्यादि तथा यजुर्वेद में "**प्रजापतिश्चरति**······" आदि

"रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव......" इत्यादि में स्पष्ट है कि वह भूमि से उत्पन्न हुआ, वह गर्भ में प्राप्त होता है। वह भिन्न २ रूप धारण करता है। हमारा साकार सिद्ध है तुम दिखलाओं कि वेद में कहां परमात्मा को निराकार माना है ? (समय समाप्त)

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

(पहले संस्कृत में फिर भाषा में)—सज्जनों ! पण्डित जी को इतना भी मालूम नहीं कि ऋषि और देवता में क्या फर्क है? "**ऋषयोमन्त्रदृष्टारः**" इस निरुक्त के वचन से "ऋषि" मन्त्र के देखने वाले को कहते हैं। "**यातेनोच्यते सातस्य देवता**" इस यास्कोक्ति से प्रतिपाद्य विषय मन्त्र का देवता होता है। पण्डित जी तीन काल में "**अवतार**" शब्द वेदों से नहीं दिखा सकते हैं कि अमुक मन्त्र का देवता "**अवतार**" है "**विश्वतश्चक्षुरुतः**" से तो परमात्मा सर्वशक्ति से सब ओर देखने वाला सिद्ध होता है न कि आंख वाला ! "**सहस्त्रशीर्षा**" से हजार सिर, आंख-पैर वाला मान लें तो यह दोष आता है कि जब एक सिर में दो आंख और दो पैर होते हैं, परन्तु यहां हजार सिर, हजार आंख व पैर आप कहते हैं तो आपके कथनानुसार, ईश्वर कांणा,लूला, लंगड़ा, हुआ। परन्तु क्या किसी मन्दिर में अब तक हजार सिर, हजार आंख वाली मूर्ति स्थापित हुई है ? इसका तो स्पष्टअर्थ यह हैं कि उस परमात्मा की व्यापकता में हजारों (अनन्त) सिर, अनन्त आंखें और पैर है। अथवा उसमें हजारों सिर-पैर आंखों की शक्ति है, जिससे सम्पूर्ण काम नियमानुकूल होते हैं। क्या वेद से बाहर भी स्मृति जा सकती है ? तथा उनसे बाहर लोकाचार वैदिक धर्मियों को ग्राह्य हो सकता है ? फिर वेदों में स्वमतपोषक कुछ भी न प्राप्त कर, इधर उधर की टाल-मटोल से काम नहीं चल सकता "**सर्वभूमेर जायत**" का अर्थ तो स्पष्ट है कि वह भूमि से प्रकाशित होता है। अर्थात् भूमि उसकी महिमा को प्रकट करती है। यदि भूमि से वह प्रकट होता है तो, भूमि किससे प्रकट होती है ? क्या भूमि का बनाने वाला कोई और है ? और "**कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणोंदृष्टः**" इस आर्ष वचन से तो जड़ भूमि से पैदा हुआ जड़ ही होगा। "**प्रजापतिश्चरतिगर्भे**" इस मन्त्र में "**अजयमानः**" शब्द आगे पड़ा हुआ है। जिसका अर्थ है "**न उत्पन्न होता हुआ**" फिर ईश्वर का जन्म कैसे सिद्ध हुआ ? इसका अभिप्राय तो साफ यह है कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से गर्भ के भीतर प्राप्त है तभी तो सन्तानादि को बना सकता है। "**रूपं रूपं प्रति रुपो बभूव**" का अर्थ यह करना कि वह भिन्न रूप धारण करता है, अयुक्त है। उसके भिन्न २ गुण जो भिन्न-२ स्थानों में प्रकट हो भिन्न-२ शक्तियों का परिचय दे रहे हैं, अतः वह भिन्न २ रूप से उसके लिए कहा गया है न कि उसके भिन्न-२ शरीर हैं। पण्डित जी क्या जैसे आप अपने अवैदिक सिद्धान्तों को वेदों द्वारा प्रतिपादन नहीं कर सकते वैसे ही आर्य समाज को समझते हैं। देखिये—"**सपर्यगाच्छुक्रमकायं...**" इत्यादि यजुर्वेद के मन्त्र में स्पष्ट "अकायम" शब्द पड़ा हुआ है। "कायम्" काया (शरीर) सभी जानते हैं, नहीं काया जिसके हो वह "अकाय" कहाता है। यह अर्थ स्वामी दयानन्द जी ने ही नहीं बल्कि तुम्हारे महीधर उव्वट आदि आचार्यों ने भी किया है, कहिये निराकार परमात्मा वेदों में हैं कि नहीं, (समय समाप्त)।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(पहले संस्कृत बोलकर फिरभाषा में बोलने लगे)—सज्जनों ! इन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का उत्तर नहीं दिया, न आगे देंगे, दें भी कैसे ? दयानन्द की गन्दी हिन्दी जो ठहरी। दयानन्द ने बड़ा धोखा दिया, मन्त्रों के अर्थ बदल दिये। मतलब के लिए मन्त्रों के थोड़े-थोड़े टुकड़े रख दिये। उसको देवताओं तक का ज्ञान नहीं था, देवता कुछ के कुछ लिख दिये। उसने वेद किसी से नहीं पढ़े तो भला ठीक अर्थ कैसे कर सकता था ? मैंने "**देवाग्निस्तदादित्य**" व "**विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो**" व "**प्रजापतिश्चरतिगर्भे**" आदि मन्त्रों के प्रमाण दिये हैं जो किसी तरह टाले नहीं जा

"सपर्य्यगाच्छुक्र……" में दयानन्द की तरह एक अंश लेकर पेश करना अच्छा नहीं उसी में आगे "स्वयंभू" पढ़ा है, जिसका अर्थ है जो स्वयं पैदा होता है । सत्यार्थ प्रकाश का उत्तर देना चाहिये । "सर्वेभूमेरजायत" का क्या उत्तर दिया ? प्रधान जी का इशारा हो गया, (समय समाप्त) ।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

(निश्चितकाल तक संस्कृत में बोलने के बाद भाषा में बोले) शोक है कि, न मालूम पण्डित जी महर्षि को कटुवाक्य कहने में क्या सिद्धि समझते हैं ? गंदगी देखनी हो तो महीधर भाष्य "गणानां…" मन्त्र में देखो, जहां यजमान की स्त्री का सम्भोग घोड़े से कराया है । दयानन्द जी महाराज की ही बदौलत तो ५००) रु० का यह ढोल लग रहा है, सत्यार्थ प्रकाश का एक अंश तो लेकर आप पढ़ते हैं, और कलंक लगाते हैं स्वामी जी पर कि थोड़ा मन्त्र लिख देते हैं । भला पूरा सत्यार्थ प्रकाश का वाक्य तो सुन लीजिये मैं पढ़ता हूं जिसके लिए आप कहते हैं, कभी इस उत्तरको देंगे ही नहीं(सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा गया) जिसमें स्वामीजी ने पौराणिकों को मूर्ति का और मुसलमानों को काबे का पूजक और असत्य मार्ग पर चलने वाला बताया है । "तदेवाग्निस्तदा" आदि मन्त्रों का हमने उत्तर दे दिया है । परन्तु आपने "न तस्य प्रतिमास्ति" का क्या उत्तर दिया ? आप स्वामी जी पर आक्षेप बिना समझे हुए करते हो कि उन्होंने वेद किसी से नहीं पढ़े, परन्तु क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपने वेद कौन से गुरु से पढ़े हैं ? जो अथर्ववेदालोचन करने लगे, स्वामी जी ने तो अपने ग्रन्थों में अपने गुरु का नाम दिया है, आपने किस गुरुघंटाल का नाम दिया है ? जब तक दिखाओ नहीं, यह कहना कि देवता कुछ के कुछ कर दिये, मिथ्या प्रलाप है । "स्वयंभू" का स्वयं पैदा होना "अजायमान" परमात्मा के लिए ठीक नहीं हो सकता । किन्तु स्वयं विद्यमान "भू धातु" सत्ता अर्थ में है, अर्थात् जिसकी सत्ता स्वयं हो । अवतारों के माता-पिता दशरथ और कौशल्या आदि विख्यात हैं, आप कैसे कहते हैं कि उनको किसी ने पैदा नहीं किया ? (समय समाप्त)

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(कुछ समय तक संस्कृत बोले पश्चात पूर्व कहे गये मन्त्रों को दोहराकर) फिर भाषा में कहा—मेरी बात का उत्तर नहीं दिया जाता । टाल की जाती है । मैं स्वामी दयानन्द को नहीं मानता । स्वामी दयानन्द ने पटेले पर दूध और शहद चढ़ाना लिखा है, क्या यह मूर्ति पूजा नहीं है ? स्वामी दयानन्द की इन बातों को समाजी कैसे टाल सकते हैं ? (इन्हीं बातों को कहते हुए समय बिता कर बैठ गये) ।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

(कुछकालसंस्कृत बोलकरफिरभाषा में बोले)—सभ्य महोदयो? आप सुन रहे हैं किमैं पण्डितजी के सारे प्रमाणों को वेद विरुद्ध सिद्ध कर आर्य समाज के पक्ष को वेदानुकूल सिद्ध कर रहा हूं । जिन मन्त्रों का उत्तर पहिले दिया जा चुका है, उनमें कोई नई बात उद्भावित किये बिना ही बार-बार दोहराना क्या पब्लिक का समय नष्ट करना नहीं है ? स्वामी जी तो स्पष्ट लिख रहे हैं कि—"कृषि विद्या से पृथ्वी आदि का संस्कार करो" परन्तु पण्डित जी कह रहे हैं कि—"पटेला पूजने को लिखा है" इसी प्रकार और मन्त्रों का अर्थ ज्ञात करके आपने समझ लिया होगा कि, वेद में मूर्ति पूजा, अवतार, नहीं है, "त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि" यह मन्त्र परमात्मा के विषय में नहीं किन्तु जीवात्मापरक है । नही तो क्या "जीर्णोदण्डेनवंचसि" से वंचकता भी करता है ? ऐसी बातें ईश्वर की स्तुतिपरक नहीं हो सकती । (समय समाप्त)

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

महीधर ने यजमान की स्त्री से घोड़े का·········कराया है। तो स्वामी दयानन्द ने स्त्री की योनि को मधु लगाया है। देखो संस्कार विधि—नोट करो, **"इमंतेउपस्थं मधुनां संसृजामि"** स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि में उस्तरे की पूजा बताई है। वह क्या मूर्ति पूजा नहीं है ? मैं तो बार-बार मन्त्रों के प्रमाण दे रहा हूं। क्या समाजी स्वामी दयानन्द की बातों को भी नहीं मानेंगे ?

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

सज्जनों ! महीधर की अश्लीलता को तो पण्डित जी मान गये, तभी तो उसका उत्तर नहीं दिया, संस्कार विधि का **"इमं ते·········"** आदि वचन तो आपको भी मान्य है। फिर आपने अपना अर्थ क्यों नहीं करके दिखाया ? यह तो गृहस्थ के सुख का वर्णन है उस्तरे की पूजा नहीं है। उस्तरे को धूप दीप नैवेद्य कोई नहीं चढ़ाता किन्तु उस्तरे की परीक्षा है। बालक के सिर को उस्तरा काट न दें इस कारण नाई को सूचित किया गया कि यह काटने वाला छुरा है ध्यानपूर्वक मुण्डन करना। उस्तरा किसी प्रकार विष्णु की दाढ़ नहीं किन्तु **"यज्ञो वै विष्णु"** इस शतपथ के वाक्य से उस्तरे को यज्ञ की दाढ़ से उपमा दी है। जैसे दाढ़ों का काम काटना उसी तरह उस्तरे का काम काटना, मैंने अपने ऊपर आये हुवे सब आक्षेपों का उत्तर दे दिया, किन्तु पण्डित जी वेदों से मूर्ति पूजा न सिद्ध कर स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों पर उतर आये हैं, और उनको भी असत्य रूप में पेश करते हैं, **"भूमेरजायत"** से तो आप साकार सिद्ध करते हैं, किन्तु वहां ही अथर्ववेद में **"आकाशादजायत"** जो लिखा है अर्थात् आकाश से प्रकट होता है। क्या आकाश निराकार से निराकार परमात्मा प्रकट होता है ?

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मैंने स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों से मूर्तिपूजा सिद्ध करके दिखा दी। **"अन्तः अजायमानः"** के आगे **"बहुधा विजायते"** है, जिसका अर्थ बहुत प्रकार से पैदा होता है। ऊखल और मूसल की पूजा संस्कार विधि में स्वामी जी ने बताई तथा **"भद्रकाल्यैनमः"** में भद्र काली के आगे रोटी का टुकडा धरना स्वामी जी ने लिखा है, भला भद्र-काली क्या वस्तु है ? हमारी मूर्ति तो न खाये ओर भद्र काली खा ले··· (समय पूरा किये बिना ही बैठ गये)

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

भद्रकाली, परमात्मा का नाम है। उसकी आज्ञा पालनार्थ बलिवैश्व किया जाता है। **"बहुधा विजायते"** का अर्थ माता-पिता के गर्भ से उत्पन्न होने का नहीं है। किन्तु अपने गुणों पर बहुत प्रकार से योगियों के हृदयों में और संसार में प्रकाशित हो रहा है। उलूखल-मूसल की पूजा संस्कारविधि में नहीं लिखी, आप व्यर्थ समय ले रहे हैं, ऐसे पिसे को पीसने से कोई लाभ नहीं। मैंने **"न तस्य प्रतिमास्ति"** तथा **"स पर्यगाच्छुक्रमकायम्······"** इत्यादि कितने ही वेद मन्त्रों द्वारा आप सब पर विदित कर दिया, परन्तु पण्डित जी सिवाय इधर-उधर की बातों के, वेद मन्त्रों से अपने पक्ष की पुष्टि नहीं कर सके।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

सभ्यवृन्द ! मेरी एक बात का भी उत्तर नही दिया, भद्रकाली का क्या अर्थ है बताओ ? स्वामी दयानन्द को व्याकरण नहीं आता था इसलिए वेदों के अर्थों को कैसे समझ सकते ? (पुनः वही पिष्टपेषण करके बैठ गये)

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री —

माननीय श्रोतागण ! क्या इसी प्रकार मूर्तिपूजा सिद्ध होती है ! जिस प्रकार पण्डित जी कर रहे हैं, न कोई प्रमाण है। "**मृच्छिला धातुदार्वादि**………" यह महानिर्वाणतन्त्र का वचन इसका खण्डन करने वाला है तथा "**न ह्यंमयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामया**" में आपके अवतार व्यासजी ने इस पुराण वचन में स्पष्ट मूर्तिपूजा का निषेध किया है। मूर्ति शब्द चारों वेदों से आप नहीं दिखला सकते।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

उस्तरे की पूजा संस्कार विधि में लिखी है। "**गर्भे अन्तत्वं स्त्रीत्वंपुमान्**……"इत्यादि मन्त्र अवतार सिद्ध करते हैं, ये तो ऊखल-मूसल को रोटी खिलाते हैं मूर्ति—ऊखल—मूसल से तो अच्छी है। स्वामी दयानन्द ने तो वेदों को कलंकित कर दिया, "**मैंने तो इसी कारण समाज को छोड़ दिया**" इनसे मेरी किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया गया। मैंने मूर्ति पूजा वेदों से सिद्ध कर दी (पूर्व कही गई बातों को दोहराकर समय पूरा करके बैठ गए)

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

भाईयों ! जो सारे संसार का बनाने वाला है, उसको भी बनाकर छः-छः पैसे में बेचते हैं। ऊखल-मूसल को रोटी खिलाना कहीं नहीं लिखा। किन्तु ऊलूखल-मूसल चलाने वाले को, खाने को देने से उलूखल-मूसल की पूजा नहीं हो सकती। हमने अब तक पण्डित जी के सारे पूर्व पक्ष का भले प्रकार खण्डन कर भली-भाँति सिद्ध कर दिया कि वेदों में मूर्ति पूजा नहीं है। यदि होती तो पण्डित जी ने उसे अब तक पेश क्यों नहीं किया ? जिन मन्त्रों के उत्तर मिल गये हैं उनको बार-बार कहना व्यर्थ समययापन करना है। स्वामी दयानन्द ने वेदों को कलंकित नहीं किया, बल्कि उनकी प्रतिष्ठा रखी। कलंकित किया है महीधर ने, देखो अध्याय २३ के मन्त्र ९ से लेकर…… समय समाप्त……।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न —

भाईयो ! हमारे बालमुकुन्द तो छःछः पैसे के बिकते हैं परन्तु तुम्हारा ओ३म् तो धेले-धेले ही में आता है। हमने सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि सबसे मूर्तिपूजा सिद्ध की जिसका उत्तर ही नहीं हुआ। उत्तर दिया भी कैसे जाये ? शास्त्रार्थ में पाण्डित्य का काम है, पण्डित जी ठीक प्रकार से संस्कृत भी नहीं बोल सकते, हमने दर्जनों मन्त्र उद्धृत किये, परन्तु वे छुए तक नहीं गये। (पुरानी बातों को दोहराकर समय पूरा कर बैठ गए)।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

सभ्यवृन्द ! आज का शास्त्रार्थ मेरे इस भाषण पर समाप्त होगा। पण्डित कविरत्न जी अपने पक्ष की सिद्धि में कहां तक सफल मनोरथ हुए इसका निर्णय करना आप लोगों का काम है। पण्डित जी सारी खींचातानी से भी किसी वेद मन्त्र से अवतार शब्द व मूर्तिपूजा व अमुक मन्त्र का देवता अवतार है, नहीं सिद्ध कर सके। और हमारा ओ३म् जो बिकता है सो चिन्ह मात्र के लिए, न कि पूजा व भोग के लिए। पण्डित जी को अपनी पण्डिताई का बड़ा घमण्ड है तो इस शास्त्रार्थ के पश्चात् एक दिन चाहें तो संस्कृत बोलने में, चाहे व्याकरण में शास्त्रार्थ कर लें। आप ही पण्डिताई ज्ञात हो जायेगी। मैंने आपकी प्रत्येक बात का उत्तर दे दिया है। और आप यही कहते

जाते हैं कि हमने जो मन्त्र पेश किये उन्हें छुआ तक नहीं। न मानने का तो कोई इलाज नहीं। शास्त्रार्थ के समाप्त करने का समय हो गया है इसलिए मैं अब यहीं पर अपना कथन समाप्त करता हूं।

नोट :—

शास्त्रार्थ समाप्त होने पर प्रधान जी उठकर चले गये, श्रोतागण भी जा रहे थे परन्तु इसी बीच न जाने क्या विचार कर सनातन धर्म सभा की ओर से श्री पण्डित कालूराम जी ने स्टेज पर व्याख्यान देना चाहा। जिस पर श्रीमान इन्सपैक्टर पुलिस महोदय ने रोक दिया कि यहां व्याख्यान देना ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि स्टेज दोनों पक्षों का है। इस पर कालूराम जी ने स्टेज से उतर कर नीचे मेज लगा कर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया। जब कहने पर भी न माने तो आर्य समाज की ओर से श्री ठा० इन्द्र वर्माजी ने भी नीचे दूसरी ओर व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया इस पर उपप्रधान जी ने, जो प्रधान के चले जाने पर सभा के नेतृत्व पद पर सुशोभित थे, दोनों को ही बन्द कर दिया।

निवेदक—
"लहाराम साहुनी"

[तृतीय दिवस २१ सितम्बर सन् १९१७ ई०]
(समय=२ बजकर ४० मिनट)

नोट—

आज ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट साहब नहीं आये अत: उपप्रधान जी ही प्रधान पद पर सुशोभित हुए, पण्डित अखिलानन्द जी के कहने पर आज भी शास्त्रार्थ का विषय "मूर्तिपूजा" ही रक्खा गया, २० ता० को भारी बरसात के कारण शास्त्रार्थ बन्द रहा, आर्य समाज की ओर से पण्डित रामाश्रय जी ने प्रथम बार निश्चित काल तक संस्कृत में बोलकर पश्चात् भाषा में कहा—

"प्रधान" आर्य समाज (महोबा)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री —

सज्जन वृन्द ! आपने परसों के शास्त्रार्थ में सुना होगा कि वेदों में ईश्वर की कोई आकृति नहीं बताई गई है। अत: ईश्वर की मूर्ति भी नहीं बन सकती **"स पर्यगाच्छुक्रं अकायम्"** व **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** व **"न तत्र चक्षुर्गच्छति"** व **"न चक्षुषा पश्यति"** इत्यादि कितने प्रमाण दे चुके हैं, पण्डित जी ने **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** को आरम्भ से अन्त तक नहीं छुआ, जिसमें स्पष्ट लिखा है **कि—"नहीं है उसकी प्रतिमा"** गणेश, विष्णु, शिव आदि

की प्रतिमा का तो कहीं जिक्र भी नहीं है। क्या इससे स्पष्ट नहीं कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं, और यदि है तो दिखलाओ ? कि कौन से वेद मन्त्र में है कि ईश्वर की मूर्ति कितनी लम्बी कितनी चौड़ी किस धातु की किस प्रकार की तथा मन्दिर का मुह किस ओर को होवे और उसमें किस प्रकार के फूल चढ़ावें ? आशा है कि पण्डित जी इधर-उधर की व्यर्थ बातों में परसों की तरह टालमटोल न कर मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

(निश्चित काल संस्कृत में बोलकर फिर भाषा में कहा)—मैंने परसों मूर्तिपूजा सिद्ध कर दी थी। और सुनिये—"**यातेरुद्र शिवातनूरघोरा**" इसमें तनू शब्द आया है जिसका अर्थ शरीर है। "**सवैभूमेर जायत्**" में परमात्मा को बताया है कि वह भूमि से उत्पन्न हुआ "**न तस्य प्रतिमा प्रस्ति**" में नकार सदृश अर्थ में है, अर्थात् जिसके सदृश कोई नहीं। भला जब उसका अर्थ स्पष्ट है, फिर क्यों यह कहा जाता है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं। परमात्मा की मूर्ति वेद-शास्त्र सब बताते हैं, अतएव हम सब वैदिक धर्मी सनातन धर्मानुयायी मूर्ति पूजन कर उसकी आराधना करते हैं।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

उपस्थित सभ्य महोदय गण ! आप देख रहे हैं कि किस प्रकार वाक्छल द्वारा काम लिया जा रहा है ? जिस "**न तस्य प्रतिमा अस्ति**" में "न" का अर्थ सनातनधर्म के आचार्य महीधर-उव्वट "**नहीं**" के करते हैं,और सनातन धर्म के महोपदेशक श्रीमान पण्डित ज्वालाप्रसाद जी भी "**नहीं**" के करते हैं, (तीनों भाष्य पढ़े गये) तो नही मालूम पण्डित अखिलानन्द जी क्यों भिन्न अर्थ करने का दुस्साहस करते हैं ? पण्डित जी स्वामी दयानन्द पर तो अर्थ बदलने का आक्षेप करते हैं, जो कि सर्वथा मिथ्या है, स्वामी जी ने शतपथ, निरुक्त आदि प्राचीन ऋषि प्रोक्त ग्रन्थों के आधार पर अर्थ किये हैं, परन्तु आप अपने आचार्यों के विरुद्ध बिना किसी ऋषि प्रोक्त ग्रन्थ के आधार के अनर्थ करके क्यों वेदों को कलंकित करते हैं? फिर "**स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम्** ·····" के "अकायम्" का तो वैसा ही प्रश्न रहा "**स वै भूमेरजायत्**" के लिए जब हमने कह दिया है कि भूमि से उत्पन्न होता है। यह कभी ठीक नहीं हो सकता किन्तु वेद विरुद्ध है।

"**नत्वा वां अन्योदिव्योनपार्थिवो न जातो न जनिष्यते**" इसमें "**न पार्थिवः**" शब्द स्पष्ट आया है। पृथ्वी से जो उत्पन्न होगा वह पार्थिव कहलायेगा फिर न पार्थिव परमात्मा का भूमि से उत्पन्न होना कैसे ठीक हो सकता है ? यदि भूमि से उत्पन्न होता है तो भूमि किससे उत्पन्न हुई ? आप मूर्ति के आकार प्रकार व मन्दिर का मुंह किधर को होना चाहिये ? इस विषय में क्यों नहीं वेद मन्त्र पेश करते ?

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

उपस्थित सज्जनगण! "**सपर्य्यगाच्छुक्रम्**" मन्त्र को आधा पढ़ते हैं, यदि पूरा पढ़ें तो कलई खुल जाये, उसमें "**अव्रणम्**" और "**अस्नाविरम्**" शब्द भी तो पड़े हैं जिसके अर्थ व्रणरहित और नस नाड़ी रहित कहने की क्या आवश्यकता थी ? जिस प्रकार अनोदरा कन्या कहने से अल्प उदर वाली कन्या का ग्रहण होता है, इसी प्रकार यहां भी अल्पकाय वाला ईश्वर जानो। जब स्वामी दयानन्द ने चन्द्रमा को अर्घ्य देना लिखा है तो हमारे सूर्य को अर्घ्य देना क्यों नहीं पहुंचता ?

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

उपस्थित सभ्य महोदयो ! पण्डित जी स्वामीजी के लिए अर्थ परिवर्तन का आक्षेप करते हैं, परन्तु इस समय कर आप रहे हैं। अपने आचार्यों के विरुद्ध भला जब **"अकायम् न विद्यतेकायः शरीरम्यस्य"** यह अर्थ उव्वट महाशय करते हैं, अर्थात् जिसके शरीर नहीं है, अब आपके पुनरुक्ति (क्या आवश्यकता थी) का समाधान **"पुनरुक्ता-न्यभ्यासे भूयांसमर्थम् मन्यन्त इत्यदोषा"** इस उव्वट वाक्य से समाधान होता है। और महीधर महाशय **"अकायोऽ-शरीरः लिंग शरीर प्रतिषेधः"** इस वाक्य में स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि—स्थूल सूक्ष्म शरीर से रहित है। भला अकाय का जब शरीर रहित अर्थ आपके दोनों आचार्य करते हैं, फिर अनोदरा कन्या का उदाहरण देकर अल्पकाय **अर्थ** करना कहां तक संगत हो सकता है ? पुनरुक्ति तो **"अभ्यासेभूयान्समर्थम् मन्यन्ते"** इतियास्कोक्ति से अत्यन्ता-भाव की द्योतक है। स्वयंभू का अर्थ तुम्हारे आचार्यों तक ने स्वयं पैदा होता है नहीं किया। उव्वट महाशय तो **"क्लेश कर्म विपाकाशयैः"** से स्पष्ट उत्पन्न होने का निषेध करते हैं, और स्वयं ज्ञानबलादि **ब्रह्मरूपेणभविता** इस वाक्यांश को आत्मोपासी के लिए लिखते हैं, ऐसा ही महीधराचार्य भी उपासक के पक्ष में लगाते हैं, फिर **खींचातानी कैसी ?**

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

प्यारे धर्म प्रेमी भाइयो ! हमने कहा था कि मन्त्र में पुनरुक्तिदोष आ जायेगा। इसका कोई यथार्थ उत्तर नहीं दिया। अनोदरा कन्या से जब स्पष्ट अल्पोदरा कन्या अभिप्राय लिया जाता है। **"प्रजापतिश्चरतिगर्भे"** में स्पष्ट चरति-गच्छति (जाता है) अर्थ आया है फिर क्यों उसको छुआ तक नहीं ? **"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** इसका हमने "उसके सदृश प्रतिमा नहीं है" अर्थ किया था जिससे भी हमारा पक्ष सिद्ध है।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

हमारे **"अकायम्"—"न तस्य प्रतिमा अस्ति"** का जैसा अर्थ महीधरादि आचार्य्यों से विरुद्ध अर्थ करके उत्तर दिया है, इसको कोई विद्वान सनातन धर्मी मानने के लिए तैयार नहीं। **"प्रजापतिश्चरति"** में चरति का **"प्राप्नोति"** अर्थ जब स्पष्ट है, **"न जातो न जनिष्यते"** में न पैदा हुआ न पैदा होगा में स्पष्ट अर्थ है, चन्द्रमा के जल निक्षेप से सोमगुणयुक्त ब्रह्मचारी से अभिप्राय है, न कि इसकी पूजा परमात्मा दिव्योह्यमूर्तः है।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

"भूमेरजायत" का उत्तर नहीं दिया, महाभाष्य को बने ७००० वर्ष हो गये जिसमें जीविकार्थे चापरामे में स्पष्ट शिवा स्कन्द विशाख इति शब्द में स्पष्ट शिवादि की मूर्ति प्रतीत होती है। **"स एव जातः सः जनिष्यमाणः"** से स्पष्ट हुआ है कि—वही उत्पन्न हुआ और वही उत्पन्न होगा। **"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतस्यात् चक्षु"** और **"पात"** शब्द से साकार परमात्मा सिद्ध है। स्वामी दयानन्द आर्याभिविनय में लिखते हैं कि हे ईश्वर तुम सोमरस को पीओ। जब ईश्वर साकार नहीं तो सोमरस कैसे पीता है ? जब आर्य्यों का ईश्वर सोमरस पीता है तो **"साकार"** सिद्ध है। **"याते रुद्र शिवा तनू"** में शब्द शरीर वाचक पड़ा है। उसका उत्तर नहीं दे सके, मेरे सबके सब प्रश्न वैसे के वैसे ही पड़े हुए हैं।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

मूर्ति किस आकार-प्रकार की कितनी लम्बी-चौड़ी तथा किस धातु की ? इस प्रश्न का उत्तर अभी तक कुछ नहीं दिया गया "**जीविकार्थे चापराये**" में मूर्ति पूजा शिव-स्कंन्दादि की मानना अशुद्ध है। क्योंकि—"**मौर्य्यै-हिरण्यार्थिभीरर्चा प्रकल्पिता**" में हरिण्यार्थी मौर्य्यों के द्वारा अर्चा प्रकल्पित हुई है। स्पष्ट है "**याते रुद्र शिवातनू**" में तनू से साकार परमात्मा सिद्ध करना भी कथन मात्र है। कल्याण स्वरूप कहने से साकार परमात्मा सिद्ध नहीं हो सकता। जैसे चेतन स्वरूप कहने से साकार नहीं होता। "**स एव जातः**" आदि का अर्थ है कि वह योगियों के हृदय में पूर्व भी प्रादुर्भूत हुआ और आगे भी होगा। पैदा होने वाला अजन्मा परमात्मा के लिए ठीक नहीं "**वायवायाहि**" में पाहि शब्द का पालन कर स्पष्ट अर्थ स्वामी जी ने ऋग्वेद भाष्य में किया है। आर्याभिविनय में पालन का "ल" छूट कर पान रह जाने से पीना अर्थ करना, पण्डित जी का वाक्छल मात्र है। यह छापे की अशुद्धि है। पाहि का पिव अर्थ कभी नहीं होता। यदि व्याकरण का अभिमान है तो पण्डित जी करके दिखलावें "**विश्वतश्चक्षुरुत**"से चारों ओर देखने की शक्ति निराकार परमात्मा में सम्भावित है। मन्दिरों में तो एक ही ओर खड़े हैं। "**न ह्यंमयानितीर्थानि न देवामृच्छिलामया**" देवता मिट्टी-पत्थर के नहीं होते, जिसका अर्थ ऐसा ही पण्डित ज्वालाप्रसाद जी सनातन धर्मी ने किया है (टीका पढ़ी गई) "**अरुपवत्वमिति**" वेदान्त सूत्र में परमात्मा के रूप का स्पष्ट निषेध है।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मैंने सोमरस पीना आर्याभिविनय से दिखलाया। लीजिये आकार के बारे में भी दिखाते हैं। "**प्रादेशमात्रं महावीरं करोति**" ऐसा वेद में लिखा है जिसमें प्रादेश मात्र महावीर की मूर्ति बनाना लिखा है "**जीविकार्थे चापराये**" का उत्तर नहीं दिया। "**सर्वभूमेरजायत्**" का यह अर्थ कैसे निकल आया कि पृथ्वी आदि को देखकर उसका ज्ञान होता है। वास्तव में वह भूमि से पैदा हुआ यही अर्थ ठीक है। वेदों को छोड़कर भागवत् का प्रमाण देना वेदों के हल्ला मचाने वाले आर्य समाज के लिए उपयुक्त नहीं। "**सहस्त्रशीर्षा**" से भी साकारता और मूर्ति पूजा सिद्ध है। आर्याभिविनय के इतने एडिशन निकल गये सुधारा क्यों नहीं ? जब ईश्वर सर्व शक्तिमान है तो अवतार क्यों नहीं ले सकता ?

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

"**प्रादेशमात्रं महावीरं करोति मखायत्वामखस्यत्वा**" में यज्ञ के पात्र महावीर का वर्णन है। क्योंकि यदि मूर्ति होती तो ऐसा क्यों लिखा होता कि यदि लड़की का हो तो जल जाये, सोने का हो तो पिघल जाये, लोहे का हो तो चू जाये, धृत छोड़े जाने साधन रूप कपाल का नाम "**महावीर**" है। क्योंकि उसमें "**कपाले**" शब्द पड़ा है। जो अग्नि के समीप रहने से मृतिका का बनाया जाता है। "**न तस्य प्रतिमा अस्ति**" में स्पष्ट प्रतिमा का निषेध कर रहा है। "**अकाय**" शब्द के रहते हुए साकार सिद्ध करना खपुष्पवत् है। पाहि का पिव अर्थ आप किसी व्याकरण से नहीं सिद्ध कर सकते। ऋग्वेद भाष्य में पाहि का पालन अर्थ होने से, आर्याभिविनय में छापे की अशुद्धि से पालन का पान हो जाना ग्राह्य नहीं। भागवत् में "**यस्यात्म बुद्धि··· ·····**" इस श्लोक में मूर्ति पूजक को जब "**गोखर**" (बैलों का चारा ढोने वाला) बतलाया है तब आप कैसे मूर्ति पूजा सिद्ध करने का साहस कर सकते हैं ?

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

हमने **"सहस्त्रशीर्षा"** आदि से ईश्वर का साकार होना तथा मूर्ति पूजा सिद्ध की। वेद में निराकार शब्द कभी नहीं दिखला सकते। किसी भी मन्त्र का देवता निराकार नहीं। फिर निराकार की उपासना कैसी ? दयानन्द की गन्दी हिन्दी मैं नहीं मानता। **"जीविकार्थे चापराये"** का जवाब नहीं दिया, वेद में राम कृष्ण आदि ऋषि आये हैं जिनसे राम-कृष्ण आदि अवतार सिद्ध हैं।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

"सहस्त्रशीर्षा" से साकार ईश्वर सिद्ध करने से ईश्वर काणा-लंगड़ा होता है, अतः हमारा पूर्व का ही अर्थ ठीक है। हम वेदानुकूल अन्य ग्रन्थ प्रमाण कोटि में मानते हैं, वेद में निराकार का पर्य्याय वाची "अकाय" शब्द पड़ा है। मूर्ति के आकार प्रकार, मन्दिर के विषय में भी चुप रहे। **"न तस्य प्रतिमा"—"सपर्य्यगात्"—"न जातो न चनिष्यमाणः"—"अन्तर अजायमानः"** भागवत् भी मूर्ति पूजा करने वाले को **"गोखरः"** गौओं का चारा ढोने वाला गधा—(अमर स्वामी द्वारा भाष्य) बतलाती है।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

हमारे एकप्रश्न का उत्तर भी नहीं बन पड़ा। संस्कार विधि में उस्तरे की पूजा, उलूखल-मूसल आदि सभी बातें हमारे पक्ष को सिद्ध कर रही हैं। भागवत् को वेदाभिमानी आर्य समाज का प्रमाण में देना अयथार्थ है। भागवत् पर श्रीधरी टीका देखो। स्वामी दयानन्द ने मन्त्रों के अर्थ अशुद्ध किये हैं।

श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री—

मेरे प्रश्नों में से जिनका जैसा उत्तर दिया है, आप लोगों को विदित है। और नवीन प्रश्न न कर उन्हीं का उत्तर मांगता हूं। (प्रश्न दोहरा दिये)।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मैंने मूर्ति पूजा वेदों में से बतलाई, अवतार भी बतलाया, उसका उत्पन्न होना भी बतलाया। **"छन्दांसि सर्वे विकल्पन्ते"** से पा को पाहि हो जाता है, **"स एव जातः सजनिष्यमाणः"** से अवतार सिद्ध है। **"महावीरं करोति"** से महावीर की मूर्ति बनाना वेद में लिखा है, **"सहस्त्रशीर्षा"** से आंख-मुख-पैर, सिद्ध हैं, **"गर्भे चरति"** से अवतार सिद्ध है। सोम के अर्थ ब्रह्मचारी के दिखाओ, महीधर के अर्थों को क्यों मानते हो ? निरुक्त में पाहि का अर्थ पिव लिखा है। जैनियों ने मूर्ति पूजा चलाई—यह स्वामी दयानन्द का लिखना गलत है। मूर्ति पूजा की विधि महाभाष्य में है। इस प्रकार यह आज मूर्ति पूजा विषयक शास्त्रार्थ समाप्त होता है।

□

इकहत्तरवां शास्त्रार्थ—

स्थान : महोबा, जिला हमीरपुर (उ०प्र०)

दिनाङ्क : २२ सितम्बर सन् १९१७ ई०, (सायंकाल ६ बजे)
(चतुर्थ दिवस)।

विषय : क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित शिव शर्मा जी
सहायक : (१) श्री पण्डित ठाकुर इन्द्र वर्मा जी
(२) श्री पण्डित पूर्णानन्द जी

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित छज्जूदत्त जी
सहायक : (१) श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री,
(२) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्रीमान मिस्टर डार्विन महोदय
(ज्वाईन्ट मजिस्ट्रेट)

शास्त्रार्थ के उपप्रधान : राय बहादुर पण्डित शिवचरण लाल त्रिपाठी
आर्य समाज के प्रधान : लद्धाराम साहनी
सनातन धर्म सभा के प्रधान : श्री राम गुलाम शुक्ल

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।

"संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्रीमान ज्वाईन्ट मजिस्ट्रेट के आने पर सायं ६ बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, जिसमें सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित छज्जूदत्त जी तथा आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित शिव शर्मा जी शास्त्रार्थ कर्त्ता नियुक्त हुए, जिसमें शास्त्रार्थ का पूर्व पक्ष श्री पण्डित छज्जूदत्त जी ने इस प्रकार स्थापन किया—

"प्रधान"—आर्य समाज (महोबा)

नोट—

मूल कापी में हर वक्ता की बारी में प्रथम ही छपा था कि—"**संस्कृत बोलकर फिर भाषा में कहा**" हमने यह लाईन निकाल दी है।

"**संग्रहकर्त्ता**"

श्री पण्डित छज्जूदत्त जी—

सनातन धर्मी लोग मृत पितरों के लिए पिण्ड-दानादि वैदिक कर्म मानते हैं, हमारे पितर तीसरे आकाश में रहते हैं, जैसा कि—"**उदन्वति द्यौरवमापीलूमतीति मध्यमा तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्या पितर आसते**" इस अथर्ववेद के मन्त्र में तीसरे आकाश में पितरों का रहना बताया है। मनुस्मृति में पिण्डदान का विधान है। सूक्ष्म शरीरधारी पितर पिण्ड के वाष्प को सूंघते हैं और भोजन को देखकर तृप्त हो जाते हैं।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

सज्जन गण ! हमारे पण्डित जी बताते हैं कि हम पिण्डदान मरों के निमित्त करते हैं, परन्तु मरना तो तभी कहाता है, जिस समय वह एक बूंद भी पानी की न निगल सके, फिर मरा हुआ मनुष्य व पितर किस प्रकार कच्चे जौ के पिण्ड और खीर-पूरी आदि खा सकता है ? यदि मर कर माता-पिता के जीव पितर बनकर किसी देश-विदेश में रहते हैं, तो सनातन धर्म का वह आवागमन का सिद्धान्त कहां रहता है जो श्री कृष्ण भगवान ने गीता में—"**वासांसिजीर्णानि**······" आदि में लिखा है। कच्चे जौ के पिण्ड में भाप कैसी ? मनुस्मृति का पिण्ड प्रकरण हमारे लिए मान्य नहीं हो सकता कारण कि उसमें सूअर, बकरा, मछली और गैंडे आदि मांस के पिण्डों का विधान है। जिसको सनातनी भी करने को तैय्यार नहीं। इस अथर्ववेद के मन्त्र में पितर से आशय ऋतु से है न कि मुरदों से !

श्री पण्डित छज्जूदत्त जी—

श्राद्ध शब्द मृतकों के लिए ही है जीतों के लिए नहीं, देखो—"**ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा**" में अग्नि में जले पितरों का और "**उदीरितामवरः उत्परा सः**" इत्यादि में छोटे-बड़े पितरों का जिक्र है "**ये समाना समनसः पितरो यमराज्ये**" इसमें यमलोक में पितरों को बताया है। पितरों के शरीर वायु के होते हैं, सूक्ष्म होने से दिखाई

नहीं देते। वाष्प निकलते हुए पिण्डों की भाप इलैक्ट्रीसिटी द्वारा एटमास्फियर में प्राप्त होकर ईथर द्वारा पितरों को मिलती है। ब्राह्मणों का जिमाना पितृ श्राद्ध नहीं, पिण्डदान ही पितृ यज्ञ है। **"ये निखाता, ये परोक्ता"** में गड़े और फेंके हुए पितरों का श्राद्ध है। पितरों को अग्नि द्वारा और पिण्ड द्वारा दोनों प्रकार से पहुंचता है। अच्छे कर्म करने से पितर बनते हैं। संस्कार विधि में मुरदों का श्राद्ध लिखा है।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

हमारे पण्डित जी कहते हैं कि श्राद्ध जीवित पुरुषों का नहीं होता, केवल मृतकों का ही हो सकता है। यह बात वेद के विरुद्ध है। वेद में जीवितों का ही श्राद्ध लिखा है। खाना, पीना, चलना, फिरना, बातचीत करना और रक्षा करना आदि जीवित ही कर सकते हैं, मृतक नहीं। देखिये यजुर्वेद में—**"ये समानाः समनसो जीवा जीवेष-मामका"** यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ४६, इसमें **"जीवाः"** विशेषण पितरों का है। इससे सिद्ध है कि वेद जीवित पुरुषों का ही श्राद्ध बताता है। **"आधत्तगर्भं पितरः कुमार"** में भी सिद्ध है कि जीवित पुरुष ही गर्भाधानादि क्रिया कर सकते हैं, वेद में **"तेऽवन्तु"** तथा **"तेऽधिब्रुवन्तु"** इत्यादि में भी रक्षा करना और बातचीत करना जीवित में ही संघटित हो सकता है। **"उत्परास उन्मध्यमा"** का आशय पिता, पितामह और प्रपितामह से है। **"ये निखाता ......"** का आशय केवल शरीरों से है जो कि गाड़े या जलाये जाते हैं। जीव गाड़े या जलाये नहीं जाते। किसी के चार लड़के हैं, यदि एक ही तिथि को, इग्लैण्ड, भारत, अमेरिका, जापान में रहकर एक ही समय श्राद्ध करें तो पितर कहां-कहां खाने जायेंगे ?

श्री पण्डित छज्जूदत्त जी—

पण्डित जी ने **"जीवाजीवेषु"** में बताया है कि जीवितों का श्राद्ध करना चाहिए परन्तु "जीव" का अर्थ "जीवधारी" व "प्राणधारी" कैसे हो गया ? जीव का अर्थ आत्मा है अर्थात् प्राणधारी के नहीं है। पण्डित जी जीव का अर्थ जीवधारी कभी नहीं दिखा सकते, अन्यथा इसी पर हार-जीत रही। **"उदन्वती द्यौरवमा"** का उत्तर समाज तीन काल में भी नहीं दे सकता। गीता का मन्त्र भी—**"लुप्तपिण्डोदकक्रिया"** से मृतक श्राद्ध बताया है। कौन ऐसा समाजी है जो अपने बाप से कहता हो कि तुम गर्भाधान करो ? पितर यमलोक को जाते हैं, यम उनका राजा है। हमारी प्रार्थना पर श्राद्ध में आते हैं। पितर तीसरे आकाश में रहते हैं, **"आयन्तुनः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ता पथिभिर्देवयानैः......"** से जो अग्नि में जल गए उनका आह्वान करना लिखा है।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

सज्जन गण ! पण्डित जी कहते हैं कि—**"जीवाजीवेषु"** में जीव का अर्थ जीवधारी या प्राणी कहो ५८ दिखाओ। लीजिये यह सायणभाष्य है इसमें जीव का अर्थ **"जीवेदभ्यः"** किया है। यदि सायण ने ऐसा नहीं किया तो समझ लिया जावे कि आर्य समाज हार गया.........चारों तरफ एकदम सन्नाटे का आलम........ हां ! हां !! अगर सायण ऐसा नहीं मानते तो आर्य समाज हार गया........देखो ! जब सायणाचार्य ऐसा अर्थ करते हैं तो जीवितों का ग्रहण क्यों न किया जावे ? **"उदन्वती द्यौरवमा"** का उत्तर दे दिया। गीता का आशय है कि—अन्न-जल देने वाले नहीं रहते। आपने कहा गीता में मन्त्र होते हैं, पण्डित जी महाराज ! मन्त्र नहीं श्लोक होते हैं, यह

दिखाइये गीता है इसमें मन्त्र दिखाइये ? (गीता दी गई) सभापति स्वयं बता दें कि सायण का अर्थ **"जीवेदम्य"** है या नहीं ? (सभापति के सामने सायण भाष्य रक्खा गया) श्री कृष्ण का वाक्य दिखाइये कि क्या गीता में मन्त्र हैं ?

श्री पण्डित छज्जूदत्त जी—

"गीता हाथ में लेकर"—देखिये गीता में **"गीतामाला मन्त्रस्य"** लिखा है। यजुः का मन्त्र ! और दिखाते हो सायण भाष्य !! जाल बनाते हो !!! सायण ने यजुः का भाष्य किया ही नहीं, मन्त्र और है, अर्थ कुछ और है, बस ! आर्य समाज हार गया। बोलो सनातन धर्म की जय······चारों तरफ सनातनियों द्वारा शोर मचाना······।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

गर्ज कर······सज्जनों ! पण्डित जी पब्लिक को धोखा दिया चाहते हैं। **"गीता माला मन्त्रस्य"** गीता का वचन नहीं किसी महात्म्य बनाने वाले का कौल (कथन) है। ······चारों तरफ सन्नाटा······गीता का आरम्भ यहां से होता है जिसे एक बच्चा भी जानता है जिसने गीता को देखा होगा, **"धर्म क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः···"** गीता महाभारत से निकली है। वहां पर यह वाक्य नहीं, गीता में श्लोक हैं, परन्तु जो पण्डित जी ने बोला है वह श्लोक भी नहीं है। मैंने कहा था कृष्ण वाक्य दिखाओ, आप दिखाते हैं महात्म्य बनाने वाले का वाक्य ! जीव का अर्थ जीवधारी सायण करते हैं चाहे यजुः में हो चाहे अथर्व में, आपने तो कहा था कि—**"होता ही नहीं"** पण्डित जी महाराज ! चोरी की अफीम चाहे किसी मकान में हो वह अपराधी अवश्य है। विचार जीव के अर्थ पर है। न कि मन्त्र पर ! हमने जीव का अर्थ सायण कृत जीवधारी बता दिया, पुस्तक भी सभापति महोदय ने देख ली, इससे सिद्ध है कि श्राद्ध जीवितों का है न कि मुर्दों का।

नोट—

इस पर सनातनी पण्डित छज्जूदत्त (इनको छज्जूराम व छज्जूदत्त दोनों ही नामों से पुकारा जाता था) जी ने हल्ला मचाया कि ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट ने फैसला दे दिया कि—**"सनातनी जीत गये"**। सभापति महोदय ने यह बात सुनते ही तुरन्त उठकर कहा—

श्री सभापति महोदय—

सज्जनो ! हमने ऐसा कोई फैसला नहीं दिया। दोनों तरफ़ की बात आपने सुन ली, आप अपने दिलों में फैसला कर लें, हम कुछ नहीं कहते। ··· सारे सनातनी महालज्जित हुए···। इस प्रकार ये आज का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ जिसका बहुत ही अच्छा प्रभाव रहा।

[पांचवां दिन तारीख २३ सितम्बर सन् १९१७ ई०]

आज २३ तारीख के प्रातः ही तहसील में उभय पक्ष के प्रतिनिधि उपस्थित थे, सनातन धर्मियों ने ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट साहब से कहा कि हुजूर ! आपकी उपस्थिति में ही हम शास्त्रार्थ करेंगे, नहीं तो हम नहीं करेंगे। झगड़ा होने का भय है। इस पर ज्वाईन्ट मजिस्ट्रेट साहब ने, जो दौरा पर जाने वाले थे, कहा—चलो आज के रोज हम

और रह जायेंगे। परन्तु शास्त्रार्थ का विषय आज ही समाप्त हो जाना चाहिये। यदि और कुछ करना भी हो तो हमारे आने पर किया जावे।

सनातन धर्म समिति ने किसी कारण से आज पण्डित छज्जूराम (दत्त) जी को श्री पण्डित शिव शर्मा जी के सामने खड़ा नहीं किया, उनकी जगह पर खड़े किये गये **"श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न"** कदाचित् यह कारण हो कि······२२ तारीख (कल) को श्री पण्डित छज्जूराम जी ने संस्कृत बोलना छोड़ दिया था या और कोई कारण हो जिसको सनातनधर्म समिति ही जानती होगी। आज भी ज्वाईन्ट मजिस्ट्रेट बहादुर के सभापतित्व में शास्त्रार्थ पूरे एक घण्टा बीस मिनट हुआ, कल २२ तारीख को सनातन धर्म सभा की ओर से पूर्व पक्ष था, आज आर्य समाज की ओर से पूर्व पक्ष नियत था। इस पर उभय पक्ष की ओर से आपत्ति की गई, परन्तु न्यायशील मजिस्ट्रेट बहादुर ने उत्तर दिया कि—जैसा पूर्व निश्चित है वैसा ही हो। तथा दो दिन मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ था, उसमें भी एक-एक दिन दोनों पक्षों को पूर्व पक्ष स्थापन का अधिकार था, इसी प्रकार दो दिन मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ हो रहा है। इसमें भी इसी प्रकार नियम होना चाहिये, कल सनातन धर्म द्वारा पूर्व पक्ष स्थापन किया गया था, आर्य समाज ही आज के शास्त्रार्थ में पूर्व पक्ष का स्थापन करेगी तथा शास्त्रार्थ **"मृतक श्राद्ध"** पर ही होगा। मजबूरन सभी को उनका आदेश मानना पड़ा, जिसमें मृतक श्राद्ध विषय पर आर्य समाज की ओर से पूर्व पक्ष रखते हुए **"श्री पण्डित शिव शर्मा जी"** ने शास्त्रार्थ को इस प्रकार आरम्भ किया।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

(गत दिवस पण्डित छज्जूदत्तजी के संस्कृतभाषण कोछोड़ भाषा में ही बोलने के कारण शास्त्रार्थ भाषा ही में होने लगा था) भद्र पुरुषों ! कल मैंने बताया था कि वेद भगवान जीवित पुरुषों का ही श्राद्ध बताते हैं, उसके प्रमाण में **"ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामका·········"** यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ४६ पेश किया था। जिसमें बताया गया है कि—**"जीवित पुरुषों में जो जीवते हैं"**······इस पर बीच में ही अखिलानन्द जी बोले—

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

इस **"जीव"** शब्द के अर्थ **"जीवते पुरुष"** नहीं है, ऐसे अर्थ किसी ने नहीं किये।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

मैं आपको बताता हूं कि -जितने भाष्यकार हैं उन सभी ने **"जीव"** के अर्थ जीवित ही किये हैं, सुनिये—अथर्व १८-४-५७ में ये शब्द हैं **"ये जीवा ये च मृता······"** इसपर पृष्ठ ५४४ पर सायणाचार्य ने **"जीवा"** का अर्थ **"जीवनवन्तः"** अर्थात् जीवित पुरुष किया है। **"अस्मिन् लोके"** का अर्थ अथर्व ६-१२-११७ में **"इहैवसन्तः"** सायणाचार्य ने किया है। पण्डित ज्वाला प्रसाद जी विद्यावारिधि (मुरादाबादी) **"जीवेषु"** का अर्थ **"प्राणियों के मध्य में"** करते हैं, देखो ! यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ ८३२, उव्वट महाराज ने **"जीव"** का अर्थ **"जीवनवन्तः"** किया है। महीधर जी **"प्राणिषु"** करते हैं। हमने उस ही मन्त्र के **"जीव"** के अर्थ **"जीवित"** तीन भाष्यकारों के दिखा दिये। क्या अब भी यही कहोगे कि श्राद्ध मुरदों का होता है ? मनु महाराज भी जीवितों को ही पितर बताते हैं। देखो—**"वसून् वदन्ति वै पितॄन्"** ३-२८४ अध्याय **"यामास पितॄन्-शिशुराङ्गिरसो कविः"** २-१५१॥ **"वेद प्रदानादाचार्यं पितरं**

परिचक्ष्यते" महाभारत में भी लिखा है कि—"**न कर्मणाः पितु पुत्रः पिता वा पुत्र कर्मणा। मार्गेणानेन गच्छन्तिबद्धाः सुकृतदुष्कृतैः**" (महाभारत शान्तिपर्वान्तिर्गत मोक्षपर्व, भारद्वाज संवाद अ० १८६)।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मैं वेद विरुद्ध मनुस्मृति को नहीं मान सकता न महाभारत के गपोडे मानता हूं। इस यजुर्वेद १६-४६ के मन्त्र में यमराज के लोक का जिकर है इस लोक का नहीं। शास्त्र में "**सन्तान कामाय पिण्डकर्मणे**" लिखा है। स्वामी दयानन्द ने दक्षिण की ओर को मुख करके अञ्जुली भरकर जल डालकर "**पितरः शुन्धध्वम्**" कहना लिखा है। क्या यह मृतक श्राद्ध नहीं है? और जीव में भी तो प्राण रहते हैं······जनता में हंसी··· स्वामी दयानन्द की गन्दी हिन्दी में नहीं मानता "**ये निखाता**······" में मरों का जिकर है। "**ये अग्निदग्धाः**" में भी मरों को घी की आहुति देना लिखा है।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

सज्जन गण! पण्डित जी मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर अपने प्रश्न करते हैं यह कहां का न्याय है? मैं पूछता हूं कि आपका श्राद्ध नैतिक है वा नैमित्तिक? नैमित्तिक तो आप कह नहीं सकते, क्योंकि मनु महाराज इसे पञ्चमहायज्ञ में नित्य प्रति करना बताते हैं, सो यदि नित्य मानोगे तो जिनके पिता व पितामह आदि जीवित हों तो वे श्राद्ध कैसे करेंगे? उनके तो चार ही यज्ञ रहेंगे? पितृ शब्द जीवात्मा के लिए है या शरीर के लिए? अथवा जीव सहित शरीर के लिए? जीव तो हलुआ-खीर खा नहीं सकता, "**नैव स्त्री न पुमाने च न चै वायं नपुंसकः, यद्यच्छरीर माधत्ते तेनतेन स युज्यते**" के अनुसार केवल जीव-माता-पिता आदि संज्ञा वाला हो नहीं सकता। केवल शरीर जड होने से खा ही नहीं सकते। जीव विशिष्ठ शरीर होने पर वे शरीरी दीखते क्यों नहीं? यह प्रत्यक्ष से विरुद्ध है, मन्त्र १६-४६ में यमराज के लोक का नाम तक नहीं, वहां तो, "**अस्मिन् लोके**" है जिसके अर्थ सब ही ने "**इहैवसन्तः**" अर्थात् इस ही लोक के रहने वाले या विद्यमान के किये है। यदि यमलोक का जिकर है तो दिखाइये? स्वामी दयानन्द की संस्कार विधि का उत्तर बहुत बढ़िया है। अपने प्रश्नों के उत्तर मिलने पर समझा दूंगा। आज हम वादी हैं प्रश्न कर सकते हैं।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

वेदों को छोड़कर मनु और महाभारत का सहारा लेते हो। कल को कुरान का सहारा लोगे। मेरे सामने संस्कृत कौन बोल सकता है? महीधर के थोड़े अर्थ क्यों पढ़ते हो? सब क्यों नहीं पढ़ते, वहां लिखा है कि—"**मध्यमं पिण्डयन्ति अश्नोमातृ**" अर्थात् बीच के पिण्ड को स्त्री खावे। "**उदन्वती द्यौरवमा**" का उत्तर क्यों नहीं देते? जिसमें लिखा है कि तीसरे आकाश में पितर रहते हैं। स्वामी दयानन्द ने—"**ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्**"—"**मारीच्यादय ऋषयस्तुप्यन्ताम्**" लिखा है। क्या इससे मृतक श्राद्ध सिद्ध नहीं है? बताओ कौन से तुम्हारे जीते ब्रह्मा और मरीची ऋषि हैं जिनको तृप्त करते हो? इन सबका उत्तर दो? दोगे भी कहां से! उत्तर तुम्हारे पास है ही नहीं। सज्जनो! समाजी लोग कहते हैं कि मैं पिता का पैसा छीन लूं। तभी तो कहते हैं कि पिता की दौलत हमको मिल जावे। वाह् रे! जीवों के श्राद्ध!! जीतों की तो सेवा होती है परन्तु श्राद्ध मरों का होता है। उत्तर इन सबका दो।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

जिन-जिन पुराण आदि को आप मानते हैं, उन-उन सबका प्रमाण आपको मानना होगा। मनु के हत्या-काण्ड को देखकर आप उनसे बचते हैं। जिसमें गैण्डे, सूअर, कछुए आदि के मांस से पितरों की बहुत-बहुत दिनों तक तृप्ति बताई है। आश्वलायन के गद्ये के--लि०······की आचमनी भला सनातन धर्मी होते हुए आप कैसे अस्वीकृत कर सकते हैं ? यह कच्चे मांसों के पिण्ड जो तुम्हारे धर्म शास्त्र पितरों को प्रदान करने के लिए बता रहे हैं, उनके द्वारा क्यों नहीं पितरों की तृप्ति करते ?

"उदन्वती द्यौरवमा" में **"तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितरआसते"** अध्याय १८-२-४८ में आये हुए का आशय यह है कि पितर कहते हैं ऋतु को। देखो शतपथ काण्ड—२ **"ऋतवः वै पितरः"**—**"न मोवः पितरोघोशय नमोवः पितरोशोषाय······"** के उव्वट भाष्य में लिखा हैं कि **"षड्वा ऋतवः पितरः"** इति श्रुतेः यजुः २-३२ पृष्ठ ३५, इससे सिद्ध है कि तृतीया आकाश—परिधि में ऋतु=अर्थात् पितर रहते हैं। तीसरा आकाश क्या है ? सो देखो यजुर्वेद ३१-१५ में बताया है कि इस ब्रह्माण्ड में सात परिधि हैं, देखिये—**"सप्तास्यासन् परिधयः त्रिसप्त समिधः कृतः"** अर्थात् १. समुद्र, २. त्रसरेणु सहित वायु, ३. मेघमण्डल का वायु, ४. वृष्टिजल, ५. उसके ऊपर का वायु, ६. अत्यन्त सूक्ष्म धनञ्जय, ७. सूत्रात्मा। इसमें बताई हुई तीसरी परिधि=मेघमण्डल का वायु जिसको अथर्ववेद ने **"प्रद्यौ"** नाम बताया है, उसमें ऋतु अर्थात् पितर रहते हैं।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

परिधि के अर्थ **"प्रद्यौ"** के नहीं हैं। संस्कार विधि में पितरों को जल देना लिखा है। ब्रह्मा और मरीचि कौन थे ? जिनका तर्पण करना सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है। यम लोक में पितर रहते हैं, यजुर्वेद में लिखा है कि —**"पितरोयमराज्ये तेषां लोकः"** कहो यम लोक कौन-सा है ?

"माध्यमिकोयमः" ऐसा निरुक्त में लिखा है, अर्थात् यम मध्यस्थानी देवता है। (इसी प्रकार अपने प्रश्नों को दोहराकर पण्डित अखिलानन्द जी ने अपने दस मिनट समाप्त कर डाले)।

श्री पण्डित शिव शर्मा जी—

पण्डित जी मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं देते, अब सुनिये मेरे और नए प्रश्न, और साथ-साथ पण्डित जी के प्रश्नोंके उत्तर भी सुन लें **"देवाः पितरोदेवाः"** अथर्व०—६-१२-१२३-४ के भाष्य में सायणाचार्य लिखते हैं कि **"येत्र अस्माकम् पितरः पितृ पितामह प्रपितामहरूपा मानुषास्त एवं प्रागुक्तादेवाः"** पृष्ठ २५६, इससे सिद्ध है कि—यहां के मानुष जीवित माता, पितादि ही पितृ हैं, **"एतद्वः पितरोवासः"** यजुर्वेद के इस मन्त्र में **"वासः"** का अर्थ **"परिधानम्"** पहनने का कपड़ा महीधर कहते हैं। भला मुरदे पितर क्या कपड़ा पहन सकते हैं ? लीजिए **"ऋषिपंचमी"** की कथा है जिसमें लिखा है कि—"पुत्र के पिता और माता, बैल और कुतिया बने हुए कह रहे हैं कि—**"वृथाश्राद्धं कृतं तेन"** अर्थात् हमारे बेटे ने वृथा ही श्राद्ध किया, हम तो भूखे मर रहे हैं," इससे सिद्ध है कि—**"मरों को कुछ नहीं पहुंचता"** आपकी व्यासस्मृति बताती है कि—**"जो ब्राह्मण श्राद्ध में मांस नहीं खाता उसकी गति नहीं होती"** यह आपके अवतार व्यास जी महाराज का कथन है। टीका भी इस पर पण्डित भीमसेन (इटावा निवासी) की है। **"ब्रह्म"** नाम चारों वेद जानने वाले का है। उसका तर्पण करना चाहिये। मरीचि तपस्या करने वाले ऋषियों का

नाम है। उनकी सेवा सत्यार्थ प्रकाश में लिखी है। संस्कार विधि का उत्तर सुनिये—गुरुकुल से वापिस आकर ब्रह्मचारी समावर्तन संस्कार कराता है। गुरुकुल में माता गायत्री तथा पिता आचार्य होता है। अब घर आकर अपने पिता से कहता है कि—मैं आपकी सेवा करने वाला आ गया, यह कह कर दक्षिण की ओर को अञ्जुलि भर जल पृथ्वी पर छोड़कर बताता है कि—मेरा—आपका सम्बन्ध पृथ्वी और जल जैसा है। जैसे जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है वैसे ही मैं भी आपसे उत्पन्न हुआ हूं। जैसे स्त्री सदैव वामाङ्ग रहती है वैसे ही दक्षिण दिशा का सम्बन्ध पितरों से है अर्थात् पितर लोगों को दक्षिण आसन दिया जाता है। यह एक नियम है। आपके सब प्रश्नों के उत्तर हो गए। अब आप मेरे प्रश्नों का उत्तर दें, (सारे प्रश्न पुन: श्री पण्डित शिव शर्मा जी ने दुहरा दिये) समय समाप्त !

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मेरी बातों का उत्तर नहीं दिया। दक्षिण दिशा में क्या बम्बई या हैदराबाद में आर्यों का कालिज है जिध को मुह करते हैं ? ······जनता में हंसी······ मृतक श्राद्ध सब करते हैं, स्वामी दयानन्द ने छोटे-छोटे टुकड़े मन्त्रों के धर दिये, वैसे ही पण्डित शिव शर्मा ने भी महीधर के टुकड़े धर दिये, पूरे मन्त्र धरें तो ज्ञात होवे। (इसी तरह की इधर-उधर की बातों में समययापन कर बैठ गए)। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

शास्त्रार्थ की समाप्ति पर—श्री लद्धाराम जी साहनी—

सज्जनो व धर्म प्रेमी भाईयों ! इन निर्विघ्नता पूर्वक कार्य पूर्ण होने के लिए परम पिता परमात्मा को धन्यवाद देने के पश्चात् मैं श्री मान राज राजेश्वर सम्राट जार्ज को अनेक धन्यवाद देता हूं। जिनकी छत्र छाया में हम सानन्द निरुपद्रव अपने धार्मिक लौकिक सभी कृत्य सम्पादन कर सकते हैं, हम अपने सुयोग्य ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट साहब को उनकी असीम कृपा पर जो उन्होंने प्रधान पद को सुशोभित कर की है। जितना अधिक साधुवाद दें उतना ही कम है। इसके बाद राय बहादुर पण्डित शिवचरण लाल जी को अनेक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अपने सरल स्वभाव से श्री प्रधान जी की अनुपस्थिति में सभापति के आसन को सुशोभित किया है। श्रीमान् इन्सपैक्टर पुलिस तथा अन्य पुलिस कर्मचारी भी हमारे अनेक धन्यवादार्ह हैं जिन्होंने बड़ी सावधानी से कार्य किया है। इसके बाद हम सनातन धर्म सभा को भी साधुवाद देते हैं कि—जिसके कारण हमें इस प्रकार धर्म निर्णय का सुअवसर प्राप्त हुआ। सबसे बढ़कर जनता भी धन्यवाद की पात्र है, जिसने अपनी उपस्थिति द्वारा हमारे कार्य में सहायता दी। अब चूंकि श्रीमान ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट साहब दौरा पर जाने वाले हैं, अत: शास्त्रार्थ बन्द करना पड़ता है। परञ्च यदि सनातन धर्म सभा चाहे तो हम फिर भी शास्त्रार्थ आगे को करने के लिए तैय्यार हैं।

श्री बाबू भगवान दास तम्बोली सनातन धर्मी—

उच्च स्वर में······श्री साहनी जी ! हमारी सनातन धर्म सभा और आगे शास्त्रार्थ नहीं करना चाहती। (तथा बाबू जी ने वहीं धन्यवाद आदि देना चाहा) तो मजिस्ट्रेट साहब ने रोक दिया, तथा कहा कि···ये सब हो गया है। इसकी अब और जरूरत नहीं है। यह शास्त्रार्थ का विशाल कार्य क्रम पांच दिन निर्विघ्न चलकर समाप्त हुआ, परमात्मा का धन्यवाद ! आप सबका भी धन्यवाद !!

बहत्तरवाँ शास्त्रार्थ—

स्थान : हैदराबाद (दक्षिण)

दिनांक : ३ जुलाई सन् १९३५ ई० (प्रथम दिवस)
विषय : "वर्ण व्यवस्था, गुण, कर्म स्वभाव से है या जन्म से ?"
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) श्री पण्डित लोकनाथ जी "तर्क वाचस्पति"
(२) श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थ
(३) श्री पण्डित मन्साराम जी वैदिक तोप
(४) श्री स्वामी कर्मानन्द जी महाराज आदि
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री
अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) सर्वश्री महा महोपाध्याय पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी
(२) पण्डित जगत्प्रसाद शास्त्री इन्तखाबे हिन्द,
(३) पण्डित अखिलानन्द कविरत्न,
(४) पण्डित कालूराम शास्त्री
(५) पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री,
(६) पण्डित नित्यानन्द शास्त्री आदि
आर्य समाज के मंत्री : श्री चन्दू लाल जी
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित गोपालराव साहिब "एडवोकेट"
सनातन धर्म सभा (बेगम बाजार) के मन्त्री : श्री पण्डित हरिनारायण जी शर्मा (सारस्वत ओझा)
शास्त्रार्थ में हाजरी : प्रतिदिन लगभग पांच से आठ हजार तक

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।

"संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज सुलतान बाजार हैदराबाद (दक्षिण) की मुख्य समाज रही है तथा अब भी है जो कि निरन्तर वैदिक धर्म प्रचार में तत्पर रहती है। समय-समय पर इस समाज द्वारा बहुत ही कार्य हुआ है। इस प्रचार को देखकर वहां के स्थानीय सनातन धर्मी भाइयों के पेट में दर्द होता था, वह मन ही मन कुढ़ते थे।

आर्य समाज का वार्षिक उत्सव था, जिसे देखकर सनातनियों से न रहा गया, और उन्होंने शास्त्रार्थ का चैलेंज दे दिया। ऐसे अवसर को देखकर आर्य समाज कहां चूकने वाला था, तुरन्त उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, और शास्त्रार्थ के नियम व शर्तें तय करने के लिए कहला भेजा। दोनों पक्षों के मध्य जो-जो नियम तय किए गए वह इस प्रकार थे—

शास्त्रार्थ के नियमोपनियम—

आर्य समाज सुलतान बाजार (हैदराबाद) और सनातन धर्म सभा बेगम बाजार (हैदराबाद) के मध्य ३-७-१९३५ ई० को शास्त्रार्थ के नियमोपनियम निम्न प्रकार से तय किए गए। आर्य समाज की ओर से यह विषय रखे गए जिन पर शास्त्रार्थ किया जाना चाहिए—(१) पुराण वेद विरुद्ध और परस्पर विरुद्ध होने से अमान्य हैं। (२) यज्ञ में पशुवध वेद विरुद्ध है। (३) मूर्ति पूजा वेदानुकूल नहीं है। (४) ईश्वरावतार वेदानुकूल नहीं है। इन विषयों के मुकाबले पर सनातन धर्म सभा ने अपनी ओर से यह विषय प्रस्तुत किये —(१) स्वामी दयानन्द कृत ग्रंथ अवैदिक तथा कपोलकल्पित हैं। (२) दयानन्द कृत वेद भाष्य कल्पादि ग्रन्थों के अनुकूल नहीं है। (३) नियोग अवैदिक है। (४) वर्णव्यवस्था जन्म से है। इसके बाद शास्त्रार्थ कर्त्ताओं का भी निश्चय किया गया कि—अपने अपने पक्ष से शास्त्रार्थ कर्त्ताओं की नामावली भी अंकित हो जाये, तो आर्य समाज ने अपने विद्वानों की नामावली इस प्रकार दी —(१) पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति, (२) पण्डित देवेन्द्र नाथ जी सांख्यतीर्थ, (३) पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार, (४) पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप, (५) स्वामी कर्मानन्द जी महाराज। इसी प्रकार सनातन धर्म सभा ने भी अपने विद्वानों की नामावली पेश की—(१) महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधर शर्मा, (२) पण्डित जगतप्रसाद जी शास्त्री (इन्तख़ाबे हिन्द) (३) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न, (४) पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री, (५) पण्डित कालूराम जी शास्त्री, (६) पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री, (७) पण्डित नित्यानन्द जी शास्त्री।

इसके बाद सभापति का प्रश्न उत्पन्न हुआ, कि सभापति "**निर्णायक**" रूप में हो या मात्र "**व्यवस्थापक**" रूप में नियत किया जावे ? इस पर दोनों पक्षों के बीच काफी विवाद हुआ अन्त में क्योंकि आर्य समाज को शास्त्रार्थ द्वारा सच्चाई को दर्शाना था, इसलिए सनातनियों की अनुचित मांगों को भी स्वीकार करना पड़ा। इसके लिए "**श्री पण्डित नरदेव जी शास्त्री**" को ही "**निर्णायक व प्रधान व्यवस्थापक**" निश्चित किया गया। तथा शेष नियम निम्न प्रकार तय किये गये—

(१) शास्त्रार्थ मौखिक हिन्दी में होगा, (२) समय का विभाजन इस तरह होगा कि वादी अपना पक्ष बीस मिनट स्थापन करेगा, और प्रतिवादी उसका उत्तर बीस मिनट तक देगा, इसके बाद १०-१० मिनट वादी प्रतिवादी दोनों के रहेंगे। (३) शास्त्रार्थ के विषय का प्रारम्भ सनातन धर्म सभा की ओर से होगा। (४) शास्त्रार्थ का

समय शाम के साढ़े पांच बजे से साढ़े आठ बजे तक रहेगा, (५) शास्त्रार्थ का स्थान "देवोदीन बाग सुलतान बाजार" होगा परन्तु अगर मौसम खराब होता है, वर्षा आदि की सूरत में, उक्त स्थान की जगह "विवेक वर्द्धिनी थियेटर" रहेगा या किसी भी सूरत में स्थान परिवर्तन का अधिकार उभय पक्ष को रहेगा। (६) पण्डाल सम्बन्धी, अर्थात् रोशनी, फ़र्श फर्नीचर इत्यादि का इन्तज़ाम उभय पक्ष का होगा। (७) बैठक का अधिकार समान रहेगा। (८) किसी भी पक्ष का विद्वान किसी के भी ख़िलाफ कोई अपशब्द नहीं कहेगा बल्कि अपने-अपने पक्ष की मजबूती में केवल मान्य ग्रन्थों के प्रमाण देगा। (९) शास्त्रार्थ ३ जौलाई सन् १९३५ ई० से प्रारम्भ होगा। (१०) आर्य समाज चारों वेद संहिता भाग को ही स्वतः प्रमाण तथा अन्य सब वेदानुकूल ग्रंथों को परतः प्रमाण मानते हुए इनके प्रमाण देगा। और सनातन धर्म सभा की ओर से सागोंपांग वेद, उपनिषद, षड्दर्शन, मनुस्मृति, सर्व पुराणोपपुराण, बाल्मीकीय रामायण महाभारतादि के प्रमाण दिए जावेंगे। (११) कोई भी वक्ता विषयान्तर में नहीं जावेगा। (१२) उभय पक्ष के वक्ता उन-उन के मान्य ग्रन्थों का ही उदाहरण दे सकेंगे, अन्य का नहीं। अर्थात आर्य समाज के सम्मुख स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों का भी और सनातन धर्म सभा के सम्मुख प्रमाण ग्रन्थ के अनुसार पुराण आदि का भी हवाला दिया जा सकेगा। (१३) यदि "श्री पण्डित नरदेव जी शास्त्री" किन्हीं कारणों से नहीं आ सके तो हैदराबाद के ही किसी सज्जन को दोनों पक्षों की सम्मति पर प्रधान निश्चय कर लिया जावेगा, जो मात्र प्रबन्धक के रूप में होगा जिसका कार्य सभा में शान्ति कायम करने का होगा। उसको किसी भी पक्ष के जय-पराजय की घोषणा करने का अधिकार नही होगा।

—निवेदक—

दस्तख़त—

"रेजीडेन्सी"
हैदराबाद (दक्षिण)
१०-६-१९३५ ई०

"चन्दूलाल"
मन्त्री—आर्य समाज सुलतान बाजार
(हैदराबाद)

नोट:—इस प्रकार उपरोक्त नियम व शर्तों पर आधारित यह शास्त्रार्थ अपने नियत समय पर आरम्भ हुआ, इसका क्या परिणाम निकला ? आप देखिए ! पढ़िये !! और निर्णय करिये !!!

संकलन कर्ता—
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री —

महानुभाव ! आज के शास्त्रार्थ का विषय "**वर्ण व्यवस्था**" है। सनातन धर्म, जन्म प्रधान-गुण कर्म स्वभावोपलक्षित वर्ण व्यवस्था को मानता है, परन्तु आर्य समाज केवल गुण, कर्म, स्वभाव से ही वर्ण व्यवस्था स्वीकार करता है जन्म से नहीं मानता है। वेदादि शास्त्रों में जन्म प्रधान वर्ण व्यवस्था का ही उल्लेख मिलता

है ऐसा मेरा दावा है, देखिये—"**ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्**······" देखिये यह वेद का मन्त्र है, जिसमें जन्म से ही तत्तद् वर्णों के पैदा होने का स्पष्ट वर्णन विद्यमान है, इतिहास भी जन्म के प्राधान्य का ही समर्थन करता है, जैसे-राक्षस कर्मकारी रावण, वीर शिरोमणी परशुराम, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, और अश्वथामा आदि व्यक्ति क्षत्रियोचित्त, गुण, कर्म, स्वभाव रखते हुए भी जन्म के कारण ब्राह्मण ही प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानोपदेष्टा राजा जनक क्षत्रिय प्रसिद्ध हैं, सेठ भामाशाह जन्मानुसार ही वैश्य कहे जाते हैं, अत्र दृष्टान्त के रूप में समझिये ! यदि कोई रुपया खोटा हो तो सभी लोग उसे खोटा रुपया ही कहेंगे। उसके चलन पर भी बट्टा लगेगा, परन्तु उसे रुपये की जगह अधेला नहीं कहा जायेगा, ठीक इसी तरह तत्तद् वर्णों के गुण कर्म स्वभाव न रखने वाला मनुष्य भी आदरणीय नहीं होगा, परन्तु रहेगा उसी वर्ण का जिसमें कि उसका जन्म हुआ है। यदि केवल गुण, कर्म के अनुसार वर्णों की व्यवस्था मानी जाय तो महा अनर्थ हो जायेगा, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति आवश्यकतानुसार दिन भर में चारों वर्णों के काम कर डालता है। कल्पना कीजिये एक देवी अपने घर में प्रात: झाड़ू-चौका बर्तन करती है, बच्चों के कपड़े धोती है, भोजन पकाती है और जरूरत के वक्त बच्चों का मल-मूत्र भी साफ करती है तो क्या वह इन विभिन्न कर्मों के अनुसार क्रमश: दासी, धोबन, भटियारन, और भगंन बन जायेगी ? कभी नहीं इससे स्पष्ट होता है कि गुण, कर्म, स्वभाव, प्रतिष्ठादायक चाहे हो सकते हैं परन्तु तत्तद् वर्णों की सत्ता तो जन्म से ही युक्ति संगत हो सकती है। टर्न टन टन ऽ ऽ ऽ······

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जनों ! आज के शास्त्रार्थ का विषय आप सुन ही चुके हैं। और इस सम्बन्ध में आर्य समाज का जो सिद्धान्त है वह भी सारे संसार को विदित है, भाइयो ! आर्य समाज जिस पुरुष में जैसे गुण, कर्म स्वभाव देखता है, उसे वह उसी वर्ण में नियत करना चाहता है। यदि कोई ब्राह्मण होता हुआ भी ब्राह्मणोचित गुण, कर्म, स्वभाव नहीं रखता तो आर्य समाज उसे ब्राह्मण नहीं मानता, और यदि कोई भंगी, चमार की जाति में पैदा हुआ हो, मगर उसके गुण, कर्म, स्वभाव ब्राह्मण के से हों तो आर्य समाज उसको ब्राह्मण बनाना चाहता है, उसकी उन्नति करना चाहता है। अर्थात् साफ पता चलता है कि—"**वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं बल्कि गुण कर्म स्वभाव से होती है**" यही आज्ञा हमें वेद देते हैं। और यही महर्षि दयानन्द का सिद्धान्त है, इस प्रकार की वर्ण व्यवस्था मानने से ऊंचे वर्ण वालों को नीचे गिरने का भय बना रहेगा। और वे श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाव स्थिर रखने का प्रयत्न करेगें तथा छोटे से छोटे व्यक्ति को भी उन्नति करने का चाव पैदा होगा। परन्तु हमारे सनातन धर्मी भाइयों का कहना है कि - ब्राह्मण कितना भी अनपढ़, शराबी, कवाबी पतित क्यों न हो ? वह ब्राह्मण ही रहेगा, और कोई शूद्र चाहे कितना भी वेद वेदांग पढ़ा हो तथा कितना भी चरित्रवान ही क्यों न हो ? वह शूद्र ही बना रहेगा। क्यों भाइयो क्या ये बात समझ में आती है ? जबकि हमारे वेद व वैदिक ग्रन्थ इस बात के विरूद्ध कहते हैं। पण्डित जी ने जो "**ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्**··" वेद का प्रमाण पेश किया है, अब मैं उस पर विचार करता हूं जिसका उल्लेख करते हुए पण्डित जी महाराज ने कहा कि—यह वेद मन्त्र भी वर्ण व्यवस्था को जन्म से ही मानने का आदेश करता है परन्तु इस मन्त्र का अर्थ नहीं किया, अर्थ करते तो पोल खुल जाती, मैं बताता हूं। सुनिए और पण्डित जी भी ध्यान से सुनें—सनातन धर्मी इस मन्त्र का अर्थ करते है कि-परमात्मा के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए और भुजाओं से क्षत्रियादि वर्ण। सो क्या परमात्मा ने मदारी की तरह हाऊ ! हाऊ !! करके गोलों की तरह मुह से ब्राह्मण निकाल डाले ? नहीं बल्कि यह समझना चाहिए कि मुख के द्वारा ज्ञान का प्रसार होता है, इस अंग के द्वारा ही देखना, सुनना समझना होता है, यही ज्ञान का सैन्टर है, जो ब्राह्मण के कार्य हैं वही यह अंग करता है इस लिए इसको ब्राह्मण की उपमा वेद देते हैं। इसी तरह भुजा, उरू भाग तथा

पद (पैर) का हिस्सा ये सभी अपने-२ गुण, कर्म, स्वभाव रखने से वेद ने इन अंगों की उपमा इन विभिन्न वर्णों से दी है।

छान्दोग्य उपनिषद (४-४) में वर्णन आता है कि सत्यकाम जाबलि गौतम के पास पढ़ने गया तो उसे अपनी माता से पूछने पर भी कि मेरा पिता कौन है ? विदित न हो सका। परन्तु उसने सरल स्वभाव से यही सत्य बात गौतम से कह दी, जिसपर प्रसन्न होकर गौतम ने उसे "ब्राह्मण" कहकर पुकारा। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गये थे, यह रामायण में प्रसिद्ध है। रावण दुराचार के कारण राक्षस हो गया था। द्रोणाचार्य आदि धनुर्वेद के आचार्य थे, तभी गुण, कर्म, स्वभावानुसार ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं। पण्डित जी महाराज ने खोटे रुपये की उपमा दी, भाइयो ! खोटा रुपया बाजार में जगह-२अपमानित होता है, उससे तो वह रुपया अच्छा जो बिना किसी रोक-टोक के चले. अतः साफ पता चलता है कि वर्ण व्यवस्था जन्म से कदापि नहीं हो सकती, बल्कि गुण, कर्म स्वभाव से ही हो सकती है, यही हमारा अटल सिद्धान्त है। टर्न टन टन ऽऽ···

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आर्य समाज मानता है कि, सोलहवें वर्ष तक कन्यायें और २५वें वर्ष तक कुमार गुरुकुल में पढ़ते रहें, जन्म से लेकर विद्या समाप्ति पर्य्यन्त इनका कोई खास वर्ण नहीं, परन्तु पढ़ लिख जाने पर उपर्युक्त आयु में परीक्षा लेकर जिस लड़के लड़की में जिस वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव विदित हों उसे विद्या सभा उसी वर्ण की सनद दे दें। यदि किसी अनपढ़ (मूर्ख) बाप का बेटा विद्वान हों जाये तो उसे राज सभा के कानून के जोर से उस पिता से छीन कर किसी पण्डित पिता के सुपुर्द कर दिया जाय। और उसे किसी विद्वान पिता का अनपढ़ बेटा दिला दिया जाय। यही व्यवस्था कन्यायों के लिए नियत है। हमारे विचार में यह व्यवस्था जहां वेदादि शास्त्रों के प्रति कूल है वहां अप्राकृतिक होने के कारण अमल में लाने के लायक भी नहीं, देखिये ऋग्वेद क्या कहता है ? "**न अन्योदर्य्यो मनसा मनावाऊ**" (५-६-३) अर्थात्-दूसरे के पेट से पैदा हुए बच्चे को मन से भी अपना न मानें। कल्पना कीजिए कोई अनाथ विधवा अपने एक मात्र पुत्र को चक्की पीस-पीस कर किसी तरह पढ़ाती है, और आशायें बांधती है कि बुढ़ापे में यह बेटा मुझे कमाकर खिलायेगा, बुढ़ापे में मेरी लाठी बनेगा। परन्तु जब वह पढ़ लिखकर विद्वान कमाने लायक बन जाता है तो समाजियों की राज सभा अपने नादिरशाही कानून के जोर से उसे उस माता से छीन कर किसी पढ़े-लिखे बाबू के हवाले कर देती है। और इस बेचारी की छाती पर किसी का बज्र मूर्ख बेटा जबरन बिठा दिया जाता है। कहिये यह व्यवस्था इस विधवा के हक में कितनी न्याय संगत होगी ?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

श्री पंडित जी ने लड़के लड़की बदलने की स्कीम बता कर इसका उपहास किया, ग्रन्थों को कभी छूते ही नहीं है वेद में कहा है कि—"**अहमेह स्वयंमिदं वदामि**··· ··" (ऋग्वेद १०-१२५-५) अर्थात् राष्ट्र सभा जिसे चाहे ब्राह्मण बना दे उसके गुण, कर्म, स्वभावानुसार। मैं पूछता हूं पण्डित जी से कि आपके कृष्ण भगवान भी तो एक लड़की के साथ बदले गये थे, तो फिर ये आक्षेप कैसा ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

इधर संस्कार विधि में स्वामी जी ने नामकरण संस्कार के समय जबकि बच्चे की सिर्फ दस दिन की आयु होती है, यह आज्ञा दी है कि ब्राह्मण की सन्तान का नाम "**देवशर्मा**" क्षत्रिय बालक का नाम "**देववर्मा**"

और वैश्य पुत्र का नाम **"भद्रगुप्त"** और शूद्र के बेटे का नाम **"देवदास"** इस प्रकार रक्खें जायें, सो इस समय दूध मुहे बच्चे में किसी भी गुण, कर्म, स्वभाव का विकास नहीं हो पाता, किन्तु पिता के वर्ण के अनुसार ही उसकी सन्तान के नाम के साथ ब्राह्मणादि वर्णों की सूचक—"शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास" उपाधि नियत की जाती है। यह विधान अवश्य ही जन्म प्रधान वर्ण व्यवस्था का समर्थन करता है इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक बालक का वर्ण समाज के ग्रन्थों के अनुसार दशवें दिन जन्म मूलक ही नियत रक्खा जाता है, इसी प्रकार उपनयन संस्कार के सम्बन्ध में भी स्वामी जी ने अपने ग्रन्थ "संस्कार विधि" में ब्राह्मण का आठवें वर्ष, क्षत्रिय का ग्यारहवें और वैश्य का बारहवें वर्ष में संस्कार होना लिखा है। अमुक-२ वर्ण के लिए भिन्न-२ प्रकार के उपवास करना और प्रथक-२ काष्ठों के विभिन्न परिणाम वाले दण्ड ग्रहण करना, एवं **"भवति भिक्षां देहि"** इस वाक्य का अपनी-२ वर्ण मर्यादा के अनुसार उच्चारण करना, आदि-२ बातें लिखी है। निःसन्देह इतनी छोटी आयु के विद्या विहीन बच्चों में किसी भी गुण, कर्म, स्वभाव का सुस्थिर प्रादुर्भाव स्वीकार नहीं किया जा सकता, इस तरह यह संस्कार भी जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था का ही सर्वांश में समर्थन करता है; यहां यह भी कह देना अनुचित न होगा कि स्वामी जी के ग्रन्थों के अनुसार भी नामकरण और उपनयन संस्कार के समय संतान का जन्म मूलक वर्ण नियत हो चुकता है। फिर १६ वें और २५ वें वर्ष की परीक्षा का ढकोसला क्या मायने रखता है? इसके अतिरिक्त स्वामी दयानन्द जी परस्पर विरूद्ध उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं का उत्तरदायित्व भी आर्य समाज पर ही है, वे एक जगह दशवें दिन दूसरी जगह आठवें तथा ग्यारहवें और बारहवें आदि वर्षों में तीसरी जगह सोलहवें और पच्चीसवें वर्ष में-वर्ण कायम करने का हुकम देते हैं। इस गड़बड़ घुटाले का क्या तात्पर्य है?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पण्डित जी महाराज ने व्यर्थ में लम्बा-२ भाषण दिया, जो बिल्कुल आधार रहित है, नामकरण संस्कार के समय और यज्ञोपवीत संस्कार के समय तो पिता अपनी सन्तान को जिस वर्ण का बनाना चाहता है वह वैसा ही नाम रखता है। जो वेदोक्त ही है। यही रीति सर्व शास्त्रों में वर्णित है, जिससे वर्ण व्यवस्था का साफ पता चलता हैं कि वह जन्म पर आधारित नहीं है, बल्कि गुण, कर्म, स्वभाव पर ही आधारित है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

व्याकरण की रीत्यानुसार भी ब्राह्मण के वीर्य से पैदा हुए बालक को ही "ब्राह्मण" कहा जा सकता है। तत्संबंधी वस्तुओं को "ब्राह्म" कैसे कहा जायेगा? इसी प्रकार क्षत्री के **"औरस"** पुत्र को ही "क्षत्रिय" कहा जा सकता है। तत्सम्बन्धी को "क्षत्र" कहा जायेगा। **"ब्राह्मोऽजातौ क्षत्राद्घः"** आदि पाणिनीय सूत्रों की व्याख्या करते हुए ही स्वयं स्वामी दयानन्द जी ने भी अपने ग्रन्थ **"वेदाङ्ग प्रकाश"** में ऐसा लिखा है। फिर **"अनौरस"** व्यक्तियों को बनावटी पिता के वर्ण के अनुसार कैसे पुकारा जा सकेगा? इस प्रकार ब्राह्मण आदि शब्द अपत्यार्थक प्रत्ययों द्वारा ही सिद्ध हो सकते हैं। जो कि जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था को प्रमाणित करते हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जनों! पण्डित जी ने किसी भी ग्रन्थ के हवाले के साथ उसका विस्तार नही बताया. मैं भी इसी प्रकार से कह दूं कि फलां ग्रंथ में यह लिखा है; फलां ग्रंथ में यह लिखा है, इससे मेरी बात प्रमाणित नहीं हो जाती। कहां

लिखा है, उसका उल्लेख तो दिखाओ। पण्डित जी व्याकरण की तोप लेकर चले, जिससे कदापि यह सिद्ध नहीं होता कि वर्ण व्यवस्था जन्म से है। वर्ण व्यवस्था की जो परिपाटी महर्षि दयानन्द जी महाराज ने बयान की है। वह वेदोक्त है और वही मानने योग्य है। सर्व शास्त्रों से यही पता चलता है कि—वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं बल्कि, गुण, कर्म, स्वभाव पर ही आधारित है। पण्डित जी अपने पक्ष का कोई ठोस प्रमाण दें। व्यर्थ में समय बर्बाद न करें।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आर्य समाज की वर्ण व्यवस्था में सबसे बड़ी गड़बड़ी यह है कि...उसका संचालन विद्या सभा और राज्य सभा के नादिर शाही फ़तवे के बिना हो ही नहीं सकता। वर्तमान समय में ब्रिटिश सरकार का राज्य है, अब किसी और सुपुत्र को माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध किसी दूसरे को नहीं दिलाया जा सकता, और ना ही कोई मनुष्य अपने विद्वान पुत्र के बदले में मूर्ख पुत्र को लेने के लिए विवश किया जा रहा है, इसलिए दयान्दीय वर्णव्यवस्था तब तक चालू नहीं हो सकती, जब तक कि दुर्भाग्यवश "**अन्धेर नगरी चौपट राजा**" का राज्य न हो जाये। क्या आपके पास ऐसी कोई संस्था है जो ये वर्ण वाली सनद बांटती हो ? अगर किसी को कोई सनद मिली हो तो पेश करो। मेरा दावा है कि कोई भी आर्य समाजी ऐसी सनद पेश नहीं कर सकता।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जनों ! सुनो पण्डित जी अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में देकर मूल विषय को भुला देना चाहते हैं। बार-बार राज्य सभा की बात करते हैं जब हमारा राज्य होगा तो राजसभा भी होगी, क्या पण्डित जी अपनी कोई राज्य सभा बता सकते हैं ? रही सनद की बात ! हमारे पास तो इसका प्रमाण है। परन्तु पण्डित जी अपनी सोचें कि अगर मैं अपनी बात प्रमाणित करते हुए पण्डित जी से भी वैसे ही सनद मांगू कि इनके ब्राह्मण होने में क्या प्रमाण है ? तो ये क्या पेश करेंगे ? "**सन्नाटा**······" सुनिये ! मैं जब गुरुकुल से स्नातक बनकर विदा हुआ तो मुझे "**ब्राह्मण**" कहा गया तो यही मेरी सनद है। और भी बहुत से विद्वान हैं जो जन्म से ब्राह्मण नहीं हैं। परन्तु आर्य समाज ने उनको ब्राह्मण की उपाधि दी, तथा आज भी समाज उन्हें ब्राह्मण ही मानता है। आप अपनी कहें और अपने ब्राह्मणत्व का सबूत दें।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आर्य समाजियों की ये सब कहने की बातें हैं क्रिया में कुछ नहीं है। ये सब शूद्रादि वर्णों को झांसा देने के लिए है। परन्तु दयानन्दी ग्रन्थों से साफ़ पता चलता है कि ये आर्य समाजी लोग शूद्रों के कितने हमदर्द हैं ? देखिये···सत्यार्थ प्रकाश के दशवें समुल्लास में लिखा है कि...आर्यों की रसोई पकाते समय शूद्र अपने मुह और नाक पर कपड़ा बांध लें, इस तरह समाजी बेचारे शूद्रों को "**नाकोदम**" करने की सजा देते हैं। उनको श्वास तक घोटने का अत्याचार करते हैं। हवन में शूद्र के घर की अग्नि भी लेने को मनाही की है। गोया उनको इतना अछूत समझा है कि उनके घर की आग तक को भी अपवित्र मानते हैं। यजुर्वेद भाष्य में भंगियों के बच्चों के जलावतन करने का नादिर शाही हुक़म दिया है। और सत्यार्थ प्रकाश में शूद्रों को यज्ञोपवीत न देने का और वेद न पढ़ाने का फ़र्मान दर्ज है। निःसन्देह ये सब बातें शूद्रों के सम्बन्ध में आर्य समाज की आभ्यन्तरिक नीति का परदाफ़ास करने को काफ़ी है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

भाइयों ! पण्डित जी आर्य समाज पर आक्षेप करते हैं कि···दयानन्द कृत ग्रन्थों में शूद्रों की बेइज्जती दर्ज है। यह आक्षेप मिथ्या है, अन्यथा पण्डित जी उस दर्ज इबारत (पाठ) को दिखावें ? आर्य समाज तो प्राणी मात्र की उन्नति चाहता है। शूद्र अपने यहां अभोज्य पदार्थ भी बनाते हैं इसलिए अग्नि को मना किया है। रही पण्डित जी की बाकी बातें ? वे सब आप लोगों को भड़काने के लिए कही गई हैं, अगर उनमें सत्यता है तो पण्डित जी ग्रन्थों से उस पाठ को लिखा दिखावें। अन्यथा अपने शब्द वापिस लें। मैंने प्रमाण मांगे थे। आप लोग देख ही रहे हैं कि पण्डित जी कितने वेदोक्त प्रमाणों की झड़ी लगा रहे हैं। अरे भाई लगावें तो तब, जब इन्हें प्रमाण मिलें। जब हैं ही नहीं, तो देवें भी कहां से, इसी प्रकार की इधर-उधर की बातों में समय नष्ट कर रहे हैं। आर्य समाज ने एक-दो नहीं अनेकों को उनके गुण, कर्म, स्वभावानुसार ब्राह्मण बनाया उनकी शादियां ब्राह्मणों में हुई, जो प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। परन्तु पण्डित जी के पास "**वर्ण व्यवस्था जन्म से होती है**" सम्बन्धी कोई प्रमाण नहीं है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

इसी तरह स्वामी जी ने यजुर्वेद भाष्य (१४-६) में राजा को "**सुअर**" तथा वैश्य को "**ऊंट**" और शूद्र को "**बैल**" बताकर इन सब वर्णों को अपमानित किया है, सनातन धर्म में तो ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्यन्त प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने वर्ण का कार्य करते हुए ही मुक्त हो जाने का अवसर प्राप्त है। वह कोई जाति नहीं जिसके धर्म निष्ठ व्यक्ति की सनातन धर्म ने उचित प्रतिष्ठा न की हो। हमारे यहां भक्त होने के नाते, धन्ना जाट, नन्दा नाई, रैदास चमार, सदना कसाई, शबरी भीलनी और गणिका (वैश्या) आदि भक्तों को उसी आदर से देखा जाता है जिस आदर से कि देवर्षि नारद और ब्रह्मर्षि वशिष्ठ को देखा जाता है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

आपने जो यजुर्वेद की बातें कही ये सब उपमालंकार में हैं। आप अपनी बात करें। आपके यहां क्या-क्या गन्द भरी पड़ी है क्या कभी उसके बारे में भी सोचा है ? श्रीमद् भागवत (५-४-१३) में लिखा है कि नाभि राजा के ८१ पुत्र अपने गुण, कर्म स्वभाव से ब्राह्मण वन गए। और भी अनेकों प्रमाण हैं। आप लोग इस ब्राह्मण पद को अपनी बपौती समझते हैं। क्यों भाईयों ? जो ब्राह्मण सर्वथा नीच कर्म करे, अनपढ़, निरक्षक भट्टाचारी हो क्या वह ब्राह्मण कहलाने के काबिल है ? कदापि नहीं। परन्तु पण्डित जी महाराज कहते हैं कि चाहे वह कुछ भी करें, अगर ब्राह्मणी से पैदा हो गया तो वह आजन्म ब्राह्मण ही रहेगा। क्या ये बात समझ में आती है ? इसी नीति के आधार पर क्या कुछ इस देश का पतन इन ब्राह्मणों के द्वारा नहीं हुआ ? मैं अगली टर्न में सारी बातें खोलूंगा।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

यदि गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण बदल सकता है तो फिर मनुस्मृति में जो अनुलोमज-विलोमज वर्ण संकरों का विस्तृत वर्णन मिलता है, उसका क्या अर्थ होगा ? क्योंकि वर्ण संकरता का तात्पर्य तो विभिन्न दो वर्णों के रजोवीर्य्य का मेल हो जाना ही हो सकता है। जो कि जन्म से सम्बन्ध रखता है। श्रीमद्भगवत गीता में भी जो अर्जुन ने "**संकरो नरकामैव**" कहते हुए विधवाओं के वर्णान्तरों से मिलने पर "**संकर**" सन्तान उत्पन्न हो जाने का भावि भय प्रकट किया है वह भी जन्म प्रधान वर्ण व्यवस्था का ही प्रबल प्रमाण है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

भाइयो सुनो ! पुराणों में तो लिखा है कि शृंगी ऋषि हरिणी से पैदा हुए थे, शुकदेव तोती से, कणाद उलूकी से, और अमुक ऋषि मेढ़की से पैदा हुआ था भविष्य पुराण (४१-२२-२३) में लिखा है कि...वशिष्ठ गणिका (वैश्या) के पुत्र थे, मन्दपाल मुनि, मल्लाह से, व्यास जी झींवरी से, पाराशर चाण्डाली से पैदा हुए······

नोट—

बीच में ही सनातन धर्मियों ने हल्ला मचाना आरम्भ कर दिया, तब बड़ी मुश्किल से शान्ति स्थापित की गई एवं पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार जी ने बोलना आरम्भ किया—हां तो भाईयों मैं अब कहने पर आया हूं तो आपने देखा कैसे चीख निकली ? मैं पूछता हूं इन सबको जन्म से ही क्यों नहीं माना जाता, इन सबको ऋषि क्यों माना जाता है ? क्या ये सब ऋषि महर्षियों की औलाद थे ? नहीं थे तो जो थे वो मानो ! साफ़ पता चलता है कि हर मनुष्य का उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार ही उसका वर्ण होता है। जिस प्रकार ये सब ऋषि अपने जन्म के अधिकार पर नहीं बल्कि गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर ऋषि बनें। देखिए भविष्य पुराण में दर्ज है कि महर्षि कण्व ने दश हजार मलेच्छों को शुद्ध करके ब्राह्मण आदि वर्णों में मिला दिया, आप भी कण्व महर्षि की तरह उद्योग करो, यह व्यर्थ की हठधर्मी छोड़कर सही सत्य सनातन वैदिक धर्म के आधार पर गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर वर्ण व्यवस्था को अपनाओ। इसी में हमारा, आपका, देश व समाज का हित है। इसी से देश व हिन्दू जाति की उन्नति होना सम्भव है। आज यह साफ़ पता चल गया कि—"**वर्ण व्यवस्था जन्म से नही अपितु गुण, कर्म, स्वभाव पर ही आधारित है**" इस प्रकार आज का यह प्रथम दिवस का शास्त्रार्थ समाप्त होता है। कल का शास्त्रार्थ सुनने के लिए श्रोताओंसे प्रार्थना है कि सही समय पर दर्शन दें। इति शम् ॥

नोट—

इसी विषय पर विस्तृत जानकारी के लिए "**निर्णय के तट पर प्रथम भाग के द्वितीय संस्करण**" में महात्मा अमर स्वामी जी महाराज का पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री (पं० माधवाचार्य जी शास्त्री के सुपुत्र) के साथ शास्त्रार्थ जो दिल्ली में '**वर्ण व्यवस्था**" पर हुआ था उसे पढ़िये !

संकलन कर्त्ता
"लाजपत राय अग्रवाल"

तेहत्तरवां शास्त्रार्थ—

स्थान : हैदराबाद (दक्षिण

दिनाङ्क : ४ जुलाई सन् १९३५ ई० (द्वितीय दिवस)
विषय : क्या पुराण वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी सांख्य तीर्थ

आर्य समाज के अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति
(२) श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार
(३) श्री पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप
(४) श्री स्वामी कर्मानन्द जी आदि

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

सनातन धर्म के अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) श्री पण्डित महामहोपाध्याय गिरधर शर्मा जी चतुर्वेदी
(२) श्री पण्डित जगत प्रसाद जी शास्त्री इन्तखाबे हिन्द
(३) श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न
(४) श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री
(५) श्री पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री
(६) श्री पण्डित नित्यानन्द जी शास्त्री आदि।

उपस्थिति : लगभग १०-१२ हजार

आर्य समाज के मंत्री : श्री चन्दूलाल जी

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित गोपालराव साहिब "एडवोकेट"

सनातन धर्म सभा (बेगम बाजार) के मंत्री : श्री पण्डित हरनारायण जी शर्मा (सारस्वत ओझा)

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।
"संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थ—

सज्जनों ! वेद में लिखा है कि—"**सप्तमर्यादा कवयस्ततक्षुः**" अर्थात् शराब पीना, जूआ खेलना, चोरी करना आदि सात महा पाप है, परन्तु पुराणों के अन्दर सब कुछ इनके विरुद्ध ही लिखा मिलता है। जिससे हम कह सकते हैं कि "**पुराण वेदानुकूल नहीं है**" कोई भी पुराणों का मानने वाला व्यक्ति इनको वेदानुकूल सिद्ध नहीं कर सकता, देखिए भविष्य पुराण में लिखा है कि भगवान श्री कृष्ण जी ने शराब पीकर औरतों के साथ जल क्रीड़ा की, नारद जी ने यह बात दिखाने के लिए कृष्ण जी के पुत्र साम्ब को वहा भेजा, साम्ब की सुन्दरता को देखकर उन स्त्रियों की धोतियें खराब हो गई। तब नारद जी और श्री कृष्ण जी ने उन औरतों को कहा कि="**तुम सब वेश्या हो जाओ, वेश्या धर्म में तुम वर्तो, धन रहित मनुष्यों से तुम रति क्रिया मत करना**" मनुष्य सुरूप हो या कुरूप ! वहां तो धन से ही प्रयोजन है। तथा फिर उनके उद्धार के लिए उपाय भी बतलाया कि—"**रविवार के दिन किसी वेद पारंगत ब्राह्मण को बुलाकर उसके साथ बिना फीस समागम करे तो उद्धार हो जावेगा**" पता नोट करिए... '**भविष्य पुराण उत्तर पर्व अध्याय १११ श्लोक ३३ से ४६ तक**" अब कहिए पण्डित जी महाराज ! क्या इसी बलबूते पर पुराणों को वैदिक सिद्ध करने चले थे ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(सकपकाते हुए से बोले) भाइयों शास्त्रीजी ने पुराणों की उपमाओं को समझा ही नहीं है। अगर समझ लेते तो ये व्यर्थ की न हांकते। एक समय का जिक्र है कि—किसी बादशाह को हरा रंग बहुत पसन्द आया, और उसने हुक्म दिया कि—सब दुनियां को हरे रंग में रंग डालो, तो नौकरों ने अर्ज की हुजूर! क्या कह रहे हो? मकानात् आदि तो रंगे जा सकते हैं मगर सूर्य, चन्द्रमा, आकाश आदि कैसे रंगे जा सकते हैं। बादशाह हठी व दुराग्रही था, नहीं माना, ऐलान करा दिया कि जो भी यह कार्य करेगा उसे मुह मांगा इनाम मिलेगा, यह ख़बर फैलते-२ एक अकलमन्द व्यक्ति को मिली, वह तुरन्त बादशाह के पास पहुंचा, और कहा कि मैं दो लाख रुपए इनाम का लूंगा, मैं यह कार्य कर सकता हूं। बादशाह ने तुरन्त स्वीकृति दे दी, उस व्यक्ति ने एक बड़ा सा हरे रंग का कांच लिया और बादशाह की आंखों पर रख दिया, और बोला—हुजूर अब आप सारी दुनियां को देखें, कैसी नजर आती है ? और इनाम लेकर खुशी-खुशी घर चला गया। ठीक यही दशा हमारे शास्त्री जी की है। यद्यपि पुराणों में कुछ भी दोष नहीं है परन्तु इन समाजियों ने अपनी दृष्टि दोष युक्त बना रखी है। इनको हर जगह दोष ही दोष नजर आते है। श्री कृष्ण जी भगवान में भी इन्हें दोष नजर आते हैं। ऐसी घृणास्पद बातें उनके बारे में कहते तनिक भी लज्जा नहीं आती। टर्न टन टन टन ऽ ऽ······

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

क्यों पण्डित जी महाराज ! यही कथा आप बांचने आये हैं या शास्त्रार्थ करने ? (चारों तरफ हंसी······) भाइयों ! पण्डित जी ने मेरे सवालों का कितना बढ़िया उत्तर दिया, कितने असंख्य प्रमाण, पुराणों की वेदानुकूलता

में दिये, आपने देखा। (गर्ज कर) पण्डित जी ! यह शास्त्रार्थ का मैदान है। आप लीलावती, कलावती, व लकडहारे वाली कथा की भांति ले बैठे एक काल्पनिक कहानी, ये जनता आपकी कहानी सुनने नहीं बल्कि सत्य असत्य का निर्णय लेने आई है। आज का विषय है। **पुराणों की वैदिकता** ? आप सिद्ध करिए, तथा मेरे द्वारा पहले किये गये प्रश्नों का जवाब दीजिए, मेरे पास सैकड़ों प्रमाण हैं जिनसे पुराण कभी वेदानुकूल नहीं हो सकते, परन्तु यहां सुनाऊं किसे ? अगली टर्न में और भी नए प्रश्न करूंगा पण्डित जी तैयार रहें। और उनका जवाब कथा में नहीं लूंगा यह भी ध्यान रक्खें। (श्रोताओं में चारों तरफ़ हर्ष का वातावरण······)।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

भाइयो ! सुनों !! पण्डित जी ने मेरे दृष्टान्त को उपहास में उड़ा दिया, पर यह उपहास में नहीं उड़ाया जा सकता, पण्डितजी ने भगवान श्रीकृष्ण जी पर आक्षेप किया था, पण्डित जी को पता नहीं है कि कृष्ण भी दो हुए हैं। एक तो गीता वाले भगवान श्री कृष्ण जी हैं। दूसरे करुष देश का राजा काशी निवासी महाराज पौंड्रक नकली कृष्ण था जो भगवान श्री कृष्ण जी से द्वेष रखता था, इसलिए इसने अपना, अपने परिवार व नगर के नाम भी वैसे ही रख लिए, जैसे कि भगवान के थे, चतुर्भुज बनने के लिए लकड़ी के बने मसनवी हाथ भी लगा लिये थे, और भगवान की तरह ही शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि भी धारण करता था। यह सब वर्णन श्रीमद् भागवत् में आता है। जिसका पता चलने पर श्री कृष्ण भगवान ने उसे मार डाला, उसी नकली कृष्ण का वृतान्त आप सुना रहे हैं। और इनके आधार पर आप पुराणों को वेद विरुद्ध सिद्ध करना चाहते हैं। यही आपके प्रथम आक्षेप का समाधान है।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

आपने न तो माकूल जवाब मेरे प्रथम प्रश्न का ही दिया, मेरे पास यह पुराण रक्खे हैं, इनमें दिखाओ, तथा भविष्य पुराण में लिखा है कि शिवजी ने शिव दूती से कहा कि तू मेरी नाभि के नीचे लटकते हुए जो अंडकोष हैं, जिन्हें आज तक किसी ने भी नहीं खाया, उन्हें खा लें। यही प्रकरण कुछ अन्तर के साथ··"**पद्म० स्टष्टि अध्याय २६ में कहा है, यथा**="**आस्वादितं न चान्यैस्तु भक्ष्यार्थं च ददाम्यहम्**·········" अर्थात् महादेव ने देव दूति से कहा कि...यह मेरी नाभि के नीचे फल के समान, किसी से भी न चखे हुए तथा मिले हुए अण्डकोश तुमको खाने के लिए देता हूं। इस भोजन से तुम्हारी अत्यन्त तृप्ति हो जाएगी। भाइयो ! पुराणों में क्या कुछ अनर्गल बातें नहीं हैं ? मैं एक-दो हो तो गिनवाऊं, हो सकता है पण्डित जी महाराज इस असलीयत को छुपाने के लिए इसमें भी किसी अलंकारिक कथा का वर्णन करें। परन्तु मैं कहे देता हूं कि मुझे इन सब बातों के सही जवाब चाहिए। और सुनिए— भविष्य पुराण में ही लिखा है कि—शिव पार्वती ने जुआ खेला, महादेव जी हार गए, पार्वती ने उन्हें नंगा करके निकाल दिया, क्या ये शिक्षा वेदानुकूल हो सकती है ? कोई सभ्य पुरुष इन शिक्षाओं पर अमल करना पसन्द करेगा?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

जुए का उत्तर सुनिए, जुआ दो प्रकार का होता है, एक तो पैसे, कौड़ी, सलाई और पासे आदि से खेला जाता है, और दूसरा अन्नादि वस्तुओं के भावी भाव कल्पना करना, तथा मल्लों की शारीरिक गठन के आधार पर हार-जीत का अनुमान करना और घुड़दौड़ में घोड़े की चपलता द्वारा तेज दौड़ का अन्दाजा लगाना इत्यादि कहलाता है, मनुस्मृति ९·१२३ में तथा नारद स्मृति में पहले भेद को "**जिह्म कारित**" ठगी के नाम से और दूसरे को

"समाह्वय" चुनौती के नाम से याद किया जाता है। सो वेदादि शास्त्रों में "अक्षैर्मादीव्य ··· ···" (ऋग्वेद १०-३४-१३)" अर्थात् पाशे मत खेल, ऐसा कहते हुए पहले प्रकार के द्युत को ही निंद्य ठहराया है। क्योंकि इसमें जड़ वस्तुओं की परतन्त्रता में पड़कर प्रायः हानि ही होती है। बुद्धि का कुछ भी उपयोग नहीं हो सकता, इत्तफ़ाक से कुछ भी दाव पड़ जाओ, यही इसके निन्दित होने का कारण है। परन्तु दूसरे प्रकार का जुआ शास्त्रों में पाप नहीं समझा गया। क्योंकि इससे, कल्पना शक्ति बढ़ती है, तथा साहस का भी उत्थान होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति (व्यवहाराध्याय द्यूत प्रकरण) में यह बात स्पष्ट लिखी है। दूसरे प्रकार के जुए को कहीं भी निन्दित नहीं बताया गया। घोड़ों का, बरसात का सट्टा, लाटरी यह तो आम होता है। "अथर्ववेद ४-३८-३" वाले मन्त्र पर प्रोफेसर राजाराम जी का भाष्य देखिये, जिसमें परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि, हमें जुए में सफलता प्राप्त हो। कहिए राजाराम जी जो डी० ए० वी० कालेज के प्रोफेसर हैं, वह तो आपके ही विद्वान हैं। हमारे तो हैं नहीं। क्या कह रहे हैं ?

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

पण्डित जी महाराज ! आप पहले यह बतायें कि स्मृतियों को वेदानुकूल सिद्ध कर रहे हैं या पुराणों को ? आपने एक भी पुराण का प्रमाण नहीं दिया, और वेद पर राजाराम जी का भाष्य प्रस्तुत कर रहे हैं। राजाराम जी हमारे लिए प्रमाण नही हैं। साफ़ सी बात है आप वह प्रकरण पुराणों के पेश करें जिनकी शिक्षा वेदों में भी हो ऐसा कोई प्रकरण नहीं आपने दिखाया, और मेरा दावा है कि न आप दिखा सकेंगे मेरे पहले प्रश्न ज्यों के त्यों पड़े हैं। नये और सुनिये देवी भागवत में लिखा है कि=विष्णु ने तुलसी का पतिव्रत धर्म भङ्ग करके उसके पति शंखचूड को मारा, तुलसी के शाप से विष्णु शालिग्राम पत्थर बने, और विष्णु के शाप से तुलसी गण्डकी नदी बनी। है इन सब बातों का आपके पास कोई समाधान ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

शंखचूड जिसको जालन्धर नाम से भी पुकारा जाता है, जो "बादल" का नाम है। क्योंकि जल को धारण करने के कारण यह बादल का अव्ययार्थ नाम है। उस बादल की औरत तुलसी है। जिसका नाम अन्यत्र "वृन्दा" भी लिखा है, सो वह बिजली है, जो कि बादल के पहलू में छुपी रहती है, विष्णु नाम वायु का है, जो कि सर्वत्र व्यापक है यही कथा ऋग्वेद में "इन्द्र वृत्रासुर संग्राम" के नाम से प्रसिद्ध है। वैज्ञानिक रीति से जब तक मानसून हवायें बादल के अन्दर रहने वाली विद्युत शक्ति से मेल नहीं कर पाती तब तक बादल भर नहीं सकता, अर्थात् मेह बरस नहीं सकता। इसलिए प्राणियों के जीवनार्थ जब विष्णु रूप वायु, तुलसी रूप विद्युत को हठात् ग्रहण कर लेता है, तब शंखचूड रूप बादल छिन्न-भिन्न होकर धराशायी हो जाती है, सो महाशय जी इस वृष्टि के प्रताप से ही नदियां बहती हैं, जिनमें गण्डकी नदी भी एक है गण्डकी नदी के काले पाषाण में स्वर्णमय विद्युत परमाणुओं का बाहूल्य होता है। अतएव सनातन धर्मी इसको शालिग्राम कहते हैं। और भगवत पूजन का साधन मानते हैं। तुलसी पत्र के मेल से शालिग्राम भगवान का चरणामृत स्वर्ण कणों के सम्मिश्रण के कारण, मकरध्वज और चन्द्रोदय जैसी सिद्ध औषधियों के समान गुणकारी बन जाता है। इसीलिए सनातन धर्मी उसे पीकर अनेक रोगों से मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस कथा में इतनी गहरी फिलासफ़ी छुपी है। यदि आप हमारा बनाया "पुराण दिग्दर्शन" ग्रन्थ पढ़ लेते तो आपको यह प्रश्न करने का व्यर्थ कष्ट न उठाना पड़ता।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

मान गए महाराज ! क्या फिलासफी बयान की है। इन पुराणों का उद्धार हो जाए अगर इसी प्रकार का भाष्य आप इनका कर दें। आपको पता होना चाहिए कि वहां पर लिखा है कि—"**वृन्दा ने शाप दिया**" क्या कभी बिजली भी शाप देती है ? (जनता में हंसी·······) पहले सभी प्रश्नों को खीर की तरह पी गए, मैं उन्हें इस प्रकार भुलावे में नहीं रहने दूंगा। उनका जवाब आपको देना है। और यह विज्ञान जो आपने पेश किया है, वास्तविकता को छुपा नहीं सकता। मेरे सारे प्रश्न ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। नये और सुनिये—शिव पुराण में लिखा है कि—शिव—पार्वती का विवाह हो रहा था, ब्रह्मा जी संस्कार करा रहे थे, उनके मन में विकार पैदा हुआ, पार्वती के पैरों की सुन्दरता देखकर ही स्खलित हो गये, जिससे साठ हजार बालखिल्य पैदा हुए।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

शिव, पार्वती के विवाह के समय ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया, यह कथा वेदों में भी ज्यों की त्यों उपलब्ध होती है, यथा—"**स प्रजापति व्यस्त्रं ऽऽ सत**" (शतपत ब्राह्मण ८-२-२-६) तथा "**अस्माद् वीर्यमुदक्रामत्**" (शतपथ ७-१-२-१) इत्यादि श्रुतियों में यह लिखा है कि ब्रह्मा का वीर्यपात हुआ और उससे बालखिल्य पैदा हुए। इस प्रकार इस कथा के वेदोक्त होने पर इसका उत्तरदायित्व हम से भी ज्यादा आप पर पड़ता है। क्योंकि—"**ययोरेव समोदोषः परिहारस्तयोस्समः**" परन्तु आप क्या उत्तर दे सकते हैं ? "क्योंकि न विवाह हुआ न बारात गए" शास्त्र के गहन तत्वों तक आर्य समाज की पहुंच कहां ? सो इसका भी उत्तर श्रवण कीजिये। सृष्टि के आरम्भ में पुरुष और प्रकृति का जो मैथुनी भाव होता है वही यहां शिव और पार्वती का विवाह समझना चाहिए, सृष्टि के प्रधान सूत्रधार सूर्य भगवान हैं। अतः वही इस प्रसंग में "ब्रह्मा" कहे गए हैं, सो जब यह विवाह सम्पन्न होने लगा तो प्रकृति की चरण स्थानीया भूमि का निर्माण हो चुकने पर सूर्य रूप ब्रह्मा का वीर्य, तेज, प्रकाश छिटक पड़ा जिससे अनेक प्राणधारियों की उत्पत्ति हुई, प्राणों का दारमदार सूर्य पर निर्भर है, यह बात प्रायः सभी वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। सो सूर्य द्वारा उत्पन्न होने वाली जीवनी शक्ति को ही यहां "**बालखिल्य**" नाम दिया गया है। यही इस कथा का आशय है, आपने इस कथा में "**वीर्य**" शब्द का जो अश्लील अर्थ समझा है वह आपकी भूल है, यदि आप हठ करेंगे तो स्वयं लज्जित होना पड़ेगा क्यों कि आर्य पाठशालाओं में भी तो कन्याएं और कुमार इकट्ठे होकर "**आर्याभिविनय**" नामक पुस्तक का पाठ करते हुए प्रतिदिन कहते हैं कि—"**वीर्य्यमसि वीर्य्यमयिधेहि**" अर्थात् हे परमात्मन् ! आप वीर्य हो और हमें भी वीर्य दो, कहिए ? क्या आप निराकार बाबा से वही भद्दी चीज की मांग करते हैं ? जो कि आक्षेप करते हुए आपकी जुबान से निकली है।

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

सुनिए पण्डित जी महाराज ! इस शास्त्रार्थ में यह मेरी अन्तिम बारी है, आपने आरम्भ से अन्त तक एक भी प्रमाण ऐसा नहीं दिया जिससे यह पता चलता कि पुराण वेदानुकूल हों। इधर-उधर की ही हांकते रहे, जिन बातों का न कोई सिर था न पैर ! आप शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण और उस पर भी अनेक आचार्यों का भाष्य पेश करते हैं। उनकी हमारे लिए क्या मान्यता ? कहीं ले जाकर डाल दो उनको हमें क्या ? हमारे लिए वेद प्रमाण हैं। आपने आर्याभिविनय का नाम लेकर एक बात कही उसमें कहां यह है कि आप वीर्य हो, अपनी तरफ से उलटा-पलटा अर्थ करके लोगों को धोखे में डालना ही आपका काम है। नहीं तो सनातन धर्मी कैसे समझेंगे कि हमारे पण्डित जी ने तो कुछ भी नहीं कहा। पुराणों की जो-जो बातें हैं आप उन पर कितना भी पर्दा डालना चाहें, नहीं डाला जा

सकता। आप जीवन भर भी प्रयास करें कि किसी तरह पुराण वेदानुकूल सिद्ध हो जायें, नहीं हो सकते, उनमें जो-जो गन्दगी भरी पड़ी है जब तक आप उसे न निकालेंगे। देखिये पुराणों में लिखा है कि—"**कुब्जा सम्भोग से मरी**" ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड—४ अध्याय १०६ तथा "**राम से महर्षियों की भोगेच्छा**" पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय २७२, "**ब्रह्मा का अपनी पौती को देखकर वीर्य पात होना**" शिव० रुद्र० सती० अ० १६, "**महादेव का रण्डी बाजी करना**" शि०शतरुद्र०अ० २६, तथा···बीच में ही, यह बकवास बन्द करो चारों तरफ सनातन मण्डल में अशान्ति यह वाक्य श्री पण्डित माधवाचार्य शास्त्री जी ने कहे। तो बड़ी मुश्किल से शान्ति स्थापित् कराई गई तब पण्डित देवेन्द्रनाथ जी गर्जकर बोले—भाइयो, अब पोल खुलने लगी तो कैसा ताव पण्डित जी को आया, मैंने ये बातें निराधार नहीं कही, पते भी दिए हैं। आप इनके पुराणों में ये सब वेद विरुद्ध बाते देख सकते हो. जिनको पण्डित जी अपने विज्ञान से वेदानुकूल सिद्ध करने चले हैं। शिव पुराण में लिखा है कि—शिवजी नंगे होकर हाथ में लिंग पकड़कर ऋषि पत्नियों में पहुंचे ऋषियों ने बुरा माना और शिवजी की खूब (?) पूजा की और लिङ्ग कट जाने का शाप दिया। तत्काल लिङ्ग कट कर गिर पड़ा, परिणाम स्वरूप वह तीनों लोकों को भस्म करने लगा, इसीलिए सनातन धर्मी उस पर पानी सींचते हैं, ये सब बातें हैं जिनको मैं चाहता हूं कि पण्डित जी महाराज बतलावें कि ये सब कौन से वेद में लिखी हैं ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

भाइयों ! शास्त्रार्थ समाप्त होने को है। परन्तु समाजी पण्डित ने पूरे शास्त्रार्थ में एक भी बुद्धि की बात नहीं की। सारा समय व्यर्थ में बर्बाद कर दिया। इनका अन्तिम आक्षेप है कि "**नग्न शिव का ऋषि पत्नियों में जाना और लिङ्ग का टूट जाना**" सो महाशय जी यह कथा उस समय की है जब कि देहधारी प्राणियों का तो जिक्र ही क्या ? सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी और आकाश आदि चीजें भी······(बीच में)

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

(बीच में ही गर्ज कर) पण्डित जी यहां यह, फिलासफ़ी बयान करने की जरूरत नहीं, मैंने जितनी बातें कहीं उनको वेद में दिखाओ। अन्यथा पुराणों को वेद विरुद्ध घोषित करो।······(बीच में)

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आप चुप रहिए, यह मेरी बोलने की बारी का समय है। आपको बीच में बोलने का कोई अधिकार नहीं है।······(बीच में)······

श्री पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्यतीर्थ—

मैं प्रधान जी से प्रार्थना करूंगा कि मेरे सारे प्रश्नों का उत्तर तो पण्डितजी क्या देंगे ? मात्र एक या दो ही बातें दिखलवा दें कि यह वेदों में कहां पर है। मैं पुराणों को वेदानुकूल मान लूंगा। जुआ खेलना, व्यभिचार करना, चोरी करना ये सब पुराणों में मौजूद हैं। वेदों में भी दिखायें।

चारों तरफ तालियां ही तालियां········बोलो वैदिक धर्म की जय ! महर्षि दयानन्द की जय !! और इन्हीं जयकारों के साथ आज यह द्वितीय दिवस का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया। इस शास्त्रार्थ का प्रभाव बहुत ही अच्छा हुआ।

चौहत्तरवां शास्त्रार्थ--

स्थान : हैदराबाद (दक्षिण)

दिनांक : ५ जुलाई सन् १९३५ ई० (तृतीय दिवस)
विषय : स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेद विरुद्ध और कपोल कल्पित हैं।
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थ
(२) श्री पण्डित लोकनाथ जी "तर्क वाचस्पति"
(३) श्री पण्डित मन्साराम जी वैदिक तोप
(४) श्री स्वामी कर्मानन्द जी महाराज आदि
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री
अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) सर्वश्री महामहोपाध्याय— पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी,
(२) पण्डित जगत्प्रसाद शास्त्री इन्तखाबे हिन्द,
(३) पण्डित अखिलानन्द कविरत्न,
(४) पण्डित कालूराम शास्त्री
(५) पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री,
(६) पण्डित नित्यानन्द शास्त्री आदि
आर्य समाज के मंत्री : श्री चन्दू लाल जी
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित गोपालराव साहिब "एडवोकेट"
सनातन धर्म सभा (बेगम बाजार) के मन्त्री : श्री पण्डित हरिनारायण जी शर्मा (सारस्वत ओझा)
शास्त्रार्थ में हाजरी : पहले दिन की अपेक्षा २००० व्यक्ति अधिक

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री रामशंकर जी गुप्त" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं। "संकलनकर्त्ता"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने "सत्यार्थ प्रकाश" की भूमिका में और पृष्ठ ७२ में यह लिखा है कि मेरा मत वेद है, और "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में भी केवल संहिता भाग की वेद संज्ञा स्वीकार की है तदनुसार आर्य समाज का यह दावा है कि—हमारा मत मन्त्र संहितात्मक वेदों के सर्वथा अनुकूल है। परन्तु हमारा पक्ष है कि स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों में बहुत सी ऐसी बातें दर्ज हैं जो कि न सिर्फ वेद विरुद्ध ही है अपितु आर्य संस्कृति के प्रतिकूल-मानव मर्यादा के खिलाफ, एवं हिन्दुओं को कहने में आर्य किन्तु रहन सहन में ईसाई किम्वा नास्तिक बना डालने वाली भी है। प्रमाणार्थ हम कुछ प्रश्न उपस्थित करते है और आशा करते हैं कि महाशय बुद्धदेव जी उन्हें वैदिक सिद्ध करके दिखायेंगे तद्यथा— यह सब जानते है कि हिन्दुओं का सबसे बड़ा धार्मिक चिन्ह "**शिखा**" है, वेदादि शास्त्रों में-सन्यासाश्रमियों के अतिरिक्त शेष सब हिन्दूमात्र के लिए सदैव शिखा रखना परमावश्यक लिखा है यथा—"**यशसे श्रियं शिखां**" (यजुर्वेद १६-१२) तथा "**सदोपवीतिनाभाव्यं सदाबद्ध शिखेन च**" (स्मृति) अर्थात सदा शिखा बंधी रहनी चाहिए, इतिहास भी इस बात की साक्षी देता है कि यवन काल में शिखा की रक्षा के लिए हमारे लाखों पूर्वजों ने हल्दी घाटी और पानीपत के मैदान में अपने प्राणों तक को न्यौछावर कर दिया। विदेशी आक्रमणकारी छल से, बल से और लाखों तरह के प्रलोभन देकर हमारे इस चिन्ह को नष्ट करने के लिए सात सौ वर्ष तक पूरा प्रयत्न करते रहे परन्तु विगत शताब्दियों का रक्त रंञ्जित इतिहास कानों में अंगुली डालकर पुकार-पुकार कर कह रहा है कि हमें मस्तष्क फटाना पसन्द था परन्तु जीते जी अपनी शिखा के चार बालों को शत्रुओं के हवाले करना गवारा न था, अस्तु! जिस शिखा का इतना बडा महत्व है उसी शिखा के विषय में स्वामी दयानन्द जी वेदाभिमानी होने का व्यर्थ दावा करते हुए भी अपने सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २७२ में हुक्म देते है कि—"**उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिए, क्योंकि शिर में बाल रखने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है।**" कृपया बतलाइये स्वामी जी का यह आदेश किस वेद मन्त्र के अनुकूल है? तथा यह भी प्रकट कीजिए कि गर्मी-सर्दी का असर तो स्त्री-पुरुष दोनों पर समान रूप से ही पड़ता है। भारत उष्ण देशों में से एक है, खासकर, बंगाल, मद्रास, और निजाम प्रान्त तो और भी अधिक उष्ण है, ऐसी दशा में स्वामी जी की आज्ञानुसार एतद् प्रान्तीय न सिर्फ पुरुष समाजियों को ही अपितु उनकी श्री मतियों को भी मुण्डन करना आवश्यक है। (जनता में हंसी·········) उन मुण्डित मस्तक आर्य समाजन महिला समुदाय के कल्पित चित्र का जरा ध्यान तो कीजिए कि यह सीन (दृश्य) कितना भयंकर दीख पड़ेगा? टर्न टन टन ऽऽऽ···

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जनों! सुनो, मैं तो बड़ी आशा रखता था कि आज के शास्त्रार्थ में पण्डित जी कोई सैन्द्धातिक गम्भीर प्रश्न उपस्थित करेंगे परन्तु प्रश्न सुनने पर विदित हुआ कि वही सैकड़ों बार की कही-सुनी बातें पेश कर दी, अपने सारे

समय में, केवल एक प्रश्न किया, या यों कहिए कि जैसे-तैसे अपने समय को पूरा किया, सुनिये ! पण्डित जी के इस प्रश्न का उत्तर सुनिये ! जो पण्डित जी को सैकड़ों बार पहले भी दिया जा चुका है, परन्तु इनको इससे क्या ? इन्हें तो कुछ न कुछ कहना है, नहीं कहेंगे तो इनको कौन पूछेगा ? सुनों पण्डित जी को चोटी कटाने पर आपत्ति है—आचार्यउव्वट जो इन्हीं के माननीय आचार्य हैं हमारे नहीं, क्या कहते हैं ? जो वेद का मन्त्र पण्डित जी ने बोला है उसका भाष्य करते हुए कहते हैं कि—"**विगत शिखा सर्व मुण्डा**" विगत शिखा का अर्थ है सारा सिर मुण्डा हुआ शिखा सहित । इसी पर इनके दूसरे आचार्य महिधर जी कहते हैं कि—"**विगता शिखा येषां तम् विशिखा, शिखा रहिता, मुण्डितमुण्डा**" अर्थात् जिनकी चोटी नहीं रही वह विशिखा, शिखा रहित मुण्डे हुए सिर वाले । यहाँ भी चोटी कटी हुई है । "**उल्टा चोर कोतवाल को डाटे**" वाली कहावत के अनुसार पण्डित जी ने अपने घर को तो देखा नहीं, पहले अपने घर की गन्दगी तो साफ कर लो, दूसरे के साफ सुन्दर घर में आपको गन्दगी नजर आती है । स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कहीं भी चोटी कटाना नहीं लिखा केवल विशेष समय में या आपात स्थिति में कहा है वहां शब्द "**उष्णदेश**" नहीं है बल्कि "**अति उष्ण**" है । आप ग्रन्थों को पढ़ते हैं नहीं, मैं आशा करूंगा आप आगे कोई सैद्धान्तिक, गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठायेंगे जिससे इन बैठे हुए श्रोताओं को कुछ लाभ पहुंचे ।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि—"**प्रसूता का दूध छः दिन बालक को पिलावे, पश्चात धायी पिलाया करे**······ ······ **प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे**" यह आज्ञा किस वेद मन्त्र के अनुकूल है ? वेद में तो इसके प्रतिकूल स्पष्ट शब्दों में यह कहा गया है कि "**बच्चे के लिये उसकी माता का दूध ही परम पुष्टि कारक है**" देखिये वेद में कहा है "**उत्सं जुषस्व मधुमन्त मर्वन**" (१७-९७) निःसन्देह स्वामी जी का यह हुक्म इसाइयों की नकल है ।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

स्वामी जी ने जो छः दिन लिखा वह ठीक ही लिखा है, इतिहास में अनेकों प्रमाण मिलते हैं जहां धाई का उल्लेख मिलता है क्या वे सभी ईसाई थे ? पंण्डित जी कुछ सोच समझकर बोला करिये । वेद का वचन बोलकर आप कहते हैं कि—"वेद" माता के दूध को पुष्टिं कारक कहता है । तो हम कब कहते हैं ? या ऋषि दयानन्द जी कहते हों कि-माता का दूध जहर होता है या हानिकारक होता है, आपने न इतिहास देखा न वेद शास्त्र ! अगर कहीं गुरू चरणा में बैठकर पढ़ लिया होता तो यह ऊटपटांग प्रश्न न करते ।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि—"**स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करें, जिससे दूध स्त्रवित न हो ऐसा करने से दूसरे महीने पुनरपि युवति हो जाती है, तथा स्त्री योनि संकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य्यस्तंभन करे**" कहिये यह अश्लील वर्णन किस वेद मन्त्र में दर्ज है ? वेद तो ईश्वरीय ज्ञान का भंडार हैं, स्वामी जी ने वेदों के नाम पर इस प्रकार की कोकशास्त्रीय गन्दी बातें लिखकर उन्हें कलंकित कर डाला है ।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सब ग्रहस्थ जानते हैं कि जब स्त्रियों के बच्चे पैदा होते हैं तो उस समय उनके प्राय: सभी अंग शिथिल पड जाते हैं, तथा वे अतीव निर्बल हो जाती हैं, इसलिए प्रसव के अनन्तर आयुर्वेद शास्त्र में ऐसे अनेक प्रकार के उपचार लिखे हैं, कि जिनके प्रयोग से प्रसूताओं के वे सब अंग पुन: दृढ़ हो जाते हैं, और वे पूर्ववत् तन्दुरुस्त हो जाती हैं स्वामी जी महाराज ने भी अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में प्रसूता के लिए वैसी ही औषधियों के सेवन की शिक्षा दी है। जिनके लगाने से अंग अपनी पूर्व स्थिति में आ जाये इसमें बुरी बात क्या है ? वेद में भी स्पष्ट लिखा है- "**विष्णुर्योनिं कल्पयतु**" अर्थात्-योनि समर्थ गर्भ धारण के योग्य दृढ़ हो जानी चाहिए। न जाने पन्डित जी को इस प्रकार की बातों पर क्यों शंका है ? अगर चरक व सुश्रुत देख भी लेते तो यह अज्ञानियों की सी बातें न करते।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री -

आर्य समाजिक संस्कार विधि के अनुसार कन्या के विवाह की तिथि पूर्व से निश्चित नहीं की जा सकती क्योंकि स्वामी जी फरमाते हैं कि "**जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाये तब जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की हो उसमें विवाह करने के लिए प्रथम ही सामग्री जोड रखनी चाहिए**" देखिए संस्कार विधि पृष्ठ १२६, सो रजस्वला होने की ठीक तिथि पहले से नहीं जानी जा सकती दो चार दिन आगे पीछे हो जाने की प्राय: सम्भावना हो सकती है, इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने विवाह संस्कार के समाप्त होते ही तत्काल ससुर के घर में अथवा जनवासे में गर्भाधान कर डालने की लज्जापूर्ण आज्ञा दी है। कृपया बतलाइये ये बातें किस वेद के अनुकूल हैं ? हमारा दावा है कि ये बातें जहां वेद के विरुद्ध हैं वहाँ संस्कृति व सभ्यता के भी खिलाफ़ हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

स्वामी जी ने इस प्रकार की भाषा कहीं नहीं लिखी जो आपने बयान की हैं। आप कहीं दिखा दीजिए, स्वामी जी ने रजस्वला हो जाने के बाद पूर्ण यौवनावस्थापन्न कन्याओं के विवाह की शिक्षा दी है वेद भी इसका समर्थक है देखिये "**ब्रह्मचर्य्येणकन्या युवानं विन्दते पतिम्**" पन्डित जी महाराज ! बाल विवाह के कारण भारत गारत हो गया है। आज संसार के सभी सभ्य मनुष्य बाल विवाह के प्रतिकूल हैं। सो स्वामी जी ने भी गुड्डा-गुड्डी का विवाह न हो इसलिए पूर्ण यौवन को प्राप्त हो जाने पर ही विवाह की इजाजत दी है। छोटी उम्र में शादी होने पर क्या-क्या भयंकर परिणाम निकलते हैं, यह सभी जानते हैं ? जब विवाह का उद्देश्य ही सन्तानोत्पत्ति है तो इसमें लज्जा की क्या बात है ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

संस्कार विधि में पृष्ठ १४६ पर लिखा है कि "**विवाह में अग्नि परिक्रमा करते हुए अर्थात फेरे लेते समय वर कन्या के अतिरिक्त एक लट्ठबन्ध जवान पानी का घडा उठाये हुए उनके साथ-२ परिक्रमा करें**" यह बात न सिर्फ वेद के प्रतिकूल ही है अपितु एकाधिक पुरुषों के साथ फेरे लेने के कारण हिन्दू तहज़ीब के भी सर्वथा विरुद्ध है।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पण्डित जी शास्त्रार्थ समरांङ्गण में आने से पहले कम से कम कुछ तैयारी अवश्य कर लिया कीजिए, कोई तो प्रश्न ढंग का करो या यों ही समय बिताने आये हो ? महाराज जी ? वर भी एक राजा समान होता हैं। जैसे राजा के अंगरक्षक होते हैं वैसे ही अग्नि में कोई वस्त्र लटका हुआ न गिर जावे तथा घड़ा आदि लेकर कोई बूढ़ा तो चलने से रहा ! जवान ही चलेगा, उसे लेकर साथ उनके उनकी रक्षार्थ चल ले तो इसमें कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा ? शादी तो वर की ही हो रही है। कन्या भी उसी के साथ ब्याही जावेगी ना कि पानी का घड़ा लेकर चलने वाले के साथ ! आप अपनी कहो जब आप लोग कन्या का मुंह ढांपकर स्वयं दोनों पण्डित जी बात वर की तरफ से वर को कहनी चाहिए वह वर वाला पंडित कहता है तथा जो बात कन्या से कहलवानी चाहिए उसे कन्या पक्ष का पंडित कहता है उस समय ऐसा लगता है जैसे वर-कन्या की शादी नहीं बल्कि दोनों पौराणिक पण्डितों की शादी हो रही है जनता में अपार हंसी... ... ...। कुछ अकल की बात करिये, और सैद्धान्तिक प्रश्न करिये।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

संस्कार विधि में लिखा है कि वर-वधू, विवाह से पूर्व सम्मिलित स्नान करते समय परस्पर एक दूसरे के मुत्रेन्द्रिय को-"**इमम् ते उपस्थं मधुना संसृजामि**" इत्यादि मन्त्र बोलते हुए संयुक्त हों। कहिये यह वहशियाना हरकत किस वेद के अनूकूल है ?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पण्डित जी ! जो शब्द आपने बोले हैं, क्या वह ज्यों के त्यों आप संस्कार विधि में दिखला सकते हैं ? ...... (माधवाचार्य जी का बगलें झांकना.........)कहिये मैं तभी शास्त्रार्थ आगे चलाऊंगा, अपने पास बैठे अन्य विद्वानों से पूछ लीजिए, हो सकता है ये ही कहीं आपको पता बता दें कि ये शब्द संस्कार विधि के फलां पृष्ठ पर विद्यमान हैं... ... ... नहीं बता सकते तो झूठ बोलकर क्यों लोगों को भ्रम में डालते हो ? वहां स्वामी जी ने साफ लिखा है कि शुद्ध होकर स्नान करके वर-वधु विवाह संस्कार में सम्मिलित हों। क्या पंडित जी आप बिना एक माह से स्नान किये ही पंडतानी के साथ विवाह में बैठे थे ? (चारों तरफ हंसी... ... ...) आपको स्नान करने में भी न जाने क्या बुराई नजर आई ? क्या आप वेदों में दिखा सकते हैं कि स्नान नहीं करना चाहिए, या शुद्ध नहीं रहना चाहिए? तो हम आज ही अपनी हार मान लेते हैं। सन्नाटा... ...

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

संस्कार विधि के पृष्ठ ५५ पर लिखा है कि पति को अपनी औरत के बालों में तेल डालकर अपने हाथों से मांग पट्टी निकाल कर जूड़ा(चोटी) बांधना चाहिए। इस प्रकार की निलज्ज चेष्टायें प्रायः कामुक लोग किया करते हैं परन्तु स्वामी जी ने इस प्रकार के आदेश वेदों के नाम पर देकर उन्हें बदनाम किया है, कहिये यह लीला किस वेद में दर्ज है ?

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

यह सभी जानते हैं कि पति पत्नी के बीच में कुछ भी अन्तर नहीं रहता, सो यदि स्वामी जी ने यह लिख भी दिया तो कौन सा अनर्थ हो गया ? पति पत्नी परस्पर एक दूसरे को साफ देखना पसन्द करते ही हैं, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अपने आप को स्वच्छ रखना ही चाहिए । यह सब विधान सूत्रग्रन्थो के भी अनूकूल है, जो सनातन धर्म के शास्त्रों में भी मौजूद है, क्या पण्डित जी ने इस बात को अपने ग्रन्थों में नहीं देखा, या वहां अपने ग्रन्थों में पढ़ते समय आंखों में मोतिया उतर आया था ? (जनता में हंसी··· ··· ···

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

संस्कार विधि में लिखा है कि "**खिचडी में पुष्कल घृत डालकर गर्भिणी स्त्री अपना प्रतिबिम्ब उस घी में देखें तथा उस समय पति स्त्री से पूछे "किं पश्यसि" स्त्री उत्तर देवे "प्रजां पश्यामि" तब उस खिचडी को खावे**" यह छाया-दान को खा जाने की लीला किस-किस वेद मन्त्र के अनुसार है ? इसके अतिरिक्त अपने मुख की परछाई देखते हुए भी ऐसा झूठ बोलने का विधान करना कि "**मैं इसमें औलाद देखती हूँ**" स्वामी जी का नैतिक पतन है, आशा है महाशय जी मेरे इस प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेंगे । इसे पहले प्रश्नों की भांति उपहास में नहीं उडायेंगे ।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

प्रायः देखा जाता है कि स्त्रियों को घृत दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थों के खाने में कम रुचि होती है वह भी खास कर गर्भवती स्त्रियों को । उन्हें चटपटे पदार्थ ज्यादा पसन्द आते हैं । और वे पौष्टिक पदार्थों के तो नजदीक भी नहीं जाती, जबकि उस अवस्था में पौष्टिक पदार्थ उनके लिए अत्यन्त जरूरी होते हैं । ऐसी अवस्था में उनको घृत आदि का देना आवश्यक होता है । उसका माध्यम स्वामी ने अगर खिचडी बता दिया तो इसमें क्या दोष आ गया ? परन्तु पण्डित जी को तो कुछ न कुछ कहना है । चाहे उस बात में कोई सार हो या न हो, मैंने पण्डित जी की सभी बातों का उत्तर दे दिया । (इस प्रकार यह इस शास्त्रार्थ कड़ी का तीसरा दिवस भी शान्ति पूर्वक व्यतीत हुआ) ।

□ □

पिचहत्तरवां शास्त्रार्थ--

स्थान : हैदराबाद (दक्षिण)

दिनांक : ६ जुलाई सन् १९३५ ई० (चतुर्थ दिवस)
विषय : मूर्ति पूजा
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री, सांख्यतीर्थ
(२) श्री पण्डित लोकनाथ जी "तर्क वाचस्पति"
(३) श्री पण्डित मन्साराम जी वैदिक तोप
(४) श्री स्वामी कर्मानन्द जी महाराज आदि
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री
अन्य उपस्थित शास्त्रार्थ महारथी : (१) सर्वश्री महामहोपाध्याय—
पण्डित गिरधर शर्मा चतुर्वेदी,
(२) पण्डित जगत्प्रसाद शास्त्री इन्तख़ाबे हिन्द,
(३) पण्डित अखिलानन्द कविरत्न,
(४) पण्डित कालूराम शास्त्री
(५) पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री,
(६) पण्डित नित्यानन्द शास्त्री आदि
आर्य समाज के मंत्री : श्री चन्दू लाल जी
शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पण्डित गोपालराव साहिब "एडवोकेट"
सनातन धर्म सभा (बेगम बाजार) के मन्त्री : श्री पण्डित हरिनारायण जी शर्मा (सारस्वत ओझा)
शास्त्रार्थ में हाजरी : लगभग १५ हजार

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "**श्री रामशंकर जी गुप्त**" जलेसर, (एटा) निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।
"संकलनकर्ता"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

भाइयों आज का विषय "**मूर्ति पूजा**" है। बुतपरस्ती से जो जो हानियां हैं मैं उन सबको पेश करता हूं, आशा है पण्डित जी जवाब देने की कृपा करेंगे। मूर्ति पूजा से सबसे पहली हानि यह है कि वह हमें परमेश्वर से निडर करके पाप करना सिखाती है, जैसे पुराणों में वर्णन आता है कि एक बार एक शिव पूजक मर गया, वह पापी था उसे पकडने के लिए इधर यमदूत आये उधर शिवदूत आ पहुंचे, दोनो में खूब झगडा हुआ। आखिर शिवदूतों की विजय हुई उन्होंने आदेश दिया कि-जो कोई त्रिपुण्ड भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वाला हो, फिर चाहे वह कितना भी पापी क्यों न हो तुम उसे मत पकडना। अगर कोई सरकारी चपड़ास पहनकर किसी भले मानस को कत्ल कर दे तो सरकार उसे कभी माफ़ नहीं करेगी। परन्तु पुराण की यह कथा शिवपूजक को पाप करने की खुली छुट्टी देती है क्या न्यायकारी सर्वशक्तिमान परमात्मा के विषय में यह सम्भव हो सकता है? और सुनिये—एक भिखारिन चाण्डाल कन्या को एक दिन भीख न मिलने के कारण विवशता से भूखी रहना पड़ा। माँगने पर किसी मनुष्य ने उपहास में उसके हाथ पर एक बेलपत्र रख दिया, जो चिडकर इस कन्या ने परे फेंक दिया, और इत्तफाक से वह बेल-पत्र निकटस्थ शिवलिङ्ग पर जा गिरा क्षुधातुर होने के कारण रात भर नींद भी न पडी, जिस रोज यह घटना घटी संयोग वश उस दिन शिवरात्रि थी, बस! फिर क्या था? यह लाचारी से भूखों मरना उसका उपवास में समझा गया, तथा कूडे करकट की तरह झुंझलाकर पटका हुआ बेल पत्र पूजन हो गया, और भूख सरदी से रातों का जगना, जागरण हो गया, और वह भिखारिन इस पुण्य से सीधी शिवलोक को चली गई। आगे सुनिये, ऐसी ही कथा श्रीमद्भागवत में "**अजामिल पापी**" की लिखी है। वह जन्म से शराबी, कबाबी, व्यभिचारी रहा परन्तु अन्तमें मरते समय अपने बेटे नारायण को एक बार आवाज देने मात्र से नारायण भगवान प्रसन्न हो गये, और सब पाप क्षमा करके उसे बैकुण्ठ ले गये। "**पदम पुराण उ० २७२ अ०**"में कथा आती है कि जिस समय रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक हुआ, तो अनेक मुनि उनके सुन्दर रूप को देखकर मोहित हो गये, और रामचन्द्र जी से प्रार्थना की कि आप हमसे संग कीजिए, इस पर उत्तर मिला कि इस अवतार में, मैं ऐसा न करुंगा। हाँ! द्वापर युग में तुम गोपिका बनना, मैं कृष्ण बनकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करुंगा सो वैसा हो किया गया, श्रीमद्भागवत में साफ लिखा है कि काम से या क्रोध से भी जो भगवान को याद (स्मरण) करता है उसका भी कल्याण हो जाता है जैसे कामसक्त गोपियों का और क्रोधी शिशुपाल का हो गया था। कहिये पण्डित जी जब आपके यहां ऐसी-२ शिक्षाएं मौजूद है, फिर कोई कैसे अपने सदाचार को कायम रख सकता है? जनता में सन्नाटा ···

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनो! आप सबको मालूम ही है कि आज के शास्त्रार्थ का विषय है "**मूर्तिपूजा**"! परन्तु मेरे सामने मेरे प्रतिपक्षी क्या बखान कर रहे हैं? आपने सुन ही लिया। आज का विषय महाशय जी "**मूर्ति पूजा**" है। जिसमें आर्य समाज को वेद प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध करना चाहिए था कि-"**ईश्वर की मूर्ति नहीं हो सकती**" अथवा वेद में मूर्ति

पूजा न करने की आज्ञा दी गई है। परन्तु मेरे प्रतिपक्षी ने जितने भी प्रश्न किए, उनका मूर्ति पूजा से दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि आपने पुराणों की कुछ कथाएं मनमाने ढंग से सुनाकर केवल यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि मूर्ति पूजा से अमुक-२ हानियां होती हैं, महाशय जी यदि पुराणों के शास्त्रार्थ में ये प्रश्न उपस्थित करते तो उचित होता। कल हम समाज के ऐसे-२ प्रश्नों का उत्तर प्रदान कर ही चुके हैं, जिनको आपने हवा में उड़ाना चाहा था, यदि इन प्रश्नों का भी अरमान बाकी था तो कल या उससे पहले दिन खुशी से पुराणों पर शास्त्रार्थ कर सकते थे, अथवा आज ही यदि सभा अध्यक्ष आज्ञा करें और महाशय जी मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ कर सकने की अपनी असमर्थता प्रकट करें तो हम प्रसन्नता पूर्वक इन सब प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार हैं। परन्तु मूर्ति पूजा विषय कायम रखते हुए इस प्रकार के प्रश्न करना स्पष्ट विषयान्तर में जाना है। यदि आज कोई विद्वान शास्त्रार्थ का मध्यस्थ होता तो वह महाशय जी के प्रश्नमात्र सुनने के बाद विषयान्तर दोष के कारण आर्य समाज की पराजय घोषित कर देता! अस्तु, मैं जनता का ध्यान इस तरफ आकृष्ट करने के बाद अब महाशय की के प्रश्नों का उत्तर देता हूं, अगरचे विषय पर रहते हुए महाशय जी के विषयान्तरस्थ प्रश्नों का उत्तर देने की मुझ पर कुछ भी जिम्मेवारी नहीं है तथापि कुछ अपठित लोगों की किम् वा स्वयं महाशय बुद्धदेव जी को भी अपने निस्सार प्रश्नों के वजनदार होने का गर्व बाकी न रहे इसी लिए यह प्रयत्न है सुनिये,-महाशयजी ने मूर्ति पूजा पर पहला आक्षेप यह किया है कि मूर्ति पूजक ईश्वर से निडर होकर पाप करने लग जाता है। उदाहरण में आपने चार कथाएं पेश की हैं, इनका यह दावा सरासर गलत है। क्योंकि जिन उदाहरणों के आधार पर आप अपने पक्ष की पुष्टि करना चाहते हैं, उलटे वे उदाहरण आपके पक्ष को गिराते हैं, जनता अच्छी प्रकार समझती है कि वेदादि शास्त्रों में रोचक, भयानक और यथार्थ तीन प्रकार के वचन पाये जाते हैं। ये सब कथायें भी रोचक प्रणाली के अनुसार मनुष्यों को ईश्वर भक्त होने के लिए प्रेरित करती है सो कैसे ? इन सभी कथाओं से यह दर्शाया गया है कि अगर अनजाने में ईश्वर भक्ति का यह फल मिलता है तो अगर सचमुच सच्ची निष्ठा से उस परम पिता परमात्मा की भक्ति की जाए तो अवश्य ही उद्धार हो जाये। पुराणों को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है ! उनमें अलंकार रूप में सभी विद्याएं मौजूद हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

मूर्ति से खास कर यह हानि है कि वह हमें असली परमात्मा की उपासना से हटाकर जड़ वस्तुओं का उपासक बनाती है, जिसके करने से हम घोर अन्धकार में गिर जाते हैं, देखिये वेद क्या कहता हैं ? "**अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽसं भूतिमुपासते**" अर्थात जो जड़ प्रवृति से बनने वाले पदार्थों की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार के गढ्ढे में गिर जाते हैं। तभी तो विदेशी हमारा उपहास उड़ाते हैं कि देखो जो परमात्मा समस्त पदार्थों को बनाता है परन्तु मूर्तिपूजक हिन्दू उस परमात्मा को भी बनाने की हिम्मत रखते हैं। (जनता में हंसी··· ··· ···) दूसरे मूर्ति पूजा में जिन मूर्तियों की पूजा की जाती है पुराणों में उनके आचार अतीव भ्रष्ट लिखे हैं इस लिए उपास्य देवताओं के दुराचारों का प्रभाव उपासना करने वालों के चरित्र पर भी अवश्य पडेगा और वे भी उन देवताओं की तरह पाखण्डी व दुराचारी हो जायेंगे। उदाहरण के तोर पर सुनिये-देवताओं का तो कहना ही क्या है पहले देवगुरू की कथा सुनिये बृहस्पति की भावज अति सुन्दर थी, बृहस्पति ने उससे बलात्कार किया, वह गर्भ से थी, अन्दर बैठे बच्चे ने कहा कि चचा ऐसा मत कीजिए। यहां पेट में दूसरे की जगह नहीं है इतने पर भी जब बृहस्पति जी अपने नापाक इरादे से नहीं हटे तो गर्भस्थ बालक ने अपने पैर अड़ा दिए, बृहस्पति क्रोधित हो गया, तो बृहस्पति ने उस बच्चे को अन्धा हाने का शाप दे दिया। तदनुसार "**दीर्घतमाः जन्मान्ध**" पैदा हुए यह कथा महाभारत के आदि पर्व में भी विद्यमान है। और सुनिये-जिस सूर्य को आप लोग नवग्रह पूजन करते हुए, मूर्तिपूजक

पूजते हैं, जरा उसकी भी लीला सुनिये सूर्य की भतीजी का स्वयंवर हुआ, भतीजी ने चचा को ही पसन्द कर लिया सूर्य ने कहा भतीजी से विवाह करना पाप है। वह बोली, ब्रह्मा ने अपनी बेटी व पौत्री से, विष्णु ने अपनी मां से, और शिवजी ने अपनी बहिन से विवाह किया जिससे वे श्रेष्ठ हो गये। बस ! सूर्य के पास इसका कोई जबाव नहीं था, और दोनों का विवाह हो गया। कहिये ये सब मूर्ति पूजा के कारण ही तो है ? अगर हम लोग उस सर्वज्ञ, निराकार परम पिता परमात्मा की पूजा करने लग जायें तो इन सब दुराचारी देवी देवताओं की छुट्टी हो जावेगी। अन्यथा जब तक ये कलंक हमारे सिर पर है तब तक किसी का कोई उद्धार नहीं हो सकता। जब ये देवी देवता जिनकी पूजा की जाती है स्वयं ही भटकते रहे तथा सारी आयु गलत कार्य करते रहे तो यह उपास्य देव कैसे हो सकते हैं ? जबकि वेदों में सैकड़ों प्रमाण मौजूद हैं कि उस परमात्मा की मूर्ति नहीं है यह सब देश को गारत करने का ठेका आप जैसे छाप तिलक वालों ने ही लिया हुआ है। ··· ··सनातन धर्म समुदाय में कोलाहल···" टर्न टन टन

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आपका दावा है कि जिन देवताओं की पूजा की जाती है पुराणों में उनके चरित्र अतीव भ्रष्ट लिखे हैं, जिससे उपासक भी दुराचारी हो जाता है। यदि हम क्षण मात्र के लिए आपका यह दावा सच भी मान लें तो मूर्ति पूजा वाले सिद्धान्त पर कुछ भी दोष नहीं आता। क्योंकि आप हमारे अन्य जिन देवताओं के बारे में भ्रष्ट चरित्र नहीं लिखा उनकी पूजा करिये, जैसे विश्वक सैन, भगवान रामचन्द्र जी, आदि क्या तैंतीस करोड देवताओं में से आपको दस-पांच भी ठीक चरित्र वाले नजर नहीं आये अगर आए हैं तो आप बाकी को छोडकर उनकी ही पूजा आरम्भ करिये यदि और कुछ भी नहीं तो स्वामी दयानन्द ने संस्कार विधि के नामकरण संस्कार वाले प्रकरण में २७ नक्षत्रों और पन्द्रह तिथियों के देवता लिखे हैं, उनकी ही उपासना कीजिए आपने २-३ उदाहरण देकर देवी देवताओं पर भ्रष्टाचार का व्यर्थ आरोप लगाया है। अगर आप पुराणों को सही तरीके से उनके सार को समझ सकते तो आज यह नौबत न आती। आपने कहा-वेदों में निराकार परमेश्वर का वर्णन हैं कोई एक दो मन्त्र तो पेश करो। खाली कहने मात्र से नहीं माना जा सकता। परन्तु इसमें आपका दोष नहीं है, क्योंकि जब कोई मन्त्र ऐसा है ही नहीं जिससे परमेश्वर निराकार साबित हो तो आप बोलें भी कहां से ? मैंने आपके सब प्रश्नों के उत्तर दे दिये हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

मूर्ति पूजा करने से मनुष्य के विचार तंग हो जाते हैं और उसे परस्पर निन्दा करने की आदत पड़ जाती है शिव पुराण लिङ्ग पुराण तथा शैव पुराणों में विष्णु के उपासकों की निन्दा लिखी है, यहां तक लिखा है, कि जो वैष्णव होकर शिव का पूजन करता है विष्ठा(टट्टी)का कीडा बनता है। इसी प्रकार भागवत व पदम पुराण आदि वैष्णव पुराणों में शिव के उपासकों को आडे हाथों लिया है। लिखा है कि शिव के उपासक नरक में पडते हैं वही हाल अन्यान्य देवी देवताओं के उपासकों का दर्ज है, ऐसी स्थिति में समस्त पुराणों का समन्वय करने पर यही सिद्धान्त स्थिर होता है, कि ये सभी मूर्ति पूजक नरक में जाते हैं। इस प्रकार मूर्ति पूजा करने से और भी कई प्रकार की हानियां हैं जिनका आगे चलकर जिकर किया जावेगा वेदों में मूर्ति पूजा का निषेध जगह-२ पर मिलता है, हमारे पुजारी श्री माधवाचार्य जी को बड़ी शिकायत है कि वेदों का प्रमाण नहीं देते देखिये, –"**स पर्यगाच्छुक्रमकायम् अव्रणं अस्नाविरँ शुद्धम पाप विद्धम्**" तथा "**न तस्य प्रतिमा अस्ति**" अर्थात उस परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है वह परमात्मा छिद्ररहित, शरीर रहित, शुद्ध व पाप रहित है। और इससे स्पष्ट व साफ कौन सा प्रमाण आपको चाहिए यहाँ तक कि आपके मान्य ग्रन्थों में, तथा पुराणों में भी मूर्ति पूजकों को अधमी, व नरक में जाने वाला, बैलों का

चारा ढोने वाला गधा, और न जाने क्या-२ कहा गया है ? पर उनको देखे कौन ? मुझे विश्वास है, अगर आप निष्पक्ष भाव से एक बार भी इन ग्रंथों का अवलोकन करेंगे तो यह पुराण लीला उसी समय त्याग देंगे।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनों ! पण्डित जी का यह चौथा व अन्तिम आक्षेप आप लोगों ने सुना। इन्होंने कही इसमें कोई अकल की बात ? क्या उत्तर दिया जावे ? तो भी जैसा पूछा है, जवाब तो देना ही पड़ेगा सुनो ! इन्हें ये सब पुराणों की बातें निन्दा युक्त लगती हैं। स्वामी दयानन्द ने जो अपने ग्रंथों में छुरा, पटेला, ऊखल, मूसल व उस्तरे की पूजा करना लिखी है। वह इन्हें वैदिक लगती हैं ? वह निन्दा युक्त नहीं लगती कुछ शर्म करो...जनता में शोरोगुल...महाशय जी जुबानी लीपा पोती करने से काम नहीं चलेगा मेरे पास गुरुकुल काँगडी के स्नातक पं० रामगोपाल विद्यालंकार की भाषा टीका जो उन्होंने संस्कार विधि पर की है यहां मौजूद है जिसमें उस्तरे को नमस्कार, छुरे के सामने मष्तक झुकाना, आदि-२ सब विद्यमान हैं। जड़ोपासना का आक्षेप हम पर नहीं बल्कि आप पर आता है नहीं तो वह ऋषि दयानन्द का चित्र है यह कोई आपका उपास्य देव नहीं हैं। इस पर जूता मार कर दिखाइये, तो हम जानें कि आप जड़ोपासना नहीं करते।

नोट—

पण्डित माधवाचार्य ने यह उपरोक्त वाक्य ऐसे हाव-भाव व उग्र उत्तेजक भाव में कहें कि पण्डित बुद्धदेव जी इन्हें सुनकर आपे से बाहर (अत्यन्त क्रोधित) हो गये और आवेश में आकर बोले—

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

लीजिये मैं आपके सामने इस कागज के टुकड़े पर जूता मारता हूं। हम लोग जड़ के उपासक नहीं हैं। हम केवल चेतन स्वरूप उस निराकार परमेश्वर का ही ध्यान करते हैं ...बीच में...।"

सभाध्यक्ष, श्रीमान सेठ हरनाथ जी राठी—

"मैं ऐसा अनुचित कार्य अपनी अध्यक्षता में अथवा अपने सामने नहीं होने दूंगा, स्वामी दयानन्द जी महाराज, सन्यासी थे, त्यागी, तपस्वी विद्वान् ब्राह्मण थे, इस नाते वे हमारे भी पूज्य हैं।···बीच में ही···"।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

यह लीजिये में इसको लात मारता हूं। और **"धम्म से उस चित्र को पैरों से ठुकरा दिया."** कहिये अब जड़ोपासना कौन करता है ?···श्रोताओं में चारों तरफ सन्नाटा ही सन्नाटा···"

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

पण्डित बुद्ध देव जी आपने अभी मात्र लात से ठुकराया है, तो भी मैं आपको एक रुपया देता हूं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

मैं रुपये पर भी लात मारता हूं।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आप उस तस्वीर पर जितने जूते लगाओगे मैं उतने ही रुपये आपको इनाम में दूंगा और वह एक रुपया अगर कम है तो लो दश रुपये और लो, अब ग्यारह रुपये हो गये।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

यह ग्यारह का सिलसिला सनातन धर्मियों को ही मुबारक हो।

नोट—

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार के इस कुकृत्य पर सारी जनता क्रोधित हो उठी, और जनता में चारों तरफ कोलाहल मच गया, जो प्रयास करने पर भी शान्त न हो सका, अन्त में सभाध्यक्ष ने विचार विनिमय के बाद शेष चारों होने वाले शास्त्रार्थ मुलतवी (निरस्त) कर दिये।

[उपरोक्त शास्त्रार्थों के विषय में मेरे विचार]

हैदराबाद (दक्षिण) निज़ाम राज्य में चार शास्त्रार्थ—

हैदराबाद में दिनांक ३ से ६ जौलाई सन् १९३५ ई० में चार शास्त्रार्थ हुए। प्रथम शास्त्रार्थ ३ ता० को **"वर्ण व्यवस्था"** पर तथा दूसरे दिन **"क्या पुराण वेदानुकूल हैं"** इस विषय पर एवं तीसरे दिन **"क्या स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थ वेदानुकूल हैं"** विषय पर हुए, चौथा शास्त्रार्थ **"मूर्ति पूजा"** पर था। इसका विषय था **"क्या मूर्ति पूजा वेदानुकूल है ?"** तथा शास्त्रार्थ के प्रधान **"श्री गोपाल राव साहिब"** नियत थे। उस दिन शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से **"श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार"** थे तथा सनातन धर्म की ओर से—**"श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री"** नियुक्त हुए।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी बहुत चतुर थे, वह अपनी चतुराई से पण्डित बुद्धदेव जी को विषयान्तर में खींच ले गए और कह दिया कि—**"यदि आप मूर्ति पूजा नहीं मानते हैं तो स्वामी दयानन्द की मूर्ति पर जूता मार दीजिये"** पण्डित बुद्धदेव जी योग्य पण्डित थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, पर उनको जोश में होश नहीं रहता था, सुना है कि सनातन धर्म के प्रधान जो इस शास्त्रार्थ में नियुक्त थे उन्होंने भी स्वामी दयानन्द के चित्र पर जूता मारने को मना किया और कहा कि···**"वे हमारे भी पूज्य थे उनके चित्र पर ऐसा प्रहार मैं अनुचित मानता हूं"** मैं कहता हूं—यह कदापि नहीं होना चाहिए"। परन्तु पण्डित बुद्धदेव जी ने उस चित्र को एक कागज का टुकड़ा बताकर उस पर जूता धप-धप मार ही दिया। आर्य समाज में इसकी जो प्रतिक्रिया हुई वह बहुत उत्तेजना पूर्ण

थी "महाशय कृष्ण" जी ने अपने साप्ताहिक पत्र **"प्रकाश"** में पण्डित बुद्धदेव जी के विरुद्ध अनेक कड़े-कड़े लेख लिखे। महात्मा हन्सराज जी को किसी ने कभी भी क्रोधित होते हुए नहीं देखा था। पर इस बुरे समाचार को सुन कर उनको भी क्रोध आ गया, और उन्होंने क्रोध में आकर कहा कि—"क्या वहां कोई आर्य समाजी नहीं था ? जो उस (बुद्धदेव) की बूथी (थूथड़ी) तोड़ देता"।

उस शास्त्रार्थ में पौराणिक शास्त्रार्थ महारथी "श्रीकृष्ण शास्त्री" जी भी विद्यमान थे। श्री कृष्ण शास्त्री ने तभी उस काण्ड के बाद एक छोटी सी पुस्तक भी छपा दी उसका नाम था—**"स्वामी दयानन्द के शिर पर पण्डित बुद्धदेव का जूता"** पौराणिकों में वह पुस्तिका खूब बिकी। पण्डित श्री कृष्ण शास्त्री जी ने माधवाचार्य जी के इस वाक्य को एक अमोघ शस्त्र मानकर इसे श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी के साथ मियानी (सरगोधा) वर्तमान पाकिस्तान में हो रहे शास्त्रार्थ के बीच बड़े जोश के साथ कह दिया कि—**"यदि आप मूर्ति पूजा को नहीं मानते तो स्वामी दयानन्द की मूर्ति पर जूता मार दीजिए"**। ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी हँसे ! और कहने लगे, श्री शास्त्री जी ! आज भंग भवानी का अधिक सेवन कर आये हो क्या ? होश में आओ। आज आपके सम्मुख ठाकुर है, आप का इष्ट देव "जिन ठाकुरों की पूजा आपके पूर्वज सैंकड़ों वर्षों से करते आये" आज उन ठाकुरों में से एक आपके सम्मुख हैं ! पण्डित जी महाराज मेरा उत्तर सुनिये ! हम मुसलमान नहीं हैं, जो मूर्ति को बनाना गुनाह मानते हैं। हम तो मूर्ति बनाते और रखते हैं। पर हमारा सिद्धान्त यह है कि, मूर्ति-मूर्तिमान की ही बन सकती है, अमूर्त—निराकार परमेश्वर की नहीं। मूर्तिमान-मनुष्यों की मूर्ति-चित्र बनाना, अपने घरों में लगाना और उन चित्र वालों के चरित्रों को याद रखना कर्त्तव्य है, चित्रों को देखो और उनके चरित्रों को याद करो। मूर्ति किसी भी मूर्तिमान की हो परन्तु वह खाती, पीती और सोती, जागती नहीं हैं। सुनिये और कान खोलकर सुनिये—**"मूर्ति पर जूता मारना और फूल चढ़ाना यह दोनों ही मूर्खतायें हैं"**। दूसरी बात सुनिये—जिसको पूजना न हो उसको जूता मारना ! यह आपको क्या सूझा ? आपके सिर पर जो पगड़ी बंधी है यह किसी का इष्टदेव नहीं है आप इसको मेज पर रख कर-पांच जूते मार दीजिये और अभी नकद पांच रुपये लीजिये। इस पर इस तरह अट्ठहास हुआ कि फिर श्री कृष्ण शास्त्री जम ही न सके, शास्त्रार्थ इसी पर समाप्त हो गया, पौराणिकों ने भी माना कि—प्रश्न मूर्खता युक्त था और उत्तर अद्भुत बुद्धिमत्ता का प्रमाण !

मुझको शास्त्रार्थ के लिए निमन्त्रण आता है तो मैं लिखता हूं कि—**"शास्त्रार्थ कराना हो तो ठाकुर अमरसिंह जी (श्री अमर स्वामी जी) को बुलाओ"**। भीड़ भड़क्का करना हो तो मैं भी आजाऊंगा। उसी हैदराबाद वाले प्रश्न पर कितना बढ़िया युक्ति-युक्त और प्रभाव युक्त उत्तर है। श्री ठाकुर अमरसिंह(अमर स्वामी सरस्वती)जी मुझसे लगभग छः मास (आगरा मुसाफिर विद्यालय में)पढ़े हैं। मैं तो कहता हूं **"गुरु गुड़ ही रहे और चेला खांड हो गये"** परमेश्वर ने **"श्री अमर स्वामी जी"** को अद्वितीय विलक्षण तर्क बुद्धि, तथा कमाल की स्मरण शक्ति, प्रदान की है और उनकी शास्त्रार्थ निपुणता की प्रशंसा तो माधवाचार्य जैसे विपक्षीय पण्डित ने भी की है। अर्थात् **"अमर स्वामी जी की शास्त्रार्थ कला का लोहा तो विरोधी लोग भी मानते हैं"** यह थी, **"हैदराबाद शास्त्रार्थों की कहानी"** ! किमधिकम् लेखेन् !!

निवेदक—

"बिहारी लाल शास्त्री, काव्यतीर्थ"

(बरेली)

छियत्तरवां शास्त्रार्थ—

स्थान : लखनऊ (हुसनगंज पार) उ०प्र०

दिनाङ्क : ५ दिसम्बर सन् १९३७ ई० (तीन बजे)

विषय : क्या मूर्तिपूजा वेदोक्त है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

सनातन धर्म सभा के सभापति : श्री पण्डित गयाप्रसाद जी शुक्ल
बी० ए०, एल० एल० बी०

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्रीसन्तोष कुमार जी "कण्व" बरेली, निवासी द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं।
"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

वाचक वृन्द ! मूर्ति पूजा का विषय आर्य समाज और सनातन धर्म के विचार विनिमय या शास्त्रार्थ का प्रायः विषय रहा है । सन् १९३७ ई० की चार दिसम्बर को **"हुसन गंज पार—लखनऊ"** में ऐसा ही एक आयोजन हुआ था । जिसमें प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी वाग्मि प्रवर श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री ने आर्य समाज का प्रतिनिधित्व किया था, और सनातन धर्म की ओर से वक्ता थे श्री माधवाचार्य जी । इस शास्त्रार्थ को पुस्तकाकार में **"मूर्ति पूजा पर प्रामाणिक शास्त्रार्थ"** के नाम से श्री पण्डित बिहारी लाल शास्त्री ने प्रकाशित करा उसकी एक प्रति अपने प्रतिवक्ता तथा अन्य पौराणिक भाइयों पर भेज दी थी, तब इसका उत्तर—**"दयानन्दियों की लबड़ धौं धौं"** नाम से श्री पण्डित माधवाचार्य जी की ओर से प्रकाशित किया गया, पर इसकी कोई भी प्रति श्री पण्डित जी के पास नहीं भेजी गई, न किसी आर्य समाज को ही इसकी हवा लगने दी गई, किसी प्रकार यह पुस्तक पण्डित जी के हाथ पड़ ही गई । और उन्होंने श्री माधवाचार्य जी को लिखा कि—इसमें जो आक्षेप योग्य शब्द हैं इन पर ध्यान दीजिये । श्री माधवाचार्य जी ने इस पर मौन साध लिया । पुस्तक पर लेखक की जगह श्री पण्डित नीलकण्ठ जी शास्त्री का नाम था । पर ढूंढने पर भी उक्त शास्त्री जी का कहीं पता न चला । तदनन्तर विवश होकर पण्डित बिहारी लाल जी ने पण्डित सत्यनारायण जी पाठक, प्रकाशक तथा पण्डित श्री प्यारे लाल जी शास्त्री मुद्रक धर्म प्रैस मेरठ, पर ताजीराते हिन्द दफ़ा ५०० के अनुसार जनाब मिस्टर मजीद असकरी साहब फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट जिला बदायूं के यहां बदायूं में ही केस (वाद) उपस्थित किया, इसमें पण्डित माधवाचार्य और मुद्रक ने क्षमा मांग ली । प्रकाशक जी कहीं गुफा में जा छिपे । और अभियोग समाप्ति पर ही प्रकट हुए, अतः वे अछूते ही रह गये ।

अदालत में दिए गए क्षमापत्र की प्रतिलिपि—

"दयानन्दियों की लबड़ धौं धौं" पुस्तक में प्रकाशित श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री **"काव्यतीर्थ"** के सम्बन्ध में पृष्ठ १९-२० पर **"जमाने साज नम्बर एक के हैं"—"ठाकुर पूजन करते हैं", "भगवान कृष्ण के कीर्तन का अभिनय करते हैं"—"शुक्लाम्बर धरं विष्णु" के अनन्य उपासक हैं"** तथा **"धन प्राप्ति के लिए यत्नपूर्वक पहुंचते हैं"** इत्यादि अपमानजनक अनुचित आपत्तिजनक लेख हैं । खोज करने पर विदित हुआ कि वह **"निर्मूल"** है । अतः इनसे जो पण्डित जी को कष्ट हुआ है उसके लिये खेद प्रकाशित करता हूं ।

हस्ताक्षर—
"माधवाचार्य"
(कचहरी) बदायूं दिनांक २३-५-१९३९ ई०

नोट—

पण्डित माधवाचार्य जी के हाथ का लिखा हुआ हस्ताक्षर युक्त उपर्युक्त विवरण पत्र तथा इसी प्रकार का उर्दू में मुद्रक का लिखा हुआ विवरण श्रद्धास्पद पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री **"काव्यतीर्थ"** के पास सुरक्षित है (थी),

जिसकी यह प्रतिलिपि है। तथा बदायूं के एक प्रतिष्ठित सनातन धर्मी नागरिक ने उपरोक्त कार्यवाही पर धन्यवाद किया उसके पत्र की नकल भी सुरक्षित है। जो इस प्रकार थी—

पण्डित बिहारी लाल शास्त्री जी को एक प्रतिष्ठित सनातन धर्मी द्वारा धन्यवाद का पत्र -

"मेरे कहने से पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री ने मुकदमा ख़ारिज करा दिया और ऊपर लिखा पण्डित माधवाचार्य जी का लेख स्वीकार कर लिया इसके लिए मैं पण्डित बिहारी लाल जी को बहुत-२ धन्यवाद देता हूं।

निवेदक—

"रामनारायण श्रोत्रिय वैद्य"

कचहरी (बदायूं) दिनांक २३-५-१९३९ ई०

अब एक नज़र पण्डित माधवाचार्य जी कृत **"दयानन्दियों की लबड़ धौं धौं"** नामक पुस्तक पर भी डाल लीजिये, जो उक्त पण्डित जी ने बड़े गर्व के साथ लिखी, और न्यायालय में जो गत बनी वो आपके समक्ष ही है— इस पुस्तक व इस शास्त्रार्थ पर में संक्षेप में सार रूप ही प्रस्तुत करता हूं।

इस प्रामाणिक शास्त्रार्थ व "लबड़ धौं धौं" पर एक दृष्टि—

मूर्तिपूजा को न वैदिक सिद्ध कर सकते जनाब। जो लबड़ धौं-धौं हजारों साल तक करते रहे॥

संसार में मनुष्य का जन्म इसीलिए हुआ है कि यावज्जीवन सत्य की खोज करे, और जितना-जितना सत्य उसे मिलता जाये उसे स्वीकार कर जीवन में चरितार्थ करता चले। इस सत्य के सरल मार्ग को प्रदर्शित करने के लिए ही जगत में धर्म की सृष्टि हुई। परन्तु स्वार्थी चालाक लोगों ने अपनी चालाकी से जनता को सीधे मार्ग से भटका दिया। इसी लिए संसार में अनेकों मतमतान्तर फैल गये। कैसी दुख की बात है कि जो लोग अपने को धर्मोपदेशक कहते हैं उन्हें मिथ्या लिखते-बोलते वाक्छल करते और शास्त्रीय प्रमाणों को तोड़ते-मरोड़ते किंचत् भी लज्जा नहीं आती? सज्जन पुरुषों! पर ईर्ष्या वश निर्मूल दोषारोपण करने में भी इन्हें संकोच नहीं होता। लखनऊ में मूर्तिपूजा पर एक शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थकर्ता पंडित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ" ने उसे अपनी स्मृति से संक्षिप्त करके छपवाया और निवेदन कर दिया कि "यह शास्त्रार्थ हमने स्वस्मृति में लिखा है" जहां तक स्मृति ने काम दिया है कोई बात नहीं छोडी गई है। हां! भाषणों को संक्षिप्त करना पडा है परन्तु आशय नष्ट न हो इसका पूरा प्रयत्न किया है। मुख्य-मुख्य युक्ति व प्रमाण सब ही उद्धृत किये गए हैं। इस पर भी यदि श्रोताओं में से कोई सज्जन या शास्त्रार्थ कर्ता या सनातन धर्म सभा के अधिकारी कोई बात छूटी हुई या असत्य प्रमाणित करेंगे तो उसे अवश्य ही स्वीकार कर लिया जायेगा। इस पुस्तक को सनातन धर्म सभा के अधिकारी, शास्त्रार्थ कर्ता व विशेष-विशेष सनातनी पंडितों को भेज दिया गया था। पंडित परमेश्वरीदीन जी वैद्य के सिवाय अन्य किसी ने प्राप्ती तक की भी सूचना नहीं भेजी। हां! शास्त्रार्थ कर्ता से रशीद अवश्य ले ली गई थी। इसके कई मास पश्चात शास्त्रार्थ कर्ता पंडित माधवाचार्य जी ने उत्तर में **"दयानन्दियों की लबड धौं धौं"** नाम की पुस्तक लिखी और यत्र तत्र विक्रय की, पर आपने अपने प्रतिपक्षी जी के पास भेजने का सद्भाव नहीं दिखाया। यह पुस्तक वास्तव में "लबड धौं-धौं" ही है, इसमें गाली-गलोच या व्यक्तिगत आक्षेप के सिवाय सार भूत कुछ भी नहीं है। पंडित बिहारी लाल जी शास्त्री जैसे सरल हृदय और निःस्वार्थ आर्य जाति सेवक पर ऐसे

नीचतापूर्ण दोषारोपण-जो शिष्ठसम्मत नही कहे जा सकते, किये और अभियोग चलने पर फिर मान लिया कि यह "निर्मूल"दोष हैं। शास्त्री जी ने अपनी उदारता से अभियोग इतने पर ही हटा लिया। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द जी में ही दण्ड दिलाने की प्रवृति नहीं थी तो उनके अनुयायियों में क्यों हो ? केवल सत्य को स्वीकार करा देना भर ही अभियोग का उद्देश्य था। अब माधव जी की लबड-धों-धों देखिये ? पंडित सत्यव्रत जी ने निम्नलिखित पद्य शास्त्रार्थ में बोले थे पर माधव जी ने अपनी ओर से अशुद्ध तुकबन्दी घढ़ कर रख दी है, जिससे आर्य पंडित की बदनामी हो, असलियत में पंडित सत्यव्रत जी के बोले हुए पद्य निम्नलिखित थे।

नैवेदृशी लक्ष्मण पत्तनेऽभूत, सभा सभाऽस्ते न च भावि नीवा।
शास्त्रार्थ चर्चा कपटेन किंचित्, कुतूहलं चेतसि सन्तनोमि ॥१॥

पौराणिकं भाव मथापि विद्वन्, श्रृणुष्व यत्तल्लिखितं पुराणे।
यदाश्रयन्तो मनुजा असंख्याः, संख्यावतां हास्य पदं प्रयान्ति ॥२॥

मोहादवाची मबुधाः प्रतीचीम्, दिशाभु दीचीमपि पर्यटन्ति।
सच्चिन्मये मानस एव तीर्थे, स्वच्छे सुखं स्नातुमपारयन्तः ॥३॥ (पुराणम्)

श्री शाङ्करीं वाचमिमाञ्चश्रुत्वा, श्रद्धां च हित्वा जड़मूर्तिवादे।
विवाद हेवाक मिमं विहायं, सच्चित्सुऽखात्मान मुपास्व देवम् ॥४॥

न भूमिर्न चापोन वह्निर्नवायुः न चाकाश मास्ते न तन्द्रा व निन्द्रा।
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वशो, न यस्यास्तिमूर्तिस्तमीशं समीड़े ॥७॥ (दश श्लोकों)

स पर्यगाच्छुक्रमकायमेतम्, वेदस्य मन्त्रोऽपि वदस्य जस्त्रम।
कथं कथं मूर्तिमतो जऽस्य समर्चन ते सुमते ! विभाति ॥८॥

जानासि नाना विद्य पण्डितार्च्याम्, गीर्वाणवाणीमथ वेदवाणीम्।
तदोत्तरं देहि सुपथवाचा, मकायितुं कः समयस्तवायम् ॥६॥

माधवाचार्य जी की संस्कृत का नमूना [1]"विलसी शास्त्रार्थ" हमारे पास रक्खा है। यदि वह छपे तो उनकी योग्यता की पोल सब विद्वानों को ज्ञात हो जाय। "माधवो विजयते" के पद्यों में यदि विजय हो जाये तो कड खेतों के कडरवों से कायर भी रण जीत लिया करें ! आचार्य-महारथी आदि विरुदावली से योग्यता तो नही बढ़ जाती।

ओछे बडे न हो सकें विरुध बडाई पाय। कहो धतूरे सो कनक गहनों गढो न जाय ॥

नोट—

१. यह "बिलसी शास्त्रार्थ" मेरे पास भी था, परन्तु अब कहीं मिल नहीं रहा, मेरे विशाल पुस्तकालय में कई बार ढूंढ़ने का प्रयास किया गया परन्तु असफल ही रहे। अतः अगर किसी सज्जन के पास हो तो अवश्य भेजें मैं अगले भाग में प्रकाशित करा दूंगा। एवं उन सज्जन का आभार भी मानूंगा।

वैदिक धर्मका—
"अमर स्वामी सरस्वती"

आर्य पथिकों को "मिट्टी का शेर" बताने वाले को स्मरण रखना चाहिए कि-आर्य केशरी-मदमस्त मतंगों पर ही प्रहार किया करते हैं मूसकों पर नहीं, वे तो वैदिक वायु के हल्के झोंके से ही उड़ जाते हैं कहीं प्रचण्ड तर्क झंझार चले तो न जाने किस गति को पहुंचे ? अब देखिये "लवड धों धों" की धांधली—

"मूर्ति पूजा वैदिक है" यह था पौराणिकों का पक्ष ! जो लबड धों धों कार ने पृष्ठ १० पर स्वयं स्वीकार किया है। इस प्रकार माधव जी का साध्य हुआ, "मूर्ति पूजा की वैदिकता" पर ७७ वें पृष्ठ तक लबड धों धों करके भी माधवाचार्य जी वेदों से शिव, काली, गणेश, विष्णु, दुर्गा, लक्ष्मी, राधाकृष्ण, वेंकटेश, हनुमानादि अपने किसी भी इष्ट देव की मूर्ति बनाने, पूजने, पूजा की रीति को वेद या किसी भी आर्ष ग्रन्थ में नहीं दिखा पाये। आर्य पंडित का प्रश्न तो था "वर्तमान वैष्णव व शैव शाक्तादि पौराणिक सम्प्रदायों द्वारा की जाने वाली मूर्ति पूजा वेदादि प्राचीन प्रमाणों से कैसे सिद्ध हैं ?" यह प्रमाणित करिये। पर इस सार गर्भित प्रश्न को माधवाचार्य जी लबड धों-धों करके उड़ा देते हैं और उत्तर में ब्राह्मण ग्रन्थ से सिद्ध करने का वृथा प्रयास करते हैं। "महावीर" नामक मिट्टी के पात्र की पूजा और सूत्र ग्रन्थ से उस्तरे और जूते की पूजा। "त्र्यम्बकं यजामहे···" इस वेद मन्त्र का अपने माने हुए महीधर भाष्य और कात्यायन सूत्र के विनियोग से विरुद्ध तात्पर्य बनाकर त्रिनेत्रधारी शिव की पूजा। बाल्मीकीय रामायण के प्रक्षिप्त परिशिष्ठ श्लोक से रावण द्वारा शिवलिंग की पूजा। मनुस्मृति के "देवाभ्यर्चन" शब्द से मूर्ति द्वारा ही देव पूजा की खींचतान करके सिद्धि। यदि माधवाचार्य जी के प्रस्तुत किये हुए प्रमाणों के अर्थ-अनर्थ पर ध्यान न दिया जाये और जो भी तात्पर्य इनका माधव जी ने निकाला है वही लिया जाये तब भी तो वर्तमान पौराणिक सम्प्रदायों की मूर्तियों (शिवलिंग, काली, भैरव, हनुमान, वेंकटेश, लक्ष्मी, विष्णु आदि) की पूजा वैदिक सिद्ध नहीं होती।

जिन महावीर (मिट्टी का पात्र) व उस्तरे और जूते की पूजा माधवाचार्य जी सिद्ध कर रहे हैं वे किसी सनातनी मन्दिर में नहीं पूजे जाते। सम्भव है माधवाचार्य जी के घर जूते और उस्तरे की ही पूजा होती हो। माधवाचार्य जी के उपस्थित किये हुए प्रमाणों का वास्तविक तात्पर्य प्रामाणिक शास्त्रार्थ में विद्यमान हैं। जिसे माधवाचार्य लबड धौं धौं करके उड़ा रहे हैं। "त्र्यम्बकं यजामहे···" से महीधरजी अग्निकी परिक्रमा करना मान रहे हैं ("इअनुष्टुभौ" का० ५, १०, १५, १६,) "आग्नित्रिः परियन्ति पितृवत्सव्योरूनाघ्नानास्त्र्यम्बकमिति देववच्चैतेनैव दक्षिणानाघ्नानाइति···" (शुक्ल यजुर्वेद संहिता, महीधर भाष्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १५४) तथा सन् १६१२ ई० में पण्डित रामसकलमिश्र द्वारा संशोधित चौखम्बा संस्कृत सीरीज; काशी द्वारा प्रकाशित)। पर माधवाचार्य जी इसे भी मूर्ति पूजा बता रहे हैं। फिर तो ठीक है। यदि यों ही सन्तोष कर लिया जाये तो भू मण्डल पर मूर्ति पूजक हैं। फिर तो सनातन धर्म के प्रचार की आवश्यकता ही नहीं। जो सनातन धर्मी सम्प्रदाय जैन मूर्तियों की पूजा को निषिद्ध मानता है। उसका प्रचारक उस्तरा, जूता आदि मूर्त वस्तुओं को काम में लाने को मूर्ति पूजा बता रहा है। हवन यज्ञ को मूर्ति पूजा समझ रहा है। महावीर जी कि स्त्रुषा आदि की भांति यज्ञ पात्र है उसे काम में लाने को मूर्ति पूजा बताकर पिंड छुड़ाना चाहता है। क्यों जी ! यज्ञ में तो कलश, स्त्रुषा, प्रणीता, पात्र कुश आदि काम में लाये जाते हैं। क्या यह सब देव मूर्तियां हैं ? यज्ञ में इन सबके विशेष-२ संस्कार भी होते हैं, क्या यही है आप की मूर्ति पूजा ? लबडधौं-धौं कार जी क्यों आत्म वन्चना करते हो ? आप लोगों की तो मूर्तिपूजा यह है कि किसी धातु-पत्थर, मिट्टी, काष्ठ, आदि की प्रतिमा या किसी चित्र में अपने देवताओं की आत्मा का आना मान कर (प्राण प्रतिष्ठा करके) पुनः उसको स्नान कराना, चन्दन लगाना, फूल चढ़ाना, भोजन-भेंट करना, आरती करना आदि। यदि कोई आर्य समाजी या अन्य मूर्ति पूजक खिलौने की भांति इन प्रतिमाओं को रख लें, या मन्दिर में ही बिना प्राण प्रतिष्ठा के हो तो उन्हें आप नहीं पूजेंगे। प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् ही आप उन्हें सजीव मानकर पूजते हैं

ऐसी भावना महावीर पात्र के संस्कार में कहां है ? आपके दिए प्रमाण और उनके अर्थों से तो यह भाव नहीं निकलता है। महावीर यज्ञ का मस्तक है और उसको घोड़े की लीद से धूनी दी जाती है। आपके उव्वट, महीधर आदि भाष्यकार इससे ही आपके महावीर का परमेश्वरत्व सिद्ध कर रहे हैं। क्यों महाराज ! आप तो महीधर जी के शब्दों में महावीर को अपना पिता मान रहे हैं न ? (हे महावीर ! तू हमारा पिता है पृष्ठ ७५) भला पुन: पिता की यही प्रतिष्ठा है कि घोड़े की लीद से धूनी दी जावे। महावीर का चित्र याज्ञिकों ने एक पिचके पेट वाले गिलास के सदृश दिया है। किसी भी शास्त्र से यह देव मूर्ति सिद्ध नहीं होती और किसी पौराणिक सम्प्रदाय के मन्दिर में वह मूर्ति दृष्टि गोचर नहीं होती। श्री हनुमान जी की मूर्ति महावीर नाम से प्रसिद्ध है और मन्दिरों में पूजी जाती है। पुन: बे सिर-पैर की बातों से क्या लाभ ? जिन मूर्तियों की पूजा सिद्ध करनी थी उनका आप नाम नहीं लेते और जिनकी चर्चा कर रहे हैं वे कहीं पूजी नहीं जाती। आशा है पाठक वृन्द इन सब बातों का तथ्य विचार कर स्वयं समझ लेंगे आपका एक और दावा है कि मूर्ति पूजा पाप नहीं है। जिस मूर्ति पूजा ने देश को चौपट कर दिया; राष्ट्र को महान क्षति उठानी पड़ी और सम्पूर्ण विदेशी यवनों ने मूर्तियों को तोड़ने व धन लेने के लिए चढ़ाइयां की, क्या वह पाप नहीं है ?

लखनऊ "हुसन गंज पार" की सनातन धर्म सभा का उत्सव था। सभा ने अपनी ही ओर से विषय निश्चित करके आर्य समाजियों को छपा हुआ निमन्त्रण दिया। इसके अनुसार आर्य समाजी नियत समय पर तारीख ४-१२-३७ को सांख्य काव्यतीर्थ श्री पण्डित सत्यव्रत जी शास्त्री को लेकर पहुंचे। क्योंकि श्री मति सभा ने शास्त्रार्थ संस्कृत में तय किया था। अत: आर्य समाजिक पण्डित जी ने स्वरचित संस्कृत पद्यों में मूर्ति पूजा पर प्रश्न रक्खे। इन ललित पद्यों को सुनकर सभा की ओर से शास्त्रार्थ के लिए बुलाये हुए पौराणिक मण्डल के शास्त्रार्थ महारथी पण्डित माधवाचार्य जी का मुख सूख गया। लगे हिन्दी-हिन्दी की पुकार मचाने। भला जो आर्य समाजी पण्डित अपने दस मिनट के समय में इस प्रकार पद्यात्मक संस्कृत बोले उसके सामने यह **"माधव आप सदा के कोरे"** क्या कर पाते ! आखिर पौराणिकों ने संस्कृत शास्त्रार्थ को मकान मालिक से मना करा कर सिर से बला को टाल दिया। अगले दिन बहुत जोर देने पर पौराणिक पण्डित हिन्दी में शास्त्रार्थ को तैयार हुए, **"तारीख ५-१२-३७ को तीन बजे से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।"** आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्य तीर्थ" तथा सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री नियुक्त हुए। आर्य सामाजिक पण्डित जी ने भारतीय इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् राय बहादुर श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य द्वारा लिखित **"महाभारत मिमांसा"** तथा हिन्दी साहित्य के महान विद्वान् और महाकवि श्री पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय कृत **"कबीर वचनावली"** से कुछ उद्धरण पढ़कर सुनाये और बहुत ही विनम्र तथा हृदयहारी भाषण द्वारा पौराणिक पण्डित जी से इन सनातन धर्मी विद्वानों की सम्मतियों का सप्रमाण खण्डन करने को कहा। पौराणिक विद्वानों ने क्या खण्डन किया ? यह आप स्वयं आगे शास्त्रार्थ में पढ़िये—

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

सज्जन पुरुषों ! (१)—यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि इस वर्णन में कहीं पर भी मूर्ति पूजा का वर्णन नहीं है यद्यपि श्री कृष्ण अथवा युधिष्ठिर की आह्निक क्रियाओं का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है, तथापि उसमें किसी देवता की धातुमयी अथवा पाषाणमयी मूर्ति के पूजे जाने का वर्णन नहीं है। उस समय यदि लोगों की आह्निक क्रिया में देवताओं की पूजा का समावेश हुआ रहता, तो इस विषय का उल्लेख उस वर्णन में अवश्य आया होता। इससे निश्चय पूर्वक अनुमान होता है कि भारतीय युद्ध काल में और महाभारत काल पर्यन्त आर्यो के आह्निक धर्म में किसी प्रकार के देवता की पूजा समाविष्ट न हुई थी। किसी घर में देवता की मूर्ति रखकर उसकी पूजा शुरू नहीं हुई थी। भिन्न-भिन्न गृह्यसूत्रों में भी देवताओं की पूजा की विधि नहीं बतलाई गई है। इससे यह बात निर्विवाद है कि देव पूजा की आह्निक विधि महाभारत काल के पश्चात अनेक वर्षों में उत्पन्न हुई। (२)—वैदिक काल से उपनिषद् और दार्शनिक काल पर्यन्त आर्य धर्म में भी कहीं अवतार वाद और मूर्ति पूजा का पता नहीं चलता पौराणिक काल में ही इन दोनों बातों की नींव पड़ी है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(१) भाइयों ! "मूर्ति पूजा वैदिक है" देखिये मैं ये प्रमाण रखता हूं। आप गौर से सुनिये—**"यत्र-यत्र-स्म यातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः। जाम्बूनदमयंलिगं तत्र तत्रस्म नीयते"** (बाल्मीकि रामायण परिशिष्ठ भाग) तथा **गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं कुर्यात्"** (बोधायन सूत्र) **"नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणं। देवताभ्यर्चनञ्चैव समिदाधानमेव च ॥** (मनुस्मृति) और **"मुखायते पशुपते यानि चक्षुषि ते तवत्चं रुपाय संदृशे। प्रतीचीनाय ते नमः** (अथर्व वेद काण्ड ११ सूक्त १ मन्त्र ५) **"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्। उर्वारुक मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥** (यजुर्वेद ३-६०) एवं शतपथ देखिये क्या कहता है ?—**मृत्पिण्ड मादाय महावीरम् करोति" "मखायत्वा मखस्यत्वाशीर्ष्णे" इत्य साधेव बन्धु प्रावेशमात्रम् प्रादेशमात्रमेव हि शिरोमध्ये संग्रहीत मध्यै सग्रंहीत मिवहि शिरोऽथास्यो परिष्ठात् त्र्यंगुलं मुखमुन्नयति नासिका मिवास्मिन्नेत दधाति तं निष्ठितमभिमृशति मखस्य शिरोऽसीति मखस्य ह्येतत्सोम्यस्य शिर एव मितरो तूष्णीं पिन्वते तूष्णीं ॐ रोहित कपाले"** (शतपथ ब्राह्मण १३-१-२-१७)। देखिये रावण मूर्ति पूजा त्रेता युग में करता था। "गोबर से लीपकर प्रतिकृति अर्थात मूर्ति बनावें" देवतार्चन मनु जी बताते हैं, हजार की प्रतिमा (मूर्ति) वेद बताते हैं, अथर्व वेद भगवान के मुख, आंख, दांत सब बतलाता है यजुर्वेद-तीन नेत्र, (सूर्य, चन्द्र, अग्नि) बताता है। शतपथ ब्राह्मण महावीर जी की मिट्टी की मूर्ति बनाने का विधान करता है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

आपका रामायण का प्रमाण तो यहां राक्षसों का काम सिद्ध कर रहा है। महाराज ! ऐसे नवीन श्लोक

तो साम्प्रदायिक काल में मिलाये गए हैं। रामायण में तो तथागत बुद्ध* का भी वर्णन मिला दिया गया है, बौधायन सूत्र महाभारत काल के बाद का है। देखो दो विद्वानों की सम्मतियां—ध्यान दो (१) इन सूत्रों में से बौधायन सूत्र २-२२-९ में गीता के "पत्र, पुष्पं, फलं, तोयं" वाले श्लोक का और वासुदेव की भक्ति का भी उल्लेख है। "**इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूत्र ग्रन्थ गीता की वासुदेव भक्ति के प्रचलित हो जाने पर बना है।**" (**वैदिक सम्पत्ति**) (२) अन्य सूत्र और वर्तमान मनुस्मृति महाभारत के बाद की है (**महाभारत मीमांसा**) ये सम्पत्तियां हैं, "**अक्षर विज्ञान**" के यशस्वी लेखक श्री पंडित रघुनन्दन शर्मा जी तथा श्री पं० चिन्तामणि विनायक वैद्य की। मनुस्मृति के "**देवताच्चर्चन**" शब्द से मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती। विद्वान ज्ञानी चेतन देवों का अर्च्चन अर्थात सत्कार करना तथा यज्ञ करना अग्नियादि जड़ देवों के ठीक ठीक विज्ञान को जानकर उनसे काम लेना चाहिए, जैसा वैज्ञानिक लोग ले रहे है, यही है "**देवताच्चर्चन**"! प्रथम वेद मन्त्रों में तो मूर्ति पूजा का विनियोग तक नहीं, किन्तु यज्ञ में इसका विनियोग है, देखो महीधर भाष्य "**तिष्ठन्नग्निं प्रोक्षति हिरण्य सकल सहस्त्रेण शते द्वे-द्वे प्रकिरति सहस्त्र स्येति प्रति मन्त्रम्** (का०१७-१२-२७) कात्यायन सूत्र का प्रमाण है, इस मन्त्र से अग्नि प्रोक्षण करे। इसका भाष्य भी सुनिये-"हे अग्ने! **सहस्त्रस्येष्टकान। प्रमा प्रमाणं त्वमसि। सहस्त्रस्य प्रतिमा प्रतिनिधिरसि**" हे आग तू हजार ईंटों का प्रमाण है, हजार की प्रतिमा अर्थात प्रतिनिधि है। यहां यज्ञ की अग्नि का वर्णन हैं, यहां मूर्ति कहा है? "**मुखायते**" और "**त्र्यम्बकम्**" से जो आपने ईश्वर को साकार सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न किया है यह आपको निग्रह स्थान में ले जा रहा है अपने पक्ष की सिद्धि में मूर्ति पूजा विधायक प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए। यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक साकार की मूर्ति बनाकर पूजी जाए। इस समय मेरा प्रश्न ईश्वर की साकारता. निराकारता विषयक नहीं है। और न ही ईश्वर की मूर्ति बनने की शक्यता पर, ! इस समय तो प्रश्न यह है कि "**क्या वर्तमान वैष्णव, शैव, शाक्तादि सनातनी सम्प्रदायों द्वारा की जाने वाली मूर्ति पूजा वेदादि प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध है अर्थात् सनातन है?**" और ना ही इन वेद मन्त्रों से ईश्वर साकार सिद्ध होता है, "**त्र्यम्बक**" का अर्थ आप तीन नेत्रों वाला करके ईश्वर को साकार सिद्ध करने का विफल प्रयत्न कर रहे हैं। यह अलंकारिक कल्पना है। "**ईश्वर के वास्तविक नेत्र, दांत, या शरीर नहीं है देखिये**—"**यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम् दिवंयश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्राह्मणे नमः यस्यः सूर्यश्चक्षश्चन्द्रमाश्च पुर्नणवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥** (अथर्व वेद) देखिये! यहां सब रूपक ही है। अगर वास्तविक साकारता मानी जाए तो ईश्वर का शरीर एक तमाशे की चीज बने। आपने उसके तीन नेत्र बतायें थे। सूर्य! चन्द्र!! अग्नि!!! यही ठीक भी हैं। अगर यह नेत्र अ मदादि के समान ही हैं तो ईश्वर की एक आंख जो सूर्य है तह तो पृथ्वी से कई लाख गुणा बड़ी और चन्द्रमा रूपी आंख पृथ्वी से भी छोटी। अर्थात एक आंख तो तिल की बराबर तो दूसरी हाथी जैसी। एक आंख के चारों ओर पृथ्वी घूमे और एक आंख पृथ्वी के चारों ओर घूमे। (जनता में हंसी···) यहां सूर्य चन्द्रादि की ज्योति को ईश्वरीय ज्योति से प्रकाशित बताने के लिए अलंकारिक भाषा में ऐसा कहा है "**त्र्यम्बकम्**" मन्त्र का विनियोग सूत्रकार कात्यायन और भाष्यकार महीधर मूर्ति पूजा या शिवजी पर बेल पत्र चढ़ाने में नहीं करते। किन्तु "**अग्निं त्रि परियन्ति**" "**त्रिःप्रदक्षिणं परियन्ति**" अग्नि की तीन परिक्रमा कराने में करते हैं-। शतपथ ब्राह्मण में आया हुआ "महावीर" शब्द किसी देवता की मूर्ति का वाचक नहीं है। और न इस प्रकरण से मूर्ति पूजा सिद्ध होती है। महावीर शब्द का अर्थ कादम्बरी के प्रसिद्ध टीकाकार महामहोपाध्याय श्री भानुचन्द्र तथा सिद्धचन्द्र जी (अकबर

नोट—

*"**यथाहि चौरः स तथाहि बुद्धस्तथागतं नास्तिक मन्त्र विद्धि**" (वा० रा० अयो० का० सर्ग ११० श्लोक ३४)

के सभा पंडित) क्या करते हैं ? देखिये—"**विधान सम्पादित दान शोभितैः स्फुरन महावीर सनाथ मूर्तिभिः ।**" इस पर टीका देखिये —"**स्फुरन्त ज्वलन्तो ये महावीराः श्रौताग्नयः**" महीधर उव्वट भाष्य, महावीर के विषय में लिखते हैं, अध्याय ३७ मन्त्र ११-१४ श्रुति पेश करते हुए-"**एष वैः घर्मः एषउ प्रवर्ग्यः**" अर्थात महावीर धर्म्य है प्रवर्ग्य है, "**त्रीन् महावीरानुखावच्च श्रीपयेत्**" तीन महावीरों को उखा (आग रखने की हांडी) की तरह पकावे, अध्याय ३७ मन्त्र ९ का भाष्य—अध्याय ३७-३९ को पूरा पढ़ने से सिद्ध हो जाता है कि महावीर एक मिट्टी का पात्र है, जिसमें आग जलाई जाती है और देखिये—"**कीं वृश्म् प्रादेशोच्चंगर्त्तवन्तं मेखलायुक्तं मध्ये संकुचितम मेखलोपरिश्र्यंगुलोच्चमिति सूत्रार्थः ।** (का०सू०२६-१-१६)का अर्थ महीधरजी करते हैं । "प्रादेश भर ऊंचा, गड्ढे वाला, मध्य में संकुचित मेखला के ऊपर तीन अंगुल ऊंचा" । कहिये यह मूर्ति है या पात्र ? शतपथ ब्राह्मण भी आगे स्पष्ट करता है-(१९-८-१) **तदाहुः यद्दानस्पत्यैर्देवेभ्यो जुह्वाति, अथकस्मादेतन्मृन्मयेनैव जुहोतीति ।।५३।। सयद्वानस्पत्यः सयात्प्रद ह्येत यद्धिरण्मयः स्यात् प्रतीयेत । यल्लोहेमयः स्यात् प्रसिच्यते । मदयस्मयः स्यात् प्रदहेत् परिशासावथैष** (**एवैतस्या अतिष्ठत तस्मादेनं मृन्मयेनैव जुहोति** ।।५४।। अर्थात् यहां "मिट्टी के बने हुए महावीर से हवन करता हैं" यह है, न कि मिट्टी के बने हुवे महावीर को फूल चढ़ाता है । बताशे भेंट करता है. महावीर यहां कारण कारक है सम्प्रदान नहीं । प्रश्न से पात्र ही टपकता है । प्रश्न है कि काष्ठ के पात्रों से देवताओं के लिए हवन होता है, यह मिट्टी से क्यों यज्ञ किया जाता है ? अर्थात और पात्र तो काष्ठ के ! मगर महावीर मिट्टी का क्यों ! उत्तर में—सोने, लोहे, आदि के में खतरा बता कर मिट्टी का ही महावीर लाभदायक बताया है ।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

ऐतिहासिकों का कोई प्रमाण नहीं । भगवान रामचन्द्र जी ने भी बालुका के महादेव बनाकर पूजे, देवताच्चर्चन का अर्थ टीकाकारों ने हरि-हर आदि का पूजन किया है । तभी तो उसके मुख नासिका बनाये गये और उसे मेखला पहनाई जाती है । मनुष्य जिस प्रकार अपने शरीर पर फूल माला आदि चढाने से प्रसन्न होता है उसी प्रकार ईश्वर भी । पृथ्वी उसका शरीर है देखो—"**यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरों यं पृथ्वी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं**" इत्यादि (शेष पिछली बातों को दोहराया)

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

आप मूर्ति पूजा को छोडकर साकारता सिद्धि पर क्यों उतर पडे ? यह साकारता तो कल्पित है, और यहां तो कितनी अच्छी बात कहीं है कि वह पृथ्वी में व्यापक है मगर पृथ्वी उसे नहीं जान पाती जब पृथ्वी नहीं जान पाती तो पृथ्वी से बनी मूर्ति उसे क्या जान सकती है ? और जो ज्ञान शून्य है, वह आपको ईश्वर प्राप्ति के लिए वृत्ति को बाहरी पदार्थों से हटाकर अन्तर्मुखी करने का उपनिषद उपदेश देती है, हम तो अपने शरीर की पूजा से इसलिए प्रसन्न होते हैं कि हमारा शरीर "**भोगायतन**" है । हम इसी के द्वारा सुख-दुख भोगते हैं । ईश्वर का शरीर सुखः दुखः भोगने का साधन नहीं, पृथ्वी ही नहीं उपनिषद ने जल अग्नि आदि सब का इसी तरह ईश्वर का शरीर बताया है । अखिल ब्रह्माण्ड ही उसका शरीर कहा गया है तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार हमारा शरीर जीवात्मा की व्याप्ति से हरकत करता हैं, इसी प्रकार इस विषय को हरकत देने वाला परमात्मा है । वह सब में व्यापक है अनिश्वरवादियों को इस प्रकार ईश्वर सत्ता बताई गई है । मनुस्मृति के टीकाकार तो घोर पौराणिक काल में हुए हैं इनको यह अर्थ करना ही था । इनकी बुद्धि में इसके अतिरिक्त विचार आ ही नहीं सकता था । मगर निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ और वेदों के देखने से तो देवार्च्चन का प्रकार यज्ञ ही ठहरता है । रामचन्द्र जी का मूर्ति-पूजन बाल्मिकि रामायण में दिखाइये ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(जनता को भडकाने वाले ढंग से) भाइयों ! शोक !! आप वेदों की बातों को कल्पित बता रहे हैं। कल्पित तो मिथ्या को कहते हैं। ईश्वर का शरीर कल्पित नहीं है। महावीर अगर देव प्रतिमा न होती तो उसके मुख नासिका का वर्णन क्यों आता ? ओर उसकी मेखला (करधनी) पहराने का भी विधान है, और जिस प्रकार बड़े देश का छोटा नक्शा बना लिया जाता हैं, इसी प्रकार उस महान ईश्वर का छोटा रूप मूर्ति कल्पित कर ली जाती हैं। योग दर्शन कहता है "यथाभिमत ध्यानाद्वा" अर्थात् ईश्वर की अपनी इच्छानुसार मूर्ति बनाकर ध्यान करो। ईश्वर सब में व्यापक हैं मूर्ति में भी व्यापक हैं। इसलिए मूर्ति की पूजा उस ही की पूजा हैं।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

राक्षसों द्वारा यज्ञ विध्वंश की शिकायत ऋषि लोग बार बार आर्य राजाओं से करते थे मगर मूर्ति या मन्दिर तोडने की कभी शिकायत नहीं की, इससे ज्ञात होता हैं कि आर्य जाति मूर्ति पूजक नहीं थी, कल्पना शब्द से वाक्छल गलत भाव न निकालिए कवित्व के साथ मिथ्या ही "सत्यम् शिवं सुन्दरम्" हो जाता हैं अलंकार कल्पना से बनते हैं कल्पना कवित्व का भूषण है। वेद उच्च कोटि का काव्य है। आप केवल अभिधेय अर्थ ही ग्रहण करते हैं। लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को छोड देते हैं, मूर्ति के लिए तो "कल्पित" आप भी कह गये। मगर यह न सोचा कि नकशा सर्वे करने के बाद बनता है, कोरी कल्पना से नहीं। वरना हिन्दुस्तान का नक्शा गोल या त्रिभुज भी कल्पित किया जा सकेगा। महान असीम का लघु असीम नक्शा होता है। मगर ईश्वर है अपरिमित उसकी नाप तोल कहाँ ? फिर उसका नक्शा कैसा ? वेद कहता है "**न तस्य प्रतिमास्ति यस्यनाममहद्यशः**" जिस ईश्वर का महान यश है. और नाम है उसकी प्रतिमा-मूर्ति कल्पना नहीं है। पात्रों के भी नाक-मुंह-कान का व्यवहार होता है। घडे का मुख, कन्ना, कान, मेखला पहराने का यहां नाम तक नहीं है। मिट्टी की मेखला बनाने का वर्णन है। यह मेखला ऐसे ही है, जैसे हवन कुण्ड की मेखला (मेंडरी) होती है। योग सूत्र में मूर्ति पूजा का वर्णन नहीं घाटक मात्र का आदेश है। साम्प्रदायिक मूर्ति पूजा में ध्यान जमाना कहां ? वहां तो बाहरी क्रिया कलाप होता रहता है। ईश्वर सब में व्यापक है तो, माता-पिता, आचार्य में भी व्यापक है। और आपके हृदय में भी, बस इन्हें ही पूजिये, मगर पूजा आप व्याप्य की करते हैं या व्यापक की ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री —

मूर्ति काम क्रोध से रहित है। माता, पिता, आचार्य आदि में ये भाव हो सकते हैं। अतः मूर्ति में ईश्वर पूजा होती है। हम तो सब में ईश्वर को व्यापक मानकर सबको ही पूज्य समझते हैं। "**ब्रह्मणोद्वे रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च**" ब्रह्म के दो रूप होते हैं, मूर्त तथा अमूर्त। जनता की सेवा जनार्दन की सेवा है। आर्य समाजी फ़कत आग की पूजा को ही ईश्वर की पूजा मानते हैं। पटेले, उस्तरे, और जूते को पूजते हैं। जनता में शोरोगुल ... स्वामी जी ने पटेले को मीठे और दूध से तर करना लिखा है। उस्तरे और जूते की प्रार्थना लिखी है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ" —

मूर्ति कामक्रोधादि दुर्गुणों से रहित है तो दया दक्षिण्यादि शुभ गुणों से भी वंचित है। पूजा आप व्याप्य की करते हैं, व्यापक को छोड देते हैं, संसारी कामों में व्याप्य की प्राकृतिक पदार्थों की पूजा अर्थात् उसका विधिवत्

प्रयोग और संभाल की जाती है । जैसे कि उस्तरे, जूते आदि वस्तुओं की। उस्तरे, जूते आदि को कोई आर्य समाजी भोग नहीं लगाता न उन पर फूल-पत्र चढ़ाता है। न कहीं प्रार्थना लिखी है। यदि है तो दिखलाओ? हां! उस पर धार व पालिश कराते हैं। पटेले वाले भाष्य को पूरा पढ़िये, और भाव समझिये। दूध-मीठे आदि का खाद देने से तात्पर्य हैं सीरे और खांड के मैल का खाद बड़ा मुफ़ीद होता है। यज्ञ द्वारा आर्य समाजी आग को नही पूजते किन्तु इस व्याप्य सृष्टि को स्वच्छ बनाते हैं। और वेद मन्त्रों द्वारा व्यापक की स्तुति से उसका ज्ञान करते हैं, क्योंकि पूर्ण काम ईश्वर की पूजा नहीं होती। उसकी आत्मा से ज्ञान अर्थात् अनुभव होता हे। यदि ईश्वर की सर्व व्यापकता के कारण सबको पूज्य मानते हो और जनता की सेवा को जर्नादन की सेवा समझते हो तो भारत माता के सात करोड़ लालों को अछूत कहकर क्यों ठुकराते हो? अपनी बनाई मूर्तियों की तो पूजा और परमात्मा की बनाई हुई मूर्तियों से घृणा! "**ब्रह्मणों द्वे रूपे**" वाली श्रुति का तात्पर्य हैं कि ब्रह्म, सृष्टि रचना द्वारा मूर्त्त अर्थात व्यक्त है और वैसे अव्यक्त।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

यज्ञ भी मूर्ति पूजा है। स्वामी जी ने उस्तरे को विष्णु जी की दाढ कहा है और नमस्ते की है, "**हे! उस्तरे मुझे मत मार**" ऐसा लिखा है। जूते से कहा है "**मेरी रक्षा कर**" तथा "**पटेले, को घी शहद शक्कर आदि से संतुप्त करो**" ऐसा लिखा है। आप मूर्ति खण्डन वेद में न दिखा सके अतः निग्रह स्थान में आ गये।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

आप अपने पक्ष को सिद्ध न करके संस्कार विधि और ऋषि भाष्य पर आक्षेप करके स्वयं "**मतानुज्ञा**" निग्रह स्थान में जा रहे है, "**देखिये स्वपक्ष दोषाभ्युपगमात्परपक्ष दोष प्रसंगोमतानुज्ञा**" स्वामी जी ने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा, यह हिन्दी आपकी है। स्वामी जी की नहीं है। जो मन्त्र जूता पहनते और उस्तरे की धार वगैरा की जांच करते वक्त पढने को श्री स्वामी जी ने लिखे हैं वे उन्ही सूत्र ग्रन्थों के हैं, जो आपको भी मान्य हैं आर्य समाज का यह पक्ष तों आपको भी स्वीकृत है। अतः सिद्ध है। रही पटेले की बात! यह वाक्य शैली है जैसे अन्न चाहते हो तो हल की पूजा करो, हल की सेवा तुम्हें मालामाल कर देगी। अगर यज्ञ भी मूर्ति पूजा है तो इसी पर मतलब यहां हाली (हल चलाने वाला) से है। पुरुषार्थ बढ़ाने से है, इसी पर सब्र कीजिए, और हमारे-आपके बीच में विवाद का कारण बनी हुई साम्प्रदायिक मूर्ति पूजा को छोड़िये।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

मैंने वेदों से मूर्ति पूजा सिद्ध कर दी। महावीर की मूर्ति बनाना शतपथ में है। जिसे हम वेद मानते हैं, महावीर पात्र शब्द नपुंसकलिंग है और महावीर शब्द पुंलिंग है। महावीर के नाक मुख दिखा दिये। महावीर यज्ञ पात्र है तो संस्कार विधि में इसका चित्र क्यों नहीं? आपने अपने पक्ष को सिद्ध नहीं किया कि मूर्ति पूजा का वेद में निषेध है या मूर्ति पूजा पाप है? आप अपना पक्ष सिद्ध न करने के कारण निग्रह स्थान में आ गये, आप यज्ञ को ईश्वर पूजा सिद्ध मानने तो लगे, अब तक तो वायु शुद्धि का कारण ही मानते थे, उस्तरे आदि के मन्त्रों में कहा जाता है कि "**विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि**" तू विष्णु की दाढ़ है। निराकार विष्णु की दाढ़ भी हो सकती है? और उस जड़ उस्तरे से बात चीत कैसी? और इसी प्रकार जूते से "**विश्वतो मा पातम्**" कहा गया है, यह मूर्ति पूजा नहीं है तो और क्या है?

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

वेद के मन्त्र जो आपने पेश किये उनका विनियोग यज्ञ ही में निकला। "पात्र" शब्द नपुंसकलिंग है, मगर "पात्र" के विशेषवाच्य "घट" या "कलश" या "कटाह" यह तो "पुंलिंग" हैं, महावीर भी पात्र विशेष है, महावीर के नाक मुख तो बताये मगर पूंछ नहीं। (जनता में हंसी...)

जनाब यह मुहावरे हैं, सुराही की गर्दन, गला, नाक, कान, घड़े का पेट, आदि। संस्कार विधि में सब पात्रों के चित्र नहीं हैं। मेरा पक्ष कहां है? पक्षी तो आप हैं, मैं तो इस समय प्रतिपक्षी हूं। आपके ऊपर प्रमाण का भार है। यदि मूर्ति पूजा की विधि वेद से प्रमाणित नहीं तो निषेध स्वयं सिद्ध है। यज्ञ को ईश्वर पूजा आपके कथनानुसार कहा गया है। मैं तो उसे सृष्टि के विकारों की चिकित्सा मानता हूं। ईश्वर को तो ज्ञान की आवश्यकता है। द्रव्य पूजा की नहीं, आप अपने ही मान्य मन्त्रों पर शंकायें करके अपने मन्तव्य का ही उपहास कर रहे हैं। शोक है कि आप तर्जे कलाम या वाक्य शैली को समझने का कष्ट नहीं उठाते देखिये वेदान्त दर्शन कहता है—"**अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्**" कोई विशेष बात जताने या अनुमित के कारण अभिमानी व्यपदेश जड़ों में से चेतनवत् कलाम होता है, जैसे "**मञ्चाः कोशन्ति**" से मञ्चस्थ पुरुष समझे जाते हैं। इसी प्रकार उस्तरे से उस्तरे के प्रयोगकर्ता को जूते से जूते के पहिरने वाले को (अपने को ही) समझना है इसी प्रकार पटेले की बात है जरा देखिये तर्जे कलाम फ़ारसी हिन्दी दोनों में—

कलम गोयद के मन शाहे जहानम्। कलम कसरा बदोलत मी रसानम्॥

क्या कलम बोलती है? नहीं कलम की प्रशंसा अहिले कलम की प्रशंसा है? कोई कवि किसी सुन्दरी के भाव वर्णन करता है—

ऐ माटी के कुल्हड़ा, मैं तोहि पूछौ बात। होठ रंगे हैं पीव को, तू क्यों चिपट्यो जात॥

कहिये! क्या यहां जड़ कुल्हड़ भी समझते हैं? आगे (कवि) कुल्हड़ की ओर से उत्तर देता है।

लात सहे घूंसा सहे, सहे अग्नि घन घाय। है प्यारी तब होठ को, स्वाद चखो है आय॥

कहिये! क्या यहां कुल्हड में बोलने की क्षमता है? या वह अन्योक्ति अपनी कुछ दूसरी ध्वनि रखती है? माननीय पूज्य आचार्य जी वाक्य शैली पर ध्यान देने का कष्ट उठाया कीजिये। मैं कौन से निग्रह स्थान में आया? जरा उसका नाम तो बताइये।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

वेद में कहीं मूर्ति पूजा का निषेध दिखाइये ओर बताइये मूर्ति पूजा को वेद में पाप कहां लिखा है? अगर आप जड़ पदार्थों की पूजा करते हैं तो ठीक। और हम करते हैं तो गलत! ऐसा क्यों? ईश्वर निराकार है उसका कोई आकार नहीं इसलिए हम शिव की मूर्ति गोल-मटोल शून्याकार बनाते हैं। घड़े की नाक नहीं, होठ वोले ही बोले जाते हैं।

आर्य पथिकों को "मिट्टी का शेर" बताने वाले को स्मरण रखना चाहिए कि-आर्य केशरी-मदमत्त मतंगों पर ही प्रहार किया करते हैं मूसकों पर नहीं, वे तो वैदिक वायु के हल्के झोंके से ही उड जाते हैं कहीं प्रचण्ड तर्क झंझार चले तो न जाने किस गति को पहुंचे ? अब देखिये "लवड धों धों" की धांधली—

"मूर्ति पूजा वैदिक है" यह था पौराणिकों का पक्ष ! जो लबड धों धों कार ने पृष्ठ १० पर स्वयं स्वीकार किया है। इस प्रकार माधव जी का साध्य हुआ, "मूर्ति पूजा की वैदिकता" पर ७७ वें पृष्ठ तक लबड धों धों करके भी माधवाचार्य जी वेदों से शिव, काली, गणेश, विष्णु, दुर्गा, लक्ष्मी, राधाकृष्ण, वेंकटेश, हनुमानादि अपने किसी भी इष्ट देव की मूर्ति बनाने, पूजने, पूजा की रीति को वेद या किसी भी आर्ष ग्रन्थ में नहीं दिखा पाये। आर्य पंडित का प्रश्न तो था "वर्तमान वैष्णव व शैव शाक्तादि पौराणिक सम्प्रदायों द्वारा की जाने वाली मूर्ति पूजा वेदादि प्राचीन प्रमाणों से कैसे सिद्ध हैं ?" यह प्रमाणित करिये। पर इस सार गर्भित प्रश्न को माधवाचार्य जी लबड धों-धों करके उडा देते हैं और उत्तर में ब्राह्मण ग्रन्थ से सिद्ध करने का वृथा प्रयास करते हैं। "महावीर" नामक मिट्टी के पात्र की पूजा और सूत्र ग्रन्थ से उस्तरे और जूते की पूजा। "त्र्यम्बकं यजामहे···" इस वेद मन्त्र का अपने माने हुए महीधर भाष्य और कात्यायन सूत्र के विनियोग से विरुद्ध तात्पर्य बनाकर त्रिनेत्रधारी शिव की पूजा। बाल्मीकीय रामायण के प्रक्षिप्त परिशिष्ठ श्लोक से रावण द्वारा शिवलिंग की पूजा। मनुस्मृति के "देवार्च्चन" शब्द से मूर्ति द्वारा ही देव पूजा की खींचतान करके सिद्धि। यदि माधवाचार्य जी के प्रस्तुत किये हुए प्रमाणों के अर्थ-अनर्थ पर ध्यान न दिया जाये और जो भी तात्पर्य इनका माधव जी ने निकाला है वही लिया जाये तब भी तो वर्तमान पौराणिक सम्प्रदायों की मूर्तियों (शिवलिंग, काली, भैरव, हनुमान, वैंकटेश, लक्ष्मी, विष्णु आदि) की पूजा वैदिक सिद्ध नहीं होती।

जिन महावीर (मिट्टी का पात्र) व उस्तरे और जूते की पूजा माधवाचार्य जी सिद्ध कर रहे हैं वे किसी सनातनी मन्दिर में नहीं पूजे जाते। सम्भव है माधवाचार्य जी के घर जूते और उस्तरे की ही पूजा होती हो। माधवाचार्य जी के उपस्थित किये हुए प्रमाणों का वास्तविक तात्पर्य प्रामाणिक शास्त्रार्थ में विद्यमान हैं। जिसे माधवाचार्य लबड धौं धौं करके उड़ा रहे हैं। "त्र्यम्बकं यजामहे···" से महीधरजी अग्निकी परिक्रमा करना मान रहे हैं ("द्वेअनुष्टुभौ" का० ५, १०, १५, १६,) "आग्नित्रिः परियन्ति पितृवत्सव्योरूनाघ्नानास्त्र्यम्बकमिति देववच्चैतेनैव दक्षिणानाघ्नानाइति···" (शुक्ल यजुर्वेद संहिता, महीधर भाष्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १५४) तथा सन् १९१२ ई० में पण्डित रामसकलमिश्र द्वारा संशोधित चौखम्बा संस्कृत सीरीज; काशी द्वारा प्रकाशित)। पर माधवाचार्य जी इसे भी मूर्ति पूजा बता रहे हैं। फिर तो ठीक है। यदि यों ही सन्तोष कर लिया जाये तो भू मण्डल पर मूर्ति पूजक हैं। फिर तो सनातन धर्म के प्रचार की आवश्यकता ही नहीं। जो सनातन धर्मी सम्प्रदाय जैन मूर्तियों की पूजा को निषिद्ध मानता है। उसका प्रचारक उस्तरा, जूता आदि मूर्त वस्तुओं को काम में लाने को मूर्ति पूजा बता रहा है। हवन यज्ञ को मूर्ति पूजा समझ रहा है। महावीर जी कि स्त्रुषा आदि की भांति यज्ञ पात्र है उसे काम में लाने को मूर्ति पूजा बताकर पिंड छुड़ाना चाहता है। क्यों जी ! यज्ञ में तो कलश, स्त्रुषा, प्रणीता, पात्र कुश आदि काम में लाये जाते हैं। क्या यह सब देव मूर्तियां हैं ? यज्ञ में इन सबके विशेष-२ संस्कार भी होते हैं, क्या यही है आप की मूर्ति पूजा ? लबडधौं-धौं कार जी क्यों आत्म वन्चना करते हो ? आप लोगों की तो मूर्तिपूजा यह है कि किसी धातु-पत्थर, मिट्टी, काष्ठ, आदि की प्रतिमा या किसी चित्र में अपने देवताओं की आत्मा का आना मान कर (प्राण प्रतिष्ठा करके) पुनः उसको स्नान कराना, चन्दन लगाना, फूल चढ़ाना, भोजन-भेंट करना, आरती करना आदि। यदि कोई आर्य समाजी या अन्य मूर्ति पूजक खिलौने की भांति इन प्रतिमाओं को रख ले, या मन्दिर में ही बिना प्राण प्रतिष्ठा के हो तो उन्हें आप नहीं पूजेंगे। प्राण प्रतिष्ठा के पश्चात् ही आप उन्हें सजीव मानकर पूजते हैं

ऐसी भावना महावीर पात्र के संस्कार में कहां है ? आपके दिए प्रमाण और उनके अर्थों से तो यह भाव नहीं निकलता है। महावीर यज्ञ का मस्तक है और उसको घोड़े की लीद से धुनी दी जाती है। आपके उव्वट, महीधर आदि भाष्यकार इससे ही आपके महावीर का परमेश्वरत्व सिद्ध कर रहे हैं। क्यों महाराज ! आप तो महीधर जी के शब्दों में महावीर को अपना पिता मान रहे हैं न ? (हे महावीर ! तू हमारा पिता है पृष्ठ ७५) भला पुनः पिता की यही प्रतिष्ठा है कि घोड़े की लीद से धूनी दी जावे। महावीर का चित्र याज्ञिकों ने एक पिचके पेट वाले गिलास के सदृश दिया है। किसी भी शास्त्र से यह देव मूर्ति सिद्ध नहीं होती और किसी पौराणिक सम्प्रदाय के मन्दिर में वह मूर्ति दृष्टि गोचर नहीं होती। श्री हनुमान जी की मूर्ति महावीर नाम से प्रसिद्ध है और मन्दिरों में पूजी जाती है। पुनः बे सिर-पैर की बातों से क्या लाभ ? जिन मूर्तियों की पूजा सिद्ध करनी थी उनका आप नाम नहीं लेते और जिनकी चर्चा कर रहे हैं वे कहीं पूजी नहीं जाती। आशा है पाठक वृन्द इन सब बातों का तथ्य विचार कर स्वयं समझ लेंगे आपका एक और दावा है कि मूर्ति पूजा पाप नहीं है। जिस मूर्ति पूजा ने देश को चौपट कर दिया; राष्ट्र को महान क्षति उठानी पड़ी और सम्पूर्ण विदेशी यवनों ने मूर्तियों को तोड़ने व धन लेने के लिए चढ़ाइयां की, क्या वह पाप नहीं है ?

लखनऊ "हुसन गंज पार" की सनातन धर्म सभा का उत्सव था। सभा ने अपनी ही ओर से विषय निश्चित करके आर्य समाजियों को छपा हुआ निमन्त्रण दिया। इसके अनुसार आर्य समाजी नियत समय पर तारीख ४-१२-३७ को सांख्य काव्यतीर्थ श्री पण्डित सत्यव्रत जी शास्त्री को लेकर पहुंचे। क्योंकि श्री मति सभा ने शास्त्रार्थ संस्कृत में तय किया था। अतः आर्य समाजिक पण्डित जी ने स्वरचित संस्कृत पद्यों में मूर्ति पूजा पर प्रश्न रक्खे। इन ललित पद्यों को सुनकर सभा की ओर से शास्त्रार्थ के लिए बुलाये हुए पौराणिक मण्डल के शास्त्रार्थ महारथी पण्डित माधवाचार्य जी का मुख सूख गया। लगे हिन्दी-हिन्दी की पुकार मचाने। भला जो आर्य समाजी पण्डित अपने दस मिनट के समय में इस प्रकार पद्यात्मक संस्कृत बोले उसके सामने यह "**माधव आप सदा के कोरे**" क्या कर पाते ! आखिर पौराणिकों ने संस्कृत शास्त्रार्थ को मकान मालिक से मना करा कर सिर से बला को टाल दिया। अगले दिन बहुत जोर देने पर पौराणिक पण्डित हिन्दी में शास्त्रार्थ को तैयार हुए, "**तारीख ५-१२-३७ को तीन बजे से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।**" आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्य तीर्थ" तथा सनातन धर्म की ओर से श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री नियुक्त हुए। आर्य सामाजिक पण्डित जी ने भारतीय इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् राय बहादुर श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य द्वारा लिखित "**महाभारत मिमांसा**" तथा हिन्दी साहित्य के महान विद्वान् और महाकवि श्री पण्डित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय कृत "**कबीर वचनावली**" से कुछ उद्धरण पढ़कर सुनाये और बहुत ही विनम्र तथा हृदयहारी भाषण द्वारा पौराणिक पण्डित जी से इन सनातन धर्मी विद्वानों की सम्मतियों का सप्रमाण खण्डन करने को कहा। पौराणिक विद्वानों ने क्या खण्डन किया ? यह आप स्वयं आगे शास्त्रार्थ में पढ़िये—

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

सज्जन पुरुषों ! (१)—यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि इस वर्णन में कहीं पर भी मूर्ति पूजा का वर्णन नहीं है यद्यपि श्री कृष्ण अथवा युधिष्ठिर की आह्निक क्रियाओं का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है, तथापि उसमें किसी देवता की धातुमयी अथवा पाषाणमयी मूर्ति के पूजे जाने का वर्णन नहीं है। उस समय यदि लोगों की आह्निक क्रिया में देवताओं की पूजा का समावेश हुआ रहता, तो इस विषय का उल्लेख उस वर्णन में अवश्य आया होता। इससे निश्चय पूर्वक अनुमान होता है कि भारतीय युद्ध काल में और महाभारत काल पर्यन्त आर्यो के आह्निक धर्म में किसी प्रकार के देवता की पूजा समाविष्ट न हुई थी। किसी घर में देवता की मूर्ति रखकर उसकी पूजा शुरू नहीं हुई थी। भिन्न-भिन्न गृह्यसूत्रों में भी देवताओं की पूजा की विधि नहीं बतलाई गई है। इससे यह बात निर्विवाद है कि देव पूजा की आह्निक विधि महाभारत काल के पश्चात अनेक वर्षों में उत्पन्न हुई। (२)—वैदिक काल से उपनिषद् और दार्शनिक काल पर्यन्त आर्य धर्म में भी कहीं अवतार वाद और मूर्ति पूजा का पता नहीं चलता पौराणिक काल में ही इन दोनों बातों की नींव पड़ी है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(१) भाइयों ! "मूर्ति पूजा वैदिक है" देखिये मैं ये प्रमाण रखता हूं। आप गौर से सुनिये--**"यत्र-यत्र-स्म यातिस्म रावणो राक्षसेश्वरः। जाम्बूनदमयंलिगं तत्र तत्रस्म नीयते"** (बाल्मीकि रामायण परिशिष्ठ भाग) तथा **गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं कुर्यात्"** (बौधायन सूत्र) **"नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणं। देवताभ्यर्चनञ्चैव समिदाधानमेव च॥** (मनुस्मृति) और **"मुखायते पशुपते यानि चक्षुषि ते भवत्चं रुपाय संदृशे। प्रतीचीनाय ते नमः** (अथर्व वेद काण्ड ११ सूक्त १ मन्त्र ५) **"त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्। उर्वारुक मिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥** (यजुर्वेद ३-६०) एवं शतपथ देखिये क्या कहता है?—**मृत्पिण्ड मादाय महावीरम् करोति" "मखायत्वा मखस्यत्वाशीर्ष्णे" इत्य सावेव बन्धु प्रादेशमात्रम् प्रादेशमात्रमेव हि शिरोमध्ये संग्रहीत मध्ये सग्रंहीत मिवहि शिरोऽथास्यो परिष्ठात् त्र्यंगुलं मुखमुन्नयति नासिका मिवास्मिन्नेत दधाति तं निष्ठितमभिमृशति मखस्य शिरोऽसीति मखस्य ह्येतत्सोम्यस्य शिर एव मितरो तूष्णीं पिन्वते तूष्णीं ᳵ रोहित कपाले"** (शतपथ ब्राह्मण १३-१-२-१७)। देखिये रावण मूर्ति पूजा त्रेता युग में करता था। "गोबर से लीपकर प्रतिकृति अर्थात मूर्ति बनावें" देवतार्चन मनु जी बताते हैं, हजार की प्रतिमा (मूर्ति) वेद बताते हैं, अथर्व वेद भगवान के मुख, आंख, दांत सब बतलाता है यजुर्वेद-तीन नेत्र, (सूर्य, चन्द्र, अग्नि) बताता है। शतपथ ब्राह्मण महावीर जी की मिट्टी की मूर्ति बनाने का विधान करता है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

आपका रामायण का प्रमाण तो यहां राक्षसों का काम सिद्ध कर रहा है। महाराज! ऐसे नवीन श्लोक

तो साम्प्रदायिक काल में मिलाये गए हैं। रामायण में तो तथागत बुद्ध* का भी वर्णन मिला दिया गया है, बोधायन सूत्र महाभारत काल के बाद का है। देखो दो विद्वानों की सम्मतियां—ध्यान दो (१) इन सूत्रों में से बौधायन सूत्र २-२२-६ में गीता के "**पत्र, पुष्पं, फलं, तोयं**" वाले श्लोक का और वासुदेव की भक्ति का भी उल्लेख है। "**इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह सूत्र ग्रन्थ गीता की वासुदेव भक्ति के प्रचलित हो जाने पर बना है।**" (**वैदिक सम्पत्ति**) (२) अन्य सूत्र और वर्तमान मनुस्मृति महाभारत के बाद की है (**महाभारत मीमांसा**) ये सम्पत्तियां हैं, "**अक्षर विज्ञान**" के यशस्वी लेखक श्री पंडित रघुनन्दन शर्मा जी तथा श्री पं० चिन्तामणि विनायक वैद्य की। मनुस्मृति के "**देवताचर्चन**" शब्द से मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं होती। विद्वान ज्ञानी चेतन देवों का अच्चंन अर्थात सत्कार करना तथा यज्ञ करना अग्नियादि जड़ देवों के ठीक ठीक विज्ञान को जानकर उनसे काम लेना चाहिए, जैसा वैज्ञानिक लोग ले रहे है, यही है "**देवताच्चंन**"! प्रथम वेद मन्त्रों में तो मूर्ति पूजा का विनियोग तक नहीं, किन्तु यज्ञ में इसका विनियोग है, देखो महीधर भाष्य "**तिष्ठन्नग्निं प्रोक्षति हिरण्य सकल सहस्त्रेण शते द्वे-द्वे प्रकिरति सहस्त्र स्येति प्रति मन्त्रम्** (का०१७-१२-२७) कात्यायन सूत्र का प्रमाण है, इस मन्त्र से अग्नि प्रोक्षण करे। इसका भाष्य भी सुनिये-"हे अग्ने! **सहस्त्रस्येष्टकान। प्रमा प्रमाणं त्वमसि। सहस्त्रस्य प्रतिमा प्रतिनिधिरसि**" हे आग तू हजार ईंटों का प्रमाण है, हजार की प्रतिमा अर्थात प्रतिनिधि है। यहां यज्ञ की अग्नि का वर्णन हैं, यहां मूर्ति कहा है? "**मुखायते**" और "**त्र्यम्बकम्**" से जो आपने ईश्वर को साकार सिद्ध करने का निष्फल प्रयत्न किया है यह आपको निग्रह स्थान में ले जा रहा है अपने पक्ष की सिद्धि में मूर्ति पूजा विधायक प्रमाण प्रस्तुत करने चाहिए। यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक साकार की मूर्ति बनाकर पूजी जाए। इस समय मेरा प्रश्न ईश्वर की साकारता. निराकारता विषयक नहीं है। और न ही ईश्वर की मूर्ति बनने की शक्यता पर,! इस समय तो प्रश्न यह है कि "**क्या वर्तमान वैष्णव, शैव, शाक्तादि सनातनी सम्प्रदायों द्वारा की जाने वाली मूर्ति पूजा वेदादि प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध है अर्थात् सनातन है?**" और ना ही इन वेद मन्त्रों से ईश्वर साकार सिद्ध होता है, "**त्र्यम्बक**" का अर्थ आप तीन नेत्रों वाला करके ईश्वर को साकार सिद्ध करने का विफल प्रयत्न कर रहे हैं। यह अलंकारिक कल्पना है। "**ईश्वर के वास्तविक नेत्र, दांत, या शरीर नहीं है देखिये—"यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षमुतोदरम् दिवंयश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्राह्मणे नमः यस्यः सूर्यश्चक्षश्चन्द्रमाश्च पुर्नणवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥** (अथर्व वेद) देखिये! यहां सब रूपक ही है। अगर वास्तविक साकारता मानी जाए तो ईश्वर का शरीर एक तमाशे की चीज बने। आपने उसके तीन नेत्र बताये थे। सूर्य! चन्द्र!! अग्नि!!! यही ठीक भी हैं। अगर यह नेत्र अ मदादि के समान ही हैं तो ईश्वर की एक आंख जो सूर्य है तह तो पृथ्वी से कई लाख गुणा बड़ी और चन्द्रमा रूपी आंख पृथ्वी से भी छोटी। अर्थात एक आंख तो तिल की बराबर तो दूसरी हाथी जैसी। एक आंख के चारों ओर पृथ्वी घूमे और एक आंख पृथ्वी के चारों ओर घूमे। (जनता में हंसी…) यहां सूर्य चन्द्रादि की ज्योति को ईश्वरीय ज्योति से प्रकाशित बताने के लिए अलंकारिक भाषा में ऐसा कहा है "**त्र्यम्बकम्**" मन्त्र का विनियोग सूत्रकार कात्यायन और भाष्यकार महीधर मूर्ति पूजा या शिवजी पर बेल पत्र चढ़ाने में नहीं करते। किन्तु "**अग्निं त्रि परियन्ति**" "**त्रिःप्रदक्षिणं परियन्ति**" अग्नि की तीन परिक्रमा कराने में करते हैं-। शतपथ ब्राह्मण में आया हुआ "महावीर" शब्द किसी देवता की मूर्ति का वाचक नहीं है। और न इस प्रकरण से मूर्ति पूजा सिद्ध होती है। महावीर शब्द का अर्थ कादम्बरी के प्रसिद्ध टीकाकार महामहोपाध्याय श्री भानुचन्द्र तथा सिद्धचन्द्र जी (अकबर

नोट—

*"**यथाहि चौराः स तथाहि बुद्धस्तथागतं नास्तिक मत्र विद्धि**" (बा० रा० अयो० का० सर्ग ११० श्लोक ३४)

के सभा पंडित) क्या करते हैं ? देखिये—"विधान सम्पादित दान शोभितैः स्फुरन महावीर सनाथ मूर्तिभिः।" इस पर टीका देखिये —"स्फुरन्त ज्वलन्तो ये महावीराः श्रौताग्नयः" महीधर उव्वट भाष्य, महावीर के विषय में लिखते हैं, अध्याय ३७ मन्त्र ११-१४ श्रुति पेश करते हुए-"एष वं: धर्मः एषउ प्रवर्ग्यः" अर्थात महावीर धर्म्य है प्रवर्ग्य है, "त्रीन् महावीरानुखावच् श्रीपयेत्" तीन महावीरों को उखा (आग रखने की हांडी) की तरह पकावे, अध्याय ३७ मन्त्र ६ का भाष्य—अध्याय ३७-३२ को पूरा पढ़ने से सिद्ध हो जाता हैं कि महावीर एक मिट्टी का पात्र है, जिसमें आग जलाई जाती है और देखिये—"कौ दृशम् प्रादेशोच्चंगर्त्तवन्तं मेखलायुक्तं मध्ये संकुचितम मेखलोपरिश्यंगुलोच्चमिति सूत्रार्थः। (का०सू०२६-१-१६)का अर्थ महीधरजी करते हैं। "प्रादेश भर ऊंचा, गड्ढे वाला, मध्य में संकुचित मेखला के ऊपर तीन अंगुल ऊंचा"। कहिये यह मूर्ति है या पात्र ? शतपथ ब्राह्मण भी आगे स्पष्ट करता है-(१६-८-१) तदाहुः यद्वानस्पत्यैर्देवेभ्यो जुह्वाति, अथकस्मादेतन्मृन्मयेनैव जुहोतीति ॥५३॥ सयद्वानस्पत्यः सयात्प्रव ह्यैत यद्धिरण्मयः स्यात् प्रतीयेत। यल्लोहेमयः स्यात् प्रसिच्यते। मदयस्मयः स्यात् प्रदहेत् परिशासावथैव (एवैतस्या अतिष्ठत तस्मादेनं मृन्मयेनैव जुहोति ॥५४॥ अर्थात् यहां "मिट्टी के बने हुए महावीर से हवन करता हैं" यह है, न कि मिट्टी के बने हुवे महावीर को फूल चढ़ाता है। बताशे भेंट करता है, महावीर यहां कारण कारक है सम्प्रदान नहीं। प्रश्न से पात्र ही टपकता है। प्रश्न है कि काष्ठ के पात्रों से देवताओं के लिए हवन होता है, यह मिट्टी से क्यों यज्ञ किया जाता है ? अर्थात और पात्र तो काष्ठ के ! मगर महावीर मिट्टी का क्यों ! उत्तर में—सोने, लोहे, आदि के में खतरा बता कर मिट्टी का ही महावीर लाभदायक बताया है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

ऐतिहासिकों का कोई प्रमाण नहीं। भगवान रामचन्द्र जी ने भी बालुका के महादेव बनाकर पूजे, देवताचर्चन का अर्थ टीकाकारों ने हरि-हर आदि का पूजन किया है। तभी तो उसके मुख नासिका बनाये गये और उसे मेखला पहनाई जाती है। मनुष्य जिस प्रकार अपने शरीर पर फूल माला आदि चढाने से प्रसन्न होता है उसी प्रकार ईश्वर भी। पृथ्वी उसका शरीर है देखो—"यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरों यं पृथ्वी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं" इत्यादि (शेष पिछली बातों को दोहराया)

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

आप मूर्ति पूजा को छोडकर साकारता सिद्धि पर क्यों उतर पडे ? यह साकारता तो कल्पित है, और यहां तो कितनी अच्छी बात कही है कि वह पृथ्वी में व्यापक है मगर पृथ्वी उसे नहीं जान पाती जब पृथ्वी नहीं जान पाती तो पृथ्वी से बनी मूर्ति उसे क्या जान सकती है ? और जो ज्ञान शून्य है, वह आपको ईश्वर प्राप्ति के लिए वृत्ति को बाहरी पदार्थों से हटाकर अन्तर्मुखी करने का उपनिषद उपदेश देती है, हम तो अपने शरीर की पूजा से इसलिए प्रसन्न होते हैं कि हमारा शरीर "भोगायतन" है। हम इसी के द्वारा सुख-दुख भोगते हैं। ईश्वर का शरीर सुखः दुखः भोगने का साधन नहीं, पृथ्वी ही नहीं उपनिषद ने जल अग्नि आदि सब का इसी तरह ईश्वर का शरीर बताया है। अखिल ब्रह्माण्ड ही उसका शरीर कहा गया है तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार हमारा शरीर जीवात्मा की व्याप्ति से हरकत करता हैं, इसी प्रकार इस विषय को हरकत देने वाला परमात्मा है। वह सब में व्यापक है अनिश्वरवादियों को इस प्रकार ईश्वर सत्ता बताई गई है। मनुस्मृति के टीकाकार तो घोर पौराणिक काल में हुए हैं इनको यह अर्थ करना ही था। इनकी बुद्धि में इसके अतिरिक्त विचार आ ही नहीं सकता था। मगर निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ और वेदों के देखने से तो देवार्च्चन का प्रकार यज्ञ ही ठहरता है। रामचन्द्र जी का मूर्ति-पूजन वाल्मिकि रामायण में दिखाइये ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(जनता को भडकाने वाले ढंग से) भाइयों ! शोक !! आप वेदों की बातों को कल्पित बता रहे हैं। कल्पित तो मिथ्या को कहते हैं। ईश्वर का शरीर कल्पित नहीं है। महावीर अगर देव प्रतिमा न होती तो उसके मुख नासिका का वर्णन क्यों आता ? ओर उसकी मेखला (करधनी) पहराने का भी विधान है, और जिस प्रकार बड़े देश का छोटा नक्शा बना लिया जाता हैं, इसी प्रकार उस महान ईश्वर का छोटा रूप मूर्ति कल्पित कर ली जाती हैं। योग दर्शन कहता है "यथाभिमत ध्यानाद्वा" अर्थात् ईश्वर की अपनी इच्छानुसार मूर्ति बनाकर ध्यान करो। ईश्वर सब में व्यापक हैं मूर्ति में भी व्यापक हैं। इसलिए मूर्ति की पूजा उस ही की पूजा हैं।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

राक्षसों द्वारा यज्ञ विध्वंश की शिकायत ऋषि लोग बार बार आर्य राजाओं से करते थे मगर मूर्ति या मन्दिर तोडने की कभी शिकायत नहीं की, इससे ज्ञात होता हैं कि आर्य जाति मूर्ति पूजक नहीं थी, कल्पना शब्द से वाक्छल गलत भाव न निकालिए कवित्व के साथ मिथ्या ही "सत्यम् शिवं सुन्दरम्" हो जाता हैं अलंकार कल्पना से बनते हैं कल्पना कवित्व का भूषण है। वेद उच्च कोटि का काव्य है । आप केवल अभिधेय अर्थ ही ग्रहण करते हैं। लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को छोड देते हैं, मूर्ति के लिए तो "कल्पित" आप भी कह गये। मगर यह न सोचा कि नकशा सर्वे करने के बाद बनता है, कोरी कल्पना से नहीं । वरना हिन्दुस्तान का नक्शा गोल या त्रिभुज भी कल्पित किया जा सकेगा। महान असीम का लघु असीम नक्शा होता है । मगर ईश्वर है अपरिमित उसकी नाप तोल कहाँ ? फिर उसका नक्शा कैसा ? वेद कहता है "न तस्य प्रतिमास्ति यस्यनाममहद्यशः" जिस ईश्वर का महान यश है. और नाम है उसकी प्रतिमा-मूर्ति कल्पना नहीं है। पात्रों के भी नाक-मुंह-कान का व्यवहार होता है। घडे का मुख, कन्ना, कान, मेखला पहराने का यहां नाम तक नहीं है। मिट्टी की मेखला बनाने का वर्णन है। यह मेखला ऐसे ही है, जैसे हवन कुण्ड की मेखला (मेंडरी) होती है। योग सूत्र में मूर्ति पूजा का वर्णन नहीं घाटक मात्र का आदेश है। साम्प्रदायिक मूर्ति पूजा में ध्यान जमाना कहां? वहां तो बाहरी क्रिया कलाप होता रहता है। ईश्वर सब में व्यापक है तो, माता-पिता, आचार्य में भी व्यापक है। और आपके हृदय में भी, बस इन्हें ही पूजिये, मगर पूजा आप व्याप्य की करते हैं या व्यापक की ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

मूर्ति काम क्रोध से रहित है। माता, पिता, आचार्य आदि में ये भाव हो सकते हैं । अतः मूर्ति में ईश्वर पूजा होती है। हम तो सब में ईश्वर को व्यापक मानकर सबको ही पूज्य समझते हैं। "ब्रह्मणोद्वे रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च" ब्रह्म के दो रूप होते हैं, मूर्त तथा अमूर्त। जनता की सेवा जनार्दन की सेवा है। आर्य समाजी फ़कत आग की पूजा को ही ईश्वर की पूजा मानते हैं। पटेले, उस्तरे, और जूते को पूजते हैं। जनता में शोरोगुल ... स्वामी जी ने पटेले को मीठे और दूध से तर करना लिखा है। उस्तरे और जूते की प्रार्थना लिखी है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ" —

मूर्ति कामक्रोधादि दुर्गुणों से रहित है तो दया दाक्षिण्यादि शुभ गुणों से भी वंचित है। पूजा आप व्याप्य की करते हैं, व्यापक को छोड देते हैं, संसारी कामों में व्याप्य की प्राकृतिक पदार्थों की पूजा अर्थात् उसका विधिवत्

योग और संभाल की जाती है । जैसे कि उस्तरे, जूते आदि वस्तुओं की । उस्तरे, जूते आदि को कोई आर्य समाजी भोग नहीं लगाता न उन पर फूल-पत्र चढ़ाता है । न कहीं प्रार्थना लिखी है । यदि है तो दिखलाओ ? हां ! उस पर धार व पालिश कराते हैं । पटेले वाले भाष्य को पूरा पढ़िये, और भाव समझिये । दूध-मीठे आदि का खाद देने से तात्पर्य हैं सीरे और खांड के मैल का खाद बड़ा मुफ़ीद होता है । यज्ञ द्वारा आर्य समाजी आग को नहीं पूजते किन्तु इस व्याप्य सृष्टि को स्वच्छ बनाते हैं । और वेद मन्त्रों द्वारा व्यापक की स्तुति से उसका ज्ञान करते हैं, क्योंकि पूर्ण काम ईश्वर की पूजा नहीं होती । उसकी आत्मा से ज्ञान अर्थात् अनुभव होता है । यदि ईश्वर की सर्व व्यापकता के कारण सबको पूज्य मानते हो और जनता की सेवा को जनार्दन की सेवा समझते हो तो भारत माता के सात करोड लालों को अछूत कहकर क्यों ठुकराते हो ? अपनी बनाई मूर्तियों की तो पूजा और परमात्मा की बनाई हुई मूर्तियों से घृणा ! **"ब्रह्मणो द्वे रूपे"** वाली श्रुति का तात्पर्य हैं कि ब्रह्म, सृष्टि रचना द्वारा मूर्त्त अर्थात व्यक्त है और वैसे अव्यक्त ।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री —

यज्ञ भी मूर्ति पूजा है । स्वामी जी ने उस्तरे को विष्णु जी की दाढ कहा है और नमस्ते की है, **"हे ! उस्तरे मुझे मत मार"** ऐसा लिखा है । जूते से कहा है **"मेरी रक्षा कर"** तथा **"पटेले, को घी शहद शक्कर आदि से संयुक्त करो"** ऐसा लिखा है । आप मूर्ति खण्डन वेद में न दिखा सके अतः निग्रह स्थान में आ गये ।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

आप अपने पक्ष को सिद्ध न करके संस्कार विधि और ऋषि भाष्य पर आक्षेप करके स्वयं **"मतानुज्ञा"** निग्रह स्थान में जा रहे है, **"देखिये स्वपक्ष दोषाभ्युपगमात्परपक्ष दोष प्रंसगोमतानुज्ञा"** स्वामी जी ने अपनी ओर से कुछ नहीं लिखा, यह हिन्दी आपकी है । स्वामी जी की नहीं है । जो मन्त्र जूता पहनते और उस्तरे की धार वगैरा की जांच करते वक्त पढने को श्री स्वामी जी ने लिखे हैं वे उन्ही सूत्र ग्रन्थों के हैं, जो आपको भी मान्य हैं आर्य समाज का यह पक्ष तो आपको भी स्वीकृत है । अतः सिद्ध है । रही पटेले की बात ! यह वाक्य शैली है जैसे अन्न चाहते हो तो हल की पूजा करो, हल की सेवा तुम्हें मालामाल कर देगी । अगर यज्ञ भी मूर्ति पूजा है तो इसी पर मतलब यहां हाली (हल चलाने वाला) से है । पुरुषार्थ बढ़ाने से है, इसी पर सब्र कीजिए, और हमारे-आपके बीच में विवाद का कारण बनी हुई साम्प्रदायिक मूर्ति पूजा को छोड़िये ।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री —

मैंने वेदों से मूर्ति पूजा सिद्ध कर दी । महावीर की मूर्ति बनाना शतपथ में है । जिसे हम वेद मानते हैं, महावीर पात्र शब्द नपुंसकलिंग है और महावीर शब्द पुलिंग है । महावीर के नाक मुख दिखा दिये । महावीर यज्ञ पात्र है तो संस्कार विधि में इसका चित्र क्यों नहीं ? आपने अपने पक्ष को सिद्ध नहीं किया कि मूर्ति पूजा का वेद में निषेध है या मूर्ति पूजा पाप हैं ? आप अपना पक्ष सिद्ध न करने के कारण निग्रह स्थान में आ गये, आप यज्ञ को ईश्वर पूजा सिद्ध मानने तो लगे, अब तक तो वायु शुद्धि का कारण ही मानते थे, उस्तरे आदि के मन्त्रों में कहा जाता है कि **"विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि"** तू विष्णु की दाढ़ है । निराकार विष्णु की दाढ़ भी हो सकती है ? और उस जड़ उस्तरे से बात चीत कैसी ? और इसी प्रकार जूते से **"विश्वतो मा पातम्"** कहा गया है, यह मूर्ति पूजा नहीं है तो और क्या है ?

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

वेद के मन्त्र जो आपने पेश किये उनका विनियोग यज्ञ ही में निकला। "पात्र" शब्द नपुंसकलिंग है, मगर "पात्र" के विशेषवाच्य "घट" या "कलश" या "कटाह" यह तो "पुंलिंग" है, महावीर भी पात्र विशेष है, महावीर के नाक मुख तो बताये मगर पूंछ नहीं। (जनता में हंसी...)

जनाब यह मुहावरे हैं, सुराही की गर्दन, गला, नाक, कान, घड़े का पेट, आदि। संस्कार विधि में सब पात्रों के चित्र नहीं हैं। मेरा पक्ष कहां है ? पक्षी तो आप हैं, मैं तो इस समय प्रतिपक्षी हूं। आपके ऊपर प्रमाण का भार है। यदि मूर्ति पूजा की विधि वेद से प्रमाणित नहीं तो निषेध स्वयं सिद्ध है। यज्ञ को ईश्वर पूजा आपके कथनानुसार कहा गया है। मैं तो उसे सृष्टि के विकारों की चिकित्सा मानता हूं। ईश्वर को तो ज्ञान की आवश्यकता है। द्रव्य पूजा की नहीं, आप अपने ही मान्य मन्त्रों पर शंकायें करके अपने मन्तव्य का ही उपहास कर रहे हैं। शोक है कि आप तर्जे कलाम या वाक्य शैली को समझने का कष्ट नहीं उठाते देखिये वेदान्त दर्शन कहता है—"**अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्**" कोई विशेष बात जताने या अनुमित के कारण अभिमानी व्यपदेश जड़ों से चेतनवत् कलाम होता है, जैसे "**मञ्चाः क्रोशन्ति**" से मञ्चस्थ पुरुष समझे जाते हैं। इसी प्रकार उस्तरे से उस्तरे के प्रयोगकर्ता को जूते से जूते के पहिरने वाले को (अपने को ही) समझना है इसी प्रकार पटेले की बात है जरा देखिये तर्जे कलाम फ़ारसी हिन्दी दोनों में—

कलम गोयद के मन शाहे जहानम्। कलम कसरा बदोलत मी रसानम्॥

क्या कलम बोलती है ? नहीं कलम की प्रशंसा अहिले कलम की प्रशंसा है ? कोई कवि किसी सुन्दरी के भाव वर्णन करता हैं—

ऐ माटी के कुल्हड़ा, मैं तोहि पूछौ बात। होठ रंगे हैं पीव को, तू क्यों चिपट्यो जात॥

कहिये ! क्या यहां जड़ कुल्हड़ भी समझते हैं ? आगे (कवि) कुल्हड़ की ओर से उत्तर देता है।

लात सहे घूंसा सहे, सहे अग्नि घन घाय। हे प्यारी तब होठ को, स्वाद चखो है आय॥

कहिये ! क्या यहां कुल्हड में बोलने की क्षमता है ? या वह अन्योक्ति अपनी कुछ दूसरी ध्वनि रखती है ? माननीय पूज्य आचार्य जी वाक्य शैली पर ध्यान देने का कष्ट उठाया कीजिये। मैं कौन से निग्रह स्थान में आया ? जरा उसका नाम तो बताइये।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

वेद में कहीं मूर्ति पूजा का निषेध दिखाइये ओर बताइये मूर्ति पूजा को वेद में पाप कहां लिखा है ? अगर आप जड़ पदार्थों की पूजा करते हैं तो ठीक। और हम करते हैं तो गलत ! ऐसा क्यों ? ईश्वर निराकार है उसका कोई आकार नहीं इसलिए हम शिव की मूर्ति गोल-मटोल शून्याकार बनाते हैं। घड़े की नाक नहीं, होठ वोले ही बोले जाते हैं।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

वेद में रोजा नमाज का निषेध नहीं है, मगर किसी सनातनी का रोजा, रखना, नमाज पढना आप पसन्द न करेंगे, क्योंकि अवैदिक कृत्य है। मलेच्छाचार है, आर्याचार नहीं। ठीक इसी तरह मूर्ति पूजा वैदिक विधि न होने से आर्य धर्म नहीं। मूर्ति पूजा पाप है या नहीं ? यह विचार इस समय नहीं है। इस समय तो विचार है कि यह वैदिक प्रथा है या नहीं ! मूर्ति पूजा पाप न सही मगर एक ऐसा व्यर्थ काम है जैसे कोई मनुष्य अपने ही कपड़े बार-बार फाड़े और फिर सिये, अपनी मूंछ का बाल उखाड़े और उसके हजार टुकड़े करता रहे। यह कोई जुर्म या अपराध तो नहीं। मगर वक्त की बर्बादी तो अवश्य है। इसी प्रकार मूर्ति पूजा से समय और धन की बर्बादी होती है। ईश्वर इन्द्रियागोचर तथा कल्पनातीत है। उसको "नेति-नेति" कर गाया है। फिर उसे "इत्थमिति" कह कर क्या उसकी अनन्तता का अपमान करते हो ? निराकार का गोल-मटोल आकार बनाना भी तो एक निराधार कल्पना ही है। मूर्ति, सृष्टि की बन सकती है। स्रष्टा की नहीं। घड़े के नाक न सही होठ ही सही, मतलब तो इससे है कि पात्र में मनुष्य के अंग प्रसंग का आरोप होता है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

रोजा, नमाज भी उपासना है। मूर्ति पूजा का निषेध दिखाइये ! यह तो सिद्ध हो गया कि मूर्ति पूजा पाप नहीं और न वेद में इसका खण्डन है। भगवान मूर्ति में व्यापक है। उसकी सेवा से भगवान प्रसन्न होते हैं जैसे अपने शरीर की सेवा से हम होते हैं।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

वाह ! वाह !! आचार्य चरण !!! यह क्या कह दिया ? क्या रोजा, नमाज को भी हिन्दुओं के लिए उचित ठहराया जा सकता हैं ? मूर्ति पूजा पाप नहीं। मगर पुण्य भी तो नहीं है। जो एक निरर्थक काम होता है, वही मूर्ति पूजा है। वेद या आर्ष ग्रन्थों में मूर्ति पूजा का खंडन न होना सिद्ध करता है। कि मूर्ति पूजा उस काल में नहीं थी। उस आर्ष काल में तो जहां देखिये यज्ञों का ही वर्णन आता है। भगवान मूर्ति में हैं और उससे बाहर भी। हम शरीर में ही हैं और उससे बाहर नहीं। हमें जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन्हें पाकर प्रसन्न होते हैं, जैसे गर्मी में वर्षा का ठंडा जल और जाड़े में गर्म चाय या अगीठी पर तापना। इससे विपरीत अप्रसन्न होते हैं। ईश्वर पूर्ण काम है। उसे किसी पदार्थ की अकांक्षा नहीं, अगर वह मूर्ति पर फूल चढ़ाने से प्रसन्न हो तो मूर्ति को चोट पहुंचने से दुखी भी होगा, जैसा कि अपने शरीर को चोट पहुंचने से हमें। अगर ऐसा हो तो उसको मनुष्य सुखी-दुखी कर सकेगा इस दशा में मनुष्य गालिब ठहरेगा और ईश्वर मगलूब। वह निर्विकार है उसको अपने जैसा कल्पित नहीं करना चाहिए। ध्यान रहे कल्पना की भी मर्यादा होती है। कल्पना सार्थक सप्रयोजन होती है। निरर्थक निष्प्रयोजन नहीं। हमने बताया कि मूर्ति पूजा वैदिक नहीं है। आपका परम मान्य पुराण तिलक श्री मद्भागवत पुराण भी इसे तान्त्रिक विधि बता रहा है। देखिये—

य आशु हृदय ग्रन्थि निर्जिहीर्षुः परमात्मनः। विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केवलम् ॥४७॥
लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः। महापुरुष मभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ॥४८॥

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

निराकार मिठास मूर्तिमान् पेडे-लड्डू में रहता है, बगैर लड्डू-पेड़े के ग्रहण नहीं किया जाता। संस्कार-विधि पर वहीं पूर्वोक्त आक्षेप है महावीर को यज्ञपात्र सिद्ध करने का चेलेञ्ज है।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

लड्डू-पेडे का उदाहरण गुण द्रव्य का उदाहरण है, ईश्वर गुण नहीं द्रव्य है, हेत्वाभासों से काम न लीजिये (वही पूर्वोक्त उत्तर और उपसंहार तथा सनातन धर्मी-आर्य समाजी दोनों से प्रेम पूर्वक विचार करते रहने और स्वाध्याय बढ़ाने की अपील की)।

नोट—

यहीं पर तीन घन्टे का नियत समय जो शास्त्रार्थ के लिए निश्चित किया गया था समाप्त हो गया। तब आर्य समाज के प्रधान जी ने सूचना दी कि शास्त्रार्थ का समय समाप्त हो गया है। जनता चाहे तो समय बढ़वा सकती है। इतना सुनते ही पौराणिकों ने हल्ला मचा दिया और खड़े होकर जनता पर डण्डा चलाने लगे। मगर आर्य पण्डित की बुद्धिमानी और मृदुभाषण तथा आर्य समाज के प्रधान तथा आर्य जनता की सहिष्णुता ने कमाल किया। जनता फिर शान्त होकर बैठ गई। सनातन धर्म के सभापति जी ने इस पर आर्योपदेशक के शान्ति प्रियता की बहुत सराहना की। सनातन धर्म के सभापति श्री पण्डित गया प्रसाद जी शुक्ल बी०ए०एल०एल०बी० ने पन्द्रह मिनट अन्तिम समय श्री पण्डित माधवाचार्य जी को देना चाहा, जिसे आर्योपदेशक ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। आचार्य जी ने वही प्रमाण दोहरा कर और आर्य पण्डित के भाषण के इन शब्दों की कि—"**सनातनी, आर्य, जैन, बौद्ध, सिक्ख, सब आर्य धर्मी एक हैं, आर्य सभ्यता फैलाकर आसुरी भावों को भगाना हमारा उद्देश्य होना चाहिए, हमारा शास्त्रार्थ सद्भावना पूर्ण, विचार, स्वाध्याय और शास्त्राण्वेषण की प्रवृत्ति के लिए होना चाहिए विद्वेष बढ़ाने को नहीं**"। यह कहते हुए भाषण समाप्त किया, तदुपरान्त आर्योपदेशक और समाज को धन्यवाद देते हुए सभापति जी ने श्री माधवाचार्य जी की ओर से यह मांग की कि आर्य पण्डित से दो वाक्य (१)—"**मूर्ति पूजा पाप नहीं है**" तथा (२)—"**ईश्वर की पूजा नहीं होती**" लिखकर दे दिये जायें।

श्री पण्डित बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

बिना पूर्वापर प्रसंग के यह पंक्तियां अपना आशय खो रही है और आप इन साथ की पंक्तियों को छोड़ रहे हैं "**मूर्ति पूजा पाप न सही परन्तु निरर्थक कार्य तो है ईश्वर की पूजा नही किन्तु ज्ञान होता है। पूजा होती है मान्य पुरुषों की। तथा अन्य भी ईश्वर रचित चीजों की। ईश्वर पूर्ण काम है, उसे पूजा या सेवा की आवश्यकता नहीं॥**"

अगर आप चाहें तो अप्रसंग आपके कहे वाक्य लिखकर दिये जा सकते हैं। मगर (Professional) पेशेवर उपदेशकों से यह खतरा रहता है कि वे आगे पीछे के शब्द काटकर उन पंक्तियों से जनता में भ्रम फैला सकते हैं। अगर आप चाहें तो "महावीर" शब्द पर थोड़ी देर आज या कल शास्त्रीय विचार हो जाये, क्योंकि आचार्य महोदय ने हमें इसके यज्ञोपकरण सिद्ध करने का चैलेञ्ज दिया है और हम उन्हें चैलेञ्ज देते हैं कि वे इसे

हनुमान जी या किसी भी पौराणिक देव की मूर्ति और उसका पूजन सिद्ध करें हम इसे यज्ञोपकरण और एक प्रकार का बर्तन सिद्ध करेंगे।

नोट—

इस पर श्री पण्डित माधवाचार्य जी ने मौन साध लिया तथा समयाभाव बतलाकर विचार करने से इन्कार कर दिया और सभा हंसी-खुशी के साथ समाप्त हुई।

शास्त्रार्थालोचन

पण्डित बिहारलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"—

पाठक वृन्द !

अच्छा तो यह था कि इस शास्त्रार्थ की आलोचना श्रोताओं में से ही कोई सज्जन करते, **"मगर सर्व साधरण को तो इतना स्वाध्याय नहीं और विद्वानों को श्रम करना स्वीकार नहीं"** इसलिए सर्वसाधारण को सही मार्ग तक पहुंचाने और विद्वानों के ज्ञानात्मक विनोदार्थ यह आलोचना हम स्वयं ही लिखते हैं। इस शास्त्रार्थ में साध्य पक्ष (मूर्ति पूजा का वैदिकत्व, सनातनत्व, वा प्राचीनत्व) था पौराणिकों का ! और प्रति पक्षी था, आर्य समाज ! ! **"पौराणिक पण्डित श्री माधवाचार्य जी शास्त्री"** ने अपने पक्ष को वेद वा तदनुकूल आर्ष ग्रन्थ वा अखण्डनीय ऐतिहासिक स्पष्ट प्रमाणों से सिद्ध न करके ईश्वर की साकारता को प्रमाणित करना प्रारम्भ कर दिया, **" पूछी खेत की ! कही खलिहान की"** इस प्रकार पण्डित जी—**"प्रकृतादर्थादसम्बद्धार्थमर्थान्तरम्"** (न्याय दर्शन अ० ५, आ० २, सू०७) अर्थात् अपनी असली बात से हटकर बेतालुक बात कहना। अर्थात् **"अर्थान्तर नामक निग्रह स्थान"** में ग्रस्त हुए। महात्मा बुद्ध, तीर्थङ्कर महावीर जी, श्री राम जी, तथा कृष्ण जी, साकार थे परन्तु इनका सम्मान करता हुआ भी आर्य समाज इनकी मूर्तियों की पूजा (स्नान, बिलेपन, धूप, दीप, भोग गाना, सुलाना, जगाना, आरती करना, रथ यात्रा, विवाह आदि) स्वीकार नहीं करता। तब भला फिर एक कल्पनामात्र के बल से रूपकालंकार की साकारता से ईश्वर की मूर्तियां बनाकर पूजना कैसे मान्य हो सकता है ? सिद्ध तो करना था वर्तमान साम्प्रदायिक शिव, विष्णु, देवी, भैरव आदि की मूर्ति पूजा की विधि को वेद तथा आर्ष ग्रन्थों से विहित, मगर बार-बार खुलासा तौर से पूछे जाने पर भी इस ओर ध्यान न दिया, कई बार कहा गया कि वेद तथा आर्ष ग्रन्थों में जैसे स्पष्ट रीति से यज्ञ का विस्तृत वर्णन है, इसी प्रकार शिव आदि मूर्ति पूजा का भी दिखाइये, परन्तु दिखाते भी क्या ? वहां कुछ होते तो दिखाते। प्रमाण वे रक्खे जो स्वयं साध्य थे। जैसे बाल्मीकि रामायण का प्रक्षिप्त श्लोक, मनुस्मृति की पौराणिक टीका इस प्रकार पण्डित जी—**"साध्याविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः"** (न्याय दर्शन १,२, ४६,) अर्थात् जो हेतु साध्य के समान ही साध्य हो वह साध्यसम है। के अनुसार साध्यसम हेत्वाभास नामक निग्रह स्थान के दुबारा शिकार हुए। रावण की लिङ्ग पूजा वाला श्लोक वहां का है जो बाल्मीकि रामायण के साथ उत्तरकांड के नाम से जुड़ा हुआ है और बाल्मीकि रामायण हो जाती है युद्ध कांड पर ही समाप्त ! वहीं उसका महात्म्य दे दिया है। तथा **" समाप्तश्चायं कथा प्रसंगः"** यह कथा प्रसंग समाप्त हुआ, ऐसा लिखा गया है। देवार्च्चन मूर्तिपूजा

द्वारा होता है। यह दावा पण्डित जी किसी पुष्ट, प्रमाण से सिद्ध न कर सके, वास्तव में उनको ऐसा प्रमाण मिल ही कहां सकता था ? हां ! देवार्च्चन का प्रकार यज्ञ है। इसको तो वेदों के महान पण्डित और सूक्ष्म समालोचक "**श्री पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी**" जी भी बताते हैं, यथा—

"**यत्रहि अग्निहोत्रविभिः श्रौतैः, वैश्वदेवाविभिश्च गृह्यैर्देवानामर्च्चनं सम्पद्यते**"

(ऐतरेयालोचन पृष्ठ ६२)

अर्थात् "अग्नि होत्र आदि श्रौत तथा **बलिवैश्व** देवादिक गृह्यविधियों से देवताओं का पूजन होता है"। इसी पुस्तक में देवताओं का विवेचन करके प्रशंसित पण्डित जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि विद्वान ब्राह्मण चेतन देव और सूर्यादि जड़ देव हैं। "**मुखायते**" आदि अथर्व मन्त्र से पण्डित जी ईश्वर के मुख-दांत आदि बताकर ईश्वर की वास्तविक साकारता सिद्ध करते रहे और अलंकार पर ध्यान न दिया, तथा आर्य पण्डित के "**कल्पित**" शब्द का वक्ता के भाव के विरुद्ध अर्थ लगा के वाक्छल हेत्वाभास नामक निग्रह स्थान में पंडित जी तिबारा गिरे। अब देखिये पुराण की दृष्टि में भी ईश्वर के अंगों का वर्णन रूपक ही है, श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२, अध्याय ११ श्लोक ६ से ८ तक —

एतद्वै पौरुषं रूपं भूःपादो द्यौः शिरोनभः। नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः ॥६॥

प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः। तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥७॥

लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्सना स्मयोभ्रमः। रोमाणि भूरुहाभूम्नो मेघाः पुरुषमूर्द्धजाः ॥८॥

अर्थात्-पृथ्वी, पाँव, द्यौ, शिर, नाभि, आकाश, सूर्य, नेत्र, वायु, नाक, दिशा, कान, प्रजापति, प्रजनन, मृत्यु-अपान, लोकपाल बाहु, चन्द्रमा, मन, यम, भौहें. लज्जा, उत्तर, लोभ, अधर, (होंठ) चांदनी, दाँत, भ्रम, स्मय, रोम, वृक्ष, मेघ, सिर से बाल, इससे यह भी सिद्ध हो गया कि ईश्वर का शरीर एक रूपक मात्र, यह जगत ही है। क्षीर सागर समुद्र में चतुर्भुज विष्णु के अस्तित्व की कल्पना बन्ध्या पुत्र के विवाह का जुलूस ही है। "**त्र्यम्बक**" का अर्थ जरा सायणाचार्य जी कृत भी मुलाहिजा फर्माइये—"**त्रयाणां ब्रह्म विष्णु रुद्राणां पितरम्**" अर्थात ब्रह्मा विष्णु, शिव इन तीन का अम्बक अर्थात पिता। अब "**महावीर**" को देखिए यह देव मूर्ति है या नहीं। महा-महा पौराणिक, घोर आर्य समाज द्वेषी श्री पण्डित कालूराम जी अपनी पुस्तक "**आर्य समाज की मौत**" के पृष्ठ १६१ पर क्या फर्माते हैं ?—"**अश्व यत्वा वृष्णा ..**" इस मन्त्र से घोड़े की लीद के "**महावीर**" को पकावे। शिव शिव ! देव प्रतिमा का यह घोर अपमान ! हरे-हरे "**जड़ पूजे होवे जड़ बुद्धि**" अब जरा कोष में भी अर्थ देखिए—

"**महावीर**"—**पुराण गरूड़े, शूरे, सिन्हे, "मखानले यज्ञाग्नौ" श्वेत तुरंगे अन्तिमजिने कोकिले, लक्ष्मणे, हनुमति एक वीर वृक्षे**" अब शतपथ के प्रकरण से मिलाकर बताइये कि यहाँ मखानल, यज्ञाग्नि अर्थ युक्त रहेंगे वा और कोई ? ईमान से कहिये, कादम्बरी टीकाकार के अर्थ से मेल मिला या नहीं। जरा ढूंढ़िये कहीं "**देव मूर्ति**" अर्थ मिल जाये तो।

शतपथ में आये मुख नासिका शब्द से आचार्य महाशय को भ्रम हो गया यह तो विचारा होता कि मुख नासिका तो आए मगर कान नदारद। यह कनबुच्ची मूर्ति किस देवता की है महाराज ! गांवों में अनाज भरने को घरों में कोठी-कुठले मिट्टी के बनाए जाते है, इनके ढक्कन को "पहना" कहते हैं इसे पकड़ने के लिए मिट्टी की उठी हुई

ठीक नाक सी बनाते हैं। इसे नाक ही बोलते हैं। ठीक इसी पात्र के किनारे नासिकाकार मोड़ दिए जाते है ताकि दूध आदि पतले पदार्थ भली भाँति ढांपे जा सकें। मुख तो आमतौर से बर्तनों में इस्तेमाल होता है। असल में महावीर यज्ञाग्नि और उससे सम्बन्ध रखने वाला एक पात्र ही है। जिसमें बकरी का दूधादि रखते हैं। अब लीजिए सबूत की तह तक ही आपको पहुंचा दें। स्पष्ट पात्र शब्द आंख खोलकर पढ़ लीजिए, सत्य के अभिलाषियों के लिए इस से बढ़कर और क्या सबूत हो सकता है? देखिए—**"महावीर"**—**"यज्ञसाधने मृन्मयपात्र भेदे तन्नि भणि विधिः"** (कात्यायन श्रौत सूत्र २६/१द्रष्टव्यः) यह प्रमाण ऐसा-वैसा नही, किन्तु संस्कृत के सबसे बड़े कोश **"वाचस्पत्या-भिधान"** का है। और भी सही, महीधर भाष्य यजुर्वेद अ० ३८ मन्त्र ३१ देखिए—**"आसेचनं गर्त्तः"**—**तद् युक्ता-निपात्राणि, दुग्धेन पुरयति तानिसप्त।** (का० श्रौत सू० २६-७-३८) का अर्थ करते हुए महीधर जी कहते हैं "**गड्ढे से युक्त पात्रों को दुग्ध से भरे**" वे सात हैं—**"महावीरत्रयं द्वे पिन्वने उपयमनी स्त्रुवश्चेत्यर्थः"** अर्थात-सात पात्रः—३ महावीर, २ पिन्वन, १ उपयमनी, १ स्त्रुवा पाठक देखें, महावीर जी पात्रों में गिने गये या मूर्तियों में?

वेदों में मूर्ति पूजा का निषेध नहीं। मूर्ति पूजा को कहीं पाप नहीं बताया, भला इन बातों से मूर्ति पूजा के पक्ष को क्या सहायता मिलती हैं? आर्ष ग्रन्थों में कहीं पर भी बाप्तिस्मा लेने, रोजा रखने, नमाज पढ़ने, कब्रों, ताजियां पूजने का निषेध नही है। मगर कोई भी सनातनी धर्मी इस काम का अनुमोदन नहीं करेगा। तथा इन कामों को मलेच्छाचार कह कर इन्हें गर्हित बतायेगा ठीक इसी प्रकार मूर्ति पूजा आर्य धर्मानुमोदित नहीं है। नई और व्यर्थ नीति है। अतः इससे बचाया जा सकता है। मूर्ति पूजा के कारण भारत में यवनों का आक्रमण हुआ, इससे जाति का धन और समय बर्बाद होता है। अन्ध विश्वास और मूढ़भावों की वृद्धि होती है अतः इससे रोका जाता है। प्राचीन ग्रन्थों में इसका खण्डन न होना तो इस बात का प्रमाण है, यह उस समय नहीं थी, जिस समय मूर्ति पूजा प्रचलित हुई उस समय के योग्य जनों ने इसका खण्डन किया है, उदाहरणार्थ श्री कबीर, नानक आदि सन्त हैं। मूर्ति पूजा पाप ही सही इस आधे वाक्य को लेकर महारथी जी मनमोदक खाने लगे। यह न सोचा कि दृष्टान्त देकर क्या बताया गया कर्णपटु अपशब्द न कहकर दृष्टान्त द्वारा मीठे ढंग से समझा दिया। कुनैन की शर्करावेष्टित गोलियां खिला दी। कोई मनुष्य प्रातः काल उठकर अपने मुंह पर सौ तमाचे रोज लगावे, और अगर उसे मना किया जावे तो वह पूछे कि इसमें क्या जुर्म किया है? बेशक यह जुर्म तो नहीं है। मगर इसे पागलपन के सिवाय कहा क्या जायेगा? ईश्वर की पूजा नहीं होती, आधी बात पर भी आचार्य **"रंकहु मनो महानिधि पाई"** के समान प्रसन्न होने लगे आधी बात उड़ा गये कि ईश्वर को पूजा की आवश्यकता नहीं। अतः उसका ज्ञान व अनुभूति करनी चाहिए। द्रव्य पूजा उसकी नहीं किन्तु उसकी रची सृष्टि की होती है। ब्रह्मज्ञान ही मोक्ष के प्रति कारण है। भाव पूजन वा ज्ञानरूप मानसिक पूजन औपचारिक अर्थ ही है। बिना कारण ही हमें निग्रह स्थान में आया कहकर और निग्रह स्थान का नाम पूछने पर मौन साधकर पंडित जी स्वयं चौथी बार **"निरनुयोज्यानुयोग"** नामक स्थान में गिरे। **"निरनुयोज्यानुयोग"** क्या है? वह भी सुनो—**"अनिग्रह स्थाने निग्रह स्थाना-भियोगो निरनु योज्यानुयोगः ५।२।२३"** अर्थात बिना निग्रह स्थान के निग्रह स्थान बताना **"निरनुयोज्यानुयोग"** नामक निग्रह स्थान है।

मूर्तिपूजा पक्ष में वैदिक तथा आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण देने में विवश होकर महारथी जी ऋषि भाष्य और संस्कारविधि पर टूट पड़े। और ख्याल न किया कि आखिर ये गोले अपने घर को ही ढा रहे हैं। श्री स्वामी जी महाराज कृत वह अर्थ जिसमें आचार्य जी पटेला पूजन देख रहे हैं, और वे मन्त्र जिनमें उन्हें उस्तरे और जूते की पूजा नजर आ रही है। तो उनके घर के ही अपने स्वीकृत और उभय पक्ष सिद्ध मन्त्रों को साक्ष्य बनाना अपने धर्म से ही मुंह मोड़ना था। महारथी जी की दूसरे का सिर काटने को चलाई तलवार पहले उनकी नाक पर पड़ रही थी,

वो मन्त्र यह है—"घृतेन सीता मधुना समज्यताम्, विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। ऊर्जस्वतीपयसापिन्वमानाऽस्मान सीते पयसाऽभ्याववृतस्व"। इस पर महीधर भाष्य देखो—सीतालांगल पद्धतिर्मधुनामधुरेण घृतेनोदकेन समज्यताम् संसिच्यताम्। हे सीते ! ऊर्जस्वती अन्नवती सात्वं पयसा पयोदधि घृतादिभिः पिन्वमाना अस्मदभि मुखमावृत्ताभव" हल की पद्धति को मधु, घृत, जल से सींचो। हे हल की पद्धति जल आदि से सींची हुई तू हमारे अनुकूल हो।

स्वामी जी महाराज का भी यही कहना है कि पटेले (सीताहल का कुण्ड हैं, यहां पटेला उसी अर्थ में हिन्दी कार ने प्रयुक्त किया हैं) को जल, घृत, शहद और शक्कर आदि से संयुक्त करो। वेद में काव्यमयी भाषा में उपदेश है, भूमि को आवश्यकतानुसार ऐसे खाद भी दिये जा सकते हैं, तथा हलवाहे और पटेला चलाने वाले की खातिर से तात्पर्य है। अब बताइये श्री स्वामी जी ने क्या भुस मिला दिया ? बस इतना भेद है कि, आप वाक्य शैली (METAPHOR) को न समझकर पटेला पूजा पर पिल पड़े। और ऋषि दयानन्द ने उसका लाक्षणिक अर्थ समझ कर सही भाव निकाला, जैसे बीज सुगन्धी आदि युक्त करके बोते हैं, वैसे इस पृथ्वी को भी संस्कार युक्त करें। वैदिक धर्म के प्रेमी और आर्य कर्म काण्ड के अभिमानी विचारें कि वैदिक धर्म और ऋषियों की सभ्यता का गौरव किस भावार्थ से बढ़ेगा ? समावर्तन संस्कार में मन्त्र पढ़कर जूता पहरना और मुण्डन संस्कार में उस्तरा हाथ में ले कर मन्त्र पढ़ना तो आपकी संस्कार विधि में भी है देखिये—षोडश संस्कार विधि श्री पडिण्त भीमसेन जी रचित (सनातनी होने पर लिखी) "शिवोनामासि" मन्त्र पढकर लोहे का छुरा हाथ में लेकर पृष्ठ ८६ "प्रतिष्ठेस्थो" मन्त्र को दो बार पढकर दोनों पगों में जूते पहने पृष्ठ १६६, अब संस्कार विधि से मिलाकर बताइये श्री स्वामी जी ने इस से ज्यादा क्या लिखा ? हां समझ का इतना भेद है कि, आप जूते और उस्तरे में अभिमानी देव मानकर जूते और उस्तरे की देवमूर्ति जानकर मन्त्र पढ़ते हैं। हम जूते और उस्तरे को देवता की मूर्ति न मानकर एक काम की चीज समझते हैं, और मन्त्र उसके मालिक की ओर लगाते हैं। जैसा कि-"मञ्चाःक्रोशन्ति" मन्च पुकारते हैं। से मतलब मंचस्थ पुरुष पुकारते हैं। चेयर से यह प्रस्ताव पेश हुआ, से मतलब चेयरमैन साहब ने प्रस्ताव पेश किया। ब्रिटिश क्राउन के सब राजा भक्त हैं, इससे मतलब क्राउन मुकुटधारी बादशाह के सब आधीन हैं, समझा जाता है। श्री सत्यव्रतसामश्रमी जी भी देवताओं को जड़ सिद्ध करके उनके लिए चेतनवत् हुए प्रयोगों को औपचारिक ही मानते हैं। 'तस्मात् मृदादिक पदार्थाभि मानित्वं तद्व्यवहारिकं औपचारिक मितिसम्पद्यते ए" मिट्टी आदि के लिए चेतन-वत् प्रयोग औपचारिक हैं। अब इन्साफ से विचारिये जूता और उस्तरा पूजक कौन हुआ ?

कृत्रिम युक्तियाँ—

आचार्य महादेव ने जैसे असंगत प्रमाण दिये वैसी ही कृत्रिम युक्तियां दी। हां ! अपठित जनता का दिल भर देने को तो वह बातें प्रचुर थी। मगर स्वाध्यायशील और बुद्धि सम्पन्न जनों का हेत्वाभासों से संतोष होना असम्भव ही है। पक्षपात की और बात है। आचार्य जी ने पेडे का उदाहरण दिया, इस विषय में भी देखिये-आचार्य महोदय की पक्ष नौका जब प्रमाण पतवार के खण्डित हो जाने से डगमगाने लगी तो हेत्वाभास रूप युक्तियों की घुनी बल्लियों से काम लेना शुरू किया। आप फर्माते हैं—अमूर्त मिठास मूर्तिमान लड्डू पेडे द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता हैं। अब इस युक्ति तृण को जरा अक्ल की आग पर तो रखिये। खरी उतरती है या नहीं ? पेड़ा "द्रव्य" माधूर्य उसका "गुण"। ईश्वर भी द्रव्य मूर्ति भी द्रव्य। पेड़े-लड्डू आदि द्रव्य से पृथक मिठास नहीं रह सकता। द्रव्य गुण का सम्बन्ध है। ईश्वर मूर्त्त द्रव्यों से पृथक भी है। यह मूर्त्त द्रव्य तो उसका एक पाद है। "पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतंदिविः" (यजुर्वेद ३१-३) पेड़े में मिठास ग्रहण करने वाली रसना में मिठास नहीं है। मगर ईश्वर जीवात्मा में भी व्यापक है। जो चीज स्वयं निराकार जीवात्मा में निराकार रूप से व्यापक

है उसे मूर्ति में ग्रहण करने दौडना मूर्खता की परकाष्ठा है या नहीं ? मिठास तो उन मूर्त मृदु द्रव्यों के आश्रित है। क्या अखिल ब्रह्माण्ड का आधार ब्रह्म भी मूर्त द्रव्यों के आधार से है, यह चार्वाकपन है वा सनातन धर्म ? आचार्य जी के उदाहरण की संगति भी तो देखिये—लड्डू पेड़े आदि में व्याप्त मिठास उन्हीं-२ पदार्थों में मिल सकता है मिट्टी के लड्डू-पेडे में नहीं। इसी प्रकार आनन्द की उपलब्धि जिसकी कि जीवात्मा को चाह है वह ब्रह्म ही में हो सकती है प्रकृति और उसके विकार मूर्ति आदिको में नहीं। लड्डू-पेड़े आदि के मिठास की अनुभूति रसनेन्द्रिय से ही हो सकती है। आंख-कान आदि से नहीं, जो जिस इन्द्रिय का विषय है, वह उसी से ग्रहण किया जाता है ब्रह्म किसी इन्द्रिय का विषय नहीं अत: वह आत्मा से ही ग्रहण किया जायेगा और आत्मा में वह व्यापक भी है। अतः इसके बीच में किसी साधन (मूर्त्यादि) की जरूरत नहीं, लड्डू-पेड़े आदि के माधुर्य की अनुभूति वहीं होगी जहां रसना और पेड़े आदि का मेल होगा। ब्रह्मानन्द की अनुभूति भी वहीं होगी, जहां जीव और ब्रह्म मिले हैं और वह जगह शरीर ही है, मूर्ति नहीं, क्योंकि वहां जीवात्मा नहीं है। इस प्रकार स्वपक्ष की सिद्धि न कर सकने पर स्वामी जी कृत भाष्य और संस्कार विधि पर निर्मूल आक्षेप करके आचार्य जी पांच वार मतानुज्ञा (**"स्वपक्ष दोषाभ्युपगमात् परदोष प्रसंगो मतोनुज्ञा,"—"न्याय दर्शन"**) नामक निग्रह स्थान में गिरे और इसके बाद अपने दिए हुए चैलेञ्ज पर (महावीर शब्द पात्र है या देव मूर्ति ?) इसका शास्त्रीय विवेचन करने पर तैयार न हुए।

अब मेरा श्रोताओं से निवेदन है कि—शास्त्रार्थ सत्यासत्य के निर्णय हेतु हुआ करता है। आर्य समाज का चौथा नियम हमें बताता है कि—**"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए"** यह शास्त्रार्थ हमने स्वस्मृति से लिखा है, जहां तक स्मृति ने काम किया है, कोई बात नहीं छोड़ी गई है। हां ! भाषणों को अवश्य संक्षिप्त करना पड़ा है। मगर आशय नष्ट न हो इसका पूरा प्रयत्न किया गया है। मुख्य-२ युक्ति-प्रमाण सब ही उद्धृत किये गए हैं। इस पर भी यदि श्रोताओं में से कोई सज्जन या शास्त्रार्थकर्त्ता वा सनातन धर्म सभा के अधिकारी कोई बात छूटी हुई प्रमाणित करें तो उसको अवश्य स्वीकार किया जाऐगा। अथवा कोई नया प्रमाण वा युक्ति मूर्ति पूजा के पक्ष में कोई सज्जन उपस्थित करेंगे तो उस पर भी विचार को स्थान मिलेगा। हम आशा करते हैं कि हमने जिस शुद्ध भावना से यह शास्त्रार्थ किया, और जिस सर्व हित कामना से लिखा है, सनातन धर्मी भाई भी उसी उत्तम भावना से इस पर विचार करेंगे। शास्त्रार्थ का प्रयोजन भी यही होना चाहिए कि जनता में सद् सद्विवेक की जाग्रति हो और स्वाध्याय का प्रचार हो।

संक्षेप कर्त्ता—

"बिहारी लाल शास्त्री"

(वैदिक धर्म का सेवक)

सतत्तरवां शास्त्रार्थ-।

स्थान : झालावाड़ (राजस्थान)

दिनाङ्क : ५ जनवरी सन् १९०६ ई०

विषय : आर्य समाज के सिद्धान्तों की वैदिकता ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित गणपति शर्मा

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री जयदेव जी मीमांसाचार्य

सनातन धर्म सभा के मंत्री : श्री मास्टर गोपाल हरि बी० ए०,

सनातन धर्म सभा के प्रधान व शास्त्रार्थ के अध्यक्ष : श्री महाराजा बलभद्र जी (झालवाड़ा)

आर्य समाज के प्रधान : श्री पण्डित छाजूराम जी

शास्त्रार्थ के लेखक : श्री गुरुदत्त जी (मन्त्री-आर्यसमाज)
कोटा (राजस्थान)

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री प्रा० दयाल जी आर्य, A/5 आयुर्वेद कालोनी (जामनगर) गुजरात, द्वारा प्राप्त हुई, जों सर्वप्रथम (भारतोदय) वर्ष ४ मार्गशीर्ष, पौष, महाफाल्गुन सम्वत् १९६९ के अंक ७ व १० में प्रकाशित हुई थी। द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं। "सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य समाज "कोटा" (राजपूताना) का वार्षिकोत्सव समाप्त करके "**श्रीमान् पण्डित गणपति शर्मा जी महाराज**" प्रथम जनवरी सन् १९०६ ई० को रियासत "**झालावाड़**" में प्रचार करने के लिए तशरीफ ले गये। वहां पंडित "**छाजुराम**" जी प्रधान (आर्य समाज) के घर पर ठहरे। दूसरे ही दिन पण्डित छाजू राम जी ने अन्यान्य आर्य पुरुषों को साथ लेकर "**महाराजा बलभद्रसिंह जी**" (जो कि महाराजाधिराज झालावाड़ के एक आत्मीय प्रतिष्ठित रईस और विद्वान पुरुष तथा सनातन धर्म सभा के प्रधान थे) के पास जाकर प्रार्थना की, कि एक विद्वान पंडित आर्य समाज में आए हुए हैं, आप अपने मकान पर उनके व्याख्यानों का प्रबन्ध करायें तो बहुत अच्छा हो। महाराजा साहब ने उत्तर दिया कि मैं पहले उन पण्डित जी से मिलना चाहता हूं। अतएव महाराजा साहब स्वयं पंडित जी के मकान पर तशरीफ लाये और पंडित गणपति शर्मा जी के साथ बड़े प्रेम से प्रश्नोत्तर करते रहे। इस थोड़ी सी देर की बातचीत ने पण्डित गणपति शर्मा जी का महाराजा साहब पर न जाने क्या जादू का सा असर किया कि उन्होंने उसी दिन से, स्वयं अपने हस्ताक्षर करके व्याख्यानों के विज्ञापन प्रकाशित करवाये और अपने ही मकान पर व्याख्यानों का प्रबन्ध किया।

जब तक पंडित गणपति शर्मा जी झालवाड़ में रहे, उक्त महाराजा साहब प्रतिदिन, सांय प्रातः दोनों समय पंडित जी के स्थान पर आकर घंटो बैठे रहते, और वार्तालाप करते रहते। वास्तविक बात यह है कि "**विद्वानों की महत्ता विद्वान ही जानते हैं**" इसी समय में छावनी झालावाड और झालरापाटन के समस्त विद्वान पंडित लोग, पंडित गणपति शर्मा जी के पास आते रहे। और संस्कृत भाषा बोलने तथा प्रश्नोत्तर द्वारा उनकी परीक्षा करते रहे। पंडित गणपति शर्मा जी के व्याख्यानों को सुनकर पंडित "**श्री जयदेव जी मीमांसाचार्य्य**" (सनातन धर्मी विद्वान ने एक सभा में खड़े होकर बडा आश्चर्य प्रकट किया) और कहा कि—"**मैंने आज तक ऐसा पण्डित नहीं देखा कि जो संस्कृत में भी महाविद्वान हो और व्याख्यान देने में भी पूरी योग्यता रखता हो! श्री पण्डित गणपति [illegible] दोनों गुण विद्यमान हैं ··· इत्यादि**" धीरे धीरे पण्डित जी के व्याख्यानों की ऐसी प्रसिद्धि हुई कि समस्त प्रतिष्ठित राजकीय कार्य कृत वर्ग, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, पण्ड़ित जी की स्तुति करते हुए सुनायी देने लगे और कुछ दिनों तक घरों, दुकानों, दफ्तरों आदि में किसी अन्य बात की चर्चा ही न थी, जहां भी देखो पण्ड़ित जी के व्याख्यानों की चर्चा ही सर्वत्र सुनाई पड़ती थी।

यद्यपि पण्डित जी के व्याख्यान, योग, वैदिक धर्म की मान्यताओं आदि पर होते थे, किसी का किसी प्रकार का खण्डन नहीं किया गया था। तथापि आर्य समाज और पण्डित जी की प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि देख कर हमारे कुछ पौराणिक पण्ड़ितों को असन्तोष हुआ। अतः सनातन धर्मियों ने मिलकर अपने मुख्य विद्वान् मीमांसाचार्य पण्डित जयदेव जी महाराज को ही उकसाया, उनको इस ख्याति से सबसे अधिक स्वयं को विवाद कंडूति ने बेचैन किया, और उस खुजलाहट की घबराहट में उक्त पण्डित जी शास्त्रार्थ की डींग मारने लगे और कहने लगे कि—"**पण्डित गणपति शर्मा योग्य जरुर हैं परन्तु मेरे सामने वह कुछ भी नहीं हैं मेरे साथ शास्त्रार्थ करें तो मैं बोलने ही न दूं**" इसी प्रकार मन के उद्गार निकालने और पण्डित गणपति शर्मा जी के व्याख्यानो का प्रभाव बिगाडने के लिए

पण्डित जयदेव जी ने अपने संगी सनातनियों का गुट्ट करके यह चाल चली कि पंडित जी का व्याख्यान समाप्त होने पर, पण्डित जयदेव जी धन्यवाद दिया करेंगे। इस चाल को पण्डित गणपति शर्मा जी तुरन्त समझ गये और उन्होंने महाराजा साहब को कहा कि—मुझे धन्यवाद लेने की कोई आवश्यकता ही नहीं। यदि पण्डित जी का अभिप्राय मेरे व्याख्यानों पर टीका-टिप्पणी करने का है तो वह खुल्लम खुल्ला शास्त्रार्थ करें। अस्तु !! जब सनातन धर्मी इस प्रकार घबराकर हाथ पैर मारने लगे तो पण्डित गणपति शर्मा जी ने महाराज बलभद्र सिंह जी से कहा कि—आप मेरा शास्त्रार्थ करा दें। परन्तु विशेष-२ प्रतिष्ठित महानुभावों के अतिरिक्त अन्य साधारण लोगों को उसमें न बुलाया जावे, इस बात को महाराजासाहब ने स्वीकार कर लिया। यद्यपि महाराजा साहब ने विशेष २ पुरुषों को ही बुलावा भेजा था, परन्तु यह खबर न जाने कैसे सारे छावनी व पाटन में बिजली की तरह फैल गयी, परिणाम स्वरुप शास्त्रार्थ के समय बड़ी भारी भीड़ एकत्रित हो गयी, न केवल पुरुष बल्कि स्त्रियों का भी अच्छा खासा जमघट लग गया। उस सभी विशाल समुदाय के सामने शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

निवेदक—
"गुरुदत्त"
(मन्त्री-आर्य समाज, कोटा)
[राजपूताना]

नोट—

रियासत "झालावाड" (राजस्थान) में एक विशाल जन समूह के सामने यह शास्त्रार्थ आरम्भ होता है। जिसमें दोनों वादी-प्रतिवादियों के बोलने के लिए दस-दस मिनट का समय नियत हुआ। परन्तु शास्त्रार्थ किस विषय पर हो ? इस पर एक सज्जन बोले—"मूर्ति पूजा पर" परन्तु महाराजा साहब ने कहा कि-नहीं ! इस विषय पर पण्डित जयदेव जी नहीं बोल सकेंगे युक्ति युक्त यह है कि पण्डित जी ने जो व्याख्यान जिन विषयों पर दिये हैं उन पर ही शंकायें की जायें। (यह शंकायें पं० जयदेव जी व उनकी विद्वत मंडली ने पहले से ही तैयार कर रखी थी) और वे लोग महाराजा साहब से पहले ही इस विषय पर मिल चुके थे कि शास्त्रार्थ इन्हीं शंकाओं पर होना चाहिए। क्योंकि उनका यह विचार था कि इन प्रश्नों को लेकर यदि कोई मामूली व्यक्ति भी खड़ा हो जावेगा तो पंडित गणपति शर्मा कभी भी उत्तर नहीं दे सकेंगे। अथानन्तर, जब पंडित जयदेव जी से आक्षेप करने के लिए कहा गया तो मास्टर गोपाल हरि बी० ए० (सनातन धर्म सभा के मन्त्री) खड़े होकर बोले कि—पंडित जयदेव जी सनातनधर्म महा मंडल की स्वीकृति आये बिना शास्त्रार्थ नहीं कर सकते। अतः मैं प्रश्न करता हूं। इस पर पण्डित गणपति शर्मा जी बोले कि—इसमें कुछ हरज नहीं। कोई भी शास्त्रार्थ करे, परन्तु यदि फिर पण्डित जी अगर शास्त्रार्थ के मध्य में उठकर बोलना चाहेंगे तो उन्हें बोलने की आज्ञा नहीं मिलेगी, क्योंकि मैं जानता हूं कि यह शंकाओं की प्रश्नावली किनके द्वारा तैयार की गई है ? पण्डित जयदेव जी ने पण्डित गणपति शर्मा जी की इस शर्त को अंगीकार कर लिया, और मास्टर गोपाल हरि साहब प्रश्न करने के लिए खड़े हुए—

निवेदक—
"रुद्रदत्त"
मन्त्री-आर्य समाज, कोटा

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री मास्टर गोपाल हरि बी० ए०—

ईश्वर "त्रिकालदर्शी" है या नहीं ? यदि त्रिकालदर्शी है तो हम जिस पाप को फल करेंगे, उसको वह आज जानता है, अतः उसके जानने के अनुसार हम पाप करेंगे, इस कारण हम पाप के भागी नहीं हो सकते।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

(१) प्रथम तो ईश्वर को "त्रिकालदर्शी" कहना ही अज्ञानता है क्योंकि भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान-यह विभाग हमारी अपेक्षा से है, न कि ईश्वर की अपेक्षा से ! अतः यह प्रश्न ही ठीक नहीं है।

(२) यह ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान, इन तीनों का होना आवश्यक है। अतः जब तक "ज्ञेय" न हो तब तक "ज्ञाता" को उसका "ज्ञान" नहीं होता। जिस जीव ने जिस कर्म को जब तक नहीं किया—ईश्वर जानता है कि नहीं किया —"न किये हुए" कर्म को "किया हुआ"— ऐसा जान लेवे तो विपरीत ज्ञान होगा। बस ! जब तक "ज्ञेय" न हो—तब तक ज्ञाता को उसका ज्ञान नहीं होता।

(३) यह "काल" कोई वस्तु नहीं, क्योंकि भूत, भविष्यत्, वर्तमान जिसका लिङ्ग है, उसको काल कहते हैं, जो काल इस समय वर्तमान है-वह होने वाले के लिए भूत हो जाता है। अतः काल यदि कोई पदार्थ होता तो वर्तमान सदा वर्तमान ही रहता=अतः यह प्रश्न व्यर्थ है।

नोट—

पण्डित गणपति शर्मा जी के इस उत्तर देने के पश्चात, महाराजा साहब ने मास्टर गोपाल हरि से कहा कि—उत्तर ठीक न हुआ हो तो फिर दस मिनट इसी विषय पर बोलो। मास्टर साहब ने महाराजा साहब से कहा आपकी क्या सम्मति है ? वे बोले मेरी सम्मति में जितना तुम्हारा प्रश्न था उसका उत्तर तो हो गया। मास्टर साहब बोले कि-यदि आप ठीक समझते हैं तो ठीक ही सही, अब मैं द्वितीय प्रश्न करता हूं।

श्री मास्टर गोपाल हरि बी० ए०—

वृक्षों में जीव है या नहीं ? यदि जीव है तो जीव के छः लक्षण-इच्छा, द्वेष आदि इनमें क्यों नहीं प्रतीत होते ? और इनके काटने से हिंसा क्यों नही होती ?

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

आजकल बहुत से लोग वृक्षों में जीव नहीं मानते परन्तु मेरा सिद्धान्त यह है कि—"**वृक्षों में जीव है**"* । मनुष्यों में जीव के छः लक्षण प्रतीत होते हैं । परन्तु जब कोई मनुष्य किसी मकान से गिरकर मूर्च्छित हो जाता है उस समय, अथवा "**क्लोरोफार्म**" सुंघाने की अवस्था में उसमें इच्छा, द्वेष आदि में से किसी की भी प्रतीति नहीं होती, तो क्या आप यह कहेंगे कि उस मनुष्य में, इस समय जीव नहीं है ? एवं हिंसा वृक्षों के काटने में नहीं भी होती, और होती भी है । नहीं इसलिए होती है कि "**हिंसा**" नाम पीड़ा पहुंचाने का है-अतः अन्तःकरण (बुद्धि) तथा बाह्यकरणों (आंख-नाक आदि) का जब तक ठीक-ठीक सम्बन्ध, जैसा कि जागरण और स्वप्न में होता हैं-वैसा ही न हो तब तक जीव को शरीर के काटने और चीरने से सुख दुःख नहीं होता, इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त यह है—"एक वृक्ष की दो डालें हैं, जिनमें लगे हुए फूल, सूर्य की किरणों से प्रातः—समय खिलने वाले हैं—रात्रि को पेड़ की एक डाली काट देने पर भी दूसरी डाली के फूल नियमानुसार खिल जाते हैं, यदि उस (वृक्ष) को काटने से कष्ट होता तो फूलों के खिलने में किसी प्रकार की त्रुटि अवश्य होती" । एक मनुष्य की रात को उगुंलि काट कर देख लीजिए कि प्रातः काल तक उसकी क्या दशा होती है ? परन्तु सम्पूर्ण वृक्ष को यदि काट लिया जाय और उसकी जड़ के पास चार अंगुलि की शाखा भी रह जाय तो भी उस (शाखा) में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आती, जब तक कि उस (शाखा) के ऊपर किसी प्रकार का प्रबल आघात न पहुंचे, इससे सिद्ध होता है कि वृक्षों को पीड़ा नहीं होती अतः उनके काटने, चीरने में हिंसा नहीं होती । और हिंसा है इसलिए कि वृक्षों से फल, पुष्पादि की प्राप्ति तथा वायु आदि की शुद्धि द्वारा सहस्त्रों प्राणियों का उपकार होता है । इस कारण वृक्षों के काटने से सहस्त्रों प्राणियों की हानिरुप हिंसा होती है ।

श्री मास्टर गोपाल हरि बी० ए०—

बिना माता-पिता के, सृष्टि के आदि में, मनुष्यादि कैसे उत्पन्न हो गये ? और उस समय यदि माता-पिता के बिना हो गये तो अब क्यों नहीं होते ?

टिप्पणी—

*"**वृक्षों में जीव है या नहीं**" । यह विषय प्राचीन काल से ही काफी विवादास्पद रहा है । जिस पर अनेकों ग्रन्थ भी लिखे जा चुके हैं अनेकों शास्त्रार्थ भी हुए हैं । उन्हीं में एक शास्त्रार्थ महान दिग्गज पण्डितों के बीच (गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर) सन् १६१२ ई० में हुआ था । इन विद्वानों के नाम थे—(१) "**श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती**" तथा (२) "**श्री पण्डित गणपति शर्मा जी**" यह शास्त्रार्थ पण्डित गणपति शर्मा जी के जीवन का "**अन्तिम**" शास्त्रार्थ था इस शास्त्रार्थ की ख्याति विदेशों तक पहुंची । आप भी इसका विस्तृत विवरण "(**निर्णय के तट पर II-भाग**)" में पढ़िये, कि वहां पर इस गुत्थी को किस प्रकार सुलझाया गया है ? यह हमारा सौभाग्य ही रहा था कि उस शास्त्रार्थ का सम्पूर्ण वास्तविक विवरण हमें "**श्री पण्डित नारायण मुनी जी**" द्वारा प्राप्त हो गयी थी, जिसे हमने उक्त ग्रन्थ में प्रकाशित किया है । हमें श्री पण्डित नारायण मुनि जी का कृतज्ञ होना चाहिए जिनके माध्यम से यह अद्भुत सामग्री प्रकाश में आ सकी । हांलाकि पण्डित जी अब इस असार संसार में नहीं है । तो भी सारा आर्य जगत उनकी इस महान भेंट को हमेशा याद करता रहेगा ।

निवेदक—

"राजपत राय अग्रवाल"

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

प्रथम तो संसार का प्रलय होना आवश्यक है। क्योंकि बनी हुई वस्तु सदा नहीं रह सकती। मनुष्य शरीर का एक अंग "अंगुलि" यदि नष्ट हो जाती है तो समग्र शरीर का नाश भी देखा जाता है। इसी प्रकार पृथ्वी की बनी हुई चीजें जब नष्ट होती देखी जाती हैं तो यह कब सम्भव हो सकता है कि समग्र पृथ्वी का नाश न हो? अतः जब पृथ्वी आदि लोकों के परमाणुओं में जुड़े रहने की शक्ति नही रहती-उस समय परमात्मा उन सबको पृथक-पृथक कर देते हैं। अर्थात् सब जगत परमाणु रूप हो जाता है। अब विचार करने की बात है कि— यदि एक खेत में दस वर्षों तक निरन्तर गेहूं बोये जावें तो उस खेत में गेहूं उत्पादन करने की शक्ति कम हो जाती है। परन्तु फिर दस वर्ष तक उस खेत को खाली छोड़ दिया जावे तो उस खेत में पुनः वही शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार लगभग चार अरब वर्ष तक जगत् (सृष्टि) के संयुक्त दशा में रहने से जो जुड़ने की शक्ति नष्ट हो जाती है वह प्रलय काल में परमाणुओं के (वियुक्त दशा में) पड़े रहने के कारण फिर उत्पन्न हो जाती है—उस समय के सम्बन्ध में उपनिषद् में लिखा है कि भगवान तप करते हैं और उनका तप "ज्ञान मय" है। तप करके "रयि" और "प्राण" जो प्रकृति के भाग हैं उनको पृथक-पृथक कर देते हैं, प्रकृति के दो स्वभाव हैं जिनको संस्कृत के विद्वान् "रयि" और "प्राण" कहते हैं और आधुनिक फिलासफरों ने उनका नाम "नर" और "मादा" रक्खा है। अतः सकल प्रकृति में आधा भाग पुरुषत्व का और आधा स्त्रीत्व का भाग है। इसमें एक दृष्टान्त है ध्यान से सुनिये—"एक समय की बात है कि, एक अंग्रेज ने काश्मीर से कुछ पौधे ले जाकर इंगलैंड में लगाये, परन्तु वहां बहुत यत्न करने के बावजूद भी उनमें फल न आये। इसका कारण उनको प्रतीत न हुआ। परन्तु जब वही अंग्रेज महाशय पुनः काश्मीर को लौट कर आया तो इस प्रकार के पौधों पर उसने शहद की मक्खियों को इधर-उधर उड़ते फिरते देखा—उसने गवेषणा की, जिससे विदित हुआ कि उनमें कुछ वृक्ष पुरुषरूप और कुछ स्त्री रूप होते हैं। जब पुरुष रूप वृक्षों के फूलों का रस लेकर मक्खियां स्त्री रूप पेड़ों पर जाती हैं तो एक प्रकार से उनका संयोग हो जाता है। जिसे आधुनिक वनस्पति विज्ञान वाले (पराग क्रिया कहते हैं) क्योंकि पुरुष रूप वृक्षों के परमाणु मक्खियों की टांगों में लिपटकर स्त्रीयात्मक वृक्षों में लग जाते हैं, यह एक प्रकार का "गर्भाधान" हो जाता है। तब फलादि उन वृक्षों पर आते हैं। तस्मात् अनुभव से उन अंग्रेज साहिबान को मालूम हुआ कि विलायत् में, उनका संयोग न होने से फल नहीं आते। बहुत से वृक्ष ऐसे भी होते हैं कि, जिनमें आधा भाग नर का और आधा स्त्री का होता है। यहां "स्त्री" तथा "पुरुष" कहने से अभिप्राय मनुष्य वा पशुओं के स्त्रीत्व पुरुषत्व से नहीं है। प्रत्युत प्रकृति के अन्दर रहने वाली दो प्रकार की (रयि और प्राण-नामक) शक्तियों से है। अतः परमात्मा आदि सृष्टि में प्रकृति की (प्रलय दशा में पृथक् की हुई) दोनों शक्तियों का मिलाप कर देते हैं मिलाप करने से संसार के इस नियम के अनुसार कि जब दो शक्तियां मिलती हैं तो एक तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है। परन्तु उत्पन्न वही होती हैं जो उसके भीतर पहले से मौजूद हो, दोनों शक्तियों के मिलने से उपनिषद में लिखा है कि—आकाश, वायु, अग्नि आदि उत्पन्न होते है, फिर अपने-अपने परमाणुओं से पृथ्वी आदि लोक उत्पन्न हो जाते हैं। अब आपका प्रश्न यह रह जाता है कि, परमाणुओं को मिला के भगवान ने पृथ्वी आदि को तो उत्पन्न कर दिया परन्तु विना माता-पिता के शरीरों के मनुष्य आदि के शरीर कैसे बन जाते हैं? मेरे पिछले कथन को यदि आप ध्यान पूर्वक सोचें तो आपके प्रश्न का उत्तर आ गया है। परन्तु संग्रह रुपेण और कथन करता हूं जिससे आशा है आपकी संतुष्टि हो जायेगी।

आप जानते हैं कि घोड़े तथा घोड़ी के संयोग से घोड़ा, स्त्री तथा पुरुष के सयोग से स्त्रियादि क्यों उत्पन्न हो जाते हैं? मानना पड़ेगा कि इनके रजोवीर्य में तत्तत्प्रकार की आकृति को उत्पादन करने वाले परमाणु हैं। वे

परमाणु पशु या पुरुष की आकृति को उत्पन्न करके गर्भाशयस्थ-परमाणुओं से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, तथा भोज्य पदार्थों के अंशों से अप्यायित होते हैं, इससे स्पष्ट ज्ञात हुआ कि ततत्प्रकार के विशेष-विशेष परमाणुओं का मिल जाना ही पशुओं तथा पुरुषों की आकृति के उत्पादन का हेतु है और उन परमाणुओं को एकत्र करने के यन्त्र (कलें) माता पिता के शरीर होते हैं। क्योंकि इतने सूक्ष्म परमाणुओं को कोई दूसरी तरह से संचित नहीं कर सकता। बस ! इस प्रकार वीर्य में जो जो परमाणु विद्यमान् हैं उन सबको और "रजः" में जिन-जिन परमाणुओं की आवश्यकता हैं, उन्हें यदि कोई इकट्ठा कर देवें और किसी प्रकार की न्यूनता या अधिकता न रहे तो बिना माता-पिता के शरीरों के मानुषीय तथा पाशुनीय शरीर बन सकते हैं—साम्प्रतिक दशा में भी, माता पिता के शरीर केवल उन परमाणुओं को एकत्र करने वाले ही हैं और विचार से मालूम होता है, कि रजोवीर्य जिन-जिन परमाणुओं से बनते हैं—वे सब, अन्न आदि में उपस्थित हैं, परन्तु उनको कोई बिना शरीर रूपी कलों के निकाल नहीं सकता, रेत में मिली हुई शक्कर को पिपीलिका (चींटी) ही निकाल सकती है, हाथी नहीं निकाल सकता, पिपीलिका (चींटीं) के पास निकालने के सूक्ष्म साधन होते हैं और हाथी के पास मोटे। तस्मात् इसी प्रकार प्रकृति के परमाणुओं में मिले हुए रज-वीर्य के परमाणुओं को वही इकट्ठा कर सकता है, जो परमाणुओं से भी सूक्ष्मतम हो, अतः भगवान उन परमाणुओं से भी सूक्ष्मतम हैं अतः उन्होंने उन सब परमाणुओं को अनायास एकत्र कर दिया और उनसे मनुष्यादि के शरीर बना दिये, रही यह बात कि आजकल इस प्रकार क्यों नहीं बनते ? इसका उत्तर यह है कि आजकल इस प्रकार होने से सृष्टि नियम के विरुद्ध हो जाता है। सृष्टि के दो नियम है, एक गर्भावस्था का नियम, दूसरे उत्पन्न होने के पश्चात् का नियम, गर्भावस्था में माता के पेट में स्थित् बच्चा श्वास नहीं लेता, परन्तु पैदा होने के पश्चात् प्राण (श्वास) के बिना जीवित नहीं रह सकता कितना विरुद्ध नियम है ? यदि पैदा होने के समय से आधा घण्टा पश्चात भी उत्पन्न होता तो प्राण के बिना ही जीता (जीवित) रहता, परन्तु पैदा होने के पश्चात दस मिनट भी प्राण लेने के बिना जिवित रहना असम्भव या कठिन है। तस्मात् इसी प्रकार संसार की उत्पत्ति के समय का नियम, परमाणुओं का ईश्वरेच्छा से स्वयं संयोग होकर सृष्टि (मनुष्यादि) के उत्पन्न होने का है और तत्पश्चात् माता-पिता के संयोग से रजवीर्य्य को एकत्र करके उत्पन्न करने का नियम है। अतः आदि सृष्टि में बिना माता-पिता के, मनुष्यों के शरीरों का बनना सृष्टि नियम के अनुकूल, आदि सृष्टि में (आजकल के समान) माता-पिता के संयोग से पैदा होना सृष्टि नियम के प्रतिकूल और इसी प्रकार आजकल माता-पिता के बिना उत्पन्न होना सृष्टि नियम के प्रतिकूल समझना चाहिए। इन सब बातों को सोच-समझकर फिर जो कुछ आप प्रश्न करेंगे उसका उत्तर दूंगा।

नोट—

इसके अनन्तर मास्टर साहब कुछ न बोले परन्तु मीमांसाचार्य पण्डित जयदेव जी जो कि महामण्डल की स्वीकृति के बिना शास्त्रार्थ नहीं कर सकते थे वह उठ खड़े हुए और बोलना आरम्भ कर दिया, यद्यपि उनका उस समय बोलना नियम के विरुद्ध था, तथापि पण्डित गणपति शर्मा जी बोले—हालांकि आपको बोलने का कोई अधिकार नही है। परन्तु मुझे यह भी पता है कि मास्टर जी के द्वारा भी आप ही बोल रहे थे, परन्तु मास्टर साहब जी तो उतना ही बोल सकते हैं जितना आपने उनको लिखवाया है। इसलिए स्वाभाविक सा ही है कि आप अपना असर कम देखते हुए चुप कैसे बैठ सकते हैं ? इसलिए मैं आपको भी आज्ञा देता हूं - आप जो भी चाहें प्रश्न कर सकते हैं। मैं उनका भी प्रसन्नता पूर्वक उत्तर दूंगा। पण्डित जी के इस प्रकार कहने से श्रोताओं पर उनका जबर्दस्त असर पड़ा तथा चारों तरफ वाह ! वाह !! होने लगी। पश्चात श्री मीमांसाचार्य जी बोले—

श्री पण्डित जयदेव जी मीमांसाचार्य —

आपने हमारे प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए "काल" को कोई पदार्थ नहीं माना, हम सिद्ध करते हैं कि—"काल" एक पदार्थ हैं, जिसको वैशेषिककार ने द्रव्यों में गिना है। तथा यदि "काल" कोई पदार्थ न माना जाये तो पाणिनी जी महाराज ने "**वर्त्तमाने लट्**" इस सूत्र में "**वर्तमान**" लिखा है, इसी प्रकार वे, भूत-भविष्यत् का भी लकार लिखते हैं। इसका उदाहरण यह है कि (१) "**मैं जाता हूं**" (२) "**में गया**" (३) "**मैं जाऊंगा**" ये तीन प्रकार के व्यवहार "काल" को माने बिना नहीं हो सकते।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

मैंने यह कहा था कि—"काल" सापेक्ष वस्तु है। वह भूत, भविष्यत्, वर्तमान, होने में हमारी अपेक्षा रखता है न कि परमात्मा की। यदि किसी प्रकार भी आप काल को स्वतन्त्र पदार्थ मानते हैं और व्याकरण के भूत भविष्यत्, वर्तमान व्यवहार को उसकी सत्ता का साधक समझते हैं तो इसका उत्तर दें। "एक लड़के ने छत से गेंद फेंकी, जिसको ऊपर से नीचे तक गिरने में दो मिनट लगे-अब बतलाइए कि जिस समय कि उसके हाथ से गेंद छुटी थी, और जिस समय कि नीचे आकर पृथ्वी के साथ लगी, इन दोनों कालों में कुछ अन्तर है या नही? यदि है तो जिस समय गेंद पृथ्वी पर लगी इस काल की अपेक्षा से, हाथ से छूटने का काल भूत हो गया, और हाथ से छूटने के काल की अपेक्षा से पृथ्वी से छूने का काल, भविष्यत् हो गया, अब व्याकरण के आचार्य इस सब काल को "**वर्त्तमान**" मानते हैं, क्योंकि व्याकरण के मत में यह प्रयोग होता है, "**कंदुकं पतति**" अर्थात् "**गेंद गिरती है**" क्या आप यह मानेंगे कि—हाथ से छूटने और भूतल पर गिरने का एक ही समय है? अतः इससे यह सिद्ध हुआ कि भूत और भविष्यत् कोई पदार्थ नहीं है। क्योंकि वर्त्तमान की अपेक्षा से भूत और भविष्यत् होते हैं, वर्त्तमान में निर्णय से (पृथक्) ये दोनों कुछ नहीं। अब फरमाइये, आपने व्याकरण के "**काल व्यवहार**" को किस प्रकार समझा है?

नोट—

इसके उत्तर में पण्डित जयदेव जी मीमांसाचार्य कुछ न बोलकर अन्य पक्षान्तर छेड़कर बोले कि—

श्री पण्डित जयदेव जी मीमांसाचार्य—

पण्डित गणपति शर्मा जी ने अपने व्याख्यान में "**सांख्य दर्शन**" को प्रमाण माना है, यह नास्तिक का बनाया हुआ शास्त्र है, अतः यह प्रामाणिक नहीं हो सकता।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

मीमांसाचार्य जी! आप सरीखे लोगों ने सांख्य शास्त्र को नास्तिक शास्त्र प्रसिद्ध कर दिया है। परन्तु आज तक किसी ने यह नहीं बतलाया कि उसके कौन से सूत्र में नास्तिकता की बात लिखी है? यदि ऐसा हो तो किसी मूल-सूत्र से बतलाइये।

श्री पण्डित जयदेव जी मीमांसाचार्य—

मीमांसा के शबरभाष्य में शबर मुनि ने लिखा है कि—"सांख्य दो प्रकार का है। एक—"सेश्वर" दूसरा "अनीश्वर"! "सेश्वर" सांख्य "योग" है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

कपिल मुनि ने सांख्य शास्त्र में कई स्थानों पर "**वेद**" को प्रमाण माना है। देखिये—"**उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः**" (सांख्य अ० १ सू० ५) अर्थात् मोक्ष सुख, बड़े सुखों से भी बड़ा सुख है। क्योंकि "**वेद**" उसका प्रतिपादन करता है और सुनिये कपिल जी आगे अपने शास्त्र में क्या कहते हैं?—"**निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्**" (सांख्य अ० ५,सूक्त-५१) अर्थात्-भगवान ने वेद को अपनी शक्ति से प्रकट किया है, अतः "**स्वतः प्रमाण**" हैं, क्या वेद को "**स्वतः प्रमाण**" और "**ईश्वरोक्त**" मानता हुआ कोई पुरुष नास्तिक हो सकता है? वेद में "ईश्वर, जीव, प्रकृति" तीनों को अनादि माना है। आप "**काल**" के विषय को छोड़ कर "**सांख्य**" पर क्यों विवाद करने लगे?

नोट—

इसके पश्चात् श्री पण्डित जयदेव जी मौन साध गये, इस समय पण्डित जयदेव जी के साथ "**पाटन**" के और भी सब विद्वान् उपस्थित थे, परन्तु बार-बार कहने पर भी फिर किसी ने कुछ आक्षेप या प्रश्नोत्तर नहीं किया, श्री पण्डित गणपति शर्मा जी की विद्वता व उनकी योग्यता सभी श्रोताओं पर स्पष्ट झलक रही थी, यहां तक कि पण्डित समुदाय भी पण्डित गणपति शर्मा जी की विद्वता का लोहा मान रहे थे। अन्त में कोई प्रश्नोत्तर न करने पर राजा बलभद्र जी द्वारा धन्यवादाज्ञापन करते हुए सभा का विसर्जन किया गया। यह शास्त्रार्थ बड़े ही शान्ति पूर्ण ढंग से हुआ जिसका चर्चा दूर २ तक हो गया था।

निवेदक—
"**गुरुदत्त**" (मन्त्री)
आर्य समाज, "**कोटा**" (राजपूताना)

नोट—

इस शास्त्रार्थ संग्रह के प्रकाशन की शृङ्खला में यह तीसरा भाग समाप्त हो रहा है। इसके प्रकाशन के तुरन्त बाद इस शृङ्खला का चौथा भाग भी प्रकाशनार्थ दिया जायेगा, जिसमें शेष सभी शास्त्रार्थों का समावेश कर दिया जावेगा, इच्छुक सज्जन प्रकाशन से पत्र व्यवहार करें।

निवेदक—
"**लाजपतराय अग्रवाल**"

अठारवां शास्त्रार्थ--

स्थान : गोरखपुर (मुफ्तीपुर) उ० प्र०

दिनांक : नवम्बर सन् १६६३ ई० से मई सन् १६६६ ई० तक

विषय : विभिन्न विषयों पर (प्रश्नोत्तर)

प्रश्नकर्त्ता : श्री गोपाल जी (पत्रकार) मियांबाजार-
पूर्व फाटक (गोरखपुर)

उत्तरदाता : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी, (शास्त्रार्थ महारथी)

नोट :—यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री "श्री गोपाल जी" द्वारा प्राप्त हुई जिनके हम हृदय से आभारी हैं जिन्होंने "हस्तलिखित" यह सामग्री भेजी !

"सम्पादक"

इन प्रश्नोत्तरों के सम्बन्ध में आवश्यक बातें

यह प्रश्नोत्तर कोई शास्त्रार्थ तो नहीं है। परन्तु जब देहलवी जी के हस्ताक्षरों सहित इन पत्रों की प्रतिलिपि प्राप्त हुई तो मैंने पूज्य अमर स्वामी जी महाराज को दिखलाई, तो उन्होंने कहा कि—इनको अवश्य प्रकाशित कराओ यह देहलवी जी के द्वारा शंका समाधान भी **"किसी शास्त्रार्थ से कम नहीं है"**।

मैंने तभी उनकी प्रेस कापी बनाकर इस शास्त्रार्थ ग्रन्थ के लिए प्रकाशनार्थ तैयार कर ली। जो अब आपके सम्मुख उपस्थित है। सभी पत्रों की फ़ोटोकापी कराना इसलिए उचित नहीं समझा कि हस्तलेख कहीं-कहीं पर मिट चुके थे, कहीं-कहीं से मूल कापियां फ़ट गई थी, इसलिए ब्लाक वैसे भी साफ नजर नहीं आते अतः उनकी सामग्री को ही उतार कर छपा दिया गया। नमूना मात्र एक प्रश्नोत्तर की कापी का ब्लाक बनाकर छपा भी दिया है। जिससे हम लोग अपने पूर्वजों की निशानी (हस्त लेखों) के भी दर्शन करते रहें।

इस विषय में, मैं श्री गोपाल जी पत्रकार (गोरखपुर निवासी) का विशेष धन्यवाद करता हूं जिन्होंने इस अमूल्य सामग्री को इतने वर्षों तक संभालकर रक्खा यह कोई कम बात नहीं है। अगर इनका यह पुरुषार्थ न होता तो आज जो सामग्री आप लोग देख रहे हैं, इससे वंचित ही रहते।

जिन लोगों ने देहलवी जी के दर्शन नहीं किये, मात्र उनका नाम व उनकी विद्वता की ख्याति ही सुनी है। उन्हें भी अवसर मिल गया कि उस महान विभूति के हस्त लेखों के दर्शन कर लें।

हमारे पास बहुत ही अदभुत सामग्री और भी संग्रहीत है। जो समय समय पर प्रकाशित की जावेगी। इस शास्त्रार्थ श्रृंखला में मैंने संकल्प लिया है कि शास्त्रार्थ विषयक सामग्री जो भी प्राप्त होगी। मैं इस श्रृंखला के अन्तर्गत उसे प्रकाशित कराकर अमर कर दूं। **"यही अन्तिम इच्छा पूज्य अमर स्वामी जी महाराज की भी थी"**। मैं यह तीसरा भाग उनके जीवन काल में तो पूर्ण प्रकाशित नहीं करा पाया था। परन्तु अब आप लोगों को विश्वास दिलाता हूं कि इस तीसरे भाग के साथ साथ अन्य सभी शास्त्रार्थ सामग्री चाहे वह कितने भी भागों में आये सबको प्रकाश में लाने का प्रयास करूंगा।

मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि अगर आप लोगों का सहयोग मेरे साथ रहा तो मैं अपने इस संकल्प को व उस महान दिवगंत आत्मा (स्व० अमर स्वामी जी महाराज) की अन्तिम इच्छा को पूरी कर सकूंगा तो मुझे भी सन्तोष व प्रसन्नता का अनुभव होगा।

इसी आशय के साथ—

विदुषामनुचरः

"लाजपतराय अग्रवाल" (संग्रहकर्त्ता)

प्रश्नोत्तर का प्रथम पत्र

प्रश्नकाल = २-११-६३
उत्तरकाल = ६-११-६३

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

एक अरब सतानवें करोड़ आदि संख्या वेद और जगत जन्म (सृष्टि उत्पत्ति) दोनों की है या भिन्न-भिन्न है ? इसको उस जमाने के ऋषियों ने कैसे जाना ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जब पृथ्वी पानी से उभर कर मनुष्यों के उत्पन्न होने योग्य हुई तब मनुष्यों का जन्म हुआ। सृष्टि की आदि में जिन ऋषियों को ईश्वर ने वेद ज्ञान दिया था, उनके द्वारा जाना, एक अरब सतानवें करोड़ आदि की संख्या वेद और जगत दोनों की उत्पत्ति की है। जिन दो प्रकारों से हम अपने दिन और रात की गणना करते हैं, वैसे ही सृष्टि और प्रलय (दिन और रात) की समझिये। एक प्रकार यह है कि, ६ बजे प्रातः काल से सायं काल ६ बजे तक दिन की गणना और छः बजे सायंकाल से प्रातः छः बजे तक रात्रि की गणना।

दूसरा प्रकार यह है कि, दोपहर के १२ बजे से रात्रि के १२ बजे तक रात्रि की गणना और रात्रि के १२ बजे से दिन के १२ बजे तक दिन की गणना। वेद और सृष्टि की उत्पत्ति प्रातः ६ बजे के सदृश समझिये, और वेद का लोप और सृष्टि का प्रलय आप सायं काल के ६ बजे तक जानिये।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

गीता के अनुसार कृष्ण ने महाभारत की लड़ाई के समय अर्जुन से कहा था कि "हे अर्जुन ! मैंने गीता का ज्ञान फ़लां युग में फ़लां को, तथा फलां युग में फ़लां को दिया था। तुम इसको नहीं जानते हो। मैं योगी होने के नाते इसे जानता हूं"। क्या कृष्ण मुक्तात्मा थे ? यदि कृष्ण मुक्तात्मा होते तो उपर्युक्त बात अर्जुन से नहीं कह सकते थे, यदि मुक्तात्मा न होते तो ऐसा कहना सम्भव होता। युगों की बात याद रहना सम्भव नहीं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं गीता को प्रत्येक विषय में प्रामाणिक नहीं मानता हूं। उसके कई अध्याय प्रक्षिप्त हैं और शेष भी

प्रक्षेपों* से बचे हुए नहीं हैं।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जिस तरह मनुष्य १०० वर्ष के बाद मरकर जन्म लेता है, और सौ वर्ष से कम आयु में मरकर जन्म धारण करता है, उसी प्रकार से क्या मुक्तात्मा भी (मुक्ति की अवधि पूरी हुई हो या न हुई हो) कभी इच्छा होने पर जन्म ले सकता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

प्रत्येक मुक्त जीव ३६ हजार बार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के समय तक मुक्ति के आनन्द को भोगता हैं, चूंकि मुक्ति आनन्द की और समय की पूर्णता पर ही निर्भर है इसलिए पूर्णतः का भोग किये बिना बीच में नहीं लौटता। मुक्तावस्था में सब जीव समान होते हैं, कोई प्रधान या अप्रधान नहीं होता है। मुक्ति से पहले लौट आने में शरीर का उदाहरण देना अनुपयुक्त है। उसका सावधानी से किया हुआ प्रयोग, असावधानी से किये हुए प्रयोग की अपेक्षा उसको विशेष काल तक स्थिर रख सकता है। परन्तु मुक्तावस्था का भौतिक अथवा शारीरिक कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसका तो केवल आत्मा और परमात्मा से सम्बन्ध होता है। इसलिए इसमें समय की कमी, ज्यादती की कोई गुंजाइश नहीं है।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

योग मुक्तावस्था में क्या कोई योगी किसी मनुष्य से बात कर सकता है ? या किसी सभा आदि में जाकर भाषण कर सकता है ? जैसे कि कृष्ण जी ने योगावस्था में अर्जुन से बात की थी ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

कोई भी योगी सृष्टि नियम के विरूद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता। सत्यार्थ-प्रकाश के आठवें समुल्लास में ऋषि दयानन्द जी महाराज यह लिखते हैं कि, "देखो कोई भी योगी आज तक ईश्वर कृत सृष्टि क्रम को बदलने हारा नहीं हुआ है और न होगा। जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबंध किया है, उसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता"।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

क्या मृत्यु का काल निश्चित है ? मृत्यु कर्म का फल है तो मृत्यु काल निश्चित मानना चाहिए।

टिप्पणी—

*गीता में कितना प्रक्षेप है और कितना नहीं ? इस विषय में गीता पर लिखी हुई, **"श्री अमर स्वामी जी महाराज"** कृत ग्रन्थ **१.—गीता में ईश्वर का स्वरूप, २.—गीता और वेद, ३.—गीता और महर्षि दयानन्द,** यह तीनों पुस्तकें—**"अमर स्वामी प्रकाशन विभाग—गाजियाबाद"** से मंगा कर पढ़ें। "सम्पादक"

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मृत्यु का कोई काल निश्चित नहीं है, जब प्रारब्धानुसार भोग समाप्त हो जायेंगे तब तीन विधियों में से किसी भी विधि से मृत्यु हो जावेगी, विधि तीन हैं, १. आध्यात्मिक, २. आधिभौतिक ३. आधिदैविक।

मृत्यु कर्म का फल नहीं है, बल्कि जीव का शरीर से मेल होने का लाजिमी नतीजा है, जिस चीज का आरम्भ है उस का अन्त अवश्य है। The thing which has a Begining must have an end.

६-७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

प्रश्न स्पष्ट न होने के कारण पढ़े नहीं जा सके।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

(६)—सिवाय "**कर्मज**" भोगों के किसी अन्य भोग का प्रकार निश्चित नहीं हैं। कर्मज के लिए जन्म से फूटी मिसाल सही हैं, फोड़े आदि तो वैद्य और रोगी की अनुमानिक अवधि से जल्दी और देर में भी अच्छे हो सकते हैं, और ऐसा भी हो सकता हैं कि साधारण फोड़ा रोगी का उसकी मृत्यु तक पीछा न छोड़ें (७)—"**कर्म फल स्वरूप**" जो कष्ट हैं वह अनिवार्य हैं परन्तु उस कष्ट के भोगने के साधन को औषधि द्वारा बदला जा सकता हैं। मैं अनेक बार अपने बैठे हुए गले को औषधि द्वारा काम के योग्य करके व्याख्यान दे चुका हूं। क़ैदखाने में कैदियों के इलाज के लिए Civil Surgeon तक बुलाये जाते हैं, परन्तु जेल में रहने की अवधि में परिवर्तन नहीं होता।

८-९. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आदि सृष्टि में मनुष्य त्रिविष्टप में पैदा हुए। स्वामी दयानन्द जी का तात्पर्य वर्तमान तिब्बत से हैं, या और कोई तात्पर्य हैं? मेरी समझ में आदि (काल) में एक स्थान पर नहीं भिन्न-भिन्न स्थानों पर मनुष्य पैदा हुए, क्योंकि उनके स्वभाव आदि भिन्न-भिन्न हैं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

(८) आदि काल में मनुष्य त्रिविष्टप (तिब्बत) में पैदा हुए। स्वामी जी का तात्पर्य इसी तिब्बत और इसके आस पास से ही था। यहां पैदा होते गये और यहां से भिन्न-भिन्न स्थानों को जाते गये तथा फैलते गए। (९) मनुष्यों में दस्यु और आर्य दो प्रकार के ही मनुष्य थे, जिस-जिस स्थान में लोग गये, वहां के जलवायु के प्रभाव से रंग रूप में भेद होता गया और कुछ पैदा भी भिन्नता से हुए, जैसे अब भी होते हैं। पौध एक ही स्थान पर लगाई जाती है, फिर वहां से अपनी इच्छा अनुसार लेजाकर, बाग-बगीचे लगाये जाते हैं।

१०. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आदि में चारों वेदों का ज्ञान चारों ऋषियों को होना चाहिए, एक-एक को एक-एक वेद का ज्ञान देना पक्षपात पूर्ण है, यह भी दोष है कि उस समय अपूर्ण, ज्ञान वाला ऋषियों को पैदा किया गया।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

वेदों का ज्ञान तो चारों ऋषियों को चारों वेदों का ही दिया, परन्तु प्रचार की सुविधा और अपनी-अपनी रुचि के अनुसार प्रोफेसर एक-एक वेद के ही रहे। प्रचार में समय का कोई अन्तर न था।

११. श्री गोपाल जी पत्रकार—

कुछ विद्वानों का मत है कि, चारों वेद भिन्न-भिन्न समयों में प्रकाशित हुए। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस समय में जिस वेद का ज्ञान प्रकाशित नहीं हुआ होगा उस ज्ञान से मनुष्य वंचित होकर अन्धकार में रहा, अन्धकार में रखना अपराध करने और कराने के समान है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

इस प्रश्न के उत्तर के लिए दसवें प्रश्न का उत्तर प्रर्याप्त है।

१२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

क्या परमात्मा ने ज्ञान के साथ मनुष्य को भाषा भी दिया ? या भाषा मनुष्य की कल्पित है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

बिना भाषा के, ज्ञान का सम्यक प्रकार से होना संभव नहीं, इसलिए भाषा का ज्ञान भी ईश्वर ही की ओर से हुआ। अक्षरों की पोटली में उनका अर्थ निहित है। गुण बिना द्रव्य के नहीं रहता। अर्थ बिना अक्षरों के नहीं रहता। परमाणुओं के संयोग से पदार्थ बनते हैं, अक्षरों के संयोग से शब्द बनते हैं, शब्द, अर्थ और सम्बन्ध का नाम भाषा है। भाषा के ईश्वर की ओर से होने का प्रमाण—"**बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रयत्प्रैरत नामधेयंदधाना:**" (ऋग्वेद १०-७१-१) बृहस्पति परमात्मा ने सृष्टि के आदि में सबसे पहली भाषा को शब्द-अर्थ-सम्बन्ध के साथ प्रकट किया। "**ईश्वर एक ही है**" तथा "**एक ईश्वर ही है**" दोनों वाक्यों में शब्द उतने ही हैं परन्तु अर्थ में बड़ा अन्तर है। पहले वाक्य का अर्थ है कि "**ईश्वर अनेक नहीं हैं**" दूसरे वाक्य का अर्थ है कि—"**सिवाय ईश्वर के अन्य कोई पदार्थ नहीं**" अब विचारिये कि बिना शब्दार्थ सम्बन्ध के सम्यक् ज्ञान कैसे हो सकता है ?

१३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

अष्टांग योग से ही जब हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं तब परमात्मा को जानने और पाने के लिए वेद क्यों पढ़ें ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

अष्टांग योग का ही क्या ? उन प्रत्येक बातों का जिनका जानना और उन पर आचरण करना मनुष्य की उन्नति के लिये आवश्यक है, वे बिना वेद के जाने नहीं जानी जा सकती।

१४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

कुछ लोगों का विचार होता है कि—जैसे हो वैसे कमा लो और सुखी रहो । आगे वाली जिन्दगी में कौन देखता है ? क्या आप इससे सहमत है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहुलवी —

जिस प्रकार आप मरने से पहले पैदा हो चुके थे । वैसे ही मरने के बाद भी पैदा हो जावेंगे जैसे अब देख रहे हैं, वैसे आगे भी देख लेना, आज का दिन आज देखिये, कल का दिन कल देख लेना, जल्दी काहे की है ?

१५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

सन्तान पिछले कर्मों या वर्तमान कर्मों का फल है, यदि पिछले जन्म का फल माना जाए तो जितने बच्चे पैदा होने हैं, उतने अवश्य होंगे, ऐसी स्थिति में ब्रह्मचर्य और संयम का पाठ पढ़ाना व्यर्थ है ।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहुलवी—

सुख भोगने की इच्छा तो बुरी नहीं है, प्रत्येक जीव इस इच्छा से खाली भी नहीं है और प्रत्येक को इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न भी करना चाहिये, परन्तु दूसरों का हक छीन कर प्राप्त करने की चेष्टा न करनी चाहिये, इसके करने से समाज का साम्य अस्त-व्यस्त हो जायेगा, यदि सुख भोगने के लिए आपके लिखे हुए उसूल पर सब चलने लगें तो सब मनुष्य दुखी हो जायेंगें, क्योंकि हर एक व्यक्ति अपने से अन्य को दुख पहुंचाने में झिझकेगा नहीं । ऐसे व्यक्ति के यहां जो आर्योपदेशक ठहरेगा वह भी एक हद तक पाप का भागी होगा ।

सन्तान की उत्पत्ति किसी पिछले कर्म के कारण नहीं । यदि स्त्री पुरुष शरीर से निरोग हों, सन्तान पैदा करने में समर्थ हों तो सन्तान अवश्य पैदा होगी । परन्तु उनके द्वारा सुख-दुख अपनी प्रारब्धानुसार ही होगा । जो सन्तान के अभाव में किसी अन्य प्रकार से भी भोगे जा सकते हैं । ऐसी अवस्था में स्वतन्त्र पुरुष को संयम और ब्रह्मचर्य का उपदेश देना निज के लिए और समाज के लिए लाभकारी है ।

१६. श्री गोपालजी पत्रकार—

नौकरी आदि प्राप्त करने के लिए सम्बन्धित अधिकारी की चापलूसी एवं उनसे सिफ़ारिश करना-कराना उचित मानें तो चापलूसी और सिफारिश का बोल-बाला हो जायेगा, परमात्मा पर से विश्वास उठ जायेगा ।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहुलवी—

जब देश में ऐसी गिरावट पैदा हो जावे कि योग्यता को मुख्यता न दी जावे । Favoratism & Nepotizm का ही जोर हो तो जो व्यक्ति योग्य है, उनको भी देश काल और नीति शास्त्रानुसार ऐसा ही करना चाहिए, ताकि अयोग्य व्यक्ति योग्य स्थान प्राप्त करके देश को हानि पहुंचाने का कारण न बनें और यदि पूर्ण रूप से शुद्ध धर्म पर ही स्थिर रहना है तो जो कुछ आ पड़े उसे शान्ति पूर्वक सहन करते रहें ।

१७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

धर्मादि शुभ कर्म से मनुष्य जन्म मिलता है, आजकल जनसंख्या बढ़ रही है, तो क्या यह मान लें कि धर्म बढ़ रहा है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मनुष्यों की संख्या में वृद्धि इसलिए नहीं हो रही है कि, उनमें धर्म की वृद्धि हो रही है। अथवा पुण्य कर्म कर रहे हैं, बल्कि इसलिए हैं कि, जो जीव कुकर्मों के कारण नीच योनियों में से गये थे, वे अपनी अवधि समाप्त करके वापस मनुष्य योनि में आ रहे हैं, और कुछ अन्य ब्रह्माण्डों के जीव भी जो यहाँ भेजने के लायक थे, वे भी यहां Transfer किये जा रहे हैं।

१८. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आज के माहौल में यदि आर्य समाज के हाथ शासन की बाग डोर आ जाये तो क्या वर्ण व्यवस्था के आधार पर शासन चल सकेगा ? यदि नहीं तो कौन सी शासन की पद्धति चलायेंगे ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

यदि देश की बागडोर आर्य समाज के हाथ में दे दी जावे तो सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास में जिस राजनीति का मनु आदि के आधार पर उल्लेख किया गया है उसे अपनायेंगे, यदि देश कालानुसार किसी परिवर्तन की अपेक्षा हुई तो मूल के अविरुद्ध परिवर्तन भी किया जा सकेगा।

१९. श्री गोपाल जी पत्रकार—

किसी मनुष्यके साथ उसका अधिकारी कोई जुल्म करता है, तो इस जुल्म को उस मनुष्य के पिछले कर्मों का भोग माना जायेगा या उस अधिकारी की मनमानी समझी जाये अगर वह भोग है तो क्या सहन कर लिया जाये ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

उस अधिकारी की मनमानी कार्यवाही के द्वारा उस कर्मचारी के कर्मों का ही फल माना जावेगा। परन्तु वह अधिकारी अपनी मनमानी कार्यवाही का स्वतन्त्र रूप से दोषी होगा। क्योंकि उसने किसी खास द्वेष व पक्षपात से अपने कर्मचारी पर जुल्म किया है। उसके भोगों को भुगाने के लिए ईश्वर ने उसको आज्ञा नहीं दी है।

२०. श्री गोपाल जी पत्रकार—

यदि आतताई के मार डालने में पाप है, तो क्या उसके समक्ष झुककर रहना बेहतर होगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

"आततायी न मायांतम् हन्या देवा विचारयन्" (मनुस्मृति) आततायी को मार डालना पाप नहीं है, उसे बिना विचारे मार डाले ।

२१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

प्रकृति को कोई चीज न माना जाये । केवल यही समझा जाये कि ईश्वर और जीव दोनों का ही अस्तित्व है, जीव ही कहीं वृक्ष आदि बन जाता है, और कहीं एक समूह में एकत्र होकर पत्थर आदि बन जाता है, वृक्ष जैसे सुषुप्ती अवस्था में है, उसी तरह की पत्थर आदि की भी दशा है ।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जड़ और चेतन पदार्थ कभी एक नहीं हो सकते ये दोनों आपस में Contradictory हैं यानी व्याघातक हैं, जो चेतन होगा वह जड़ न होगा और जो जड़ होगा वह चेतन न होगा, जड़ पदार्थ पत्थर आदि अनेक जीवों का संघात नहीं है, और न कभी हो सकते हैं, हम मिट्टी के कणों को मिलाकर पिण्ड बना सकते हैं, और पत्थरों को चूने के द्वारा जोड़कर दीवार बना सकते हैं परन्तु सौ मिडिल पासों की योग्यता को जोड़कर एक intrance पास की योग्यता के बराबर नहीं कर सकते इनका जोड़ तो एक की ही योग्यता के बराबर होगा यानी **"मिडिलपास"** परन्तु इन एक सौ मिडलचियों में से प्रत्येक को एक-एक रुपया दे दिया जावे तो रुपयों का जोड़ १०० आ जावेगा परन्तु योग्यता का जोड़ एक के ही समान होगा । अत: जड़ पदार्थों का भी होना आवश्यक है । ईश्वर व जीव के साथ प्रकृति का मानना भी अनिवार्य है ।

नोट—

मान्य ! श्री गोपाल जी सादर नमस्ते, मेरे अस्वस्थ रहने के कारण उत्तर भेजने में विलम्ब हुआ क्षमा कीजिये । मेरा बायां हाथ कम्पन रोग से ग्रसित है । इसका असर दाहिने हाथ पर भी पड़ता है ।

भवदीय—

"रामचन्द्र देहलवी"

प्रश्नोत्तर का द्वितीय पत्र

प्रश्न काल = १५-११-६३
उत्तर काल = २२-११-६३

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आप दो प्रकार की सृष्टि मानते हैं, एक दया की और दूसरी न्याय की, दया की सृष्टि में ईश्वर से मनुष्यों

को क्या मिलता है ? न्याय की सृष्टि में दान रूप में ईश्वर से क्या मिलता है ? क्या माता-पिता की ओर से भी उसकी सन्तान को कुछ मिलता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जो कुछ दया की सृष्टि में मिल जाता है, जैसे सूर्य चन्द्रादि, वैसे न्याय की सृष्टि में दान रूप में कुछ नहीं मिलता। जो कुछ मिलता है कर्मों के फलरूप ही मिलता है।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, जब पशु आदि में भी जीव है तो स्वतन्त्र रूप से कर्म करने पर पशु आदि उसके फल भोग का अधिकारी क्यों नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

पशु आदि की स्वतन्त्रता की एक सीमा है, अर्थात् केवल अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना। वे जब उलटा सा कर्म करते हैं, तो उनको दण्ड देकर मना कर दिया जाता है। और वे उस काम को छोड़ भी देते हैं, इस सीमा और हद से बाहर के देश, जाति और धर्मादि के फ़रायज़ से वंचित रहते हैं। उत्तरदाता नहीं होते, क्योंकि उनमें उसके समझने की स्वाभाविक योग्यता ही नहीं है। इन्हीं अर्थों में उन्हें भोग योनि कहा जाता है।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

सावधानी से बर्तने पर आयु बढ़ जाती है। और असावधानी बर्तने पर घट जाती है, परन्तु दोनों अवस्थाओं में भोगों का परिमाण समान ही रहेगा, जो वर्तमान जन्म के लिए नियत होगा। उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करें।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आयु निश्चित नहीं होती है कि इतने ही वर्ष तक का जीवन है, इससे आगे जीवित नहीं रहेगा। अगर सावधानी से बर्तने पर आयु असावधानी की अपेक्षा बढ़ जाये तो भोग साम्यावस्था से भोगता रहेगा, उनके परिमाण में घटन-बढ़न न होगी, सामान्यावस्था दुःख और सुख दोनों अवस्था से विलक्षण होती है। पण्डित गंगा प्रसाद जी का लेख असूली तौर पर "**क्रियमाण कर्म**" मेरे विचार के अविरुद्ध है।

४. श्री गोपालजी पत्रकार—

क्रियमाण कर्मों का फल इसी जन्म में संस्कार रूप से मिलता है। कभी-कभी उसके साथ प्रारब्ध व संचित का भी मेल हो जाता है। कृपया स्पष्ट करें।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

एक व्यक्ति है जो अपने जीवन को पूर्ण ब्रह्मचर्यावस्था से गुजारता है। इस कर्म में "**संस्कार**" यह है कि वह सर्वदा स्वस्थ रहता है। जो खाता-पीता है सब हजम हो जाता हैं, नींद भी अच्छी आती है। मन की चंचलता को भी रोकता है और शान्त चित्त रहता है। ये सब ब्रह्मचर्यरूपी क्रियमाण कर्म के संस्कार रूप प्रभाव हैं। परन्तु "**अदृश्य**" यह है कि वह किसी ऐसे जन्म को प्राप्त करने के योग्य बन गया है, कि जिससे उसका अधिकार एक बड़े जनसमूह पर हो। जैसे उसने अपनी इन्द्रियों पर काबू पाकर अपने शरीर पर राज्य किया, इसी प्रकार का राज्य उसको प्राप्त हो। अगर इस संस्कार कर्म के साथ किसी शुभ या अशुभ प्रारब्ध रूपी कर्म का मेल हो जाता है तो फल का रूप अन्य ही हो जाता है।

५ श्री गोपाल जी पत्रकार—

आप मान लें कि पिछला भोग समाप्त होने वाला है, तब तक मैंने कोई ऐसा काम कर दिया जिसका मुझे आगे चार वर्ष का भोग बन गया, क्या इसके लिए मुझे और जीवित रहना पड़ेगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

इस दूसरे पाप का फल दूसरे जन्म में भोगेंगे, यह तो समाप्त हो ही जावेगा। भोगों की समाप्ति के बाद मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आपने एक बार स्वामी रामेश्वरानन्द जी से बहस के दौरान संभवतः कहा था कि—"**गुणी से गुण पृथक होता है।**" क्या यह सही है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

गुण और गुणी अपने-अपने स्वरूप से पृथक-पृथक होते हैं। वैसे उन दोनों का समवाय सम्बन्ध है। मैंने यह कभी नहीं कहा था कि—"**गुणी से गुण पृथक हो जाता है।**"

७. श्री गोपालजी पत्रकार—

आपने अपनी "**दो सनातन सत्ताएं**" नामक पुस्तक के २२वें पृष्ठ पर एक प्रश्न के उत्तर में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेद विचार के हवाले से कहा है कि स्वामी जी की संस्कृत का भाषार्थ पण्डित लोगों का किया हुआ है। जो निष्कपट नहीं है। आर्य विद्वान स्वामी जी की संस्कृत के अनुरूप भाषार्थ करने की चेष्टा क्यों नहीं करते ?

श्री पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी –

यह सत्य है कि भूमिका में लिखी हुई संस्कृत का भाषार्थ पण्डितों ने किया है जो मन में फ़र्क रखते थे। इसलिये उन्होंने जहां-जहां बस चला संस्कृत के खिलाफ़ लिख दिया है। इस संस्कृत का भाषार्थ सही-सही हो सकता है, परन्तु इसमें विद्वानों का प्रमाद है।

प्रश्नोत्तर का तृतीय पत्र

प्रश्न काल=१-१२-६३
उत्तर काल=६-१२-६३

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

पृथ्वी पर जड़ और चेतन जगत बन जाने पर ही मनुष्यों का जन्म हुआ। ऐसी स्थिति में जड़ और चेतन जगत बनने में लाखों वर्ष जब लगें होंगे तो पृथ्वी और मनुष्य जन्म की एक ही जन्म संख्या एक अरब सत्तानवें करोड़ आदि कैसे मानी जायेगी ? यदि पृथ्वी और मनुष्य जन्मों में उन लाखों वर्षों के अन्तर को मान लिया जावे तो इस अन्तर को मनुष्यों ने किस आधार पर जाना ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मनुष्यों से पूर्व उत्पन्न होने वाला जड़ और चेतन जगत जब बन चुका तब पृथ्वी मनुष्यों के उत्पन्न होने व रहने व बसने के योग्य हुई तब मनुष्य उत्पन्न हुआ। सृष्टिक्रमानुसार यह बिना करे समझ लेने की बात है। जाति व्यक्ति व आकृति से पूर्ण का नाम "**सृष्टि**" है। व्यक्तियों की समानता को दर्शाने वाले गुण को "**जाति**" कहते हैं। "**आकृति**" जाति का चिन्ह है। "**व्यक्ति**" गुण विशेष आसयो मूर्ति।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जब भोग की समाप्ति पर ही किसी की मृत्यु होती है तो आततायियों को बिना सोचे समझे जान से मार डालने का मनुस्मृति का आदेश देना व्यर्थ है क्योंकि आततायी तो भोग समाप्त होने पर अपने आप ही मर जायेगा।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

विशेषावस्था से सम्बन्ध रखने वाला आदेश कर्त्तव्य ही है। जो करना चाहिये वा करना पड़ता है किसी के भी मरने में सफलता, मारे जाने वाले के भोग पर ही निर्भर है, मारने वाले के सर्वथा आधीन नहीं है। कर्त्तव्य है कि रोगी माता-पिता की सेवा की जावे, कि वे रोग मुक्त हो जावें। परन्तु इस कार्य में सफलता उनके अपने भाग्य

पर ही निर्भर है, यह जानते हुये भी हम अपने कर्त्तव्य को नहीं भुलाते हैं। आततायी का हनन किया जाना आधिभौतिक विधि में शामिल है। किसी के मरने या किसी को मारने के, भिन्न-भिन्न प्रकारों में समय की समानता नहीं होती है। क्योंकि किसी विधि में अपेक्षाकृत दुःख विशेष होता है, और किसी विधि में कम होता है। इसलिए आततायी की क्रूरता से होने वाली अनिश्चित प्रकार की संभावित पीड़ा से जीव को बचाने के उद्देश्य से उसका बिना विचारे मार डालना ही उचित है। चाहे उसमें सफलता हो या न हो। मनुस्मृति कहती है—यह क्रोध से क्रोध की लड़ाई है।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आध्यात्मिक, आधिदैविक, एवं आधिभौतिक में तीन विधियां हैं। जिनमें से किसी एक विधि से भोग समाप्त होने पर मृत्यु होती है। जिस विधिसे मृत्यु होती है, क्या वह निश्चित् रहता है? जैसे—मोहन रात को अपने दरवाजे पर सो रहा था, गोविन्द ने तलवार से उसका गला काट दिया। क्या गोविन्द द्वारा उसकी तलवार से मोहन की मृत्यु रात के समय सोने की अवस्था में पूर्व से ही निश्चित थी? यदि मोहन किसी तरह बच गया होता तो क्या उसकी मृत्यु किसी और विधि से होती?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

विधि का निश्चित होना ईश्वराधीन है, मोहन को मारने से पहले गोविन्द ने शत्रुता अथवा स्वार्थवश, शायद कई बार मोहन को मारने का इरादा किया हो, अथवा मारने गया हो और ख़ाली लौट कर आया हो। और इस समय जब मोहन दरवाजे पर सो रहा था तो गोविन्द उसकी गर्दन काटने में कामयाब हो गया। यह तो सर्वमान्य बात है कि ईश्वर को उपर्युक्त सब बातों का ज्ञान होगा। गोविन्द को अपने कार्य में कई बार असफलता मोहन के भोगों के समाप्त न होने से हुई, जो ईश्वराधीन है। जब भोग समाप्ति पर आने वाले थे तो गोविन्द मारने में कामयाब हो गया, इस अवसर पर ईश्वर उदासीन रहा क्योंकि गोविन्द वही कार्य कर रहा था जो ईश्वर करता, एक प्रकार से वह ईश्वर का साधन बन गया। परन्तु यहां यह न समझा जाये कि गोविन्द ईश्वर का साधन अथवा सहायक बन जाने से निर्दोष है। क्योंकि गोविन्द ने मोहन को इसलिए नहीं मारा था कि उसको ईश्वर ने उसको अपना काम करने की प्रेरणा की थी और अपनी Duty उसके सुपुर्द की थी। गोविन्द ने तो अपनी शत्रुता के कारण मोहन को मारा था। अगर मोहन के भोग अपनी समाप्ति की ओर न होते तो उसका जीवन लम्बा होता। और ईश्वर उसको मारने में कामयाब न होने देता, अर्थात् उदासीन न रहता और यथा समय उसको फल देता, अर्थात् यथा समय ही मोहन की मृत्यु होती। यदि गोविन्द की मोहन से शत्रुता न होती तो मोहन की मौत अन्य प्रकार से भी हो सकती थी।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

गुरु गोविन्द सिंह के दोनों लड़के और हकीकत राय यदि धर्म परिवर्तन कर दिये होते तो क्या वे दिवार में चुने जाने से बच जाते? मैं मरना चाहता हूं, क्या मर सकता हूं?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी —

सैद्धान्तिक आधार से तो यह मानना ही पड़ेगा कि गुरु गोविन्द सिंह जी के बच्चों का जीवन शेष नहीं रहा था, परन्तु उनकी मृत्यु के साथ ही ऐसा यश फैल गया कि आज तक जगत् उनकी याद करता रहता है। और आगे भी करता रहेगा। यदि वे धर्म परिवर्तन करके अपने जीवन को बचाते तो अन्य किसी साधन से या प्रकार से उनका जीवन समाप्त हो जाता, और यश के स्थान पर अपयश हो जाता। यदि आपका भोग बाकी है, और आप मरना चाहते हैं तो इसमें कोई शक नहीं कि आप अपने मारने के सब साधनों का प्रयोग और प्रयत्न करने पर भी नहीं मरेंगे, कोई न कोई अनिवार्य बाधा बीच में आ जायेगी।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जन्म की फूटी आंख क्या कर्मज भोग है? जैसा कि आप इसे निश्चित मानते हैं। डाक्टर लोग बन्दर की आंख लगाकर जब इसे ठीक कर देते हैं तो यह कर्मज भोग कहां रहा? इस तरह की आंख ठीक होने की खबरें अधिकांश अखबारों में पढ़ने को मिलती रहती हैं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं अखबारों की सारी बातों को सत्य नहीं मानता हूं। परन्तु यदि आपके लिखे को सत्य मान लूं तो कहना पड़ेगा कि आंख का बदल देना, फूटी आंख का सुधार नहीं कहा जा सकता, फूटी आंख यदि सुधर जाती तो बन्दर की आंखें क्यों लगाई जाती? बन्दर को अन्धा करके मनुष्य को आंखों वाला करना आंखों का सुधार नहीं है। कुछ काल पूर्व जब "ABDO—NINAL OPERATION" अमल में नहीं आया था, उस समय गर्भाशय के संकुचित होने के कारण और पैदा होने के स्थान अथवा मार्ग के संकरे (छोटे) होने के कारण बच्चे और माताएं मर जाया करती थी, या बहुत कष्ट से बच्चा पैदा होता था। या दोनों में से एक की मृत्यु हो जाया करती थी। परन्तु अब जब उपयुक्त आपरेशन से बच्चा पैदा किया जाता है तो दोनों जिन्दा रहते हैं। रोगी को आवश्यक और उपयुक्त साधनों का प्राप्त हो जाना भी उसके अच्छे भोग में ही शामिल है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि बावजूद हर प्रकार की विद्या का उद्भव हो जाने के बाद भी शरीर में कुछ रोग ऐसे हैं जो असाध्य हैं। चरक और सुश्रुत ने भी सच्चाई से इन्कार नहीं किया है। मैं उन रोगों को "**कर्मज**" नाम देता हूं।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आदि सृष्टि में ईश्वर की ओर से एक-एक ऋषि को एक-एक वेद का ज्ञान हुआ इसका अभिप्राय यह हुआ कि अन्य तीन-तीन वेदों के ज्ञान से हर ऋषि को वंचित रखा, यह उचित नहीं जान पड़ता है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

सिद्धान्त रूप से तो जो स्वामी दयानन्द जी व श्री नारायण स्वामी जी ने जो लिखा है वह ठीक है, परन्तु

मेरा यह कहना कि ईश्वर की ओर से चारों ऋषियों को चारों वेदों का ज्ञान प्रदान करना, फिर उनमें से अपनी-अपनी योग्यता अनुसार एक एक को एक-एक वेद का प्रचारक नियत करना कोई विशेष भेद उत्पन्न नहीं करता। ईश्वर की ओर से चारों ऋषियों को चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त होने के बाद आपस में एक दूसरे से सीखने या पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती। हां! यह जरूर है कि—Revesion (पुनरावलोकन) हो सकता है।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

सन्तान की उत्पत्ति पिछले कर्मफल के रूप में मिलती है या नहीं? सन्तान के अभाव में बाप को दुःख होता है, और रहने पर सुख होता है। यह सुख-दुःख मिलने का कारण क्या सन्तान नहीं है? धन और जायदाद जब बाप के भोग में आता है तो सन्तान क्यों नहीं?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मनुष्य के शुभाशुभ कर्म ही उसके सुख-दुःख का कारण हो सकते हैं। सन्तान कारण नहीं हो सकती। केवल साधन हो सकती है। एक निःसन्तान व्यक्ति किसी सन्तान वाले को सुखी देखकर अपने को भाग्यहीन समझता है। और दुःखी होता है। लेकिन जब वह किसी सन्तान वाले व्यक्ति को दुःखी देखता है तो अपना सन्तान रहित होना मुबारक ख्याल करता है। तो ऐसी सूरत में यह नतीजा निकलता है कि यदि शुभ कर्म किये हैं तो सुख के साधन प्राप्त हो जाते हैं, जिनमें सन्तान भी एक साधन है। और अशुभ कर्म के नतीजे में सन्तान सहित बुरे साधन प्राप्त हो जाते हैं। धन और जायदाद में भी यही नियम लागू होगा।

८. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जीव क्या मुक्ति से लौटकर सृष्टि के आरम्भ में अर्थात् अमैथुनी सृष्टि में ही आता है या बीच में भी? जैसा कि कहा गया है कि जब-जब धर्म की हानि होती है। तब मुक्त आत्मायें पृथ्वी पर धर्म को संभालने के लिए आती हैं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मुक्त जीव सृष्टि के आरम्भ में ही लौटते हैं। बीच में नहीं लौटते। **"यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः"** वाले गीता के श्लोक में जो **"आत्मानम् सृजाम्यहम्"** कहा है उसमें **"आत्मानम्"** गीता के सातवें अध्याय के अट्ठारहवें श्लोक में **"ज्ञानीत्वात्मैव मे मतम्"** अर्थात् मेरा मत है कि—ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है, यह कहकर भ्रम दूर किया है, कि—मैं ज्ञानी लोगों को पैदा करता हूं, जो मेरे आत्मा हैं, मैं अपने को पैदा नहीं करता। यहां मुक्त आत्मा का उल्लेख नहीं है।

९. श्री गोपाल जी पत्रकार—

डाक्टर लोग आपरेशन से स्त्री का पुरुष और पुरुष का स्त्री बना देते हैं। क्या आप इससे सहमत हैं?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मेरी एक लड़की जिसकी आयु इस समय ६० वर्ष की है उसके दो बच्चे पेट चाक होने से ही हुवे हैं, स्वाभाविक नियमानुसार नहीं हुये, जब दूसरा बच्चा होने वाला था और लड़की को जच्चा खाने के आपरेशन रूम में ले जाने वाले थे तो डाक्टरनी ने मेरे जामाता से पूछा कि क्या तुम ये चाहते हो कि तीसरा बच्चा भी हो अगर तीसरा बच्चा भी होगा तो वह भी पेट चाक होकर ही होगा, और इस तरह पेट कमजोर हो जायेगा। जिससे माँ की जान के लिये खतरा है। क्या आप दो बच्चों से सन्तुष्ट नहीं हैं? उत्तर दिया कि मैं दो ही से राजी हूं। तीसरा नहीं चाहिये। तो डाक्टर ने दूसरे बच्चे को निकालते समय मेरी लड़की के Overies बांध दिये। Overies अंडकोश होते हैं। जैसे मर्द के बाहर होते हैं वैसे ही स्त्री के अन्दर होते हैं। साथ ही यह भी पता चला कि जो मर्द के बाहर होता है वह स्त्री के अन्दर होता है। अगर किसी प्रकार स्त्री का अन्दर वाला हिस्सा बाहर निकल आवे तो वह मर्द हो जाता है। सार्वदेशिक सभा में एक विद्वान अनुसंधान (Research) का कार्य करते हैं उन्होंने इसके लिए एक प्रमाण भी पढ़ कर सुनाया, कि जो अन्दर होता है वही बाहर होता है। और जो बाहर होता है सो अन्दर होता है मुझे जब वे मिलेंगे तब उनसे पूछूंगा, इस प्रश्न का उत्तर एक सभा में मैंने इस प्रकार दिया था कि—अपने हाथ से मैंने अपनी जेब में हाथ डालकर जेब की थैली को बाहर निकाल दिया, और बताया कि इस प्रकार स्त्री का मर्द हो जाता है, और जब थैली को वापस अन्दर कर दिया तो बताया कि इस प्रकार मर्द, स्त्री हो जाता है। बड़ी हंसी हुई। और उत्तर याद कर लिया।

प्रश्नोत्तर का चतुर्थ पत्र

प्रश्न = दिनांक १०-१२-१९६३ ई०
उत्तर = दिनांक १५-१२-१९६३ ई०

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मानुषी गवर्नमेंट में मनुष्य अपने भले-बुरे कर्मों का फल अपने शरीर में ही भोगता है। ईश्वरीय गवर्नमैन्ट में उसको दूसरी योनि में क्यों भोगे? भोग भोगने के लिए जाति नहीं बदलनी चाहिये। जैसे एक मनुष्य ने आटे में विष मिला कर उसकी रोटी किसी अतिथि को खिला दी और वह मर गया। इस अपराध का फल भोगने के लिए बैल बनकर भूसा खाना पड़ा तो वह तो मजे के साथ खावेगा। क्योंकि भूसा उसका भोजन ही है। यह तो दण्ड नहीं हुआ, यह न्याय नहीं हुआ कि मनुष्य शरीर से किया हुआ अपराध का फल दूसरी योनि में भोगे।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मानवीय Government और ईश्वरीय Government में फ़र्क है, ईश्वरीय Government का सम्बन्ध जीव की दोनों अवस्थाओं के साथ है, चाहे जीव शरीर रहित हो या शरीर सहित, परन्तु मानवीय Governmen

का सम्बन्ध केवल शरीर सहित जीव के साथ है। यदि कोई स्वतन्त्र पुरुष अपने घर में रहते हुए सरकार के कानून के विरुद्ध कर्म करे तो उसको Jail भेज दिया जाता है। घर में किये हुए जुर्म की सज़ा घर में ही नहीं दी जाती है बल्कि घर से निकाल कर Jail वाले घर में डाल दिया जाता है। ताकि वहां घर में किये हुए पाप का फल भोगे। पाप करता है, दुकान, घर वा किसी अन्य स्थान में, परन्तु उसका फल भोगता है जेल में। आज़ाद और कैदी दोनों में समानता है, यानी दोनों मनुष्य हैं। कुछ बाहरी फ़र्क पैदा कर दिया जाता है। जैसे हाथ में हथकड़ी व पैरों में बेड़ी और शरीर पौशाक, जिसने निर्दोषी व दोषी में पहचान हो जाये। इसी तरह यदि किसी जीव ने कोई पाप कर्म किया है, जो मानवीय गवर्नमैन्ट की जानकारी से बाहर है तो ईश्वर उस जीव को अपने बनाये हुए जेलखाने में डालकर फल भुगतवाता है। ईश्वर किसी पाप कर्म करने वाले को रोकता नहीं है। क्योंकि कर्त्ता स्वतन्त्र है। वह तो उसको Watch करता है और अगर वह मानवीय गवर्नमैन्ट से बच जाता है, अथवा पकड़ा नहीं जाता है तो ईश्वर अपनी व्यवस्था से उसको उचित समय पर फल दे देता है। मानवीय गर्वमैन्ट का कैदी बार-बार जुर्म करके जेल जाता है। क्योंकि उसको जुर्म और उसके करने में जो स्वाद है दोनों याद रहते हैं। जुर्म की सजा भी याद रहती है। परन्तु वह उसकी परवाह नहीं करता है, क्योंकि पकड़ा जाना अनिश्चित है, इस पूर्वोक्त याद के कारण वह बार-बार जुर्म करता है। और दण्ड पाने पर भी उसका सुधार नहीं होता। यहाँ तक कि Jail में भी पाप कर्म कर बैठता है। परन्तु इसके विरुद्ध ईश्वरीय जेल में—कुत्ते, बिल्ली, घोड़ा, गधा, रूपी जेलों में मुज़रिम को कुछ भी याद नहीं रहता, इससे उसके सुधार में बहुत मदद मिलती है। मानवीय सरकार का कैदी जिस शरीर से पाप कर्म करता है, उसी शरीर से भोगता हैं। इसलिये उसे किया हुआ याद रहता है। परन्तु ईश्वरीय सरकार का कैदी जिस शरीर से कर्म करता है उससे अन्य शरीर में यानी पशु आदिक के शरीर में भोगता है। उन शरीरों में मन कैद किया हुआ होता है। जो गुनाह की बुनियाद है। **"यन्मनसाध्यायतितद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तद् कर्म रण करोति"** इस प्रमाण से तो कर्म करना तो दूर रहा, ख्याल भी नहीं कर सकता, आपने लिखा है कि एक मनुष्य ने एक अतिथि को आटे में भुस मिलाकर रोटी खिला दी, तो अगर ऐसा करने वाले को बैल बनाकर भुस खिलाया जावे तो बड़े आनन्द से भुस खाता रहेगा। परमात्मा इसके ख़िलाफ़ नहीं है कि पशु योनि वाले को उसके अनुकूल भोजन न दिया जावे। भुस आटे में मिलाकर खिलाने वाले ने तो विश्वासघात किया है। जिसका उसको उसी के अनुसार दण्ड मिलेगा। उसको ४०-५० मन बोझा बज़रिये ठेले के ढोना पड़ेगा, डण्डों की मार पड़ेगी, जब जुवे के नीचे आने में आना कानी करेगा, वगैरा-वगैरा।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार –

संसार में ऐसा कभी न सुना और न देखा कि पूर्व जन्म का कोई पुरुष इस जन्म में स्त्री हुआ हो। ऐसा लगता है कि पुरुष-पुरुषयोनि में तथा स्त्री-स्त्रीयोनि में ही जन्म लेता है। आपका विचार क्या है?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

ऐसा उदाहरण न मिलने पर कि, मर्द ने स्त्री की और स्त्री ने मर्द की योनि प्राप्त की हो, आपका अपना विचार जो है, वह बना रहे या बना रह सकता है, परन्तु शास्त्रीय प्रमाण के होते हुए तो मानना ही पड़ेगा कि जाति से जीवों में कुछ भेद नहीं है, सब समान हैं। **"नैव स्त्री न पुमानेव न चैवायं न नपुंसकः। यद्यच्छरीर मा दत्तेतेन तेन सयुज्यते॥"** जीव न स्त्री है न पुरुष और न नपुंसक! जैसा-जैसा शरीर दिया जाता है, उसी-उसी से

संयुक्त हो जाता है। स्वर्गवासी श्री पण्डित लेखराम जी ने शायद ऐसी मिसाल दी है जिससे आपकी शंका का समाधान हो जाता है। मैं "कुलीयात प्रार्य मुसाफिर" में ढूंढूंगा।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मनु भगवान ने आपद् धर्म में विधवा विवाह की व्यवस्था दी है। किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने विधवा विवाह की निन्दा की है। यह मतभेद कैसा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

स्वामी दयानन्द जी महाराज ने द्विजों में ही पुर्नविवाह की मनाही की है। शूद्रों में नहीं की। अर्थात् विधवा विवाह (पुर्नविवाह) शूद्र कर्म है, पाप कर्म नहीं है। जिन-जिन कारणों से पुर्नविवाह की द्विजों में मनाही की है वे द्विजों की सभ्यता के साथ मेल नहीं खाते, परन्तु शूद्रों के लिये बेमेल नहीं है। उनमें बहुधा उन दोषों जैसे कार्य होते रहते हैं, इसलिये उनके लिए विहित है।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आपने विधि का निश्चित होना ईश्वराधीन बताया है, मोहन ने गोविन्द को सोते समय तलवार से कत्ल कर दिया। कतल करने की यह विधि ईश्वराधीन ही तो हुआ, ऐसी हालत में मोहन कतल करने का दोषी नहीं होता है। दोषी क्यों मानें ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

यदि विधि का ईश्वर की ओर से निश्चित होना मैंने गोविन्द और मोहन सम्बन्धी घटना के लिए लिखा है तो सही नहीं है। परन्तु यदि इस ख्याल से कि आध्यात्मिक, आधिभौतिक, व आधिदैविक, ईश्वरीय निश्चिय है तो ठीक है।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आतताई का हनन करना राजा का धर्म है। क्या आम जनता भी आतताई का वध करने की अधिकारी है ? कानून को अपने हाथ में लेने से क्या आम जनता दण्ड की भागी न होगी ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आतताई के वध करने का अधिकार राजा व प्रजा दोनों को है। आत्म रक्षा के लिये बिना अपराध किसी को मारने वाले को बिना विचारे मार डालना चाहिये। इसमें साधारण मनुष्य भी वैसे ही अधिकारी है जैसे राज-पुरुष, कई वर्षों की घटना है, एक देवी आभूषणों से सजी हुई अपने नन्हे बच्चे सहित Frontier Mail से शायद सवाई माधोपुर जा रही थी, एक डाकू उसको अकेली देखकर गाड़ी में घुस आया, और सारे जेवर उतार कर देने

के लिये उसके बालक के मारने का भय दिखाया। उसने सारे जेवर उतार कर नीचे तख्ते पर रख दिये, तो डाकू ने अपना हथियार नीचे रखकर जेवरों को संभालना शुरू किया। देवी ने उसका ध्यान बचाकर हथियार उठा लिया और उसकी गर्दन पर मार कर उसका काम तमाम कर दिया। जेवर और बच्चा दोनों बच गये। जब उसका मुकदमा हुआ तो अंग्रेज जज Judge ने उसे साफ छोड़ दिया। कि अपनी आत्म रक्षा और जेवर व बच्चे को बचाने के लिये उसने जो कुछ किया, उचित किया। She was honorably Ascqitted.

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

यदि मैं भगवान के पचड़े में न पड़कर समाज की सेवा करूं और चोरी व बेईमानी से बचता रहूं तो क्या मेरी मुक्ति हो सकती है? जैसे—पण्डित जवाहर लाल नेहरू न भगवान को मानते थे और न धर्म कर्म समाज की सेवा ही वह धर्म मानते थे। क्या उनकी मुक्ति हो सकती है?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जवाहर लाल नेहरू सामान्यतया अच्छे आदमी हैं। परन्तु उनकी नीति पक्षपात शून्य नहीं है। एक ओर विशेष झुके हुए हैं, मुसलमानों की बातें वे जिस प्रेम व सहानुभूति से सुनते हैं वैसे हिन्दुओं की नहीं सुनते। मनुस्मृति में वर्णित काम व क्रोध से उत्पन्न होने वाले कई व्यसनों में फंसे हुये हैं। काम से उत्पन्न होने वाले व्यसनों में फंसने से मनुष्य राज्य-धन आदि और धर्म से रहित हो जाता है। ईश्वर का न मानना इस मूर्खता के समतुल्य है कि "**प्रबन्ध**" की आवश्यकता तो मानी जाय, परन्तु उसके लिये प्रबन्धक की आवश्यकता न मानी जावे। स्थान-स्थान पर सुव्यवस्था के लिए और सुप्रबन्ध के लिए प्रबन्धक नियत किये जावें, परन्तु इस ब्रह्माण्ड के प्रबन्ध को मानते हुए इसके प्रबन्धक को न मानना एक साधारण सच्चाई से इन्कार करना है। जो संसार के भोगों की इच्छा से धर्मयुक्त काम किये जाते हैं। उनको सकाम कर्म कहते हैं। ये जन्म-मरण, फल भोग से युक्त होते हैं। और जिसमें संसार के भोगों की कामना नही होती। इसी कारण से इसका फल अक्षय है। इसी को निष्काम कर्म कहते हैं। इसका अनन्त सुख से योग होता है।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

महाभारत की लड़ाई के समय चोट खाकर भीष्म पितामह मरण सैय्या पर पड़े हुवे प्रतिज्ञा किये थे कि जब तक सूर्य उत्तरायण में नहीं होगा तब तक प्राण निकलने नहीं दूंगा। कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य से उम्र बढ़ती है। आप बतावें कि भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य के प्रताप से उम्र बढ़ा लिया था अर्थात् मृत्यु को जीत लिया था, या उनका सूर्य के उत्तरायण होने तक भोग समाप्त नहीं हुआ था? द्रोणाचार्य साढे चार सौ वर्ष जीवित रहे, क्या ब्रह्मचर्य से उन्होंने उम्र बढ़ा ली थी? या उतने दिनों का उनका भोग था?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं इतिहास की बातों पर बहुत कम विश्वास करता हूं। क्योंकि एक ही घटना को भिन्न-भिन्न इतिहासवेत्ता

भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं, अतः मैं इतना ही कह सकता हूं कि ब्रह्मचर्य के प्रताप से जन्म व मृत्यु से होने वाले दुःख का अपघनन् करते रहते हैं। अर्थात् जन्म-मरण को जीत कर मोक्ष सुख को प्राप्त हो जाते हैं। श्री द्रौणाचार्य जी यदि कई सौ वर्ष (साढ़े चार सौ वर्ष) जीयें तो उनका जीवन सुख-दुःख से रहित सामान्यावस्था में रहा होगा। सूक्ष्म परिमाण में भोग भी भोगते रहे होंगे।

८. श्री गोपाल जी पत्रकार—

फलित ज्योतिष में आप विश्वास करते हैं या नहीं? मशहूर आलम जन्त्री में पढ़ा गया कि, इसी नवम्बर महीने में कोई विमान दुर्घटना होगी, और कोई महान नेता की मौत होगी। दोनों बातें सही निकली ऐसी हालत में आपको फलित ज्योतिष में विश्वास करना चाहिये।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं ज्योतिष शास्त्र में किंचित मात्र भी विश्वास नही करता। जो इसका मानना लाभप्रद समझते हैं, वे उसे मानते रहें।

९. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जब प्रारब्धानुसार ही सुख-दुःख मिलते हैं, तो यह सुख दुःख कहीं भी मनुष्य रहेगा तो भोगना ही पड़ेगा। ऐसी हालत में आर्य समाज गोरखपुर के जलसे में अगर बुलाये जाते हैं तो कष्ट होगा, ऐसी आशंका में आप नहीं आते हैं। कष्ट यहीं भोगना होगा तो आप उसे कैसे टाल सकते हैं?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी –

मैं प्रारब्धानुसार ही भोग मानता हूं। परन्तु यदि यात्रा में दुःख हुआ तो किस प्रकार का होगा? यह न जानने से आने का साहस नहीं होता है। यदि मैं बीमार हो गया और जिस उद्देश्य के लिये आपने बुलाया है वह विफल हो गया, तो दोनों को दुःख होगा।

१०. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आप कहते हैं कि, अण्डकोश पुरुष का बाहर और स्त्री का अन्दर होता है। यदि पुरुष का अण्डकोश अन्दर कर दिया जाये तो वह स्त्री जैसा हो जायगा। तो क्या उसमें बच्चा पैदा करने की क्षमता आ जायेगी?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं उसूली तौर पर तो यह मानता हूं कि, स्त्री का शरीर पुरुष में और पुरुष का स्त्री में बदल सकता है। परन्तु सारे परिवर्तन किस प्रकार से होते हैं, या होते भी हैं या नहीं? यह मुझे नहीं मालूम। मैं माननीय पण्डित श्री वैद्यनाथ प्रसाद जी से जो "दीवान हाल" में अनुसंधान का कार्य कर रहे हैं, उनसे वह मन्त्र मालूम करूंगा जिसमें यह वर्णन है कि **"जो बाहर है सो अन्दर है, और जो अन्दर है सो बाहर है"**।

प्रश्नोत्तर का पाचवां पत्र

प्रश्न = १६-३-६४
उत्तर = ११-३-६४

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आपके दूसरे प्रश्न के उत्तर में स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने उत्तर दिया है कि, पूर्व जन्म के कर्मों से शरीर ही मिलता है। किन्तु शरीर की सर्वसाधनोपयोगी वस्तुएं माता-पिता आदि तथा ईश्वर से केवल दान में मिलती है। दान तो कम और ज्यादा दोनों दिया जा सकता है। इसके प्रत्युत्तर में आपने बताया है कि लगभग सर्व-साधनोपयोगी वस्तुएं कर्मानुसार ही सन्तान को मिलती हैं। "**लगभग**" शब्द से ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ साधनों-पयोगी वस्तुएं ऐसी होती हैं जो दान रूप में भी मिलती हैं। इसको स्पष्ट करें।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

स्वामी जी ने अपने इस पक्ष की पुष्टि में कोई वेदादि शास्त्र का प्रमाण नहीं दिया कि पूर्व जन्म के कर्मों से नये जन्म में केवल शरीर ही मिलता है, और सर्वसाधनोपयोगी वस्तुएं माता-पिता या परमात्मा से दान में मिलती हैं। मैंने इसके विरुद्ध कर्मानुसार मिलने का प्रमाण "**लगभग**" दे दिया है। परमात्मा ने दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की है, एक दया की सृष्टि और दूसरी न्याय की, दया की सृष्टि मनुष्यों को उनके उत्पन्न होते ही तैयार मिलती है। यथा सूर्य-चन्द्र आदि। अतः "**लगभग**" शब्द इस बात का द्योतक है कि, संभवतः दया की सृष्टि में से कोई अन्य वस्तु भी दान में प्राप्त होती हो, जिसका मुझे ज्ञान न हो। परन्तु यह "**लगभग**" शब्द कर्मानुसार साधनों की प्राप्ति का बाधक नहीं है। इससे यह सिद्ध नही होता कि स्वामी दयानन्द जी महाराज उपर्युक्त मत के विरुद्ध मानते थे। "**लगभग**" शब्द स्वामी जी के लेख में नहीं हैं। अपितु मेरी ओर से हैं।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

इसी दूसरे प्रश्न के प्रत्युत्तर में सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास पृष्ठ २६१ का एक हवाला दिया है। सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्य कुल में ही हुए। अब इनकी सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। इसमें आप उन चक्रवर्ती सार्वभौम राजाओं की सन्तान के राजभ्रष्ट होने का उनके अभाग्योदय को ही कारण बताते हैं। और दूसरी ओर यजुर्वेद अध्याय २ मन्त्र २३ के हवाले से बताते हैं कि, जो मनुष्य वेद द्वारा ईश्वर के बताये हुए व्यवहार को त्याग देता है, वह दुष्टों से पीड़ा पाता रहता है। दोनों में मेल नहीं खाता—इसलिए स्पष्ट करें कि—"क्या पृथ्वीराज चौहान का अभाग्योदय हो गया था जिससे वह राजभ्रष्ट हो गये या ईश्वर के बताये हुए वेद व्यवहार का त्याग किया था? इससे राजभ्रष्ट हुए।" तथा विश्वामित्रजी को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए दशरथ जी महाराज से राम-लक्ष्मण की याचना करने की क्या जरूरत थी ? यदि रक्षा होनी थी तो ईश्वर किसी साधन से रक्षा कर देते। क्या कर्मफल सिद्धान्त से वह अनभिज्ञ थे ? आपका मत है कि—धर्मातमाओं के विरुद्ध जब दुष्टों को उनकी दुष्टता में ईश्वर सफल नहीं होने देता, ऐसी हालत

में पुलिस आदि की सहायता लेना ही क्यों ? जिस डाकू और चोर को पकड़ा जाना निश्चित है तो किन्हीं साधनों से वह पकड़ा ही जायेगा, ऐसी स्थिति में उसको पकड़ने या पकड़वाने के लिये चिन्ता क्यों करनी पड़े ? आपके मतानुसार जब भाग्य के विरुद्ध किसी का बिगाड़ा जाना या सुधारा जाना संभव नहीं तो अपनी सन्तान के सुधार के लिए हाय-तौबा क्यों करें ? भाग्य के विरुद्ध जब किसी को न कम और न ज्यादा कष्ट दिया जा सकता है तो संसार में पाप और पुण्य की वृद्धि नहीं होनी चाहिये । बल्कि समान होनी चाहिए, क्योंकि पशु आदि योनियों में जब जीव का पाप और पुण्य बराबर हो जाता है, तभी वह मनुष्य योनि में आता है । बोर्ड की परीक्षा चलती हैं, इन परीक्षाओं में बहुत से छात्र नकल करते हुए पकड़े जाते हैं, और दो-एक वर्ष के लिये परीक्षा से वंचित कर दिये जाते हैं । यह उनके पूर्व जन्मों के कर्मों का फल है, या वर्तमान जन्म के कर्म का फल है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आर्य कुल के राजाओं की सन्तान अपने किन्हीं अन्य दुष्कर्मों से राज्य भ्रष्ट हुवे । और राज्य भ्रष्ट होने से अभाग्योदय हुआ, अतः अभाग्योदय दुष्कर्मों का परिणाम हुआ, कारण नहीं हुआ, चूंकि आपने प्रथम परिणाम ठीक नहीं निकाला अतः दूसरा मन्त्र मेल नहीं खाता । दुष्कर्मों को अभाग्योदय का कारण मानने पर यजुर्वेद, अध्याय २, मन्त्र २३ से कोई वैषम्य नहीं रहता । इस जन्म के कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जो पिछले कर्मों के साथ मिलकर उन्हें फल प्राप्ति के योग्य बना देते हैं, और जो इनसे इतर होते हैं वे आगामी जन्मों के लिये संचित हो जाते हैं । मेरा पुस्तक "**मेरे पत्र व्यवहार**" के पृष्ठ ३६ की निम्न पंक्तियों को आप कभी न भूलें । (श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने ध्यान नहीं रक्खा) । "**मैं मानता हूं कि वर्तमान जन्म के कुछ कर्मों का भोग तो इसमें मिल जाता है, परन्तु कुछ का दूसरी योनि के योग्य होने से इसमें नहीं मिलता**" पृथ्वीराज के विषय में भी आपकी पूर्व अनुपयुक्त धारणा अभाग्योदय को, राज्य भ्रष्ट होने का कारण मानना ही भ्रम उत्पन्न कर रहा है । जब तक राज्य भ्रंश हुआ ही नहीं, तब तक अभाग्योदय ही कहां से आ जायेगा ? ऐसे समय पर भी दोष का आरोप लाभदायक है । दोषी ठहरायेंगे तो वह भविष्य के कार्यों के लिये सावधान कैसे होगा ? ऐसी कोई ही अवस्था होती होगी जिसमें जीव की स्वतन्त्रता कारगर न रहे । विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिये ईश्वर ने ही उनको राम और लक्ष्मण रूपी साधन सुझाये थे । और क्या मनुष्यों की भांति ईश्वर स्वयं आकर यज्ञ की रक्षा करता ? क्या जीवित पुरुष साधन नहीं हो सकते ? Police आदि भी ईश्वरीय प्रबन्ध का रूप है । राज्य प्रबन्ध ही सारा ईश्वरीय रूप है । हां ! यह भी सफल तब ही होते हैं जब ईश्वर चाहे। ईश्वर हाथ फैलाकर मनुष्यों की भांति किसी को बचाने या मारने थोड़े ही आवेगा ? भाग्य के उदय होने से पूर्व किसी को उसका ज्ञान नहीं होता, पुनः उसके लिये जो (अज्ञान है) प्रयत्न किया ही जाता है, जो निश्चित हो गया उसके लिए क्या प्रयत्न करेगा ? जिस प्रकार हम सूर्य के ताप से और वर्षादि से अपनी रक्षा छाते (छतरी) आदि से करते हैं, ताप या वर्षा आदि हटाते नहीं । केवल अपना बचाव करते हैं, इसी प्रकार प्रभु का यह आदेश है कि, किसी भी विपत्ति के आने पर हमें उससे अपना बचाव करना ही चाहिये । प्रयत्न करने पर संभव है दूर हो जावे । साथ ही यदि प्रयत्न न करें तो आगामी जीवन की उन्नति के लिए पुरुषार्थ-हीन हो जाता है । पाप और पुण्य तो स्वतन्त्र कर्म हैं, जो पूर्वकृत कर्मों के फल के न्यूनाधिक न हो सकने पर भी किये जा सकते हैं, मनुष्य का शरीर कर्म और भोग क्षेत्र दोनों हैं । छात्र का नकल करते समय दण्डित होना इस जन्म के संस्कार (ताजा कर्म) और पिछले अदृष्ट का फल है । कई बार नकल करके भी छात्र नहीं पकड़े जाते उसमें इस जन्म का संस्कार समान होते हुए भी पिछले अदृष्ट के समान न होने से वह बच जाते हैं, तथा इस जन्म का नकल करना उनका आगामी जन्म को अदृष्ट के रूप में संचित हो जाता है ।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मैंरे पत्र व्यवहार पुस्तिका के पांचवे प्रश्न के उत्तर में स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने जो यह कहा है कि, मुक्ति से लौटे हुए जीव सृष्टि के आरम्भ में भी आते हैं। और मध्य तथा अन्त में भी ! क्या आप इससे सहमत हैं ? मेरे पत्र व्यवहार पुस्तिका के ग्यारहवें प्रश्न के प्रत्युत्तर में एक स्थान पर आपने बताया है कि कभी तो मौत किसी पाप कर्मों के दण्ड का परिणाम होती है, और कभी भोगों की समाप्ति पर होती है। मेल नहीं खाता है स्पष्ट करें। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के बारहवें पृष्ठ पर यजुर्वेद अध्याय एक मन्त्र ५ की हिन्दी व्याख्या में लिखा है—"**सब जीव पापों के भोगने में कुछ पराधीन हैं**" क्या भोगने में कुछ स्वतन्त्र भी होते हैं ? मनुष्य शरीर में जो शक्ति और पुरुषार्थ निहित हैं, वह वर्तमान शरीर में सुख-दुःख प्राप्त करने तथा भोगने के लिए क्या नहीं होता है ? या अगले जन्म के लिये सुख-दुःख प्राप्त करने के लिये होता है। आप कहते हैं कि वर्तमान जन्म में भाग्य के विरुद्ध न कम और न ज्यादा सुख-दुःख मिलता है। जब भाग्य ही से सुख-दुःख मिलेगा तो शक्ति और पुरुषार्थ की जरूरत क्या ? वृक्षों में जीव होने के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द जी महाराज के जो विचार हैं क्या उस विचार से आप सहमत हैं ? ब्रह्माण्ड एक है या अनेक ? यदि अनेक हैं तो क्या सबका एक साथ प्रलय होता है ? या बारी-बारी से ? क्या क्रियमाण कर्मों का भी फल इस जन्म में जीव को भोगना पड़ता है ? यदि किसी अपराधी को अल्पज्ञता से सात साल के बजाय चार साल की सजा न्यायाधीश ने दे दी तो क्या वह शेष तीन साल की सज़ा ईश्वर की ओर से किसी अवसर पर मिलेगी ? आप मुक्तात्माओं के शेष कर्म मानते हैं तो प्रमाण दें। अगर कोई उपदेशक वायदा करके किसी आर्य समाज के जलसे में नहीं जाता है तो क्या वह दोषी नहीं होगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

प्रश्न ५ को मैं स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह वेदानुकूल नहीं है। ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त २४, मन्त्र २ के भावार्थ में ऋषि दयानन्द लिखते हैं, "**अयमेव मुक्तानापि जीवानां महाकल्पान्ते पुनः पाप पुराय तुल्यतया पितरिमातरि च मनुष्य मनुष्य जन्म कारयतीति च**"। बहुत से लोग "**स्वामी रामेश्वरानन्द**" वाला पक्ष भी मानते हैं। सरकार की ओर से किसी पाप कर्म के दण्ड रूप में मौत का पा जाना उसी समय कार्यान्वित होता है। जब भोगों की समाप्ति होती है। वर्ना किसी न किसी वजह से स्थगित होता रहता है। दोनों की समकालीनता आवश्यक है। "**कुछ**" का शब्द अमान्य है, स्वामी जी के संस्कृत भाष्य में न होने से। मनुष्य शरीर में दोनों शक्ति निहित हैं, पिछला किया भोगने की और आगे के लिए शुभाशुभ करने की। वृक्षों के सम्बन्ध में मेरा वही मत है जो ऋषि दयानन्द का है। अभी तक मैं यही मानता हूं कि, सब ब्रह्माण्डों का प्रलय एक साथ होता है, तभी तो इसको महाप्रलय कहते हैं। यदि इसके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण मिला तो वैसा मानने के लिये विचार करेंगे। क्रियमाण कर्मों का फल इसी जन्म में संस्कार रूप में मिलता है, कभी-२ उसके साथ प्रारब्ध व संचित का भी मेल हो जाता है। अपराधी के भोगों की प्रबलता ने जज साहब की अल्पज्ञता को अपने अनुकूल बना लिया। मुक्तात्मा अपने पाप-पुण्यों की तुल्यता से फिर जन्म पाते हैं। ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त २४ मन्त्र २ का भाष्य देखें। इस मन्त्र का हवाला ऊपर भी आ चुका है। अगर वायदा करके स्वस्थ रहते हुए न गया हो तो वह उपदेशक दोषी अवश्य है, वर्ना नहीं।

प्रश्नोत्तर का छटा पत्र

प्रश्न = १८-४-६५
उत्तर= १-५-६५

१, श्री गोपाल जी पत्रकार—

धनिक और गरीब का होना अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल न मानकर राज व्यवस्था का दोष माना जाये तो क्या हर्ज है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं पूर्व जन्म और वर्तमान दोनों जन्मों के कर्मों का फल मानता हूं। कई मनुष्य अपने जीवन के पूर्व काल में गरीब थे, परन्तु धीरे-धीरे बाद में बहुत अमीर हो गये, ऐसा या इसके विरुद्ध होने में राज्य व्यवस्था को साधन माना जा सकता है ?

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

एक पिता के दस पुत्र हैं, सभी लड़के अपनी योग्यता और कार्य क्षमता से कमाते हैं, पिता उनसे धन लेकर सब प्रबन्ध समान रूप से करता है। उनमें न कोई गरीब और न कोई अमीर कहा जाता है। क्या इस प्रकार की व्यवस्था राज्य की ओर से नहीं हो सकती है ? चीन और रूस तो राज्य व्यवस्था का दोष मानते हैं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

हिसाब जिस बात का होना संभव बतावे, यह आवश्यक नहीं है, कि अमल में वह हो सके, जैसे १० फीट लम्बी चौड़ी दीवार को दो राज एक दिन में बना सकते हैं तो २०० राज और चार सौ मजदूर कितने समय में उसको बना देंगे, यह हिसाब से तो बताया जा सकता है। किन्तु अमल में सम्भव नहीं है। ज्यादा होशियार और ज्यादा देर तक काम करने वाला इस तरह के बटाव (विभाजन) से मन में प्रसन्न न होगा, उसका सन्तोष समाप्त हो जायेगा और वह पृथक काम करने लगेगा ऐसा सदा के लिए करना सम्भव न हो सकेगा, कोई उदाहरण दीजिए जहां ऐसा करना संभव हुआ हो। चीन और रूस में यदि गरीब और अमीर होने को पूर्व जन्म कृत कर्मों का फल नहीं माना जाता है। तो इस फर्क का वे क्या कारण मानते हैं ? यदि वे यह मानते हैं कि लोगों की योग्यता बुद्धि व कार्य क्षमता में भेद है तो सवाल यह होगा कि इस भेद का क्या कारण है ? कोई न कोई मौलिक भेद उनके वश से बाहर का होगा।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

जब लड़का अपने पूर्व कृत कर्मों के अनुसार अन्धा पैदा होता है तो, बाप को दोषी क्यों बनाया जावे ? मनु ने क्यों उपदेश दिया है कि अनियमित कार्य नहीं करना चाहिये ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

बेटा अपने पूर्व जन्म कृत कर्मों से अन्धा बना और बाप अपने कर्मों से ऐसे बालक का बाप बना, मनु भगवान का उपदेश दोनों जन्मों के लिए है। कर्मफल हमेशा कर्म के बाद प्राप्त होता है। चाहे वे कर्म पूर्व जन्म के हों, या वर्तमान जन्म के हों। मनुष्य के कर्म इस प्रकार से नहीं होते हैं कि सब बुरे और अच्छे जुदा-जुदा किए गए हों। वे तो बहुधा अच्छे और बुरे का सम्मिश्रण होते हैं। भगवान इनमें, जिनमें फल के योग्य समझता है, उनका फल पहले देता है, शेष का पीछे।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

यदि कोई हिन्दू किसी कारण से ईसाई व मुसलमान हो जाता है तो यह धर्म परिवर्तन पूर्व जन्म कृत कर्मों के कारण माना जायेगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

ईसाई व मुसलमान आदि फ़िरके ईश्वर ने स्थापित् नहीं किये हैं, ये मानुषी रचना है, यदि कोई ईसाई यीशु में विश्वास लाने से यह समझें कि ईश्वर उसके गुनाह माफ कर देगा तो वह भूल करता है। इसी तरह मुसलमान भी यदि धर्म बदलने से या उनकी मिल्लत में शामिल होने से कोई मनमाना विशेष सांसारिक लाभ प्राप्त कर लें तो ये उसके पूर्व जन्म का फल होगा।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मानुषी राज्य व्यवस्था को आप ईश्वरीय व्यवस्था का ही रूप मानते हैं, तो बतावें कि, मानुषी राज्य व्यवस्था में जिस भांति अमुक-अमुक अपराध के भिन्न-भिन्न दण्ड नियत होते हैं वैसे ही ईश्वरीय व्यवस्था में भी है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

ईश्वरीय व्यवस्था में भी दण्ड भोगने का विधान निश्चित है, और अटल है। परन्तु मानुषी राज्य व्यवस्था से कुछ भिन्न है। केवल ईश्वर द्वारा शासन व्यवस्था मानी जावे और मानुषी न मानी जावे तो उस व्यवस्था में मजलूम (अन्याय पीड़ित) कोई न होगा परन्तु अन्याय अवश्य होगा। कर्म करने में जीव स्वतन्त्र होने से मजलूम इस लिए नहीं होगा कि वह ईश्वर की व्यवस्था से फल पा रहा है। चाहे किसी के द्वारा पा रहा हो। मानुषी राज्य का उद्देश्य यह है कि प्रजा में कम से कम पाप की प्रवृत्ति हो और ज्यादा से ज्यादा शुभ कर्म भी हों। इन्तजाम यदि अच्छा न हो तो इससे उल्टी व्यवस्था हो जायेगी। जैसी कि वर्तमान में अपने राज्य की व्यवस्था है। अन्यायी को यदि स्वतन्त्र होने से रोका नहीं जा सकता तो ईश्वरी शासन में अन्यायी बढ़ जायेंगे। इसलिए ईश्वरीय शासन के आधीन मानुषी शासन की ही जरूरत है।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आग की भट्टी पर खौलते हुए तेज पानी में मैला कपड़ा डाल देने से वह जल्द साफ सुथरा-मैल रहित हो जाता है, क्या इसी तरह ईश्वर की शरण में जाने से मनुष्य शुद्ध एवं पवित्र नहीं होगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

प्राकृतिक पदार्थों के लिए तो ये उदाहरण ठीक हो सकते हैं परन्तु मानसिक व आत्मिक के लिए ये ठीक नहीं हैं।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

सूर्य चन्द्रादि में कोई सबसे बड़ा है, और कोई सबसे छोटा है, सबका बनना एक साथ होना सम्भव नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जिस्म ब्रह्माण्ड का नक्शा है, जब जिस्म के तमाम अङ्ग एक साथ तैयार होते हैं, तथा हो सकते हैं, अंगुलियां छोटी-बड़ी होते हुए भी एक साथ बनती हैं, तो सूर्य चन्द्रादि का एक साथ बनना संभव क्यों नहीं ?

८. श्री गोपाल जी पत्रकार—

भूचाल आदि में हजारों लोग एक साथ गर्क हो जाते हैं, क्या सबका मरने का वहीं भोग होता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जैसे मुर्दे शरीर को खाने के लिए बिना सूचना पाये पचासों जीव पहुंच जाते हैं इसी प्रकार से समान फल भोग की वासना वाले जीव उस स्थान पर पहुंच जाते हैं।

९. श्री गोपाल जी पत्रकार—

राज्य व्यवस्था में अन्तिम न्यायाधीश जो दण्ड देता है, उसको भोगना ही पड़ता है, उससे बचने का उपाय अभियुक्त नहीं करता है। और न उसको बचने का कोई आदेश देता है। मगर ईश्वरी व्यवस्था में यह उल्टी व्यवस्था है, कि एक व्यक्ति को भोग में कोई असाध्य रोग परमात्मा ने दिया मगर उसको दवा करने का उपाय करने को भी उपदेश किया ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

कई रोग ऐसे होते हैं जिनके लिये वैद्यक शास्त्र व अनुभव भी यही कहता है कि वे असाध्य ही होते हैं। परन्तु वेद ने ऐसी अवस्था में औषधि के प्रयोग को मना नहीं किया, क्योंकि मनुष्य का अनुमान गलत भी हो सकता है। अन्तिम न्यायाधीश के द्वारा दण्ड भोग दिये हुए में कोई कमी नहीं होती, परन्तु कई बार ऐसा होता है कि, खास खुशी के मौके पर ऐसे क़ैदी आजाद भी कर दिए जाते हैं।

१०. श्री गोपालजी पत्रकार—

जैसे वृक्षों में जीव सुषुप्ति अवस्था में माना जाता है, वैसे ही यदि अणु और परमाणु में भी जीव मान लिया जाये तो आपको क्या आपत्ति है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी —

अगर आप यह मान लेंगे कि प्रत्येक अणु व परमाणु में भी जीव है। परन्तु सुषुप्तावस्था में है तो वहां से निकलना उनके लिए असम्भव हो जायेगा। और उनकी उन्नति रुक जायेगी। और यह अवस्था उनके लिए एक हमेशा की बाढ़ हो जायेगी, अतः अणु तथा परमाणु में जीव का मानना बुद्धि के विरुद्ध है।

११ श्री गोपाल जी पत्रकार—

मांस खाने से जब वर्जित करते हैं तो साग सब्जी खाने से क्यों नहीं मना करते ? जबकि साग-सब्जियों में भी जीव रहता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

रजा पहुंचाना, तरक्की से रोकना, जीवन के हक़ से महरूम करना, ये तीन दोष पशु आदि की हिंसा करने में नहीं होते। क्योंकि वे सुषुप्ति अवस्था में होने से दुःख का अनुभव नहीं करते। यदि हम आम-अमरूद आदि फल हिंसा समझ कर न खावें तो सड़ कर खाने के योग्य नहीं रहेंगे, इसके उपरान्त उनका कोई लाभ भी नहीं है। परन्तु यदि बकरे, भेड़ आदि की हिंसा न करें और उन्हें कायम रहने दें तो वे जिन्दा रहते हैं। इससे प्रतीत होता है कि ईश्वर की यही इच्छा है कि वे मारे न जावें। बल्कि उनके जीवन से लाभ उठाया जावे हरी-हरी साग सब्जियां यदि वैसी ही लगी छोड़ दी जावें तो वे सूख जायेंगी तथा अनुपयोगी हो जावेंगी। और उनका होना निष्फल हो जावेगा। भगवान की ओर से यह संकेत है कि इनको सुषुप्ति अवस्था में इसलिए रक्खा है कि इनको काटने-छांटने से कष्ट न हो और अपने किए हुए अन्त तमोगुणी कर्मों को धीरे-धीरे भोगते रहें, जब समय पाकर वे नष्ट हो जावें तो अपने अन्य कर्मों का फल भोगें।

१२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

वर्तमान समय में जबकि देश में ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, बौद्ध, जैन सभी धर्म के लोग निवास करते हैं। तब "वर्ण व्यवस्था" कैसे कायम कर सकते हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मनुष्य समाज में वर्ण व्यवस्था स्थापित् न करने पर या न होने पर भी चारों वर्ण के गुण, कर्म स्वभाव के लोग मिल जावेंगे। यदि आप इसकी परीक्षा करनी चाहें तो आपको ये सत्य प्रतीत होगा यदि आप वर्णों के नाम बदल दें तो मुसलमानादि को भी कोई आपत्ति न होगी। जैसे—१. शिक्षक को ब्राह्मण, २. रक्षक को क्षत्रिय, ३. पोषक को वैश्य, ४. सेवक को शूद्र।

प्रश्नोत्तर का सातवां पत्र

प्रश्न = ११-५-१९६५ ई०
उत्तर = २-६-१९६५ ई०

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

इस जन्म में आयु के घटन बढ़न को मानते हुए भोग साम्यावस्था में कैसे रहेगा ? इसको आपने स्पष्ट नहीं किया, कृपया स्पष्ट करें।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

स्वामी जी ने प्रारब्ध का जो लक्षण आर्योद्देश्यरत्नमाला में किया है उसके अनुसार प्रारब्ध को कम, ज्यादा होने वाली मैं नहीं मानता। इसलिए यदि सावधानी से बर्तने पर आयु बढ़ जावे तो जैसे एक सेर चीनी का शर्बत पानी के परिमाणानुसार मीठा और फ़ीका दोनों तरह का हो सकता है वैसे ही आयु के बढ़ जाने पर भोगों की अवस्था हो जाती है, अथवा हो सकती है।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय भोगों के परिमाण में घटन-बढ़न मानते हैं परन्तु आप परिमाण में घटन बढ़न नहीं मानते, आपके और उनके विचारों में विरोध कैसा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मान्य उपाध्याय जी भोगों के परिमाण में घटन-बढ़न मानते हैं, परन्तु मैं भोगों की Intensity सख्ती में घटन-बढ़न मानता हूं परिमाण में नहीं, इसलिए अविरुद्धकता है।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

गुरु गोविन्दसिंह के बच्चे दीवार में चुन दिये गये और उनकी मृत्यु हो गई, यदि उनकी मृत्यु किसी और कारण से हुई होती तो दोनों प्रकार में हुए कष्टों में अन्तर हुआ कि नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

गुरु गोविन्दसिंह के बच्चे दीवार में चिने जाने के समय जरूर बेहोश हो गये होंगे। मेरा शुरू से ऐसा ख्याल है, ऐसी अवस्था में होश का रहना सम्भव नहीं, "दर्द मिट जाता है, जब हद से गुजर जाता है"।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

परमात्मा तक पहुंचने का रास्ता क्या भिन्न हैं ? जैसे कहा जाता है कि "नदिया एक घाट बहुतेरे"। अन्यथा वह रास्ता क्या है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

यह दृष्टान्त सिमित स्थान व पदार्थों के लिए ही दिया जा सकता है। ईश्वर सर्वत्र है, इसलिए उसके पास पहुंचने के लिए एक ही तरीका है, अष्टांग योग से ही जीव, ईश्वर और अपने में जो ज्ञान की दूरी है उसे मिटाकर ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है। देश और काल की दूरी नहीं मानी गई।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

सृष्टि की आयु का प्रमाण वेद से देने का कष्ट करें।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

वेद प्रमाण— '**शतं तेऽयुतं हायनान द्वे युगे त्रीणी चत्वारी कृण्मः**" अर्थात् दस लाख तक बिन्दु रखने पर उनसे पूर्व २, ३, ४, क्रमशः रखने से सृष्टि की आयु ४३२००००००० वर्ष हो जाती है। अथर्व वेद—८-२-२१ का मन्त्र।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मुस्लिम धर्म पर चल कर क्या मुसलमान धर्मात्मा कहा जा सकता है ?'

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

सच्चाई व ईमानदारी से रहे तो वह मुस्लिम अधर्मी नहीं कहा जा सकता, परन्तु मुस्लिम बिरादरी में रहने से कुछ कालिमा अवश्य लगी रह जायेगी।

प्रश्नोत्तर का आठवां पत्र

प्रश्न = २४-६-६५
उत्तर = ८-११-६५

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

क्या मुक्तात्माओं के कर्म शेष रहते हैं जिनके कारण उनको पुनः लौट कर संसार में आना पड़ता है ?

शास्त्रकारों ने मुक्तात्माओं के पाप-पुण्यों का अत्यन्ताभाव कहा है, यदि स्वामी दयानन्द जी ने शेष कर्म माने हों तो उसके प्रमाण दें।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त २४, मन्त्र १ तथा २, इसी मन्त्र के भावार्थ में स्वामी जी लिखते हैं—**"अयमेव मुक्तानामदि जीवानाम् महाकल्पान्ते पाप पुण्य तुल्यतया मातरिपितरि च मनुष्य जन्म कारयतीति च"** सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में **"तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः"** इसके आधार पर यह प्रश्न किया है कि जो दुःख का अतयन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है, क्योंकि जब मिथ्या ज्ञान अविद्या लोभादि दोष, विषय, दुष्ट व्यसनों में प्रवृत्ति जन्म और दुःख का उत्तरोत्तर छूटने से पूर्व-पूर्व के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है, जो कि सदा बना रहता है। इस प्रश्न का उत्तर स्वामी जी ने निम्न प्रकार दिया है।

"यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही का नाम होवे जैसे **"अत्यन्तंदुःखमत्यन्तम् सुखं चास्यवर्त्तते"** बहुत दुःख व बहुत सुख इस मनुष्य को है, इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत दुःख व सुख है, इसी प्रकार यहां भी "अत्यन्त शब्द का अर्थ जानना चाहिये" जब अत्यन्त शब्द का अर्थ यहां अत्यन्ताभाव नहीं है। तो दुःख या सुख का शेष बचा रहना बहुत सम्भव है। उन्हीं दोनों के शेष रहने की सम्भावना; पाप-पुण्य की तुल्यता कही है। और जो मुक्ति से लौटाने व माता-पिता में जन्म कराने का कारण होते हैं।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

यदि मुक्तात्माओं के शेष कर्म न माने जायें तो तब भी उनको पुनः लौट कर संसार में जन्म लेना ही पड़ेगा, क्योंकि जीवात्मा का जन्म-मरण स्वाभाविक धर्म है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

नहीं, जीवात्मा का जन्म-मरण स्वाभाविक नहीं नैमेत्तिक धर्म है। स्वाभाविक धर्म कभी नष्ट नहीं होता इसलिए दो विरोधी धर्म स्वाभाविक नहीं हो सकते।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मुक्तात्माओं के शेष कर्म कैसे रह जाते हैं? स्पष्ट करें!

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

अतयन्त शब्द का अत्यन्ताभाव अर्थ न होना ही यह स्पष्ट कर देता है कि वे कर्म कैसे शेष रह जाते हैं?

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आपने मेरे एक प्रश्न के उत्तर में बताया था कि विश्वामित्र के हृदय में यज्ञ रक्षार्थ राम और लक्ष्मण को बुलाने की प्रेरणा ईश्वर ने ही दी थी, ऐसी स्थिति में क्या मैं यह भी मान लूं कि एक आदमी ने किसी का कतल किया, कतल करने की प्रेरणा ईश्वर ने ही उसके हृदय में की थी ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

ईश्वर द्वारा पैदा करना व नहीं भी करना दोनों सम्भव है। कभी-कभी कातिल अपने इस काम में नाकामयाब भी होता है, इससे प्रकट होता है कि कतल करने की प्रेरणा ईश्वर की ओर से नहीं होती।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

किसी व्यक्ति ने एक स्त्री का शील भंग किया, यदि वह व्यक्ति शील भंग न करता तो यह शील भंग किसी और के द्वारा हो सकता था ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

सामाजिक नियमों का उल्लंघन ही शील के नष्ट होने का आधार है। स्त्री व पुरुष का दाम्पत्य सम्बन्ध यदि निम्न तीन बातों में से किसी एक के बगैर भी हुआ हो जब कि तीनों बातों का होना आवश्यक है तो वह सम्बन्ध—पाप, व्यभिचार या शील भंग हैं। (१) शास्त्र की पाबन्दी के बिना। (२) खानदान की तमीज के बिना। (३) बड़े-बूढ़ों की उपस्थिति के बिना। अर्थात्—बिना धर्मशास्त्र के आधार पर, मां, बहिन बेटी की तमीज के बिना व गवाहों की अनुपस्थिति में जो सम्बन्ध होगा वह अवैध सम्बन्ध होगा। इन तीनों चीजों की मदद से पति-पत्नी को अपने-अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए आबद्ध किया जाता है।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

प्रश्न प्रयास करने पर भी पढ़ा नहीं जा सका, मूल कापी पर लेख अदृश्य हो चुका है। (सम्पादक)

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मूल अपरिवर्तन शील रहेगा, रूप में भेद हो सकता है।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

श्री शंकराचार्य जी को आप आप्त पुरुष क्यों नहीं मानते हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

इसलिए कि उन्होंने विरोधियों के प्रभाव के कारण अपने वैदिक मन्तव्य में देश-काल के प्रभाव से परिवर्तन कर लिया था। मिसाल के तौर पर सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास में लिखा है कि अनुमान है कि, शंकराचार्य आदि ने तो जैन मत के खन्डन करने ही के लिए यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश-काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए बहुत से स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध भी कर लेते हैं। यह परिवर्तन आप्तत्व का बाधक है। और जो इन बातों को अर्थात जीव-ईश्वर की एकता, जगत मिथ्या, ··· यह प्रसंग सत्यार्थ प्रकाश में इस वाक्य से आगे पढ़ लेवें।

८. श्री गोपाल पत्रकार—

वैदिक भाषा देव वाणी है इसका क्या प्रमाण है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

वैदिक भाषा मानवीय भाषा नहीं है, यह देव वाणी है। वेद का यह प्रमाण देखिये—"**पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति**" वैदिक भाषा का एक-एक अक्षर अपना अर्थ रखता है। एकाक्षरी कोष इसका प्रमाण है उसे देखिये।

९. श्री गोपाल जी पत्रकार—

सैंकड़ों देश भक्त मातृभूमि की आजादी के लिए नाना प्रकार से प्रताडित किये गये। फांसी पर भी लटकाये गये; उनका प्रताडित होना और फांसी पाना उनके पूर्व जन्म कृत कर्मों का फल है, या और भी कोई कारण है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

दुःख तो पाप कर्मों का है परन्तु इससे संलग्न यश, सारे देश पर न्योछावर होने से प्राप्त हुआ है।

१०. श्री गोपाल जी पत्रकार—

रिश्वत देकर कार्य बना लेना अच्छा है या रिश्वत न देकर काम का बिगड़ना अच्छा है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

एक को तो लाभ अवश्य होगा, जो सामयिक होगा, किन्तु सैंकड़ों को हानी, क्योंकि उस व्यक्ति की,—कि जो पैसा लेता है उसकी यह आदत बन जायेगी। आपने तो अपनी इच्छा व सामर्थ्य से पैसा दिया है, किन्तु पैसा

लेने का स्वभाव बन जाने पर वह अपनी इच्छानुसार सामर्थ्य या असामर्थ्य का बिना विचार किये मनमानी करेगा और पैसा वसूल करेगा ।

११. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम के अलावा और कोई उपाय है या नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

अन्य कोई उपाय नहीं है, इतना जरूर है कि ध्यान को सिद्ध करने के लिए किसी अतयन्त प्यारी वस्तु का विचार करने से मन को ध्यान करने का अभ्यास हो सकता है ।

१२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

बकरी पालना कोई बुरा नहीं है। मगर उसके बच्चे (बकरे) को बूचड़ के हाथ बेचने पड़ते हैं; ऐसी हालत में बकरी पालना कहां तक उचित होगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

प्राचीन काल में किसान भेड़-बकरी वालों को अपने खाली खेतों में ठहराने के लिए विशेष आमन्त्रण व कुछ मुआवजा भी देते थे। क्योंकि उनका मल-मूत्र खेतों के लिए बडा लाभकारी होता था। वेद में "**गामा हिंसी अंजामाहिंसी**" गाय व बकरियों के न मारने के लिए लिखा है। इसलिए हमें इनसे स्वयं सोच विचार कर कोई कार्य लेना चाहिये न कि मार डालना या खा जाना चाहिये ।

प्रश्नोत्तर का नौवां पत्र

प्रश्न=२२-४-६६
उत्तर=१-५-६६

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मोहन ने किसी स्त्री के साथ बलात्कार किया, क्या इसमें ईश्वरीय प्रेरणा मानी जा सकती है ? यदि बलात्कार में मोहन को सफलता न मिली होती तो उस स्त्री को यह भोग कैसे मिलता ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

किसी-किसी अवस्था में प्रेरणा ईश्वर की ओर से भी मानी जा सकती है। किसी और तरीके से भी उसी पैमाने के अपमान का भागी हो सकता है ।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य में लाखों कीटाणु होते हैं, उनमें जो शक्तिशाली कीटाणु होते हैं, वे अपने से सभी दुर्बल कीटाणुओं को खा जाते हैं। वह शक्तिशाली कीटाणु ही शरीर धारण कर लेते हैं। अन्य कोई जीव बाहर से नहीं आते हैं!

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

लाखों कीटाणुओं को मैं परमाणु मानता हूं जो स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य रूप होते हैं, या उनमें होते हैं, और वे रहते ही हैं, यदि यह सत्य है कि, शक्तिशाली कीटाणु अन्य सब कीटाणुओं को खा जाते हैं, और शेष स्त्री-पुरुष का शरीर धारण करते हैं, परन्तु जवानी में आपस के समागम के पश्चात भी जब हमेशा गर्भ नहीं रहता तो ऐसी अवस्था में वे कीटाणु कैसे नष्ट होते होंगे या किस अवस्था में रहते होंगे?

३. श्री गोपालजी पत्रकार—

मुर्गी और बत्तख एक साथ मिलते देखे गये हैं, दोनों के मेल से मुर्गी या बत्तख पैदा होंगे!

श्री पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी—

समान प्रसवात्मिका जातिः अर्थात् समान प्रसव वाले ही समान जाति के होते हैं, चाहे बाहरी रूपरंग व ढंग में फर्क हो। उनमें समान जातित्व है तो आपने मुर्गी और बत्तख के मेल से किस-किस किस्म के बच्चे पैदा होते देखे हैं? अगर उन बच्चों में नर और मादा के मेल से वैसी ही औलाद पैदा होती है, तो समझ लें कि, वे समान जाति के हैं, और उनसे आगे भी वैसी ही औलाद पैदा हो सकती है। परन्तु गधे व घोड़ी के मेल से खच्चर ही पैदा होंगे जिनसे आगे कोई सन्तान पैदा न होगी।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

स्वामी दयानन्द जी महाराज योग सिद्ध पुरुष थे। उनकी मौत जगन्नाथ नामक ब्राह्मण द्वारा विष पिलाने से होगी, यह स्वामी जी ने पहले से ही क्यों नहीं जान लिया?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

उस समय शायद समाधि अवस्था में न होंगे।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

चन्द्र लोक और सूर्य लोक में भी क्या आदमी, पशु, पक्षियां निवास करते होंगे? क्या यहां के आदमियों से वहां के आदमियों का मेल हो सकता है?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आठ वसुओं में चन्द्र भी एक वसु है। सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में स्पष्ट लिखा है—"**ये आठ वसु ये हैं, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र ये सब सृष्टि के निवास स्थान होने से ये आठ वसु हैं**" वहां भी पैदायश में यहां की अपेक्षा कुछ आकृति-प्रकृति में भेद हो सकता है। मूल में नहीं हो सकता।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

यदि अपनी पत्नी या लड़का दुश्चरित्र हो जाये तो क्या उनको घर से निकाल देना चाहिये या उसके रखने का और भी कोई तरीका है !

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जहां तक सम्भव हो बुराई से बचाकर घर में ही रहने दिया जाये, अन्य सदस्यों पर उसके बुरे प्रभाव का ध्यान रक्खें, यदि कोई सम्भव प्रकार बन सके तो सरकारी रिफोरमैटरी (Reformatory) "सुधारगृह" में दाखिल करा दिया जाये।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

क्या स्त्रियों को राजनीति में भाग लेना उचित है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मुख्य तो गृह कार्य ही है, उसमें रहते हुए भी सन्तान में राजनीति की रुचि पैदा की जा सकती है। तथा साथ-साथ घर का प्रबन्ध भी सुचारु रूप से होता रहेगा। मैं स्त्रियों के राजनीति में भाग लेने के मैं अविरुद्ध हूं।

८. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मैं अधिकांश देखता हूं कि, कुछ लोग बकरियां पाल लेते हैं ! मगर उनके जो बच्चे पैदा होते हैं, उनको बूचड़ों के हाथ बेच देते हैं, क्योंकि बकरे से कोई काम नहीं लिया जा सकता, ऐसी हालत में बूचड़ों के हाथ बकरों को बेचने से कोई पाप होता है या नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जब बूचड़ों के हाथ बेचने से जीवन का नाश होना निश्चित है, तो पाप भी होना निश्चित है, जब कि वेद में लिखा है—"**अजां मा हिंसि, गां मा हिंसि**" अपनी शक्ति से बाहर बकरों के पालन-पोषण से तंग आकर यदि उन्हें बूचड़ों के हाथ बेच दिया जाय तो ये मजबूरी का पाप होगा। जो कि किसी कदर हल्का है। सुना है कि पहाड़ों में खेती के काम में इनसे मदद ली जा सकती है। इनका मल-मूत्र भी खेती की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करता है।

साईकल आदि बच्चों की गाड़ियों की अपेक्षा इनकी गाड़ी बनाई जा सकती है। इनसे अन्य भी कई प्रकार का काम लिया जा सकता है।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

रिश्वत देने से लाभ होता है, और न देने से नुकसान भी उठाना पड़ता है, ऐसी हालत में रिश्वत देकर लाभ उठाना उचित हैं या न देकर नुकसान उठाना उचित होगा ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

अगर रिश्वत देने से आपका काम बनता है, और अन्य किसी का काम नहीं बिगड़ता तो रिश्वत देना कम बुरा है। कम बुरा भी यूं है कि रिश्वत लेने वाले की आदत खराब हो जायेगी। और वह उसकी प्राप्ति के लिए (आपको हानि वाले कार्य पर) भी तंग कर सकता है।

१०. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आर्य समाज राजनीति में भाग लेने से क्यों कतराती है ? क्या केवल वार्षिक जलसे करके हम समाज और राज्य व्यवस्था ठीक कर सकते हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

सामूहिक रूप से राजनीति में नहीं जाना चाहिये। आर्य समाज के आधीन राज्य सभा की स्थापना करके उसके द्वारा कार्य करना चाहिये।

११. श्री गोपाल जी पत्रकार—

क्या कुरान शरीफ में पुर्नजन्म माना गया है ? क्या इसके लिए कुरान में कोई प्रमाण भी हैं ? मांस खाना कुरान के मुताबिक जायज है या नाजायज ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

प्रमाण हैं ! परन्तु उसमें प्रतिकूल तर्क की भी गुंजाइश है। कुरान में मांस खाना मना नहीं है, परन्तु आवश्यक भी नहीं है।

१२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

कुरान शरीफ में वैदिक धर्म के समतूल्य नारियों को आदर दिया गया है या नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

वैदिक धर्म के समतुल्य देवियों का आदर कुरान में नहीं है।

नोट—

मूल कापी अति जीर्ण-शीर्ण होने के कारण प्रयास करने के बावजूद भी प्रश्न नहीं पढ़े जा सके, उत्तर नीचे दिये जाते हैं, जो पूज्य देहलवी जी द्वारा ही दिये गये हैं। (प्रश्न संख्या १३ से १६)

निवेदक—

"लाजपत राय अग्रवाल"

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

(१३)—चन्द्रादि लोकों में जीव मानने में कोई आपत्ति न होगी। यदि वेद इसका बाधक न हो। (१४)—सूर्य पर जीव सम्भव हैं, जब कि पानी में मछली आदि जीवित रह सकती है जहां मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। (१५)—जो वर्तमान जन्म में ईमानदारी से कार्य करते हैं, उनकी इस सम्बन्ध में प्रसिद्धि तो अवश्य रूप से हो जाती है, परन्तु साथ-साथ उनमें दुःख सहन करने की सामर्थ्य भी होती है, जो पिछले कर्म का फल है। साहस भी बढ़ जाता है वे घबराते नहीं हैं क्योंकि जो प्रतिष्ठा उन्होंने पाई है उसे दाग लगने की सम्भावना है। इसलिए पूर्व जन्म कृत बुरे कर्मों को दृढ़ता से भोगते हुए शुभ कर्म करते रहते हैं। ऐसे धैर्य से कर्म फल भोगते हुए भी वे जनता की प्रशंसा के पात्र ही बने रहते हैं। ऐसे समय को प्रभु कर्मफल भुगवाने के लिए उपयुक्त समझता है जो कि उनकी प्रसिद्धि में और भी इजाफा करता है। (१६)—क्षमा—सुधार करते हुए बिना बदले के तरक्की की भावना, जैसे माता-पिता की बच्चों के प्रति होती है।

१७. गोपाल जी पत्रकार—

किसी गुण्डे से आपका मुकाबला पड़ जाय, और वह आपका सामान छीनना चाहता है तो आप क्या करेंगे? सामान देकर जान बचाना पसन्द करेंगे या जूझ कर जान देना पसन्द करेंगे?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मौका जैसा तकाज़ा करेगा, वही करूंगा, निश्चित कुछ नहीं कह सकता, व्यर्थ डींग हांकने या कमजोरी की बात कहने का कोई लाभ नहीं है।

प्रश्नोत्तर का दसवां पत्र

प्रश्न=२९-६-६६
उत्तर=२-७-६६

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

"ना धर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव। शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥ यदि नात्मनि

पुत्रेषु न चेत्पुत्रेषु नप्तृषु । न त्वे वन्तु कृतोऽधर्मः कर्तुर्भवति निष्फलः ॥ (संस्कारविधि गृहस्थाश्रम प्रकरण) इसका अर्थ करते हुए महात्मा प्रभु आश्रित जी ने बताया है कि यदि पाप का फल पापी को नहीं मिलता तो उसके पुत्र तथा पौत्रों को अवश्य मिलेगा, क्योंकि किया हुआ कर्म निष्फल नहीं जाता । इसमें शंका यह है कि—"जब अन्य के किये हुए कर्मों का फल अन्य को नहीं मिलता तो पिता के पाप का फल उसके पुत्र और पौत्र को क्यों मिलेगा" ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

पापी को अपने पाप का फल स्वयं ही भोगना पड़ता है न कि, उसके पुत्र या पौत्र को ! क्योंकि उनमें वह पापी आत्मा वास नहीं करती ।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

क्या पिता मर कर अपने पुत्र के शरीर में जन्म ले सकता है ? पौत्र के शरीर में तो वह जन्म ले सकता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

किन्तु यह सम्भावना है कि, वह पापी आत्मा पौत्र या पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर अपने कर्मों का फल भोगे । यहां आपको जो संशय है, वह पुत्र के रूप में कर्मों का फल भोगने पर ही है तो यह भी यों सम्भव हो सकता है कि उसका वीर्य स्वास्थ्य विभाग द्वारा संरक्षित कर लिया गया । उसकी मृत्यु हो गई । तदनन्तर कृत्रिम गर्भाधान से पुत्र की उत्पत्ति की जा सकती है । यह तो आपकी मान्यताओं के आधार पर उत्तर हुआ, किन्तु शास्त्रकार के अनुसार पुत्र या पौत्र के रूप में नहीं, बल्कि इनके समय में अर्थात् दो पीढ़ियों के अन्दर-अन्दर वह पापी आत्मा अपने कर्मों का फल अवश्य भोग लेता है । (देखिये संस्कार विधि पृष्ठ २३८ पर इसका भावार्थ) ॥

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

वेद जिस लिपि (अक्षर) में लिखा गया है, वह ईश्वर कृत है या मनुष्य कृत ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

चारों वेद जिन अक्षरों व शब्दों में जैसे आज पढ़े जाते हैं, उसी प्रकार वे ईश्वर द्वारा प्रकट किये गये हैं । ऋषियों ने अपनी ओर से कोई कल्पना नहीं की है । लिपि परिवर्तित हो सकती है किन्तु शब्द व अक्षर नहीं । पिछले समय में लिपि परिवर्तित हुई हों या भविष्य में परिवर्तन सम्भव है ।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

रिश्वत न देने पर क्या मेरा कार्य बिगड़ सकता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

बिगड़ना सम्भव है, परन्तु जरूरी नहीं।

५. श्री गोपालजी पत्रकार—

जब बनना और बिगड़ना भोगानुसार होता है। तब रिश्वत देने की क्या अवश्यकता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

किसी कार्य का बनना या बिगड़ना भोगानुसार होता है। और उससे दुःख-सुख होता है। अतः आपके भोगानुसार जो दुःख-सुख होना अनिवार्य है, उसमें ईश्वर बाधक नहीं बनता।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

धन और जायदाद जब पूर्व जन्मों के कर्मों का फल हो सकता है तो सन्तान की उत्पत्ति पूर्व जन्म के कर्मों का फल क्यों नहीं ? क्योंकि सन्तान भी तो धन होता है !

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

सन्तान की उत्पत्ति के सम्बन्ध में आपने जो प्रश्न किया है उस सम्बन्ध में मेरा पहिला उत्तर कृपया उद्धृत कीजियेगा तभी संगतिपूर्वक उत्तर दिया जा सकता है।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मैंने सुना है कि श्री ओम प्रकाश जी शास्त्री (खतौली निवासी) का आपसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, वह वृक्षों में जीव का होना नहीं मानते। वह आपके तर्कों और सबूतों से संतुष्ट क्यों नहीं हुए ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मेरा यह निश्चिन्त मत है कि "**वृक्षों में जीव है**" मेरे उत्तरों या तर्कों से श्री ओ३म् प्रकाश जी शास्त्री का सन्तुष्ट न होना सम्भव है। या यह भी सम्भव है कि वे हमारी बातों को न समझ पाये हों। या मैं उन्हें समझाने में असमर्थ रहा हूं।

विशेष द्रष्टव्य

यह चित्र जो आगे दिये जाते हैं वह मूल प्रतियों की हस्तलिखित कापी का ब्लाक है। ताकि पुराने शास्त्रार्थ महारथियों के लेख व हस्ताक्षर भी हम लोग स्मरण करते रहें—इसलिए ग्यारहवें प्रश्नोत्तर पत्र के नमूने मात्र चित्र यहां दिये जाते हैं। **"सम्पादक"**

ओ३म्

[illegible]
10-7-86

प्रश्न

1. आपने मेरे प्रश्न के उत्तर में 1-2-86 में बताया है कि यदि रिश्वत देने से अपना काम बनता है और किसी अन्य का बिगड़ता नहीं है तो रिश्वत देना कम बुरा है।
   इससे स्पष्ट होता है कि आप रिश्वत देना स्वीकार करते हैं।

2. इसी प्रसंग में दूसरे स्थान पर आपने बताया है कि रिश्वत न देने से काम का बिगड़ना संभव है जरूरी नहीं। फिर आपने बताया है कि किसी कार्य का बनना या बिगड़ना [illegible] है।
   ऐसी असमंजस की बात कहकर दिखलाया है कि आप रिश्वत देने के लिए एक प्रकार से प्रेरित करते हैं।

3. मेरे एक प्रश्न के उत्तर में आपने बताया है कि संतान की उत्पत्ति किसी पिछले जन्म के कर्म के कारण नहीं। यदि स्त्री पुरुष दोनों शरीर से नीरोग हों और समर्थ हों तो संतान उत्पन्न होगी।
   इस उत्तर को आप तो और प्राचीन के विचारों नहीं मानते हैं। धनिक और गरीब होना पूर्वजन्म और वर्तमान जन्म दोनों के कर्मों का फल क्यों नहीं मानते?

4. संतान और सम्पत्ति होने को आपने वर्तमान के कर्मों का फल माना है किन्तु देखा जाता है कि कितने ही स्वस्थ स्त्री पुरुष संतानहीन हैं और कितने ही परिश्रमी गरीब हैं। इससे पता लगता है कि इसका कारण पूर्वजन्म के कर्म हैं।

5. पिता की अर्जित सम्पत्ति में पुत्र को हकदार क्यों माना जाता जबकि बाप की ~~[illegible]~~ आत्मा पुत्र में नहीं है और न उस कमाई में पुत्र का हाथ ही है।

6. बाप कर्ज लेकर जुआ खेल जाता और मर जाता तो पुत्र उस कर्ज को क्यों चुकाये जब कि पुत्र में पिता की आत्मा नहीं है!

7. कृत्रिम गर्भाधान द्वारा पुत्र के शरीर में पिता की आत्मा आ जाती है तो क्या नियोग से पुत्र में उसके पिता की आत्मा नहीं आती है?

8. कृत्रिम गर्भाधान से उत्पन्न पुत्र का उदाहरण कहीं इतिहास में मिलता है?

9. राजा द्वारा पीड़ित प्रजा को जो दुःख होता है वह राजा के कर्मों का फल है या वह उसके पूर्वकर्मों का फल है?

10. अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ये नाम व्यक्तिवाचक हैं या जातिवाचक हैं?

११- क्या आदि सृष्टि में चारों वेदों का ज्ञान चार ऋषियों को ही हुआ था या अनेक ऋषियों को हुआ?

भवदीय—
गोपालशास्त्री
मुफ्तीपुर, गोरखपुर
११-१०-३९ ई०

नोट—

यह प्रश्नोत्तर अलग-अलग थे, अर्थात् प्रश्नों के पत्र अलग तथा उत्तरों के पत्र अलग, हमने उनको क्रमानुसार कर दिया है। ताकि प्रश्न के साथ ही वहीं पर पाठकों को उत्तर भी पढ़ने को मिल जावें।

"सम्पादक"

सत्यमेव जयते नानृतम्

TRUTH ALONE TRIUMPHS NOT FICTION.

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः॥

रामचन्द्र देहलवी
आर्योपदेशक
आर्यनगर हापुड़
आर्यसमाज मंदिर
बाजार सीताराम
दिल्ली

हापुड़
दिल्ली

तिथि......१७ जुलाई ६६......१६५

आदरणीय

श्री गोपाल जी

सादर नमस्ते:-

आपका श्री देहलवी जी के नाम भेजा हुआ पत्र मिला। उन्हें लिखने में कष्ट होता है अतः उन्होंने मुझसे आपके प्रश्नो का उत्तर दिलवाया है। आपने अब की बार जो प्रश्न किए हैं वे काफी जटिल हैं। किन्तु फिर भी यथाशीघ्र सोचकर बुद्ध्यनुसार व वेद सम्मत उत्तर आपकी सेवा मे प्रेषित हैं।

१, रिश्वत देना एक सामाजिक बुराई है। यह हमेशा बुराई ही रहेगी। लोग इसे अनिवार्य बुराई कहते हैं अर्थात् वे इसे बुराई तो मानते हैं किन्तु स्वार्थवश करते हैं (बुराई)। जैसे लोग सिगरेट बीड़ी पीना बुरा तो समझते हैं किन्तु फिर भी पीते हैं।

दूसरो को हानि न पहुचाकर अपना काम रिश्वत देकर पूरा करा लेना कम बुरा है किन्तु बुरा अवश्य है क्योंकि इससे पैसे लेकर ही किसी का काम करने का स्वभाव बन जायगा जो जनहित मे नही है।

२, रिश्वत देने को जब मैं बुरा या कम बुरा कहता हूँ तो इससे यह अर्थ नहीं निकलता है कि आप रिश्वत दें। या इससे रिश्वत देने की मैं आपको प्रेरणा नहीं कर रहा हूँ। बल्कि मैंने दो अवस्थाओं का बयान किया है।

३. सन्तान को पूर्वजन्म का फल भी माना जा सकता है।

४. 'शारीरिक अपेक्षा से नीरोग' — यह केवल आप अनके व्यक्तित्व से ही अनुमान कर रहे हैं इसमें डॉक्टर की राय शामिल नहीं है। डॉक्टर या शरीर विज्ञान की दृष्टि से नीरोग स्त्री पुरुषों को अवश्य सन्तान होगी।

सन्तान जहाँ हमारे वर्तमान कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त होती है वहाँ उस बच्चे के पूर्व कर्मों का भी तो प्रभाव पिछला ही है जिसके अनुसार उसका जन्म होता है किन्तु वह (बालक का जन्म) स्त्री पुरुषों के वर्तमान कर्मों के फलस्वरूप ही सम्भव है अर्थात् सन्तानार्थ जब वे उस प्रकार की चेष्टा करेंगे तभी सन्तान उत्पन्न होगी यदि बगैर उनकी चेष्टा के सन्तान उत्पन्न होने लगी तो परेशानी पैदा हो जायगी। इस प्रकार सन्तान पूर्व व वर्तमान कर्मों के फलस्वरूप मिलती है।

धन के बारे में भी यही है। इसका भी कुछ न कुछ सम्बन्ध मनुष्य के पूर्व कर्मों से अवश्य ही होता है।

(५-६) पूर्व कर्मानुसार वह बाप की कमाई का साझीदार बन रहा है।

७. नियोगज पुत्र में कौन से पिता की आत्मा? नियोगज पिता की या पूर्व पिता की?

८. इतिहास का ज्ञान मुझे नहीं है किन्तु जीवविज्ञान की पुस्तकों में है। रूस इस प्रकार के परीक्षणों में संलग्न है। शायद 1967 में आपको यह भी समाचार पढ़ने को मिले कि मां के पेट से बाहर एक जार में बच्चा पैदा किया गया।

९. प्रजा को राजा के द्वारा अपने कर्मों का (पूर्व कर्मों का) फल भोगना पड़ता है न कि राजा द्वारा किए गए कर्मों का।

सत्यमेव जयते नानृतम्
TRUTH ALONE TRIUMPHS NOT FICTION.

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः ॥

रामचन्द्र देहलवी
आर्योपदेशक

आर्यनगर हापुड़ | आर्यसमाज मंदिर बाजार सीताराम दिल्ली

हापुड़ दिल्ली तिथि १६५

१०, ये नाम गुणवाचक हैं व्यक्तिवाचक या जातिवाचक नहीं।

११, ~~ऋषि~~ महर्षि दयानन्द जी महाराज के मतानुसार वे केवल चार ऋषि हैं जिन ~~को~~ को वेदों का ज्ञान हुआ।

भवदीय
(हस्ताक्षर)

कृते रामचन्द्र देहलवी
हापुड़

नोट—

यह उपरोक्त हस्ताक्षर श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी जी के हैं, माननीय देहलवी जी का हस्त लेख बहुत ही साफ था, एवं शैली का तो कहना ही क्या ?

"सम्पादक"

प्रश्नोत्तर का बारहवां पत्र

प्रश्न = १६-७-६६
उत्तर = २४-७-६६

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

धनिक और गरीब होना पूर्व जन्म और वर्तमान जन्म दोनों के कर्मों का फल आप मानते हैं। वर्तमान जन्म के कर्मों का फल मैं नहीं मानता हूं। क्योंकि फल मानने पर इस जन्म के भोगों में वृद्धि माननी पड़ेगी।

मोहन और सोहन दो भाई हैं, बाप के मरने के बाद घर में जो धन था दोनों में समान रूप से बंटवारा हो गया, कुछ दिन के बाद मोहन लखपति हो गया, और सोहन प्रयत्न करने के बावजूद भी जैसा का तैसा ही रहा, सोहन पूर्व जन्म के भोगानुसार गरीब से मालदार नहीं बन सका। वर्तमान जन्म में प्रयत्न किया, मालदार हो जाना चाहिये था ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मालदार होने का कारण पूर्व जन्म या वर्तमान जन्म ? आप इस संसार में देखते हैं कि, कुछ लोग प्रयत्न करने पर भी गरीब बने हुए हैं। और कुछ बिना प्रयत्न किये भी धनी हैं, या एक ही रात में गरीब से अमीर या अमीर से गरीब हो जाते हैं तो ऐसी स्थिति में पूर्व जन्म के कर्मों का प्रभाव मानना चाहिये किन्तु प्रयत्नपूर्वक जो मनवांछित फल मिलता है, उसे इस जन्म के कर्म का ही फल मानना उपयुक्त व बुद्धि सम्मत है, यदि ऐसा न माना जायेगा तो लोग अकर्मण्य हो जायेंगे। भाग्य के भरोसे ही बैठे रहेंगे, प्रयत्न करने पर भी यदि सफलता नहीं मिलती तो अवश्य वहां पूर्व कर्मों का प्रभाव है। आपने अपने पत्र में मोहन व सोहन की जो घटना लिखी है। उसमें मोहन का धनी बन जाना वर्त्तमान कर्म का फल है। क्योंकि वह प्रयत्नपूर्वक ऐसा कर सका है, जब कि सोहन के जीवन में पूर्व कर्म का इतना प्रभाव है, कि वह प्रयत्न करने पर भी अपनी व्यवस्था नहीं सुधार सका है।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

वेद आज जिस लिपि में लिखा हुआ है, वह लिपि ऋषियों की कल्पित है या ईश्वरीय है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

वेद की लिपि ऋषियों की अपनी कल्पना है, ईश्वर की देन नहीं हैं, क्योंकि आरम्भ में वेद कंठस्थ किये गये थे। वे परम्परा से कंठस्थ ही किये जाते रहे। वे महाराजा इक्ष्वाकु के काल में लिखे गये हैं।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

देश में बहुत सी राजनैतिक पार्टियां है, आप किस पार्टी का समर्थन करते हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

मैं पूर्णरूपेण किसी भी राजनैतिक पार्टी का समर्थक नहीं हूं। इसीलिए मैं किसी पार्टी में सम्मिलित नहीं हूं।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आप अस्वस्थ रहते हैं। प्रश्नों का उत्तर लिखने एवं लिखवाने में कष्ट का एहसास करते हों तो मैं अपने प्रश्नों को भेज कर आपको कष्ट दूं, जरा अच्छा नहीं लगता। इस बारे में आप क्या कहते हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आपके प्रश्नों की मैं आतुरता से प्रतीक्षा करता रहता हूं उनके उत्तर देने में मुझे मानसिक शान्ति मिलती है। मैं आपके प्रश्नों के क्रम से दुखी नहीं हूं। यह आपका कहना बिल्कुल सही ही है कि, मुझे पत्र लिखने में अपनी शारीरिक अवस्था के कारण कष्ट होता है।

प्रश्नोत्तर का तेरहवां (अन्तिम) पत्र

प्रश्न =६-१०-६६
उत्तर=१२-११-६६

१. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आपका कथन है कि मुक्तात्मा आदि सृष्टि में अर्थात् अमैथुनी सृष्टि में ही जन्म लेता है। सृष्टि के मध्य या अन्त में नहीं। किन्तु ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के ९ वें समुल्लास में ऋग्वेद १-२४-२ का उद्धरण देकर बताया है कि हम इस स्वप्रकाश स्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें, जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगवा कर पृथ्वी में पुनः माता-पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता-पिता का दर्शन कराता है। इससे स्पष्ट होता है कि परमात्मा मुक्त जीवों को भी मुक्ति की समाप्ति पर माता-पिता के संयोग से सृष्टि के नितान्त आदि में अमैथुनी सृष्टि में नहीं प्रत्युत मैथुनी सृष्टि में ही जन्म देता है। स्वामी दयानन्द जी के विचारों से आपका विचार क्यों भिन्न है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि द्वारा उत्पन्न होकर फिर माता-पिता को प्राप्त करता है। माता-पिता का दर्शन उसको अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होने के बाद ही होता है। आदि सृष्टि में अमैथुनी उत्पत्ति ही होती है। स्वामी जी के लेख व मेरे कथन में विरोध नहीं है।

२. श्री गोपाल जी पत्रकार—

स्वामी दयानन्द जी ने आर्य प्रश्नोत्तरी पृष्ठ ४, प्रश्नोत्तर ३० की समीक्षा करते हुए एक वृक्ष में अनेक जीव माने हैं। और तर्क दिया है कि यदि अनेक जीव न होते तो वृक्ष की जिस डाली को काट कर लगाते हैं, उसमें जीव कहां से आ जाता है ? किन्तु आपका कथन है कि एक वृक्ष में एक ही स्वाभिमानी जीव होता है। यहां भी आपके विचार स्वामी जी के विचार से भिन्न क्यों हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

वृक्षों में दो प्रकार के जीव होते हैं, **"अभिमानी जीव"** व **"अनुशायी जीव"** एक वृक्ष में अभिमानी जीव एक ही होता है, वही कर्मों का फल भोगता रहता है। अनुशायी जीवों के जब कर्म पक जाते हैं तब वह कर्म फल कहीं और जाकर भोगते हैं। स्वामी जी ने अभिमानी जीवों का एक वृक्ष में कई का होना नहीं लिखा है। अतः यहां भी कोई भेद नहीं है।

३. श्री गोपाल जी पत्रकार—

वर्तमान समय में प्रयत्न करने पर जो मनवांछित फल मिलता है, उसका उपभोग इस जन्म में होगा या अगले जन्म में ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

दोनों जन्मों में सम्भव है।

४. श्री गोपाल जी पत्रकार—

यदि उसका उपभोग इसी जन्म में होगा तो पूर्व जन्म कृत कर्मों के फल भोग में वृद्धि होगी या नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

पिछले कर्मों के भोग में कोई वृद्धि नहीं होती, हां कर्म फल में वृद्धि आप कहें तो अधिक उपयुक्त होगा।

५. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आपने बताया है कि आयु बढ़ सकती है, किन्तु भोग नहीं बढ़ सकता, जैसे एक सेर चीनी का शर्बत पानी के परिमाणानुसार—मीठा और फ़ीका दोनों तरह का हो सकता है, क्या प्रयत्न करके चीनी की मात्रा बढ़ाई नहीं जा सकती है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

भोगों का भोगना ईश्वरीय व्यवस्थाधीन है, किन्तु शरीर का प्रयोग हमारे ऊपर आश्रित है, चाहे अच्छी प्रकार अपने शरीर का प्रयोग करें या लापरवाही से ! शरीर की देखभाल से वह लम्बे समय तक चल सकता है। इस प्रकार आयु बढ़ सकती है। किन्तु ईश्वरीय व्यवस्था में हम कोई व्यतिक्रम नहीं डाल सकते। अत: भोग कम या अधिक नहीं होते।

६. श्री गोपाल जी पत्रकार—

बिना बच्चा पैदा किये भी गाय को दूध देते देखा गया है, क्या यह प्राकृतिक नियम के विरुद्ध नहीं है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

यह नियम का अपवाद है।

७. श्री गोपाल जी पत्रकार—

मेरे पूछने का तात्पर्य था कि नियोगज पुत्र में पूर्व पिता की आत्मा आ सकती है या नहीं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

पूर्व पिता की आत्मा आ सकती है।

८. श्री गोपाल जी पत्रकार—

आप वर्तमान जन्म में किये कर्म का फल मिलना मानते हैं। ऐसी स्थिति में न कभी भोग की समाप्ति होगी और न किसी का मरना ही बनेगा !

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

कैसे ? उदाहरण दीजिये !

नोट—

पिछले प्रश्नोत्तर जो अठत्तरवें शास्त्रार्थ के नाम से हैं वो यहीं पृष्ठ ३६४ तक समाप्त हो गये थे, क्योंकि बाद में देहलवी जी की शारीरिक स्थिति ठीक न होने के कारण यह प्रश्नोत्तरों का क्रम यहीं पर बन्द हो गया था।

ये आगे लगातार ४ दिन तक चार शास्त्रार्थ डीडवाना (मारवाड) में हुए जो अलग-अलग विषयों पर अलग-अलग विद्वानों के मध्य हुए।

इन शास्त्रार्थों का विवरण हमने अलग-अलग पूर्ण विस्तार से आगे दिया है। पढ़िये और लाभ उठाइये !

संग्रहकर्त्ता :—
"लाजपत राय अग्रवाल"

उन्नासीवां शास्त्रार्थ--

स्थान : डीडवाना (मारवाड़) राजस्थान

दिनाङ्क : १५ नवम्बर सन् १९५३ ई० (प्रथम दिवस)
विषय : क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल हैं ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री
मध्यस्थ : १. श्री पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री, आगरा
(आर्य समाज की ओर से)
२. श्री सेठ गोपालदास जी सिंधी
(सनातन धर्म की ओर से)
शास्त्रार्थ के आयोजन कर्त्ता : श्री पण्डित जियालाल जी "प्रधान"
तथा
श्री पण्डित रमेशचन्द जी शास्त्री (मन्त्री)
(आर्य प्रतिनिधि सभा—राजस्थान)
सनातन धर्म सभा की ओर से सहायक : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"
आर्य समाज की ओर से सहायक : श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार
अन्य उपस्थित विद्वान् : श्री पण्डित काली चरण जी शर्मा
(अरबी के प्रसिद्ध विद्वान शास्त्रार्थ केशरी (कानपुर)
शास्त्रार्थ का प्राङ्गण : राम कुमार बांगड संस्कृत विद्यालय (डीडवाना)

शास्त्रार्थ से पहले

—अमर स्वामी सरस्वती

यह शास्त्रार्थ सन् १९५३ में हुआ, परन्तु इसकी नीव **१९४५** ई० में पड़ चुकी थी, नवम्बर **१९४५** ई० में इसका प्रथम पत्राचार आरम्भ हुआ ८-९ वर्ष निरन्तर पत्राचार चलता रहा। इस पत्राचार में काफी कुछ गड़बड़ भी हुआ है, क्योंकि मेरा कथन है कि "**जो व्यक्ति जितना ज्यादा बोलता है-वह उतना ही गलत भी बोलता है**" विपक्ष की तरफ से भी व्यर्थ की बातें हुई तथा आर्य समाज के अधिकारियों की ओर से भी व्यर्थ की बातें हुई शास्त्रार्थ के नियम अधिकारियों द्वारा तय करना, जब कि होना यह चाहिये कि —जिसने शास्त्रार्थ करना है, वह नियम तय करे।

सनातन धर्मी पण्डितों की चालबाजी ये रही कि वे पहले पहुंच कर स्वयं अपने मनमाने नियम आर्य समाज के अधिकारियों से मनवा लिए। मुझे इस शास्त्रार्थ की सूचना जब मिली तो मैं रोग शय्या पर पड़ा हुआ था। शास्त्रार्थ के लिए किसी भी तरह समर्थ नहीं था। अन्यथा जिन विषयों पर ये शास्त्रार्थ हुए हैं, इन पर उनकी धज्जियां उड़ जाती मेरा दावा है कि ये विषय विपक्षियों की ओर से इतने कमजोर हैं कि इनका नाम सुनते ही विपक्षी ऐसे भागता हैं जैसे कौवा-गुलेल को देखकर भागता है। बल्कि मुझे बाद में पता चला कि, सनातन धर्मी विद्वानों को जब मेरे न आने की सूचना मिली तो उनमें बड़ा ही हर्ष फैल गया था।

होना ये चाहिए कि जहां भी शास्त्रार्थ की चर्चा चले तो समाज के अधिकारियों को सार्वदेशिक सभा द्वारा या सीधे ही शास्त्रार्थकर्ता से सम्बन्ध स्थापित् करना चाहिए, और पत्राचार उनके द्वारा कराकर शास्त्रार्थ के नियम आदि तय करने चाहिए। हमारे कई समाज के अधिकारी अपने आपको ज्यादा बुद्धिमान समझ कर स्वयं ही नियम तय कर बैठते हैं। उसको भुगतना शास्त्रार्थकर्त्ता को पड़ता है। क्योंकि वह उनके नियम में बंध चुका होता है। ऐसा ही इस शास्त्रार्थ में भी हुआ। आपरेशन करना डाक्टर का काम है, कम्पाउण्डर का नहीं, इसलिए आपरेशन की पृष्ठ भूमि भी डाक्टर के ही द्वारा तैयार करानी चाहिए। एक बार एक शास्त्रार्थ में हमारे समाज के अधिकारियों ने मुसलमानों से शास्त्रार्थ करने हेतु बहुत ही अजीब सा नियम मान लिया था, कि—"**वे तो शास्त्रार्थ में हमारे ग्रन्थों के हवाले दे सकते हैं मगर हमारी तरफ से उनके ग्रन्थों का कोई हवाला नहीं दिया जायेगा**"। आपको आश्चर्य होगा कि कोई भी उस शास्त्रार्थ के करने को तैयार नहीं हुआ, अधिकारीगण अपनी गलती पर पश्चात्ताप कर-करके रो रहे थे कि किसी तरह लाज बचे।

मैंने वह शास्त्रार्थ किया तथा जो नियम बन गया था उसमें बंधकर किया, और वो शानदार आर्य समाज की विजय हुई कि आज भी वो सारा इलाका उस शास्त्रार्थ को याद करता है। आखिर रास्ता तो कुछ न कुछ निकालना ही पड़ता है। परन्तु ऐसा किया ही क्यों जावे कि—"**पहले तो खुद मुकदमे को बिगाड़ दो, बाद में उसे संभालने को कहो**"।

इसलिए जिसने शास्त्रार्थ करना है वही नियम भी तय करे। शास्त्रार्थ में बहुत से नियम ऐसे होते हैं, जिनको केवल हम (शास्त्रार्थकर्ता) ही जानते हैं कि सनातन धर्मी विद्वान उनको क्यों उपस्थित करते हैं? उनके पीछे क्या

रहस्य छुपा हुआ है ? समाज के अधिकारी गण उस बात को नहीं पकड़ सकते । जैसे आम तौर पर उनकी तरफ से यह मांग होती है कि १. शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा । २. शास्त्रार्थ लिखित रूप में होगा । ३. शास्त्रार्थ में प्रथम वक्ता कौन होगा ? अर्थात् किस पक्ष का विद्वान होगा । ४. प्रमाण किन किन ग्रन्थों के मान्य होंगे । ५. निर्णायक का झगड़ा ? ६. विषय क्या-क्या होंगे ? आदि-आदि अब मोटे तौर पर बताता हूं । १. **"शास्त्रार्थ संस्कृत में होगा"** क्यों जी ! क्या वहां पर संस्कृत प्रतियोगिता हो रही है ? क्या वहां पर सभी श्रोतागण संस्कृतज्ञ बैठे हैं ? हम कहते हैं **"उस भाषा में होगा जिस भाषा में आप लोगों को बहकाते हैं"** या श्रोताओं में से पूछ लो कि तुम किस भाषा में सुनना चाहते हो ? रही संस्कृत की बात ? अगर परीक्षा ही लेनी है तो अलग से समय रख कर परीक्षा करें । वहां शास्त्रार्थ के नाम पर क्यों लोगों का समय बर्बाद करें । दूसरे **"लेख बद्ध होगा"** इन सब बातों का एक ही मतलब है कि समय की बर्बादी तथा अपनी पोल को खुलने से बचाना । अरे भाई ! शास्त्रार्थ करना है तो सीधे तरीके से सामने आओ, आम भाषा में शास्त्रार्थ करो प्रमाण वही उसी भाषा में दो जिसमें वो मौजूद हैं । इसी प्रकार अनेकों नियमों की मांगे ऐसी हैं जो उन लोगों की तरफ से पेश की जाती हैं । जिनमें मुख्यतः एक **"निर्णायक"** की भी है । अतः इन सबमें सावधानी की आवश्यकता है । जब किसी मकान की नीव ही ठीक न होगी तो आगे क्या खाक बनेगा ? **वैसे तो "नेताओं की कृपा चाहिए, शास्त्रार्थ का युग ही चल बसा"** तो भी मेरे इस कथन को जब भी कहीं पर शास्त्रार्थ की चर्चा चले तो अवश्य ध्यान में रखें, किमधिकम् लेखेन् ! !

"अमरवेल" की तरह निरन्तर बढ़ता हुआ इस शास्त्रार्थ का पत्राचार व्यर्थ समझकर यहां नहीं दिया गया, न ही उसके देने का कोई लाभ था ॥

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि

पाठकं वृन्द ! शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्र व्यवहार का जहां से आरम्भ होता है वहां से पत्र सं० (१) का जो पत्र है, वह सन् १९४५ के नवम्बर मास का है । तथा वह शास्त्रार्थ सन् १९५३ ई० में हुआ है । इस शास्त्रार्थ की आग तभी से धीरे-धीरे सुलग रही थी, आर्य समाज के वार्षिक महोत्सव पर वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा रहा था । जो तात्कालिक, सनातन धर्म सभा मन्त्री श्री सीताराम जी पण्डित को सह्य नहीं हुआ । और उन्होंने आर्य समाज को उस पत्र में शास्त्रार्थ के लिए ललकारा । जिसका उत्तर मैंने (रतन लाल ने) मन्त्री आर्य समाज के नाते तत्काल दे दिया था । कि अब तो हमारा उत्सव समाप्त हो गया है यदि अभी शास्त्रार्थ करना अभीष्ठ है तो खर्च आप उठा ये हम शास्त्रार्थ की योजना करने को तैयार हैं । बस खर्चे की बात सुनते ही शास्त्रार्थ की वार्ता ठण्डी पड़ गई । सन् १९५२ ई० में फिर सनातन धर्म के ६ विद्वानों ने सोते हुए आर्य समाज रूपी शेर को छेड़ा और शास्त्रार्थ की बातचीत आरम्भ की । हमने फिर वही उत्तर दिया कि—आपका शास्त्रार्थ का चैलेन्ज अभी से आगामी महोत्सव पर के लिए स्वीकृत है, आप डटकर तैयारी आरम्भ कर दीजिये । फिर तारीख २३-९-५३ को हमने सनातन धर्म सभा के मन्त्री को अपने उत्सव की तिथियों से अवगत कराया, जिसके विषय में विचार सम्मिलित प्रथम बैठक में किया गया । जगद्गुरु शंकराचार्य श्री भारती कृष्णतीर्थ जी महाराज गोवर्धन पीठाधीश्वर

(पुरी) को मध्यस्थ बनाना स्वीकार किया। हमने तो शंकराचार्यजी महाराज से आकर मध्यस्थता करने की प्रार्थना की। पर सनातन धर्म सभा ने उनकी मध्यस्थता के लिए और उन्हें बुलाने के लिए पूर्ण प्रयत्न नहीं किया। जैसा कि करना चाहिए था। यह तथ्य उनके पत्र से ही विदित हो जाता है। फिर पण्डित नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर जिला सहारनपुर को मध्यस्थता के लिए लिखा गया। उन्होंने आने से निषेध कर दिया। फिर विषय निर्धारण में पत्रापत्री होती रही। यहाँ तक कि दोनों ओर के विद्वान भी आ गए, पर शास्त्रार्थ होता नजर न आता था। श्री पण्डित अखिलानन्द जी तो १० नवम्बर सन् १९५३ ई० को ही आ गए थे। इसी प्रकार श्री पण्डित बुद्धदेव जी और श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति जी भी ११ नवम्बर की ही अखाड़े में उतर आये थे। श्री पण्डित माधवाचार्य जी १३ ता० की शाम को आए थे। उसी दिन श्री पण्डित हरिदत्त जी व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, आयुर्वेदाचार्य, एम० ए०, भी आगरे से पधारे थे। हम लोग जब श्री पंडित हरिदत्त जी शास्त्री को स्टेशन पर लिवाने पहुंचे तो हमने देखा कि श्री पण्डित माधवाचार्य जी भी उसी गाड़ी से उतर रहे हैं, परन्तु सनातन धर्म की ओर से उन्हें कोई लिवाने नहीं आया है। हमसे न रहा गया। और हमने जाकर उनका स्वागत किया। सामान उतारा, तथा सम्मान पूर्वक उनको भी यथा स्थान पहुंचा दिया। इस व्यवहार से श्री पण्डित माधवाचार्य जी बड़े प्रसन्न हुए। हम न होते तो उस शीत ऋतु में बेचारे न जाने कब तक परेशान रहते। अस्तु ! इतना सब होने पर भी शास्त्रार्थ होने के आसार अब भी होते नजर नहीं पड़ते थे। अन्त में तारीख १४ नवम्बर की रात्रि में श्री गोपाल दास जी सिंघी तथा श्री गंगाबिशन जी लाहोरी (सुजानगढ़ निवासी) के उद्योग से **"तारीख १५-११-५३ को शास्त्रार्थ होना तय हो गया"** इनके उद्योग बिना **"बेल का मगरे चढ़ना"** असम्भव था, आर्य समाज के विद्वान यथा समय सनातन धर्म के विशाल मण्डप में पहुंच गये। दोनों ओर से पुस्तकों के ढेर स्टेजों पर सजा दिए गए। अब फिर ऐन वक्त पर वही वितण्डा खड़ा हो गया कि—शास्त्रार्थ का विषय कौन-कौन सा होवे ? तथा पहले कौन-सा विषय लिया जावे ? श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पण्डित माधवाचार्य जी अपनी-अपनी बात पर जमे हुए थे। जब एक घण्टा पन्द्रह मिनट उस झगड़े में बीत गए, तब विद्वद्वर श्री पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री ने खड़े होकर **"चार विषयों पर शास्त्रार्थ किया जाये"** यह सुझाव दिया। जिसे दोनों ही पक्षों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वस्तुतः यदि शास्त्री जी सुझाव पेश न करते तो सम्भव है शास्त्रार्थ खटाई में ही पड़ जाता और विद्वानों का जमाव व्यर्थ हो जाता एवं शास्त्रार्थ श्रवण के लिए उत्सुक जनता की इच्छा भी मन की मन में ही रह जाती। शास्त्रार्थ के विषय निम्नलिखित निश्चित हुए—१. मृतक श्राद्ध की अवैदिकता ? २. यज्ञों में पशुहिंसा या वेदों में पशु हिंसा ? ३. ऋषि दयानन्द प्रणीत ग्रन्थों की वैदिकता ? ४. पुराणों की अवैदिकता ? इस प्रकार प्रत्येक विषय को एक-एक घण्टा दिया जाना निश्चित हुआ। यह भी निश्चित हुआ कि—शास्त्रार्थ लिखित व मौखिक दोनों प्रकार से हो। प्रत्येक वक्ता को पन्द्रह-पन्द्रह मिनट दिए जायें। जिसमें वह आधे समय में अपने लेख को संस्कृत में लिखें तथा आधे समय में उसका हिन्दी अनुवाद व्याख्या सहित जनता को समझा दें। मध्यस्थ का कार्य केवल अपने-अपने पक्ष के वक्ताओं का समय निश्चित करना मात्र था। आर्य समाज की ओर से यह कार्य विद्वद्वर **"श्री पण्डित हरिदत्त जी शास्त्री"** ने किया तथा सनातन धर्म की ओर से यह कार्य **"श्री सेठ गोपालदास जी सिंघी"** ने किया, मध्यस्थों का कार्य यह भी था कि, जो कागज लिखने के लिए दिए जाते थे उनके एक कोने पर अपने-अपने हस्ताक्षर भी कर देते थे। शास्त्रार्थ के सुनने के लिए दूर-दूर से जनता एकत्रित हुई थी। शास्त्रार्थ में कोई किसी प्रकार का हुल्लड़ नहीं मचाया गया। इस शास्त्रार्थ का आयोजन कर्मवीर **"श्री पण्डित जियालाल जी प्रधान"** तथा प्रसिद्ध वक्ता विद्याभास्कर **"श्री पण्डित रमेश चन्द्र जी शास्त्री"** मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के तत्वाधान में किया गया था। मैंने श्री पण्डित रमेश चन्द्र जी शास्त्री के कहने पर ही विद्वानों को भी आमन्त्रित किया था।

अरबी के प्रसिद्ध विद्वान श्री पण्डित कालीचरण जी शर्मा (कानपुर निवासी) भी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। आर्य समाज भवन में प्रातः तथा रात्रि में विद्वानों के प्रवचन एवं व्याख्यान होते थे। इस शास्त्रार्थ से आर्य समाज की सहिष्णुता तथा सत्यान्वेषकता की छाप सारे नगर पर बैठ गई पुराणों की बातें सुनकर भोली-भाली जनता अवाक् रह गई। उसे पुराणों की असलीयत सुनने का यह प्रथम ही अवसर प्राप्त हुआ था। श्री सेठ रामकुमार जी बांगड़ के संस्कृत विद्यालय के प्राङ्गण में श्री सेठ गोपाल दास जी सिंधी ने जनता तथा वक्ताओं के बैठने का जो सुचारु प्रबन्ध किया था उसके लिए हम सिंधी जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। जिस प्रकार रात्रि में आर्य समाज अपने स्थान पर व्याख्यान-प्रवचन आदि करता था, उसी प्रकार सनातन धर्म सभा की ओर से भी व्याख्यान का प्रबन्ध था। रात्रि को व्याख्यान देते हुए कविरत्न श्री पण्डित अखिलानन्द जी शर्मा ने श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति (देहली) के साथ हुए एक पुराने शास्त्रार्थ की चर्चा करते हुए अपने स्वभावानुसार श्री पण्डित लोकनाथ जी के विषय में यह कह दिया कि उन्होंने "**शुनी से नियोग किया था**" जब उनसे पूछा गया तो कविरत्न जी ने प्रतिबन्दी उत्तर देते हुए कहा कि पण्डित लोकनाथ जी ने भी तो मेरे लिए यह कहा है कि—"**उसे दुराचारी होने के कारण ही आर्यसमाज से निकाला गया था**" इत्यादि। यह चर्चा यहां तक बढ़ी कि दोनों को परस्पर एक दूसरे का लेख द्वारा भ्रम निवारण करना पड़ा। यह दोनों क्षमा पत्र भी यहां दिये गये हैं। इसी प्रकार सनातन धर्म के प्रसिद्ध विद्वान श्रीधर अन्णा शास्त्री (नासिक निवासी) तथा सनातन धर्म महा मण्डल देहली के प्रधान श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी शास्त्री एवं श्री पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी (पारडी निवासी) की सम्मति भी प्रकाशित कर दी है, जिससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि यज्ञों में (वेदों में) पशु हिंसा का विधान नहीं है।

निवेदक—
"रतन लाल"
(मन्त्री—आर्य समाज, डीडवाना)
राजस्थान

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

॥श्री हरिः॥

मृतकानां श्राद्धं वैदिकम्। वेदशास्त्रेषु तथाविध प्रमाण दर्शनात्, यद्यद् वेदानुमोदितं तत्तद् वैदिकम् यथा सन्ध्योपासनादिकम् यन्नैवं तन्नैवं यथा सुवर्ण स्तेयादिकम् तस्माद् मृतकानां श्राद्ध वैदिकम्॥ वेदेषु (क) प्रेतान् पितृंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकल्पितम् (श्राद्ध कल्पे) (ख) पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृता (अथर्ववेदे १२-२-४) (ग) त्वमग्ने ईडितो जातवेदः.........प्रादापितृभ्यः (अथर्ववेदे १६-३-४८) (घ) इमं मोदनं निदधे ब्राह्मणेषु (अथर्ववेद ४-३४-८) (ङ) अपूपा पिहितान् कुम्भान्.........तेते सन्तु स्वधावन्तः (अथर्ववेदे १८-४-२५) इत्यादर्योऽनेके मन्त्रा विद्यन्ते, तेषामेव समर्थका मनुस्मृति प्रभृतयो ग्रन्थाः।

अतोमृतक श्राद्धस्य वैदिकत्वम् । जीवित श्राद्ध शब्दस्य प्रयोगोऽपि कुत्रचिन्न लभ्यते, एतत्सर्वं श्री दयानन्द कपोल कल्पितमेव । संस्कार विधौ ओं पितरः शुन्दध्वम्........इति मन्त्र........पाठ पुरस्सर मञ्जिल प्रदानं स्नातक कृते लिखितम्, तत्र दक्षिणा मुखोऽपसव्य इति व्यवस्था मृतक श्राद्ध सूचिका ॥

हस्ताक्षर—"**माधवाचार्यः**"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सबसे पहले पौराणिकों की ओर से अनुमान-प्रमाण उपस्थित किया गया कि—मृतक श्राद्ध वेद शास्त्रों द्वारा प्रमाणित होने से वैदिक हैं। जो-जो बातें वेदोक्त या वेद प्रतिपादित हैं वे सब वैदिक होती हैं, जैसे संध्या आदि कार्य। जो-जो वेदानुमोदित नहीं होता है, वह वैदिक भी नहीं होता, जैसे सोने की चोरी। अतः मृतक श्राद्ध वैदिक है। यह सिद्ध है। वेदों में भी इसके प्रमाण मिलते हैं, जैसे "**श्राद्धकल्प**" में, और "**अथर्ववेद**" के चार मन्त्रों में श्राद्ध का विधान किया गया है। वेदों के अर्थ के अनुकूल ही मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी श्राद्ध का विधान है। यदि कहो कि वे मन्त्र तो जीवित परक हैं, तो जीवित श्राद्ध का तो कहीं विधान ही नहीं है। संस्कार विधि में "**ओ३म् पितरः शुन्दध्वम्**" इस मन्त्र को बोल कर एक अञ्जली जल को दान करने का विधान है। तथा दक्षिण दिशा की ओर मुह करके मन्त्र पाठ करें यह भी लिखा है। इससे सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द जी सरस्वती श्राद्ध करना मानते थे।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

दिक्काला द्यनवच्छिन्नानन्त चिन्मात्र मूर्तये । स्वानु भूत्येक मानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥

भवदुपन्यस्तं अनुमानमसिद्धं सत्प्रति पक्षितत्वात्, मृतक् श्राद्धम्, वेदाप्रतिपाद्यम्, वेदेष्व दर्शनात्, पुराणोक्त त्वाद्वा । श्राद्ध कल्पोक्त वाक्यं नास्माकं प्रमाणं अवैदिकत्वात् । अथर्ववेदोक्त मन्त्रे पितृहृणां लोकंगच्छतां केषां पितृ संज्ञेति विचारणीयम् । यास्काचार्येण निरुक्ते "द्यौर्मे पिता" इत्यादि मन्त्रे पिता-पाता वा पालयितावेति लिखितम् । तेन सूर्योदयो देवताएव पितृ शब्द वाच्याः । यथा "सूर्यं चक्षुर्गच्छतात्" इत्यादि मन्त्रे अथर्वाणि १८ काण्डे ७ मन्त्रे २ सूक्ते प्रोक्तम् । अनेनैव इतरेऽपि अथर्वमन्त्रा प्रत्युक्ताः व्याख्याता वा । एवमेव यजुर्वेदे १९ अध्याय ५८ मन्त्रे "आयन्तुनः पितरः सोम्यासः" इत्यादि मन्त्रेऽधिवेदनाऽवन क्रिया कर्तृत्वेन जीविता एवं पितरो गृह्यन्ते । एवं ५९ मन्त्रेऽपि "अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत" यजुः १९-५९ इत्यादिना पितृनामाह्वानं भोजना दिना तृप्तश्च न मृतानां प्रति पादिता किन्तु जीवितानाम् । तस्मान्न महर्षि दयानन्दोक्तं कपोल कल्पितम् "पितरः शुंधध्वम्" इत्यात्रापि न मृतकाः किन्तु तत्र दक्षिणदिशि उपास्थिताः पितर एव स्नातकैः अभिप्रेयम्तेनान्ये ।

"स्वहस्थो-लोकनाथस्य"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

आपने जो अनुमान—प्रमाण उपस्थित किया, वह इसलिए किया कि स्वपक्ष स्थापना की जा सके। पर यह कोई नियम नहीं कि हम भी अनुमान द्वारा ही स्वपक्ष स्थापन करें, क्योंकि वेद के वाक्य वैदिकों के लिए परम

और चरम प्रमाण हैं, शब्द प्रमाण से बढ़ कर कोई प्रमाण नहीं होता। यही बात "उद्योतकर" ने न्यायवार्तिक में लिखी है कि, "अन्ते शब्दो महा विषयत्वात्" इति। फिर भी हम अनुमान-प्रमाण आपके लिए देते हैं, आपका अनुमान वाक्य असिद्ध है, क्योंकि वह सत्प्रतिपक्षित है। तथाहि—मृतक श्राद्ध, पुराण मात्र कल्पित हैं, वेदा प्रतिपादित होने से, या केवल पुराणोक्त होने से। श्राद्धकल्प का जो वाक्य आपने प्रमाण रूप में पेश किया है वह हमें स्वीकृत नहीं, क्योंकि "श्राद्ध कल्प" कोई वेद नहीं। रहा अथर्ववेद का वाक्य यह विचारणीय है। क्योंकि "पितृ-लोक" और "पितर" संज्ञा किनकी हैं ? जब तक यह ग्रन्थी नहीं सुलझ जाती तब तक वेद मन्त्र का भाव स्पष्ट नहीं हो सकता। महर्षि यास्क ने निरुक्त में पितृ शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए पिता को रक्षक या पालन करने वाला बतलाया है। अतः जो भी हमारे जीवन के रक्षक पंचमहाभूत आकाश आदि हैं, वे पितर हुए। उनका लोक अन्तरिक्ष लोक हुआ, तदनुसार तथा जैसा बृहदारण्यक परिशिष्ठ में भी लिखा है। तदनुसार मन जीव का वायु आदि लोकों में परिभ्रमण होता ही है। यह रहस्य "सविता प्रथमेऽहनि" इत्यादि यजुर्वेद के मन्त्र में भी व्याख्यात प्राय है। इसी प्रकार "सूर्यं चक्षुर्गच्छतात्" अथर्व वेदोक्त इस मन्त्र में भी यही भाव स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार अन्य अथर्व वेदोक्त मन्त्रों की भी गति समझ लेनी चाहिये एवं यजुर्वेद के १९वें अध्याय के ५८ वें मन्त्र में "आयन्तुनः" इत्यादि मन्त्र में जो अधिवेदन (ज्ञान) रक्षण आदि व्यापार बतलाये गये हैं वो जीवित पितरों में ही सम्भव हैं, मृत पितरों में नहीं इसी प्रकार "अग्निष्वात्ताः पितरः" इस मन्त्र में भी जो जीवित पितरों का ही आवाहन तथा भोजनादि से तृप्ति होती है—मृतों की नहीं। अग्निष्वात का अर्थ अग्नि विद्या के जानकार है। अतः महर्षि का सिद्धान्त कपोलकल्पित नहीं है। "पितरः शुन्धध्वम्" इस मन्त्र में यज्ञ के दक्षिण भाग में अवस्थित पितृ तुल्य स्थानीय विद्वद्गण ही लिये जाते हैं अन्य नहीं। अतः आर्य सिद्धान्त वैदिक और बलवत्तर हैं। "पितरः शुन्दध्वम्" नहीं बल्कि "पितरः शुन्धध्वम्" ऐसा शुद्ध लिखा कीजिये।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

श्री हरिः ॥ सत्प्रति पक्षस्य लक्षणमजानता भवता यल्लिखितं तदेतद् मतानुज्ञा दूषितम्। यतोहि वेदोक्त त्वादिति हेतुत्वे तस्य सर्वथा अभावात्। मदुक्तानां मन्त्राणां किमपि प्रत्युत्तर नदत्त मतोभवान् पराजितः प्रतिज्ञा सन्यास निग्रह ग्रस्तः। पुनरपि मन्त्रा लिखयन्ते विचार्य उत्तरं देयम्। (क) "तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर-आसते ..." (अथर्वणि ११-२-४७), (ख) "ये निखाता ये परोक्ता..." इत्यादि मन्त्रे मृतकानामेव पितृत्वम्। (ग) "ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा ..." इत्यादि मन्त्रेऽपि अग्निदग्ध देहानां प्रत्यक्ष उल्लेखः। श्री दयानन्द संस्कार विधौ अमावस्यायां मघानक्षत्रस्य पितरो देवता उक्ता तेषां कृते आहुति दानमपि लिखितम्। नैतत् जीविते सम्भाव्यते। अतोमृतकश्राद्धस्येव वैदिकता सिद्धा।

—"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आपको सत्प्रतिपक्ष का लक्षण मालूम नहीं—फिर भी सत्प्रतिपक्ष बतला दिया। अतः "मतानुज्ञा" नामक निग्रह स्थान में आप आ गये—और चारों खाने चित्त आये हैं। क्योंकि "वेदोक्तत्वाद्" इस हेतु के देने पर सत्प्रतिपक्ष का कहीं नामोनिशां भी नहीं, मैंने जो मन्त्र "श्राद्ध की सिद्धि" में उपस्थित किये थे उनका आपने कोई उत्तर नहीं दिया। अतः आप "प्रतिज्ञा सन्यास" नामक निग्रह स्थान में भी आ गये। मैं अपने कुछ अन्य मन्त्रों को

पुन: उपस्थित करता हूं। जिनसे मृतकश्राद्ध सिद्ध होता है। सोच-समझ कर उत्तर दीजिये। (क) "तृतीयाह प्रद्यौरिति…", (ख) "ये निखाता:…" (ग) "ये अग्निदग्धा:…" इत्यादि मन्त्रों में अग्निदग्ध देह पितरों का उल्लेख स्पष्ट है। श्री दयानन्द जी ने भी संस्कार विधि में अमावस्या तथा मघा नक्षत्र के देवता पितर माने हैं। उनके लिए आहुति का भी विधान किया है। यह सब क्रिया जीवितों के लिए असम्भव है। अत: "मृतक श्राद्ध वैदिक है" यह सिद्ध है।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

मतानुज्ञादि निग्रह स्थानानां नामोच्चारण मात्रेण नायाति मतानुज्ञा।
प्रश्नाना मुत्तरस्या प्रदान मात्रेण प्रति ज्ञास न्यास चर्चातु दूरायास्ता॥

सत्प्रति पक्षितत्वंतु स्पष्टमेव सिद्धम् यत: गरुड़पुराणे "न पितु: कर्मणापुत्र" इत्यादि पद्ये स्पष्टमेव मृताना श्राद्ध कर्मणि ग्रहणं पुराण एव न वेदे। अस्माभिरक्षरश: प्रत्युक्तोऽपि भवान्नोत्तरितमितिवदन् वैयात्यमेव प्रकाशयति नूतन मन्त्रेषु प्रमाण त्वेनो पन्यस्तेषु मृता: पितरो नगृह्यन्ते किन्तु जीविता: ये अग्निदग्धा: इत्यादि मन्त्रेऽपि अग्नि विद्या कर्मणि विदग्धानां चतुराणांमेव पिण्डणां ग्रहणं न मृतानाम्। महर्षि प्रणीत "विद्यौ या देवता: प्रोक्ता स्ता: तिथि स्पष्टार्थं प्रति पत्तये न मृता: किन्च भवता पूर्व पक्षे जीवित श्राद्धे पदे विभक्ते सप्तम्या अप्रयोग "पितर" शुन्दध्वम् इति लेखे विसर्ग रहित: दकार घटितश्च प्रयोग० भवतो व्याकरण शास्त्रानभिज्ञता द्योतयति। एवं सर्वमपि सुतस्पष्टम्। अपसव्य स्थितानां जीविनानां दक्षिणाभि मुखत्वं न मृतानाम् इति॥

"लोकनाथ:"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

महोदय? केवल आपने "मतानुज्ञा" कह दी और आपके कहने से आ गई, यह नहीं हो सकता। क्योंकि मतानुज्ञा का लक्षण निम्नलिखित है—

प्रतिषेधं सदोषमभिप्रत्य प्रतिषेध विप्रतिषेधे समानो दोष प्रसंगो मतानुजा।
स्वपक्ष दोषा भ्युपगमात् पर पक्ष दोष प्रसंगो मतानुजा॥

(निग्रह स्थानम्) न्या० २-५-२१

मतानुज्ञा नामक जाति भी है, तथा निग्रह स्थान भी। दोनों में से हमने तो कोई दोष अपने अनुमान में स्वीकार किया नहीं फिर जाति या निग्रह स्थान कैसे आ गया? यह माधवाचार्य जी ही जानें। इसी प्रकार प्रतिज्ञा सन्यास का लक्षण इस प्रकार है— "पक्ष प्रतिषेधे प्रति ज्ञातार्था पनयनं प्रतिज्ञा सन्यास:"॥

अभी तक किसी के प्रश्नों का उत्तर न देने मात्र से "प्रतिज्ञा सन्यास" निग्रह स्थान का लग जाना गौतम मुनि ने तो माना नहीं, न किसी विद्वान ने सुना आपका कोई और लक्षय हो तो और बात है। अत: जरा बोलने से पहले सोच-समझ लिया कीजिये, आप सश्रतिपक्ष नहीं मानते आश्चर्य है देखिये—"श्राद्धं, अवैदिकं पुराणोक्त्वात्" इस अनुमान के द्वारा अनियाक्षितत्व है तथा जब तक वेद प्रतियाक्षित्व सिद्ध न हो जाय तब तक उसे हेतु रूप से कहना साध्य सभा जाति है, उसका लक्ष्य निम्नलिखित है। "साध्य दृष्टान्तयो धर्म विकल्पादुभय साध्यत्वाच्चोत्कर्षापकर्षवर्ण्यावर्ण्य विकल्प साध्यसमा:" (न्याय दर्शन ५-१-४)॥

तथा श्राद्ध का पुराणों में एवं गरुड़ पुराण में **"न पितुः कर्मणा:"** इत्यादि पद्य में स्पष्ट कथन है। अतः मृतक श्राद्ध पुराणों का ही प्रतिपाद्य है वेदों का नहीं। आपने जो पहले मन्त्र दिये थे उनकी व्याख्या स्पष्ट की जा चुकी है तथा उनका उत्तर भी दिया जा चुका है। नवीन जो मन्त्र दिये हैं, उनमें भी अग्निदग्ध का अर्थ अग्नि विद्या कर्म में विदग्ध-चतुर विद्या वयोवृद्धां का ही पितर शब्द से ग्रहण किया गया है। **"निखात"** शब्द का अर्थ कूप वापी निर्माण कुशल, तथा **"परोक्त"** का अर्थ कृषि विद्या निपुण अर्थ है। अतः मृतक पितरों की इन मन्त्रों में गन्ध भी नहीं है। पितरों को जो तिथि देवता बतलाया गया है वह तिथि तथा नक्षत्र के महत्व के लिए है। तथा यहां भी पितर शब्द पञ्चमहाभूतों का ही वाचक है। प्रसंङ्गवश आप अपनी विद्वता भी जान लीजिये कि पूर्व पत्र में **"जीवितश्राद्ध"** शब्द में जीवित के आगे सप्तमी विभक्ति का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक था। वह नहीं किया गया जो कि व्याकरण की दृष्टि से अयुक्त है। इसी प्रकार **"पितर शुन्दध्वम्"** इस मन्त्र के लिखने में भी आपने दो अशुद्धियां कर दी हैं। एक तो यह कि पितरः—के आगे विसर्ग नहीं रक्खे दूसरे **"शुन्धध्वम्"** की जगह **"शुन्दध्वम्"** लिख मारा। ऐसी भूलें तो आप जैसे विद्वानों को नहीं करनी चाहिये तथा अपसव्य भाग में स्थित् पूज्य पुरुषगण ही **"पितरः शुन्धध्वम्"** इस मन्त्र में ग्रहण किये गये हैं। अन्य नहीं, इस प्रकार मृत पितरों की वेद या शास्त्रों में कहीं चर्चा नहीं है। तथा मृतक श्राद्ध करना पोपों की कपोल कल्पना ही है। कूर्म पुराण ३-२२-१७ में तो स्पष्ट ही मृतक श्राद्ध का निषेध है। देखिये—**"भोजयेद्वाऽपि जीवन्तं यथा कामंतुभक्तितः। नजीवन्त मतिकन्रम्य ददातिप्रयतः शुचिः"** ॥इति॥

क्या अब भी सनातन धर्मावलम्बी मृतक श्राद्ध करके शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन करने का साहस करेंगे ? (इस प्रकार यह प्रथम दिवस का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ) ॥

—उपरोक्त शास्त्रार्थ पर विशेष समीक्षा—

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

मृतक श्राद्ध खण्डन के विवरण में श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न द्वारा **"दयानन्द दिग्विजय"** के दसवें सर्ग के चौबीसवें श्लोक से सुनिये कि **"श्राद्ध क्या है"** ? —

श्राद्धं तदेव निगदन्ति महात्मवर्या, यस्मिन् परोपकरणाय जनोत्तमेषु।
सच्छद्धया किमपि वस्तु तदर्थितंवा, विश्राणयन्तिमनसा वचसाऽपि विज्ञाः ॥२४॥

अर्थात्—श्राद्ध वही है जिसमें अपनी श्रद्धा के अनुसार परोपकार की दृष्टि से सद्गुणों वाले पुरुषों को कुछ दिया जाये। और देखिये—

जीवेऽमरे वसनवद्वपुरप्यपास्य, देहान्तरं कृतिशात् प्रगते न कोऽपि।
तत्रास्य बान्धव इतिव्यवहार एव, वेविद्यतोंकथमपि क्वचिद प्यशस्तः ॥

"जब जीव कर्मानुसार देहान्तर प्राप्त कर चुका, तब वह, किसी का चाचा या भाई रहता ही नहीं, फिर उसके उद्देश्य से अन्न देना केवल मूर्खता ही है।

☆

अस्सीवां शास्त्रार्थ—

स्थान : डीडवाना (मारवाड़) राजस्थान

दिनांक : १६ नवम्बर सन् १६५३ ई० (द्वितीय दिवस)

विषय : क्या वेद में पशुहिंसा विहित है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार
(श्री स्वामी समर्पणानन्द जी)

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

नोट :—

शेष पदाधिकारी प्रथम दिवस की भाँति ही रहे केवल सहायक बदल गए थे, आर्य समाज की ओर से श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति तथा सनातनधर्म की ओर से श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न "सहायक" रूप में नियुक्त हुए।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

अश्वालम्भं गवालम्भं सन्यासं पल पैतृकमिति वाक्यस्य प्रामाण्यं श्री मद्भिः स्वीक्रियते न वा ? स्वीक्रियते चेत् कलियुग मतिरिच्यान्येषु युगेषु गवां हत्या भवद्भिः स्वीकृता सा च "मा गामनागामदिति वधिष्ट" इत्यादि श्रुति वाक्य विरुद्धत्वान्न प्रमाणम् । बाल्मीकि रामायण कौशल्ययाऽश्वस्यवधः कृतः इति भवद्भिः स्वीक्रियते न वा (बालकाण्डे-चतुर्दशे सर्गे) पुत्रेष्टौ प्रसक्तायामिदमश्वमेध वर्णनं कस्मान्न प्रक्षिप्तमित्युद् घुष्यते । "संज्ञपन" शब्दस्य मारणमित्यर्थः कथं स्वीक्रियते अष्टकाश्राद्धे गोवधः स्वीक्रियते न वा ? गोभिले० १८१ पृष्ठे ॥

"**बुद्धदेव**"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

"**अश्वालम्भं गवालम्भं**" इत्यादि वाक्य को आप प्रमाण भूत मानते हैं या नहीं ? यदि मानते हैं तो इस वाक्य के अनुसार "**गवालम्भन**" (गोवध) का केवल कलियुग में ही निषेध किया गया है । अन्य युगों में नहीं, अर्थात् अन्य युगों में गोवध विहित है, क्योंकि श्लोक पूरा इस प्रकार है—"**अश्वालम्भं गवालम्भं सन्यासं पल पैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्ति कलौ पञ्च विवर्जयेत्**"॥ अर्थात्—अश्वमेध यज्ञ में अश्व हत्या, गोमेध में गो हत्या, सन्यास की दीक्षा लेना, मांस द्वारा श्राद्ध करना, और भाभी के द्वारा देवर का नियोग द्वारा सन्तानोत्पत्ति करना यह पांच चीजें कलियुग में नहीं करनी चाहिये । इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि अन्य युगों में करनी चाहिये । एवञ्च इस वाक्य को प्रमाण मानने वाला व्यक्ति वेद द्वारा किये गये साक्षात् निषेध का परिहार कैसे कर सकता है ? यह हम जानना चाहते हैं, क्योंकि वेद मन्त्र में लिखा है कि—"**माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽऽदित्यानाममृतस्यनाभिः । प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट**" ॥ अर्थात् जो गौ रुद्रों की माता वसुओं की दुहिता, आदित्यों की भगिनी व अमृत की जननी है उस निरपराध गौ की ज्ञानवान् मनुष्य को कभी हिंसा नहीं करनी चाहिये । अतः श्रुति से जब विरोध आता है तो उक्त वाक्य को प्रमाण नहीं मान सकते । यदि मानते हैं तो श्रुति विरोध का आपके पास क्या समाधान है ? हमारी समझ में तो वह वाक्य प्रमाण नहीं माना जा सकता । दूसरी शंका यह है कि कौशल्या माता ने घोड़े का वध किया था, यह वर्णन बाल्मीकि रामायण के बाल काण्ड के चौदहवें सर्ग में आता है—"**कौशल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः । कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥३३॥ पतत्रिणा तदासार्धं सुस्थितेन च चेतसा । अवसद् रजनी मेकां कौशल्या धर्म काम्यया ॥३४॥ होताध्वर्यु स्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् ॥३५॥ धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रतिस्म नराधिपः । यथाकाल यथा न्यायं निर्णुदन् पापमात्मनः ॥३७॥ इत्यादि**, क्या यह वेदोनुमोदित है ? यहां पर अश्व हिंसा का परिहार आप क्या कर सकते हैं ? हां यदि साहस के साथ इसे "**प्रक्षिप्त**" कहें तो सब व्यवस्था ठीक हो जाती है । क्योंकि वहां पुत्रेष्टि यज्ञ का प्रकरण है अन्यथा वहां अश्ववध का क्या मतलब ? अतः यह भाग अवश्य ही "**प्रक्षिप्त**" है । तीसरी शंका यह है कि "**संज्ञपन**" शब्द का अर्थ हिंसा है या नहीं ? **चौथी शंका यह है** कि अष्टका श्राद्ध में "**गोवध**" किया जाता है या नहीं ? यदि नही तो **गोभिल** गृह सूत्र में जो उसका विधान है उसकी क्या गति है ?

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

।।गणेशायोनमः।।

दोषाभासांश्च शास्त्रेषु मुग्धाः पर्वतयन्ति यान् । ते तथेवोपलभ्यन्ते वेदेष्वपि विलोक्यताम् ।।

यज्ञेपश्वालम्भनं वैदिकम् । वेदादिशास्त्रेषु तथा विध प्रमाणदर्शनात् । विवाहादि संस्कार वत् । यन्नैवं तन्नैवं । गुर्वङ्गनागमनादिवत् । तस्माद् यज्ञे पश्वादिलम्भनं वैदिकम् ।। भवता शास्त्रार्थ पद्धत्या नोद्दङ्कितः स्वपक्षोऽतः प्रतिज्ञा सन्यासनिग्रहग्रस्तो भवान् । अश्वालम्भ प्रभृति प्रमाणजातानि सर्वाणि स्वीक्रियन्ते । परन्तु यज्ञे कस्यापि जन्तोः हिंसा न भवति, अध्वरे हिंसा प्रसंगाभावात् अस्थिगत् प्राणवतां जीवानां पुराकल्पे वृक्षाबीनामिव मनुष्योपकारार्थ तत्तंग ग्रहणमात्रमेव शास्त्रसम्मतम् । "यदि क्षितयुर्यपिदवप रेतो" इत्यादि वेद मन्त्रेषु पुनर्जीवनं स्पष्टम् । कलौ तथा विधसामर्थ्याभावान्निषिद्धः । बाल्मीकिय अश्वा परनामकस्य कन्द विशेष स्यैव तथा कारणम् । संज्ञपन शब्दस्य मारणमर्थः शत्रु विषये, पूज्येषु सदुपदेशग्रहण परः । अष्टका श्राद्धे अन्यत्रापिक्वापि गोवधोऽस्माभिर्न स्वीक्रियते ।।

"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

जो दोषाभास शास्त्रों (स्मृतियों) में दिखाई पड़ते हैं । तथा जिन्हें मूर्ख लोग बतंङ्गड़ बना-२ कर दुनियां को डराते हैं, वे दोष वेदों में भी ज्यों के त्यों विद्यमान हैं । खेद है कि आपको पूर्व पक्ष करना नहीं आता जो कि आपने पञ्चावयव वाक्य का बिना प्रयोग किये ही शंका करनी आरम्भ कर दी, यह शास्त्रार्थ की नीति नहीं । हम तो पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग संस्कृत में दिखला चुके हैं, हमारे मत में **"अश्वालम्भंगवालम्भम्"** ।। इत्यादि वाक्य भी प्रमाणभूत हैं । तथा यज्ञ में किसी की हिंसा (प्राण वियोजन) होना नहीं । उसका नाम ही **"अध्वरं"** है । वध किये जाते हुए पशु के प्राण अस्थिगत रहते हैं । वह वृक्षों के समान **"अन्तः संज्ञ"** है उनके प्राण उन अंङ्गों में प्रविष्ट हो जाते हैं । तथा जब यज्ञ कर्म पूर्ण हो जाता है तब उनका पुनः संज्जीवन हो जाता है । जैसा कि—**"यदि क्षितायुः"** इत्यादि मन्त्र में लिखा है ।

कलियुग में मारित पशुओं के उज्जीवन की सामर्थ्य होता या अध्वर्यु में नहीं है (पहले थी) अतः कलियुग में पशुहिंसा का निषेध है, जैसाकि—**"अश्वालम्भम्"** इत्यादि वाक्य में लिखा है । बाल्मीकि रामायण में **"अश्व"** नाम का कन्द विशेष है । जनता में हंसी······जिसके टुकड़े कौशल्या माता ने किये थे । **"संज्ञपन"** शब्द का शत्रुओं के विषय में जब-जब प्रयोग होता है, तब-तब मारना अर्थ होता है, प्रकरणानुसार एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं । अष्टका श्राद्ध में या कहीं अन्य स्थानों पर भी **"गोवध"** का विधान हम नहीं मानते ।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

फलोपञ्च विवर्जयेदिति वाक्यस्य प्रामाण्यं स्वीकुर्वन्नापि पश्वालम्भं प्रत्याचक्षाणोभवान् वदतो व्याघातेन ग्रस्तः । पञ्च कोटिगवां मांसं सापूपं स्वयमेव च । एतेषां च नदी राशीर्भुञ्जते ब्राह्मणाः ? मुने ।। "इति ब्रह्मवैवर्त-वाक्यस्य कोऽर्थः ?" अस्थिगत प्राणवतां जीवानां पुराकल्पे वध इति वचनस्य कुतश्चिदपि वेदमन्त्रात् । ब्राह्मण-वाक्याद्वाप्रामाण्यं स्थापनीयम् । कथं च गवामेव वधः कलौ निषिद्धः चतस्त्रो व्याकरणा श्रुतयः ।।

"बुद्धदेवः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सनातन धर्म में क्या ही विचित्र गोरखधन्धा है ? कि आप "**कलौपञ्च विवर्जयेत्**" इस वाक्य को प्रमाण मानते जाते हैं। पर यज्ञ में पशु वध नहीं मानते। यह तो वही बात हुई कि—"कोई बोलता भी जाए और कहता जाये कि मेरे मुह में जीभ नहीं है" अत: आपका कथन "**वदतोव्याघात**" दोष से ग्रस्त है। अस्तु ॥ यह बतलाइये कि-ब्रह्मवैवर्त पुराण में जो स्पष्ट लिखा है कि पांच करोड़ गौओं का वध किया गया तथा उनके मांस को वेदपाठी ब्राह्मणों ने खाया। इस श्लोक का आपके पास क्या समाधान है ? यहां ये यज्ञ भी नहीं किया गया। ब्राह्मण वृन्द वैसे ही ईद मनाने लग गया। एक बात आपने बहुत ही मजेदार कही कि जो पशु, यज्ञ में मारा जाता है, वह मरता नहीं बल्कि उसके प्राण हड्डियों में लीन हो जाते हैं। तथा यज्ञ की समाप्ति के बाद जब उस हड्डियों के ढेर पर मन्त्र बोलकर जल छिड़का जाता है तो वह पशु पुनः जीवित हो उठता है। अब जादूगरी या करिश्चमा कलियुग में लोग नहीं मानते, पहले लोग जानते थे। कृपया इस कथन की सत्यता किसी वेद मन्त्र से या ब्राह्मण वाक्य से या अन्य शास्त्रीय वाक्य से प्रमाणित कीजिए अन्यथा इस बे-सिर-पैर की बात को जिनके सिर है बुद्दू नहीं हैं वे तो मान सकते नहीं। यह भी स्पष्ट कीजिये कि गौवों का वध कलियुग में क्यों वर्जित है ? हां ! आप पण्डित हैं, संस्कृत लिखते समय गलती न किया कीजिये। "**पशवा लम्भमम्**" इस पद में "**लम्भन**" शब्द का अर्थ "**हिंसा**" आपकी ही सूझ है। शास्त्रकार के आलम्भन का ही हिंसा अर्थ करते हैं। दोषाभासाँश्व, की जगह "**दोषाभासा:**" यह कथन अधिक संगत है। अन्यथा खींचा-तानी करनी पड़ेगी। "**अश्वालम्भ**" तथा "**निषिद्ध**" यह पुलिंग प्रयोग बिना विशेष के संगत नहीं। अत: जरा लिखते समय चौकड़ी न भूला कीजिए।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

यादृशः शब्दाः कल्प सूत्रादौ तादृशः शब्दा वेदेषु। यादृग अभिधार्थः—कल्पादि वाक्यानां तादृश एव वैदिकानाम्। यादृक पुनर्वैदिक शब्दा नामभिप्रायस्ता दृगेव कल्पादि शब्दानां भाग काचित् विप्रतिपत्तिः वेदेषु। (क) "ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वम्" (ऋग्वेद) (ख) "अजंचपचत" (अथर्वणि) (ग) "एतदुह देवानां पर मन्नाद्यं यन्मांसात्। अत्रमूर्खाणामेव भ्रमावकाशः॥ (घ) गव्यशब्देऽपि गो शब्दरस्याभिप्रायोयथा निरुक्ते "गोभिः श्रणति मत्सरम् इति मन्त्रे। "अश्वगन्धा महौषधिः पुत्रदा"। आयुर्वेदे स्पष्टमुल्लिवखितम्। जीवक ऋषभक कन्दौ-च्यवनप्राशे प्रयुज्येते। भवता स्थापनीयम् इति लिखता व्याकरण नियमस्योल्लंघनं कृतम्। अहोवैयाकरणत्वम्। ब्रह्मवैवर्त योगिनः खेचरी मुद्रांकुर्वन्ति इति लिखितम्। अस्थिगत प्राण-प्रमाण "यदिक्षितायु" रित्यादि पूर्व पत्रे चक्षुंषी उद्माध्य लोकनीयम्॥

"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

जैसा शब्द प्रयोग कल्पसूत्रों तथा ब्राह्मणादि ग्रन्थों में किया जाता है वैसा ही शब्दप्रयोग वेदों में भी किया जाता है। जैसा अभिधा शक्ति से अभिधेय अर्थ कल्पादि वाक्यों का है, वैसा ही वैदिक मन्त्रों का भी जैसा अभिप्राय प्रकाशन कल्पादि शब्दों का है, वैदिकों का भी होना है। इसमें किसी भी प्रकार की विप्रतिपत्ति किसी को नहीं है। इस प्रकार की व्यवस्था मान लेने के बाद—ऋग्वेद में "**वाजी**" (अश्व) के पाक का विधान मिलता है। अथर्व वेद

में "अज" पाक विहीत है, ब्राह्मण ग्रन्थों में मांस को परम अन्नाद्य कहा है। अतः हिंसा के होने में मूर्खों को भले ही भ्रांति हो—विद्वानों को तो इसमें सन्देह हो नहीं सकता।

गव्य शब्द में भी गोपद का अर्थ सोमवल्ली है। जैसा कि निरुक्त में "गोभिःश्रृणीत मत्सरम्" इसकी व्याख्या में लिखा है। अश्व शब्द का अर्थ अश्वगन्धा महौषधि है। जीवक और ऋषभक नामक कन्दों का चूर्ण च्यवनप्राश में डाला ही जाता है। वहां जीवक का अर्थ चकोर और ऋषभक का तेल नहीं लिया जाता। आपने "प्रामाण्यं स्थानीयम्" ऐसा लिखा है। यह प्रयोग व्याकरण नियमानुसार अशुद्ध है। हमें आश्चर्य है आपके वैयाकरणपने पर ! धन्य है आपका पाण्डित्य !!

ब्रह्मवैवर्त पुराण में जो पांच करोड़ गौवों के वध की बात है उसका रहस्य यह है कि – पांच करोड़ नसों में प्रवाहित होने वाली वृत्तियों को रोककर साधक "खेचरी मुद्रा" का साधन करते हैं। उनके अस्थिगत प्राण होने का रहस्य "यदि क्षितायु" इत्यादि मन्त्र द्वारा पूर्व पक्ष व्याख्या काल में ही दिखा दिया गया है। कृप्या आंख खोल कर वहीं देख लीजिये। अब यह द्वितीय दिवस का शास्त्रार्थ समाप्त होता है।

—विशेष समीक्षा—

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

जितने भी अर्थ किए गए हैं वे सब यौगिक हैं। तथा यह स्वामी दयानन्द जी महाराज की विजय है। जो कि सनातन धर्म अब भी अर्थों में यौगिक अर्थों का ग्रहण करने लग पड़ा है। महिधर भाष्य सहित यजुर्वेद अध्याय २३ मन्त्र १९ में मांस विधान का समाधान बड़ा कठिन है। शैवों और वैष्णवों के सिद्धान्त भी मांस परक प्रकरणों से भरे पड़े हैं। श्री पण्डित अखिलानन्द जी कृत "वेदत्रयी समालोचन" पृष्ठ १९३ व १९४ पर—"**ते ते सन्तुस्वधा वन्तो मधुमन्तो घृताश्च्युतः**" इसकी व्याख्या करते हुए स्पष्ट ही मांस का विधान माना है। इसी प्रकार "**एष वा अतिथिर्यच्छोत्रिय स्तमात् पूर्वो नाश्नीयात**"। **एतद्वा उत्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांस ता तदेव नाश्नीयात् ॥इति॥ "समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमाना श्रोत्रिया या ऽभ्यागमताय वत्सतरी या महोक्षं वा महाज" वा निर्वपति गृहमेधिनः इति धर्म सूत्रकाराः समामनन्ति उत्तर रामचरिते" ऐणेयं मांस माहृत्य शाला यक्ष्या महेवयम्। मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण ॥** (बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५६ श्लोक २३ से २९) **तौ तदा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरि निम्नगाम्। निषसाद गिरि प्रस्थे सीतांमांसेन छन्दयन् ॥** (अयोध्या काण्ड सर्ग २६ प्रश्न १ व ३) इन सब स्थानों पर तथा कात्यायन श्रोत सूत्रों में एवं अन्य स्थलों पर भी मांस का विधान स्पष्ट मिलता है। जिसका समाधान सिवाय "**प्रक्षेप**" (interpolation) के और मिलना भी कठिन है। जब तक सनातन धर्म इस शास्त्र का प्रयोग न करेगा तब तक समाधान करना बड़ा ही दुष्कर है "**कन्द विशेष**" कहकर समाधान करना सब जगह बड़ा कठिन पड़ जाएगा। महाभारत शान्ति पर्व अध्याय २६२ श्लोक ४९ नहुष द्वारा किए गए गोमेध (गवालम्भ) से १०१ रोगों की उत्पत्ति का वर्णन है। इसी प्रकार शान्ति पर्व अध्याय ३३७ में तथा वायु पुराण अध्याय ५७ श्लोक ९१ से ८२५ तक जो वर्णन मिलता है। उससे सिद्ध है कि पहले यज्ञों में जीव हिंसा नहीं होती थी। पर हमें यही क्या कम प्रसन्नता है कि पौराणिक विद्वान भी अब यज्ञ में पशु हिंसा न मानने की ओर कदम बढ़ाने लगे हैं। किसी ने ठीक ही कहा है—"**जादू वही जो सिर चढ़कर बोले**" अब नियोग में प्रमाण देखिये—"**या पूर्वं पतिंवित्वा अथान्यंविन्दते परम। समान लोको भवति पुनर्भुवपरः पतिः।।** (अथर्ववेद काण्ड ९ अनुवाक ३ सूक्त ५) **क्षेत्रजः—यस्तल्पजः प्रमीतस्यक्लीबस्यव्याधितस्यवा। स्वधर्मेण नियुक्तायां सपुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः।** (मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक १६७) **टीकाः=यो मृतस्य नपुंसकस्य प्रसवविरोधि व्याध्युपेतस्यवा भार्यायां घृताक्तत्वादि नियोग धर्मेण गुरुनियुक्तायां जातः स क्षेत्रजः पुत्रो मन्वादिभिः स्मृतः ॥** अर्थात् जो सन्तान मृत भूर्ता के बाद नियोग नियम से उत्पन्न होती हैं। वह "**क्षेत्रजः**" सन्तान कहलाती है। इसी प्रकार अश्लीलता दोष का निवारण भूमिका में किया जावेगा। □

इक्यासीवां शास्त्रार्थ--

स्थान : डीडवाना (मारवाड़) राजस्थान

दिनांक : १७ नवम्बर सन १९५३ ई० (तृतीय दिवस)

विषय : ऋषि प्रणीत ग्रन्थों की वैदिकता

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

नोट :—

शेष पदाधिकारी पूर्व की भांति ही रहे।
केवल विषय के साथ-साथ शास्त्रार्थी ही बदल गए थे।

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आर्य समाज प्रवर्तक स्वामिदयानन्द प्रणीताः सर्वे ग्रन्थाः अवैदिकाः अश्लीलत्वादि दोष दर्शनात् । यथा फोकशास्त्र प्रभृतयः । यन्नैवं तन्नैतम् । तेषाम् वैदिकत्वं अधस्तन प्रमाणे रूपन्यस्वते यदि शक्तिश्चेत्तर्हि वेद मन्त्रोद्धरण पूर्वकं समाधेयाः । वैदिक सन्ध्यायाम्—(१) ओं वाक्-वाक् प्रभृतिसन्दर्भः कस्मिन् वेदे ? (२) संस्कार विधौ "इमं ते उपस्थम्" इत्यादि सन्दर्भः कस्मिन् वेदे । (३) प्रसूता का दूध छः दिन बालक को पिलाये, पश्चात धाय पिलाये । कस्मिन् वेदे ? (४) स्तन के छिद्र पर उस औषध को लेप करे, जिससे दूध स्रवित न हो । कस्मिन् वेदे ? (५) जब वीर्य गर्भाशय में गिरने का समय आवे, नासिका के सामने नासिका इत्यादि । कस्मिन् वेदे ? (६) उष्णदेश में शिखाच्छेदन कर देना चाहिये । कस्मिन् वेदे ? (७) गर्भवती के साथ समागम न करने के समय अन्य से मैथुन ········कस्मिन् वेदे ? (८) मरे हुए पति की आशा छोड़ दूसरे पति को प्राप्त हो··· कस्मिन् वेदे ? ॥

"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

अनुमान—प्रमाण द्वारा अश्लीलता दोष होने के कारण ऋषि प्रणीत ग्रन्थ अवैदिक सिद्ध किये जाते हैं । जैसे कोकशास्त्र आदि । अप्रन्च निम्नलिखित प्रमाणों द्वारा भी वे अवैदिक ही माने जा सकते हैं । यदि आपमें शक्ति है तो समाधान कीजिये—(१) वैदिक सन्ध्या में स्वामी जी ने **"वाक्-वाक्"** इत्यादि मन्त्र दिये हैं, कृप्या बतलाइये कि ये किस वेद में कहां पर आये हैं ? (२) संस्कार विधि में **"इमंते उपस्थम्"** (विवाह-प्रकरण मन्त्र-२ **"विधि"** भाग में) जो वाक्य है वह कौन से वेद में कहां आया है ? (३) प्रसूता का दूध छः दिन बालक को पिलाने के पश्चात धाय पिलाये, इत्यादि वाक्य किस वेद के आधार पर लिखे हैं ? इसी प्रकार प्रश्न संख्या ४, ५, ६, ७, ८, ये भी हिन्दी में ही लिखे हुए हैं तथा उनके विषय में भी यही प्रश्न है कि उनका आधार कौन-सा वेद का वाक्य है ? ॥

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति -

नमः संकल्पमात्रेण सृजते विश्व कल्पनाम् । श्वेतभानु—बृहद्भानु भानुभासितचक्षुषे ॥

महर्षि दयानन्द प्रणीता ग्रन्थाः वैदिकाः वेद मूलकत्वाद्, यन्नैवं यथा वैष्णवं धर्मः न चेदं (मे) तथा, तस्मान्न तथा । इति पञ्चावयव वाक्ये वैदिकत्वं महर्षि दयानन्द प्रणीतानां सर्वेषां ग्रन्थानाम् । वाक्-वाक् इत्यादयो मन्त्राः सन्ध्योक्ताः गृह्यसूत्रोक्ताः । प्रसूतायाः दुग्धपरित्यागः आयुर्वेद शास्त्रानुसारेण मनुष्य ग्राम्य धर्मप्रकार न स्वानुभवेनोक्तः किन्तु आर्ष ज्ञानेन । यथा विषभक्षणं महर्षि चरकादिनां न भक्षयित्वा मारक मिति प्रतिपादितं तथा ।

एवं शल्य सालाक्य विषयेऽपिवेदितव्यम् । किञ्च मनुष्य ग्राम्य धर्म एवमेव भवति, किम्भवताऽसौसारमेय वेद नुष्ठीयते । उष्णदेशे शिखाछेदनं मनुना जटिलोवा मुण्डोवा अथवास्याच्छिखाजटः, इत्यादिना प्रोक्तम्: । गर्भिण्या (सह) समागमो मनुना निषिद्धः । "उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकम्" (ऋग्० मण्डल १० सू० १८ मन्त्र ८) अत्र नियोगं प्रति पादयता महर्षिणा सद्यो दिवंगत भर्तृकेव मुपदिश्यते । तस्मात् सर्वमपि महर्षि प्रणीतं वाक्यजातं वैदिक मेवेति सिद्धम् । किञ्च अश्लीलता प्रति पादकत्वेन यदि वैदिकत्वम पतितर्हि कामशास्त्र प्रति पादकेवेदेऽपितद् भवता कथं स्वीक्रियते इत्युच्यताम् । इति ॥

"लोकनाथ"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति :-

सबसे प्रथम संकल्प मात्र से संसार की रचना करने वाले, सूर्य-चन्द्र-अग्नि-रूपी तीन नेत्रों वाले भगवान को नमस्कार किया । तदनन्तर पण्डित जी बोले कि—ऋषि प्रणीत ग्रन्थ वेद मूलक हैं । यह हम सर्वप्रथम अनुमान प्रमाण से सिद्ध करते हैं । (१) "वाक्-वाक्" यह मन्त्र गृह्यसूत्रों में आता है । सूत्र भी ऋषि प्रणीत हैं, वेदानुसारी हैं । (२) "इमं ते" इत्यादि मन्त्र वेदानुसारी ब्राह्मणों में प्रोक्त है । (३) प्रसूता का दूध बालक को नहीं पिलाना चाहिये यह आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार लिखा है । (४) स्तनच्छिद्रों पर औषधलेप भी आयुर्वेद शास्त्रानुसार निर्दिष्ट किया गया है । (५) इस प्रश्न पर परम् तपस्वी, ऊर्ध्वरेता महर्षि की भद्दी मजाक करते हुए जो आपने कहा है वह आपको ही शोभा देता है । उन्होंने जो कुछ लिखा है वह अपने अनुभव से ही लिखा हो यह बात नहीं । ज्ञान दृष्टि से देखकर भी अनेक बातें लिखी जाती हैं । महर्षि सुश्रुत ने विष को मारक बतलाया या प्राकृत को अम्ल बतलाया तो वह खाकर नहीं बतलाया । यदि खाकर बतलाते तो मर जाते, विष्ठा भक्षण करते तो प्रमत्त कहाते, किन्तु सब कुछ आर्ष ज्ञान से बतलाया है । इसी प्रकार शल्य क्रिया प्रतिपादक आचार्यों ने गर्भ विदारण बतलाया है । वह स्वयं गर्भ धारण करके नहीं बतलाया, किन्तु अपने ज्ञान व तन्मूलक अनुभव से बतलाया है । मित्रों ! मनुष्य जाति में तो नाक के सामने नाक ही रक्खी जाती है । यदि आप यह कर्म कुत्तों के समान करते हों तो आप जानें (जनता में अपार हंसी तथा तालियों की गड़गड़ाहट) (६) ऊष्ण देश में शिखा या बालों का रखना हानिप्रद होने पर भी निषिद्ध कहलाता है । मनुस्मृति में भी लिखा है कि—"जटिलोवा, मुण्डोवा,⋯" अर्थात् या तो केश बढ़ा ले (पर्वतीय प्रदेश में) या घोटमघोट करा ले । (उष्णदेश में) (७) गर्भवती के साथ समागम का निषेध तो लौकिक पशुओं से भी सिद्ध है । अपूर्वार्थ प्रतिपादक वेद की इसमें क्या आवश्यकता ? यह भी आयुर्वेद शास्त्र का लोकानुमोदित पशु समाज प्रतिपालित विषय है । (८) मृत पति का परित्याग कर (सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रहने पर) पत्यन्तर को प्राप्त करना नियोग प्रतिपादक "उदीर्ष्वनारीभिजीवलोकम्" इस ऋग्वेद के मन्त्र के अनुकूल है । इसका मतलब यह नहीं कि—एक तरफ तो पति का शव पड़ा है, तथा दूसरी ओर उसके सम्बन्धी उस स्त्री को अन्य के साथ सम्बन्ध करने की प्रेरणा कर रहे हैं, किन्तु मृत भर्तृका को कुछ समय के बाद उसके जाति-बन्धु इस प्रकार समझाते हैं । इस प्रकार महर्षि दयानन्द का प्रत्येक वाक्य वेद मूलक है ।

एक बात आपने ऐसी लिखी है, जिसे सुनकर आपकी बुद्धि पर तरस आता है । आपने अपने "अनुमान वाक्य" में यह सिद्ध किया है या यह व्याप्ति मानी है कि जहां-जहां अश्लीलता होती है वहां-वहां वैदिकत्व या वेद मूलकत्व नहीं रहता । तो महाराज क्या कामशास्त्र का बीज रूप से वर्णन वेद में नहीं है ? यदि नहीं तो वेद अपूर्ण हो जायेगा । तथा जिन मन्त्रों में अश्लीलता पाई जाती है वे वेदमन्त्र आपके अनुमान की चोट से वेदमन्त्र ही न

रहेंगे, जैसे—"जायेव पत्ये उशती सुवासाः "मा में दभ्रांणि मन्यथा, ताउभौ चतुरः पदः सं प्रसारयाव" (यजुः २३-२०) "मर्य न योषा, अहल्यायै जारः" इत्यादि मन्त्रों की फिर क्या गति होगी ? अतः आपका अश्लीलत्व हेतु बड़ा ही लचर है। स्वरूपा सिद्ध है तथा हेत्वाभास है।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

दयानन्दीय ग्रन्थानां वैदिकत्व साधनं दयानन्द कृतेऽपि अतीव दुष्कर तमम्। वाक्-वाक् प्रभृति मन्त्रो गृह्यसूत्रे कस्मिन् सूत्रे वृथैव किमप्युल्लिख्य समयस्यापलापः क्रियते। किं सामाजिकैः गृह्यसूत्राण्यपि वेदे गृह्यन्ते ? अहो ! भवतां वैदिकत्वम् ? अथ मन्त्रभागस्यैव वैदिकत्व स्वमतं परित्यज्य आयुर्वेदिक ग्रन्थानामपि वैदिकत्वं स्वीक्रियते दयनीया भवतांदशा। शिखाच्छेदनं कस्मिन् वेदे ? मया सर्वत्रवेद मन्त्राः पृच्छयन्ते भवता च तत्तद्लौकिकानां ग्रन्थानां चर्चा क्रियते। स्तनच्छिद्रे महौषधिलेपः। वीर्याकर्षणं योनिसंकोचनादिकं च ब्रह्मचारिणो दयानन्दस्य स्वानुभवविजृम्भितम् ? एवसति दयानन्द ग्रन्था अवैदिकाः॥

"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

यदि दयानन्द स्वयं उतर आवें और अपने ग्रन्थों को वैदिक सिद्ध करने लगें तो उनके लिए भी यह बड़ी टेढ़ी खीर होगी। फिर आपकी तो शक्ति ही क्या है ? जनता में हंसी···"वाक्-वाक्" इत्यादि मन्त्र गृह्यसूत्र में आता है। कौन-से गृह्यसूत्र में आता है ? व्यर्थ ही क्यों समय काट रहे हैं ? कोई काम की बात कहिये, यदि गृह्यसूत्रों में "वाक्-वाक्" आ भी गया तो क्या गृह्यसूत्र भी वेद हैं ? आपने आयुर्वेद शास्त्र का भी प्रमाण देकर क्या यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आयुर्वेद भी वेद है ? तब तो मन्त्र भाग की ही प्रमाणता मानने का आपका सिद्धान्त आप स्वयं ही छोड़ रहे हैं, मैं पूछता हूं कि, शिखाच्छेदन किस वेद मन्त्र में प्रतिपादित है ? यह बतलाइये मैं वेद मन्त्र पूछता हूं और आप अनार्ष (लौकिक) ग्रन्थों के हवाले देते चले जाते हैं। स्तन छिद्रों पर महौषधि लगाना, वीर्याकर्षण, योनि संकोचन आदि का निर्देश क्या ब्रह्मचारी दयानन्द ने अपने अनुभव से लिखा था ? (जनता में शोरोगुल···) कुछ भी हो वेद मन्त्रों को बिना उपस्थित किये ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ वैदिक नहीं माने जा सकते अतः अवैदिक ही हैं।

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति—

गृह्यसूत्र शब्देन पारस्कर गृह्यसूत्रमेव गृह्यते इति प्रसिद्धं सर्वत्र पण्डितेषु—एतावन्मात्रमपिहन्त न बुध्यते भवता पण्डित रूपेणेत्यहो पाण्डित्या चण्डता भवतः। "वांङ्मआस्ये न सोः प्राणश्चक्षुरिति मन्त्रे अथर्वणे ६० तमे सूक्ते प्रोक्तम् केवलं मन्त्र भागस्यैव वैदिकत्वं प्रामाण्यं वानास्माभिर्मन्यते। किन्तु वेदाविरोधि स्मृतीनामपि प्रामाण्यं वयमूरी कूर्म हे"। रेतो मूत्रं विजहाति यो नौ प्रविशदिन्द्रियम। अस्मिन् याजुषे मन्त्रे पुंसा स्त्रियाः सम्मुखे मुखं करणीय मिति लिखितम्। शिखाच्छेदनं रोग विशेषेण काल विशेषेण वा प्रतिपाद्यते। स्तने महौषधे रूपलेपश्च प्रसूता शक्तिम् सरक्षणोपायः स्वानुभव सिद्ध एव। क्षेत्रज्ञ सन्तानस्य नियोग जत्वं स्पष्टमेव रसालप्रणीते भाषा शब्द कोषे प्रतिपादितम्। तथैव नवमेऽध्याये १६ मंत्रेच स्पष्ट मेतत्। "शिखाछेदनंञ्च यत्र बाणा। संपतन्ति। यजुः

१७ अ० ४८ मन्त्रे प्रतिपादितम्"। योनि संकोच नादेरुत्तरं दत्तचरम्। यथा—सुश्रुतेन स्वानुभवं बिना गर्भिण्याः उदर—अनिस्सरतः गर्भस्य बहिष्करणाय शस्त्रच्छेदनमुपयोगीति प्रतिपादितं आर्षेण ज्ञानेन विषस्य मारकत्व चोक्तं तथैव महर्षिदयानन्दे नेति किं बहुना।

"लोकनाथ"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति—

महाशयों ? गृह्यसूत्र शब्द का अर्थ पारस्कर गृह्यसूत्र ही है। यदि कोई "**गृह्यसूत्र**" कहे तो पण्डित लोग पारस्कर को ही समझते हैं। फिर आप यह भी नहीं समझे, आश्चर्य है आपकी पण्डिताई पर ! "**वाक्-वाक्**" यह मन्त्र अथर्ववेद के ६०वें सूत्र के "**वङ्म्आस्वे**···" इत्यादि मन्त्र के आधार पर है। आपको यह भ्रम है कि आर्य समाज केवल मन्त्र भाग को ही प्रमाण मानता है। आर्य समाज वेदानुकूल स्मृति, ब्राह्मण ग्रन्थ, कल्पसूत्र आदि को भी प्रमाण मानता है। अतः उनका लेखा भी मन्त्र भागात्मक मुख्य वेद प्रमाण के विरोधी न होने पर वैसे ही प्रमाण माना जायेगा जैसे वेद मन्त्र ! इसीलिए हमने मन्त्र भिन्न कतिपय प्रमाण उपस्थित किये थे। "**रेतो मूत्रं विजहाति**—" इस आयुर्वेद में आये मन्त्र में यह ध्वनित किया गया है कि—"मनुष्य नाक के सामने नाक और मुंह के सामने मुंह रक्खे" शिखा का कटवाना केवल रोग विशेष से पीड़ित होने पर या काल विशेष (गर्मी ऋतु की अत्युष्णता) होने पर ही स्वीकार किया गया है। कामचार से नहीं। नैमेत्तिक उपचार तो आप भी स्वीकार करते हैं। स्तनच्छिद्रों पर महौषध लगाना प्रसूता की शक्ति रक्षा का एक उपाय है, दूध पिलाने से शक्ति क्षीण होती है। वह माता पहले ही प्रसव पीड़ा आदि से कमजोर थी यदि वह अपना वैसा दूध बालकों को पिलायेगी तो कमजोर दूध पीकर बालक भी कमजोर रहेगा। माता की शक्ति भी न बढ़ने पावेगी। अतः यह सब किया गया है। यदि माता हृष्ट-पुष्ट है तो वह अपना दूध पिला सकती है। जैसा यजुर्वेद के १७-७०वें मन्त्र में लिखा भी है। "**क्षेत्रज**" सन्तान नियोग से ही उत्पन्न होती है। यह आधुनिक कोषाकार भी मानते हैं। श्री रमाशंकर शुक्ल एम० ए० (रसाल) प्रणीत हिन्दी भाषा के कोष में भी ऐसा ही लिखा है। यजुर्वेद के ऊपर वाले अध्याय व मन्त्र में भी यही अर्थ स्पष्ट लिखा है। योनि संकोचन आदि का उत्तर दिया जा चुका है। इस बात को बार-बार कहते हुए आप मुख संकोच नहीं करते यह बड़ी लज्जा की बात है। प्रत्येक बात निजि अनुभव से ही लिखी या कही जाती है ऐसा कोई राज नियम नहीं है। देखिये तलवार से गला काटने पर मनुष्य मर जाता है। यह बात आप स्वयं किसी का गला बिना काटे भी जानते हैं। क्योंकि इस विषय में अन्धों का अनुभव ही प्रमाणभूत माना गया है। इसी प्रकार सुश्रुत मुनि ने गर्भिणी के उदर का शस्त्र छेदन उस ही अवस्था में बतलाया है जबकि गर्भ वृद्धिगत हो जाने के कारण बाहर न आ रहा हो। यहां यह नहीं कहा जा सकता कि—सुश्रुत ने स्वयं गर्भ धारण कर अपना पेट कटवाकर या काट कर ही सब लिखा था, यदि सुश्रुत का गर्भ धारण आदि मान भी लिया जावे तो यह सब सृष्टि नियम विरुद्ध होगा। इस ही प्रकार विष सर्पादिका तथा स्थावरादि मारक होता है। यह बात भी ऋषियों ने स्वयं विष खा-खाकर नहीं लिखी नहीं तो विष खाकर मरने पर वे कैसे लिखते ? अतः "**स्वानुभव**" का अर्थ व्यापक लीजिये। संसार में "**आर्षज्ञान**" या "**प्रातिभज्ञान**" भी एक ज्ञान है। जिसके आधार पर ऋषियों ने ग्रन्थ बनाये हैं। ऋषि दयानन्द ने भी "**आर्य ज्ञान**" से अनेक बातों को साक्षात् करके लिखा है। अधिक क्या कहा जाये,? हठ व दुराग्रह की दुनियां में कोई दवा है नहीं। इतने कहते हुए मैं, अपने वक्तव्य को विराम देता हूं ॥इतिशम्॥

इक्यासीवां शास्त्रार्थ—

स्थान : डीडवाना (मारवाड़) राजस्थान

दिनाङ्कः : १८ नवम्बर सन् १९५३ ई० (चतुर्थ दिवस)

विषय : क्या पुराण वेदानुकूल हैं ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

नोट :—

शेष पदाधिकारी पूर्व की भांति ही रहे।

केवल विषय के साथ-साथ आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थी ही बदल गए थे।

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पद्मपुराणे अण्डकोष भक्षणं शिवाज्ञया कृतमिति २५ तमेऽध्याये ६० तमेश्लोके वर्णितम्। कस्मिन् वेदे ? किमयमपि कन्द विशेषः ? कौशल्यायाः अश्वस्य च समागमवर्णनम् बाल्मीकि रामायणे ? किमयमपि कन्द विशेषः। कुब्जायाः मैथुनेन वधो ब्रह्मवैवर्त पुराणे वर्णितः कस्मिन् वेदे ? किमयमपि कन्द विशेषः। मर्यादा पुरुषोत्तमस्य श्री कृष्णस्य परदाराभिगमनं भागवते वर्णितम्। कस्मिन् वेदे ? अवकीर्णिप्रायश्चिते गर्दभशिश्न भोजनम् ब्रह्माकरोतु-इति वर्णितम्। कस्मिन् वेदे ?

"बुद्धदेव"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पद्म पुराण के २५वें अध्याय के ६०वे श्लोक में शिव की आज्ञा से अण्डकोश का भक्षण करना लिखा है। कृपया बतलाइये कि यह अण्डकोश के बने च्यवनप्राश का भक्षण किस वेद में लिखा है ? या यह भी कोई कन्द विशेष है ? जिसे देवियों ने चाखा था। कौशल्या का तथा घोड़े का समागम बाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में वर्णित हैं। कृपया बतलाइये कि यह सब कर्म किस वेद मन्त्र की आज्ञानुसार किया गया है ? इसी प्रकार कुब्जा की मैथुन करते-२ श्री कृष्ण ने जान ले ली, यह ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है। यह किस वेद के आधार पर लिखा है ? मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण का परदाराभिगमन भागवत में खुले आम लिखा है। इसका कौन सा वेद मन्त्र आधारभूत है ? अवकीर्णि (अपने ब्रह्मचर्य को खण्डित करने वाले ब्रह्मचारी) का यह प्रायश्चित्त लिखा है कि—एक यज्ञ किया जाये, जिसमें ब्रह्मा **"गर्दभ शिश्न"** का भोजन करे। यह किस वेद के आश्रय से लिखा है ? कृपया इन प्रश्नों का समाधान कीजिये, तथा यदि दम है तो पुराणों की वैदिकता प्रतिपादित कीजिये।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री –

पक्ष स्थापना रहितो न भवतिवादः। न्यायशास्त्रस्य अक्षरमपि न ज्ञातंभवतेति निश्चित् प्रथम्। यद्यपि नियमानुसारं पराजितो भवान् तथापि यत्किमपि लिखितं तस्योत्तरं दीयते। (१) शिवदूती मृत्यु देवता सा शिवाज्ञया ब्रह्माण्डं भक्षयत्येव, ब्रह्माण्डशब्देऽपि अण्डशब्दस्य विद्यमानता अयं भावः सर्वेस्वपि वेदेषुआम्नातः। (२) **"कौशल्या-धर्मकाम्यया"** इति वदता श्री बाल्मीकि महर्षिणा स्वयमेवास्य वैदिकत्व मुद्घोषितम् वेदस्यैव धर्म मूलत्वात्। (३) परस्य परमात्मनो दारा रूपिण्यो या शक्तयस्तासाम् अभिमर्षणम् बलादाश्रयण मिति वृद्धभयततोषिणी

टीकाकारः। (४) विलुप्त ब्रह्मचर्यस्य तादृग अपमान मेवास्य कर्मणोऽभिप्रायः। (५) ब्रह्मा सर्वविदापितादृशो दण्डस्य भागी एवं सर्वेऽपिभवदुद्ृ ङ्किताः शंकाः परास्ता-वेदमन्त्राणा मुद्धरणं मत्कृते पुराण दिग्दर्शने लोकनीयम्।

"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

महात्मन्:—आप शास्त्रार्थ करने को तो चल दिये, पर आपको शास्त्रार्थ की अ-आ-इ-ई-भी मालूम नहीं। कि पक्ष स्थापना से रहित वाद नहीं होता। और वह आपने की ही नहीं। करते भी क्यों ? यह तो वही कर सकता है जिसने न्यायशास्त्र पढ़े हों। अतः नियमानुसार आप पराजित हो चुके हैं। फिर भी आपके प्रश्नों का उत्तर देना कर्त्तव्य ही है ; सुनिये—शिव जी ने अपने अण्डकोष भक्षण करने के लिए कहा इसका यह तात्पर्य है कि शिवदूती नामक मृत्यु देवता है उसने शिव भगवान की आज्ञा से ब्रह्माण्ड का भक्षण आरम्भ कर दिया यही तत्व सार वेदों में भी वर्णित है। केवल अण्ड शब्द देखकर अश्लील अर्थ करना आपकी दूषित मनोवृत्ति का ही परिचायक है।

कौशल्या ने धर्म कामना से अश्व समागम किया, यह स्पष्ट ही लिखा है। अतः धर्म दृष्टि से जो कार्य किया जाता है। वह ऋषि (वेद) संचोदित होने से वैदिक ही होता है। क्योंकि धर्म का मूल वेद ही है। कृष्ण भगवान के विषय में परदाराभिमर्षण रूपी दोष भी सर्वथा अयुक्त है। क्योंकि आपने उसका आशय ही नहीं समझा यहां पर कृष्ण को परब्रह्म परमात्मा बतलाया है। उसकी अनन्त शक्ति ही उसकी दारा (स्त्रियां) हैं, उन शक्तियों को अपने अधिकार में रखना ही—परात् पर का दाराभिमर्षण है, वह अर्थ नहीं जो आप समझते हैं, यही अर्थ बृहद् भक्त तोषिणी नामक टीका में भी स्पष्ट लिखा है, गर्दभ, शिश्न, प्राशन, का भावार्थ लीजिये शब्दार्थ नहीं। जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य अवस्था में विद्याध्ययन करते हुए अपना व्रत खण्डित कर देता है। उसका इस प्रकार अपमान करना चाहिये, यही इन वाक्यों का तात्पर्य है। जैसे—"विषंभुङ्क्ष्वमाचास्य गृहे भुङ्क्था" में होता है। सर्व शास्त्र वित् ब्रह्मा तक को ऐसा दण्ड दिया जाना चाहिये, इस अभिप्राय से यह लिख दिया गया है। यदि विशेष मन्त्रों के उदाहरण देखने हों तो मेरी बनाई हुई "पुराण दिग्दर्शन" नामक पुस्तक में देख लीजिये। इस प्रकार आपकी उठाई हुई सब शंकाओं का एक-एक करके समाधान कर दिया, और आप परास्त हो चुके हैं।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

रविवासरे वेश्यया ब्राह्मणो निमन्त्रणीयः तां रात्रिंच तस्मै रतिं दद्यात्, ताश्च वेश्याः कृष्णपत्न्यः सुरापान क्षीबाः कृष्णशापेन वेश्यात्वं गताः कृष्णोऽपि सुराम् पिबति इति भविष्य पुराणे उत्तरपर्वणि लिखितं ११२ अध्याये। तत् कस्मिन् वेदे ?

"बुद्धदेव"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

एक नया प्रश्न और लीजिये—भविष्यपुराण के उत्तर पर्व के ११२वें अध्याय में लिखा है, कि रविवार के दिन वेश्या को चाहिये कि ब्राह्मण को न्योता दे तथा उस ही रात्रि में उस ब्राह्मण के साथ विषय भोग भी करे, यह वही वेश्यायें हैं जो कि पहले जन्म में भगवान् श्री कृष्ण की धर्म पत्नियां थी तथा फिर भगवान के शाप से वेश्या बन गई; श्री कृष्ण भगवान भी सुरा (मद्य) पान करते थे, भला यह तो बतलाइये कि, यदि पुराण वैदिक हैं तो सुरापान करना किस वेद में लिखा है ? वेद तो स्पष्ट ही सुरापान तथा जुआ खेलने का निषेध करता है देखिये—अक्ष सूक्त ऋग्वेद का, यदि आप सोम को ही सुरा मानें तो इस "समझ" की बलिहारी है आपने जो फर्माया कि पक्ष स्थापना रहित "वाद" नहीं होता। हां ! नहीं होता, पर यह कहां लिखा है कि पक्ष स्थापना पञ्चावयव वाक्य के घेरे में ही रहती है ? और प्रकार से नहीं; हमने तो "**कस्मिन् वेदे**" कह-कह कर पुराणों की अवैदिकता है, यह पक्ष स्थापना सहे तुक कर दी, हां लकीर नहीं पीटी। कौशल्या ने अश्व समागम द्वारा धर्म पालन किया, यह कौन कहेगा सिवाय आपके ? अण्ड का ब्रह्माण्ड और परदाराभिमर्षण को जो आर्य समाजी अर्थ यौगिक व्याख्या से किया है, यह ऋषि दयानन्द का जादू है। जो आप भी यों कहने लग पड़े हैं। हम भी यही चाहते हैं कि, आप सारे पुराणों की ऐसी ही व्याख्या कर दें या इन अश्लील अंशों को पुराणों से निकाल दें। ब्रह्मवैवर्त पुराण में श्री कृष्ण जी ने मैथुन करते-करते कुब्जा को मार डाला, यह लिखा है। ऐसा करने का किस वेद में विधान है ? आर्य समाज का इस विषय में जो मत है, वह स्पष्ट है, श्री कृष्ण जी एक आदर्श क्षत्रिय थे, वे मर्यादा पुरुषोत्तम थे, उन्होंने ऐसा वेद विरुद्ध कर्म कभी नहीं किया, वे गीता में स्वयम् कहते हैं, "**वर्त एव च कर्मणि**" अर्थात् मैं पूर्ण रूप से धर्म मर्यादा में चलता हूं, इसलिए जिसने उन पर यह झूठा कलंक लगाया है, वह सारे विश्व वा विशेषत: भारतीय राष्ट्र का घोर अपराधी है, इस प्रकार के झूठे वाक्य ग्रन्थों में से निकाल देने चाहियें। किन्तु श्री माधवाचार्य जी ने इसका विचित्र उत्तर दिया, उनका उत्तर सुनिये—"**कुब्जाया विषयोपभोग शान्तिर्भगवता कृता, भगवान् सर्वेषामेव भक्तानां काम शान्ति करोति।**" कुब्जा की विषयोप भोग द्वारा शान्ति भगवान् ने की सो भगवान् सब ही भक्तों का काम शान्ति के लिए करते हैं। क्या बढ़िया उत्तर है ? क्या यही सनातन धर्म है ? जिसका नमूना बनने के लिए जिसकी रक्षा के लिए आपके मतानुसार भगवान ने अवतार लिया था ? सोचिए तो सही आपके मतानुसार भगवान इसीलिए अवतार लेते हैं कि पापियों का नाश करें और अपने आदर्श द्वारा संसार का चरित्र सुधारें, श्री कृष्ण जी ने स्वयम् गीता में कहा है—"**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जनः**" श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, सब वैसा ही करते हैं। अब आप चाहे उन्हें आदर्श पुरुष मानें या अवतार मानें उनका आचरण तो आदर्श होना ही चाहिये। परन्तु यह क्या विचित्र लीला है, भगवान ने मनुष्य जन्म भी धारण किया और वह भी यह आदर्श पेश करने के लिए, कि गुरुकुल जाने से पहले उन्होंने कुब्जा से छेड़छाड़ की और गुरुकुल से लौट कर—"**सैरन्ध्रयाः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहंययो**" (श्रीमद्भागवत दशम्, स्क० अ० ५४८ श्लोक १) कामतप्त कुब्जा दासी के घर पहुंचे और फिर "**सा मञ्जना लेप दुकूल भूषणस्रग्गन्ध ताम्बूल सुधाऽऽसवादिभिः। प्रसाधि तात्मोपससार माधवं सव्रीड़लीलोत्स्मित विभ्रमेक्षितैः॥**" (दशम् स्क०, अ०४८ श्लोक ४) कुब्जा ने उनके साथ रमण किया। जिसका विस्तार यहां देना कठिन है ऊपर श्लोक में विस्तार आ चुका है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में यह भी लिखा है कि कृष्ण जी कुब्जा के साथ समागम करके फिर गुरुकुल गये। श्रीमद् भागवत ने थोड़ी-सी लाज बचा ली थी, ब्रह्मवैवर्त वाले ने तो बिल्कुल ही डुबो दी।

अब आप बताइये कि यह लीला गुरुकुल जाने से पहिले हुई या पीछे ? सच बात तो यह है कि यह दोनों झूठे हैं इसलिए इनके बयान आपस में नहीं मिलते । सच बात वही है जो श्री कृष्ण जी महाराज ने स्वयम् कही है—"उत्सीदेयु रिमे लोका, न कुर्याङ्कर्म चेहदम्" अर्थात्—हे अर्जुन ! यदि मैं धर्म पर न चलूं तो संसार, मार्ग भ्रष्ट होकर दुख में धंस जाये इसलिए मैं कोई धर्म की मर्यादा नहीं तोड़ता । प्यारे वैष्णव भाइयो ? कृष्ण जैसे महात्मा पर कलंक लगाने वाले वाक्य ग्रन्थों में से निकाल दो । बोलो क्षत्रिय शिरोमणि कृष्णचन्द्र भगवान की जय !

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

कुब्जाया विषयोपभोग शान्तिर्भगवता कृता । भगवान सर्वेषामेव भक्तानां काम शान्ति करोति ॥ पौन्ड्रकनामा कृत्रिमः कृष्णस्तस्यैव गृहे भवद्वर्णिता दशा जाता । वेश्या समस्या समाधानं व्रतोपवासदिना एव भविष्यति नान्यः पन्था । सर्वेषां प्रश्नामुत्तरदत्तम् ॥

"माधवाचार्यः"

—भाषार्थ—

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

कुब्जा की इच्छापूर्ति भगवान ने की । क्योंकि भक्तों की कामनाओं की पूर्ति भगवान करते ही हैं । यह जो वर्णन आप सुना रहे हैं यह भागवत या महाभारत के श्री कृष्ण का नहीं है । किन्तु पौण्ड्रक नामक एक व्यक्ति था जिसने अपना नाम श्री कृष्ण रख लिया था । उसने ही यह सब लीला की थी, अतः वे कृष्ण तो सर्वथा निर्दोष हैं । वेश्याओं ने जो कृष्ण शाप से वेश्यापन प्राप्त किया, यह घटना श्री कृष्ण दुराचारियों को घृणित योनियां प्रदान करते हैं तथा यदि वे व्रत-उपवास आदि करें तो उन्हें उन्नत योनि भी मिल जाती है, इस प्रकार कर्म के ज्यायस्त्व की ही पुराणों में घोषणा की गई है । आप भाव समझने की कोशिश नहीं करते हैं । भगवान आर्य समाजियों की बुद्धि शुद्ध करे । हमारी यही कामना है । तब आपको पुराणों में पदे-पदे वेद तत्व बिखरा हुआ नजर पड़ेगा । इस प्रकार पुराण सर्वथा निष्कलंक एवं वैदिक हैं । आपकी अब कोई शंका नही रही जिसका समाधान न किया गया हो । बोलो सत्य सनातन धर्म की जय । (प्रत्युत्तर में बोलो वैदिक धर्म की जय) के न.रों से आकाश गूंज उठा । और इस प्रकार यह डीडवाना (मारवाड़) में शास्त्रार्थ का क्रम समाप्त हुआ ।

इस शास्त्रार्थ में विशेष बात—

इस शास्त्रार्थ के साथ-२ दोनों पक्ष वालों का उत्सव भी हो रहा था । उत्सव के बीच श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न तथा श्री पण्डित लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति में कुछ बातें हो गयी थी—जिस पर दोनों विद्वानों ने क्षमा मांगी, जो इस प्रकार थी ।

कविरत्न श्री पण्डित अखिलानन्द जी द्वारा क्षमा मांगना—

दिनांक १५-११-५३ को सनातन धर्म सभा के वार्षिकोत्सव के अवसर पर अपने भाषण में आर्य समाजी

पण्डित लोकनाथ जी के प्रति मेरे मुंह से जो कटु वचन निकले विशेष तौर पर "**कुतिया के साथ नियोग**" के बारे में जो बात कही गई, उस बारे में मुझे विश्वास हो गया है कि वह सर्वथा निर्मूल थी अतः उस कथन पर मुझे खेद है।

तारीख—१७-११-५३

हस्ताक्षर—
१—"**अखिलानन्द**"
२—"**लोकनाथ**"

श्री पण्डित लोकनाथ जी द्वारा निराधार खेद प्रकाश—

दिनांक १४-११-५३ को आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर अपने भाषण में सनातनी विद्वान पं० अखिलानन्द जी के प्रति कोई व्यक्तिगत आक्षेप या कटुवचन नहीं कहे थे। जो सूचना उन्हें इस बारे में दी गई कि मैंने उन्हें व्यभिचारी व दुराचारी होने के कारण आर्य समाज से कान पकड़कर निकाल दिया गया, यह बात सर्वथा निर्मूल है एवं मुझे आशा है कि मेरे इस वचन पर वह अवश्य विश्वास करेंगे।

दिनांक—१७-११-५३

हस्ताक्षर—
१—"**लोकनाथ**"
२—"**अखिलानन्द**"

□ □ □

नोट -

इस शास्त्रार्थ के अन्त में अनेकों विद्वानों की सम्मतियां छपी हुई थी, तथा कुछ श्री अखिलानन्द जी कविरत्न द्वारा आर्य समाज मे रहते हुए उपरोक्त विषय के सम्बन्ध में उनके ग्रन्थों के हवाले छपे हुए थे। जो आर्य समाज के सिद्धान्त की पुष्टी करते थे। हम समझते हैं मूल शास्त्रार्थ से ही "**नीर-क्षीर विवेक**" हो जाता है। इसलिए उस सब सामग्री को अनुपयोगी समझते हुए नही दिया गया।

संग्रहकर्त्ता —
"**लाजपत राय अग्रवाल**"

तिरासीवां शास्त्रार्थ—

स्थान : डीडवाना (मारवाड़) राजस्थान

दिनांक : १९ दिसम्बर, सन् १९२३ ई०

विषय : **क्या मूर्ति पूजा व मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?**

पौराणिकों की ओर से प्रश्नकर्ता : **(मूल कापी में नाम नहीं था)**

आर्य समाज की ओर से उत्तरदाता : **प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी**

नोट —

यह शास्त्रार्थ सामग्री "**स्वाध्याय निर्णय**" (मासिक) पत्र जो उत्तर बिहार आर्य सभा मुजफ्फरपुर का मुखपत्र है, जिसके मुख्य सम्पादक "**श्री ओम प्रकाश जी ब्रह्मचारी**" हैं, के माध्यम से प्राप्त की है, वैसे यह विवरण सभा ने भी "**श्री पण्डित विद्यानन्द जी मन्तिकी**" (काशी) की स्मृति में उनकी डायरी तथा पुरानी फाइलों से प्राप्त की थी, उन सबका यह एक सराहनीय कार्य है, जिससे यह लुप्त कामग्री प्रकाश में आ सकी ।

संकलन कर्ता —

"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पौराणिक पण्डित—

सबसे अच्छा धर्म कौन है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

सनातन वैदिक धर्म ।

श्री पौराणिक पण्डित—

आर्य समाज नवीन है, सनातन की अपेक्षा आर्य समाज में क्यों जायें ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

प्रश्न सुन्दर है, सनातन ही आर्य हैं ।

श्री पौराणिक पण्डित—

सृष्टि कर्त्ता को साकार मानते हो या निराकार ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

निराकार ।

श्री पौराणिक पण्डित—

निराकार को हम भी मानते हैं, किन्तु सृष्टि बनाते समय परमात्मा साकार बन जाता है । **"यत्र-यत्र कर्त्तृत्वं तत्र-तत्र साकारत्वम् । सर्वे कर्त्तारः साकाराः सन्ति कोऽपि कर्त्ता निराकारः नास्ति"** ।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

कर्त्ता दो प्रकार के होते हैं । स्वाभाविक तथा नैमित्तिक । ईश्वर स्वाभाविक कर्त्ता है, क्योंकि उसका ज्ञान स्वाभाविक है । उसके ज्ञान, बल तथा क्रिया स्वाभाविक हैं, परमात्मा—**"योऽतति व्याप्नोति स आत्मा । परश्चासावात्मा च, य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽति सूक्ष्मः सः परमात्मा ।।"** जो सतत् सब जगह है - Spaceless है, निराकार ही होगा, साकार अव्यापक एवं ससीम होता है । **"अव्यापकत्वात् नास्ति सः ईश्वरः । अतः साकारत्वेन ईश्वरः जहाति"** ।। व्यापक होने से परमाणु में क्रिया द्वारा ही ईश्वर व्यापक होता है । साकारकर्त्ता बाहर से निर्माण करता है । जैसे चूना लगाकर दीवार को मोटा बनाते हैं, निराकार कर्त्ता भीतर से बाहर बनाता है, जैसे दाल-भात खाकर भीतर से बाहर आता है,·· ···श्रोताओं में तालियां······निराकार की बनाई सृष्टि में गाय-बैल आदि आगे भी गाय-बैल पैदा करते हैं । परन्तु साकार जीव का बनाया हुआ हाथी, घोड़ा आगे बच्चा पैदा नहीं

करता है। ग्रामोफोन सुन्दर गाने दे सकता है। परन्तु दूसरा रेकार्ड नहीं बना सकता, परन्तु परमात्मा के बनाए गायक आगे अपने जैसा बच्चा पैदा करते हैं तथा कर सकते हैं। इतनी व्याख्या के बाद भी साकार-निराकार का भेद न खुले तो और प्रश्न करें। टर्न टन टन ऽ ऽ···

नोट—

घंटी बज गई, और प्रश्नकर्त्ता बैठ गये। पुन: पौराणिक पण्डित खड़े हुए और प्रश्नोत्तर आरम्भ हुआ।

श्री पौराणिक पण्डित—

यदि ईश्वर साकार नहीं होगा तो वेदों का उपदेश कैसे देगा? बिना उच्चारण किए कानों से हम सुन नहीं सकते और न हमें ज्ञान होगा अत: परमात्मा का साकार होना निहायत जरूरी है। निराकार यह सब कार्य कैसे कर सकता है?······तालियां···

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आपने ठीक ही कहा है। बिना साकार हुए परमात्मा वेद का उपदेश नहीं दे सकता, क्योंकि उसके मुख नहीं होगा। अत: वह साकार होकर मुख आदि इन्द्रिय प्राप्त कर लेगा तब वह वेदों का उच्चारण करेगा हम कानों से सुनेंगे तब ज्ञान प्राप्त होगा। अत: परमात्मा का साकार होना निहायत जरूरी है, यही है न आपका पक्षस्थापन? किन्तु है सर्वथा मिथ्या ज्ञान शून्य एवं अनुभव रहित! पाण्डित्य से भी बहुत परे है अब सुनिए असली समाधान। जो मुख से बोलकर कान से सुना जाता है वह वेद नहीं होता वह श्रुति होती है।······श्रोताओं में तालियां······ वेद वह होता है जो आत्मा से आत्मा में प्रादुर्भूत होता है। अत: परमात्मा एक नम्बर, जीवात्मा दो नम्बर, मन तीन नम्बर, मुख चार नम्बर, और कान पांच नम्बर है। अत: परमात्मा का दिया ज्ञान पांचवे नम्बर पर कान में पहुंचता है। वस्तुत: एक नम्बर में परमात्मा के ज्ञान को दो नम्बर का जीवात्मा जो व्याप्त-व्यापक भाव से रहते हैं, ग्रहण (Grasp) कर लेता है। तब वह मन को देता है। मन वाणी को देता है, वाणी से श्रोत को मिलता है। यही आपकी पण्डिताई है कि – पांच नम्बर को एक नम्बर से मिला देते हैं,······तालियां······अत: जो परमात्मा का ज्ञान आत्मा में आविर्भूत होता है उसे वेद कहते हैं, सृष्टि के आदि में जो चार ऋषियों को मिला। अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, इनसे फिर चारों वेदों को जिसने पढ़ा उसका नाम ब्रह्मा हुआ।—"**अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थं ऋक् यजु साम लक्षणम्॥** (यजुर्वेद १-२३) अर्थात् ऋषियों ने जो उच्चारण किया, और उसे लोगों ने सुना, उसे श्रुति कहा गया, बोल कर जो वेदों का ज्ञान देते हैं उसे ही श्रुति कहते हैं। जब उसे लिखते हैं तब वह लिपि कहलाती है। अत: परमात्मा को वेदों के प्रकाश के लिए मुखादि इन्द्रियों की जरूरत नहीं। वह परमात्मा जो आत्मा में ज्ञान देता है उसको वेद कहते हैं। वे ऋषि लोग जब अपनी वाणी से उच्चारण करके सुनाते हैं और उपदेश करते हैं तथा अन्य लोग कान से सुनते हैं तो उसे श्रुति कहते हैं, अत: आपने जो कुछ कहा था वह पण्डिताई से परे है।

नोट—

यह उपरोक्त प्रश्नोत्तर समाप्त होने के बाद एक अन्य उपस्थित पौराणिक पण्डित जी ने "**मृतक श्राद्ध**" विषय पर प्रश्न करने की इच्छा प्रकट की, उनको देहलवी जी ने बड़े आदर के साथ स्वीकृति दे दी। उन पण्डित जी व श्री देहलवी जी के बीच उक्त विषय पर क्या प्रश्नोत्तर हुए, उनका भी आनन्द लेते चलिए।

श्री पौराणिक पण्डित—

आर्य समाज श्राद्ध को मानता है या नहीं?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जी, मानता है।

श्री पौराणिक पण्डित—

तो फिर श्राद्ध का खण्डन क्यों करता है ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

कोई आर्य समाजी श्राद्ध का खण्डन नहीं करता है, यह आपकी अशुद्ध धारणा है।

श्री पौराणिक पण्डित—

तो फिर क्या आप मरे हुए पितरों को पिण्डदान देते हैं ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आपने "**श्राद्ध**" पूछा था, "**मृतक श्राद्ध**" नहीं। यह प्रश्न मृतक श्राद्ध पर है, जो वेद विरुद्ध है, जिसे आर्य समाज नहीं मानता।

श्री पौराणिक पण्डित—

आप मरे हुए माता-पिता को पिण्डदान देना क्यों नहीं मानते ?

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

पिण्ड किसे कहते हैं, उसका अर्थ करिए ?

श्री पौराणिक पण्डित—

जो विशेष अन्न बना कर ग्रास दिया जाता है उसको पिण्ड कहते हैं, जैसे—"**संकरो नरकायेन कुलघ्नानां कुलस्य च। पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदक क्रियाः॥** (भगवद्गीता अध्याय १ श्लोक ४२) अर्थात् अर्जुन ने कहा—जब मार देंगे तो उदर किया नष्ट हुआ वर्ण संकर सन्तान पैदा होगी अतः पिण्डदान भगवान कृष्ण की सम्मति के अनुकूल है।

श्री पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी—

पिण्ड ग्रास को कहते हैं, ग्रास, पांच भौतिक शरीर के लिए होता है। न तो सूक्ष्म शरीर ही इसे ग्रहण कर सकता है और न जीवात्मा ही इसे ग्रहण कर सकती है। तो मरने के बाद जीवात्मा और सूक्ष्म शरीर पता नहीं कहां गए ? और स्थूल शरीर आपने जला दिया तो पिण्ड कहां जायेंगे ? अतः यह अपनी अशुद्ध धारणा है, अतः जीवित माता-पिता को श्रद्धा पूर्वक अन्न वस्त्रादि से सेवा करना यही पितृ श्राद्ध है। यही पितृ तर्पण है। इसका ही वेद में वर्णन है, मृतक का नहीं।

श्री पौराणिक पण्डित—

हम जो कुछ भी यहां से पितरों को भेजते हैं वह उस योनि के अनुकूल होकर पिण्ड बन कर उसको मिल जाता है, जैसे गाय को भूसा, घोड़े को घास इत्यादि जैसे हम यहां से रुपया मनीआर्डर द्वारा अमेरिका भेजते हैं, यहां का सिक्का यहीं रह जाता है, अमेरिका का सिक्का उसे मिलता है, ऐसे ही घोड़े को घास मिलता है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

श्री मान जी ! आपने रुपया तो अमेरिका भेज दिया परन्तु पता कहां है ? जिस पते पर भेजा । बिना पते का मनिआर्डर न कोई भेजता है और न कोई लेता है, बिना पते का लिफाफा भेजना यह आपकी बुद्धि का चमत्कार है, ऐसे ही लोगों ने बिना पते का मनिआर्डर करके रुपया हज्म कर लिया, अपने पक्के मकान बनवा लिए । यजमान हवा खाते फिरते हैं, अतः आपको जब तक पता न हो कि हमारे पितर किस लोक में और किस योनि में गए हैं, तब तक आप किसी को कुछ न भेज सकते हैं और न वह चीज उनको मिल सकती है । रही गीता की बात ! सो आपने उसे ठीक से नहीं पढ़ा, कृष्ण भगवान ने स्वयं उत्तर दिया है कि—"**कुतस्त्वाकश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् । अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥** (भगवदगीता अध्याय २ श्लोक २) अर्थात्—हे अर्जुन ! यह अनार्यों को प्यारी, परम दुखदायक और अकीर्ति करने वाली बेहोशी इस बेढ़ंगे अवसर पर तुम पर कैसे आ चढ़ी ? इस लुप्तपिण्डोदक क्रिया पर उपरोक्त श्लोक में ऐसे निकृष्ट विचार धारण करने वाले मनुष्यों को काफी फटकार लिखी है । अर्थात् वह मनुष्य अनार्य हैं तथा नरक में जाने वाले हैं, कीर्ति को नष्ट करने वाले हैं, ज्ञान शून्य (Senceless) है । इसलिए ऐसे अज्ञानियो की बातों को लेकर आप वेद के सत्पथ को नष्ट करने के फेर में हैं । जब तक आर्य समाज जिन्दा है इसे नहीं होने देगा, ····तालियां······

श्री पौराणिक पण्डित—

श्री मान जी ! आपने जो वेद में पितृ श्राद्ध या पितृ तर्पण माना है उसमें तो हमारे पक्ष के बहुत प्रमाण हैं, जैसे यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ८५ में लिखा है, देखिये—"**आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्नि स्वाता पथिभिः देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥८५॥** अर्थात् हमारे पितर (**सोम्यासोः और अग्निस्वाताः**) देवयान के पथ से इस यज्ञ में स्वधा को ग्रहण करें, तथा हमारी रक्षा करें और हमें आर्शीवाद दें । इस मन्त्र में स्पष्ट पितरों का आह्वान है । स्वधा ग्रहण करने के लिए उनसे प्रार्थना की गई हैं । देवयान मार्ग से वे आवें । इससे साफ पितरों को बुलाने और स्वधा ग्रहण करने का स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है ? अतः वेद से हमारा मृतक श्राद्ध सिद्ध है । अतः आप मृतक श्राद्ध नहीं करते हैं तो आर्य समाज वेद विरुद्ध आचरण करता है ।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जितना आपने अर्थ किया है, वह शुद्ध है तथा वेदानुकूल है । इसी से हम पितृ श्राद्ध करते हैं, परन्तु आपने "**मृतक**" जो जोड़ा वह कहां है ? क्योंकि देवयान से आना, हमारा उनको बुलाना और स्वधा का ग्रहण करना अर्थात् भोजन पाना, उपदेश करना और हमारी रक्षा के साधन बतलाना ये मृतक में संगठित नहीं होते बल्कि जीवित में होते हैं । क्योंकि मृतक की आत्मा को बुलाते हैं, यहां उसे किस शरीर में रखेंगे ? क्योंकि शरीर तो आपने जला दिया । अतः वह ना तो खा सकता है, न उपदेश दे सकता है, और न रक्षा के साधन बतला सकता है । अतः आपने वेद मन्त्र का अर्थ अशुद्ध किया है,—मृतक परक उसका अर्थ नहीं हो सकता । जीवित परक हो सकता है, तथा है, क्योंकि सोमादि औषधियों के विज्ञान को जानने वाले अग्नि विद्या के रहस्य को जानने वाले विद्वान लोग देवयान से अर्थात् विद्वानों के मार्ग से बुलाये जाते हैं और आते हैं और वहाँ आकर हमारी दी हुई वस्तुओं को ग्रहण करते हैं, हमारी रक्षा करते हैं, और उपदेश देते हैं, अतः आर्य समाज जीवित का श्राद्ध करता है, जो वेदानुकूल है तथा सृष्टि के भी अनुकूल है । और बुद्धि पूर्वक है, अतः वह सत्य है, आपका असत्य पक्ष है ।

श्री पौराणिक पण्डित—

यहां जब मनुष्य मरता है तो उसके प्राणों को यमराज के दूत ले जाते हैं। वहां उनको यथा योग्य शरीर मिलता है, और अपने कर्मों का भोग मिलता है। हम लोगों को वेद में आज्ञा है कि—पितरों को बुलाओ। अतः हम लोग यमलोक से पितरों को बुलाते हैं, इसमें प्रमाण है हमारा संकल्प। हम जब संकल्प द्वारा पितरों का आह्वान करते हैं तो पितर आ जाते हैं। अब हम उनको पिण्डदान देते हैं और योग्य सलाह करते हैं। फिर पितृ विसर्जन करते हैं तो वह यथा स्थान चले जाते हैं। इसलिए मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है तथा युक्तियुक्त है, इसे आर्य समाज को भी मानना चाहिये।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

यहां तो उनका कोई शरीर है नहीं। मन्त्र बल से आप उनकी पूजा करते हैं, और पिण्ड दान करते हैं, आह्वान करके फिर विसर्जन भी कर देते हैं। वे यथा स्थान को भी चले जाते हैं, इसमें कोई विरोध की बात नहीं है। परन्तु पण्डित जी महाराज ! एक बात बतलाइये कि—जब आप आह्वान करते हैं तो जिस शरीर में वे होते हैं उसे छोड़कर आपके यहां चले आते हैं। जब तक आप उनको पिण्ड खिलाते हैं, पूजा पाठ करते तथा सत्कार करते हैं तब तक वहां वाला शरीर जिसे वे छोड़कर आये हैं मृतक समान हो जाता होगा। उसके वे घर वाले उसकी डाक्टरी करा कर मृतक समझ कर जला देते हों या कबर में गाड़ देते हों तो तब उस स्थिति में यह आत्मा लौटकर किस शरीर में जायेगी ? वहाँ का शरीर तो नष्ट हो गया, यहां फिर कोई शरीर है नहीं, और अगर यह सत्य है तो आप भी कहीं से मर कर आये हैं तो आपको भी वहां के लोगों ने जो आपको पितर समझते हैं, जिनके आप पितर हैं उन्होंने कितनी बार आपको बुलाया है ? कितनी बार आप यह शरीर छोड़कर वहां गये हैं ? जनता में तालियां ……धर्म पूर्वक विचार करके कहिये। यदि आप बुलाने पर भी नहीं गये हैं तो वह भी बुलाने पर नहीं आते हैं। इसीलिए आपका यह आह्वान विसर्जन झूठा और वेद विरुद्ध है तथा सृष्टि क्रम के विपरीत तथा बुद्धि के प्रतिकूल होने से असत् पथ है। अगर दुर्जन तोष न्याय से मान भी लिया जाये कि आपके माता-पिता का रिश्ता उस जन्म में भी रहता है, जो इस जन्म में भी जैसा है। तो मुसलमान एक प्रश्न करते हैं उनका उत्तर दीजिये, आप क्या उत्तर देते हैं ?—एक औरत दस वर्ष का लड़का छोड़कर मर गई, और जिस जाति में मरी है, अड़ोस-पड़ोस में वह उसी जाति में पैदा हो गई। जब वह सोलह वर्ष की होगी तो लड़का २५ वर्ष का होगा, संयोग से उन दोनों की शादी हो गयी, तुम्हारे इस पिण्ड दान के कारण मां-बेटे की शादी हुई कि नही ? अगर कहो हां तो कितना पाप लगा ? ऐसे निकृष्ट और निन्द्य शास्त्र विरुद्ध प्रचार करने वाले सीधे नरक को जायेगे। अतः वेद के सिद्धान्त के अनुसार आर्य समाज डंके की चोट पर कहता है – "**भस्मान्त ँ शरीरम्**" (यजुर्वेद अध्याय ४०) शरीर का अन्त भस्म तक है। इसके आगे हमारा उसका कोई रिश्ता नहीं रहता। वह कर्मानुसार जहां जिस योनि में जाना रहता है वहां जाता है। अतः हम मुसलमानों को उत्तर दे सकते हैं कि—आपका सगा बेटा-बेटी एक पेट से पैदा होने वाला अगर उसमें से एक मां का दूध नहीं पीता है तो भाई-बहन का रिश्ता टूट जाता है। उनकी आपस में शादी हो जाती है। हमारा रिश्ता किसी मुर्दे के साथ नहीं होता, हमारा तो जन्म बदल गया, रिश्ता टूट गया, आपका दूध बदलने से रिश्ता टूट जाता है। हमारा जन्म बदलने से रिश्ता कैसे बना रहेगा ? इसलिए कोई भी विधर्मी हम पर किसी प्रकार का लांछन नही लगा सकता है। मृतक श्राद्ध, वेद विरुद्ध तथा सृष्टि क्रम के विपरीत है, तथा बुद्धि के भी विपरीत है। अतः आर्य समाज से शिक्षा ग्रहण करें, जीवित माता-पिता की सेवा करें और मृतकों का श्राद्ध करना, पिण्डदानादि छोड़ दें। अब इस विषय का समय समाप्त होता है। फिर कभी किसी को कुछ शंका होगी या कोई शास्त्रार्थ करना चाहेगा तो हम हमेशा तैयार हैं। इति शम् ॥ □

चौरासीवां शास्त्रार्थ—

स्थान : मुजफ्फरपुर (बिहार)

दिनांक : २८ दिसम्बर सन् १६२४ ई०

विषय : ईश्वर, जीव, प्रकृति का अनादित्व ?

मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थकर्ता : श्री मौलवी इब्राहीम साहब
(स्यालकोट निवासी वर्तमान पाकिस्तान)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : शास्त्रार्थ महारथी, श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

शास्त्रार्थ के मध्यस्थ : श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त "अधिवक्ता"

विशेष : यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज मुजफ्फरपुर के द्वितीय वार्षिकोत्सव पर हुआ था।

नोट —

यह शास्त्रार्थ सामग्री "स्वाध्याय निर्णय" (मासिक) पत्र जो उत्तर बिहार आर्य सभा मुजफ्फरपुर का मुखपत्र है, जिसके मुख्य सम्पादक "श्री ओम प्रकाश जी ब्रह्मचारी" हैं, के माध्यम से प्राप्त की है, वैसे यह विवरण सभा ने भी "श्री पण्डित विद्यानन्द जी मन्तिकी" (काशी) की स्मृति में उनकी डायरी तथा पुरानी फाइलों से प्राप्त की थी, उन सबका यह एक सराहनीय कार्य है, जिससे यह लुप्त सामग्री प्रकाश में आ सकी।

संकलन कर्ता—
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री मौलवी इब्राहिम साहब—

आर्य समाजी तीन खुदा मानते हैं, ये दहरियां (नास्तिक) हैं। हमारी धर्म पुस्तक हमको एक खुदा का उपदेश देती है। एक है, वाहिद है, वाहिदुल्ला शरीक है। वाजिब् बिज्जात है। वाजिबुल वजूद है। उसी की हम दो सना अजरूए कुरान मजीद जायज है, स्वामी दयानन्द ने जो वेद की तालीम दी है, उसमें ईश्वर, जीव प्रकृति तीनो को अनादि माना है। ये तीन खुदा हो गये, क्योंकि खुदा को छोड़कर कोई दूसरा अनादि नहीं है। एक खुदा ही अजली और अबदी है। बाकी सब हादिस हैं, अर्थात रूह और माद्दा पैदाशुदा हैं। खुदा के बनाये हुए हैं, पैदा किए हुए हैं, इसलिए वेद इलहामी नहीं हो सकता। इससे निजात (मुक्ति) नहीं मिल सकती, निजात सिर्फ कुरान मजीद ही दे सकता है, यही एक धर्म अकलम और मुकम्मल है। आर्य समाज को इसी पर ईमान लाना चाहिये, तभी उनकी मोक्ष और मुक्ति होगी, तीन खुदा मानने से नहीं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जनाब ! मौलाना साहब आपने जो कुछ फरमाया है उसमें कुछ थोड़ी-सी गलतियां हो गई हैं। वह वैदिक धर्म को ठीक से न समझने के कारण से है। वैदिक धर्म का यह असूल है कि वह तीन खुदा नहीं मानता, एक ही परमात्मा मानता है जो सृष्टि का खालिक (बनाने वाला) है और माद्दा वह है जिससे लेकर वह सृष्टि की वस्तुओं की रचना करता है। और जीव वह है जो इनको भोगता है। जिसको अरबी वाले अपने मन्तिक में इल्लते फाइली, इल्लते माद्दी, इल्लते गाई कहकर पुकारते हैं। अर्थात् एक सृष्टि का कर्त्ता, एक चीज जिससे सृष्टि बनाई जाती है, और इल्लते गाई जिसके लिए सृष्टि बनाई गयी है, इन्हीं को क्रम से ईश्वर, जीव, प्रकृति, कहते हैं। इनमें से एक भी न हो तो सृष्टि क्रम बिगड़ जाता है। जैसे मिसाल के तौर पर, पान की दुकान ! उसमें तीन होते हैं। एक पान वाला, दूसरा पान, तीसरा पान खाने वाला। इसलिए पान वाला मंजिलें ईश्वर है। जिस पान को बना-बनाकर देता है वह माद्दा (प्रकृति) है। और जो खरीद कर खाने वाला है, वह रूह (जीवात्मा) है। अतः इन तीन के बिना संसार का कोई भी कारोबार नहीं चल सकता। अतः तीन खुदा नहीं बल्कि सृष्टि के तीन कारण हैं। इसको तो मन्तिक वाले भी मानते हैं। आर्य समाज वाले भी मानते हैं। आपके इन्कार करने से इन तीनों को झूठा कैसे समझा जा सकता है ?

श्री मौलवी इब्राहिम साहब—

जब कि रूह और माद्दा भी असली आवदी हैं, ये दोनों मिलकर सृष्टि बना लेंगे तब ईश्वर की क्या आवश्यकता है ? रूह में ज्ञान है ही और माद्दा गैर मुदरक (ज्ञान शून्य) है। अतः ज्ञान वाली शक्ति जो चाहेगी वह लेकर बनायेगी। अतः खुदा की जरूरत नहीं है। अतः आर्य समाज दहरिया (नास्तिक) है।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आर्य समाज परमात्मा को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान मानता है। यह वेदानुकूल है। जीवात्मा अल्पशक्तिमान है, और अल्पज्ञ है। इसलिए जीवात्मा अभी तक नहीं समझ सका कि सृष्टि कैसे बनी ? जबकि इतना ज्ञान-विज्ञान का प्रचार हो गया है। आदि सृष्टि में यह अपने अल्प ज्ञान और अल्प शक्ति से सृष्टि की रचना नहीं कर सकता। उसको परमात्मा ही कर सकता है। अत: हम इल्लते फ़ाइली और ख़ालिक मानते हैं, दुनियां तखलीख शुदा है। हादिस है। उसको हदस में लाने के लिए अली में कुल्लु और कादर मुतलक की जरूरत है। जो अपने मुकम्मल इल्म से और कदीर होकर सबको बना सके और कब्जे में रख सके अत: कुराने मजीद ने कहा है—'**अल्लाह हो कुल्ले शैन कदीर**" सारे कुरान में रूह को कहीं मुकम्मल और कादर मुतलक नहीं कहा है। यदि आपके कहने के अनुसार केवल खुदा ही माना जाये तो माद्दा और रूह को खुदा कौन-सी चीज से पैदा करेगा ? यदि अपने में से पैदा करता है तो कुल खुदा हो जायेंगे, यदि किसी गैर चीज से पैदा करता है तो आपके कहे अनुसार "**वाहदहुल्ला शरीक**" कैसे रहा ? इसलिए जैसे एक स्वतन्त्र सत्ता खुदा की है वैसे ही रूह की है, ऐसे ही माद्दे की है, ये तीनों अनादि अनन्त या अजली और अबदी हैं।

श्री मौलवी इब्राहिम साहब—

मेरे यहां "**मास बे अल्लाह**" कोई चीज अजली नही मानी जाती, सबको खुदा पैदा करता है, रूह को भी खुदा ने पैदा किया। माद्दे को भी ख़ुदा ने पैदा किया। जैसे कुराने मज़ीद खुद फ़रमाता है—"**कुन्न फैय्य कूना**" खुदा ने "**कुन**" कहा अर्थात्—"**हो जा**" और "**फैय्य कूना**" और वह "**हो गया**"। इसलिए हम इनको अजली नहीं मानते, रूह के लिए कुराने मज़ीद में फ़रमाया है—"**कुल्ल रूह मिन अबरे रब्बी**" अर्थात् ऐ रसूल ! तुम कहो कि—"**यह ख़ुदा के हुक्म से है**" इसलिए हम तीनों को अजली मान कर तीन खुदा नहीं मानते। खुदा ही अजली-अबदी है, बाकी सब हादिस हैं यानी के पैदा शुदा हैं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जनाब मौलाना साहब ! आपने कुराने मज़ीद की दो आयते पेश की हैं, पहली आयत में आपने कहा कि—खुदा ने "**कुन**" कहा, परन्तु अरबी की व्याकरण (ग्रामर) के अनुसार "**कुन**" हुक्मी सीगा (विभक्ति) है। इसलिए हुक्म, हाकिम के साथ होता है। हाकिम यदि अजली-अबदी है तो हुकुम भी अजली-अबदी होगा, क्योंकि अजरू-ए मंतिक सिफ्त मौसूफ का ताल्लुक लाजिम मंजूर है। अर्थात् गुण-गुणी नित्य सम्बन्ध है। तो जब से हाकिम, तब से हुकुम ! हुकुम महकूम चाहता है। इसलिए जब से हाकिम तब से हुकुम और जब से हुकुम तब से महकूब। ये तीनों लाजिम मंजूर हैं। लिहाजा हुक्म देने वाले खुदा ने जिस माद्दे को कहा कि "**हो जा**" वह पहले से था तो खुदा भी नित्य है, माद्दा भी नित्य है। ऐसे ही रूह खुदा के हुकुम से है तो खुदा का हुकुम हमेशा से हमेशा तक रहने वाला है। अत: रूह हमेशा से हमेशा तक रहने वाली है। इस आपके कथन से भी साबित हुआ कि—रूह, माद्दा और खुदा तीनों कदीम (अनादि) हैं। एक और मिसाल लीजिये जैसे कुम्हार मिट्टी से बर्तन बनाता है, हम लोग खरीदते हैं। अत: बनाने वाला कुम्हार-वह-मंजिले (खुदा) है। मिट्टी जिससे घड़े बनाता है, वह मंजिले माद्दा है, हम खरीदने वाले जीवात्मा है। यहां भी ईश्वर, जीव, प्रकृति तीनों साथ-साथ हैं। दुनियां में कोई भी कारोबार कीजिये तीन के बिना नहीं होगा। जैसे—बजाज है, कपड़ा है, खरीदने वाला है। तीन हैं। उस्ताद है, शागिर्द है, और बीच में लेने-देने वाला इल्म है। इस प्रकार ये भी तीन हैं।

श्री मौलवी इब्राहिम साहब—

जनाब पण्डित साहब ! आपने जो कुछ फ़रमाया उसको मैंने बग़ौर सुना, इसका फैसला आप न कर सके कि—खुदा को छोड़कर और कोई अजली, अबदी हो सकता है या नहीं ? कुराने मजीद का यह कौल है कि—खुदा को छोड़कर और कोई अजली अबदी नहीं हो सकता है। और यह ठीक ही रहा कि आपने इसका कोई खण्डन नहीं किया। अतः कुराने मजीद के मसले बड़े दकीक और ग़ौर तलब हैं, जल्दी से समझ में नहीं आते। अतः आप बराये मेहरबानी एक खुदा को ही अजली-अबदी मानें। बाकी सब हादिस हैं और पैदा शुदा हैं।

श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

जनाब मौलाना साहब ! अबकी बार तो आपने पूरी तरह से वेद के पक्ष का मण्डन कर दिया। और अपने पक्ष का खण्डन कर लिया। कहते हैं आप कि—ग़ौर से सोचिये ! तो मैं क्यों सोचूं ? सोचिये आप, जिन्होंने ग़ौर से नहीं सोचा है। अगर आप ग़ौर से कुराने मजीद को पढ़े होते और इल्में मन्तिक से वाकफ़ियत होती तो आप जैसा ऊपर कह गये हैं कि—खुदा ही अजली और अबदी है और कोई नहीं, ऐसा कभी नहीं बोलते। आपके सामने कुराने मजीद की एक छोटी-सी आयत पेश करता हूं, आप ग़ौर फरमाइये—"**खालदिना फ़िहा अबदा**" अर्थात् जिन्होंने मुसलमानी पांच अरकान पूरे किये हैं, अर्थात् नमाज, रोजा आदि नियमों का यथावत् पालन किया वह बहिस्त (स्वर्ग) में उवत तक अर्थात् हमेशा-हमेशा तक जब तक खुदा है तब तक बहिस्त में रहेगा। इसमें सब बहिस्ती अबदी हो गये। बहिस्त भी अबदी हो गया और बहिस्त में रहने वाले जितने फल-फूल और अनाज आदि हैं सब अबदी हो गये, खुदा अबदी है ही, बहिस्त रूहें सब अबदी हो गई। और माद्दी बहिस्त और तमाम फल-फूल और अनाज वग़ैरा माद्दी चीजें अबदी हो गयीं अतः सीधा अर्थ यह हुआ कि—रूह, माद्दा, खुदा (ईश्वर, जीव, प्रकृति) तीनों अबदी (अनादि) हैं, लिहाजा बजरिये मन्तिक साबित हुआ कि—जो अबदी होता है वह अजली अवश्य होता है।······जनता में से······वाह ! खूब ! ! बहुत अच्छे ! ! !······यानी रूह, माद्दा, खुदा, तीनों अजली, अबदी यानि अनादि और अनन्त हैं। अर्थात् हमेशा-हमेशा तक रहने वाली हैं। यही आर्य समाज का दावा है। यही वेद मुक्कद्दस का सिद्धान्त है। इसी पर हम डंके की चोट कहते हैं, बोलो वैदिक धर्म की जय !

श्री मौलवी इब्राहिम साहब—

मैं तहे दिल से आर्य समाज व उसके पण्डित जी का शुक्रिया अदा करता हूं कि अमन और चैन से यह मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) खत्म हुआ। दोनों ओर से बड़े ही अमन और चैन से तहजीब के साथ सवालोजवाब होते रहे ! आदाब अर्ज ! !

छियासीवां शास्त्रार्थ—

स्थान : **बड़ौदा (गुजरात)**

दिनांक : **क्या महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों की मान्यताएं— वैदिक हैं ?**

पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : (१) **श्री प्रौ० कण्डमणि शास्त्री,**
(२) **श्री भट्ट जटाशंकर शास्त्री (काकरोली निवासी)**

पौराणिक पक्ष की ओर से सहायक : **अन्य आठ विद्वान**

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : (१) **श्री राज्यरत्न पण्डित आत्माराम जी "अमृतसरी"**
(२) **श्री पण्डित प्रिय रत्न जी आचार्य, बड़ौदा निवासी**
(३) **श्री कविरत्न पण्डित मेधाव्रत जी, इटोला निवासी**
(४) **श्री पण्डित चन्द्रमणि जी चक्रवर्ती (निरुक्त भाष्यकार)**

नोट :—

यह शास्त्रार्थ सामग्री "**श्री प्रा० दयाल जी शर्मा**, A/5 आयुर्वेद कालोनी (जाम नगर) गुजरात द्वारा प्राप्त हुई, जो सर्व प्रथम "**वैदिक दिग्विजय**" के नाम से "**आर्य समाज बड़ौदा**" द्वारा वि० सं० १६८५ में केवल उत्तर प्रकाशित हुए थे, प्रश्नोत्तर पौराणिकों की ओर से पहले छप चुके थे। जिसकी कापी हमें "**श्री सुरेन्द्र जी शर्मा गौड़ "देहली"** से पहले ही प्राप्त हो गई थी। दोनों कापियां हमें उपलब्ध हो जाने पर तब पूर्ण विवरण का सही क्रम बनाकर उद्धृत किया गया।

"लाजपत राय अग्रपाल"

शास्त्रार्थ से पहले

इस वृतान्त के लिए पूज्य अमर स्वामी जी महाराज मुझे काफी समय से कह रहे थे कि कोई लिखित शास्त्रार्थ बड़ौदा (गुजरात) में हुआ था, जिसमें पण्डित जटाशंकर शास्त्री भट्ट तथा प्रोफेसर कण्डमणि जी शास्त्री (पौराणिक पक्ष के महाविद्वान) के साथ आर्य समाज के दिग्गज विद्वान श्री पण्डित आत्माराम जी अमृतसरी तथा श्री पण्डित प्रियरत्न जी एवं श्री कविरत्न पण्डित मेधाव्रत जी व पण्डित चन्द्रमणि जी के मध्य लिखित रूप में वह शास्त्रार्थ हुआ था, उसे किसी तरह प्राप्त करो, उसमें काफी बातें बहुत ही काम की हैं। अचानक संयोगवश उस समय पं० सुरेन्द्र शर्मा जी गौड़ दिल्ली निवासी भी मौजूद थे, उनके द्वारा पता लगा कि पौराणिकों द्वारा प्रकाशित कराई हुई उस शास्त्रार्थ की कापी उनके पास मौजूद है। मैंने उनसे उस कापी को प्राप्त किया। परन्तु स्वामी जी महाराज उस कापी से सन्तुष्ट नहीं थे, क्योंकि उसमें पौराणिकों ने अपने प्रश्न तो दिये परन्तु उत्तर अति संक्षेप से प्रभाव को समाप्त करते हुए दिये तो पता चला कि आर्य समाज बड़ौदा ने उसका उत्तर व प्रश्न भी छपाये हैं। हम उसकी तलाश में ही थे कि—श्री प्रा० दयाल जी आर्य, जाम नगर निवासी जी का पत्र मिला कि मेरे पास वह शास्त्रार्थ की कापी है। हमारे कहने पर उस ओरिजनल कापी को उन्होंने तुरन्त भिजवा दिया। उसके मिलते ही आप समझिये कि—सोने में सुहागा हो गया। पूर्ण विवरण मिल गया जिससे सही विस्तारपूर्वक उस समय का यह विवरण प्रकाशित किया गया है। मैं श्री प्रा० दयाल जी आर्य का हृदय से आभारी हूं। जिन्होंने इस कापी को पूरा कर इस लुप्त सामग्री को प्रकाश में लाने का प्रोत्साहन दिखाया। स्वामी जी महाराज ने इस कापी को देखते ही कहा—बस ! अब काम ठीक बन गया, इस कापी के सहयोग से सही विवरण छापा जा सकेगा। उनके निर्देशानुसार मैंने दोनों कापियों का मिलान करते हुए इसकी प्रेस कापी तैयार की, जो अब यह आपके सामने उपस्थित है। आप भी इसे पढ़िये, और लाभ उठाइये।

विदुषामनुचरः
"लाजपत राय अग्रवाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

सनातन धर्म की ओर से प्रथम प्रश्न-पत्र—

विदित हो कि महाभाष्य ग्रन्थ में जो व्याकरण का प्रामाणिक ग्रन्थ है। में चारों वेदों को ११३१ से भिन्न गिनाया है, जबकि स्वामी दयानन्द जी ११३१ के अन्तर्गत ही मानते हैं इसका सप्रमाण उल्लेख करें। महाभाष्य का प्रमाण—**"सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधाभिन्नाः। एक शतमध्वर्यु शाखाः।**

सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः । एक विंशतिधा बाहृच्यम् । नवधा आथर्वणो वेदः वाको वाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यक मित्येतावच्छब्दस्य प्रयोग विषयः ।" (महाभाष्यम् अ० १ आ० १) का अवलोकन करें । सत्यार्थ प्रकाश में भी ऋषि दयानन्द जी ११२७ का ही उल्लेख करते हैं । यह कहां तक प्रामाणिक है ?

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रो० चण्डमणि शास्त्री (२)—"भट्ट जटाशंकर शास्त्री"

आर्य समाज की ओर से प्रथम प्रश्न-पत्र का उत्तर—

विदित हो कि, महाभाष्य ग्रन्थ में जो व्याकरण का प्रामाणिक शास्त्र है । चारों वेदों के पहले की चार मन्त्रों की प्रतीकें देकर वेदों का स्वरूप बतलाया है, और उससे शाखा ग्रन्थ आप ही प्रथक् हो गये । इसलिए ऋषि दयानन्द ने मूल चारों वेदों को जो शाखा ग्रन्थ नहीं माना उसमें उक्त प्रमाण मौजूद है । आप इसके विरुद्ध मानने के लिए प्रमाण देवें । विदित हो कि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में "स्वमन्तव्यामन्तव्य" में ११२७ वेदों के शाखा ग्रन्थ माने हैं । आप मन घड़न्त बात लिखकर मिथ्या आक्षेप कर रहे हैं। आपने जो महाभाष्य का प्रमाण प्रस्तुत किया है, इसमें महाभाष्यकार ने ११३१ शाखाओं से वेदों को भिन्न गिनाया है । क्योंकि महाभाष्यकार शब्द विषय का विस्तार दिखला रहा है । सात द्वीप वाली पृथिवी और तीन लोक, चार वेद तो आपके हिसाब से ७+३+४=१४ और ११३१=११४५ सब शाखा ही हो जायेंगी । पर कोई भी बुद्धिमान सात द्वीप और तीन लोकों को शाखा नहीं मानेगा । फिर उसी श्रेणी में चार वेद आ जाने से शाखा कैसे हो गये ? आप देखिये कि महाभाष्यकार के वचन कितने स्पष्ट हैं कि साङ्गाः, सरहस्याः, अर्थात् शिक्षा व्याकरणादि छः अंग ग्रन्थ और दस उपनिषद् ग्रन्थ जिनको रहस्य ग्रन्थ कहते हैं, जबकि अंग ग्रन्थों और उपनिषदों को शाखाओं से भिन्न महाभाष्यकार मानता है तो उसी श्रेणी में वेद पड़े होने से शाखाओं के अन्तर्गत नहीं बल्कि भिन्न सिद्ध हो गये । आगे जो ११३१ शाखा ग्रन्थ महाभाष्यकार ने गिनाये हैं वह मालूम होता है कि महाभाष्यकार के समय में ११३१ वेदों की शाखा विद्यमान थी, इसमें कोई दोष की बात नहीं, और इसीलिए ऋषि दयानन्द ने "वेदांङ्ग प्रकाश" अन्तर्गत "नामिक" ग्रन्थ में, महाभाष्यकार की उक्त गणना को स्वीकार किया है। वह आप देख सकते हैं, रही सत्यार्थ प्रकाश की बात ! सो मालूम होता है कि इस समय ऋषि दयानन्द ने, अनुसन्धान करके यह निश्चय किया था कि, उनमें से चार शाखा ग्रन्थ तो सर्वथा लुप्त हो गये हैं, और ११२७ विद्यमान हैं । आप पण्डित जी अच्छी तरह सुन लीजिये ताकि आपका भ्रम दूर हो जाये । महाभाष्य के वचन से यह सिद्ध होता है कि यजुर्वेद और उसकी शाखायें एक कैसे हो गयी ? यदि दोनों एक होती तो लिखा जाता कि १०२ यजुर्वेद हैं । अथवा १०२ यजुर्वेद की शाखायें ! क्या आपमें इतनी योग्यता भी नहीं है कि इतनी संस्कृत भी समझ सकें कि यजुर्वेद की १०१ शाखाओं से वह ग्रन्थ जिसकी वह शाखायें हैं उससे भिन्न हैं ? क्या इसी बलबूते के ऊपर सारे भारतवर्ष की आर्य समाजों को चेलेञ्ज दे डाला है ? एक बच्चा भी समझता है कि, उस वृक्ष की ५० शाखायें हैं, तो क्या वह उन शाखाओं को वृक्ष से भिन्न नहीं समझे ? आपको कालेज में बड़ा भारी गणित विद्या का प्रोफेसर बनाना चाहिये ।

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रियरत्न" (३)—"आत्माराम"

(२)—"पं० मेधाव्रत" (४)—"चन्द्रमणि"

सनातन धर्म की ओर से दूसरा प्रश्न-पत्र—

स्वामी जी ने शाकल्य, माध्यंदिनी, कौथुमी, और शौनकी इन चार को प्रमाण माना है। इसका कारण स्पष्ट करें।

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रो० कण्डमणि शास्त्री" (२)—"भट्ट जटाशंकर शास्त्री"

आर्य समाज की ओर से दूसरे प्रश्नपत्र का उत्तर—

आपका यह कथन असत्य है, स्वामी जी तो सभी शाखाओं को प्रमाणभूत मानते हैं, किन्तु वेदों को स्वतः प्रमाण और उनकी शाखाओं को परतः प्रमाण मानते हैं, स्वामी दयानन्द जी ने स्वयं "**स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश**" में लिखा है कि—चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाण रूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे ही चारों वेद हैं, और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं, उनका अप्रमाण करता हूं।

हस्ताक्षर :

(१)—"आत्माराम" (३)—"चन्द्रमणि"
(२)—"प्रियरत्न" (४)—"मेधाव्रत"

सनातन धर्म की ओर से तीसरा प्रश्न पत्र—

विदित हो कि स्वामी दयानन्द ने शिखा सहित बाल कटाने का उपदेश किया है। जो वेद विरुद्ध, इतिहास विरुद्ध, और हमारी संस्कृति के भी विरुद्ध है तथा यह ईसायत का प्रचार है, और फ़िर स्त्रियों के बालों का क्या होगा? यह सब मान्यताएं स्वामी दयानन्द की वेद विरुद्ध हैं। इनको वैदिक सिद्ध करो। इनका एरिया कितना होवे? या सारा ही सफाचट क्यों करावें? यज्ञोपवीत धारण करने में कोई वेद का मन्त्र पेश करो, जुबानी जमा-खर्च बन्द करो, कुछ पास हो तो लिखते क्यों नहीं?

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रो० कण्डमणि" (२)—"भट्ट जटाशंकर शास्त्री"

आर्य समाज की ओर से तीसरे प्रश्न पत्र का उत्तर—

वेद के योग विधायक मन्त्रों में सुषुम्णा नाड़ी के रक्षण का विधान मूल रूप से आता है, और जहां सुषुम्णा नाड़ी समाप्त होती है उसके अन्तिम सिर का नाम ब्रह्मरन्ध्र है और सुश्रुत ग्रन्थ जो आर्य समाज का माना हुआ उपवेद है, उसमें इस स्थल को अधिपति नामी मर्मस्थल के नाम से वर्णन करते हुए उसकी विशेष रक्षा

के लिए सिर के बाल, शिखा के बाल रखने तथा शिरो वेष्टन पगड़ी वा टोप आदि पहनने का विधान किया है। इसलिए स्त्रियों के सारे सिर पर लम्बे बाल रखना और वैदिक धर्मियों के सिर पर शिखारूपी बाल रखना वेद मूलक और वैदिक सिद्ध हो गया (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थ ऋषि दयानन्द कृत उक्त नाड़ियों सम्बन्धी देखो) तथा मालूम होता है कि आपने वेदांग और उपांग ग्रन्थ किसी गुरु से नहीं पढ़े, वरना ऐसा प्रश्न कभी नहीं करते। जब मीमांसाशास्त्र बतला रहा है कि श्रुति सामान्य बातों का वर्णन करती है, और आप लम्बाई-चौड़ाई की बात पूछने लगे, "इससे हमें आपकी बुद्धि पर हंसी आती है।" एक राजा ने हुक्म दिया कि—खेती का महसूल लगाना चाहिए। वही वटदार आदि का काम है कि—वह कृषिकारों की अवस्था आदि देखकर उचित कर (महसूल) लगावे, यदि कोई राजा के मूल हुक्म में महसूल की सब विगत ब्यौरा पूछने लगे तो लोग उस पर हसेंगे, कारण कि राजा का मूल हुक्म सूत्रवत् मूल रूप में होगा। शाखारूप में नहीं, इसलिए अब हम वेद का मन्त्र दर्शाते हैं, जिसमें उपवीत धारण करने का विधान है, देखिये—"**युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः** ॥४॥ (ऋग्वेद—मण्डल ३, सूक्त ८, मन्त्र ४) ॥

हस्ताक्षर—

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**आत्माराम**"
(२)—"**मेधाव्रत**" (४)—"**चन्द्रमणि**"

सनातन धर्म की ओर से चौथा प्रश्न पत्र—

स्वामी दयानन्द ने सोलह संस्कार तो संस्कार विधि में लिख दिये, परन्तु उनकी वैदिकता में क्या प्रमाण है? एवं उनका विवरण व उनके करने की विधि उनकी मनमानी है। उसमें कोई प्रमाण दो, सोलह संस्कारों को वेद में दिखाओ।

हस्ताक्षर—

(१)—"**प्रो० फण्डमणि शास्त्री**" (२)—"**भट्ट जटाशंकर शास्त्री**"

आर्य समाज की ओर से चौथे प्रश्न पत्र का उत्तर—

सोलह संस्कार चारों वेदों में बराबर लिखे हैं, परन्तु आपको संस्कार विधि में नजर न आवें तो उसका क्या इलाज? आप संस्कार विधि जो ऋषि दयानन्द कृत है उसकी व्याख्या ग्रन्थ "**संस्कार चन्द्रिका**" यदि देख लेते तो यह प्रश्न ही नहीं करते। अब भी यहां पर प्रत्येक संस्कार सम्बन्धी एक-एक मन्त्र हम लिखते हैं, जिससे आपको शान्ति हो जायेगी कि—षोड्श संस्कार वेद मूलक हैं और आपका भ्रम दूर हो जायेगा। देखिये वेदों में सोलह संस्कारों सम्बन्धी प्रमाण—

(१)—गर्भाधान सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"**गर्भं धेहि सिनीवालि**···" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १८४, मन्त्र २)

(२)—पुंसवन सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"**सुपर्णोसि गरुत्मान्**··············" (यजुर्वेद अध्याय १२ मन्त्र ४)

(३)—सीमंतोनयन, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"राकामहं सुहवां सुष्टुति हुवे······"(ऋग्वेद मण्डल २, सूक्त ३२ मन्त्र ४)

(४)—जातकर्म, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह······"(यजुर्वेद अध्याय ८ मन्त्र २८)

(५)—नामकरण, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि···"(यजुर्वेद अध्याय ७ मन्त्र २९)

(६)—निष्क्रमण, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्···" (यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र २४)

(७)—अन्नप्राशन, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"वाजोनो अद्य प्रसुवाति··············" (यजुर्वेद अध्याय १८ मन्त्र ३३)

(८)—चूड़ाकर्म, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन···" (अथर्ववेद काण्ड ६, सूक्त ६८ मन्त्र १)

(९)—कर्णवेध सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"गाव उपावतां वंत मही यज्ञस्य·········"(यजुर्वेद अध्याय ३३, मन्त्र १९)

(१०)—उपनयन, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि··············"(यजुर्वेद अध्याय १, मन्त्र ५)

(११)—वेदारम्भ, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य···········" (यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र ३)

(१२)—समावर्तन, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"युवा सुवासाः परिवीत····· ······"(ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ८, मन्त्र ४)

(१३)—विवाह, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"गृभ्णामि ते··············" (ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ८५, मन्त्र ३६)

(१४) वानप्रस्थ, सम्बन्धी वेद मन्त्र—

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति··············" (यजुर्वेद अध्याय १९, मन्त्र ३०)

(१५) **सन्यास, सम्बन्धी वेद मन्त्र—**

"ब्रह्महोता ब्रह्मयज्ञो······" (अथर्ववेद काण्ड १६, सूक्त ४२, मन्त्र १)

(१६) **अन्त्येष्टि, सम्बन्धी वेद मन्त्र—**

"वायुरनिल···भस्मान्तं शरीरम्······"(यजुर्वेद अध्याय ४०, मन्त्र १५)

हम आशा करते हैं अब आपके मन को शान्ति हो गयी होगी।

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**मेधाव्रत**"
(२) – "**आत्माराम**" (४)—"**चन्द्रमणि**"

सनातन धर्म की ओर से पाचवां प्रश्न पत्र—

सत्यार्थ प्रकाश में एक मकान का देवता माना है और "**वास्तोष्पतये नमः**" इस मन्त्र को बोल कर मकान के देवता को भोग लगवाया है, यह विधि और इसका मन्त्र चार शाखाओं में दिखलाओ ?

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रो० कण्डमणि शास्त्री**" (२)—"**भट्ट जटाशंकर शास्त्री**"

आर्य समाज की ओर से पांचवें प्रश्न पत्र का उत्तर—

सत्यार्थ प्रकाश में कहीं भी "**मकान का देवता**" ऐसा वाक्य लिखा हुआ नहीं है, अतः आपका यह कथन मिथ्या है, दूसरे सत्यार्थ प्रकाश में "**वास्तुपतये नमः**" यह पाठ संस्कृत का समुल्लास ४ में मौजूद है, परन्तु इसका नागरी भाषा में अर्थ वहां पर नहीं दिया गया। केवल यह लिखा है कि,—"**इन मन्त्रों से थाली अथवा भूमि में पत्ता रख भाग रक्खे और इन भागों को किसी अतिथि को जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे**" अब आप यह पूछते हैं कि चार शाखाओं में अथवा मूल वेदों में यह संस्कृत लेख दिखाओ, विदित हो कि इस लेख पर स्वामी जी ने कहीं नहीं लिखा कि यह वेद मन्त्र है। और अगर वेद मन्त्र होता तो चारों वेदों से इस मन्त्र का पता जरूर लिखा होता यह ब्राह्मण ग्रन्थों के कदाचित् वचन होंगे, और भाषा में जिस प्रकार ऋषि वचनों की शैली है उससे मन्त्र शब्द का प्रयोग किया जाता। उसी प्रकार नागरी भाषा में यहां मन्त्र का व्यवहार हुआ है। इससे आपको भ्रम हुआ मालूम होता है, विदित रहे कि वेदोक्त और वैदिक इन दो शब्दों को आप समझ लें, जो बात चार मूल वेदों के मन्त्रों में कही गई उसको वेदोक्त हम तो क्या सब ही विद्वान मानते हैं, और उक्त प्रकार के अनेक वचन जो अतिथि पूजा वा होम सम्बन्धी हैं, उनका मूल निःसन्देह वेद मन्त्रों में है। और उसके लिए "**पञ्च महायज्ञ विधि**" पुस्तक में ऋषि दयानन्द ने पर्याप्त प्रमाण मन्त्रों के दे दिये हैं। उन्हीं मन्त्रों की पुष्टि में यह संस्कृत वचन वैदिक होने से हमें स्वीकार हैं। न मालूम आपकी समझ में यह बात क्यों नहीं आती ? कुछ काल काशी में जाके "**वैदिक**" और "**वेदोक्त**" इन दो शब्दों की व्याख्या किसी गुरु से पढ़ें।

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**आत्माराम**"
(२)—"**मेधाव्रत**" (४) —"**चन्द्रमणि**"

सनातन धर्म की ओर से छठा प्रश्न पत्र—

"भद्र काल्यै नमः" इस मन्त्र से एक ग्रास भोजन भद्र काली को रखवाया है, इस वाक्य को वेद में दिखाओ ?

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रो० कण्डमणि शास्त्री" (२)—"भट्ट जटाशंकर शास्त्री"

आर्य समाज की ओर से छठे प्रश्न पत्र का उत्तर—

आप भद्र काली से भद्र काली देवी वा शीतला देवी के अर्थ लेते मालूम होते हैं, इससे यह भ्रम हुआ। यद्यपि स्वामी दयानन्द जी ने इसके अर्थ नहीं किये किन्तु आज से बारह वर्ष पूर्व "संस्कार-विधि" के भाष्य "संस्कार चन्द्रिका" नामी ग्रन्थ में इन संतापों को दूर किया गया है। और गत वर्ष का छपा हुआ ग्रन्थ पृष्ठ ६४५ (जो बड़ोदा आर्य समाज से मिलता है) मंगा कर देखें। उसके उपयोगी वचन यहां उद्धृत किये जाते हैं।

"रात्रि का नाम भद्रकाली है, क्योंकि यह सब जीवों को सुलाकर उनका कल्याण करती है। इसलिए रात और निद्रा का चिन्तन करता हुआ यह भाग रक्खे। आज डाक्टर और आयुर्वेद शास्त्री सब एक मत से कह रहे हैं कि, सात्विक आहार, पूर्ण निद्रा और वीर्य रक्षा यह तीन महास्तम्भ हैं, जिन पर शारीरिक उन्नति का आधार है"। रही यह बात कि यह संस्कृत वचन वेद मन्त्रों में दिखाये जायें। सो यह बात तब पूछ सकते थे, जब हम इनको वेद मन्त्र कहते, यह वेदोक्त वचन तो नहीं हैं, किन्तु वैदिक वचन जरूर हैं। अच्छी तरह कान खोल कर सुन लीजिये कोई भी विद्वान मनुष्य जो बात वैदिक है उसको मूल वेद मन्त्रों में दिखाने का आग्रह सिवाय आपके नहीं करेगा।

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रियरत्न" (३)—"आत्माराम"
(२)—"मेधाव्रत" (४)—"चन्द्रमणि"

सनातन धर्म की ओर से सातवां प्रश्न पत्र—

वेदोक्त और वैदिक क्या होता है ? आप अपनी सन्ध्या को वैदिक सन्ध्या कहते हो, क्या आप सन्ध्या के मन्त्रों को जैसे "ओं वाक्-वाक्" तथा "ओं प्राणः प्राणः" आदि मन्त्रों को वेद में दिखला सकते हो ? अगर नहीं दिखला सकते तो किस बलबूते हर वैदिक सन्ध्या का डंका पीटते हो ? जब तक वेद में इनको नहीं दिखाते तब तक हम इनको वैदिक मानने को तैयार नहीं।

हस्ताक्षर :

(१)—"प्रो० कण्डमणि शास्त्री" (२)—"भट्ट जटाशंकर शास्त्री"

आर्य समाज की ओर से सातवें प्रश्न पत्र का उत्तर—

प्रश्नकर्त्ता मालूम होते हैं कि—"वेदोक्त और वैदिक" इन दो शब्दों में भेद नहीं समझते। विदित हो कि जो बात वेद मन्त्र में कही गई है, उसको वेदोक्त धर्म कहा जायेगा, और जो बात वेदोक्त तत्व की पुष्टि में वा

व्याख्या रूप में किसी भी ऋषि, पण्डित वा विद्वान् मनुष्य की कही हुई वह वैदिक कहलायेगी। ऋषि दयानन्द कृत पंचमहायज्ञविधि में वह भाग वेदोक्त समझिये, जिसमें वेद मन्त्र उद्धृत हैं। और वह भाग जिसमें—"**अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति। विद्या तपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति**"॥ ऐसे मनुस्मृति के वचन हैं, तथा "**ओं वाक्-वाक्**" आदि किसी पण्डित के वचन हैं, यह वेदोक्त नहीं कहा जायेगा, किन्तु धर्म पोषक और वेद के पोषक हैं। इसलिए वैदिक होने से उक्त "**पंचमहायज्ञविधि**" पुस्तक में ऋषि दयानन्द ने लिखा है। इसलिए यह प्रश्न कि—' "**ओं वाक्-वाक्**" आदि शब्द मूल-चार वेदों में दिखलाओ, समाप्त हो गया, इसी भाव के विधायक वेद मन्त्र अनेक हैं, जिनको यहां लिखने की जरूरत नहीं है।

हस्ताक्षर:

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**आत्माराम**"
(२)—"**मेधाव्रत**" (४)—"**चन्द्रमणि**"

सनातन धर्म की ओर से आठवां प्रश्न पत्र—

स्वामी दयानन्द ने एक तरफ़ तो मूर्ति पूजा का निषेध किया, दूसरी तरफ़ ऊखल-मूसल को भोग लगाना लिखा है। इसका विधान किसी वेद मन्त्र से दिखलाइये? तथा वेद मूलक स्वयम्वर की व्याख्या का वर्णन करो, तथा परस्पर जो वर वधू की परीक्षा का वर्णन स्वामी दयानन्द करते हैं वह कहां पर वर्णित है, क्या इस विषय में चित्र व फोटों से काम लेना वेदोक्त रीति है? स्वामी दयानन्द ने जिस गर्भाधान की विधि को लिखा है उसमें वेद विधायक मन्त्र पेश करो, अन्यथा उसे वेद के विरुद्ध समझो। इन सभी प्रश्नों के सविस्तार उत्तर दो, इन सबकी वेद मूलकता में वेद के प्रमाण पेश करो।

हस्ताक्षर:

(१)—"**प्रो० चण्डमणि शास्त्री**" (२)—"**भट्ट जटाशंकर शास्त्री**"

आर्य समाज की ओर से आठवें प्रश्न पत्र का उत्तर—

ऊखल-मूसल को भोग लगाना, यह बात आपने खूब कही। इससे बढ़कर अनृत आप क्या लिखेंगे? अब जो बात है ही नहीं उसको मूल वेद मन्त्रों में हमसे पूछते हैं यह आपकी बड़ी भारी मति है, विदित हो कि वेद में जैसा कि हम आपको महर्षि मनु तथा मिमांसा शास्त्र के प्रमाण से बतला चुके हैं, सब कर्तव्य कर्म का बीजवत् वा मूल रूप से विधान है। और इसलिए निम्न वेद के मन्त्र में विवाह की स्वयम्वर मर्यादा का वर्णन आता है। देखिये—"**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्**" (अथर्व वेद काण्ड ११, पृ० २४, अ० ३, म० १८) तथा "**कियती योषा मर्यतो वधुयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण। भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सामित्रं वनुतेजते चित्**॥ (ऋग्वेद अ० ७ व० १७ मं० १२) जब इन दो मन्त्रों ने स्वयम्वर का नियम दर्शा दिया, तो मनु आदि ऋषियों ने रूप आदि गुणों को परस्पर परीक्षा करने का विधान कर दिया। वह वेद मूलक स्वयंवर की व्याख्या समझिये और चित्र तथा फोटो द्वारा दूरस्थ वर-वधू के होने की दशा में परिचय हो सकता है। इसमें कौन सी बात ऐसी है जो वेद विरुद्ध है? अतः चित्र व फोटो से काम लेना वैदिक है।

आपने यह प्रश्न ईमानदारी से नहीं लिखा इसका हमें अफ़सोस है। आपके सब सनातनी पुरोहित शायद विवाह की उत्तर क्रिया आजकल खा जाते होंगे। वह उत्तर क्रिया क्या है हमें बतलाइये ? और इस उत्तर क्रिया में जितने विकल्प हैं उनमें से एक या दो का वर्णन ऋषि दयानन्द ने किया है। फिर आपका प्रश्न ठहरता ही नहीं। आगे आपके प्रश्न से पता चलता है कि—आप गर्भाधान विधायक मन्त्र चाहते हैं सो लीजिये—"**गर्भंधेयोही सिनीवाली** ·····" (ऋग्वेद मं० १० सू० १२४, मं० २) तथा "**ऋता पूषं शिव तमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या, वपन्तिः यान उरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः** ।। (अथर्व० काण्ड १४ सूक्त ३८) यदि आप अपने सनातनी किसी पुरोहित के साथ कभी विवाह कराने जाते तो यह मन्त्र उनके श्री मुख से सुनने का आपको जरूर अवकाश मिलता। आपके प्रश्न पत्र के सभी प्रश्नों के उत्तर सप्रमाण हमने लिख दिये हैं। इति शम् ।।

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**आत्माराम**"

(२)-"**मेघाव्रत**" (४)—"**चन्द्रमणि**"

सनातन धर्म की ओर से नौवां प्रश्न पत्र—

आपके ऋषि दयानन्द ने २४ वर्ष में कन्या तथा ४८ वर्ष में पुरुष के विवाह को सर्वोत्तम बताया है, क्या इसमें कोई वेद का प्रमाण है तो दीजिये ! जब कि इस उम्र में कोई भी बुद्धिमान विवाह करना या कराना ठीक नहीं मानता। इस विषय का कोई बोधक मन्त्र देकर सविस्तार उल्लेख कीजिये, क्या आर्य समाजी इस बात पर अमल करते हैं ?

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रो० कण्डमणि शास्त्री**" (२)—"**भट्ट जटाशंकर शास्त्री**"

आर्य समाज की ओर से नौवें प्रश्न पत्र का उत्तर—

आप ४८ वर्ष में पुरुष और २४ वर्ष में कन्या का बोधक मन्त्र पूछना चाहते हैं, विदित हो कि दोनों के सम्बन्धी मन्त्र मौजूद हैं लीजिये—(१)—"**अनुत्वा माता रुद्रस्ता** ·····" (यजुर्वेद ४-२७) तथा (२)—"**इन्द्र घोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु······त्वादित्यै** ।।" (यजुर्वेद अध्याय ५ मन्त्र ११) अर्थात (१) में लिखा है कि—रूद्र ब्रह्मचारी विवाह करे और (२) में लिखा है कि—वसु—रूद्र तथा अदित्य ब्रह्मचारियों के विवाह का विधान है। सर्व शास्त्र तथा उपनिषदें "**आदित्व**" का अर्थ—४८ वर्ष की आयु करते हैं। परन्तु यदि आप न समझ सकें तो इसमें हमारा क्या दोष ! इन वेद मन्त्रों की आज्ञा पर यूरोप के उत्तम कोटि के ब्रह्मचारी चल रहे हैं जो ४८ वर्ष की आयु में विवाह करते हैं। विदित रहे कि वेद ने जब वसु, रुद्र तथा आदित्य ब्रह्मचारियों का वर्णन कह दिया तो इनकी व्याख्या निःसन्देह ४८ वर्ष की होती है। और देखिये—"**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्**" (अथर्ववेद काण्ड ११, पृ० २४ अनु० ३ मन्त्र १८) तथा "**आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः। नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवा नाम सुरत्वमेकम्** ।। (ऋग्वेद मं० ३ सू० ५५ मन्त्र १६) आपके लिए ये मन्त्र ही पर्याप्त हैं, वक्तव्य यह है कि ऋग्वेद के जिस मन्त्र में कन्या के यौवन अवस्था को "**अप्रदुग्धा धेनवः**" से उपमा देकर बतला दिया। ऐसी उन्नत छाती वाली कुमारी की आयु क्या होनी चाहिये ? इसके उत्तर में आयुर्वेद और संसार का अनुभव यही कह देगा कि, ऐसी पूर्ण युवती की आयु २४ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये।

यदि आप डाक्टरी वा आयुर्वेद पढ़े होते तो ऐसे विचित्र प्रश्न ही न करते। रही यह बात कि वेद में दिखा दो, तो वेद में उसका मूल हमने दिखा दिया। प्रत्येक बुद्धिमान इन मन्त्रों को उक्त तत्व का बोधक माने बिना नहीं रह सकता, रही अमल में लाने की बात ! जहां-जहां सम्भव होता है, अमल में भी आती है, नियम व निर्देश मौजूद हैं, अमल में लाना चाहिए। ऐसा वेद कहता है।

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**आत्माराम**"
(२)—"**मेधाव्रत**" (४)—"**चन्द्रमणि**"

सनातन धर्म की ओर से दसवां प्रश्न पत्र—

स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि गुरुकुल नि:शुल्क होने चाहियें, प्राचीनकाल में भी शिक्षा नि:शुल्क दी जाती थी, आर्य समाज इसके विपरीत धन लेकर शिक्षा देता है। स्वामी जी ने आदर्श नियोग का वर्णन किया है। वह कहां और किस गुरुकुल या नियोगगृह में होता है ? उसका पता दो, स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि स्त्री-पुरुष का केवल एक ही बार विवाह हो सकता है, आजकल सभी आर्य समाजी इसके विपरीत क्यों चल रहे हैं ? स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थ "**संस्कार विधि**" में लिखा है कि नाई के छुरे का पूजन करना चाहिए। तथा ऋषि दयानन्द ने नील गाय को मारना लिखा है। खेत के पटेले को घी, दूध, दधि से पूजो, ऐसी शिक्षा दयानन्द जी देते हैं। स्वामी दयानन्द ने "**ग्रहादि**" शब्दों को वेदोक्त मन्त्र कहा है। इसे वेद में दिखाओ, कहां तक कहें स्वामी दयानन्द ने पग-पग पर ऐसी बातें लिख दी हैं जिनका आधार न वेद में है, न ही उन्हे बुद्धि स्वीकार करती है जैसे महावीर को घोड़े की लीद से तपाओ। क्यों जी लकड़ी का अकाल पड़ा है ? जो अस्तबल से घोड़े की लीद एकत्रित करते फिरो, या लीद में किसी खास प्रकार के विटामिन मौजूद हैं ? जो उसमें तपाने से तपने वाली चीज में वह आ जायेंगे, सत्यार्थ प्रकाश में गाय व गधी को बराबर माना है। जहां गाय की इतनी उपयोगिता बतलाई वहां गधी को भी पीछे नहीं रक्खा। और तो और स्वामी दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में "**बकरे का दूध**" लिख दिया। क्या संसार में कोई व्यक्ति इस बात को स्वीकारेगा ? परन्तु भृष्ट बुद्धि वाले आर्य समाजी जरूर ये ऊट पटांग बातें स्वीकार करते हैं। जिन बातों के न सिर हैं ना पैर ! इन सब बातों का आपके पास अगर कोई जवाब हो तो बताओ, इनके लिए वेद मन्त्र पेश करो, अन्यथा इन्हें त्याग कर सत्य सनातन धर्मी बन जाओ। इन व्यर्थ की बातों को कहने का कोई लाभ नहीं है। यह हमारा इस वाद में अन्तिम पत्र है। हमें पता है इन बातों का आपके पास कोई जवाब नहीं बनेगा। अगर कोई जवाब है तो सप्रमाण विस्तारपूर्वक दीजिये।

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रो० चण्डमणि शास्त्री**" (२)—"**भट्टजटाशंकर शास्त्री**"

आर्य समाज की ओर से दसवें प्रश्न पत्र का उत्तर—

विदित रहे कि महर्षि स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि प्राचीन समय में गुरुकुल नि:शुल्क होते थे, आर्य समाज इस बात का खण्डन नहीं करता, किन्तु जब तक ग्रामों के ग्रामीण छात्रों को श्रद्धा से भिक्षा देने के लिए तैयार न हो जावें तब तक आदर्श गुरुकुल बिना फीस वाला नहीं खुल सकता। फीस लेकर आर्य समाज का गुरुकुल चलाना उस बात के खण्डन में नहीं किन्तु जन समाज की हीन अवस्था के कारण है। यही दृष्टान्त नियोग पर हम घटा सकते हैं। जब हमारी आर्य प्रतिनिधि सभायें आज तक आदर्श गुरुकुल नहीं खोल सकीं तो आज तक द्विजों के लिए आदर्श नियोग कैसे चालू कर सकती हैं ? रही यह बात आपकी कि स्वामी जी ने एक बार विवाह लिखा तो कृपा निधान आप आधे शब्द क्यों खा गये ? वहां एक बार के साथ "**एक समय**" यह शब्द

भी तो दिये हुवे हैं, अतः आप अपना भ्रम दूर कर लें। अर्थात् अनेक बार में अनेक विवाह हो सकते है। यह ऋषि दयानन्द लिख रहे है। नाई के छुरे को पूजने की बात आपने खूब लिखी यह शब्द यदि आप "संस्कार विधि" में दिखा दें कि नाई के छुरे को पूजा जावे तब तो ठीक, नहीं तो आपको ऐसे भारी झूठ लिखने के लिए कहीं जाकर प्रायश्चित करना चाहिए। कई बातें भाषा में प्रयोग शैली की होती हैं, और उनसे अक्षरार्थ न लेकर भावार्थ ही लिया जाता है। कहीं मथुरा के चौबे जब भोजन कर रहे हों तो कहा करते हैं कि—हम पेट पूजा कर रहे हैं। मालूम होता है कि आप "पेट पूजा" शब्द को मूर्ति पूजा के अर्थ में लेने को तैयार होंगे। संस्कृत में "नमः" शब्द यथार्थ उपयोग वा सत्कार के अर्थ में आता है। गुजरात में प्रत्येक हिन्दू आग को देवता कहता है और उसमें रोटी बनाता है यदि वह कहे कि मैं आग का सत्कार कर रहा हूं और इसीलिए देवता शब्द से पुकारता हूं तो न मालूम आप उसकी भाषा को समझेंगे या नहीं ? यदि आपने अलंकार शास्त्र या वाक्य रचना के ग्रन्थ पढ़े होते तो कभी भी ऐसे व्यर्थ प्रश्न न करते। वैसे अब हमें आपकी पण्डिताई का पूरा निश्चय हो गया है कि आपको संस्कृत का एक अक्षर भी नहीं आता। क्योंकि—"वायवायाहि···सोमा अलंकृताः तेषां पाहि" (ऋग्वेद) इस मन्त्र में "पाहि" शब्द मौजूद है। साधारण पण्डित भी "पाहि" शब्द का अर्थ "रक्षा कीजिये" करेगा यजुर्वेद के पहले ही मन्त्र मे "पशून् पाहि" लिखा है। वहां भी पशुओं की रक्षा कीजिये अर्थ है न कि पीजिए ! इसलिए अशुद्ध बात को लेकर बात चलाना आपका ही काम है। इसलिए हमारा ईश्वर "गिलोय का अर्थ नहीं पीता" किन्तु उसकी रक्षा करता है। खेत के पटेले को घी, दूध, दही से पूजने की बात आपने खूब कही ! गप्प भी लगाई तो बहुत बढ़िया आगे आप "ब्रह्मादि" शब्दों के लिए वेद का मन्त्र मांगते हैं। यदि सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखा होता कि—"यह वेद मन्त्र" और वेदों में ढूंढने पर आपको न मिलता तब तो आपका प्रश्न ठीक था। यह किसी संस्कृत ग्रन्थ का वचन है। और वेद के मूल का पोषक होने से यहाँ पर लिखा गया, इसलिए यह वैदिक वचन है वेदोक्त नहीं। आपने घोड़े की लीद से तपाने की बात भी खूब लिखी, भला अध्याय और मन्त्र का पता देते हुए आपको क्यों लज्जा आ गई ? रही गाय और गधी को बराबर कहना ? कहीं भी सत्यार्थ प्रकाश में गाय और गधी को बराबर नहीं माना गया है। आंखे खोलकर सारे सत्यार्थ प्रकाश को पढ़िये। कहीं भी ऐसी बात नहीं है। स्वामी जी ने स्वयं ही गौ की रक्षा निमित्त "गोकरुणानिधि" नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखकर गौ माता की महती महिमा गाई है। आप लिखते हैं कि—स्वामी दयानन्द ने वेद भाष्य में "बकरे का घी व दूध" लिखा है। आप कृपा करके "रे" की जगह "री" पढ़ लीजिए, प्रेस के टाईप कम्पोज करने वाले (कम्पोजीटर) ने "री" की जगह "रे" कम्पोज करके छाप दिया होगा, आपके पास दुर्भाग्य से वह अशुद्ध छपी हुई प्रूफ कापी आपको मिली होगी, हमारे पास जो भाष्य है उसमें कहीं भी बकरे का दूध या घी नहीं लिखा। आपके सभी प्रश्न निराधार व व्यर्थ हैं। तो भी सभी प्रश्नों का यथा सम्भव उत्तर दिया जा चुका है। लगता है आपने कभी हमारे ग्रन्थों को पढ़ना तो दूर देखा भी नहीं, मात्र ये सब सुनी-सुनायी बातें यहां लिख मारी। आप एक बार ऋषि दयानन्द जी महाराज के ग्रन्थों को निष्पक्ष भाव से पढ़कर देख तो लीजिये, हमारा दावा है कि आप इनके पढ़ते ही इस पोप लीला को तुरन्त त्याग देंगे।

हस्ताक्षर :

(१)—"**प्रियरत्न**" (३)—"**आत्माराम**"
(२)—"**मेधाव्रत**" (४)—"**चन्द्रमणि**"

नोट—

१—उपरोक्त लेखों के प्रश्न व उत्तर पर यहीं तक शास्त्रार्थ शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त हो गया था। इसके बाद पौराणिकों ने कभी शास्त्रार्थ करने के लिए सिर वहां नहीं उठाया।

२—इस शास्त्रार्थ शृंखला का यह तीसरा भाग समाप्त होता है, शेष शास्त्रार्थ सामग्री चौथे भाग में दी जावेगी, उसके लिए प्रकाशन से पत्र-व्यवहार करें ! "सम्पादक"

सभी सम्प्रदायों के मुख्य-मुख्य शास्त्रार्थ महारथियों की नामावली

१. आर्य समाज के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. श्री स्वामी विरजानन्द जी दण्डी, २, महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती, ३. श्री पण्डित भीमसेन जी (इटावा), ४. श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर, ५. श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती, ६. श्री पण्डित गणपति शर्मा जी, ७. श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, ८. श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, ९. श्री स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती, १०. श्री पण्डित तुलसीराम जी स्वामी (मेरठ), ११. श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर (आगरा), १२. श्री पण्डित आर्य मुनि जी महामहोपाध्याय (लाहौर), १३. श्री पण्डित राजाराम जी शास्त्री (लाहौर), १४. श्री स्वामी योगेन्द्र पाल जी (दीनानगर) १५. श्री पण्डित देवप्रकाश जी अरबी फाजिल (अमृतसर), १६. श्री पण्डित छुट्टन लाल जी स्वामी (मेरठ), १७. श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न, १८. श्री पण्डित मुरारि लाल जी शर्मा (सिकन्दराबाद-उ०प्र०) १९. श्री डाक्टर लक्ष्मी दत्त जी आर्य मुसाफिर (आगरा), २०. श्री स्वामी अनुभवानन्द जी शान्त, २१. श्री स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती (सहारनपुर) २२. श्री महाशय बनारसीदास जी (लखनऊ) २३. श्री पण्डित कालीचरण जी (आगरा), २४. श्री पण्डित धर्मभिक्षु जी (लखनऊ), २५. श्री लाला बख्शीश राम जी (दीनानगर), २६. श्री लाला वजीर चन्द जी (रावल पिंडी), २७. श्री पण्डित दीनानाथ जी फिलास्फर (लाहौर), २८. श्री प्रोफेसर देवी दयाल जी (लाहौर), २९. श्री पण्डित भगवतदत्त जी रिसर्चस्कालर, ३०. श्री पण्डित राम गोपाल जी शास्त्री (दिल्ली), ३१. श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री (बरेली), ३२. श्री पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप, ३३. श्री पण्डित नन्द किशोर देव शर्मा (उत्तर प्रदेश), ३४. श्री पण्डित शिव शर्मा जी (सम्भल), ३५. श्री पण्डित शिवशंकर जी काव्यतीर्थ (बिहार), ३६. श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा, ३७. श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती, ३८. श्री मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी, ३९. श्री स्वामी कर्मानन्द जी (हरियाणा) ४०. श्री पण्डित पूर्णानन्द जी (लाहौर), ४१. श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी शास्त्री (सिकन्दराबाद, उत्तर प्रदेश), ४२. श्री दादा बस्ती राम जी, ४३. श्री पण्डित लोक नाथ जी तर्क वाचस्पति, ४४. श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार, ४५. श्री पण्डित बुद्धदेव जी मीरपुरी, ४६. श्री पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, ४७. श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक, ४८. श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, ४९. श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा जी (न्होटी-अलीगढ़), ५०. श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर, ५१. श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी, ५२. श्री पण्डित शान्ति स्वरूप जी (मोहम्मद अली कुरेशी), ५३. *श्री पण्डित हनुमान प्रसाद जी (कानपुर)*, ५४. श्री पण्डित *वंशीधर जी पाठक (बरेली)*, ५५. श्री पण्डित बुद्धदेव जी (धार), ५६. श्री पण्डित विद्याभिक्षु जी एम० ए० (रुदौली) उत्तर प्रदेश, ५७. श्री पण्डित धर्मवीर जी आर्य मुसाफिर (आगरा), ५८. श्री मुन्शी बलदेव प्रसाद जी (बरेली), ५९. श्री बाबू पन्ना लाल जी (बरेली), ६०. श्री जगदम्बा प्रसाद जी (शाहजहांपुर), ६१. श्री पण्डित जगदीश चन्द (विज्ञान भिक्षु) जी, ६२. श्री पण्डित विद्यानन्द जी मन्तकी (वाराणसी), ६३. श्री ठाकुर अमर सिंह जी (वर्तमान अमर स्वामी सरस्वती) गाजियाबाद, ६४. श्री पण्डित भगवान स्वरूप जी (अजमेर), ६५. श्री डाक्टर श्रीराम आर्य (कासगंज) ६६. श्री पण्डित धर्म देव जी विद्या मार्तण्ड, ६७. श्री पण्डित राम दयालु जी शास्त्री (अलीगढ़), ६८. श्री पण्डित ओम-

प्रकाश जी शास्त्री (खतौली), ६९. श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी (गुड़गांवा), ७०. श्री पण्डित देवेन्द्र नाथजी शास्त्री (दिल्ली), ७१. श्री पण्डित शेरसिंह जी कश्यप (मुजफ्फरनगर), ७२. श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी (पटना), ७३. श्री आचार्य रामानन्द जी शास्त्री (पटना), ७४. श्री पण्डित गंगाधर जी शास्त्री (पटना), ७५. श्री पण्डित सत्यमित्र जी शास्त्री (गोरखपुर), ७६. श्री पण्डित रामाश्रय जी शास्त्री (दानापुर), ७७. श्री पण्डित बाल कृष्ण जी शर्मा (बम्बई), ७८. श्री पण्डित रमाकान्त जी आचार्य (कलकत्ता), ७९. श्री पण्डित देवदत्त जी शास्त्री, ८०. सु श्री डा० प्रज्ञा देवी व्याकरणाचार्या (बनारस), ८१. श्री पण्डित उमाकान्त जी उपाध्याय (कलकत्ता), । आदि आदि ॥

२ जैन सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्व श्री स्वामी कर्मानन्द जी, २. पण्डित राजेन्द्र जी, ३. छेदा लाल जी, ४. पन्ना लाल जी, ५. गोपाल दास जी, वरैया, ६. बनारसी दास जी, ७. पण्डित अजीत कुमार जी मुलतानी आदि-आदि ॥

३. ईसाई सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्व श्री पादरी जानसन युरोपियन संस्कृतज्ञ, २. पादरी फ्रैंक जानसन, ३. पादरी ज्वाला सिंह जी, ४. पादरी एस० एम० पाल, ५. पादरी रलाराम जी, ६. पादरी अब्दुल हक़ जी, ७. पादरी महबूब मसीह नाबीना, ८. पादरी खडगसिंह जी, ९. पादरी एलियास जी आदि-आदि ॥

४. मुस्लिम सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्व श्री मौलाना सनाउल्ला साहिब (अमृतसरी), २. मौलाना रोशन अली अख्तर, ३. गाजीमहमूद उर्फ धर्मपाल, ४. मौलाना अबुल फ़रह (पानीपती), ५. मौलाना खुदादाद (गुरदासपुर), ६. मौलाना अल्लादित्ता बखारी, आदि-आदि ।'

५. कादियानी-अहमदी सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्व श्री हाफ़िज़ रोशन अली, २. मीर क़ासिम अली, ३. अब्दुर्रहमान मिश्री, ४. मुहम्मद उमर शर्मा, ५. फ़जल मुहम्मद शर्मा, आदि-आदि ॥

६. लाहोरी-अहमदी सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्व श्री मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी, २. मौलाना इस्मतुल्ला खां, ३. मिर्जा मुजफ्फरबेग, आदि-आदि ॥

७. पौराणिक सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्व श्री एवं सर्व पण्डित भीमसैन जी शर्मा (इटावा), २. अखिलानन्द जी कविरत्न, ३. ज्वाला प्रसाद जी मिश्र (मुरादाबादी), ४. कालू राम जी शास्त्री (कानपुर), ५. माधवाचार्य जी शास्त्री (दिल्ली), ६. लक्ष्मीचन्द जी (कोल) करनाल, ७. श्री कृष्ण जी शास्त्री (रोपड़), ८. यदुकुल भूषण जी शास्त्री (मुलतान), ९. गुरुदत्त जी, १०. भीमसैन जी (पंजाबी), ११. प्रकाशानन्द जी (हुजरो वाले), १२. चन्द्रशेखर जी शास्त्री (स्वामी निरंजन देव जी तीर्थ), १३. रूलिया राम जी (अमृतसरी), १४. प्रेमाचार्य जी शास्त्री (दिल्ली), १५. विश्वेश्वराचार्य जी शास्त्री (बनारस), १६. मुखराम जी शर्मा व्याकरणाचार्य (दिल्ली), आदि-आदि ॥

अप्रकाशित प्राचीन शास्त्रार्थों के विषय में

आप सभी को विदित होवे कि स्व० श्री पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा जीवन पर्यन्त तक यही रही कि आज तक आर्य समाज के क्षेत्र में जितने भी शास्त्रार्थ (मुबाहिसे) हुए, उन सबको पुस्तक रूप में करा दिया जावे। उनकी प्रेरणा पर अब तक एक सौ से अधिक शास्त्रार्थों का विवरण छप कर पुस्तक रूप में आ चुका है। अभी लगभग १ भाग की सामग्री और शेष है। जो अगले चौथे भाग में आ जायेगी।

आप सभी लोगों से हमारी प्रार्थना है कि जिस किसी के पास कोई भी प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री उपलब्ध हो तो तुरन्त सूचित करें। हम उस सामग्री को उन्हीं सज्जन के नाम का उल्लेख करते हुए प्रकाशित करा देंगे। हमारा उद्देश्य मात्र इतना ही है कि यह अप्राप्य सामग्री किसी भी प्रकार सुरक्षित हो जावे। जिससे आने वाली पीढ़ी को मार्ग-दर्शन प्राप्त हो सके।

यह सूचना कई बार आर्य समाचार पत्रों में भी प्रकाशित की गई, तो काफी लोगों ने इसे एक महत्वपूर्ण कार्य समझ कर सहयोग प्रदान किया। अभी काफी शास्त्रार्थ ऐसे हैं जो हमारे पास नहीं हैं। और उनका छपना अत्यावश्यक है। अत: जो अन्तिम इच्छा पूज्य अमर स्वामी जी महाराज की थी कि—

'किसी भी तरह हमारे पूर्वज शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के शास्त्रार्थ जो भी उपलब्ध हो जावें उनका प्रकाशन हो जाना चाहिए।' इनके प्रकाशन का भार वह मेरे ऊपर छोड़ गए हैं एवं जो भी शास्त्रार्थ सम्बन्धी सामग्री उनके पास विपुल मात्रा में थी वह भी प्रकाशनार्थ मुझे दे गये हैं, कुछ मुख्य-मुख्य शास्त्रार्थों की सूची भी बनवा गये थे कि, तलाश करो इनमें से बहुत से शास्त्रार्थ उर्दू आदि भाषाओं में छपे थे, वह भी अवश्य मिल जायेंगे।

"मेरा पुनः सभी आर्य भाइयों से तथा सभा के अधिकारियों से, व अन्य जिम्मेवार व्यक्तियों से अनुरोध है कि जिनके पास जो भी शास्त्रार्थ सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध हो, सूचित करें, मैं उस सामग्री को उन्हीं सज्जनों के नाम का उल्लेख करते हुए प्रकाशित करा दूंगा।"

प्राचीन शास्त्रार्थों के ३ भाग तो छप चुके हैं, चौथा भाग जनता के सामने आना है, इन तीनों भागों में लगभग **"एक सौ से अधिक शास्त्रार्थों"** का समावेश हो गया है शेष सामग्री चौथे भाग में आएगी। **"हमारा उद्देश्य इससे धन कमाना नहीं हैं, अपितु पूज्य अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छानुसार इस लुप्त सामग्री को प्रकाश में लाने का है।"** मुझे विश्वास है कि सभी आर्यजन इस ओर ध्यान देकर इस कार्य में सहयोग प्रदान करेंगे एवं पूज्य अमर स्वामी जी महाराज की अन्तिम इच्छा को पूरा करेंगे।

किमधिकम् लेखेन ॥

विदुषामनुचरः

"लाजपतराय अग्रवाल"

(प्रोपराइटर)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

(कार्यालय) —**१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद।**

(उत्तर प्रदेश)

आवश्यक घोषणाएं

पूज्य अमर स्वामी जी महाराज की ओर से—

पूज्य श्री अमर स्वामी जी महाराज ने अपने मरने पहले ही अपनी अन्तिम घोषणा कर दी थी कि— **"मेरी अन्तिम इच्छा है कि प्राचीन शास्त्रार्थ जितने भी उपलब्ध हो जावें उन सबका प्रकाशन अनिवार्य है।"** यह घोषणा उस समय समाचार पत्रों में छप भी चुकी थी, तथा प्रकाशन के सम्बन्ध में भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया था, जो अक्षरशः सत्य था।

स्वामी जी महाराज चाहते थे कि—उपदेशक विद्यालय खोल कर उसमें प्रचारक तैयार किये जावें, शास्त्रार्थ कर्त्ता तैयार किये जावें जिससे देश व समाज की उन्नति हो ! अपनी संस्था के चलाने हेतु एक संगठन भी बना गये थे जिस पर उनके द्वारा अधूरे कार्यों को पूरा करने का भार सौंप गये थे। जिनमें सर्वेसर्वा **"श्री स्वामी आनन्द बोध जी सरस्वती"** जी का नाम मुख्य था। मेरा भी नाम उन्होंने मेरे न चाहते हुए भी शामिल कर लिया था। अब यह संगठन पूज्य स्वामी जी महाराज के स्वप्नों को कितना साकार रूप देता है यह तो भविष्य ही बता पायेगा ? कुछ पैसा भी था जिसके लिए नोमिनी **"प्रो० रत्नसिंह"** को बना गये थे, उनका विशाल पुस्तकालय एवं उनके द्वारा स्थापित् वेद मन्दिर एवं एक मकान भी हैं जिसका सम्पूर्ण उत्तर दायित्व इस संगठन पर है, इस पैसे व सम्पत्ति का कितना सदुपयोग हो सकेगा ? यह भी परमात्मा ही जानता है। अभी तो कुछ होता नजर आ नहीं रहा, भविष्य में शायद कुछ हो सके !

मेरी (लाजपत राय अग्रवाल की) ओर से—

मैंने यह प्रकाशन सन् १९६९ ई० में पूज्य अमर स्वामी महाराज जी के नाम पर खोला था। इससे स्वामी जी का आर्थिक सम्बन्ध कभी रहा ही नहीं, हां ! वैसे वह दिल से इस प्रकाशन की उन्नति चाहते थे। इतने लम्बे समय में मैंने इस प्रकाशन में कितनी मेहनत की ? यह सारी आर्य जनता जानती है। अब मेरी घोषणा है कि—**"अमर स्वामी जी महाराज के नाम पर मेरे द्वारा खोली गयी यह संस्था हमेशा अपने उद्देश्यों की पूर्ति में संलग्न रहेगी इसको किसी कीमत पर भी बन्द नहीं होने दिया जायेगा, इसके अन्तर्गत जो भी साहित्य पूज्य अमर स्वामी जी महाराज का छपना शेष रह गया था उसे छापा जायेगा तथा वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार पूर्व की भाँति ही होता रहेगा। जब मेरी व इस प्रकाशन की स्थिति डाँवाडोल थी, तब यह चलता रहा, अब तो मुझ पर व प्रकाशन पर भी भगवान की असीम कृपा है। इस लिए मैं विश्वास दिलाता हूं कि यह प्रकाशन पहले की अपेक्षा अब अधिक वैदिक धर्म का प्रचार व प्रसार कर सकेगा। मेरी यह घोषणा भी पहले सभी आर्य समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है।"**

इस प्रकाशन के माध्यम से जितनी भी इच्छा पूज्य स्वामी जी महाराज की पूरी कर सकूंगा उतना ही अपने आपको धन्य समझूंगा !

किमधिकम् लेखेन् ॥

विदुषामनुचरः

"लाजपतराय अग्रवाल"

(प्रोपराइटर)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

गाजियाबाद (उ० प्र०)

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित एवं प्रसारित
उपलब्ध साहित्य की संक्षिप्त सूची

क्रम सं०	पुस्तक का नाम	लेखक व भाष्यकार व संग्रह कर्ता	मूल्य
१.	निर्णय के तट पर (शास्त्रार्थ संग्रह) प्रथम भाग	अमर स्वामी सरस्वती तथा लाजपतराय अग्रवाल	१५०-००
२.	,, ,, ,, (द्वितीय भाग)	,,	१५०-००
३.	,, ,, ,, (तृतीय भाग)	,,	१५०-००
४.	,, ,, ,, (चतुर्थ भाग)	,,	१५०-०० (प्रेस में)
५.	कौन कहता है द्रौपदी के पांच पति थे ?	अमर स्वामी सरस्वती	१०-००
६.	गीता में ईश्वर का स्वरूप	,,	३-००
७.	सन्ध्या के मन्त्रों की व्याख्या	,,	३-००
८.	शिवाजी का पत्र-महाराजा जयसिंह के नाम (मूल फ़ारसी तथा हिन्दी काव्य अनुवाद सहित)	,,	३-००
९.	अमर गीतांजली (नये व पुराने सभी भजनों का अपूर्व संग्रह) (३ भाग)	भिन्न-भिन्न कवि	४-०० प्रति भाग
१०.	सत्यार्थ प्रकाश मण्डन	अमर स्वामी सरस्वती	८-००
११.	सत्य साईं बाबा का कच्चा चिट्ठा	श्रीमति वीना गुप्ता एम०ए०	५० पैसे
१२.	रजनीश भगवान वा शैतान ?	,,	५० पैसे
१३.	ईश्वर सिद्धि	पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी	५० पैसे
१४.	Murder of Gandhi (What ? Why?? When???)	Statement By—Nathuram Godse	१०.००
१५.	दयानन्द दर्शन (Philosophy of Swami Daya Nand)	डा० वेद प्रकाश	१५-००

नोट—

अन्य किसी भी ग्रन्थ के लिए प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित् करें। एवं विशेष जानकारी के लिए सूची पत्र मंगायें !!

निवेदक
"लाजपतराय अग्रवाल"
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर गाजियाबाद
(उ० प्र०) २०१००१
(भारत)

इस शृंखला क चौथे भाग के विषय में आवश्यक दृष्टव्य

निर्णय के तट पर (शास्त्रार्थ संग्रह) का चौथा भाग भी छापने का निश्चय हो गया है। छपे हुए तीनों भागों में जो भी शास्त्रार्थ छपने से शेष रह गये हैं उन सभी का समावेश इस भाग में किया जायेगा, आप लोग अभी से अपनी प्रति सुरक्षित करा सकते हैं।

इस खण्ड नं० ४ का प्रारूप भी पिछले तीन खण्डों की भांति ही रहेगा पृष्ठ भी ४०० के लगभग ही रहेंगे रही सामग्री की बात ? उसका परिचय आपको पूर्व छपे हुए तीनों भागों से मिल जायेगा। जिससे आप स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि इस खण्ड में क्या सामग्री होगी ?

"इस खण्ड का मूल्य छपने के बाद १५० रुपये होगा परन्तु जो सज्जन छपने से पूर्व अपनी प्रति बुक करायेंगे उन्हें मात्र ८० रुपये में दिया जायेगा। "पोस्टेज पैकिंग आदि सब ग्राहक को अलग से देना होगा।"

शेष जानकारी के लिए प्रकाशन से पत्र व्यवहार करें।

विदुषामनुचरः

"लाजपत राय अग्रवाल"

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग

१०५८, विवेकानन्द नगर गाजियाबाद

(उ० प्र०)

इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर आर्थिक सहयोग

क्रम संख्या	सहयोगियों का नाम व पता	राशि
१.	श्री जयन्ति लाल हरजीवनदास संघ्वी, प्रधान आर्य समाज शिवाजी पार्क, लेडी जमशेद जी रोड, बम्बई-१६	५०००-००
२.	श्री राजा रणञ्जयसिंह जी, भूपति भवन, अमेठी (सुलतानपुर)	१०००-००
३.	श्री अमृत लाल जी गर्ग ७/१४१ स्वरूप नगर, कानपुर	८६८-००
४.	श्री अखिलेश कुमार जी, अरगड़ा हुसैन गंज, लखनऊ द्वारा (एकत्रित धन)	५००-००
	,, ,, ,, ,, (व्यक्तिगत)	१०१-००
५.	श्री महात्मा प्रेम प्रकाश जी, धूरी द्वारा, स्व० पुन्ना देवी बनारसी दास आर्य जी से प्राप्त	५००-००
६.	श्री लखन जी तोमर, सर्वोदय कालोनी—मेरठ	४६१-००
७.	श्री जस्टिस प्रेम चन्द जी पण्डित ४६/४ चण्डीगढ़	३०२-००
८.	श्री प्रवीन जी सूद डी-६ आनन्द निकेतन, नई दिल्ली-२१	२५०-००
९.	श्री धरमदास-आनन्द प्रकाश जी, अम्बेहटा-४० (सहारनपुर)	२००-००
१०.	श्री गोपाल जी पत्रकार, मियां बाजार-पूर्व फाटक, गोरखपुर	२००-००
११.	श्री जी० आर० सैनी, ३०५७/२० डी-चण्डीगढ़	१५०-००
१२.	श्री जयन्त वालंमदास कोरेचा, कोरेचामैन्शन, पोरबन्दर	१२५-००
१३.	श्री शम्भूमल मित्तल आर्य, तालड़ा-डा० जानसठ (मुजफ्फर नगर)	१०१-००
१४.	श्री सुभाष जी आर्य सुपुत्र श्री पृथ्वी नाथ जी, अनाज मण्डी घरौण्डा (करनाल)	१००-००
१५.	प्राचार्य, दयानन्द संस्कृत महाविद्यालय, चम्बा (हिमाचल प्रदेश)	८०-००
१६.	श्री बालकराम जी कमल, ३-बेसेन्ट, सान्ताक्रुज-बम्बई	४०-००
१७.	श्री कंवल नैन देवराज आर्य, ग्राम व डा०, बेगा (सोनीपत)	४०-००
	योग=	१०,०४८-००

हम उपरोक्त सभी सहयोगियों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिनके सहयोग से इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हुआ। इसी सम्बन्ध में एक नई परम्परा का शुभारम्भ भी हुआ है जिसका विवरण अगले पेज पर दिया जा रहा है। आप भी देखें और क्रिया में लाने का प्रयास करें। "सम्पादक"

एक नई परम्परा का शुभारम्भ

आर्य समाज शिवाजी पार्क (बम्बई) के प्रधान श्री "जयन्ती लाल हरजीवन दास संघवी" जी ने मेरे अनुरोध पर एक बहुत ही प्रशंसनीय एवं सराहनीय परम्परा की शुरुआत की है। ज्यादातर लोग अपना पैसा भवनों के निर्माण आदि में देते हैं, ओर अपने आपको पाप से मुक्त समझते हैं। या ऐसे कार्यों में आर्थिक मदद करते हैं, जो कुछ ही समय के लिए उपयोगी होता है। बाद में उसका कोई लाभ नहीं होता। आज सारे देश में सैंकड़ों मन्दिर, समाज सेवी संस्थाओं के भवन वैसे ही खाली पड़े हुए हैं कि जिनमें झाड़ू लगाने वाला भी कोई नहीं है। वे सभी भवन दानियों के दान से निर्मित हुए, परन्तु उनकी उपयोगिता कुछ भी नहीं। आर्य समाज शिवाजी पार्क (बम्बई) ने पांच हजार रुपया अमर स्वामी प्रकाशन विभाग को इन प्राचीन शास्त्रार्थों को छपाने के निमित्त प्रदान किया है। जिससे इस ग्रन्थ के छपाने में बड़ी भारी सहायता मिली, अन्य भी आर्य सज्जनों ने इसमें अपना योग दान दिया है। जिनकी सूची यहां दी गई है। ज्ञान यज्ञ से बड़ा कोई यज्ञ नहीं है। अत: मैं जहां श्री संघवी जी को आशीर्वाद एवं साधुवाद देता हूं वहां अन्य आर्य पुरुषों को भी कहूंगा कि वे भी इससे प्रेरणा लें। जब तक यह ग्रन्थ कायम रहेगा तब तक देश-विदेश में इन सहयोगियों का नाम "अमर" रहेगा।

मिट जायेंगे एक दिन, सब धन धरनी धाम।
"अमर" रहेगा कल्प तक दानवीर का नाम॥

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक ....
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र